महाकालसंहिता

(गुह्यकालीखण्डः)

ज्ञानवतीहिन्दीभाष्येण विभूषिता

व्याख्याकारः सम्पादकश्च

आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी

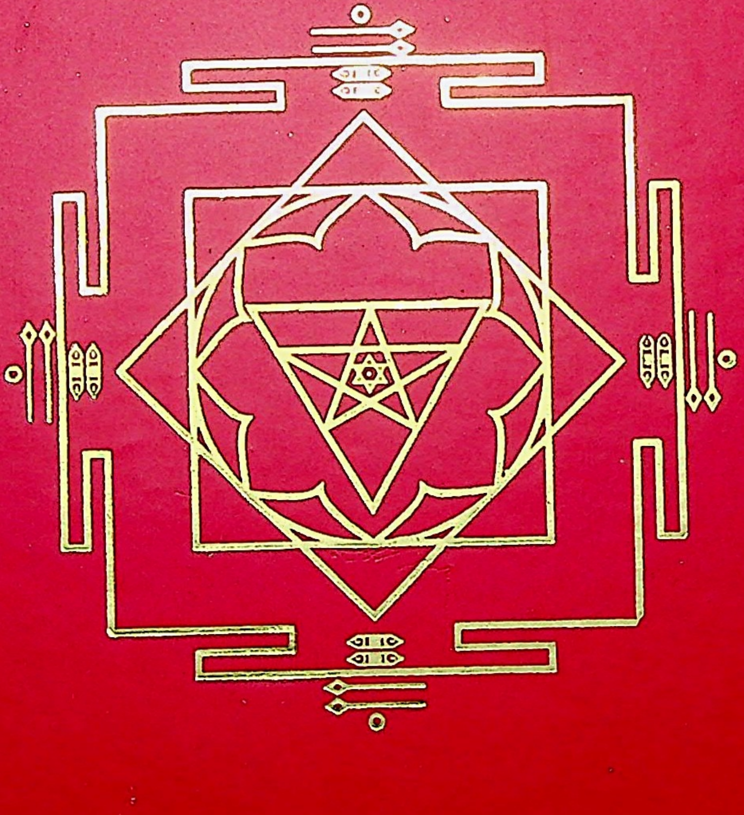

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

II

राधेश्याम चतुर्वे

महाकालसंहिता

(गुह्यकालीखण्डः)

।। श्रीः ।।

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
४०३

महाकालसंहिता

(गुह्यकालीखण्डः)

[द्वितीयो भागः * ६-९ पटलात्मकः]

ज्ञानवतीहिन्दीभाष्येण विभूषिता

व्याख्याकारः सम्पादकश्च

आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी

व्याकरणाचार्यः एम.ए.(संस्कृत), पीएच.डी., लब्धस्वर्णपदकः
शास्त्रचूडामणिविद्वान्
इमेरिटस प्रोफेसर एवं अध्यक्षः, संस्कृत विभागः
देवसंस्कृतिविश्वविद्यालयः, गायत्रीकुञ्जशान्तिकुञ्जः, हरिद्वार
(पूर्वाचार्यः) संस्कृतविभागः, कलासंकायः
काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः, वाराणसी

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

© सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन के किसी भी अंश का किसी भी रूप में पुनर्मुद्रण या किसी भी विधि (जैसे-इलेक्ट्रोनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या कोई अन्य विधि) से प्रयोग या किसी ऐसे यंत्र में भंडारण, जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सकता हो, प्रकाशक की पूर्वलिखित अनुमति के बिना नहीं किया जा सकता है।

महाकालसंहिता (गुह्यकालीखण्ड) - राधेश्याम चतुर्वेदी

ISBN : 978-93-80326-36-8 (Pt.2)
978-93-80326-34-4 (Set)

प्रकाशक :
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के 37/117 गोपाल मन्दिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129
वाराणसी 221001
दूरभाष : (0542) 2335263
e-mail : csp_naveen@yahoo.co.in
website : www.chaukhamba.co.in

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

संस्करण : 2014
₹ 750

वितरक :
चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2 ग्राउण्ड फ्लोर, गली न. 21-ए
अंसारी रोड़, दरियागंज
नई दिल्ली 110002
दूरभाष : (011) 32996391, टेलीफैक्स : 23286537
e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

*

अन्य प्राप्तिस्थान :
चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. बंगलो रोड़, जवाहर नगर
पोस्ट बॉक्स न. 2113
दिल्ली 110007

*

चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पोस्ट बॉक्स न. 1069
वाराणसी 221001

मुद्रक :
डीलक्स ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली,

The

CHAUKHAMBA SURBHARATI GRANTHMALA

403

◆

MAHĀKĀLASAṀHITĀ

(GUHYAKĀLĪKHAṆḌAḤ)

[Part Two * 6-9 Paṭalas]

With the **Jñānavatī** Hindi Commentary

Commented & Edited By

Prof. RADHESHYAM CHATURVEDI

Vyākaraṇācārya, M.A., Ph.D., Goldmedalist
Śāstracūḍāmaṇi Scholar

Emeritus Prof & Head, Department of Sanskrit
Devsanskriti University, Gayatrikunj Shantikunj, Haridwar
Ex. Professor, Department of Sanskrit, Arts Faculty
Banaras Hindu University, Varanasi

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
VARANASI (INDIA)

© All. right reserved. No part of this publication may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopying, recording or any information storage or retrieval system, without prior permission in writing from the publisher.

ISBN : 978-93-80326-36-8 (Part-2)
978-93-80326-34-4 (Set)

Publisher :
CHAUKHAMBA SURBHARTI PRAKASHAN
(Oriental Publisher or Distributor)
K - 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
Varanasi 221001 (India)
Tel. : +91-542-2335263

Also can be had from :
CHAUKHAMBA PUBLISHING HOUSE
4697/2, Ground Floor
Gali No. 21-A, Ansari Road,
Daryaganj, New Delhi 110002
Tel : +91-11-32996391, +91-11-23286537
E-mail : Chaukhamba_neeraj@yahoo.com

*

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U. A. Bunglow Road, Jawahar Nagar,
Post Box No. 2113
Delhi 110007

*

CHOWKHAMBA VIDYABHAVAN
Chowk (Behind Bank of Baroda Building)
Post Box No. 1069
Varanasi 221001

Printer :
A. K. Lithographer
Delhi

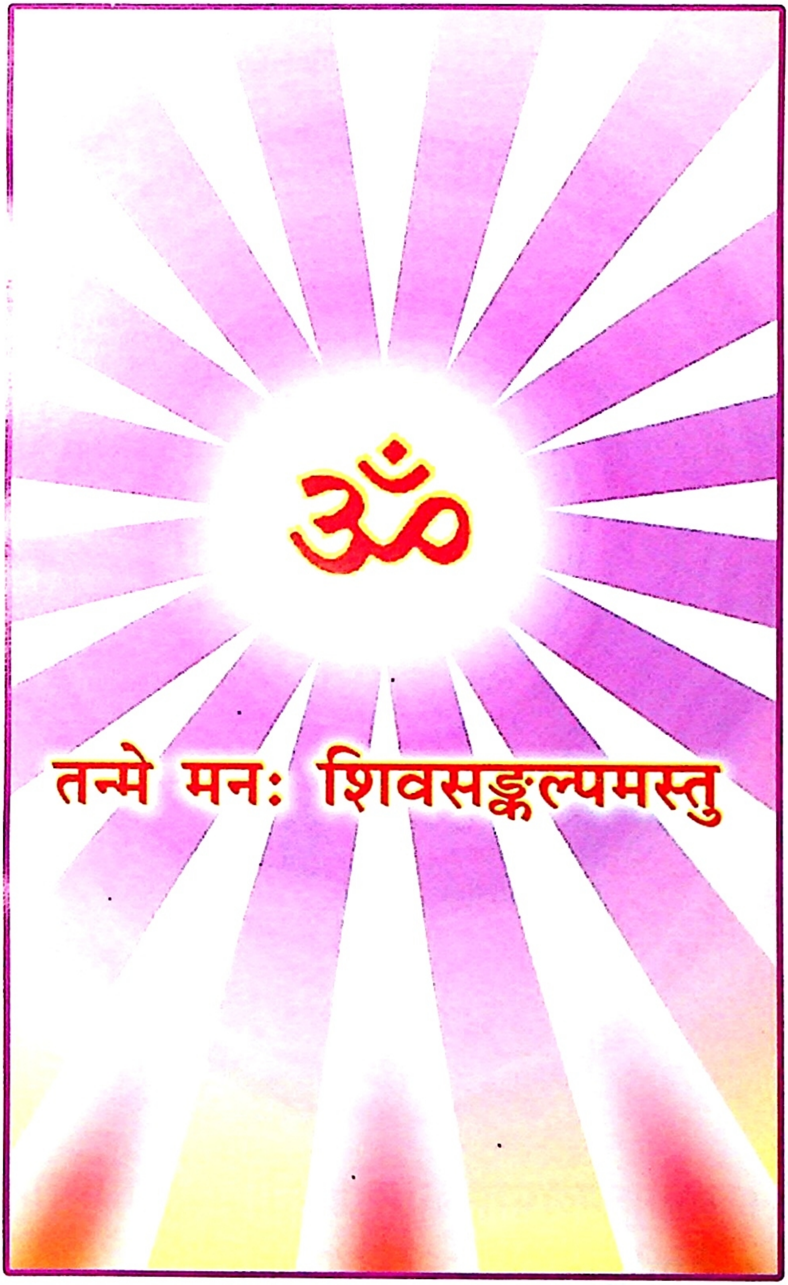

ॐ

तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु

अनुवादक के दीक्षागुरु

श्री६ शिवचैतन्यवर्णीजी महाराज

गायत्रीसाधनासिद्धसिद्धिसाम्राज्यचुञ्चवे ।
श्रेयःप्राप्तिनिमित्ताय नमश्चैतन्यवर्णिने ।।

पुरोवाक्

आद्याशक्ति गायत्री अथवा उसके चतुर्थ नीलवक्त्रस्वरूप काली की ममतामयी अनुकम्पा से आदिनाथविरचित महाकालसंहिता के गुह्यकाली खण्ड का द्वितीयभाग राष्ट्रियभाषामयी व्याख्या के साथ सुधी जनों के समक्ष प्रस्तुत है । इस संहिता का कामकलाकाली खण्ड सन् २००७ में प्रकाशित हो चुका है । विषय वर्णनाक्रम के अनुसार यद्यपि कामकलाकाली खण्ड का प्रकाशन गुह्यकाली खण्ड के प्रकाशन के बाद होना चाहिये था किन्तु लघुकाय होने के कारण सूचीकटाहन्यायेन कामकलाकाली खण्ड का प्रकाशन पहले किया गया । गुह्यकाली खण्ड के प्रथम एवं द्वितीय भाग के प्रकाशित होने का शुभमुहूर्त्त अब प्राप्त हुआ है ।

महाकालसंहिता गुह्यकाली खण्ड के प्रथम भाग में एक से पाँच पटलों की हिन्दी व्याख्या के साथ तन्त्र साहित्य का परिचय, शाक्ततन्त्र, कालीतत्त्व एवं उससे सम्बद्ध साहित्य की समीचीन विवरणी प्रस्तुत की गयी है । टीकाकार की पृष्ठभूमि, यन्त्र, पारिभाषिक शब्दावली एवं अन्य आवश्यक सम्बद्ध विषय भी प्रथम भाग में संश्लिष्ट किये जा चुके हैं । इसके अतिरिक्त इसी भाग की भूमिका में पीठ, आम्नाय, तन्त्रशास्त्र का वर्गीकरण, तन्त्रशास्त्र का क्षेत्र, शाक्त एवं शैवतन्त्र के भेद, शैवागम, भैरवाष्टक, शक्ति, षडाम्नाय, दशमहाविद्या, काली, काली के मन्त्र, कालीपीठ, गुह्यकाली का स्वरूप, मन्त्र, पुरश्चरण, ग्रन्थकार एवं ग्रन्थ का रचनाकाल इत्यादि के उल्लेख के साथ प्रथम खण्डान्तर्गत मुख्य प्रतिपाद्य विषयों की भी चर्चा की गयी है ।

पुरस्थ द्वितीय भाग महाकालसंहिता गुह्यकाली खण्ड के छह से नौ पटलों तक की विषयवस्तु को अपने अन्दर समाहित किये हुए हैं । इसमें नित्यकर्म, देव्युपस्थापन, उपचार विवरण, राजोपचार, पूजा, षोढान्यास, दूती आदि के न्यास, कुलन्यास, सृष्ट्यादि भासान्तन्यास, विराट्-बीज-कूट-धातु-लघुषोढा-महाषोढा-मन्त्रक्रम आदि न्यासों का वर्णन करने के बाद तीर्थपर्वतन्यास, नदीऋषिन्यास, यज्ञमहाराज-न्यास और कल्पसिद्धन्यास की चर्चा की गयी है । उपर्युक्त विषयविवरण के परिप्रेक्ष्य में यह कहना असमीचीन नहीं है कि प्रस्तुत भाग गुह्यकाली के साधकों/उपासकों के लिए अति उपयोगी है ।

प्रस्तुत खण्ड के प्रकाशन में पराम्बा जगदम्बा गायत्री की अहैतुकी कृपा अनिवार्य रूप से रही है । मेरे दीक्षागुरु श्रीदशिवचैतन्यवर्णी का निश्छल नैसर्गिक

स्नेहसिक्त आशीर्वाद मेरा सतत सम्बल रहा है । मैं माता गायत्री एवं पूज्य गुरुदेव दोनों का श्रद्धापूर्वक आधमर्ण्य स्वीकार करता हूँ । सूक्ष्मसत्ता के रूप में विराजमान देवसंस्कृति विश्वविद्यालय के कुलपिता पुण्यश्लोक आचार्य श्रीरामशर्मा एवं कुलमाता भगवती देवीशर्मा के परोक्ष वात्सल्य के साथ-साथ देवसंस्कृति विश्वविद्यालय के कुलाधिपति डॉ. प्रणव पण्ड्याजी का प्रत्यक्ष स्नेहाभिषिक्त आशी: मेरे इस अध्यवसाय में सञ्जीवनी की भूमिका का निर्वाह करता है । अत: मैं उपर्युक्त तीनों विभूतियों के समक्ष श्रद्धावनत हूँ । विशालकाय ग्रन्थ महाकालसंहिता के इस खण्ड के प्रकाशन के लिये मैं चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन के अधिष्ठाता श्रीनवनीत दास गुप्त एवं उनके परिवार के लिये हार्दिक मङ्गलकामना प्रकट करता हूँ ।

विश्वास है कि यह खण्ड सुधी एवं साधक जनों के लिये उनकी साधनायात्रा में प्रकाशस्तम्भ का दायित्व निर्वहन करेगा ।

श्रीकृष्णजन्माष्टमी
सं. २०६६
हरिद्वार

विद्वद्वशंवद
राधेश्याम चतुर्वेदी
अध्यक्ष
संस्कृत एवं वेद विभाग
देवसंस्कृति विश्वविद्यालय

गुह्यकालीखण्ड— २

(६-९ पटल)

संक्षिप्त परिचय

षष्ठ पटल—इस पटल का विषय नित्यकृत्य गुह्यकालीपूजा, वस्तुशोधन तथा न्यास है । इस प्रक्रम में सबसे पहले प्रातःकृत्य सम्पादित करने के बाद नवीन वस्त्र धारणकर शिरस्थ शुक्लकमल में गुरु का ध्यान करना चाहिये । तत्पश्चात् देवी की आज्ञा लेकर स्नान, तिलक, भस्म धारण करने के बाद चन्दन धारण करने का विधान बतलाया गया है । अघमर्षण के पश्चात् देवी का उपस्थान, उसे बारह अञ्जलि दान देने के पश्चात् गुह्यकाली की पूजा का प्रारम्भ करना चाहिये ।

इस क्रम में पाद-प्रक्षालन, आचमन, शिखाबन्धन अधिष्ठान करने के बाद पूजा के प्रकार का वर्णन किया गया है । पूजा उपचार के चार प्रकार हैं— १. पञ्चोपचार, २. दशोपचार, ३. षोडशोपचार एवं ४. द्वात्रिंशदुपचार । अन्तिम को राजोपचार भी कहते हैं । इस प्रकार की पूजाओं में भूमिशोधन, आसनशुद्धि, उपचारशुद्धि, कायवाक्चित्तशुद्धि अवश्यकरणीय होती है ।

षोडशोपचार का विवरण इस प्रकार है—(१) आसन, (२) पाद्य, (३) अर्घ्य, (४) आचमन, (५) मधुपर्क, (६) स्नानजल, (७) वस्त्र, (८) आभूषण, (९) गन्ध, (१०) पुष्प, (११) धूपदीप, (१२) अञ्जन, (१३) नैवेद्य, (१४) आचमन, (१५) प्रदक्षिणा और (१६) नमस्कार ।

पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, पात्र, वस्त्र की चर्चा के क्रम से उनका शोधन तथा उत्तम, मध्यम और अधम स्वरूप भी बतलाया गया है । गन्ध, पुष्प-शोधन की चर्चा के साथ देवी के लिये विहित और निषिद्ध पुष्पों की चर्चा की गयी है । इसी प्रकार धूप, दीप, अञ्जन, नैवेद्य के प्रकार एवं शोधन का वर्णन किया गया है । नैवेद्य में कच्चा मांस, भैंस का दूध आदि देने का विधान है । लहसुन, प्याज तथा अन्य निषिद्ध पदार्थ को वर्जित रखना चाहिये ।

षोडशोपचार वर्णन के बाद राजोपचार का वर्णन है । इसमें—(१) आवाहन, (२) स्वागत, (३) संस्थापन, (४) सन्निधापन, (५) सन्निरोधन, (६) सम्मुखीकरण, (७) सकलीकरण, (८) अवगुण्ठन, (९) अमृतीकरण, (१०) सिन्दूर, अलक्तक, (११) ताम्बूल, (१२) पादुका, (१३) पत्रोर्ण (१४) छत्र, चामर, व्यजन, (१५) आरती, (१६) पुष्पमाला एवं आत्मनिवेदन अधिक हैं ।

इन बत्तीस उपचारों में प्रत्येक उपचार के शोधन का मन्त्र भी बतलाया गया है । बलि के सन्दर्भ में कहा गया है कि ब्राह्मण को मदिरा की बलि नहीं देनी चाहिये । आगे चलकर प्रसङ्गवश उन ऋषियों के नाम गिनाये गये हैं जिन्होंने सदा सात्त्विक उपचारों से देवी की पूजा की । मदिरा का समर्पण केवल शूद्र के लिये विहित है । यदि ब्राह्मण मदिरा का अर्पण करना ही चाहता है तो उसे अनुकल्प देना चाहिये । मदिरा के बारह प्रकार के अनुकल्पों का वर्णन करने के बाद उसके शोधन का मन्त्र बतलाया गया है ।

कामपीठ आसन के बाद भूतशुद्धि, भूतापसारण विधि की चर्चा करने के पश्चात् प्राणायाम, मातृकान्यास का वर्णन किया गया है । गुह्यकाली के सामान्य मातृकान्यास एवं विशेषमातृकान्यास दोनों की चर्चा करने के पश्चात् विराट्मातृकान्यास का महत्त्व बतलाते हुए कहा गया है कि अन्य किसी भी न्यास को न कर केवल मातृकान्यास को करनेवाला भोग और मोक्ष दोनों को प्राप्त करता है । आगे चलकर महाकाल ने बतलाया कि पचास नरसिंह नामों को पचास काली शक्तियों के साथ विशिष्ट रूप से जोड़ने पर न्यासकर्म जो फल देता है उसका वर्णन मैं नहीं कर सकता । इसकें पश्चात् ज्वालामाली आदि पचास नृसिंह नाम तथा धूमकाली जयकाली आदि पचास काली शक्तियों का वर्णन किया गया है ।

गुह्यकाली की पूजा में विराट् न्यास का अनुष्ठान आवश्यक होता है । अन्य न्यासों को न कर सकने वाले को भी यह न्यास अवश्य करना चाहिये । इसके अनन्तर पीठन्यास की चर्चा की गयी है । पीठन्यास का अङ्गभूत षडङ्गन्यास है । इस न्यास को करने के बाद पीठन्यास करना चाहिये । योगरत्नपीठन्यास के ऋषि आदि का वर्णन करने के पश्चात् इस न्यास का वर्णन किया गया है । इस क्रम में महामण्डूक आदि सोलह पदार्थों का हृदय में, कृतयुग आदि बारह का स्कन्ध आदि में, हृत्कमल के अष्टदलों में असिताङ्ग आदि आठ भैरवों का, फिर शिरस्थ अष्टदल कमल के आठ दलों में शिव, परशिव आदि आठ शिवों का न्यास करने की विधि है । हृदय के मध्य में परिकल्पित अष्टदल कमल में धर्मज्ञान आदि आठ का न्यास करना चाहिये । इसी प्रकार बत्तीस दल वाले हृदयकमल के बत्तीस केसरों में काली आदि बत्तीस देवियों के न्यास का विधान है । अन्त में योगरत्नन्यास के माहात्म्य का उल्लेखकर पटल को समाप्त किया गया है ।

सप्तम पटल—प्रस्तुत पटल का विषय न्यासों का उद्धार है । इसमें पचीस न्यासों की चर्चा की गयी है । वक्त्रन्यास से लेकर तत्त्वन्यास तक के पचीस न्यासों के स्वरूप का वर्णन कर तत्तद् न्यसनीय अङ्ग का वर्णन और अन्त में उनके ऋषि आदि को बतलाया गया है । अन्त में फलश्रुति कही गयी है । अगले पृष्ठ पर दी गई तालिका से सम्पूर्ण पचीस न्यास का स्वरूप स्पष्ट हो जायेगा ।

न्यास-तालिका

क्र. सं.	न्यास का नाम	मन्त्र-स्वरूप	ऋषि	छन्द	देवता	बीज	शक्ति	कीलक	फल
१.	वक्त्रन्यास	ह्खफ्रैं स्त्रखफ्रौं...............नमः फट् स्वाहा ।	औडुलोमि	शक्वरी	गुह्यकाली	ह्स्ख्फ्रें	खफ्रें	ह्स्फ्रें	वाग्मिता चक्रवर्तित्व आदि
२.	अस्त्रन्यास	१. ह्क्षम्लैं रग्रें...............नमः फट् स्वाहा । २. ऐं रजझ्क्ष्रूं...............नमः फट् स्वाहा । ३. ह्रीं ह्स्खफ्रौं...............नमः फट् स्वाहा ।	स्त्रयम्भू परमेष्ठी	जगती बृहती	गुह्यकाली दिव्य अस्त्र	खफछ्रूं ज्वर आदि	ज्रां उत्पात आदि	क्ष्रस्त्रैं सौरचक्र आदि	अस्त्र प्रयोग काम्यकर्म आदि
३.	दूतीन्यास	आं आं आं.....................ललाटाय नमः । (इसी प्रकार दक्षिणकर्ण आदि हेतु भी मन्त्र हैं।)	प्रजापति	जगती	शिवदूतीयाँ	ह्स्ख्फ्री	ल्रौं	ह्स्खफ्रैं	अंगन्यास
४.	डाकिनीन्यास	ॐ ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं........फट् फट् नमः स्वाहा । (मन्त्रों का स्वरूप ग्रन्थ में अनुल्लिखित है । इसका ऊह कर लेना चाहिये । इसके अनेक मन्त्र हैं जिनका विनियोग हृदय नाभि आदि में करने का विधान है ।)	स्त्वयम्भू	गायत्री	डाकिनियाँ	ख्फ्रें	खफ्रें	ख्फ्रौं	डाकिनीन्यास
५.	योगिनीन्यास	ह्खफ्रैं ह्क्षम्लैंरग्रें ऐं रजझ्क्ष्रूं ह्रीं ह्स्खफ्रौं आं आं आं ॐ ऐं ऐं...............हूं फट् स्वाहा । (यहाँ भी मन्त्रस्वरूप अनुल्लिखित है । विद्वान् पाठक मन्त्र तथा न्यसनीय अंगों का ऊह करें ।)	संवर्त्त	जगती	योगिनियाँ	छ्रीं	ह्स्ख्फ्रैं	रजझ्क्ष्रीं	योगिनीन्यास

इसके बाद सोलह योगिनियों के नाम दिये गये हैं । वे नाम हैं—(१) चर्चिका, (२) डामरी, (३) सूर्यकिर्णी, (४) तापिनी, (५) कुम्भोदरी, (६) फेरुमुखी, (७) मर्दिनी, (८) जातहारिणी, (९) विडालाक्षी, (१०) दीर्घनखा, (११) सूचीतुण्डी, (१२) शोषिणी, (१३) कपालिनी, (१४) चण्डघण्टा, (१५) कुरुकुल्ला और (१६) बलाकिनी ।

इसके बाद दूसरे पञ्चन्यासों का वर्णन किया गया है । इसके कुलतत्त्व, सिद्धिचक्र, कैवल्य, अमृत और जयविजय न्यासों की चर्चा है । कुलतत्त्वन्यास के ऋषि परमेष्ठी, छन्द अतिजगती, देवता कुलदेवियाँ, बीज ह्स्ख्फ्रैं, शक्ति रक्षफ्रछ्रौं और कीलक रजझक्ष्रैं हैं । कुलतत्त्व के न्यास में इसका विनियोग होता है । इसके पश्चात् इस न्यास का उद्धार बतलाया गया है । इसके अन्त में इस न्यास की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इस न्यास को लिखकर राजघर में रखने पर वहाँ सिद्धियाँ मिलती हैं तथा विपत्तियों से मुक्ति लाभ होता है । इस न्यास का मूल उत्स कपालडामर तन्त्र है ।

कुलतत्त्वन्यास के बाद सिद्धिचक्रन्यास की चर्चा की गयी है । इस न्यास के ऋषि रैभ्य, छन्द पंक्ति, देवता सर्वसिद्धियाँ हैं । बीज क्षखफ्रैं, शक्ति रप्रौं, कीलक रक्ष्रों, तत्त्व रक्षफ्रछ्रौं है । इसका विनियोग सिद्धिचक्रन्यास में होता है । ऋषि आदि के वर्णन के बाद मन्त्र के उद्धार की प्रक्रिया बतलायी गयी है । इस न्यास के चौबीस मन्त्र हैं । यह न्यास ऐहिक अभ्युदय चाहने वालों के लिये नित्य करणीय है, पारलौकिक लक्ष्य के लिये इसे काम्य कहा गया है ।

सिद्धिचक्रन्यास के बाद कैवल्य न्यास का वर्णन है । इसके ऋषि कपिल, छन्द त्रिष्टुप्, देवता गुह्यकाली, बीज ॐ, शक्ति ठौं, कीलक ईं, तत्त्व स्हें हैं । इसका विनियोग मोक्ष के लिये होता है । इसमें ग्यारह मन्त्र हैं । पूर्वन्यास की भाँति इसकी भी करणीयता है ।

चतुर्थन्यास अमृतन्यास के नाम से प्रसिद्ध है । इस न्यास के ऋषि कात्यायन, छन्द विराट्, देवता कामकला काली, कीलक क्लीं, शक्ति छ्रीं, बीज स्त्रीं है । इसका प्रयोग सिद्धिलाभ के लिये होता है । आगे चलकर इसके मन्त्रोद्धार की प्रक्रिया बतलाते हुए कहा गया है कि इसमें पचीस तत्त्व के दो प्रकार हैं । शरीर के शिर आदि पचीस अङ्गों में पचीस मन्त्रों के द्वारा न्यास किया जाता है ।

अन्तिम न्यास जयविजय न्यास है । इसके ऋषि दक्ष, छन्द जगती, देवता गुह्यकाली, बीज ख्फ्रें, शक्ति ह्क्षम्लैं और कीलक हूं है । इस न्यास के सत्ताईस मन्त्र हैं । इस न्यास के मन्त्रों के सामान्य विशेष उद्धार की प्रक्रिया को बतलाने के बाद सत्ताईस अङ्गों के नाम बतलाये गये हैं ।

अष्टम पटल—इस पटल का विषय भावना आदि दश न्यास है ।

(१) भावना न्यास—इस न्यास के ऋषि सदाशिव, छन्द बृहती, देवता गुह्यकाली, बीज क्षरस्त्राङ्क्रीं, शक्ति फ्रें, कीलक क्षह्लम्लव्य्रऊँ हैं । इस न्यास का प्रयोग कैवल्यपदप्राप्ति के लिये होता है । ऋष्यादि निर्देश के पश्चात् इस न्यास के उद्धार क्रम में पहले सामान्य नियम तत्पश्चात् विशेष शव्दों का वर्णन किया गया है। सामान्य नियम में समस्त मन्त्रों में स्थायी सात अक्षरों की चर्चा कर फिर अस्थायी वर्णों को बतलाया गया है । विशेष उद्धार में ४४० बीजाक्षरों का प्रयोग होता है । इसके बाद पचपन कूटों के नाम गिनाये गये हैं । कूटों का वर्णन करने के अनन्तर पचपन कालियों के नामों की चर्चा की गयी है । उसके पश्चात् पुनः कूटों को क्रम से बतलाया गया है । ये नाडीकूट पचपन की संख्या में हैं । इसके पश्चात् भावना न्यास के न्यसनीय स्थानों को बतलाया गया है । इन स्थानों की संख्या भी पचपन है । इस न्यास में जिन-जिन लोकों की भावना करणीय होती है वे लोक भी बतलाये गये हैं । लोकों की भी संख्या पचपन है ।

भावना न्यास की महिमा के सन्दर्भ में कहा गया है कि इसके समान कोई दूसरा न्यास नहीं है । यह देवों को देवत्व और सिद्धों को सिद्धि देता है । विरक्तों के लिये यह नित्य करणीय और गृहस्थों के लिये काम्य है । ग्रहणकाल, संक्रान्तियों, पर्वदिनों, पीठों और तीर्थों में इस न्यास को करना चाहिये । इस न्यास का अनुष्ठाता भावना के द्वारा साक्षात् शिव हो जाता है ।

(२) समय न्यास—समय न्यास के ऋषि अर्वावसु, छन्द गायत्री, देवता गुह्यकाली, बीज क्ष्ह्लीं, शक्ति ह्स्ख्फ्रें और कीलक ख्फ्रों है । इसका विनियोग समय के पालन में होता है । पूर्व न्यास की भाँति इस न्यास का भी पहले सामान्य और बाद में विशेष उद्धार बतलाया गया है । इस न्यास के न्यसनीय अङ्गों की संख्या ब्रह्मरन्ध्र से लेकर व्यापक तक सत्ताईस है । इसकी महिमा एवं करणीयता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि यह न्यास भावना न्यास के ही समान महत्त्वपूर्ण है । उत्तरकौल लोगों के लिये यह नित्य करणीय है किन्तु पञ्चमकार के अनुकल्प का प्रयोग करने वालों के लिये यह नैमित्तिक कहा गया है। अन्य लोगों के लिये यह काम्य है ।

(३) सृष्टि न्यास—यह न्यास सभी न्यासों में मुख्य है; क्योंकि देवी गुह्यकाली ने जिस-जिस रूप को धारणकर जो-जो सृष्टि की वह सब इस न्यास में निहित है । देवी के पाँच आकारों में से यह प्रथम आकार होने के कारण प्रधान कहा गया है। इस न्यास के ऋषि जमदग्नि, छन्द अत्यष्टि, देवता गुह्यकाली, बीज रजझक्ष्रूं, शक्ति छ्रक्षह्लीं, कीलक ह्स्ख्फ्रें है । इसका विनियोग सिद्धि प्राप्त करने के लिये होता है। इस न्यास में बत्तीस मन्त्र हैं । उद्धार के क्रम में पूर्वोक्त

न्यासों की भाँति इस न्यास का भी पहले सामान्य उद्धार बतलाया गया। तत्पश्चात् तैंतालिस श्लोकों के द्वारा विशेष उद्धार की चर्चा की गयी। जहाँ तक न्यासनीय अङ्गों का प्रश्न है पैर से लेकर व्यापक तक के बत्तीस अङ्ग न्यसनीय हैं।

सृष्टि न्यास की महिमा की चर्चा करते हुए कहा गया है कि यह न्यास अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसी की कृपा से प्रजापतियों ने सृष्टि की। जो मनुष्य इस न्यास का भक्तिपूर्वक अनुष्ठान करते हैं वे अनेक शास्त्रों और नाना मतों सम्प्रदायों के प्रवर्त्तक होते हैं। इस न्यास के द्वारा मनुष्य छह महीने में वाक्‌सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

(४) स्थिति न्यास—इस न्यास के ऋषि कालकवृक्षीय, छन्द शक्वरी, देवता गुह्यकाली, बीज रह्छ्रक्षह्रौं, शक्ति रज्रझ्क्ष्रौं, कीलक रक्षफ्रछ्रौं है। इसका विनियोग सर्वदा समस्त कार्यों की सिद्धि के लिये होता है। इस न्यास में भी बत्तीस मन्त्र हैं। पूर्वोक्त न्यासों की भाँति यहाँ भी पहले सामान्य उद्धार बतलाया गया। उसके बाद विशेष उद्धार की चर्चा की गयी है। पाँच-पाँच की संख्या में बत्तीस बीजसमूह एवं एक-एक कूट कहे गये हैं। तदनन्तर बत्तीस कल्पों के नाम बतलाये गये हैं। इसके पश्चात् बत्तीस नरसिंहों तथा उतनी ही कालियों के नाम गिनाकर अन्य योजनीय शब्दों को कहा गया है।

न्यसनीय स्थानों की संख्या ब्रह्मरन्ध्र से लेकर व्यापक तक बत्तीस है। इस न्यास के महत्त्व का अनुमान इसी से होता है कि इस न्यास का प्रतिदिन अनुष्ठान कर विष्णु ने विष्णुत्व प्राप्त किया। अत: कल्याणेच्छु साधक को चाहिये कि वह इसका नित्यप्रति प्रयत्नपूर्वक अनुष्ठान करे।

(५) संहार न्यास—संहार न्यास के ऋषि संवर्त्त, छन्द, त्रिष्टुप्, देवता गुह्यकाली, बीज ह्स्फ्रें, शक्ति खफ्रें, कीलक ह्स्ख्फ्रें कहा गया है। इसका प्रयोग सिद्धिलाभ के लिये होता है। पूर्व प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए इसका भी पहले सामान्य उद्धार बतलाया गया बाद में इसके विशेष उद्धार की चर्चा की गयी है। यहाँ भी मन्त्रों की संख्या बत्तीस है। प्रत्येक मन्त्र के साथ तीन-तीन बीज और दो-दो कूट जुड़ते हैं। इस न्यास के न्यसनीय अङ्ग भी बत्तीस हैं, जो संहारक्रम वाले हैं अर्थात् पैर से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक।

इसके महत्त्व का वर्णन करते हुए बतलाया गया है कि यह न्यास गुह्यकाली को महासन्तुष्टि प्रदान करता है। धर्म, अर्थ, अमरत्व चाहने वालों को इसे भक्तिपूर्वक करना चाहिये। संन्यासियों के लिये यह नित्यकरणीय है। गृहस्थ लोग इसे इच्छा होने पर कर सकते हैं। कौलमार्गी साधकों के लिये यह नैमित्तिक है। विद्यार्थी लोगों के द्वारा किये जाने पर पाठशून्य विद्यार्थी की वाणी गद्यपद्यमयी हो जाती है।

(६) अनाख्या न्यास—इस अनाख्या न्यास के ऋषि कपिल, छन्द अतिशक्वरी, देवता गुह्यकाली, बीज स्हजह्लक्ष्म्लवनऊं, शक्ति क्वलह्लझकह्लनसक्लईं, कीलक ब्रकम्लव्लक्लऊं है । इसका विनियोग कैवल्यपद की प्राप्ति के लिये होता है । अन्य न्यासों की भाँति इस न्यास का भी पहले सामान्य और बाद में विशेष उद्धार बतलाया गया है । यहाँ भी मन्त्रों की संख्या बत्तीस है । इसके महत्त्व के विषय में कहा गया है कि यह अव्यवहित पूर्वोक्त न्यास की भाँति नित्य, नैमित्तिक और काम्य है ! इस न्यास को करने वाले साधक को अन्य न्यास करने की आवश्यकता नहीं होती और इस न्यास को न करने वाले के द्वारा अन्य न्यास का अनुष्ठान भी व्यर्थ होता है । भासा न्यास के स्थान ही अनाख्या न्यास के स्थान हैं ।

(७) भासा न्यास—इस न्यास के ऋषि सदाशिव, छन्द बृहती, देवता गुह्यकाली, बीज ॐ, शक्ति ऐं, कीलक फ्रें और तत्त्व ख्फ्रें है । इसका विनियोग कैवल्य-लाभ के लिये होता है । यह मुमुक्षुओं के लिये नित्यकरणीय तथा अन्य साधकों के लिये काम्य है । जहाँ तक इसके उद्धार का प्रश्न है पहले इसका सामान्य और बाद में विशेष उद्धार बतलाया गया । इसमें भी मन्त्रों की संख्या बत्तीस है । पाँच-पाँच बीजों के बत्तीस समूह और अन्त में बत्तीस कूट कहे जाते हैं । इस न्यास के स्थान शिर से लेकर पैर तक पुनः व्यापक इस प्रकार बत्तीस अङ्ग होते हैं ।

भासा न्यास के महत्त्व को बतलाते हुए कहा गया है कि यह अनाख्यान्यास से भी गूढतर है । स्थिति और संहार न्यास यदि जाग्रत् और स्वप्न के समान हैं तथा अनाख्या न्यास सुषुप्तिवत् है तो भासा न्यास तुरीया अवस्था के समान है । जैसे तुरीय अवस्था प्राप्त व्यक्ति का पुनर्जन्म नहीं होता, उसी प्रकार भासा न्यास का अभ्यास करने वाले साधक को संसार-बन्ध में नहीं आना पड़ता । अनाख्या न्यास का अभ्यासी कदाचित् बन्धन में पड़ सकता है किन्तु भासा न्यास का अभ्यास करने वाला करोड़ों सृष्टि में भी जन्म नहीं लेता । यह मोक्षेच्छुओं के लिये नित्यकरणीय तथा अन्य लोगों के लिये काम्य है । इसकी नैमित्तिकता नहीं है ।

(८) मन्त्र न्यास—मन्त्र न्यास के ऋषि महारुद्र, छन्द मध्या, देवता गुह्यकाली, बीज क्षस्हम्लव्य्रऊं, शक्ति क्षह्लम्लव्य्रऊं कीलक क्षस्हम्लव्य्रईं है । इसका विनियोग गुह्यकाली की प्रसन्नता के लिये होता है । इस न्यास का उद्धार पूर्ववर्णित उद्धारों से भिन्न है । इस प्रसङ्ग में जो क्रम अपनाया गया है वह विचित्र है । गुह्यकाली के एकाक्षर से लेकर महानिर्वाण तक के मन्त्रों के द्वारा बत्तीस स्थानों में न्यास करने का निर्देश है ।

इस न्यास की महत्ता इसमें है कि जिनकी मान्त्री दीक्षा हो चुकी है वे तो बत्तीस मन्त्रों का न्यास करें किन्तु अदीक्षित लोग छब्बीस मन्त्र तक ही न्यास के

अधिकारी हैं । उनको इतने से ही सम्पूर्ण न्यास का फल मिल जाता है । यह न्यास मोक्ष के लिये करना चाहिये । संन्यासियों के लिये यह नित्य करणीय तथा अन्य लोगों के लिये काम्य है । इस न्यास को कौलाचारी तथा शूद्र भी करने के अधिकारी हैं । पतित ब्राह्मण इस न्यास को न करे अन्यथा उसकी तत्काल मृत्यु हो जायगी । इसी प्रकार पतित स्त्रियों का भी इसको करने में अधिकार नहीं है । जिनको एकाक्षर से लेकर महानिर्वाण तक के मन्त्रों की दीक्षा दी जा चुकी है । उन्हें ही यह न्यास करना चाहिये । अदीक्षित व्यक्ति पुस्तक में लिखित को देखकर यदि यह न्यास करता है तो वह योगिनियों का भक्ष्य हो जाता है ।

(९) सिद्धि न्यास—इस न्यास के ऋषि काङ्कायन, छन्द बृहती, देवता गुह्यकाली, बीज.........., शक्ति......., बीज....... है । इसका प्रयोग समस्त कार्यों की सिद्धि के लिये होता है । इसका सामान्य उद्धार बतलाने के बाद विशेष उद्धार बतलाया गया है । सिद्धि न्यास के स्थान ब्रह्मरन्ध्र से लेकर जङ्घा पद के साथ व्यापक है । इनकी संख्या सत्ताईस है । इसके महत्त्व की चर्चा करते हुए कहा गया है कि इसका अभ्यासी निश्चित रूप से सिद्धि प्राप्त करता है । ब्रह्मा, विष्णु, राजा, ऋषि, देवता आदि ने इस न्यास के द्वारा सिद्धि प्राप्त की । गृहस्थों और कौलों के लिये यह नित्यकरणीय है । संन्यासी और निराकांक्ष व्यक्ति के लिये यह काम्य है । महाकाल का निर्देश है कि इस न्यास में आग्रह करना चाहिये । आग्रह के कारण सारी सिद्धियाँ वश में हो जाती हैं ।

(१०) विराट् न्यास—इस न्यास के ऋषि लाट्यायन है । छन्द जगती, देवता ब्रह्माण्ड, बीज सहक्षम्ल्व्य्रईं, शक्ति क्षस्हम्ल्व्य्रईं, कीलक क्षह्म्ल्व्य्रई, तत्त्व झसखग्रमऊं है । इसका विनियोग कैवल्य पदलाभ के लिये होता है । इस न्यास का भी सामान्य और विशेष उद्धार बतलाया गया है । विशेष उद्धार में बीजों एवं कूटों का प्रयोग किया गया है । इस न्यास के न्यसनीय स्थान मन्त्रोद्धार के समय ही बतला दिये गये हैं ।

इसके महत्त्व की चर्चा करते हुए कहा गया कि यह न्यास किसी भी तन्त्र ग्रन्थ में नहीं मिलता । इस न्यास को काम्य के रूप में कभी नहीं करना चाहिये । ऐसा करने वाला योगिनियों का भक्ष्य हो जाता है । दीक्षित लोगों के लिये यह नित्यकरणीय है । जो नित्य नहीं कर सकते वे विशेष पर्व पर इसे करें । मोक्षेच्छु लोग गृहस्थ कौल मार्गी लोगों के लिये यह विहित है । इस न्यास का ज्ञान केवल काली और त्रिपुरारि को ही है ।

नवम पटल—इस पटल का भी विषय न्यास है ।

बीज न्यास—यहाँ पाँच न्यासों के समूह का वर्णन है, उनमें प्रथम बीज न्यास है । इस न्यास के ऋषि प्रजापति, छन्द बृहती, देवता सारे पदार्थ, बीज ऐं

और शक्ति ईं है । कीलक सारे बीज कहे गये हैं । इसका विनियोग जगत् की सृष्टि में होता है । पूर्व पटल में वर्णित के समान यहाँ भी पहले सामान्य फिर विशेष उद्धार की चर्चा की गयी है । विशेष उद्धार के क्रम में एक-एक मन्त्र में तीन-तीन बीजों की पंक्तियाँ हैं । कुछ शब्द बीज के पूर्ववर्ती होते हैं, कुछ परवर्त्ती । बीज न्यास के न्यसनीय स्थल ललाट से लेकर पैर तक फिर दोनों पार्श्वों से लेकर ब्रह्मरन्ध्र और व्यापक है ।

कूट न्यास—कूट न्यास एक ऐसा न्यास है, जिसमें बीजों के मध्य तीन-तीन कूट रहते हैं । इसका मूल वज्र डामर तन्त्र में है । इसके ऋषि भुज्यु, छन्द मध्या, देवता गुह्यकाली, बीज षट्चक्र, शक्ति झसखग्रमऊं (?) और कीलक स्हजहलक्षम्लवनऊं है । इसका विनियोग कैवल्य के लिये होता है । इसके भी सामान्य एवं विशेष दोनों प्रकार के उद्धारों का वर्णन किया गया है । इसके विशेषोद्धार में पाँच बीज स्थायी रहते हैं । फिर कूट और तीन-तीन बीजों की स्थायी पंक्ति रहती है । इसके न्यसनीय स्थान पैर से लेकर शिखा तक फिर मणिबन्ध कक्ष से लेकर पैर तक रहते हैं । कूट न्यास की महिमा बतलाते हुए कहा गया है कि जो लोग निर्वाण चाहते हैं उनके लिये यही एक न्यास है । यह संन्यासी, गृहस्थ, कौल सबके लिये विहित है ।

क्रम न्यास—पूर्व आदि छह आम्नायों की तत्तद् देवियों के तत्तत् मन्त्र का क्रम से वर्णन करने के कारण इस न्यास को क्रम न्यास कहा गया है । इस क्रम में उन देवियों की भी चर्चा क्रम से की जायेगी । इस क्रम न्यास के ऋषि सर्वा, छन्द प्रतिष्ठा, छह आम्नाय की देवतायें इसकी देवता हैं । बीज ह्स्ख्फ्रें, शक्ति रक्षफ्रछ्रूं और कीलक रजझक्ष्रैं है । इसका विनियोग क्रम न्यास में होता है । इस क्रम में पहले पूर्वाम्नायस्थ सोलह देवियों के मन्त्रों का उद्धार बतलाया गया है प्रत्येक देवी के मन्त्र पृथक्-पृथक् हैं । इन मन्त्रों में वर्णों की संख्या भी भिन्न-भिन्न है । इन देवियों के मन्त्रों से वामपार्श्व में न्यास होता है । पूर्वाम्नाय के पश्चात् दक्षिणाम्नाय की देवियों के मन्त्रों की चर्चा की गयी है । इनमें पहले देवी मातङ्गी है, जो सद्य: विश्ववशङ्करी है । यहाँ भी पूर्व की भाँति मन्त्रों का सम्पुट रहता है । चौदह मन्त्रों के पश्चात् छब्बीस अक्षरों से सम्पुट करे, अपनी तर्क बुद्धि से जोड़ना पड़ता है ।

इस आम्नाय में सोलह देवियाँ हैं । इन सोलह मन्त्रों के द्वारा दक्षिण पार्श्व में न्यास करना चाहिये । पश्चिमाम्नाय में भी सोलह मन्त्र है । इन मन्त्रों का उद्धार भी पूर्ववत् जानना चाहिये । उत्तराम्नायस्थ देवियों में पहली देवी गुह्यकाली है । इसके मन्त्रों की संख्या भी सोलह है । इन सोलह मन्त्रों के द्वारा हृदय में न्यास करना चाहिये । इसके पश्चात् ऊर्ध्वाम्नायस्थ देवियों के मन्त्र बतलाये गये हैं । इन आदिभूता देवी महात्रिपुरसुन्दरी है । इसमें भी सोलह मन्त्र हैं । इनके द्वारा ब्रह्मरन्ध्र

में न्यास होता है । अध: आम्नाय की प्रथम देवता भयानक भीमा देवी है । यहाँ भी सोलह मन्त्र है । इनसे दोनों पैरों में न्यास करने का विधान है ।

इसके अनन्तर षडाम्नाय देवियों में प्रमुख देवियों की चर्चा की गयी है । उसे निम्नलिखित तालिका से जानना चाहिये—

क्र.सं.	आम्नाय	प्रधान देवी	
		प्रथम	अन्तिम
१.	पूर्वाम्नाय	चण्डेश्वरी	हयग्रीवेश्वरी
२.	दक्षिणाम्नाय	मातङ्गी	वाग्वादिनी
३.	पश्चिमाम्नाय	कुब्जिका	चर्चिका
४.	उत्तराम्नाय	गुह्यकाली	कालसङ्कर्षिणी
५.	ऊर्ध्वाम्नाय	त्रिपुरसुन्दरी	मोक्षलक्ष्मी
६.	अध:आम्नाय	भीमादेवी	महाडाकिनी

यह क्रम न्यास अन्य न्यासों की अपेक्षा अधिक उत्तम है; क्योंकि इसमें छह आम्नायों की देवियों और उनके मन्त्रों का एकत्र वर्णन मिलता है । विराट् न्यास और क्रमन्यास दोनों समान महत्त्व के हैं; क्योंकि विराट् में गुह्यकाली की विश्वरूपता और समस्त आम्नायों के अन्दर वर्णित देवियों की चर्चा है ।

धातु न्यास—इसके चर्चा क्रम में पहले धातुशब्द के अनेक अर्थों की चर्चा की गयी है । इस न्यास के ऋषि दृप्तबालाकि, छन्द सुप्रतिष्ठा, देवता गुह्यकाली, बीज ऐं, शक्ति आं, कीलक ईं और तत्त्व ओं है । इसका विनियोग कैवल्य लाभ के लिये होता है । इस न्यास का भी पहले सामान्य और बाद में विशेष उद्धार बतलाया गया है । इसके द्वारा न्यसनीय स्थान दक्षिणपाद के अङ्गुल्यग्र से लेकर सम्पूर्ण शरीर तक एक सौ इकसठ है । इन स्थानों की चर्चा करने के बाद व्यवह्रियमाण बीजों का वर्णन किया गया है । बीजों की संख्या भी उतनी ही है । इसके अधिकारी की चर्चा करते हुए कहा गया है कि गृहस्थ, संन्यासी, कौलमार्गी— ये सब इसके साधक हो सकते हैं । यह एक धातु न्यास सृष्टि आदि पाँच न्यासों के बराबर है ।

तत्त्व न्यास—तत्त्व न्यास संन्यासियों के लिये नित्य करणीय है । गृहस्थों एवं कौलमार्गियों के लिये काम्य है । कभी उक्त दोनों के लिये नैमित्तिक भी होता है । इस न्यास के ऋषि गर्ग, छन्द गायत्री, देवता गुह्यकाली, बीज ओं, शक्ति फ्रें और कीलक ऐं है । इसका प्रयोग तत्त्वज्ञान और जप में होता है । इस न्यास का सामान्य तथा विशेष दोनों प्रकार के उद्धारों को बतलाने के बाद इसमें विभिन्न

रूपों वाली पाँच बीजावलियों तथा छत्तीस कूटों की चर्चा की गयी है । जहाँ तक न्यसनीय स्थानों का प्रश्न है, गुल्फ से लेकर शिर शिखा व्यापक तक के स्थान हैं।

लघुषोढा न्यास—यह न्यास क्लिष्ट है । इसमें एक न्यास अङ्गी और छह अङ्ग है । इसीलिये इसको षोढा कहा गया है । यह न्यास सांसारिक अभ्युदय देता है, इसलिये इस न्यास को केवल गृहस्थ और कौलमार्गी ही कर सकते हैं, संन्यासी नहीं । इसके अनुष्ठान के समय बायीं जाँघ (गोद) पर शक्ति को बैठाना पड़ता है, तभी सिद्धि मिलती है । पूजाकाल में भी स्त्री को सामने बैठाने का विधान है । आगे चलकर संक्षेप में इसके उद्धार की चर्चा करने के बाद कहा गया कि साधक लालवस्त्र अथवा मृगचर्म पर बैठकर स्त्री को गोद में रखकर साधना करे । आसन गैंड़ा का चर्म या नरमुण्ड भी हो सकता है । षोढान्यास के नाम इस प्रकार हैं—उग्रमातृक्रम, कालीकुलक्रम, पीठक्रम, योगिनीक्रम, दैवतक्रम और मन्त्ररूपक्रम । इन न्यासों के ऋषि आदि पृथक्-पृथक् हैं । पञ्चक्रम षोढ़ान्यास के ऋषि सदाशिव, छन्द बृहती, देवता गुह्यकाली, बीज खं, शक्ति ह्रीं, कीलक खफ्रें, तत्त्व ह्स्ख्फ्रें है । इसका विनियोग सर्वसिद्धि के लिये है । इसके पश्चात् उग्र मातृकाक्रम न्यास का उद्धार बतलाया गया है ।

कालीकुलक्रम न्यास के ऋषि क्रोध भैरव, छन्द प्रतिष्ठा, देवता दक्षिण आदि नवकाली, बीज फें, शक्ति स्त्री, कीलक क्षौं, तत्त्व हुं है । इसका विनियोग गुह्यकाली की प्रसन्नता के लिये होता है । इसके पश्चात् इसका उद्धार बतलाया गया है । पीठन्यास के ऋषि कौषीतकि, छन्द अत्यष्टि, देवता राजराजेश्वरी, बीज ह्रौं, शक्ति खफ्रें, कीलक स्त्री और तत्त्व फ्रें है । इसका विनियोग गुह्यकाली की प्रसन्नता के लिये किया जाता है । योगिनीन्यास के ऋषि जम्भक, छन्द मध्या, देवता परापरचामुण्डा योगिनी, बीज छ्रीं, शक्ति ह्रीं, कीलक हूं, तत्त्व खफ्रें है । इस न्यास का मन्त्रोद्धार बतलाने के बाद दैवत न्यास बतलाया गया । दैवत क्रम न्यास के ऋषि प्रजापति, छन्द पंक्ति, देवता समस्त देवतायें, बीज ओं, कीलक ऐं, शक्ति आं और तत्त्व हीं है । इसका प्रयोग सर्वसिद्धि के लिये है । इसके बाद इस न्यास के मन्त्र का उद्धार बतलाया गया है । इसके न्यसनीय स्थान ललाट से लेकर सत्ताईस अङ्ग हैं ।

मन्त्र क्रम न्यास के ऋषि भरद्वाज, छंन्द उष्णिक्, देवता समस्त मन्त्र, बीज ओं, शक्ति ह्रीं, कीलक रक्षश्रीं, तत्त्व हूं है । इसका प्रयोग सर्वाभीष्टसिद्धि के लिये होता है । ऋषि आदि की चर्चा करने के बाद इसके मन्त्र का उद्धार बतलाया गया है । गुह्यकाली के दश वक्त्रों के दश मन्त्र पृथक्-पृथक् हैं । दश वक्त्र निम्नलिखित हैं—(१) द्वीपी, (२) सिंह, (३) फेरु, (४) कपि, (५) ऋक्ष, (६) नर, (७) गरुड, (८) मकर, (९) गज और (१०) अश्व । इनके दश स्थान है—(१) ब्रह्मरन्ध्र, (२) ललाट, (३) दोनों नेत्र, (४) दोनों कान, (५) दोनों

कपोल, (६) हृदय, (७) शिर, (८) मूलाधार, (९) स्वाधिष्ठान, (१०) मणिपूर, (११) अनाहत, (१२) विशुद्धि और (१३) आज्ञा । दश वक्त्रों के अतिरिक्त दक्षिण वाम और मध्य वक्त्र मिलाकर तेरह स्थान न्यसनीय होते हैं । समस्त न्यासों में यह श्रेष्ठता है । इस न्यास की समाप्ति पर दो बलि देने का विधान है । तान्त्रिक के चार सम्प्रदाय हैं—१. कापालिक, २. भाण्डिकेर, ३. मौलेय और ४. दिगम्बर । ये सब न्यास के बाद शक्तिपूजा करते हैं । बाद में आत्मपूजा कर तान्त्रिक विसर्जन का वर्णन किया गया है ।

लघु षोढान्यास के वर्णन के पश्चात् महाषोढान्यास का वर्णन है । इस महान्यास का नाम निर्वाण षोढान्यास भी है । जो साधक इस न्यास का प्रतिदिन अनुष्ठान करता है, वह तीनों लोकों को कम्पित कर देता है तथा समस्त सिद्धियाँ उसके हस्तगत हो जाती हैं । यह अत्यन्त गोपनीय है । इसका अनुष्ठान नीरव एकान्त स्थान में करना चाहिये । इस न्यास के ऋषि पञ्चशिख, छन्द अतिजगती, देवता हिरण्यकशिपु के द्वारा आराधिता से शतवक्त्रा तक की गुह्यकाली, बीज फ्रें, शक्ति खफ्रें, कीलक ह्स्ख्फ्रें और तत्त्व हसफ्रें हैं । इसके पश्चात् षडङ्गन्यास का कथन किया गया है । आगे चलकर इस न्यास के अन्तर्वर्ती तीर्थशिवलिङ्ग न्यास का वर्णन है । इस न्यास के ऋषि गौतम, छन्द अनुष्टुप्, देवता महातीर्थ और शिवलिङ्ग, बीज ओं, शक्ति ह्रीं, कीलक ऐं और तत्त्व आं है । सामान्य उद्धार बतलाने के बाद विशेष उद्धार बतलाया गया है । इसके बाद प्रयाग आदि इक्यावन तीर्थों के नाम गिनाये जाते हैं । तदनन्तर उक्त इक्यावन तीर्थों की अधिष्ठात्री ललिता आदि इक्यावन शक्तियों के नाम बतलाये गये हैं ।

तीर्थ शिवलिङ्ग न्यास की महिमा के सन्दर्भ में सती के देहत्याग और उनके शरीर के इक्यावन खण्डों में काटे जाने की कथा का वर्णन करने के बाद जमदग्नि भरद्वाज आदि ऋषियों के नाम गिनाये गये हैं, जिन्होंने इस महान्यास का अनुष्ठान कर स्वाभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त किया ।

महाषोढान्यास के अन्तर्गत दूसरे पर्वतन्यास के वर्णन क्रम में कहा गया कि इसके ऋषि शैलूषिकुल्मकवर्हिष, छन्द उष्णिक्, देवता हिरण्यकशिपु की उपासिता गुह्यकाली, बीज रह्रीं शक्ति क्लफ्रां, कीलक ख्फ्रें, तत्त्व क्षह्रीं हैं । इसको बतलाने के बाद इसके षडङ्ग का वर्णन है । तदननतर सामान्य एवं विशेष उद्धार का वर्णन कर हिमालय आदि इक्यावन पर्वतों के नाम गिनाये गये हैं । इसके पश्चात् नरसिंह के इक्यावन नामों की चर्चा की गयी है । नरसिंह की इक्यावन शक्तियों के क्रम में विद्युत्केशी से आनन्ददायिनी तक के नाम हैं ।

नृसिंह के साथ काली के सहवास की कथा का वर्णन किया गया, जो इस प्रकार है—एक समय की बात है कि पूर्वोक्त इक्यावन पर्वतों पर ऋषियों, मुनियों

और ब्रह्मर्षियों ने तपस्या प्रारम्भ की। उनके उग्र तप को देखकर दानवों ने उसमें विघ्न डालना प्रारम्भ किया। विघ्नों से आहत होकर उन ऋषि आदि तपस्वियों ने जगदम्बा की शरण ली। गुह्यकाली ने उनकी रक्षा के लिये अनेक उग्र शरीर धारण कर राक्षसों का संहार कर दिया। ऋषियों की प्रार्थना पर देवी ने प्रत्येक पर्वत पर धारण किये गये अपने शरीरों को जैसे का तैसा रखा और अपने निरञ्जन रूप तथा अपने पति को भूल कर स्वच्छन्द विचरण करने लगी। महारुद्र ने जब अपनी प्रियतमा गुह्यकाली को नहीं देखा तो उसे खोजने लगे। उन्होंने देखा कि वह अनेक उग्र रूप धारण कर पर्वत-पर्वत पर घूम रही है। देवी के उस भयङ्कर रूप को देखकर वे उसके पास जाने का साहस नहीं कर सके।

सर्वज्ञ भगवती ने महारुद्र के मन की बात जान ली तथा मेघ गम्भीर वाणी से बोली—हे प्राणनाथ! आप मुझसे डरें नहीं। मेरी बात सुने। मैं इन घोर शरीरों को छोड़ना नहीं चाहती और अकेली रहना भी नहीं चाहती मैं आपके साथ मनोवाञ्छित भोग करना चाहती हूँ। आप अपने सौम्य शरीर से मेरे पास नहीं आ सकते। इसलिये आप नरसिंह का रूप धारण करें। यह सुनकर महारुद्र ने भयानक नृसिंह रूप धारण किया। देवी ने जब अपने साथ रहने योग्य शिव के रौद्र शरीर को देखा तो परम सन्तुष्ट हुई और उसने उसके ज्वालामाली आदि अनेक नाम रखे। तब से मुनिलोग शिव शक्ति के प्रीतिकारक इस महान्यास को करते हैं। इस पर्वत न्यास की महिमा इसी से समझनी चाहिये कि ऋषियों ने अन्य न्यासों को छोड़ दिया और केवल इस न्यास के द्वारा ही परम सिद्धि को प्राप्त किया।

नदी ऋषि न्यास—निर्वाण षोढान्यास का तीसरा नदी ऋषि न्यास है। इसके ऋषि पारस्कर, छन्द आकृति, देवता गुह्यकाली, बीज क्षस्फ्रों, शक्ति क्ष्रूं, कीलक ख्रौं और तत्त्व श्रीं है। इसके अधिकारी मौलेय है वैदिक नहीं। छह अङ्गन्यास इसके अङ्गभूत हैं। इन न्यासों के पृथक्-पृथक् मन्त्र हैं। इसके बाद नदी ऋषि न्यास मन्त्र का सामान्य उद्धार तत्पश्चात् विशेष उद्धार बतलाया गया है। इसके अनन्तर नदियों के यमुना आदि इक्यावन नामों की चर्चा की गयी है। नदी नाम के बाद मरीचि आदि इक्यावन ऋषियों के नाम गिनाये गये हैं। तत्पश्चात् कामदा आदि इक्यावन देवियों के नाम बतलाये गये हैं।

इसके अनन्तर नदियों के द्वारा की गयी काली की उपासना की कथा कही गयी है। एक समय की बात है कि कुशिक नामक कल्प में नदियों ने तपस्या की। इस क्रम में उन सबों ने एक हजार वर्षों तक षोडशाक्षर मन्त्र का जप किया। इससे प्रसन्न होकर देवी ने उन नदियों को पाँच वर दिये—१. हम पृथिवी तल पर पवित्र जल वाली हों। २. जब तक हमारा जल रहे तब तक हमारे किनारों पर आप अपने स्वेच्छाकल्पित अनेक नामों से निवास करें। ३. ब्रह्मवादी

ऋषि लोग हमारे तटों पर पर्णकुटी बनाकर तपस्या करें और उनके तप से हम पवित्र रहें । ४. आपकी कृपा से हमारे दो शरीर हों (क) जलमय और (ख) दिव्य । ५. हमारे तटों पर हव्य-कव्य आदि हो और इन किनारों पर देह त्याग करने वाले कभी भी नरक में न जाँय । देवी ने उनके सभी वरों को पूर्ण किया । देवी ने कहा कि जो इस न्यास को करेगा उसके ऊपर मैं प्रसन्न रहूँगी ।

अस्त्र भैरव न्यास—चौथा न्यास अस्त्र भैरव न्यास है । इस न्यास के ऋषि प्रजापति, छन्द उत्कृति, देवता अनेक विशेष विशिष्ट गुह्यकाली, बीज खफ्रें, शक्ति क्ष्ह्रीं, कीलक स्हौः और तत्त्व ह्क्षम्लैं है । इसका विनियोग त्रिविध पापक्षय सकल शत्रुनाशपूर्वक राज्यप्राप्ति के लिये होता है । इसके पश्चात् इसके षडङ्गन्यास की चर्चा की गयी है । इस भैरव न्यास का सामान्य उद्धार बतलाने के बाद विशेष उद्धार का वर्णन किया गया है । एतदनन्तर ब्रह्मास्त्र आदि इक्यावन अस्त्रों के नाम गिनाये गये हैं । इन नामों के बाद विद्युज्जिह्व आदि इक्यावन राक्षसों के नामों का उल्लेख किया गया है । तत्पश्चात् क्रोध आदि इक्यावन भैरवों के नाम बतलाये गये हैं ।

काली के भैरवी रूप धारण की कथा इस प्रकार है—हिरण्याक्ष ने दिव्य सौ वर्षों तक उग्र तपस्या कर शिव की कृपा से तीन हजार करोड़ वर्ष की आयु वाले हरतार्त्तीयनयन नामक पुत्र को प्राप्त किया । वरदान के कारण शिव इसे मार सकने में असमर्थ थे ।

शिव ने सोचा कि मैं इसे शुभ मार्ग पर ले जाऊँगा । धूम से आकुल आँख वाला होने के कारण हरतार्त्तीयनयन का नाम अन्धकासुर था । वह दैत्य समस्त देवताओं को जीतकर मन्दरगिरि में स्थित पार्वती को अपहृत करने की इच्छा से वहाँ चला गया । वहाँ नन्दी एवं प्रमथगणों के साथ अन्धकासुर का रोमाञ्चक युद्ध हुआ और नन्दी आदि पराजित हो गये । तदनन्तर युद्ध की इच्छा से महादेव स्वयं त्रिशूल लेकर जब वहाँ आयें तो पार्वती वहाँ से भाग गयी । युद्ध में दैत्यों को पराजित कर शिव ने अन्धकासुर को अपने त्रिशूल पर छाता की तरह उठा लिया । तब भी उस दैंत्य ने अपनी गदा शिव के शिर पर गिरा दी और शिव के शिर से रक्त की धारा बह चली । रक्तबीज के सदृश शिव के शरीर से जितने रक्त बिन्दु गिरे वे सब के सब शिव की ही वासना वाले भैरव हो गये । अस्थि चर्म मात्र अवशिष्ट अन्धकासुर ने शिव से कहा—मुझे आपने त्रिशूल पर धारण किया अतः आपके ऊपर होने के कारण मैं विजयी हो गया । रुद्र के प्रसन्न होने पर अन्धक ने कहा—हे शिव! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो पर्वती के अपहरणजन्य पाप से मुझे मुक्त कर दीजिये । आप मेरे पिता हैं और वे मेरी माता हैं । जिस प्रकार गणेश और नन्दी आपके प्रिय हैं वैसे ही मैं भी आपका प्रिय

सेवक हो जाऊँ । दैत्येन्द्र के ऐसा कहने पर शिव ने उसे नीचे उतारा तथा मृतसञ्जीवनी मन्त्र से उसके शरीर को फूँककर उसके सारे घावों को ठीक कर दिया तथा उसके वक्ष से त्रिशूल खींच लिया ।

अन्धकासुर को अभीष्ट वर देकर नन्दी के समान उसका नाम भृङ्गी रखा । शिव के शरीर से उत्पन्न समस्त भैरवों के द्वारा भविष्य में अपनी स्थिति के पूछे जाने पर शिव ने कहा—तुम लोग मेरे शरीर से उत्पन्न हो इसलिये मुझमें और तुममें कोई अन्तर नहीं है । तुम लोग भी मेरे साथ मन्दराचल पर निवास करोगे । तत्पश्चात् शिव ने पार्वती से कहा—हे प्रिये! ये भैरव मेरे रूप हैं अत: तुम भी नानारूपों में प्रकट होकर इन भैरवों की भैरवी हो जाओ । गुह्यकाली रूप की चर्चा करते हुए महादेव ने कहा कि मैंने इस हिमालयपुत्री को अत्यन्त गुह्य अर्थात् छिपाकर रखा इसलिये आज से यह 'गुह्या' है तथा रूप से काली होने के कारण इसका नाम 'काली' है । इस प्रकार इसका पूरा नाम 'गुह्यकाली' होगा ।

यज्ञमहाराज न्यास—इस न्यास के ऋषि शैलूष, छन्द विकृति, देवता गुह्यकाली, बीज क्लीं, शक्ति ह्रीं, कीलक फ्रें और तत्त्व स्त्रीं है । इसका प्रयोग आयु आरोग्य सुख ऐश्वर्य और शत्रुरहित राज्यलाभ के लिये होता है । इसके षडङ्गन्यास अङ्गुष्ठ आदि तथा हृदय आदि दोनों प्रकार के होते हैं । आगे चलकर इसके सामान्य और विशेष दोनों प्रकार के उद्धार बतलाये गये हैं । इसके बाद इस न्यास की उत्पत्ति की कथा कही गयी है, जो संक्षेप में इस प्रकार है—कल्प के प्रारम्भ में ब्रह्मा ने सृष्टि रचना कर समस्त सारतत्त्व को ब्राह्मणों को दे दिया । इन सार तत्त्वों को प्राप्त करने के बाद ब्राह्मणों ने तपश्चर्या में अपने मन लगाये । फलत: अपालनकृत दोषों के कारण पृथिवी अस्त-व्यस्त, चोर-डाकुओं एवं हिंस्र जन्तुओं से व्याप्त एवं बाधित हो गयी । ऐसी स्थिति में प्रजा भागकर ब्राह्मणों की शरण में गयी । ब्राह्मण लोग प्रजा को साथ लेकर ब्रह्मा के पास गये और बोल—ब्रह्मन्! हम लोग प्रजापालन में असमर्थ है ।

अत: हमारे बाद उत्पन्न क्षत्रियों को पृथ्वी के पालन का उत्तरदायित्व सौंप दीजिये । ब्रह्मा ने वैसा ही किया और पृथिवी बाधामुक्त हो गयी । तत्पश्चात् क्षत्रिय लोग वेदमार्गानुसारी होकर यज्ञ के लिये दीक्षित हो गये ।

महर्षियों ने इन क्षत्रियों के यज्ञ सम्पन्न कराये । यज्ञ के क्रम में ऋषियों ने देवताओं का आवाहन किया । तीनों अग्नियों को घृतधारा से तृप्त करने के बाद भी देवता लोग शरीर धारण कर यज्ञ में नहीं आये । इसके अनन्तर महर्षियों ने दो-तीन बार मन्त्रों का जपकर देवताओं का आवाहन किया फिर भी वे नहीं आये । परिणामस्वरूप लज्जा के कारण महर्षिगण मृतकल्प हो गये । इसके बाद उन ऋषियों ने महादेवी को देवताओं के पास उनके न आने का कारण जानने के

लिये भेजा । पूछने पर देवताओं ने कहा कि हम पराधीन हैं । हम काली के सिंहासन को ढोने वाले हैं । यज्ञ भी उनके आसन हैं अत: जब तक देवी काली का आवाहन यज्ञ में नहीं होगा, ब्रह्मा विष्णु भी यज्ञ में नहीं आ सकते ।

ऋषियों के वचन को सुनकर राजाओं ने गुह्यकाली के उत्तम मन्त्र को लेकर उसी यज्ञ में तीन वर्षों तक काली की आराधना की । परिणामस्वरूप काली अपना स्वरूप छोड़कर शुक्लवस्त्रावृत लक्ष्मी के रूप में वहाँ आयी । उसके आसन को ढोते हुए ब्रह्मा आदि देवगण भी वहाँ सशरीर उपस्थित हुये । देवी के आने पर पुन: वहाँ यज्ञों का प्रारम्भ हुआ । प्रत्येक यज्ञ में काली सन्निहित रही तथा देवताओं के साथ यज्ञभाग का ग्रहण किया । तत्पश्चात् प्रसन्न हो देवी ने भृगु वसिष्ठ आदि ऋषियों से कहा—हे ऋषिगण! जिस-जिस राजा ने जिस-जिस यज्ञ के अन्त में 'लक्ष्मी' पद वाले जिस-जिस नाम से जिस-जिस वर के लिये प्रार्थना की है आप लोग उन सबको मन्त्ररूप से सन्दिष्ट कर न्यास बनाइये । तत्पश्चात् ऋषियों ने पहले यज्ञ का फिर तत्तद् राजा का नाम और अन्त में तत्तत् नामाङ्ग 'लक्ष्मी' कहा । इस प्रकार यज्ञ महाराज न्यास की रचना हुई ।

कल्पसिद्ध न्यास—कल्पसिद्ध न्यास के ऋषि हरिद्रुमत गौतम, छन्द उष्णिक्, देवता गुह्यकाली, बीज हसफ्रौं, शक्ति ग्लूं, कीलक खं खं खं, तत्त्व ह्स्ख्फ्रें हैं । इसका विनियोग कल्पसिद्ध न्यास के लिये होता है । इसके षडङ्गन्यास के सन्दर्भ में ब्रह्मा, वसिष्ठ के द्वारा उपासिंत काली मन्त्र, षोडशाक्षरी विद्या, हिरण्यकशिपु तथा राम के द्वारा उपासित विद्या के मन्त्रों के द्वारा न्यास किया जाता है । न्यास के वर्णन के बाद इसके सामान्य तथा विशेष उद्धार बतलाये गये हैं ।

उद्धार के वर्णन के बाद इसके माहात्म्य तथा उद्भव की चर्चा की गयी है—जब ब्रह्मा के श्वेत वाराह कल्प नामक दिन का प्रारम्भ हुआ तब समस्त कालियों में गुह्यकाली मुख्य हो गयी । श्वेतवाराह के पूर्व कल्पों में जो लोग सामान्य पुरुष थे वे लोग रोग शोक आदि से पीड़ित थे । चारो वर्णों में से कुछ भाग्यवानों ने तत्तत् मन्त्र के उच्चारण के द्वारा काली की उपासना की । उस उपासना तथा काली की कृपा से वे मानवौघ तथा दिव्यौघ की श्रेणी में आ गये । गुह्यकाली की प्रसन्नता के कारण उन गुरुओं का नाम परिवर्तन किया गया । यह परिवर्तन उन सिद्धों की इच्छा के अनुसार हुआ इन सिद्धों ने भैरवागमों में स्थित मन्त्रों को प्रकट किया ।

श्वेतवाराह कल्प में जब गुह्यकाली ने महाभयङ्कर उल्बणरूप धारण किया तो अन्य कालियाँ अपने-अपने मन्त्रों के साथ लुप्त हो गयीं । इस घटना से दु:खी होकर गुह्यकाली ने त्रिपुरारि से कहा कि—हे प्रभो! मेरा उद्धार कीजिये और इसके

लिये उन-उन कल्पों के नामों से युक्त उन-उन कालियों एवं सिद्धों के नाम तथा 'सिद्धविहित' शब्द से अन्वित कोई न्यास बनाइये जिससे इनका लोप न हो तथा कल्पसिद्धन्यास बन जाय । काली के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर भगवान् शिव ने वैसा ही किया और इस प्रकार प्रस्तुत न्यास की उत्पत्ति हुई ।

आगे चलकर यह बतलाया गया कि न्यासों का अनुष्ठान पूरा करने के बाद बलि देनी चाहिये । बलिदान के मन्त्रों का भी उद्धार बतलाया गया । शैव लोग प्रथम न्यास को मातृकायुक्त कहते हैं । कापालिक लोग पाँच अन्य न्यासों को मातृका से युक्त कर कहते हैं । मौलेयों का विचार है कि सब न्यासों के आदि में मातृका का कथन करना चाहिये । नि:पठ लोग मातृकायोग नहीं करते । भाण्डिकेर एवं अन्य लोग शाक्तमतानुयायी हैं । बलि के पश्चात् कौलिक लोग शक्तिपूजा करते हैं । वाममार्गी लोग रतिक्रिया करते हैं, वेदमार्गानुयायी कुछ नहीं करते ।

अन्त में न्यास के उपदेशग्रहण और अनुष्ठानविधि की चर्चा की गयी है । शिष्य का कर्तव्य है कि वह गुरु से उपदेश लेकर चतुर्दशी अथवा अष्टमी को इसका प्रारम्भ करे । यदि प्रत्येक उक्त तिथियों में करने में साधक अक्षम हो तो शारदीय नवरात्र में इसका प्रयोग अवश्य करना चाहिये । यदि यह भी न हो सके तो इस न्यास को भोजपत्र पर लिखकर इसे भुजा में धारण करे तथा यन्त्रपीठ की भाँति इसकी नित्य पूजा करे । ऐसा करने वाले के घर में रोग शोक आपदायें भूतप्रेत नहीं आते । आयुष्य राजसम्मान शुभकार्य की वृद्धि होती है ।

* * *

विषयानुक्रमणिका

विषयाः	**पृष्ठाङ्काः**
षष्ठः पटलः	**३०५-३९२**
प्रातःकृत्यनिरूपणम्	३०५
दन्तधावनविधिः	३०५
मुखप्रक्षालनविधिः	३०६
आचमनविधिः	३०६
शिरोमार्जनविधिः	३०६
वस्त्रपरिधानमासनग्रहणम्	३०७
गुरुध्यानम्	३०७
देव्या ध्यानविधिः सजपमानसोपचारपूजाविधिश्च	३०८
देव्या निदेशग्रहणविधिः	३०८
स्नानविधिः	३०८
ऋष्यादिप्रकारनिरूपणम्	३०९
तिलककरणविधिः	३११
विभूतिधारणमन्त्रनिर्देशः	३११
विभूत्यभिमन्त्रणमनुः	३१२
विभूत्या शिरोमार्जनविधिः	३१२
मार्जनपञ्चमन्त्रनिर्देशः	३१२
ललाटे भस्मना रेखाकरणमन्त्रः	३१३
चन्दनकरणविधिः	३१५
चन्दनस्य भूमिप्रक्षेपमन्त्रः	३१५
वैदिकतान्त्रिकभेदेन सन्ध्या द्वैविध्यं	३१६
शूद्रस्य च वैदिकसन्ध्यावन्दनेऽनधिकाराभिधानम्	३१६
शिरोमार्जनविधिः	३१७
समन्त्र आचमनविधिः	३१७
विषयाः	**पृष्ठाङ्काः**
अङ्गन्यासः	३१७
समन्त्र आत्मशुद्धिः	३१७
देव्युपस्थानमन्त्रः	३१९
देव्या द्वादशाञ्जलिदानमन्त्रः	३१९
सन्ध्यावन्दने अङ्गन्यासविधिः	३२०
गुह्यकालीपूजोपक्रमः	३२२
पादप्रक्षालनजलाभिमन्त्रणविधिः	३२२
पादप्रक्षालनमनुः	३२३
आचमनमन्त्रः	३२३
शिखाबन्धनमन्त्रः	३२३
द्वारदेवतान्यासः	३२४
स्तोत्रपाठेन पूजासाक्षित्वाभिधानम्	३२४
पूजोपक्रमकालिककर्तव्यतानिर्देशः	३२५
अधिष्ठानस्य ऋष्यादिनिरूपणम्	३२५
देव्यधिष्ठानमन्त्रः	३२६
पूजोपचारप्रकाराभिधानम्	३२७
पूजायां षोडशोपचारस्य प्राधान्यम्	३२७
षोडशोपचारविवरणम्	३२८
दशोपचारविवरणम्	३२८
पञ्चोपचारविवरणम्	३२८
षोडशोपचारनामानि	३२८
सामग्र्याः ऋष्याद्यभिधानम्	३२९
भूमिशुद्धिमन्त्रः	३२९
भूम्यभिमन्त्रणविधिः	३३०
स्वासनशुद्धिमन्त्रः	३३०
सर्वोपकरणशुद्धिमन्त्रः	३३०

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
कायवाक्चित्तशोधनमन्त्रः	३३१
आसनप्रकाराभिधानम्	३३१
सकलसाधारण आसनशुद्धिमन्त्रः	३३२
पाद्यादीनां शुद्धिविधिः	३३२
जलशुद्धिमन्त्रः	३३२
अर्घशुद्धिविध्यभिधानम्	३३२
अर्घदानमन्त्रः	३३३
आचमनीयशुद्धिविध्यभिधानम्	३३३
आचमनीयदानमन्त्रः	३३३
मधुपर्कशोधनविधिः	३३३
मधुपर्कदानमन्त्रः	३३३
स्नानीयजलवर्णनम्	३३४
वस्त्वर्पणमन्त्रस्यसामान्यनियमः	३३४
पात्रनिर्णयः	३३४
वस्त्रनिर्णयः	३३५
वस्त्रशोधनमन्त्रः	३३५
भूषणनिरूपणम्	३३६
भूषणशोधनमन्त्रः	३३६
गन्धनिरूपणम्	३३६
चन्दनशोधनमन्त्रः	३३७
कुसुमनिर्णयाभिधानम्	३३७
निषिद्धकुसुमानि	३३७
विहितपुष्पाणि	३३७
बिल्वपत्रार्पणमहिमा	३३८
पुष्पशोधनमन्त्रः	३३८
धूपप्रकाराभिधानम्	३३९
धूपविशेषाणां पृथक् पृथक् फलाभिधानम्	३३९
पत्रिवाहस्य परिचयः	३३९
धूपशोधनमन्त्रः	३४०
दीपप्रकाराभिधानम्	३४०
दीपशोधनमन्त्रः	३४१
अञ्जनप्रकाराभिधानम्	३४२
अञ्जनशोधनमन्त्रः	३४२
नैवेद्यप्रकाराभिधानम्	३४३
नैवेद्यशोधनमन्त्रः	३४५
पुनराचमनीयनिर्देशः	३४५
नमस्कारनिर्वचनम्	३४५
प्रदक्षिणलक्षणम्	३४६
दण्डप्रणामाभिधानम्	३४६
द्वात्रिंशदुपचारविवरणम्	३४६
आवाहनलक्षणम्	३४६
स्वागतस्वरूपम्	३४७
संस्थापनस्वरूपम्	३४७
सन्निधापनस्वरूपम्	३४७
सन्निरोधनस्वरूपम्	३४७
सम्मुखीकरणस्वरूपम्	३४७
सकलीकरणम्	३४८
अवगुण्ठनलक्षणम्	३४८
अमृतीकरणलक्षणम्	३४८
सिन्दूरप्रकाराभिधानम्	३४८
सिन्दूरशोधनमन्त्रः	३४९
अलक्तकनिरूपणम्	३४९
अलक्तकशुद्धिमनुः	३४९
ताम्बूलप्रकाराभिधानम्	३४९
ताम्बूलदानफलाभिधानम्	३५०
ताम्बूलशोधनमन्त्रः	३५०
पादुकाविवरणम्	३५१
पादुकाशुद्धिमन्त्र	३५१
पत्रोर्णविवरणम्	३५१
छत्रस्वरूपम्	३५१
छत्रदानमाहात्म्यम्	३५१

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
छत्रशुद्धिमन्त्रः	३५२
चामरविवरणम्	३५२
चामरदानमहिम्नोऽभिधानम्	३५२
चामरशोधनमन्त्रः	३५३
व्यजनप्रकाराभिधानम्	३५३
व्यजनशुद्धिमन्त्रः	३५३
आरात्रिकप्रकाराभिधानम्	३५३
पुष्पमालाप्रकाराभिधानम्	३५४
मालाशोधनमन्त्रः	३५५
आत्मनिवेदनम्	३५५
बलिद्रव्यप्रकाराभिधानम्	३५६
मद्यस्य सकलसाधारणबलित्वनिषेधः	३५६
द्विजस्य मद्यदाने तत्पाने चानधिकारत्वनिर्देशः	३५७
भक्तिः जलं च पूजायामत्यावश्यकमिति निरूपणम्	३५८
प्रसङ्गतः ऋषीणां नामनिर्देशः	३५८
द्विजस्य मदिराव्यवहारे भयप्रदर्शनम्	३६०
मदिराया द्वादशविधस्यानुकल्पस्याभिधानम्	३६३
द्विजस्य मद्यस्थाने तदनुकल्पदानेऽधिकाराभिधानम्	३६३
मद्याय तदनुकल्पस्य च शोधनमन्त्रः	३६४
कामपीठासनस्य ऋष्यादिनिर्देशः	३६५
समन्त्रःविघ्नापसारणविधिः	३६६
आसनशुद्धिमन्त्रः	३६६
आसनशुद्धेस्तान्त्रिकमन्त्रः	३६६
भूतशुद्धिविधिः	३६७
भूतापसारणविधिः	३६९
प्राणायामविधिः	३७०
मातृकान्यासः	३७०
मातृकान्यासस्य ऋष्याद्यभिधानम्	३७१
मातृकान्यासान्तर्गत ऋष्यादिन्यासः	३७१
मातृकान्यासान्तर्गतकरषडङ्गन्यासः	३७२
मातृकाध्यानं पूजनं च	३७३
सर्वाङ्गेषु अक्षरविन्यासक्रमः	३७३
सामान्यतः मातृकाया द्वादशप्रकाराभिधानम्	३७४
विशेषमातृकान्यासाभिधानम्	३७५
गुह्यकाल्या मातृकान्यासे विशेषाणामभिधानम्	३७५
वक्ष्यमाणस्य विराण्मातृकान्यासस्य महत्त्वप्रतिपादनम्	३७६
पञ्चाशन्नरसिंहनामानि	३७७
पञ्चाशत्कालीनामानि	३७८
विराण्न्यासस्य प्रकाराभिधानम्	३७९
विराण्न्यासरीतिः	३७९
गुह्यकालीपूजायां विराण्न्यासस्यावश्यकताभिधानं तन्महत्त्वख्यापनं च	३८०
पीठन्यासाभिधानम्	३८०
पीठन्यासाङ्गषडङ्गन्यासाभिधानम्	३८१
गुह्यकाल्या योगरत्नाख्यविशेषपीठन्यासाभिधानम्	३८३
योगरत्नाख्यपीठन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः	३८४
योगरत्नन्यासप्रकाराभिधानम्	३८५
योगरत्नन्यासमाहात्म्यम्	३९१

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
सप्तमः पटलः	**३९३-४५८**
बहुन्यासोद्देशः	३९३
पञ्चविंशतिमितसारतरन्यासोद्देशः	३९३
षोढान्यासनिर्देशः	३९४
प्रथमन्यासपञ्चके वक्त्रन्यासाभिधानम्	३९४
वक्त्रन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः	३९९
वक्त्रन्यासस्य फलश्रुतिः	३९९
न्यासे वर्णनिर्णयप्रकाराभिधानम्	३९९
एकादशमुख्यादीनां वक्त्रन्यासाभिधाने सिद्धान्तनिरूपणम्	४००
न्यूनवक्त्राणां वक्त्रन्यासाभिधाने निर्णयनिरूपणम्	४०१
अस्त्रन्यासाभिधानम्	४०१
अस्त्रन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः	४०१
अस्त्रन्यासोद्धारः	४०२
अन्यप्रकारेणापि अस्त्रन्यासकथनम्	४०६
अस्त्रन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः	४०६
अन्यप्रकारेणाप्यस्य विनियोगनिर्देशः	४०७
अस्त्रन्यासफलश्रुतिः	४०८
दूतीन्यासाभिधानम्	४०८
दूतीन्यासप्रकाराभिधानम्	४०९
दूतीन्यासस्य स्वरूपवर्णनम्	४०९
दूतीन्यासफलश्रुतिः	४२१
डाकिनीन्यासस्तस्य च ऋष्यादिनिर्देशः	४२२
डाकिनीन्यासस्य स्वरूपवर्णनम्	४२३
डाकिनीन्यासे न कश्चिद् भेदः इति निर्देशः	४२८
डाकिनीन्यासस्य फलश्रुतिः	४२८

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
योगिनीन्यासोपक्रमः	४२८
योगिनीन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः	४२९
योगिनीन्यासमन्त्रोद्धारः	४२९
न्यसनीयमन्त्रस्थाननिर्देशः	४३०
द्वितीयन्यासपञ्चकावतारः	४३१
तत्र कुलतत्त्वन्यासाभिधानम्	४३१
कुलतत्त्वन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः	४३१
कुलतत्त्वन्यासमाहात्म्यकीर्तनम्	४३८
सिद्धिचक्रन्यासाभिधानम्	४३९
सिद्धिचक्रन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः	४३९
सिद्धिचक्रन्यासमन्त्रोद्धारः	४३९
सिद्धिचक्रन्यासफलश्रुतिः	४४४
कैवल्यन्यासाभिधानम्	४४४
कैवल्यन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः	४४४
कैवल्यन्यासस्य मन्त्रोद्धारः	४४४
अमृतन्यासाभिधानम्	४४७
प्रसन्नाविधिकर्मणि आवश्यकतैतस्याभिधानम्	४४७
अमृताख्यन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः	४४७
अमृताख्यन्यासस्य मन्त्रोद्धारः	४४८
अमृताख्यन्यासे विशेषनिर्देशः	४४८
अमृतन्यासानुकल्पाभिधानम्	४५०
जयविजयन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः	४५०
जयविजयन्यासोद्धारः	४५१
जयविजयन्यासस्य विशेषाभिधानम्	४५२
अष्टमः पटलः	**४५९-५४४**
भावनान्यासोद्देशः	४५९
भावनान्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः	४५९
भावनान्यासोद्धारः	४६०
भावनान्यासस्य विशेषोद्धारः	४६१
कूटवर्णनम्	४६५

विषयाः	**पृष्ठाङ्काः**
कालीवर्णनम्	४६६
भावनान्यासस्य स्थाननिर्देशः	४६८
भावनान्यासस्य लोकाः	४६९
भावनान्यासस्य बीजानि	४७०
भावनान्यासमहिम्नः वर्णनम्	४७१
समयन्यासोद्देशः तस्य ऋष्यादिनिर्देशश्च	४७२
समयन्यासस्य महत्त्वनिर्देशः	४७३
समयन्यासोद्धारः	४७३
समयन्यासस्य विशेषेणोद्धारः	४७४
समयन्यासस्य स्थाननिर्देशः	४७७
सृष्टिन्यासोद्देशः तस्य च ऋष्यादिनिर्देशः	४७८
सृष्टिन्यासस्य सामान्योद्धारः	४७८
सृष्टिन्यासस्य विशेषोद्धारः	४७९
सृष्टिन्यासस्य स्थाननिर्देशः	४८३
सृष्टिन्यासमहिमकीर्तनम्	४८४
स्थितिन्यासोद्देशः तस्य च ऋष्यादिनिर्देशः	४८४
स्थितिन्यासोद्धारः	४८५
स्थितिन्यासस्य विशेषोद्धारः	४८६
स्थितिन्यासस्य स्थाननिर्देशः	४९३
संहारन्यासोद्देशस्तस्य च ऋष्यादिनिर्देशः	४९३
संहारन्यासस्य सामान्योद्धारः	४९४
संहारन्यासस्य विशेषोद्धारः	४९५
संहारन्यासस्य स्थाननिर्देशः	४९८
संहारन्यासस्य फलश्रुतिः	४९९
अनाख्यान्यासोद्देशस्तस्य च ऋष्यादिनिर्देशः	४९९
अनाख्यान्यासस्य सामान्योद्धारः	४९९
अनाख्यान्यासस्य विशेषोद्धारः	५००
अनाख्यान्यासस्य फलश्रुतिः	५०६
भासान्यासोद्देशस्तस्य च ऋष्यादिनिर्देशः	५०७
भासान्यासस्य सामान्योद्धारः	५०८
भासान्यासस्य विशेषोद्धारः	५०९
भासान्यासस्य स्थाननिर्देशः	५१४
अनाख्यान्यासस्यापि स्थानानीमान्येवेति निर्देशः	५१४
मन्त्रन्यासोद्देशस्तस्य च ऋष्यादिनिर्देशः	५१५
मन्त्रन्यासोद्धारः	५१५
मन्त्रन्यासफलश्रुतिः	५१९
सिद्धिन्यासोद्देशस्तस्य ऋष्यादिनिर्देशः	५२०
सिद्धिन्यासस्य सामान्योद्धारः	५२०
सिद्धिन्यासस्य विशेषोद्धारः	५२२
सिद्धिन्यासस्य स्थाननिर्देशः	५२६
सिद्धिन्यासस्य फलश्रुतिः	५२६
विराट्न्यासोद्देशस्तस्य च ऋष्यादिनिर्देशः	५२७
विराट्न्यासोद्धारः	५२७
विराण्न्यासस्य विशेषोद्धारः	५२९
विराण्न्यासस्य फलश्रुतिः	५४३
नवमः पटलः	**५४५-७१६**
बीजन्यासोद्देशः	५४५
बीजन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः	५४५
बीजन्यासस्य सामान्योद्धारः	५४६
बीजन्यासस्य विशेषोद्धारः	५४६
बीजन्यासस्य न्यसनीयस्थाननिर्देशः	५४९

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
कूटन्यासस्य मूलनिर्देशः	५४९
अधिकारिभेदेनास्य नित्यत्वकाम्यत्वाद्यभिधानम्	५५०
कूटन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः	५५०
कूटन्यासस्य सामान्योद्धारः	५५०
कूटन्यासस्य विशेषोद्धारः	५५१
कूटन्यासस्य न्यसनीयस्थाननिर्देशः	५५३
कूटन्यासस्य माहात्म्यकीर्तनम्	५५३
क्रमन्यासोद्देशः	५५३
क्रमन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः	५५४
क्रमन्यासस्य मन्त्रोद्धार पूर्वाम्नायस्थषोडशदेवीनां मन्त्राः	५५५
दक्षिणाम्नायस्थदेवीनां मन्त्राः	५६०
प्रतीच्याम्नायस्थदेवीनां मन्त्राः	५६३
उत्तराम्नायस्थदेवीनां मन्त्राः	५६९
ऊर्ध्वाम्नायस्थदेवीनां मन्त्राः	५७५
अधआम्नायस्थदेवीनां मन्त्राः	५७९
क्रमन्यासस्य गोपनीयतमता	५९१
क्रमन्यासप्रसङ्गपतितषडाम्नायस्थदेवीनां यथाक्रमं प्राधान्यनिर्देशः	५९१
क्रमन्यासमाहात्म्यकीर्तनम्	५९२
धातुन्यासोद्देशः	५९३
धातुपदस्य नानार्थवाचकत्वाभिधानम्	५९३
धातुन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः	५९४
धातुन्यासस्य सामान्योद्धारः	५९४
धातुन्यासस्य विशेषेणोद्धारः	५९५
धातुन्यासस्य न्यसनीयस्थाननिर्देशः	५९५

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
धातुन्यासे व्यवह्रियमाणबीजनिर्देशः	५९८
धातुन्यासस्याधिकारिमहात्म्ययोनिर्देशः	६००
तत्त्वन्यासोद्देशः	६००
तत्त्वन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः	६०१
तत्त्वन्यासस्य सामान्योद्धारः	६०१
तत्त्वन्यासस्य विशेषोद्धारः	६०२
तत्त्वन्यासस्य न्यसनीयस्थाननिर्देशः	६०५
लघुषोढान्यासोद्देशः	६०६
लघुषोढान्यासोद्धारः	६०७
लघुषोढान्यासपरिचयः	६०७
पञ्चक्रमषोढान्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः	६०८
उग्रमातृक्रमन्यासोद्धारः	६०८
कालीकुलक्रमन्यासस्योद्देशः ऋष्यादिनिर्देशश्च	६१३
कालीकुलक्रमन्यासस्य मन्त्रोद्धारः	६१३
पीठन्यासोद्देशः ऋष्यादिनिर्देशश्च	६१५
योगिनीन्यासोद्देशः	६१९
योगिनीन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः	६१९
योगिनीन्यासस्य सामान्यतो मन्त्रोद्धारनिर्देशः	६१९
दैवतन्यासस्तस्य च ऋष्यादिनिर्देशः	६२२
दैवतन्यासस्य मन्त्रोद्धारः	६२२
मन्त्रक्रमन्यासस्तस्य च ऋष्यादिनिर्देशः	६२५

विषयाः **पृष्ठाङ्काः**

मन्त्रक्रमन्यासस्य मन्त्रोद्धारः ६२५
लघुषोढान्यासस्य माहात्म्यकीर्तनम् ६३०
लघुषोढान्याससमाप्त्यवसरे बलिद्वयदानविधिः ६३०
तान्त्रिकाणां प्रमुखसम्प्रदायचतुष्टयस्य निर्देशः ६३३
आत्मपूजाविसर्जनमन्त्राभिधानम् ६३४
महाषोढान्यासोपक्रमः ६३४
निर्वाणमहाषोढान्यासावतारः ६३६
महाषोढान्यासस्य माहात्म्यकीर्तनं कर्तव्यतानिर्देशश्च ६३७
महानिर्वाणषोढान्यासस्य गोपनीयतमत्वम् ६३७
महानिर्वाणषोढान्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः ६३८
षोढान्यासस्य षडङ्गन्यासः ६३९
षोढान्यासान्तर्गततीर्थशिवलिङ्गन्यासस्योद्देशः ऋष्यादिनिर्देशश्च ६३९
तीर्थशिवलिङ्गन्यासस्य सामान्योद्धारः ६४०
महानिर्वाणषोढान्यासान्तर्गततीर्थशिवलिङ्गन्यासस्य विशेषमन्त्रोद्धारः ६४१
एकपञ्चाशत् तीर्थनामपरिगणनम् ६४१
एकपञ्चाशच्छम्भुनामानि ६४२
यथायथमुक्ततीर्थाधिष्ठात्रीणां शक्तिदेवीनां परिगणनम् ६४३
तीर्थशिवलिङ्गन्यासस्य महात्म्यकीर्तनतया सिद्धिपीठकथावतरणम् ६४५

विषयाः **पृष्ठाङ्काः**

महाषोढान्यासान्तर्गत पर्वतन्यासस्तस्य च ऋष्यादिनिर्देशः ६४७
पर्वतन्यासस्य षडङ्गन्यासः ६४८
पर्वतन्यासस्य सामान्योद्धारः ६४८
पर्वतन्यासस्य विशेषमन्त्रोद्धारः ६४९
अथैकपञ्चाशत् पर्वतनामानि ६५०
एकपञ्चाशन्नरसिंहनामानि ६५१
एकपञ्चाशन्नरसिंहशक्तिनामानि ६५२
नृसिंहेन सह काल्याः सहवासस्याख्यायिका शिवस्य नृसिंहाकारत्वाख्यानकं च ६५४
पर्वतन्यासमाहात्म्यकीर्तनम् ६५९
नद्यृषिन्यासोद्देशस्तस्य ऋष्यादिनिर्देशश्च ६६०
नद्यृषिन्यासाङ्गभूतषडङ्गन्यासः ६६१
नद्यृषिन्यासस्य सामान्यतो मन्त्रोद्धारनिर्देशः ६६३
नद्यृषिन्यासस्य विशेषमन्त्रोद्धारनिर्देशः ६६४
एकपञ्चाशन्नदीनामानि ६६५
एकपञ्चाशदृषिनामानि ६६६
एकपञ्चाशद् देवीनामानि ६६७
नदीकृतकालिकोपासनाख्यानकम् ६६९
नद्यृषिन्यासस्यान्वर्थकत्वप्रतिपादनम् ६७१
नद्यृषिन्यासस्य फलश्रुतिः ६७२
अस्त्रभैरवन्यासोद्देशस्तस्य ऋष्यादिनिर्देशश्च ६७२
अस्त्रभैरवन्यासस्य षडङ्गनिर्देशः, ६७३
अस्त्रभैरवन्यासस्य मन्त्रोद्धारसङ्कल्पः ६७४

विषयाः **पृष्ठाङ्काः**

अस्त्रभैरवन्यासस्य सामान्यतो मन्त्रोद्धारः ६७४
अस्त्रभैरवन्यासस्य विशेषमन्त्रोद्धारः ६७५
एकपञ्चाशदस्त्रनामानि ६७६
एकपञ्चाशदसुरनामानि ६७७
एकपञ्चाशद्भैरवनामानि ६७८
काल्याः भैरवीरूपत्वासादनकथा ६७९
यज्ञमहाराजन्यासस्तस्य च ऋष्यादिनिर्देशः ६८५
यज्ञमहाराजन्यासस्य सामान्योद्धारः ६८७
यज्ञमहाराजन्यासस्य विशेषोद्धारः ६८८
यज्ञमहाराजन्यासोद्भवकथा यस्यां देव्या यज्ञाधिष्ठात्रीत्वम् ६९३
कल्पसिद्धन्यासस्तस्य च ऋष्यादिनिर्देशः ७००
कल्पसिद्धन्यासस्य षडङ्गनिर्देशः ७०१
कल्पसिद्धन्यासस्य सामान्यतो मन्त्रोद्धारः ७०१
कल्पसिद्धन्यासस्य विशेषमन्त्रोद्धारः ७०३
कल्पसिद्धन्यासमाहात्म्यकथा तदुद्भवकथा वा ७०६
न्यासस्योपदेशग्रहणमनुष्ठानविधिश्च ७१४
महाषोढान्यासस्य माहात्म्यम् ७१५
परिशिष्टम् (१) १-१५
परिशिष्टम् (२) १६-८७
परिशिष्टम् (३) ८८-१०८
परिशिष्टम् (४) १०९-१३२
पारिभाषिक शब्दावली १३३-१३७

* * *

षष्ठः पटलः

महाकाल उवाच—

मूलाधारे कुण्डलिनी सहस्त्रारे सदाशिवः ।
तयोर्यथा सामरस्यं तत्पूर्वं ते मयोदितम् ॥ १ ॥
सर्वेषामेव मन्त्राणां तादृशी भावना स्मृता ।
षट्चक्रैरूर्ध्वनयनं षट्चक्रैरवतारणम् ॥ २ ॥
पातञ्जलेन यत् प्रोक्तं योगशास्त्रादिषु प्रिये ।

महाकाल ने कहा—हे प्रिये! मूलाधार में कुण्डलिनी और सहस्त्रार में सदाशिव रहते हैं । उन दोनों का जिस प्रकार सामरस्य होता है वह मैंने तुमको पहले बतला दिया । समस्त मन्त्रों की ऐसी भावना मानी गयी है । छह चक्रों के माध्यम से प्राणसहित चित्शक्ति को ऊपर ले जाना और फिर उन्हीं छह चक्रों से विपरीत क्रम से नीचे ले आना इसके अतिरिक्त जो कुछ पातञ्जल (एवं अन्य लोगों) ने योगशास्त्र आदि में कहा है (इस ग्रन्थ के मन्त्रों में वही विषय वर्णित है) ॥ १-२ ॥

[प्रातःकृत्यनिरूपणम्]

शयनीयात्समुत्थाय सर्वं तत् समुदाचरेत् ॥ ३ ॥
प्रागेव सूर्योदयतो विदध्यान्मैत्रकर्म च ।
स्मृतिप्रोक्तं मृद्ग्रहणं कृत्वा प्रक्षालयेत् पदे ॥ ४ ॥

प्रातःकृत्य—शयनासन से उठकर वह सब करना चाहिये । सूर्योदय से पहले मैत्र कर्म करना चाहिये । स्मृतियों में कहे गये नियम के अनुसार मिट्टी लेकर पैर में लगा कर फिर पैर को धोना चाहिये ॥ ३-४ ॥

[दन्तधावनविधिः]

ततः समाहरेद् दन्तधावनं विहितैधसाम् ।
ते चापामार्गबदरीनिर्गुण्ठीबिल्ववासकाः ॥ ५ ॥
अशोकचम्पकप्लक्षपर्णजम्बूधवश्रुवाः (?ध्रुवाः) ।
एषामन्यतमं काष्ठं द्वादशाङ्गुलसम्मितम् ॥ ६ ॥

चूर्णिताग्रं त्वचा युक्तं गृह्णीयान् मनुनामुना ।
आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च ॥ ७ ॥
ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च तन्नो धेहि वनस्पते ।
कामं सास्त्रं समुच्चार्य दन्तधावनमाचरेत् ॥ ८ ॥

दन्तधावन-विधि—इसके बाद शास्त्रवर्णित वृक्षों से दातौन ले आनी चाहिये । वे हैं—अपामार्ग (= चिचिड़ा), बेर, निर्गुण्डी (= मेउड़ी), बेल, अडूसा, अशोक, चम्पा, पाकड़, पलाश, जामुन, धव और ध्रुवा । इनमें से किसी एक की बारह अङ्गुल लम्बी लकड़ी लेनी चाहिये । उसके एक शिरे को छालसहित कूच कर निम्नलिखित मन्त्र से मुँह में डालना चाहिये—

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च।
ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च तन्नो धेहि वनस्पते॥

(हे वनस्पते! मेरे अन्दर आयु, बल, यश, तेज, प्रजा, पशु, धन, ब्रह्मज्ञान और मेधा का आधान करो)

उक्त मन्त्र को अस्त्र (= फट्) के साथ पढ़कर दातौन करे ॥ ५-८ ॥

[मुखप्रक्षालनविधिः]

वामहस्तोदकाधारादुदकं दीर्घधारया ।
आदाय दक्षहस्तेनाभिमन्त्र्य मनुनामुना ॥ ९ ॥
मुखं प्रक्षालयेद् देवि हृदीष्टां देवतां स्मरन् ।
तारकालादित्यबीजैः स हि मन्त्रः प्रजायते ॥ १० ॥

मुख-प्रक्षालन-विधि—हे देवि! बाँयें हाथ में स्थित जलपात्र से दीर्घ धारा से दायें हाथ में जल लेकर निम्नोक्त मन्त्र से हृदय में इष्ट देवता का स्मरण करते हुए मुख धोना चाहिये । वह मन्त्र तार (= ओं) काल (= जूं) और आदित्य (= सः) बीज से बनता है ॥ ९-१० ॥

[आचमनविधिः]

पुनरादाय वार्यन्यदाचामेन् मनुनामुना ।
मैधादुक्त्वामृतं ङेऽन्तं कूर्चमस्त्रं ततः परम् ॥ ११ ॥

आचमन-विधि—पुनः पानी लेकर निम्नलिखित मन्त्र से आचमन करे । मैध के बाद 'अमृत' पद को ङेऽन्त कह कर इसके बाद कूर्च और अस्त्र कहना चाहिए। मन्त्र—(= ऐं) अमृताय हूं फट् ॥ ११ ॥

[शिरोमार्जनविधिः]

पुनरन्यज्जलं दक्षकरे संस्थाप्य पार्वति ।
वामहस्तस्याङ्गुलीभिः सम्मन्त्र्य मनुनामुना ॥ १२ ॥

वारत्रयं वामहस्ताङ्गुलीभिर्देवतां स्मरेत् ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण कुर्याच्छिरसि मार्जनम् ॥ १३ ॥
आमृतं बीजमादौ च ङेऽन्तो वै वरुणस्ततः ।
सर्वशेषे शिखामन्त्रो मन्त्रोऽयमभिमन्त्रणे ॥ १४ ॥
प्रणवश्चित्कला ङेऽन्ता लज्जा ङेऽन्ता तथा स्मृता ।
रावो ङेऽन्ता गुह्यकाली शेषे सर्वत्र हृन्मनुः ॥ १५ ॥

शिरो-मार्जन की विधि—हे पार्वति! पुनः दायें हाथ में दूसरा जल लेकर बायें हाथ की अङ्गुलियों से तीन बार अभिमन्त्रित करना चाहिये । देवता का स्मरण करना चाहिये। फिर वक्ष्यमाण मन्त्र से शिर में मार्जन करना चाहिये । पहले अमृत बीजं (= वं) फिर ङेऽन्त वरुण (= वरुणाय) और सबके अन्त में शिखा मन्त्र (= नमः) यह अभिमन्त्रण के विषय में मन्त्र हैं । प्रणव (= ओं) इसके बाद ङेऽन्ता चित्कला (= चित्कलायै) फिर ङेऽन्ता लज्जा (= लज्जायै), राव (= फ्रें), ङेऽन्ता गुह्यकाली (= गुह्यकाल्यै) फिर हृन्मन्त्र (= नमः) । इस प्रकार पूरा मन्त्र-स्वरूप हुआ—ॐ चित्कलायै लज्जायै फ्रें गुह्यकाल्यै नमः ॥ १२-१५ ॥

[वस्त्रपरिधानमासनग्रहणम्]

रात्रिवासः परित्यज्य धौते ते परिधाय च ।
व्याघ्राजिने कम्बले वा कौशे वाप्यासने स्थितः ॥ १६ ॥
कृतपद्मासनो धीरो गुरुं वै प्रथमं स्मरेत् ।

वस्त्रपरिधान और आसन—रात्रि में पहने हुए वस्त्र को छोड़कर धुले हुए दो वस्त्र पहन कर व्याघ्रचर्म, कम्बल या कुश के आसन पर बैठ जाय । पद्मासन लगाकर धीर साधक पहले गुरु का स्मरण करे ॥ १६-१७- ॥

[गुरुध्यानम्]

प्रातः शिरसि शुक्लेऽब्जे द्विनेत्रं द्विभुजं गुरुम् ॥ १७ ॥
वराभययुतं शान्तं स्मरेत् तं नामपूर्वकम् ।
एवंरूपं गुरुं ध्यात्वा दशकृत्वो गुरोर्मनुम् ॥ १८ ॥
जपेत् स परमो ङेऽन्तो गुरुः हृन्मनुना युतः ।
ततः पठन् श्लोकममुं नमस्कुर्याद् गुरुं प्रिये ॥ १९ ॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ २० ॥

गुरु का ध्यान—प्रातःकाल में शिर में शुक्ल कमल के ऊपर बैठे हुए, दो भुजाओं और दो नेत्रों वाले, वरद मुद्रा तथा अभय मुद्रा से युक्त, शान्तस्वरूप उनका नाम के साथ स्मरण करे । इस प्रकार के गुरु का ध्यान कर वह साधक परम (= ओं) ङेऽन्त गुरु (= गुरवे) तथा हृदय मन्त्र (= नमः) अर्थात् 'ओं गुरवे

नमः' का जप करे । हे प्रिये! इसके बाद निम्नलिखित श्लोक को पढ़ता हुआ गुरु को नमस्कार करे—अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया । चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

(अज्ञानरूपी रतौंधी से अन्धे शिष्य के चक्षु को जिन्होंने ज्ञानरूपी अञ्जन-शलाका से उन्मीलित किया उन गुरु को नमस्कार है) ॥ १७-२० ॥

[देव्या ध्यानविधिः सजपमानसोपचारपूजाविधिश्च]

उक्तरूपां ततो देवीं ध्यात्वा हृदयपङ्कजे ।
तदोपचारैः सम्पूज्य मानसैरेव सुन्दरि ॥ २१ ॥
मूलमन्त्रं यथाशक्ति जपित्वा तदनन्तरम् ।
जपं समर्प्य संस्तूय नत्वा च शिरसा मुहुः ॥ २२ ॥

देवी का ध्यान-जप-मानसपूजाविधि—हे सुन्दरि! इसके बाद हृदयकमल में उक्त रूप वाली देवी का ध्यान कर फिर मानस उपचारों से पूजा करे । तत्पश्चात् मूल मन्त्र का यथाशक्ति जपकर उसे देवी के लिये अर्पित कर स्तुति करे तथा बार-बार शिर से प्रणाम करे ॥ २१-२२ ॥

[देव्या निदेशग्रहणविधिः]

गुरुदेवतयोर्मन्त्रदेवयोश्च क्षणं पुनः ।
ऐक्यं सञ्चिन्त्य गृह्णीयादाज्ञां बद्धाञ्जलिः पठन् ॥ २३ ॥
देवि श्रीगुह्यकालि त्वं देह्यनुज्ञां महेश्वरि ।
प्रयतिष्ये निदेशात्ते योगक्षेमार्थसिद्धये ॥ २४ ॥
एवं निदेशं सङ्गृह्य योगक्षेमप्रयोजनम् ।
विदधीत वरारोहे स्वं स्वं धर्ममलङ्घयन् ॥ २५ ॥

देवी से आज्ञा लेने की विधि—गुरु, देवता, मन्त्र तथा उसकी देवता का एक क्षण के लिये ऐक्यचिन्तन कर हाथ जोड़कर निम्नलिखित श्लोक का पाठ करते हुए आज्ञा लेनी चाहिये—देवि श्रीगुह्यकालि.....................क्षेमार्थसिद्धये ।

(हे देवि! गुह्यकालि! महेश्वरि! मुझे आज्ञा दो । योग-क्षेम की सिद्धि के लिये मैं तुम्हारे निर्देश के अनुसार प्रयत्न करूँगा) ।

इस प्रकार हे वरारोहे! योग-क्षेम के प्रयोजन वाला निर्देश लेकर अपने-अपने धर्म का उल्लङ्घन न करते हुए विधान करना चहिये ॥ २३-२५ ॥

[स्नानविधिः]

ततः पूजनवेलायां नद्यां सरसि वा गृहे ।
मलापकर्षणं स्नानं विधायादौ वरानने ॥ २६ ॥

मन्त्रस्नानं ततः कुर्यात् तन्त्रोक्तविधिना सुधीः ।

स्नान-विधि—इसके बाद हे वरानने! पूजा के समय नदी तालाब या घर में पहले मल को दूर करने वाले स्नान को सम्पन्न कर विद्वान् तन्त्रोक्त विधि से मन्त्र-स्नान करे ॥ २६- ॥

[ऋष्यादिप्रकारनिरूपणम्]

कस्मिंश्चित् कर्मणि भवेदृष्यादिस्तु षडङ्गकम् ॥ २७ ॥
क्वचित् त्र्यङ्गं क्वचिच्चापि सप्ताङ्गं पुनरुच्यते ।
ऋषिश्छन्दो देवता च बीजं शक्तिश्च कीलकम् ॥ २८ ॥
षडङ्गमेतज्जगदुस्त्र्यङ्गं पूर्वार्धमस्य हि ।
सप्ताङ्गे तत्त्वमधिकं प्रकारो न चतुर्थकः ॥ २९ ॥
स्नानादिकाले ऋष्यादि त्र्यङ्गमेव प्रचक्षते ।
आदौ तारमनुस्मृत्य ततोऽस्य पदमुच्चरेत् ॥ ३० ॥
गुह्यकालीयपूजाङ्गस्नानस्य तदनन्तरम् ।
कात्यायन ऋषिः प्रोक्तः प्रतिष्ठाच्छन्द उच्यते ॥ ३१ ॥
अप्यस्या वारुणी गुह्यकाली प्रोक्ता च देवता ।
मन्त्रस्नाने विनियोग इति बद्धाञ्जलिः पठेत् ॥ ३२ ॥
आचम्य मूलमन्त्रेण मासपक्षतिथीः स्मरेत् ।
षट्कोणं चक्रमालिख्य मध्ये ताराङ्कितं जले ॥ ३३ ॥
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥ ३४ ॥
इति मन्त्रं समुच्चार्य मुद्रयाङ्कुशसंज्ञया ।
सूर्यमण्डलतः सर्वतीर्थान्यावाहयेत् प्रिये ॥ ३५ ॥
आप्लाव्य धूमलाख्येन कवचेनावगुण्ठ्य च ।
सतालत्रितयास्त्रेण रक्षयित्वा च तज्जलम् ॥ ३६ ॥
मूलमन्त्रेणाभिमन्त्र्य वारानेकादश द्रुतम् ।
मूलेन तिलकं कृत्वा षडङ्गं न्यस्य विग्रहे ॥ ३७ ॥
सङ्गृह्य दक्षेण जलं वामहस्ते निधाय च ।
अङ्गुलीमध्यविगलत्पाथोबिन्दुभिरल्पकैः ॥ ३८ ॥
मूलमन्त्रैः सप्तवारं कृत्वा शिरसि मार्जनम् ।

ऋषि आदि के प्रकार—किसी कर्म में ऋषि आदि षडङ्गन्यास होता है, किसी में त्र्यङ्ग और किसी में सप्ताङ्ग कहा जाता है । शास्त्रकारों ने ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति और कीलक इन छह अङ्गों को बतलाया है । उक्त षडङ्ग का पूर्वार्द्ध त्र्यङ्ग होता है । सप्ताङ्ग में तत्त्व अधिक होता है । न्यास का कोई चौथा प्रकार नहीं

है । स्नान आदि के समय ऋषि आदि त्र्यङ्ग न्यास का ही उल्लेख है । पहले तार का उच्चारण कर फिर 'अस्य' पद का उच्चारण करना चाहिये । फिर 'गुह्यकाली पूजाङ्गस्नानस्य' उसके बाद 'कात्यायन ऋषि:' कहे गये हैं । 'छन्द प्रतिष्ठा' कहा जाता है । वारुणी गुह्यकाली देवता कही गयी है । 'मन्त्रस्नाने विनियोग:' ऐसा हाथ जोड़कर कहना चाहिये । यथा—'ओं अस्य गुह्यकालीपूजाङ्गस्नानस्य कात्यायन ऋषि: प्रतिष्ठा छन्दो वारुणी गुह्यकाली देवता मन्त्रस्नाने विनियोग: ।' उसके पश्चात् मूल मन्त्र से आचमन कर मास पक्ष तिथि का स्मरण करे । पानी के ऊपर षट्कोण चक्र लिखकर मध्य में 'ॐ' लिखे । फिर 'गङ्गे च......................सन्निधिं कुरु ।'

(हे गङ्गे! यमुने! गोदावरि! सरस्वति! नर्मदे! सिन्धु! और कावेरि! आप सब इस जल में सन्निहित हों) ।

इस मन्त्र का उच्चारण कर अङ्कुश मुद्रा से हे प्रिये! सूर्यमण्डल से समस्त तीर्थों का आवाहन करे । उस जल को धूमल से आप्लावित कर, कवच से अवगुण्ठित कर, तीन ताली बजाकर 'फट्' कहकर जल की रक्षा करे । मूल मन्त्र से ग्यारह बार जल को जल्दी-जल्दी अभिमन्त्रित कर मूल से तिलक करे । अपने शरीर में षडङ्ग न्यास कर दाँये हाथ से जल उठाकर बाँयें हाथ में लेकर अङ्गुलियों के मध्य से गिरने वाले कुछ जल बिन्दुओं से मूलमन्त्र से सात बार शिर पर मार्जन करे ॥ २७-३८ ॥

गृहीत्वोर्व्वरितं तोयं नीत्वा नासाग्रदक्षिणे ॥ ३९ ॥
धमन्येडाख्यया देहान्तरवर्त्त्यघसञ्चयम् ।
समाकृष्य विनि:सार्य नाड्या पिङ्गलया पुन: ॥ ४० ॥
तदाक्रान्ततया कृष्णवर्णं वारि विचिन्त्य च ।
पुरतो भाविते वज्राश्मनि क्षिप्त्वा दशोत्तराम् ॥ ४१ ॥
सञ्जप्य त्रिपदां मूलमन्त्रस्मरणपूर्वकम् ।
त्रिर्विनिर्मज्य कलशमुद्रया करबद्धया ॥ ४२ ॥
शिरोऽभिषिञ्चेन् मूलेन वारान् द्वादश सप्त वा ।
तत: पुनर्मूलमन्त्रं समुच्चार्य वरानने ॥ ४३ ॥
गुह्यकालीं ततो देवीं तर्पयामि नमोऽस्त्विति ।
इत्युच्चरंस्ततो वारांस्त्रींस्तां सन्तर्पयेत् पुन: ॥ ४४ ॥
ततो जलात् समुत्थाय वाससी परिधाय च ।

मन्त्रों के द्वारा शक्तिशाली बनाये गये जल को लेकर नासिका के दाँयीं ओर ले जाकर इडा नामक नाड़ी से जल को अन्दर ले जाय और वहाँ से भावना के द्वारा पाप समूह को एकत्रित कर पिङ्गला नाडी से बाहर निकाल कर मल से आक्रान्त होने के कारण पानी को कृष्ण वर्ण का ध्यान करता हुआ सामने कल्पित वज्र पत्थर पर फेंक कर ग्यारह बार गायत्री जपे । फिर मूल मन्त्र का स्मरण करते हुए तीन बार

मार्जन कर हाथ में कलश मुद्रा का बन्ध कर शिर को अभिषिञ्चित करे । अभिषेक के समय बारह या सात बार मूल मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये । हे वरानने! इसके बाद 'गुह्यकालीदेवीं तर्पयामि नमोऽस्तु' कहते हुए तीन बार तर्पण करे । इसके बाद जल से निकल कर दो वस्त्र धारण करे ॥ ३९-४४ ॥

[तिलककरणविधिः]

पुनराचम्य देवेशि विदध्यात् तिलकं सुधीः ॥ ४५ ॥
शाक्तानामथ शैवानां तिलकद्वितयं स्मृतम् ।
भस्मनादौ त्रिपुण्ड्रं स्याच्चन्दनेनापरं भवेत् ॥ ४६ ॥

तिलककरण विधि—हे देवेशि! पुनः आचमन कर विद्वान् तिलक धारण करे । शाक्तों और शैवों के लिये दो तिलक का विधान है । पहले भस्म से त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिये, बाद में चन्दन से दूसरा तिलक करना चाहिये ॥ ४५-४६ ॥

[विभूतिधारणमन्त्रनिर्देशः]

विभूतिधारणं कार्यं वैदिकं तान्त्रिकं तथा ।
वैदिकं तत्परिज्ञेयमथर्वशिरसि स्थितम् ॥ ४७ ॥
तान्त्रिकं यत् तद् ब्रवीमि मन्त्रं विस्तारपूर्वकम् ।
त्रिपुण्ड्रधारणस्यास्य कीर्तिता ऋषयस्त्रयः ॥ ४८ ॥
क्रमाद्धि कालाग्निरुद्रसंवर्तनचिकेतसः ।
पंक्तिश्छन्दः पञ्चमहाभूतानि खलु देवताः ॥ ४९ ॥
फली बीजं रुट् च शक्तिरङ्कुशं कीलकं मतम् ।
महापातकसम्भूतपापनाशे नियोगता ॥ ५० ॥
संस्मृत्येत्थं दक्षकरे विभूतिं विनिधाय हि ।
आच्छाद्य वामहस्तेन कपोताभिनयात्मना ॥ ५१ ॥
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण त्रिवारमभिमन्त्रयेत् ।

विभूतिधारण मन्त्र—इसके पश्चात् तान्त्रिक और वैदिक मन्त्रों का उच्चारण कर विभूतिधारण करना चाहिये । वैदिक विभूतिधारण मन्त्र उसे समझना चाहिये जो अथर्वशिर उपनिषद् में वर्णित है । जो तान्त्रिक मन्त्र है उसको विस्तारपूर्वक कह रहा हूँ । उस त्रिपुण्ड्र धारण के तीन ऋषि कहे गये हैं । वे हैं क्रमशः कालाग्निरुद्र, संवर्त और नचिकेता । इस मन्त्र का छन्द पंक्ति है । पञ्च महाभूत इसके देवता हैं । फली (= रं) बीज क्रोध (= हूं), शक्ति और अङ्कुश (= क्रों) कीलक हैं । इसका विनियोग महापातक से उत्पन्न पाप के नाश के लिए होता है । उक्त प्रकार से स्मरण कर दाँयें हाथ में विभूति रखकर बाँयें हाथ से ढँक दे । कबूतर की उड़ान की भाँति तीन बार वक्ष्यमाण मन्त्र से अभिमन्त्रण करे ॥ ४७-५१- ॥

[विभूत्यभिमन्त्रणमनुः]

तारसारस्वतकुणीफलीतर्जनिधूमलाः ॥ ५२ ॥
ततोऽनूद्याग्नितत्त्वाय कूर्चास्त्रे तदनन्तरम् ।
वायुतत्त्वं तथाप्तत्त्वं पृथिवीतत्त्वमेव च ॥ ५३ ॥
ङेऽन्तानि त्रीणि तत्त्वानि क्रमेणैव पृथक् पृथक् ।
सर्वत्र शेषे कूर्चास्त्रे ततो वेधी दुरी तथा ॥ ५४ ॥
दर्वीगुडद्रुमाश्चापि ततः पञ्चमहापदात् ।
भूतान्येकादशेन्द्रियाणि पावयद्वितयं ततः ॥ ५५ ॥
विसन्ध्यशेषदुरितं ततोऽनु शमयद्वयम् ।
भस्म तुभ्यं त्रपाबीजादस्त्रं हृच्छिर एव च ॥ ५६ ॥
एवमेतेनाभिमन्त्र्य वामहस्तस्य पार्वति ।

विभूति-अभिमन्त्रण का मन्त्र—तार, सारस्वत, कुणी, फली, तर्जनी, धूमल बीजों के बाद 'अग्नितत्त्वाय' कहकर कूर्च और अस्त्र कहना चाहिये । वायु, जल तथा पृथिवी तत्त्वों को क्रम से पृथक्-पृथक् ङेऽन्त कहना चाहिये और सबके अन्त में कूर्च और अस्त्र कहना चाहिये । इसके बाद वेधी, दुरी, दर्वी, गुड, द्रुम कहने के पश्चात् 'पञ्च महा' पद के अनन्तर 'भूतानि एकादशेन्द्रियाणि' कहे । 'पावय' को दो बार कहने के पश्चात् सन्धिरहित 'अशेष दुरितं' के पश्चात् 'शमय' को दो बार कहना चाहिये । पुनः 'भस्म तुभ्यं' कहकर त्रपा बीज, अस्त्र, हृदय और शिर कहे ।

(मन्त्र-स्वरूप—ॐ ऐं यं रं लं वं अग्नितत्त्वाय हूं फट् वायवे हूं फट् अप्तत्त्वाय हूं फट् पृथिवीतत्त्वाय हूं फट् शं षं सं हं क्षं पञ्च महाभूतानि एकादशेन्द्रियाणि पावय पावय अशेष-दुरितं शमय शमय भस्म तुभ्यं ह्रीं फट् नमः स्वाहा) ॥ ५२-५६ ॥

[विभूत्या शिरोमार्जनविधिः]

अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां च संहिताभ्यां हि भस्मना ॥ ५७ ॥
वक्ष्यमाणैः पञ्चमन्त्रैः कुर्याच्छिरसि मार्जनम् ।

विभूति के द्वारा शिरोमार्जन—हे पार्वति! इसके बाद बाँयें हाथ की अनामिका और अङ्गुष्ठा को मिलाकर भस्म के द्वारा वक्ष्यमाण पाँच मन्त्रों से शिर पर मार्जन करना चाहिये ॥ ५७-५८ ॥

[मार्जनपञ्चमन्त्रनिर्देशः]

प्रासादबीजतो ङेऽन्तो हृन्मन्त्रान्तः सदाशिवः ॥ ५८ ॥
त्रपा विशुद्धिर्नन्दिन्यै शेषे हार्दमनुस्ततः ।
लक्ष्मीबीजाच्चेतनायै ह्यन्ते मन्त्रः स एव हि ॥ ५९ ॥

कूर्चात् कला नादबिन्दुरूपिण्यै हृन्मनुर्मतः ।
डाकिनीतो गुह्यकाली ङेऽन्ता हृन्मनुना युता ॥ ६० ॥
किञ्चिद् गृहीत्वा तस्यैव भस्मनो मुद्रया तया ।

मार्जन के पाँच मन्त्र—१. प्रासाद बीज के बाद ङेऽन्त 'सदाशिव' उसके बाद हृन्मन्त्र फिर २. त्रपा विशुद्धि के पश्चात् 'नन्दिन्यै' अन्त में हार्द मन्त्र उसके बाद ३. लक्ष्मी बीज फिर 'चेतनायै' अन्त में वही मन्त्र फिर ४. कूर्च कला 'नादबिन्दुरूपिण्यै' उसके बाद हृन्मन्त्र ५. डाकिनी के पश्चात् ङेऽन्ता 'गुह्यकाली' को हृदय मन्त्र से युक्त करे । ये मन्त्र हैं ।

(मन्त्र-स्वरूप—१. हौं सदाशिवाय नम: २. ह्रीं ह्लैं नन्दिन्यै नम: ३. श्रीं चेतनायै नम: ४. हूं ईं नादबिन्दुरूपिण्यै नम: ५. ख्फ्रें गुह्यकाल्यै नम:) ॥ ५८-६०॥

[ललाटे भस्मना रेखाकरणमन्त्र:]

रेखां ललाटे मन्त्रेण वक्ष्यमाणेन विन्यसेत् ॥ ६१ ॥
सारस्वतं तथा पाशः प्रासादस्तदनन्तरम् ।
रुद्र एवाहमस्यानु भूयासमिति कीर्तयेत् ॥ ६२ ॥
ततोऽनु वज्रकवचमेवेदमिति चोच्चरेत् ।
भूयात् तत्सत्ततोऽप्यस्त्रं नमः स्वाहा च पश्चिमे ॥ ६३ ।
ततो दक्षकराद् वामकरे भस्म निधाय च ।
वक्ष्यमाणेन मनुना जलेनालोडयेत् प्रिये ॥ ६४ ॥
वेदादिर्भौवनेशी च शाकिनी तदनन्तरम् ।
सम्बोधनतया वाच्या स्यात् प्रचण्डकरालिनी ॥ ६५ ॥
शिरोमन्त्रान्वितः शेषे एष आलोडने मनुः ।
वर्तुलं मण्डलं कृत्वा षट्कोणं तस्य मध्यगम् ॥ ६६ ॥
त्रिकोणं तस्य चाप्यन्तस्तदन्तः शाकिनीमपि ।
मूलमन्त्रेण चावेष्ट्य तत्सर्वं मण्डलं प्रिये ॥ ६७ ॥
दक्षहस्तेन चाच्छाद्य मन्त्रमेतमुदीरयेत् ।
तारमैधत्रपालक्ष्मीयोगिनीकामिनीरुषः ॥ ६८ ॥
शाकिनीं डाकिनीं दत्त्वा एह्येहि पदमुद्धरेत् ।
सम्बुद्धिं भगवत्याश्च गुह्यकाल्यास्ततोऽपि च ॥ ६९ ॥
सान्निध्यमत्रावेशयेति त्वामहं दध इत्यपि ।
ततस्तेनाहमामुक्तो इतिशब्दं विनिर्दिशेत् ॥ ७० ॥
वज्रतनुर्विरजाश्च भूयासं तदनन्तरम् ।
पाशं कालं तथा प्रेतं फट्त्रयं शिर एव च ॥ ७१ ॥

ललाट पर भस्म से रेखा बनाना—ललाट पर वक्ष्यमाण मन्त्र से रेखा बनानी चाहिये । सारस्वत पाश प्रसाद बीजों के बाद 'रुद्र एवाहम्' के पश्चात् 'भूयासम्' कहना चाहिये । इसके पश्चात् 'वज्रकवचमेवेदम्' कहना चाहिये । फिर 'भूयात् तत्सत्' उसके बाद अस्त्र 'नमः' और अन्त में 'स्वाहा' कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं आं हौं रुद्र एवाहं भूयासं वज्रकवचमेवेदं भूयात् तत्सत् फट् नमः स्वाहा) ।

हे प्रिये! इसके बाद भस्म को दाँयें हाथ से बाँयें हाथ पर रखकर वक्ष्यमाण मन्त्र का उच्चारण करते हुए भस्म को जल के साथ आलोडित करना चाहिये । वेदादि, भुवनेश्वरी, शाकिनी उसके बाद 'प्रचण्डकरालिनी' का सम्बोधन, अन्त में शिरोमन्त्र यह आलोडनविषयक मन्त्र है । उस भस्म में गोल मण्डल बनाकर षट्कोण फिर उसके बीच त्रिकोण उसके भीतर शाकिनी (= फ्रें) लिखकर उस सम्पूर्ण मण्डल को मूल मन्त्र से आवेष्टित कर हे प्रिये! (भस्म को) दाँयें हाथ से ढँककर निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये । तार, मेधा, त्रपा, लक्ष्मी, योगिनी, कामिनी, क्रोध, शाकिनी, डाकिनी बीजों को कहकर 'एह्येहि' कहना चाहिये । फिर 'भगवती' और 'गुह्यकाली' का सम्बोधन फिर 'सानिध्य-मत्रावेशय त्वामहं दधे' इसके बाद 'तेनाहमामुक्तो' इस शब्द को कहना चाहिये । उसके बाद 'वज्रतनुर्विरजा भूयासम्' के बाद 'पाश' 'काल' तीन 'फट्' और 'शिर' कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ॐ ह्रीं फ्रें प्रचण्डकरालिनि स्वाहा । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें ख्फ्रें ऐह्येहि भगवति गुह्यकालि सानिध्यमत्रावेशय त्वामहं दधे तेनाहमामुक्तो वज्रतनुर्विरजाश्च भूयासम् आं जूं स्हौः फट् फट् फट् स्वाहा) ॥ ६१-७१ ॥

ततः कनिष्ठावर्ज्याभिर्दक्षिणाङ्गुलिभिः प्रिये ।
भस्माम्बुलोडितं धृत्वा मन्त्रान् दश समुच्चरन् ॥ ७२ ॥
स्थानेषु दशसु न्यस्येत् क्रमेण वरवर्णिनि ।
शाकिनी गुह्यकाली च ङेऽन्ता हृन्मन्त्रसंयुता ॥ ७३ ॥
ललाटे, कूर्चतो ङेऽन्ता कराली हृन्मनूक्षिता ।
वक्षसि, त्रपया ङेऽन्ता घोरनादा नमोऽन्विता ॥ ७४ ॥
नाभौ, भूतार्णतो ङेऽन्ता विकटदंष्ट्रा हृदन्विता ।
बाहुमूले, स्मरोऽनङ्गाकुला ङेऽन्ता हृदा युता ॥ ७५ ॥
कफोणौ, योगिनी बीजान् मता ङेऽन्ता कपालिनी ।
हृदा युङ् मणिबन्धे, च पुनरङ्कुशबीजतः ॥ ७६ ॥
ज्वालामालिन्यथो ङेऽन्ता नमोयुक्ता गले स्मृता ।
बधूबीजाच्च चामुण्डा ङेऽन्ता पार्श्वे नमोयुता ॥ ७७ ॥

प्रेतबीजाद् भैरवी च ङेऽन्ता कट्यां हृदन्विता ।
डाकिनीबीजत: सिद्धिविकराली वरानने ॥ ७८ ॥
ङेऽन्ता हृन्मनुसम्पृक्ता व्यापके परिविन्यसेत् ।
इति ते कथितं देवि समन्त्रं भस्मधारणम् ॥ ७९ ॥

हे प्रिये! इसके बाद दाँयें हाथ की कनिष्ठिकारहित अङ्गुलियों से भस्म और जल को मिलाकर अधोलिखित दश मन्त्रों का उच्चारण करते हुए हे वरवर्णिनि! दश स्थानों में क्रम से भस्म लगाना चाहिये । मन्त्रसहित स्थान निम्नलिखित है—

ललाट—फ्रें गुह्यकाल्यै नम: ।
वक्ष—हूं कराल्यै नम: ।
नाभि—ह्रीं घोरनादायै नम: ।
बाहुमूल—स्फ्रों विकटदंष्ट्रायै नम: ।
कुहनी—क्लीं अनङ्गाकुलायै नम: ।
मणिबन्ध—छ्रीं कपालिन्यै नम: ।
गला—क्रों ज्वालामालिन्यै नम: ।
पार्श्व—स्त्रीं चामुण्डायै नम: ।
कटि—स्हौ: भैरव्यै नम: ।
व्यापक—ख्फ्रें सिद्धिविकराल्यै नम: ।

हे देवि! इस प्रकार तुमको समन्त्रभस्मधारण बतलाया गया ॥ ७२-७९ ॥

[चन्दनकरणविधि:]

चन्दनेनापि तत्कार्यमित्येवं तान्त्रिकी स्थिति: ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदा कुर्यात् त्रिपुण्ड्रं भस्मनैव तु ॥ ८० ॥
चन्दनेन द्वयं कुर्याद् वान्यथा तिलकीभवेत् ।
विभूतिधारणं त्वादौ तिलकं चन्दनेन च ॥ ८१ ॥
विशेषतस्तु शाक्तानां द्वयमावश्यकं प्रिये ।
अतो निबोध विधिवत् तद्वच्चन्दनधारणम् ॥ ८२ ॥
वामे करतले श्वेतं स्थापयित्वा तु चन्दनम् ।
मूलमन्त्रं विलिख्यात्र ततोऽनामिकया ननु ॥ ८३ ॥

चन्दनकरण-विधि—चन्दन से भी वह करना चाहिये—ऐसी तान्त्रिकी विधि है । मिट्टी के द्वारा ऊर्ध्वपुण्ड्र बनाना चाहिये और भस्म से त्रिपुण्ड्र अथवा चन्दन से दोनों करना चाहिये । अन्य प्रकार से भी तिलक किया जाता है । पहले विभूतिधारण फिर चन्दन से तिलक, हे प्रिये! यह सबको करना चाहिये । विशेषतया शाक्तों के लिये यह दोनों आवश्यक होता है । इसलिये चन्दनधारण को विधिवत् जानो । बाँयें हाथ पर श्वेत चन्दन रखकर मूल मन्त्र का उल्लेख कर फिर अनामिका के द्वारा—॥ ८०-८३ ॥

[चन्दनस्य भूमिप्रक्षेपमन्त्र:]

गृहीत्वा प्रक्षिपेद् भूमौ पञ्च मन्त्रान् समुच्चरन् ।
ताराद्याश्च हृदन्त्याश्च ङेऽन्ता अपि समीरिता: ॥ ८४ ॥

ज्ञानेच्छे च क्रियाशक्तिकामाः सर्वे कलोत्तराः ।
आच्छाद्य दक्षिणेनैव ततः करतलेन तु ॥ ८५ ॥
गृणन् मन्त्रं वक्ष्यमाणं कुर्यात् तिलकमीश्वरि ।
अलङ्घयन् भस्मरेखां तिर्यग्रेखां विधानतः ॥ ८६ ॥
मायाकामरुषः सर्वजनमोहिनि चोद्धरेत् ।
सर्वाद् वशङ्करीत्युक्त्वा मां ततो रक्षयुग्मकम् ॥ ८७ ॥
अस्त्रं शिरोयुतं मन्त्रो मया ते परिकीर्तितः ।
एतत् तन्त्रोदितं देवि प्रोक्तं तिलकधारणम् ॥ ८८ ॥

चन्दन का भूमिप्रक्षेप—...........लेकर भूमि पर फेंकना चाहिये । फेंकने के समय पाँच मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिये । वे मन्त्र प्रारम्भ में तार और अन्त में हृदय तथा बीच में ङेऽन्त कहे गये हैं । ज्ञान, इच्छा, क्रिया, शक्ति और काम इन सबके बाद में 'कला' जोड़ना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ज्ञानकलायै नमः । ओं इच्छाकलायै नमः । ओं क्रियाकलायै नमः । ओं शक्तिकलायै नमः । ओं कामकलायै नमः) ।

इसके बाद दाँयें हाथ से ढँक कर वक्ष्यमाण मन्त्र का उच्चारण करते हुये तिलक लगाना चाहिये । तिलक करते समय भस्मरेखा और तिर्यक्रेखा का विधानपूर्वक लङ्घन नहीं करना चाहिये । मन्त्र के लिये माया, काम, क्रोध बीजों के बाद 'सर्वजनमोहिनि' कहना चाहिये । 'सर्व' के बाद 'वशङ्करि' कहकर 'मां' फिर दो बार 'रक्ष' कहना चाहिये । अस्त्र और शिर से युक्त यह मन्त्र मैंने तुमको बतलाया ।

(मन्त्र-स्वरूप—ह्रीं क्लीं हूं सर्वजनमोहिनि सर्ववशङ्करि मां रक्ष रक्ष फट् स्वाहा)।

हे देवि! तिलकधारण का यह तन्त्रोक्त मन्त्र कहा गया ॥ ८४-८८ ॥

[वैदिकतान्त्रिकभेदेन सन्ध्याद्वैविध्यं शूद्रस्य च वैदिकसन्ध्यावन्दनेऽनधिकाराभिधानम्]

ततो द्विजातिश्चेत् सन्ध्यां वेदप्रोक्तां विधाय हि ।
आचरेत् तान्त्रिकीं शूद्रो न पूर्वामुत्तरां चरेत् ॥ ८९ ॥
न शूद्रस्याधिकारोऽस्ति वेदमन्त्रस्य भाषणे ।
उच्चरन् नरकं याति दर्पान्मोहाद्धठाद् बलात् ॥ ९० ॥
प्राणायामत्रयं कृत्वा तन्त्रोक्तं प्रथमं प्रिये ।

सन्ध्या के भेद तथा शूद्र का वैदिकी सन्ध्या में अनधिकार—इसके बाद साधक यदि द्विजाति (अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य में से कोई भी) हो तो वेदोक्त सन्ध्या-वन्दन कर फिर तान्त्रिकी सन्ध्या करे । शूद्र को चाहिये कि वह पूर्व अर्थात्

वैदिकी सन्ध्या न करे, उत्तरा अर्थात् तान्त्रिकी सन्ध्या करे । शूद्र को वेद मन्त्र के पाठ का अधिकार नहीं है । घमण्ड, मोह अथवा दुराग्रह से यदि वह उच्चारण करता है तो नरक को जाता है । हे प्रिये! पहले तन्त्रोक्त प्राणायाम को तीन बार करके—॥ ८९-९० ॥

[शिरोमार्जनविधि:]

ततोऽष्टादशकृत्वो हि मूलमन्त्रं समुच्चरन् ॥ ९१ ॥
विदध्यान् मार्जनं मूर्ध्नि तत आचमनं चरेत् ।

शिरोमार्जन-विधि—उसके बाद अठारह बार मूल मन्त्र का उच्चारण कर शिर पर मार्जन करे । पुन: आचमन करे ॥ ९१ ॥

[समन्त्र आचमनविधि:]

सर्वत्रादौ मैधमुक्त्वा स्वधा शेषे नियोजयेत् ॥ ९२ ॥
विद्यातत्त्वं शिवतत्त्वं शक्तितत्त्वं तथैव च ।
ङेऽन्तमेतत्त्रितत्त्वं हि मध्ये योज्यं वरानने ॥ ९३ ॥

समन्त्रआचमन-विधि—सर्वत्र पहले मेधा बीज कहकर अन्त में 'स्वधा' कहे । हे वरानने! बीच में अलग-अलग विद्यातत्त्व, शिवतत्त्व और शक्तितत्त्व इन तीनों को ङेऽन्त कर पढे । (मन्त्र-स्वरूप—ऐं विद्यातत्त्वाय स्वधा । ऐं शिवतत्त्वाय स्वधा । ऐं शक्तितत्त्वाय स्वधा) ॥ ९२-९३ ॥

[अङ्गन्यास:]

नासापुटादीनि स्वानि तत्तन्मुद्रादिभि: स्पृशेत् ।
ततो दक्षिणहस्तेन कृत्वा वामकरे जलम् ॥ ९४ ॥
अङ्गुलीसन्धिविगलदम्भोबिन्दुभिरल्पकै: ।

अङ्गन्यास—अपने नासापुट आदि का तत्तत् अङ्गुलिमुद्राओं से स्पर्श करे । इसके बाद दाँयें हाथ से बाँयें हाथ में जल लेकर अङ्गुलियों के जोड़ों के बीच से जल की कुछ बूँदे गिराते हुए अपना सिञ्चन करे ॥ ९४-९५ ॥

[समन्त्र आत्मशुद्धि:]

आत्मानं प्रथमं सिञ्चेत् ततश्चापि धरातलम् ॥ ९५ ॥
वक्ष्यमाणैरष्टमन्त्रै: क्रमेणैव वरानने ।
विजया च तथाऽपापा महालक्ष्मीस्तथैव च ॥ ९६ ॥
कालकर्णी सर्वसिद्धिदा भूतावेशिनी तथा ।
आनन्ददा कालरात्रि: ङेऽन्ता सर्वा: प्रकीर्तिता: ॥ ९७ ॥
प्रणवप्रथमा: सर्वा: हृन्मन्त्रान्ता: प्रकीर्तिता: ।
ततोऽवशिष्टमुदकं गृहीत्वा दक्षिणे करे ॥ ९८ ॥

उपनासं तच्च कृत्वा तया नाड्येर(?ड)या पुनः ।
देहान्तर्वर्तिवृजिनमाकृष्याजन्मसञ्चितम् ॥ ९९ ॥
तत्संभ्रमेण प्रक्षाल्य कृष्णवर्णं विचिन्त्य च ।
विरेचितं पिङ्गलया विभाव्यास्त्रेण पार्वति ॥ १०० ॥

समन्त्र-आत्मशुद्धि—पहले अपना सिञ्चन करने के बाद पृथ्वीतल का क्रमशः वक्ष्यमाण आठ मन्त्रों से सिञ्चन करे । विजया, अपापा, महालक्ष्मी, कालकर्णी, सर्वसिद्धिदा, भूतावेशिनी, आनन्ददा और कालरात्रि, ये सब ङेऽन्ता कही गयी हैं । इनके आदि में प्रणव और अन्त में हृन्मन्त्र जोड़ना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं विजयायै नमः । ओं अपापायै नमः । ओं महालक्ष्यै नमः । ओं कालकर्ण्यै नमः । ओं सर्वसिद्धिदायै नमः । ओं भूतावेशिन्यै नमः । ओं आनन्ददायै नमः । ओं कालरात्र्यै नमः) ।

इसके पश्चात् बचे हुए जल को दाँयें हाथ में लेकर नासिका के पास ले जाय । फिर इडा नाडी के द्वारा उस जल को अन्दर ले जाकर देह के अन्दर वर्त्तमान जन्मजन्मान्तर से सञ्चित काले रङ्ग के पाप को धुलकर, हे पार्वति! दाँयीं अर्थात् पिङ्गला नाड़ी से अस्त्रमन्त्र का उच्चारण करते हुए उस जल को बाहर निकाल देने की भावना करनी चाहिये ॥ ९५-१०० ॥

पुनः कल्पितवज्राश्मन्यन्ते मन्त्रमुदीरयेत् ।
प्रक्षिपेत् तदिति प्रोक्तमघमर्षणमीदृशम् ॥ १०१ ॥
नारसिंहात् चण्डघण्टा ङेऽन्ता फट्संयुतापि च ।
चन्दनाक्षतपुष्पादिसहितं सलिलाञ्जलिम् ॥ १०२ ॥
आदायोत्थाय पुरतो मूलमन्त्रं प्रकीर्त्य च ।
सारस्वतं डाकिनीं च प्रलयं तदनन्तरम् ॥ १०३ ॥
फेत्कार्यामन्त्रेण च श्रीगुह्यकाल्यास्ततोऽपि च ।
एष तेऽर्घः शिरोयुक्त इमं मनुमुदीरयेत् ॥ १०४ ॥
सूर्यमण्डलवर्तिन्यै देव्या अर्घं प्रदाय च ।
जपित्वा सप्तधा मूलमुपस्थानं ततश्चरेत् ॥ १०५ ॥

पुनः निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण कर उस जल को कल्पना वाले वज्र पत्थर पर पटक दे । इस प्रकर अघमर्षण कहा गया । मन्त्र नारसिंह बीज ङेऽन्ता 'चण्डघण्टा' और अन्त में फट् ।

(मन्त्र-स्वरूप—क्ष्रौं चण्डघण्टायै फट्) ।

फिर चन्दन, अक्षत, पुष्प आदि से युक्त जलाञ्जलि लेकर खड़े होकर मूल मन्त्र का उच्चारण कर निम्नलिखित मन्त्र कहना चाहिये—सारस्वत डाकिनी प्रलय उसके

बाद फेत्कारी बीजों के बाद 'गुह्यकाली' का सम्बोधन कहकर 'एष ते अर्घ:' कहकर शिरोमन्त्र कहना चाहिये।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं खफ्रें हस्फ्रें हस्खफ्रें श्री गुह्यकालि एष तेऽर्घ: स्वाहा) ।

सूर्यमण्डल में रहने वाली देवी को अर्घ देकर मूलमन्त्र का सात बार जप कर उपस्थान करे ॥ १०१-१०५ ॥

[देव्युपस्थानमन्त्र:]

वक्ष्यमाणेन मनुना करावुत्तोल्य संहतौ ।
तारं मैधं च मायां च लक्ष्मीं कामं वधूमपि ॥ १०६ ॥
शाकिनीं डाकिनीं चैव प्रलयं तदनन्तरम् ।
फेत्कारीं च ततो त्रेतां भासाकूटमनन्तरम् ॥ १०७ ॥
गुह्यकालीं भगवतीमुपतिष्ठ इतीरयेत् ।
गारुडं नारसिंहं च विश्वं किन्नरमेव च ॥ १०८ ॥
अङ्कुशप्रेतसोमांश्च कर्णिकाहारशृङ्खला: ।
कृत्यामनाख्याकूटं च ततोऽस्त्रं हृच्छिरोऽपि च ॥ १०९ ॥
उपस्थायामुना देवि मन्त्रेण द्वादशाञ्जलीन् ।

उपस्थान-मन्त्र—उपस्थान में दोनों हाथ को ऊपर उठाकर मिलाकर रखना चाहिये। मन्त्र—तार, मेघा, माया, लक्ष्मी, काम, वधू, शाकिनी, डाकिनी, प्रलय, फेत्कारी, त्रेता के बाद भासाकूट के पश्चात् 'गुह्यकालीं भगवतीमुपतिष्ठ' कहना चाहिये । फिर गारुड, नारसिंह, विश्व, किन्नर, अङ्कुश, प्रेत, सोम, कर्णिका, हार, शृङ्खला, कृत्या, अनाख्या कूट उसके बाद अस्त्र हृदय शिर ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें खफ्रें हस्फ्रें हस्खफ्रें हस्खफ्रें क्षह्म्लव्य्रऊं गुह्यकालीं भगवतीमुपतिष्ठे । क्रौं क्ष्रौं फ्रौं स्फ्रौं फ्रौं स्हौ: ग्लौं क्ष्रह्रीं ह्क्षम्लैं क्ष्रह्रूं क्षस्हम्लव्य्रऊं फट् नम: स्वाहा) ।

इस मन्त्र से गुह्यकाली का उपस्थान करना चाहिये ॥ १०६-१०९ ॥

[देव्या द्वादशाञ्जलिदानमन्त्र:]

दद्यान् मन्त्रं समुच्चार्य वक्ष्यमाणं क्रमेण हि ॥ ११० ॥
ङेऽन्ता: सर्वा: सप्रणवा: मुखे शेषे नमोऽन्विता: ।
चण्डा कराला च तथा भ्रामरी ललितापि च ॥ १११ ॥
ज्वालिनी च तथाघोरा शूलिनी जयमङ्गला ।
कुरुकुल्ला फेत्कारिणी कालसङ्कर्षिणी तत: ॥ ११२ ॥
सर्वशेषे गुह्यकाली इत्येवं परिनिष्ठिता: ।

देवी के लिये द्वादश अञ्जलिदान का मन्त्र—उपस्थान के बाद वक्ष्यमाण मन्त्र का उच्चारण करते हुये बारह अञ्जलि जल देना चाहिये । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार बनता है—चण्डा, कराला, भ्रामरी, ललिता, ज्वालिनी, अघोरा, शूलिनी, जयमङ्गला, कुरुकुल्ला, फेत्कारिणी, कालसङ्कर्षिणी और सबके अन्त में गुह्यकाली । इस सबका ङेऽन्त उच्चारण करे । पृथक्-पृथक् सबके पहले 'ओं' और अन्त में 'नमः' कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं चण्डायै नमः । ओं करालायै नमः । ओं भ्रामर्यै नमः । ओं ललितायै नमः । ओं ज्वालिन्यै नमः । ओं अघोरायै नमः । ओं शूलिन्यै नमः । ओं जयमङ्गलायै नमः । ओं कुरुकुल्लायै नमः । ओं फेत्कारिण्यै नमः । ओं कालसङ्कर्षिण्यै नमः । ओं गुह्यकाल्यै नमः:) ॥ ११०-११२ ॥

[सन्ध्यावन्दने अङ्गन्यासविधिः]

अङ्गन्यासं ततः कुर्यात् सन्ध्यायां वरवर्णिनि ॥ ११३ ॥
प्रणवं वाग्भवं ङेऽन्तं हृदयं हृन्मनूक्षितम् ।
वेदादिं च त्रपाबीजं शिरसे वह्निवल्लभाम् ॥ ११४ ॥
तारं लक्ष्मीं शिखायै च वषट् तदनु कीर्तयेत् ।
वेदादिं कूर्चबीजं कवचाय च संभ्रमम् ॥ ११५ ॥
वेदादिं च बधूबीजं ततो नेत्रत्रयाय च ।
वौषट् ततोऽपि प्रणवं शाकिनीं तदनन्तरम् ॥ ११६ ॥
ङेऽन्तमस्त्रं स्वमन्त्रोक्तं पठित्वा न्यासमाचरेत् ।
ततो देवीं क्षणं ध्यात्वा यथाशक्ति सुरेश्वरि ॥ ११७ ॥
तत्तन्मन्त्रोदितां तत्तद्गायत्रीं दशधा जपेत् ।
पञ्चाशद् वा शतं वापि फलभूयाय भूयसि ॥ ११८ ॥
ततो जपं समर्प्यानु स्तुत्वा नत्वा विसर्जयेत् ।
चन्दनाम्भोऽक्षतं पुष्पं समादाय विवस्वते ॥ ११९ ॥
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण दद्यादर्घं निभालयन् ।
दण्डं त्रपामथादित्यं समुच्चार्य वरानने ॥ १२० ॥
ङेऽन्तं तद्गोत्रमुक्त्वा श्रीसूर्यभट्टारकाय हि ।
एष तेऽर्घः शिरोमन्त्रः सूर्यायार्घनिवेदने ॥ १२१ ॥

सन्ध्या-वन्दन में अङ्गन्यास विधि—हे वरवर्णिनि! इसके बाद सन्ध्या में अङ्गन्यास करना चाहिये । न्यास के मन्त्र इस प्रकार बनेंगे । प्रणव, वाग्भव, ङेअन्त 'हृदय' और हृन्मन्त्र (हृदय के लिये) । वेदादि, त्रपा बीज और अग्निवल्लभा के पहले 'शिरसे' (शिर के लिये) । उसके बाद तार और लक्ष्मी 'शिखायै वषट्' कहना चाहिये । वेदादि, कूर्च बीज 'कवचाय' फिर सम्भ्रम (= हुं) कहना चाहिये । वेदादि,

वधू बीज फिर 'नेत्रत्रयाय वौषट्' इसके पश्चात् प्रणव, शाकिनी, ङेऽन्त अस्त्र । इस प्रकार अपना-अपना मन्त्र पढ़कर न्यास करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं हृदयाय नमः । ओं ह्रीं शिरसे स्वाहा । ओं श्रीं शिखायै वषट् । ओं हूं कवचाय हुम् । ओं स्त्रीं नेत्रत्रयाय वौषट् । ओं फ्रें अस्त्राय फट्) ।

हे सुरेश्वरि! इसके बाद एक क्षण के लिये देवी का ध्यान कर तत्तत् मन्त्र के लिये बतलायी गयी तत्तत् गायत्री का दश बार जप करे । यह जप पचास अथवा सौ बार भी अधिक फल के लिये जपा जा सकता है इसके पश्चात् जप का देवी को समर्पण कर स्तुति और प्रणाम कर उसका विसर्जन करना चाहिये । उसके बाद चन्दन, जल, अक्षत और पुष्प को पात्र में रखकर सूर्य को देखते हुये वक्ष्यमाण मन्त्र से अर्घ्य दे । हे वरानने! दण्ड, त्रपा, आदित्य बीजों का उच्चारण कर सूर्य के ङेअन्त गोत्र का उच्चारण करने के बाद 'श्रीसूर्यभट्टारकाय एष तेऽर्घ्यः' के बाद शिरो मन्त्र कहना चाहिये ॥ ११३-१२१ ॥

(मन्त्र-स्वरूप—ह्रां ह्रीं सः कश्यपगोत्राय श्रीसूर्यभट्टारकाय एष तेऽर्घः स्वाहा) ।

मूलमन्त्रस्य च ततो ऋष्यादि च षडङ्गकम् ।
विधायाष्टोत्तरशतं मूलमन्त्रं जपेत् प्रिये ॥ १२२ ॥
जले यन्त्रं विलिख्यातो ध्यात्वावाह्यात्र चण्डिकाम्।
उपचारैर्जलमयैः सम्पूज्य वरवर्णिनि ॥ १२३ ॥
मूलमन्त्रं समुच्चार्यामन्तं नाम तथैव च ।
अहं ततस्तर्पयामि नम इत्येवमुच्चरन् ॥ १२४ ॥
देवीमुखेऽमृतधिया वारान् वै पञ्चविंशतिम् ।
अर्पयेदथ मार्तण्डमण्डले तां विचिन्त्य च ॥ १२५ ॥
मूलमन्त्रं समुच्चार्य वक्ष्यमाणं समुच्चरन् ।
पश्यन् सूर्यं पुष्पयुतं प्रक्षिप्य सलिलाञ्जलिम् ॥ १२६ ॥
विसर्जयेद् गुह्यकालीं सूर्यमण्डल एव हि ।
वाग्भवत्रितयं चादौ मायां रावं रुषं स्त्रियम् ॥ १२७ ॥
डाकिनीं कुलिकं चापि भोगं सृष्टिं गदामपि ।
उद्यदादित्यवर्त्तिन्यै ततः परमुदीरयेत् ॥ १२८ ॥
शिवचैतन्यमय्यै च प्रकाशेति पदं ततः ।
तस्यानु शक्तिसहितमार्तण्डपदमीरयेत् ॥ १२९ ॥
ततश्च भैरवाधिष्ठात्र्यै शब्दं परिकीर्तयेत् ।
श्रीगुह्यकाली देवी च ङेऽन्ता हृच्छिरसी ततः ॥ १३० ॥
पञ्चपञ्चाशदर्णाढ्यो मन्त्रस्तव मयोदितः ।

एवं सन्ध्याविधिः कृत्स्नः कर्तव्यः कमलानने ॥ १३१ ॥

हे प्रिये! इसके पश्चात् मूल मन्त्र का ऋषि आदि वाला षडङ्ग न्यास कर मूल मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करे । उसके बाद जल में यन्त्र का उल्लेख कर चण्डिका का ध्यान और आवाहन कर हे वरवर्णिनि! जलमय उपचारों से उनकी पूजाकर मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुये अपना नाम लेकर 'अहं तर्पयामि नम:' ऐसा कहना चाहिये । अमृत की भावना से इस तर्पणीय जल को पचीस बार देवी के मुख में डाले । तत्पश्चात् सूर्यमण्डल में उनका ध्यान कर मूल मन्त्र का उच्चारण करने के बाद वक्ष्यमाण मन्त्र का उच्चारण करते हुये सूर्य को देखने के साथ-साथ पुष्पयुक्त जलाञ्जलि फेंककर गुह्यकाली का सूर्यमण्डल में ही विसर्जन कर दे । मन्त्र इस प्रकार है—पहले तीन वाग्भव फिर माया, राव, क्रोध, स्त्री, डाकिनी, कुलिक, भोग, सृष्टि, गदा बीजों के बाद 'उद्यदादित्यवर्त्तिन्यै' कहना चाहिये । 'शिवचैतन्यमय्यै' तथा 'प्रकाश' पद के बाद 'शक्तिसहित मार्त्तण्ड' कहना चाहिये । इसके पश्चात् 'भैरवाधिष्ठात्र्यै' शब्द कहना चाहिये । तत्पश्चात् ङेऽन्ता 'श्रीगुह्यकालीदेवी' हृदय और शिरोमन्त्र कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं ऐं ऐं ह्लीं फ्रें हूं स्त्रीं ख्फ्रें स्हौः हस्ख्फ्रीं हस्ख्फ्रूं क्ष्रस्त्रैं उद्यदादित्यवर्त्तिन्यै शिवचैतन्यमय्यै प्रकाशशक्तिसहितमार्तण्डभैरवाधिष्ठात्र्यै श्रीगुह्यकालीदेव्यै नमः स्वाहा) ।

पचपन वर्णों वाला यह मन्त्र मैंने तुमको बतलाया । हे कमलानने! इस प्रकार सम्पूर्ण सन्ध्याविधि करनी चाहिये ॥ १२२-१३१ ॥

[गुह्यकालीपूजोपक्रम:]

ततो देवीं स्मरंश्चित्ते किञ्चिदुन्मीलितेक्षणः ।
वर्त्मेतरन्नेक्षमाणः पूजामण्डपमाविशेत् ॥ १३२ ॥
ततः प्रक्षालितपदः शुचिराचान्त एव च ।
उपविश्यासने योग्ये पानीयमभिमन्त्रयेत् ॥ १३३ ॥

गुह्यकाली पूजा का उपक्रम—इसके बाद देवी का मन में स्मरण करते हुये साधक अधखुली आँखों वाला होकर अन्य रास्तों को न देखता हुआ पूजा-मण्डप में प्रवेश करे । प्रवेश के बाद पैर धोकर पवित्र हुआ आचमन कर योग्य आसन पर बैठकर पानीय का अभिमन्त्रण करे ॥ १३२-१३३ ॥

[पादप्रक्षालनजलाभिमन्त्रणविधि:]

तारं गन्धोदके कूर्चफट्मन्त्रेण वरानने ।
समुच्चरन्निमं मन्त्रं पुनः प्रक्षालयेत् पदे ॥ १३४ ॥

पुनः पादप्रक्षालन जल के अभिमन्त्रण की विधि—हे वरानने! तार, गन्ध, उदक, कूर्च और फट् मन्त्र—इस मन्त्र का उच्चारण करते हुये पुनः अपना पैर धोये । (मन्त्र—ओं गन्धोदके हूं फट्) ॥ १३४ ॥

[पादप्रक्षालनमनुः]

वेदादिमायाकामांश्च शिरसा सह संयुतान् ।
इति प्रक्षाल्य चरणे मनुमन्यं समुच्चरन् ॥ १३५ ॥
पूर्वाभिमन्त्रितजलैराचामेत् कुशवत्करः ।

पादप्रक्षालन-मन्त्र—वेदादि, माया, काम, शिरोमन्त्र से चरणों को धोकर साधक अन्य मन्त्र का उच्चारण करते हुए हाथ में कुश लेकर पूर्व अभिमन्त्रित जल से आचमन करे । मन्त्रस्वरूप—ऐं ह्रीं क्लीं स्वाहा ॥ १३५-१३६ ॥

[आचमनमन्त्रः]

वेदादिमायाशाकिन्यः कामकूर्चसृणिस्त्रियः ॥ १३६ ॥
ततस्त्रितत्त्वपदतो ज्ञानरूपिणि चोद्धरेत् ।
मानसं वाचिकं चैव कायिकं निर्विभक्तिकम् ॥ १३७ ॥
पदत्रयं समाभाष्य वृजिनानीति कीर्तयेत् ।
ततः संशमयाशेषविकल्पानित्यपि स्मरेत् ॥ १३८ ॥
ससन्ध्यपनयेत्युक्त्वा वाग्भवं कामलं तथा ।
पाशं सधनदं प्रोच्य सृणिं च शिरसा सह ॥ १३९ ॥
अयमाचमने मन्त्रः समुद्धृत्य प्रकाशितः ।

आचमन-मन्त्र—वेदादि, माया, शाकिनी, काम, कूर्च, सृणि, स्त्री, बीजों के बाद 'त्रितत्त्व' पद उसके पश्चात् 'ज्ञानरूपिणि' उद्धृत करना चाहिये । 'मानसं वाचिकं कायिकं' इन तीनों पदों का विभक्तिरहित उच्चारण करे । फिर 'वृजिनानि' कहना चाहिये । इसके बाद 'संशमय अशेषविकल्पान्' का स्मरण करे । सन्धिसहित 'अपनय' कहकर वाग्भव, कमला, पाश, धनद को कहने के बाद सृणि और शिरोबीज कहे ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ह्रीं फ्रें क्लीं हूं क्रों स्त्रीं त्रितत्त्वज्ञानरूपिणि मानसवाचिककायिकवृजिनानि संशमयाशेषविकल्पान् अपनय ऐं श्रीं आं क्ष्रूं क्रों स्वाहा) ।

आचमन के विषय में यह मन्त्र उद्धृत कर प्रकाशित किया गया ॥ १३६-१३९॥

[शिखाबन्धनमन्त्रः]

ततो मैधामृतं शक्तिं बीजत्रयमुदाहरेत् ॥ १४० ॥
चण्डचण्डेतिपदतो महाचण्डपदं पुनः ।

चण्डोग्रकापालिनि मां प्रोच्य रक्षद्वयं वदेत् ॥ १४१ ॥
ततः सर्वप्रमादेभ्यो युग्मं युग्मं रुडस्त्रयोः ।
शेषेऽग्निकान्तेत्येतेन शिखाबन्धनमाचरेत् ॥ १४२ ॥

शिखाबन्धन-मन्त्र—इसके बाद मेधा, अमृत, शक्ति इन तीन बीजों को उद्धृत करना चाहिये । उसके पश्चात् 'चण्ड चण्ड' इस पद के बाद 'महाचण्ड' पद फिर 'चण्डोग्रकापालिनी मां' कहकर दो बार 'रक्ष' कहना चाहिये । इसके बाद 'सर्वप्रमादेभ्य:' के पश्चात् दो-दो क्रोध और अस्त्र बीजों को कहना चाहिये । अन्त में 'अग्निकान्ता' । इस मन्त्र से शिखाबन्धन करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं ग्लूं ब्लूं चण्ड चण्ड महाचण्ड चण्डोग्रकापालिनि मां रक्ष रक्ष सर्वप्रमादेभ्य हुं हुं फट् फट् स्वाहा) ॥ १४०-१४२ ॥

[द्वारदेवतान्यास:]

गत्वा द्वारं ततस्तारं श्वसन् ता द्वारदेवता: ।
नमः शेषे समाभाष्य सम्पूज्य द्वारदेवता: ॥ १४३ ॥

द्वारदेवतान्यास—इसके बाद द्वार पर जाकर श्वास लेते हुए तार के बाद उन देवताओं के नाम का चतुर्थ्यन्त कहकर अन्त में 'नम:' कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं अमुकद्वारदेवतायै नम:) ।

इसके पश्चात् उनकी पूजा करनी चाहिये ॥ १४३ ॥

[स्तोत्रपाठेन पूजासाक्षित्वाभिधानम्]

पूजागृहं सम्प्रविश्य दक्षपादपुरस्सरम् ।
कृताञ्जलि: श्लोकयुगं पठन् देवि समाहित: ॥ १४४ ॥
ओं देवि मे प्राकृतं चित्तं पापाक्रान्तमभूत्सदा ।
तन्निस्सारय चित्तात् त्वं पापं फट् फट् च ते नमः ॥ १४५ ॥
सूर्य: सोमो यमः कालो महाभूतानि पञ्च च ।
एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नव साक्षिणः ॥ १४६ ॥
एवं पठित्वा क्रोधास्त्रे पुनरुच्चार्य सुन्दरि ।

स्तोत्र पाठ के द्वारा पूजा-साक्षित्व का कथन—हे देवि! दाँये पैर को आगे रखकर पूजागृह में प्रवेश करने के बाद हाथ जोड़कर समाहित चित्तवाला होकर साधक को निम्नलिखित दो श्लोकों का पाठ करना चाहिये—'ओं देवि............ साक्षिण:' ॥

(हे देवि! मेरा चित्त सदा पाप से आक्रान्त रहा । तुम उस पाप को चित्त से निकाल दो । तुमको नमस्कार है । सूर्य, सोम, यम, काल और पञ्च महाभूत—ये

इस संसार में शुभ-अशुभ कर्म के साक्षी हैं ।) हे सुन्दरि! ऐसा पढ़कर पुन: क्रोध और अस्त्र का उच्चारण करना चाहिये ॥ १४४-१४६ ॥

[पूजोपक्रमकालिककर्तव्यतानिर्देश:]

पार्श्वद्वयं तथोर्ध्वाध: क्रोधदृष्ट्यावलोक्य च ॥ १४७ ॥
दक्षपार्ष्णिसमाघातैस्त्रिभिर्विघ्नान् धरोद्भवान् ।
त्रिभिस्तालैरान्तरिक्षानस्त्रमन्त्रावलोकनै: ॥ १४८ ॥
दिव्यांस्तथा समुच्चार्य नि:श्रेणिमस्त्रमुच्चरन् ।
पूजावेदिं सम्प्रविश्य पूजार्हं वस्तु दक्षिणे ॥ १४९ ॥
संस्थाप्याध्वरुडस्त्राणि स्मृत्वा वस्तु विलोक्य च ।
फलीं दीपशिखां स्पृष्ट्वा(?)नृसिंहं बीजमुच्चरन्॥ १५० ॥
अङ्गुल्या वारि संस्पृश्य पाद्यमप्यत्र संस्पृशेत् ।
ततो नानाविधान् मन्त्रप्रयोगान् समुदाचरेत् ॥ १५१ ॥

पूजोपक्रमकालिक कर्तव्यता का निर्देश—दोनों पार्श्वों तथा ऊपर नीचे क्रोधपूर्ण दृष्टि से अवलोकन कर दाँयीं एड़ी के तीन आघातों से पृथ्वी में उत्पन्न होने वाले तीन ताल से अन्तरिक्ष में होने वाले तथा अस्त्र मन्त्रों से स्वर्ग में स्थित विघ्नों को दूर भगाये । पुन: नि:श्रेणि (= अं) और अस्त्र (= फट्) का उच्चारण करते हुये पूजा वेदी के पास जाय । पूजा की वस्तुओं को वेदी के दक्षिण रखकर अध्व (= हां) क्रोध (= हूं) और अस्त्र बीज का स्मरण कर वस्तुओं को देखे । फली (= रं) दीपशिखा (= रक्ष्रौं) को कहकर नृसिंह बीज (= क्ष्रौं) का उच्चारण करते हुए अङ्गुली के द्वारा जल स्पर्श करे । यहाँ पाद्य का भी स्पर्श करना चाहिये । इसके पश्चात् अनेक प्रकार के मन्त्रों का प्रयोग करे ॥ १४७-१५१ ॥

[अधिष्ठानस्य ऋष्यादिनिरूपणम्]

तत्राप्यादावधिष्ठाने ऋष्यादिं त्वं निशामय ।
ओमस्य श्रीदेव्यधिष्ठानस्यात्रेय ऋषिर्मत: ॥ १५२ ॥
उक्तं छन्दो जगत्याख्यं सर्वे देवाश्च देवता: ।
बीजं मैधं त्रपाशक्तिरङ्कुशं कीलकं स्मृतम् ॥ १५३ ॥
विनियोगोऽस्य कथितो देव्यधिष्ठान ईश्वरि ।
इति संस्मृत्य मन्त्रेण वक्ष्यमाणेन साधक: ॥ १५४ ॥
बद्धाञ्जलिर्भक्तिपूर्वं देव्यधिष्ठानमाचरेत् ।

अधिष्ठान के ऋषि आदि—उसमें भी तुम पहले अधिष्ठान में ऋषि आदि को सुनो । इस देव्यधिष्ठान के ऋषि आत्रेय कहे गये हैं । छन्द जगती, देवता सभी देवगण, ऐं बीज, ह्रीं शक्ति और अङ्कुश (= क्रों) कीलक कहा गया है ।

हे ईश्वरि! इसका विनियोग देवी के अधिष्ठान में बतलाया गया है । साधक को वक्ष्यमाण मन्त्र के द्वारा ऐसा स्मरण कर अपने हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक देवी का अधिष्ठान करना चाहिए ॥ १५२-१५४ ॥

[देव्यधिष्ठानमन्त्रः]

तारं मेधं तथा पाशं मायां लक्ष्मीं स्मरं स्त्रियम् ॥ १५५ ॥
कूर्चं रावं डाकिनीं च फेत्कारीं प्रलयादनु ।
बीजानि द्वादश प्रोच्य एह्येहि भगवत्यपि ॥ १५६ ॥
सम्बोधनतया गुह्यकालीं प्रविश चेत्यपि ।
पूजालयं कल्पयानु सान्निध्यं सन्निवेशय ॥ १५७ ॥
दृष्टिमर्चोपकरणे मां ततो रक्ष युग्मकम् ।
ततः सर्वोपद्रवेभ्यस्त्वयि शब्दं समालिखेत् ॥ १५८ ॥
ससन्ध्यधिष्ठितायामहं पूजामारभेऽपि च ।
रावः प्रेताङ्कुशौ तार्क्ष्यं फट् स्वाहा तदनन्तरम् ॥ १५९ ॥
कारयेदिति मन्त्रेण देव्यधिष्ठानमीश्वरि ।
ततो बद्धाञ्जलिः श्लोकपञ्चकं समुदाहरेत् ॥ १६० ॥

देव्याधिष्ठान का मन्त्र—तार, मेधा, पाश, माया, लक्ष्मी, काम, स्त्री, कूर्च, राव, डाकिनी, फेत्कारी और प्रलय के बारह बीजों को कहकर 'एह्येहि भगवति' के पश्चात् 'गुह्यकाली' का सम्बोधन फिर 'प्रविश' इसे भी कहना चाहिये । 'पूजालयं कल्पय' के बाद 'सान्निध्यं सन्निवेशय दृष्टिं मां' के पश्चात् 'रक्ष' को दो बार कहे । फिर 'सर्वोपद्रवेभ्यस्त्वयि' शब्द का उल्लेख करे । फिर सन्धि के सहित 'अधिष्ठितायामहं पूजामारभे' के पश्चात् राव, प्रेत, अङ्कुश, तार्क्ष्य 'फट् स्वाहा' कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं आं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं फ्रें ख्फ्रें ह्स्ख्फ्रें ह्स्फ्रें एह्येहि भगवति गुह्यकालि प्रविश पूजालयं कल्पय सान्निध्यं सन्निवेशय दृष्टिं मां रक्ष रक्ष सर्वोपद्रवेभ्यस्त्वय्याधिष्ठितायामहं पूजामारभे फ्रें स्हौः क्रों क्रौं फट् स्वाहा) ।

हे ईश्वरि! इस मन्त्र से देवी का अधिष्ठान कराना चाहिये । इसके बाद हाथ जोड़कर निम्नलिखित पाँच श्लोकों ('गुह्यकालि........................त्वत्कृपावशात्') को उद्धृत करना चाहिये ॥ १५५-१६० ॥

गुह्यकालि परेशानि सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि ।
अत्राधिष्ठानमाधेहि परिवारगणैः सह ॥ १६१ ॥
यथाशक्ति यथालाभं त्वदर्थमुपकल्पिते ।
दृष्टिं निवेशयेशानि पूजोपकरणेऽखिले ॥ १६२ ॥
जलेऽनुलेपने पुष्पे धूपे दीपे बलौ तथा ।

नैवेद्येऽपि च ताम्बूले राजोपकरणेऽपि च ॥ १६३ ॥
अधिष्ठितायां त्वय्यम्ब विघ्नाः नंक्ष्यन्ति सर्वशः ।
भूतानि विद्रविष्यन्ति मम रक्षा भविष्यति ॥ १६४ ॥
मनोरथाश्च मे सर्वे सेत्स्यन्ति त्वत्प्रसादतः ।
पूजा च सफला देवि भवित्री त्वत्कृपावशात् ॥ १६५ ॥
कृताञ्जलिः पठेदेवं शुद्धं वचनपञ्चकम् ।
ततस्तु पूजासामग्रीं शोधयेत् सकलां प्रिये ॥ १६६ ॥
भिन्नैस्तत्तन्मन्त्रपाठैः प्लवस्पर्शावलोकनैः ।
क्वचित् स्यात् वैदिको मन्त्रः
क्वचिच्चापि हि तान्त्रिकः ॥ १६७ ॥
उभयं क्वचिदेव स्यान् मद्वाक्यात्तस्य निर्णयः ।
सर्वेषामुपचाराणां शोधनाच्छुद्धिरीरिता ॥ १६८ ॥
शुद्धं देव्यै प्रदातव्यं नान्यथा वै कदाचन ।

हे गुह्यकालि! हे परेशानि! हे सृष्टिस्थितिसंहारकारिणि! यहाँ परिवारगणों के साथ अधिष्ठान का आधार कीजिये । यथाशक्ति और जितना मिल सका आपके लिये उपकल्पित उस सम्पूर्ण पूजा के उपचार पर दृष्टि डालिये । हे ईशानि! जल, अनुलेपन, पुष्प, धूप, दीप, बलि, नैवेद्य, ताम्बूल एवं राजोपचार पर भी दृष्टि डालिये । हे अम्ब! आपके अधिष्ठित होने पर विघ्न सब प्रकार से नष्ट हो जायेंगे । भूतगण भाग जायेंगे। मेरी रक्षा होगी । आपकी कृपा से मेरे समस्त मनोरथ सिद्ध होंगे और हे देवि! आपकी कृपा से मेरी पूजा सफल होगी । साधक हाथ जोड़कर इन पाँच शुद्ध वचनों का पाठ करे । हे प्रिये! उसके बाद सकल पूजा-सामग्री का शोधन करे । यह शोधन भिन्न-भिन्न तत्तत् मन्त्र के पाठ, उत्प्लवन, स्पर्श, अवलोकन से सम्पन्न होता है। कहीं वैदिक मन्त्र का कहीं तान्त्रिक मन्त्र का और कहीं दोनों प्रकार के मन्त्रों का प्रयोग होता है । इसका निर्णय मेरे वचन से होता है । सब उपचारों की शोधन के द्वारा शुद्धि कही गयी । देवी के लिये शुद्ध ही उपचार देना चाहिये अन्यथा कभी नहीं ॥ १६१-१६८ ॥

[पूजोपचारप्रकाराभिधानम्]

ते च षोडश विज्ञेया दश वा पञ्च वा पुनः ॥ १६९ ॥

पूजोपचार के प्रकार—पूजा के उपचार सोलह, दश अथवा पाँच बतलाये गये हैं ॥ १६९ ॥

[पूजायां षोडशोपचारस्य प्राधान्यम्]

परोऽपरोऽवरो ज्ञेय आद्यो मुख्यतमः स्मृतः ।
अन्येषामपि तत्रान्तर्भावो भवति भामिनि ॥ १७० ॥

षोडशोपचार की प्रधानता—पर अपर और अवर क्रम से यह उपकरण तीन प्रकार का होता है, उसमें प्रथम मुख्यतम है । हे भामिनि! अन्यों का भी उसमें अन्तर्भाव हो जाता है ॥ १७० ॥

[षोडशोपचारविवरणम्]

आसनं पाद्यमर्घ्यं च तत आचमनीयकम् ।
मधुपर्कं स्नानजलं वस्त्रं भूषणमेव च ॥ १७१ ॥
गन्धः पुष्पं धूपदीपौ नेत्राञ्जनमतः परम् ।
नैवेद्याचमनीये च प्रदक्षिणनमस्कृतिः ॥ १७२ ॥
एते षोडश निर्दिष्टाः उपचाराः शिवार्चने ।
एभिः षोडशभिः पूजा यदि कर्तुं न शक्यते ॥ १७३ ॥
उपचारांस्तदा सम्यग् दशैतान् वितरेत् सदा ।

षोडशोपचार का विवरण—आसन, पाद्य, अर्घ, आचमनीय, मधुपर्क, जलस्नान, वस्त्र, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नेत्राञ्जन, नैवेद्य, आचमनीय, प्रदक्षिणा और नमस्कार। शिवार्चन में ये सोलह उपचार निर्दिष्ट हैं । यदि इन सोलह उपचारों से पूजा करनी सम्भव न हो तब इन दश उपचारों का वितरण करना चाहिये ॥ १७१-१७३ ॥

[दशोपचारविवरणम्]

पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयं चत्वार्यनुक्रमात् ॥ १७४ ॥
गन्धः पुष्पं च धूपं च दीपं नैवेद्यमेव च ।
पुनराचमनीयं च दशैतान् सम्प्रचक्षते ॥ १७५ ॥

दशोपचार का विवरण—पाद्य, अर्घ, आचमनीय, स्नानीय ये क्रम से चार गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और पुनः आचमनीय—ये सब दश उपचार कहे जाते हैं ॥ १७४-१७५ ॥

[पञ्चोपचारविवरणम्]

पूर्वोदितानि चत्वारि चन्दनं पञ्च ते स्मृताः ।
अभावे गन्धपुष्पाभ्यां तदभावे तु भक्तितः ॥ १७६ ॥

पञ्चोपचार का विवरण—पूर्वोक्त चार और चन्दन ये पाँच माने गये हैं । यदि ये भी न मिले तो गन्ध और पुष्प से और उसके भी न मिलने पर भक्ति से पूजा करनी चाहिये ॥ १७६ ॥

[षोडशोपचारनामानि]

द्वात्रिंशदुपचारांस्तु राज्ञामाहुर्वरानने ।
आवाहनं स्वागतं च सन्निधापनमेव च ॥ १७७ ॥

संस्थापनं सन्निरोधकरणं तदनन्तरम् ।
सम्मुखीकरणं चापि सिन्दूरालक्तके तथा ॥ १७८ ॥
ताम्बूलं पादुके चापि छत्रं व्यजनचामरौ ।
आरात्रिकं पुष्पमालां ततश्चात्मनिवेदनम् ॥ १७९ ॥
एवं यावद् यस्य शक्यं देयं तावद्धि तेन हि ।
अतः परं तु सामग्र्याः ऋष्यादिं विद्धि शोधने ॥ १८० ॥

षोडशोपचारों के नाम—हे वरानने! बत्तीस उपचार राजाओं के लिये कहे गये हैं । आवाहन, स्वागत, सन्निधापन, संस्थापन, सन्निरोधकरण, सम्मुखीकरण, सिन्दूर, अलक्तक, ताम्बूल, दो पादुकायें, छत्र, व्यजन, चामर, आरती, पुष्पमाला, आत्मनिवेदन—ये षोडश उपचार होते हैं । जितना जिसके लिये सम्भव हो उसके द्वारा उतना ही दिया जाना चाहिये । इसके पश्चात् शोधनकार्य में सामग्री के ऋषि आदि को जानो ॥ १७७-१८० ॥

[सामग्र्याः ऋष्याद्यभिधानम्]

ओमस्य श्रीगुह्यकालीपूजासम्भारवस्तुनः ।
जमदग्निऋषिः प्रोक्तः प्रतिष्ठाच्छन्द उच्यते ॥ १८१ ॥
देवता च तथोत्तानाङ्गिरा बीजं फली मता ।
शक्तिः कूर्चं भौवनेशी कीलकं परिपठ्यते ॥ १८२ ॥
पूजासम्भारसामग्रीशोधने विनियोगता ।
अतः परं तु प्रत्येकशोधनं त्वं निशामय ॥ १८३ ॥

सामग्री के ऋषि आदि—इस गुह्यकाली की पूजासामग्री के ऋषि जमदग्नि बतलाये गये हैं । छन्द प्रतिष्ठा कहा जाता है । देवता उत्तानाङ्गिरा और बीज फली कही गयी है । शक्ति कूर्च और कीलक भुवनेश्वरी कही गयी है । इसका विनियोग पूजासामग्री के शोधन में होता है, इसके बाद अब तुम एक-एक सामग्री का संशोधन सुनो ॥ १८१-१८३ ॥

[भूमिशुद्धिमन्त्रः]

माया लक्ष्मीर्योगिनी च शाकिनी मैधमेव च ।
रक्षद्वन्द्वं च कूर्चास्त्रशिरांसि तदनन्तरम् ॥ १८४ ॥
भूमिशुद्धिरियं प्रोक्ता ....

भूमि-शोधन का मन्त्र—माया, लक्ष्मी, योगिनी, शाकिनी, मेधा बीज इसके बाद 'रक्ष' दो बार फिर कूर्च, अस्त्र और शिर—यह भूमि शुद्धि विद्या कही गयी है।

(मन्त्र-स्वरूप—ह्रीं श्रीं छ्रीं फ्रें ऐं रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा) ॥ १८४ ॥

[भूम्यभिमन्त्रणविधिः]

.... शृणु भूम्यभिमन्त्रणम् ।
प्रणवं कामबीजं च लक्ष्मीं वाराहि चेत्यपि ॥ १८५ ॥
पवित्रा भव भूमे च कूर्चास्त्रानलवल्लभा ।
धरणीमभिमन्त्र्येत्थं स्वासनं शोधयेत् ततः ॥ १८६ ॥

भूमिअभिमन्त्रण-विधि—अब भूमि की अभिमन्त्रण-विधि को सुनो । प्रणव, कामबीज, लक्ष्मी के बाद 'वाराहि! पवित्रा भव भूमे!' के बाद कूर्च, अस्त्र और अग्निवल्लभा यह धरणी-अभिमन्त्रण का मन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं क्लीं श्रीं वाराहि पवित्रा भव भूमे हूं फट् स्वाहा) ।

इसके बाद अपना आसन शुद्ध करे ॥ १८५-१८६ ॥

[स्वासनशुद्धिमन्त्रः]

तारसारस्वतावाद्यौ मायारावरमास्त्रियः ।
कामपीठायानु कामसम्भवाय प्रकीर्तयेत् ॥ १८७ ॥
कामार्हते कूर्चमस्त्रं हृच्च स्वासनशोधनम् ।

स्वासनशोधन मन्त्र—पहले तार, सारस्वत फिर माया, राव, रमा, स्त्री के पश्चात् 'कामपीठाय कामसम्भवाय' कहना चाहिये । 'कामार्हते' के बाद कूर्च, अस्त्र और हृदय यह स्वासनशोधन मन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं ह्लीं फ्रें श्रीं स्त्रीं कामपीठाय कामसम्भवाय कामार्हते हूं फट् नमः) ॥ १८७-१८८ ॥

[सर्वोपकरणशुद्धिमन्त्रः]

तत्रोपविश्य तदनु सर्वमन्यच्च शोधयेत् ॥ १८८ ॥
पाशं सबिन्दुसलिलं मैधं प्रणवमेव च ।
काममायारमाकूर्चरावामृतनृसिंहकान् ॥ १८९ ॥
उक्त्वा पवित्रोदकाय फट्द्वयं नम एव च ।
पूजायाः साधयित्वेत्थं कायवाक्चित्तशोधनम् ॥ १९० ॥
समाचरेद् येन सर्वं शोधितं स्यात् सुरेश्वरि ।

सर्वोपकरण शुद्धि मन्त्र—उसके ऊपर बैठकर अन्य सब वस्तुओं का शोधन करना चहिये । पाश, बिन्दु सहित सलिल, मेधा, प्रणव, काम, माया, रमा, कूर्च, राव, अमृत, नृसिंह को कहकर 'पवित्रोदकाय' 'फट्' को दो बार 'नमः' कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—आं ऐं ओं क्लीं ह्लीं श्रीं हूं फ्रें ग्लूं क्ष्रौं पवित्रोदकाय फट् फट् नमः) ।

हे सुरेश्वरि! इस प्रकार पूजा का शोधन सिद्धकर मन, वाणी और शरीर का शोधन करना चाहिये । जिससे सबका शोधन हो जाता है ॥ १८८-१९० ॥

[कायवाक्चित्तशोधनमन्त्रः]

संस्पृश्य हृदयं वक्ष्यमाणमन्त्रमुदाहरेत् ॥ १९१ ॥
तारमैधौ पाशकले मायामृतरमारुषः ।
भैरवीक्षेत्रपप्रेतान् शाकिनीं डाकिनीमपि ॥ १९२ ॥
कायं वाचं चित्तमुक्त्वा मे शोधय च सन्धिमत् ।
अशेषवृजिनान्युक्त्वा तथैवापनयेत्यपि ॥ १९३ ॥
स्वाहा शेषे चतुस्त्रिंशद्वर्णाढ्यो मनुरीरितः ।
सर्वेषामुपचाराणां शोधनं वच्मि साम्प्रतम् ॥ १९४ ॥
विहितं च निषिद्धं च सुकरं दुष्करं तथा ।
केषाञ्चित् शोधनं नास्ति केषाञ्चिदपि तन्मतम् ॥ १९५ ॥

कायवाक्चित्तशोधन मन्त्र—हृदय का स्पर्शकर वक्ष्यमाण मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये । तार, मेधा, पाश, कला, माया, अमृत, रमा, क्रोध, भैरवी, क्षेत्रपाल, प्रेत, शाकिनी, डाकिनी कहकर 'कायं वाचं चित्तं मे शोधय' कहकर सन्धिसहित 'अशेषवृजिनानि' कहकर 'अपनय' और अन्त में 'स्वाहा' कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं आं ईं ह्रीं ग्लूं श्रीं हूं सौः क्षौं स्हौः फ्रें ख्फ्रें कायं वाचं चित्तं मे शोधयाशेषवृजिनान्यपनय स्वाहा) ।

यह मन्त्र चौंतीस वर्णों वाला कहा गया है । अब मैं समस्त उपचारों का शोधन कह रहा हूँ । कुछ शोधन विहित हैं, कुछ निषिद्ध, कुछ सुकर कुछ दुष्कर, कुछ का शोधन नहीं हैं और कुछ का कहा गया है ॥ १९१-१९५ ॥

[आसनप्रकाराभिधानम्]

आसनं प्रथमं श्रेष्ठं काञ्चनं राजतं तथा ।
वास्त्रं वा चार्मणं कौशं दारवं पौष्पमेव च ॥ १९६ ॥
पूर्वं पूर्वं भवेच्छ्रेष्ठमधमं चोत्तरोत्तरम् ।
दक्षे दद्यादासनं च भग्नं नैव प्रदीयते ॥ १९७ ॥

आसन के प्रकार—सबसे श्रेष्ठ आसन सोना अथवा चाँदी का होता है । वस्त्र, चर्म, कुश, काष्ठ और पुष्प का भी आसन होता है । पूर्व-पूर्व आसन श्रेष्ठ हैं, उत्तरोत्तर अधम । आसन को देवता के दाँयें रखना चाहिये । टूटा हुआ आसन नहीं देना चाहिये ॥ १९६-१९७ ॥

[सकलसाधारण आसनशुद्धिमन्त्रः]

तारप्रासादशाकिन्यो डाकिनीचण्डविद्युतः ।
अशेषमासनं प्रोच्य पावयास्त्राग्निवल्लभा ॥ १९८ ॥

सकलसाधारण आसन शुद्धि मन्त्र—तार प्रासाद शाकिनी डाकिनी चण्ड विद्युत् कहकर 'अशेषमासनं' कहने के बाद 'पावय' फिर अस्त्र और अग्निवल्लभा कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं आं फ्रें ख्फ्रें फ्रों ब्लौं अशेषमासनं पावय फट् स्वाहा) ॥१९८॥

[पाद्यादीनां शुद्धिविधिः]

पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयानां जलशोधनात् ।
शुद्धिरुक्ता वरारोहे तोयमूलान्यमूनि हि ॥ १९९ ॥

पाद्य आदि की शुद्धि—हे वरारोहे! पाद्य, अर्घ्य, आचमन और स्नानीय की शुद्धि जल के शोधन से हो जाती है; क्योंकि ये सब पानी से ही होते हैं ॥ १९९॥

[जलशुद्धिमन्त्रः]

तथाप्यस्ति विशेषोऽत्र तमपि व्याहरामि ते ।
तारो ङेऽन्तं हि वरुणदैवतं जलमप्युत ॥ २०० ॥
कूर्चमस्त्रं कुशाग्रेण कुसुमेनाभिमन्त्र्य वा ।
आलोडयेत् तत् पाद्यं स्यादतो द्रव्यं निशामय ॥ २०१ ॥
जलश्यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्ताभिरुच्यते ।

जलशुद्धि-मन्त्र—तथापि यहाँ कुछ विशेष है, वह भी मैं तुमको बतला रहा हूँ। तार ङेऽन्त 'वरुणदैवत' फिर 'जलं' के बाद कूर्च अस्त्र को कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं वरुणदैवताय जलं हूं फट्) ।

इसका उच्चारण करते हुये कुशाग्र अथवा पुष्प से अभिमन्त्रण कर आलोडन करना चाहिये । यह पाद्य होता है । अब इसके द्रव्य को सुनो । जल साँवा दूर्वा कमल और विष्णुक्रान्ता (= अपराजिता/खेक्शा) ये पाद्य के द्रव्य हैं ॥२००-२०२॥

[अर्घशुद्धिविध्यभिधानम्]

अर्घतोयं च पूर्वोक्तमन्त्रेणैव तु शोधयेत् ॥ २०२ ॥
तत्तद् द्रव्यं प्रदातव्यं दानमन्त्रं निशामय ।
गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपैः ॥ २०३ ॥
सदूर्वैर्जगदम्बाया अर्घ्यमुत्तममुच्यते ।

अर्घशोधन-विधि—अर्घ के जल का शोधन पूर्वोक्त मन्त्र से ही करना चाहिये। अर्घ में तत्तद् द्रव्य देना चाहिये । अब दान का मन्त्र सुनो । गन्ध, पुष्प,

अक्षत, यव, कुशाग्र, तिल, सरसों और दूर्वा—यही जगदम्बा का उत्तम अर्घ कहा जाता है ॥ २०२-२०४ ॥

[अर्घदानमन्त्रः]

तच्च मूर्ध्नि प्रदातव्यं स्वाहामन्त्रेण साधकैः ॥ २०४ ॥

अर्घदान-मन्त्र—यह अर्घ देवी के शिर पर साधकों को 'स्वाहा' मन्त्र के साथ देना चाहिये ॥ २०४ ॥

[आचमनीयशुद्धिविध्यभिधानम्]

तथैवाचमनीयस्य जलं संशोध्य पूर्ववत् ।
जातीलवङ्गकङ्कोलघनसारैर्युतं प्रिये ॥ २०५ ॥

आचमनीय शोधन-विधि—उसी प्रकार आचमनीय जल का पूर्व की भाँति शोधन कर देना चाहिये । हे प्रिये! यह जल जायफल, लवङ्ग, कङ्कोल, कपूर से युक्त होता है ॥ २०५ ॥

[आचमनीयदानमन्त्रः]

स्वधामन्त्रेण वदने दद्यादाचमनीयकम् ।

आचमनीय दान-मन्त्र—स्वधा मन्त्र के साथ आचमनीय को मुख में देना चाहिये ॥ २०६ ॥

[मधुपर्कशोधनविधिः]

शृण्वतो मधुपर्कस्य शोधने मन्त्रमुत्तमम् ॥ २०६ ॥
मैधं पाशं त्रपां रावं काकिनीं नेमिमेव च ।
क्षेत्रपं प्रेतभैरव्यौ बीजे गोमधुनी ततः ॥ २०७ ॥
फेत्कारीं पावय द्वन्द्वं कूर्चास्त्रे शिरसा सह ।

मधुपर्क की शोधन-विधि—इसके बाद मधुपर्क के शोधन के विषय में उत्तम मन्त्र को सुनो । मेधा पाश लज्जा राव काकिनी नेमि क्षेत्रपाल प्रेत भैरवी गो मधु के फेत्कारी के बाद दो बार 'पावय' फिर कूर्च अस्त्र शिर से शोधन करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं आं ह्रीं फ्रें फ्रीं फ्रूं क्ष्रौं स्हौः सौः ह्रूं क्रें ह्स्ख्फ्रें पावय पावय हूं फट् स्वाहा) ॥ २०६-२०८ ॥

[मधुपर्कदानमन्त्रः]

एतेन शोधनं द्रव्यमाज्यं दधिमधूक्षितम् ॥ २०८ ॥
स्वधामन्त्रेणैव दद्यान्मधुपर्कं मुखाम्बुजे ।
पूर्ववत् तेन मन्त्रेण स्नानीयं जलशोधनम् ॥ २०९ ॥

तच्च मूर्ध्नि प्रदातव्यं नमःपदपुरस्सरम् ।

मधुपर्कदान-मन्त्र—इसके द्वारा दधि-मधु-मिश्रित घी रूपी द्रव्य का शोधन कर स्वधा मन्त्र से मधुपर्क को देवी के मुख में देना चाहिये । पूर्व की भाँति उसी मन्त्र से स्नानीय जल का भी शोधन करना चाहिये और उस जल को 'नमः' पद का उच्चारण करते हुये देवी के शिर पर चढ़ाना चाहिये ॥ २०८-२१० ॥

[स्नानीयजलवर्णनम्]

अन्यानिवेदितं तोयं प्रकृतिस्थं सुशीतलम् ॥ २१० ॥
हेमादिकुम्भपात्रस्थं स्नानीयं जलमुच्यते ।

स्नानीय जल का वर्णन—जो दूसरों को न दिया गया हो, स्वभाव में स्थित हो अर्थात् जिसे रङ्गीन या अशुद्ध न किया गया हो, सुशीतल हो, सोने-चाँदी आदि के घड़े में रखा हो, वह जल स्नानीय कहा जाता है ॥ २१०-२११ ॥

[वस्त्वर्पणमन्त्रस्यसामान्यनियमः]

अर्घ्यमाचमनीयं च दद्यात् स्वाहापदेन हि ॥ २११ ॥
मधुपर्कं स्वधाशब्दैरन्यत् सर्वं नमःपदैः ।

वस्तु के अर्पण के लिये मन्त्र का सामान्य नियम—अर्घ्य और आचमनीय को 'स्वाहा' पद कहकर देना चाहिये । मधुपर्क को 'स्वधा' पद के साथ तथा अन्य द्रव्य को 'नमः' कहकर देना चाहिये ॥ २११-२१२ ॥

[पात्रनिर्णयः]

पात्रमेषां प्रिये वक्ष्ये परिमाणपुरस्सरम् ॥ २१२ ॥
यद्द्रव्यसम्भवं चापि शक्याशक्यतया स्थितम् ।
कलधौतं मुख्यमादौ ताम्रकांस्ये ततः परम् ॥ २१३ ॥
दारवं मार्तिकं पत्रपुटकीयं ततः परम् ।
अभावे पूर्वपूर्वेषां प्रशस्तश्चोत्तरोत्तरः ॥ २१४ ॥
आदौ मुख्यतमं ज्ञेयं षोडशाङ्गुलसम्मितम् ।
मध्यमं द्वादशमितमधमं स्याद् दशाङ्गुलम् ॥ २१५ ॥
वस्वङ्गुलविहीनं तु पात्रं नैव तु कारयेत् ।
सर्वत्र स्वर्णवत्ताम्रमर्घ्यपात्रे ततोऽधिकम् ॥ २१६ ॥

पात्र-निर्णय—हे प्रिये! अब इनके पात्रों को उनके परिमाण के साथ बतलाऊँगा जो कि द्रव्य से बना हुआ होने पर भी संग्रह के लिये सम्भव भी है और असम्भव भी। सर्वप्रथम सुवर्णपात्र मुख्य है उसके बाद ताम्र और काँसा का । लकड़ी, मिट्टी, पत्तों के दोने के भी पात्र होते हैं । पूर्व-पूर्व के न सम्भव होने पर उत्तरोत्तर प्रशस्य होता है । सोलह अङ्गुल का पात्र मुख्यतम अर्थात् उच्च कोटि का

माना जाता है । बारह अङ्गुल का मध्यम और दश अङ्गुल का पात्र अधम माना गया है । आठ अङ्गुल से कम का पात्र बनवाना ही नहीं चाहिये । यह नियम सर्वत्र स्वर्णपात्र के विषय में है अर्घ्यपात्र यदि ताँबा का होना है तो उसके परिमाण से अधिक परिमाण का होना चाहिये ॥ २१२-२१६ ॥

[वस्त्रनिर्णय:]

निर्णयं त्वथ वस्त्रस्य समाकर्णय भामिनि ।
पट्टमादौ प्रशस्तं हि तद् रक्तं पीतनीलि च ॥ २१७ ॥
कार्पासं शुभ्रमुचितं कदाचिद् रक्तमेव वा ।
अधमं पीतचित्रं स्यात् न तन्नीलीयुतं क्वचित् ॥ २१८ ॥
शाणं क्षौमं तथोर्णं च प्रशस्तं सर्ववर्णयुक् ।
निर्दशं मलिनं जीर्णं तथा गात्रावलम्बितम् ॥ २१९ ॥
परकीयं चाग्निदग्धं सूचीविद्धं तथैव च ।
उप्तकेशमधौतं च श्लेष्मरक्तादिदूषितम् ॥ २२० ॥
नीलीयुक्तं चाखुजग्धं नैव देव्यै निवेदयेत् ।

वस्त्र-निर्णय—हे भामिनि! अब वस्त्र का निर्णय सुनो । सबसे पहले रेशमी वस्त्र प्रशस्त माना गया है और वह लाल, पीला या नीला होना चाहिये । कपास का वस्त्र श्वेत वर्ण का उचित होता है । कभी रक्त वर्ण भी चल जाता है । यदि कपास का वस्त्र पीत अथवा रंग-बिरंगा है तो वह अधम कोटि का माना जाता है । नील वर्ण का कार्पास सर्वथा अनुपयुक्त होता है । सन, रेशम और ऊन का वस्त्र किसी भी रङ्ग का हो समीचीन माना जाता है । निर्दश अर्थात् दश वर्ष से पुराना, मलिन, फटा हुआ, पहना हुआ, दूसरे से गृहीत, आग से जला हुआ, सिला हुआ, जिसमें बाल लगे हों, बिना धुला हुआ, श्लेष्म-रक्त आदि से दूषित, नील में रँगा हुआ तथा चूहा से कटा हुआ वस्त्र देवी को कदापि समर्पित नहीं करना चाहिये ॥ २१७-२२१ ॥

[वस्त्रशोधनमन्त्र:]

अथास्य शोधने मन्त्रं शृणु सावहिता सती ॥ २२१ ॥
मायालक्ष्मीकामवधूशाकिन्यो डाकिनी रति: ।
शक्तिर्विद्युन्मेखला च कर्णिका हार एव च ॥ २२२ ॥
मोहिन्याश्च वशिन्याश्च सम्बुद्धिस्तदनन्तरम् ।
वस्त्रं पवित्रयेत्युक्त्वा फणनमो वह्निवल्लभा ॥ २२३ ॥

वस्त्रशोधन-मन्त्र—हे देवि! अब इसके शोधन के विषय में प्रयोज्य मन्त्र को ध्यान देकर सुनो । माया लक्ष्मी काम वधू शाकिनी डाकिनी रति शक्ति विद्युत् मेखला कर्णिका हार बीजों के बाद 'मोहिनी' तथा 'वशिनी' के सम्बोधन के

अनन्तर 'वस्त्रं पवित्रय' कहकर 'फट् नमः' के बाद 'अग्निवल्लभा' कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें क्लूं ब्लूं ब्लौं र्क्ष्रीं क्ष्र् ह्रीं ज्र्क्रीं मोहिनि वशिनि वस्त्रं पवित्रय फट् नमः स्वाहा) ॥ २२१-२२३ ॥

[भूषणनिरूपणम्]

भूषणं स्वर्णरूप्यादिनिर्मितं गात्रभूषणम् ।
तच्चाङ्गुलीयकटकहारकेयूरकङ्कणम् ॥ २२४ ॥
काञ्चीनूपुरकैतङ्कं रत्नमुक्तादिनिर्मितम् ।
अधृतं पूर्वमन्येन ग्रथितं पट्टतन्तुना ॥ २२५ ॥
अलङ्काराणीदृशानि देवीयोग्यानि सुन्दरि ।

आभूषण-निरूपण—सोना-चाँदी से बने आभूषण ही देवी के शरीर के आभूषण होते हैं और वे हैं—अँगूठी, कटक, कङ्गन, हार, बाजूबन्द, करधनी, पायल और कैतङ्क । इसमें रत्न और मोती आदि जड़े होने चाहिये । इन आभूषणों को पहले कोई न पहना हो तथा वे रेशमी धागे से गुँथे हों । हे सुन्दरि! ऐसे ही अलङ्कार देवी के योग्य होते हैं ॥ २२४-२२६ ॥

[भूषणशोधनमन्त्रः]

पाशाङ्कुशक्षेत्रपालगारुडामृतशक्तयः ॥ २२६ ॥
ज्वलयुग्मं प्रज्वलयुगं फडन्ते वह्निकामिनी ।
इति भूषणसंशुद्धिरुदिता तव पार्वति ॥ २२७ ॥

भूषण के शोधन का मन्त्र—पाश, अङ्कुश, क्षेत्रपाल, गारुड, अमृत, शक्ति बीजों के बाद दो बार 'ज्वल' फिर दो बार 'प्रज्वल' 'फट्' के अन्त में वह्निकामिनी कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—आं क्रों क्षौं क्रौं ग्लूं ब्लूं ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल फट् स्वाहा) । इस प्रकार, हे पार्वति ! मैंने तुमको भूषण-शोधन की विधि बतलायी ॥ २२६-२२७ ॥

[गन्धनिरूपणम्]

प्रशस्तानप्रशस्तांश्च गन्धानाकर्णयाधुना ।
कर्पूरं कुङ्कुमं चैव मृगनाभिरथाम्बरम् ॥ २२८ ॥
गोरोचना च कङ्कोलं नखजातीफले तथा ।
अगुरुर्मलयोद्भूतो मधूको बिल्व एव च ॥ २२९ ॥
पद्मसालशठी(टी)निम्बदारूणि विहितानि हि ।
यथाशक्ति यथालाभं देवीयोग्यं प्रचक्षते ॥ २३० ॥
किन्तु सर्वेषु गन्धेषु प्रशस्तो मलयोद्भवः ।

गन्ध-निरूपण—अब प्रशस्त और अप्रशस्त गन्धों को सुनो । कपूर, कुङ्कुम, कस्तूरी, अम्बर (= केसर), गोरोचन, कङ्कोल, नखी, जायफल, अगर, मलयचन्दन, महुआ, बेल, कमल, साल, शटी और नीम की लकड़ियाँ प्रशस्त कही गयी हैं (इनके अतिरिक्त गन्ध अप्रशस्त हैं)। ये यथाशक्ति यथालाभ देवी के योग्य कही जाती हैं, किन्तु समस्त गन्धों में मलय सर्वश्रेष्ठ है ॥ २२८-२३० ॥

[चन्दनशोधनमन्त्रः]

त्रपाबीजं ङेऽन्तमथो वदेद् गन्धर्वदैवतम् ॥ २३१ ॥
ङेऽन्तं तथा चन्दनानुलेपनं कूर्चमस्त्रयुक् ।
इति संशुद्धिरुदिता चन्दनस्य वरानने ॥ २३२ ॥

चन्दनशोधन-मन्त्र—त्रपा बीज उसके बाद 'गन्धर्वदैवतम्' को ङेऽन्त कहना चाहिये । फिर 'चन्दनानुलेपनम्' को ङेऽन्त कहकर कूर्च और दो अस्त्र कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ह्रीं गन्धर्वदैवताय चन्दनानुलेपनाय हूं फट्) ।

हे वरानने! यह चन्दन का संशोधन कहा गया ॥ २३१-२३२ ॥

[कुसुमनिर्णयाभिधानम्]

कुसुमानां निर्णयं त्वं निशामय वरानने ।
अगन्धानि सुगन्धानि पत्ररूपाणि चैव हि ॥ २३३ ॥
स्थलजानि च वार्जानि लतावृक्षोद्भवानि हि ।
कानिचिद् विहितानीह निषिद्धानि च कांनिचित् ॥ २३४ ॥

पुष्प-निर्णय—हे वरानने! अब तुम फूलों का निर्णय सुनो । निर्गन्ध, सुगन्धयुक्त, पत्ते के रूप वाले, मिट्टी में, जल में तथा लता वृक्ष में होने वाले फूलों में कुछ तो विहित अर्थात् पूजा के योग्य और कुछ निषिद्ध होते हैं ॥ २३३-२३४॥

[निषिद्धकुसुमानि]

तुलसीभिरपामार्गैर्धुस्तूरैः सिन्धुवारकैः ।
अर्कपुष्पैर्वासकैश्च नैव देवीं प्रपूजयेत् ॥ २३५ ॥

निषिद्ध पुष्प—तुलसी, अपामार्ग, धत्तूर, सिन्धुवारक (= निर्गुण्डी अर्थात् मेउड़ी) मदार और अडूसा के फूलों से देवी की पूजा नहीं करनी चाहिये ॥ २३५॥

[विहितपुष्पाणि]

शिरीषैः कर्णिकारैश्च चम्पकैः कोविदारकैः ।
बकुलैश्चैव मन्दारैः कुन्दपुष्पैः कुरु(?र)ण्टकैः ॥ २३६ ॥
लताभिर्ब्रह्मवृक्षस्य मृदुदूर्वाङ्कुरैरपि ।
काञ्चनारैरशोकैश्च पुन्नागैः केतकीदलैः ॥ २३७ ॥

सेफालिकाभिर्यूथीभिर्जातीभिर्दमनैरपि ।
शतवर्गै(?पत्रै)र्मल्लिकाभिरम्लानैर्बन्धुजीवकैः ॥ २३८ ॥
झिण्टीभिश्च जपापुष्पैः करवीरैश्च किंशुकैः ।
पारिजातैः पाटलैश्च पद्मैर्नीलोत्पलैरपि ॥ २३९ ॥
माधवीभिर्मरुवकैरपराजितयापि च ।
अश(?स)नैश्च कदम्बैश्च द्रोणपुष्पैश्च केशरैः ॥ २४० ॥
अर्चयेत् कुसुमैरेतैर्देवीं साधकसत्तमः ।

विहित पुष्प—शिरीष, कनेर, चम्पा, कोविदार (= कचनार), बकुल (= मौलसिरी), मन्दार (= पारिजात अर्थात् हरसिङ्गार), कुमुद, कुरुण्टक (= पीली भटकटैया), ब्रह्मवृक्ष (= ढाक या गूलर) की लताओं, कोमल दूर्वाङ्कुर, काञ्चनार (= कचनार) अशोक पुन्नाग (= नागकेसर) केवड़ा, सेफालिका (= जूही), यूथी (= बेला), जाती (= चम्पा), दमन, शतपत्र (= सौंफ), मल्लिका खिली हुई बन्धुजीव (= गुल दुपहरिया) झिण्टी, अड़हुल, कनेर, पलाश, पारिजात, पाटल, नील कमल, लाल कमल, माधवी, मरुवक (= मयनफल), अपराजिता, असन, कदम्ब, सफेदफूल, केशर इन फूलों से उत्तम साधक देवी की पूजा करे ॥ २३६-२४१ ॥

[बिल्वपत्रार्पणमहिमा]

बिल्वपत्रं यथा प्रीतिकरं देव्या वरानने ॥ २४१ ॥
न तथान्यत् किञ्चिदस्ति पुष्पेषु प्रीतिकारकम् ।
अतो यत्नेन दातव्यं बिल्वपत्रं त्रिपत्रयुक् ॥ २४२ ॥

बिल्वपत्र-अर्पण की महिमा—हे वरानने! देवी को बिल्वपत्र जितना आनन्ददायक है, पुष्पों में उतना कोई भी आनन्दवर्द्धक नहीं है । इसलिये प्रयत्न करके देवी को तीन पत्तों वाला बिल्वपत्र चढ़ाना चाहिये ॥ २४१-२४२ ॥

[पुष्पशोधनमन्त्रः]

अथैषां शोधने मन्त्रं समाकर्णय यत्नतः ।
प्रणवं च त्रपां लक्ष्मीं प्रासादं शाकिनीमपि ॥ २४३ ॥
दशशब्दांस्ततो ङेऽन्तान् क्रमशः परिकीर्तयेत् ।
लक्ष्मीदैवतं चाद्यं पुष्पं पुष्पस्रगित्यपि ॥ २४४ ॥
पत्रं पत्रस्रक् च ततो जलजं स्थलजं ततः ।
सगन्धमथ निर्गन्धं नानारूपमतः परम् ॥ २४५ ॥
कूर्चमस्त्रं सर्वपुष्पशोधने मनुरीरितः ।

पुष्पशोधन-मन्त्र—अब इन फूलों के शोधन का मन्त्र प्रयत्नपूर्वक सुनो । प्रणव, त्रपा, लक्ष्मी, प्रासाद, शाकिनी इसके बाद निम्नलिखित दश शब्दों का

ङेऽन्त उच्चारण करना चाहिये । लक्ष्मीदैवत आद्यपुष्प पुष्पस्रक् पत्र पत्रस्रक् जलज स्थलज सगन्ध निर्गन्ध नानारूपा तत्पश्चात् कूर्च और अस्त्र । समस्त पुष्पों के शोधन में यह मन्त्र कहा गया है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ह्रीं श्रीं हौं फ्रें लक्ष्मीदैवताय पुष्पाय पुष्पस्रजे पत्राय पत्रस्रजे जलजाय स्थलजाय सगन्धाय निर्गन्धाय नानारूपाय हूं फट्) ॥ २४३-२४६॥

[धूपप्रकाराभिधानम्]

धूपभेदानथो वक्ष्ये नानाविधफलप्रदान् ॥ २४६ ॥
यक्षधूपः पत्रिवाहः पिण्डधूपः सुगोलकः ।
कृष्णागुरुः सकर्पूरो गुग्गुलुः श्रीफलं तथा ॥ २४७ ॥
तथा सरलनिर्यासो वर्तिर्वामोदिवस्तुयुक् ।
चोरपुष्पी मुरामासी बालैलैलेयकर्च्चुराः ॥ २४८ ॥
इत्यादयो द्रव्यभेदा धूपस्य परिकीर्तिताः ।
सर्व एव हि देवेशि महामायाप्रिया इमे ॥ २४९ ॥
भिन्नं भिन्नं फलं तेषां तदपि व्याहरामि ते ।

धूप-प्रकार—अब अनेक प्रकार का फल देने वाले धूप-भेदों को बतला रहा हूँ। यक्षधूप, पत्रिवाह, पिण्डधूप, सुशोलक, कृष्णागुरु, सकर्पूर, गुग्गुलु, बेल, सरला की गोंद, सुगन्ध द्रव्यों से बनी बत्ती, चोरपुष्पी, मुरामासी, सुगन्धबाला, इलायची से बने द्रव्य, कचूर इत्यादि धूप के द्रव्य-भेद कहे गये है । हे देवेशि! ये सबके सब महामाया के प्रिय हैं । इनके भिन्न-भिन्न फल हैं । मैं उनको भी तुम्हें बतला रहा हूँ ॥ २४६-२५० ॥

[धूपविशेषाणां पृथक् पृथक् फलाभिधानम्]

अगुरुं धूपमावेद्य वाजपेयफलं लभेत् ॥ २५० ॥
देव्यै दत्त्वा पत्रिवाहं राजसूयफलं लभेत् ।

पृथक्-पृथक् फल—अगुरु का धूप देकर साधक वाजपेय याग का फल प्राप्त करता है । पत्रिवाह धूप को देवी के लिये देकर वह राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त करता है ॥ २५०-२५१ ॥

[पत्रिवाहस्य परिचयः]

गन्धेन पद्मसदृशं वर्णतः कुङ्कुमप्रभम् ॥ २५१ ॥
मर्दितं तैलवत् स्निग्धं तूलितं तूलवल्लघु ।
महाशरभशङ्खस्थं सिन्धुद्वीपसमुद्भवम् ॥ २५२ ॥
साधारणानामप्राप्यं पत्रिवाहं प्रचक्षते ।
महिषाक्षं घृताक्तं च दत्त्वा विद्या(?विजां)मथापि वा ॥ २५३ ॥

अश्वमेधफलं प्राप्य दुर्गालोके महीयते ।
कर्पूरैः स्वर्गमाप्नोति चोरपुष्पाद् धनं बहु ॥ २५४ ॥
वर्तिभिर्भोगशालित्वं मुरया वरकामिनीम् ।
अन्यै राजप्रियत्वं च शृण्वतः शोधने मनुम् ॥ २५५ ॥

पत्रिवाह का परिचय—गन्ध में कमल और रङ्ग में कुङ्कुम के समान, मर्दन के होने पर तेल के समान स्निग्ध, धारों से लिपटा, रूई के समान हलका, महाशरभ शङ्ख में स्थित, सिन्ध देश में उत्पन्न, साधारण जनों से अप्राप्य धूप को पत्रिवाह कहते हैं । भैंसे की आँख घी में डुबोकर अथवा भेंड़ की आँख को (घी में डुबोकर) देकर साधक अश्वमेध फल को प्राप्त करता है और दुर्गा के लोक में पूजित होता है । साधक कपूर से स्वर्ग, चोरपुष्प से धन, बत्ती से भोगशालित्व प्राप्त करता है । इसके बाद शोधन का मन्त्र सुनो ॥ २५१-२५५ ॥

[धूपशोधनमन्त्रः]

वाग्भवं मान्मथं लक्ष्मीं नाक्षत्रं वैद्युतं तथा ।
पदानि चत्वारि ततो ङेऽन्तानि समुदाहरेत् ॥ २५६ ॥
सर्वादिमूलं हि वनस्पतिदैवतमित्यदः ।
ततोऽनु दारुनिर्यासोऽप्सरोदैवतमित्यपि ॥ २५७ ॥
सत्त्वाङ्गसम्भवस्तुर्यः कूर्चास्त्रे सर्वशेषगे ।

धूपशोधन-मन्त्र—वाग्भव मन्मथ लक्ष्मी नक्षत्र विद्युत् के बाद अधोलिखित चार पदों को ङेऽन्त कहना चाहिये । सबके पहले वनस्पतिदैवत फिर दारुनिर्यास, अप्सरोदैवत और सत्त्वाङ्गसम्भव । सबके अन्त में कूर्च और अस्त्र ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं क्लीं श्रीं ब्लैं ब्लौं वनस्पतिदैवताय दारुनिर्यासाय अप्सरोदैवताय सत्त्वाङ्गसम्भवाय हुं फट्) ॥ २५६-२५८ ॥

[दीपप्रकाराभिधानम्]

घृतप्रदीपः प्रथमस्तिलतैलोद्भवस्ततः ॥ २५८ ॥
अधमस्तरुबीजोत्थस्त्रिविधं दीपलक्षणम् ।
नेत्राह्लादकरः स्वर्चिः खेदतापविवर्जितः ॥ २५९ ॥
सुशिखः शब्दरहितो निर्धूमो नातिह्रस्वकः ।
दक्षिणेन प्रदातव्यः प्रदीपः श्रीविवृद्धये ॥ २६० ॥
उच्चैरेव स कर्तव्यो न तु भूमौ कदाचन ।
वर्तिः श्वेताथवा रक्ता न पीता नासितापि च ॥ २६१ ॥
शाणं वादरजं वास्त्रं जीर्णं मलिनमेव च ।
उपयुक्तं तु नादद्यात् वर्तिकार्थं कथञ्चन ॥ २६२ ॥
दशां विवर्जयेत् प्राज्ञो यद्यप्यहतवस्त्रजाम् ।

निर्बीजं चाथ कार्पासं तज्जातास्तन्तवोऽपि वा ॥ २६३ ॥
प्रशस्ता दीपवर्तिः स्यात् कदाचित् नूतनाम्बरम् ।
तैजसं दारवं लौहं मार्तिकं नारिकेलजम् ॥ २६४ ॥
तृणराजोद्भवं चापि दीपपात्रं प्रशस्यते ।
नैव निर्वापयेद् दीपं देवार्थमुपकल्पितम् ॥ २६५ ॥
दीपहर्ता भवेदन्धः काणो निर्वापको भवेत् ।
शुद्ध्यर्थं मन्त्रमेतस्य समाकर्णय भामिनि ॥ २६६ ॥

दीप के प्रकार—घी का दीपक प्रथम कोटि का होता है । उसके बाद तिल के तेल का । वृक्ष के बीज के तेल का दीपक अधम कोटि का होता है । इस प्रकार दीप तीन प्रकार का होता है । दीपक को नेत्रों को आनन्द देने वाला, सुन्दर लौ वाला, खेद एवं ताप से रहित, सुन्दर शिखा वाला, शब्दरहित, धूमरहित होना चाहिए, उसे बहुत छोटा नहीं होना चाहिये । श्री की वृद्धि के लिये दीपक को देवता के दाँयें रखना चाहिये । दीपक को ऊँचे स्थान पर न कि भूमि पर रखना चाहिये । उसकी बत्ती श्वेत अथवा रक्त होनी चाहिये । पीली या काली नहीं । बत्ती के लिये सन, रूई का धागा, वस्त्र, पुराना कपड़ा, फटा कपड़ा, किसी के द्वारा उपभुक्त वस्तु बत्ती के लिए नहीं लेनो चाहिये । नये वस्त्र का भी किनारा (बत्ती के लिये) नहीं लेना चाहिये । बीजरहित कपास या उससे बनी तन्तु की बत्ती प्रशस्त होती है । कभी-कभी नये वस्त्र की भी बत्ती प्रशस्त मानी जाती है । सोना, चाँदी, लकड़ी, लोहा, मिट्टी, नारियल, ताड़ के बने हुये दीपक पात्र उत्तम माने जाते हैं । देवता के लिये जलाये गये दीपक को कभी बुझाना नहीं चाहिये । दीपक को चुराने वाला अन्धा और बुझाने वाला काना हो जाता है । हे भामिनि! इसकी शुद्धि के लिये मन्त्र सुनो ॥ २५८-२६६ ॥

[दीपशोधनमन्त्रः]

तारं मेधं क्षेत्रपालं तेजो बीजं सबिन्दुकम् ।
वह्निदैवतशब्दं च दीपशब्दं तथैव च ॥ २६७ ॥
घृततैलाक्तशब्दं च ङेऽन्ताः शब्दाः क्रमादिमे ।
शेषे कूर्चास्त्रयोर्योगः कर्तव्यः कमलानने ॥ २६८ ॥

दीपकशोधन-मन्त्र—तार, मेधा, क्षेत्रपाल, तेज बीज को बिन्दुसहित कहने के पश्चात् 'वह्निदैवत' शब्द और 'दीप' शब्द और 'घृततैलाक्त' शब्दों को क्रम से ङेऽन्त कहना चाहिये । हे कमलानने! अन्त में कूर्च और अस्त्र का प्रयोग करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं क्षौं रं वह्निदैवताय दीपाय घृताक्ताय (तैलाक्ताय) वा हुं फट्) ॥ २६७-२६८ ॥

[अञ्जनप्रकाराभिधानम्]

सौवीरं जाम्बवं तथ्यं मायूरं श्रीकरं तथा ।
दग्धिका मेघनीला च ह्यञ्जनानि भवन्ति षट् ॥ २६९ ॥
पञ्चाद्यास्तु वरारोहे नानाशैलसमुद्भवाः ।
भिन्नजातीयकाः सर्वाः दृषदो जलदत्विषः ॥ २७० ॥
गाढं निघृष्य चैतानि शिलायां तैजसेऽपि वा ।
प्रदद्याद् जगदम्बाया अञ्जनार्थं सुरेश्वरि ॥ २७१ ॥
घृततैलादियोगेन ताम्राद्यायोज्य वह्निना ।
यदञ्जनं जायते तद् दग्धिका परिकीर्तिता ॥ २७२ ॥
विधवा नाञ्जनं कुर्यान् महामायार्थमुत्तमम् ।
सधवा वा कुमारी वा अथवा स्वयमेव हि ॥ २७३ ॥
न मृत्पात्रे योजयेत्तु साधको नेत्ररञ्जनम् ।
पुष्पेण तत् प्रदातव्यं न हस्तेन कदाचन ॥ २७४ ॥
अमुष्य संशुद्धिमतः समाकलय यत्नतः ।

अञ्जन-प्रकार—सौवीर, जाम्बव, मायूर, श्रीकर, दग्धिका और मेघनीला—ये छह प्रकार के अञ्जन होते हैं । हे वरारोहे! इनमें प्रथम पाँच अनेक प्रकार के पर्वतों (= पत्थरों) से उत्पन्न होते हैं । सभी पत्थर बादल की कान्ति वाले तथा भिन्न-भिन्न जाति के होते हैं। हे सुरेश्वरि! इनको पत्थर या लोहे पर रगड़कर जगदम्बा के अञ्जन के लिये देना चाहिये । घी अथवा तैल तथा ताँबा आदि को मिलाकर आग में जलाने से जो अञ्जन बनाया जाता है वह दग्धिका कहलाता है । महामाया के लिये उत्तम अञ्जन विधवा को नहीं बनाना चाहिये । सधवा अथवा कुमारी अथवा साधक स्वयं इस अञ्जन को बनाये । साधक नेत्राञ्जन को मिट्टी के पात्र में न रखे । महामाया के लिये अञ्जन पुष्प से लगाये न कि हाथ से । इसके बाद इसकी शुद्धि को प्रयत्नपूर्वक सुनो ॥ २६९-२७५ ॥

[अञ्जनशोधनमन्त्रः]

सारस्वतं तारमाये नागं कामं रमां वधूम् ॥ २७५ ॥
रावं च नारसिंहं च कहयुग्मं धकद्वयम् ।
कूर्चास्त्रहृच्छिरांसि स्युः शेषेऽञ्जनविशुद्धये ॥ २७६ ॥

अञ्जनशोधन-मन्त्र—सारस्वत, तार, माया, नाग, काम, लक्ष्मी, वधू, राव, नारसिंह बीजों के बाद ‘कह’ को दो बार ‘धक’ को दो बार कहे । फिर अन्त में कूर्च, अस्त्र, हृदय और शिर ये वर्ण अञ्जन की शुद्धि के लिये होते हैं ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं ओं ह्रीं ब्रीं क्लीं श्रीं स्त्रीं फ्रें क्ष्रौं कह कह धक धक हूं फट् नमः स्वाहा) ॥ २७५-२७६ ॥

[नैवेद्यप्रकाराभिधानम्]

नैवेद्यमधुना वच्मि यद् यद् देव्यै निवेदयेत् ।
भक्ष्यं भोज्यं च लेह्यं च चर्व्यं चोष्यं च पञ्चमम् ॥ २७७ ॥
भक्ष्यादिपञ्चकैः काली दत्तैरेवाशु तुष्यति ।
उपचारसहस्त्रैस्तु तथा तुष्टा न जायते ॥ २७८ ॥
यथा नैवेद्यसम्भारैराशु तुष्यति कालिका ।
तत्स्यादाममनामं च फलाद्याममुदीर्यते ॥ २७९ ॥
अनाममन्नमांसादि पक्वान्नं द्वयमुच्यते ।
नादत्ते विधिवत् किञ्चिद् दत्तं भवति नैव चेत् ॥ २८० ॥
अतो देव्यै प्रदातव्यं सर्वं मन्त्रपुरस्सरम् ।

नैवेद्य के प्रकार—जो-जो भी नैवेद्य देवी के लिये निवेदित करना चाहिये उस-उस नैवेद्य को अब मैं बतला रहा हूँ । भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चर्व्य और चोष्य—ये पाँच प्रकार के नैवेद्य बतलाए गए हैं । दिये गये इन पाँच भक्ष्यों के द्वारा देवी शीघ्र तुष्ट हो जाती हैं । हजारों उपचारों से कालिका उस प्रकार तुष्ट नहीं होती जितना कि उक्त नैवेद्यसम्भार से तुष्ट होती हैं । वह नैवेद्य कच्चा और पकाया गया होता है । फल आदि आम अर्थात् कच्चा कहा जाता है । अन्न, मांस आदि दोनों अनाम और पक्वान्न कहे जाते हैं । यदि देवी को कोई भी वस्तु विधिवत् न दी जाये तो वह उसे स्वीकार नहीं करती । इसलिये देवी को सब कुछ मन्त्रोच्चारण के साथ देना चाहिये ॥ २७७-२८० ॥

शाल्योदनं हविष्यं च हविर्युक्तं सशर्करम् ॥ २८१ ॥
निवेदयेत् कालिकायै सर्वाणि व्यञ्जनानि च ।
फाणितं च सिता सर्पिः दुग्धमावर्तितं तथा ॥ २८२ ॥
दध्यनुद्धृतसारं च रसालां कूर्चिकामपि ।
ब्रीहयः सिकताभृष्टा लाजाः सचिपिटा अपि ॥ २८३ ॥
सक्तवश्च तथा धानाः पृषदाज्यं तु लामकम् (यावकम्) ।
उपस्कृतानि मांसानि मत्स्याश्च विविधा अपि ॥ २८४ ॥
पूजासु नाममांसानि योजयेद् वै कदाचन ।
क्षीरादीन्यथ गव्यानि माहिष्याणि च सर्वशः ॥ २८५ ॥
परमान्नं पिष्टकं च यावकं कृशरं तथा ।
मोदकं भर्जिततिलं कन्दुपक्वानि चोत्सृजेत् ॥ २८६ ॥

साठी का चावल, हविष्य, शर्करा से युक्त हवि तथा समस्त व्यञ्जन काली को निवेदित करना चाहिये । फाणित (= सीरा), चीनी, घी, खौलाया दूध, बिना मक्खन निकाला दही, रसाला (= ईख), कूर्चिका (= पनीर), धान, बालू में भूँजा हुआ लावा, चिउड़ा, सत्तू, फणिता मिश्रित कच्चा अन्न (= जौ गेहूँ), पृषदाज्य

(= दधि से मिला हुआ घी), यावक (= जौ के द्वारा तैयार तरल पेय यवागू), संस्कारित माँस, अनेक प्रकार की मछलियाँ ये सब देवी के प्रिय पदार्थ हैं । पूजा में कभी भी कच्चा माँस का प्रयोग नहीं करना चाहिये । गाय के दूध आदि भैंस के दूध आदि परमान्न (= खीर), पीठी, यावक (= जौ से बना भोज्य पदार्थ), खिचड़ी, लड्डू, भुना हुआ तिल, कन्दुपक्व (= पतीली या तन्दूर में पकाया गया पदार्थ) देवी को देना चाहिये ॥ २८१-२८६ ॥

नारिकेलं कपित्थं(च?)द्राक्षामलकमेव च ।
दाडिमं श्रीफलं कोलं कूष्माण्डं पनसं तथा ॥ २८७ ॥
वकुलं च मधूकं च रसालाम्रातके डहुम् ।
कदलीं क्षीरिणं तालं करुणं (?) कर्कटीमपि ॥ २८८ ॥
जम्बीरं पिण्डखर्जूरं बीजपूरं च जम्भलम् ।
हारीतकीमामलकं षड्विधं नागरङ्गकम् ॥ २८९ ॥
मातुलुङ्गं च लकुचं लवलीं करमर्दकम् ।
शृङ्गाटकं कशेरुं च शालूकं च मृणालकम् ॥ २९० ॥
कुमुदानां पङ्कजानां फलानि च निवेदयेत् ।
कलायमुद्गस्तिमिताङ्कुराणि द्विदलानि च ॥ २९१ ॥
आर्द्रकं मूलकं चैव कन्दनामानि यानि च ।
लशुनं च पलाण्डुं च वर्जयित्वा च निन्दितम् ॥ २९२ ॥
रसालपनसादीनां फलानां गाढवद् रसम् ।
घृतपक्वं सितायुक्तं यावत् सम्भवति क्षितौ ॥ २९३ ॥
नैवेद्यत्वेन तत्सर्वमुचितं वरवर्णिनि ।
बालप्रियैश्च नैवेद्यैर्लाजाक्षतफलादिभिः ॥ २९४ ॥
इक्षुदण्डैस्तद्विकारैस्तथा गुडसितादिभिः ।
पूजयेत् जगतां धात्रीं सर्वकामार्थसिद्धये ॥ २९५ ॥
निषिद्धानि न देयानि कीटाद्युपहतानि च ।
वर्जयित्वा तु पक्वान्नं फलानि च दधीनि च ॥ २९६ ॥
देव्यै पर्युषितं नैव दातव्यं विभवे सति ।
फलानां खलु पक्वानामलाभेऽप्याममिष्यते ॥ २९७ ॥
अथैषां शोधने मन्त्रः सर्वेषामेक उच्यते ।

नारियल, कैथ, अङ्गूर, आमला, अनार, बेल, बेर, कोहड़ा, कटहल, वकुल (= मौलसिरी), महुआ, आम, आम्रातक (= अमरा), डहु (= बड़हर), केला, क्षीरी (= ख़िरनी), ताड़ का फल, करुण (= करौना?), ककड़ी, नीबू, खजूर, बिजौरा नीबू, जम्भल (= जम्भीरी नीबू), हर्रे, आँवला, छह प्रकार की नारङ्गी, मातुलुङ्ग (= एक प्रकार का बिजौरा नीबू), लकुच (=बड़हर), लवली (= एक

लता), करमर्दक (= करौंना), सिङ्घाड़ा, कशेरू, शालूक (= कमल की जड़), कमल नाल, कुमुद और कमल के फल का नैवेद्य देना चाहिये । मटर मूँग मिश्रित (= उड़द) के अङ्कुर और दाल का भी नैवेद्य होता है । अदरख, मूली और भी कन्द (= भूमि के अन्दर पैदा होने वाले कन्द-मूल) नामक जो वस्तुयें हैं वे लहसुन, प्याज तथा अन्य निषिद्ध पदार्थ को छोड़कर, देना चाहिये । आम, कटहल आदि का गाढ़ा रस, घी में पकाये गये शक्कर मिले हुये पदार्थ आदि जो कुछ इस पृथ्वी पर उपलब्ध हों, हे वरवर्णिनि! वे सब नैवेद्य के रूप में उचित हैं । बच्चों को प्रिय लगने वाले नैवेद्य, लावा, अक्षत, फल आदि, ईख उसके विकार (रस या गुड़ तथा चीनी आदि) के द्वारा धात्री की पूजा समस्त कार्यों की सिद्धि के लिये करनी चाहिये । निषिद्ध, कीड़े इत्यादि का खाया पदार्थ कदापि नहीं देना चाहिये । शुद्ध घी में पका हुआ द्रव्य, फल और दही को छोड़कर देवी के लिये बासी पदार्थों का नैवेद्य यदि सम्पन्नता हो तो नहीं देना चाहिये । पके हुए फलों के न मिलने पर कच्चा फल दिया जा सकता है । अब इन सबके शोधन का एक मन्त्र बतलाया जा रहा है ॥ २८७-२९७ ॥

[नैवेद्यशोधनमन्त्र:]

मायालक्ष्मीकाममैधरावकूर्चामृताङ्कुशान् ॥ २९८ ॥
नैवेद्यादीनि सङ्कीर्त्य शोधय द्वितयं तत: ।
कूर्चास्त्रहृच्छिरांस्यन्ते सर्वेषां शोधने मनु: ॥ २९९ ॥

नैवेद्यशोधन का मन्त्र—माया, लक्ष्मी, काम, मेधा, राव, कूर्च, अमृत, अङ्कुश बीजों के बाद 'नैवेद्यादीनि' कहकर 'शोधय' को दो बार फिर अन्त में कूर्च, अस्त्र, हृदय और शिर यह सबके शोधन का मन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं फ्रें हूं ग्लूं क्रों नैवेद्यादीनि शोधय शोधय हूं फट् नम: स्वाहा) ॥ २९८-२९९ ॥

[पुनराचमनीयनिर्देश:]

पुनराचमनीयं तु मुख एव प्रदीयते ।
शोधनं तस्य पूर्वोक्तमन्त्रेणैव वरानने ॥ ३०० ॥
नैवेद्यानन्तरं देयमित्येतस्य विनिश्चय: ।

पुन: आचमनीय—पुन: आचमनीय मुख में ही दी जाती है । हे वरानने! उसका शोधन पूर्वोक्त मन्त्र से ही होता है । उसे नैवेद्य के बाद देना चाहिये, यह निश्चित है ॥ ३००-३०१ ॥

[नमस्कारनिर्वचनम्]

शिरोऽञ्जलिद्वयोर्योगं नमस्कारं विदुर्बुधा: ॥ ३०१ ॥

नमस्कार—विद्वान् लोग शिर और दोनों अञ्जलि को जोड़ने को नमस्कार कहते हैं ॥ ३०१ ॥

[प्रदक्षिणलक्षणम्]

देवालयं वा देवं वा मण्डलीकरणेन यत् ।
परिभ्रमेद् दक्षिणेन तत् प्रदक्षिणमुच्यते ॥ ३०२ ॥
सप्तधा नवधा वापि मुखेन स्तुतिमीरयेत् ।

प्रदक्षिणा—देवालय या देवता को मण्डल करते हुए अपनी दायीं ओर से जो परिभ्रमण किया जाता है, वह प्रदक्षिणा कही जाती है । प्रदक्षिणा करते समय सात बार या नव बार मुख से स्तुति करनी चाहिये ॥ ३०२-३०३ ॥

[दण्डप्रणामाभिधानम्]

निपतेद् भूतले दण्डप्रणामः स हि कथ्यते ॥ ३०३ ॥

दण्ड-प्रणाम—भूतल पर दण्ड की भाँति औंधे मुँह फैल जाना दण्ड प्रणाम कहा जाता है ॥ ३०३ ॥

न चैषां शोधने मन्त्रो वर्तते नापि दैवतम् ।
इति षोडश आख्याता उपचाराः सुरेश्वरि ॥ ३०४ ॥
यद्देवताश्च यद्द्रव्यास्तथा यल्लक्षणा अपि ।

इन (= नमस्कार, प्रदक्षिणा और दण्ड प्रणाम) के शोधन में न तो कोई मन्त्र है और न देवता । हे सुरेश्वरि! इस प्रकार षोडशोपचार बतलाये गये । इनके जो देवता, जो द्रव्य, जो लक्षण थे, वह सब बतलाया गया ॥ ३०४-३०४- ॥

[द्वात्रिंशदुपचारविवरणम्]

द्वात्रिंशतामतस्तेषां द्रव्यलक्षणदैवतम् ॥ ३०५ ॥
कथयामि वरारोहे मनस्तत्र निवेश्यताम् ।
आवाहनं स्वागतं च संस्थापनमतः परम् ॥ ३०६ ॥
सन्निधापनमस्यानु सन्निरोधनमेव च ।
सम्मुखीकरणं चापि षडिमान्युदितानि ते ॥ ३०७ ॥

हे वरारोहे! अब इन बत्तीस के द्रव्य, लक्षण, देवता को बतला रहा हूँ । उसमें मन लगाओ । आवाहन, स्वागत, संस्थापन, सन्निधापन, इसके पश्चात् सन्निरोधन और सम्मुखीकरण—ये छह कहे गये हैं ॥ ३०५-३०७ ॥

[आवाहनलक्षणम्]

दूरस्थिताया यदिहागमनं कार्यते प्रिये ।
पूजार्थमत्र बलतस्तदावाहनमुच्यते ॥ ३०८ ॥

आवाहन का लक्षण—हे प्रिये! दूरस्थित देवी का यह पूजा के लिये जो आग्रहपूर्वक आगमन कराया जाता है, वह आवाहन कहा जाता है ॥ ३०८ ॥

[स्वागतस्वरूपम्]

अनुगृह्य कृपादृष्ट्या यत् त्वयेह समागतम् ।
तत् शुभागमनं चास्तामिति स्वागतमिष्यते ॥ ३०९ ॥

स्वागत—कृपादृष्टि से अनुग्रह कर जो आप यहाँ पधारी हैं, वह आगमन शुभ हो—ऐसा (कहना समझना) स्वागत है ॥ ३०९ ॥

[संस्थापनस्वरूपम्]

गच्छेदनादरात् कच्चिदिति तत् स्थापनं हठात् ।
संस्थापनं तत् कथितं मन्त्रोच्चारणपूर्वकम् ॥ ३१० ॥

संस्थापन—अनादर के कारण कोई वापस न चला जाय, इसलिये हठात् उसका मन्त्रोच्चारपूर्वक जो स्थापन होता है, वह संस्थापन कहा गया है ॥ ३१० ॥

[सन्निधापनस्वरूपम्]

कल्पितेष्वासनेषूच्चैर्गृहीत्वा करयोर्द्वयोः ।
उपवेश्यते यन्मानेन तदुक्तं सन्निधापनम् ॥ ३११ ॥

सन्निधापन—आगन्तुक के दोनों हाथों को पकड़कर सम्मान के साथ कल्पित आसन पर जो बैठाया जाता है, वह सन्निधापन कहा जाता है ॥ ३११ ॥

[सन्निरोधनस्वरूपम्]

पूजायामसमाप्तायामेव यायादियं क्वचित् ।
एतदर्थं वर्जनं तत् सन्निरोधनमुच्यते ॥ ३१२ ॥

सन्निरोधन—पूजा के समाप्त हुए बिना यह कहीं चली न जाय, इसके लिये रोकना सन्निरोधन है ॥ ३१२ ॥

[सम्मुखीकरणस्वरूपम्]

परि (रा) वृत्य कदाचित् चेदियं तिष्ठेद् रुषान्विता ।
इत्यर्थं समदृष्टिर्या सम्मुखीकरणं हि तत् ॥ ३१३ ॥
अस्मिन्नेवान्तर्भवन्ति त्रीण्यन्यानि शुचिस्मिते ।
सकलीकरणं चैकमवगुण्ठनमित्यपि ॥ ३१४ ॥
अमृतीकरणं चापि तल्लक्षणमथोच्यते ।

सम्मुखीकरण—क्रोध से युक्त होकर यह कदाचित् मुँह फेर कर न बैठ जाय इसके लिये जो आँख मिलायी जाती है, वह सम्मुखीकरण है । हे शुचिस्मिते! इसी में सकलीकरण, अवगुण्ठन और अमृतीकरण ये अन्य तीन उपचार अन्तर्भूत हो

जाते हैं। अब उनका लक्षण कहा जा रहा है ॥ ३१३-३१५ ॥

[सकलीकरणम्]

देव्यङ्गानां समस्तानां विभागो यत्र एव च ॥ ३१५ ॥
मुखचक्षुकराङ्घ्रीणां सकलीकरणं हि तत् ।

सकलीकरण—देवी के मुख, आँख, हाथ, पैर आदि समस्त अङ्गों का जहाँ विभाग होता है, वह सकलीकरण होता है ॥ ३१५-३१६ ॥

[अवगुण्ठनलक्षणम्]

शीर्षन्यस्ताञ्चला यद्वदधोवक्त्रा कुलाङ्गना ॥ ३१६ ॥
तिष्ठेत् तद्वद् यत्करणमवगुण्ठनमुच्यते ।

अवगुण्ठन—जिस प्रकार से कुलीन स्त्री अपने शिर पर आँचल रखकर और मुँह नीचे कर बैठती है, उस प्रकार (यह देवी) बैठे—ऐसा करना अवगुण्ठन कहा जाता है ॥ ३१६-३१७ ॥

[अमृतीकरणलक्षणम्]

एवंरूपा मद्भवने त्वं तिष्ठेः सर्वदैव हि ॥ ३१७ ॥
इति या भावना शश्वदमृतीकरणं मतम् ।
सम्मुखीकरणेष्वेव विशन्त्येतानि सुन्दरि ॥ ३१८ ॥
संस्काररूपानेतांस्तु केचिदाहुर्विपश्चितः ।
मुद्रारूपांस्तथा केचिदुपचारानथापरे ॥ ३१९ ॥
ये ते भवन्तु नैषां हि शोधने मनुरिष्यते ।
अदैवत्यास्तथाऽद्रव्या व्यापाराः करयोरिमे ॥ ३२० ॥
सदा देव्याः प्रीतिकरा योजनीया विजानता ।
अथान्यानधुना वक्ष्ये द्रव्यदैवतपूर्वकान् ॥ ३२१ ॥

अमृतीकरण—तुम इसी रूप में मेरे भवन में सर्वदा निवास करो—यह जो शाश्वत् भावना है, उसे अमृतीकरण माना गया है । हे सुन्दरि! ये सब सम्मुखीकरण में ही अन्तर्भूत हो जाते हैं । कुछ विद्वान् इनको संस्कार रूप, कुछ मुद्रा रूप और कुछ विद्वान् उपचार रूप मानते हैं । ये जिस किसी भी वर्ग के हों इनके शोधन में कोई मन्त्र नहीं होता । ये सब दोनों हाथों के व्यापार हैं । इनका न कोई देवता है, न द्रव्य । विद्वान् को चाहिये कि सदा देवी को प्रसन्न करने वाले इन उपचारों को करे । अब हम द्रव्य देवतापूर्वक अन्य संस्कारों को कहेंगे ॥ ३१७-३२१ ॥

[सिन्दूरप्रकाराभिधानम्]

सिन्दूरमरुणग्रावसम्भूतवर्णमुत्तमम् ।
मध्यमं नागजं प्रोक्तं हारिद्रमधमं स्मृतम् ॥ ३२२ ॥

शिलाजं वा नागजं वा अतिरिक्तं प्रशस्यते ।
ललाटेऽप्यथ सीमन्ते तद्देयममरेश्वरि ॥ ३२३ ॥

सिन्दूर के प्रकार—लाल पत्थर से उत्पन्न रङ्ग वाला सिन्दूर उत्तम होता है । नागकेशर से उत्पन्न मध्यम और हल्दी के रङ्ग का अधम होता है । शिला अथवा नाग से उत्पन्न यदि अतिरिक्त है तो वह प्रशस्य होता है । हे अमरेश्वरि! उसको (देवी के) ललाट या माँग में लगाना चाहिये ॥ ३२२-३२३ ॥

[सिन्दूरशोधनमन्त्रः]

मैधकामरमावध्वः शाकिनीप्रणवावपि ।
ङेऽन्तं शचीदैवतं च सिन्दूरमपि तादृशम् ॥ ३२४ ॥
हूंफट् शिरोभिः सहितः सिन्दूरस्य च शोधने ।

सिन्दूरशोधन-मन्त्र—मेधा, काम, रमा, वधू, शाकिनी, प्रणव बीजों के बाद ङेऽन्त 'शचीदैवत' उसी प्रकार 'सिन्दूर' को 'हुं फट्' तथा शिर के साथ कहना सिन्दूर के शोधन में प्रयोज्य मन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं क्लीं श्रीं स्त्रीं फ्रें ओं शचीदैवताय सिन्दूराय हुं फट् स्वाहा) ॥ ३२४-३२५ ॥

[अलक्तकनिरूपणम्]

लाक्षारससमुद्भूतमलक्तं सम्प्रचक्षते ॥ ३२५ ॥
तत्पादयोः प्रदातव्यं नखेन्दुद्युतिकारकम् ।

अलक्तक-निरूपण—लाक्षा के रस से जो बनता है, उसे अलक्तक कहते हैं । नखों को चमकाने वाले उस अलक्तक को दोनों पैरों में लगाना चाहिये ॥ ३२५-३२६ ॥

[अलक्तकशुद्धिमनुः]

निश्रेण्यस्त्रं तस्य शुद्धिरल्पेनैव मयोदिता ॥ ३२६ ॥

अलक्तक शोधन-मन्त्र—निःश्रेणि और अस्त्र (= अं फट्) यह संक्षेप में मैंने शुद्धि बतला दी ॥ ३२६ ॥

[ताम्बूलप्रकाराभिधानम्]

अतो वदामि ताम्बूलं यद्द्रव्यं यच्च दैवतम् ।
आवश्यकश्चतुर्णां हि तत्र योगो वरानने ॥ ३२७ ॥
शलाटुमथवा शुष्कं पूगं शकलशः कृतम् ।
नागवल्लीपलासानि द्वितीयो भाग उच्यते ॥ ३२८ ॥
भागस्तृतीयः खदिरः स हि स्वल्पतया स्थितः ।
तूर्यो जलजसत्त्वानां दृषतां वापि भस्म हि ॥ ३२९ ॥

अत आमोदहेतूनि वस्तूनि परिचक्षते ।
घनसारो लवङ्गैलाजातीफलमथापि वा ॥ ३३० ॥
काश्मीरजं मृगमदः कङ्कोलस्त्वगपि प्रिये ।
पूर्वोदितं समुदितं ताम्बूलमिति कथ्यते ॥ ३३१ ॥

ताम्बूल-प्रकार—इसके बाद जो द्रव्य और जो देवता है उस ताम्बूल को बतला रहा हूँ । हे वरानने! उसमें आवश्यक चार वस्तुयें मिलायी जाती हैं । शलाटु अथवा टुकड़ा की हुई सोपाड़ी, पान का पत्ता यह दूसरा भाग है । तीसरा भाग खैर है यह थोड़ा सा मिलाना चाहिये । चौथा कमल का सत्त्व अथवा पत्थर का भस्म । अब आमाद (= सुगन्ध) के हेतुभूत वस्तुओं को कहा जा रहा है । कपूर, लवङ्ग, इलायची, जायफल, केसर, कस्तूरी, कङ्कोल त्वक् (= तज) । हे प्रिये! पूर्वोक्त को इनसे मिलाने पर ताम्बूल कहा गया है ॥ ३२७-३३१ ॥

[ताम्बूलदानफलाभिधानम्]

एतद् दत्त्वा कालिकायै यत्फलं लभते नरः ।
तत्फलं कथितुं नैव शक्नोमि वरवर्णिनि ॥ ३३२ ॥
सर्वसंयोगि ताम्बूलं दत्त्वा देव्यै तु साधकः ।
मन्वन्तरत्रयं पूर्णमुमालोके स तिष्ठति ॥ ३३३ ॥
सुस्वरो रूपवान् वाग्मी कमलामोदवन्मुखः ।
स्त्रीणां प्रियो राजमान्यः कविश्चापि प्रजायते ॥ ३३४ ॥
अधुना त्वस्य संशुद्धौ मन्त्रं ते कथयाम्यहम् ।

ताम्बूल-दान का फल—हे वरवर्णिनि! यह ताम्बूल काली को देकर मनुष्य जो फल प्राप्त करता है, उस फल का वर्णन मैं नहीं कर सकता । साधक देवी के लिये सर्वसंयोगी ताम्बूल देकर पूरे तीन मन्वन्तर तक उमा के लोक में निवास करता है । वह सुन्दर स्वरवाला, रूपवान्, वाग्मी, कमल की गन्ध वाले मुख वाला, स्त्रियों का प्रिय, राजाओं का आदरणीय और कवि हो जाता है । अब इसकी शुद्धि के विषय में तुमको मन्त्र बतला रहा हूँ ॥ ३३२-३३५ ॥

[ताम्बूलशोधनमन्त्रः]

तारं मैधं त्रपां लक्ष्मीं वधूं कामं सुधामपि ॥ ३३५ ॥
प्रासादं ङेऽन्तयुग् विद्याधरदैवतमित्यपि ।
रागहेतुकशब्दं च ताम्बूलं तादृशं वदेत् ॥ ३३६ ॥
कूर्चास्त्रे सर्वशेषे स्यात् मनुस्ताम्बूलशोधने ।

ताम्बूल-शोधन मन्त्र—तार, मेधा, त्रपा, लक्ष्मी, वधू, काम, सुधा, प्रासाद के बाद ङेऽन्त 'विद्याधरदैवत' तथा 'रागहेतुक' उसी प्रकार 'ताम्बूल' को कहना चाहिये । सबके अन्त में कूर्च और अस्त्र यह ताम्बूल के शोधन में मन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं ह्रीं श्रीं स्त्रीं क्लीं ग्लूं हौं विद्याधरदैवताय रागहेतुकाय ताम्बूलाय हुं फट्) ॥ ३३५-३३७ ॥

[पादुकाविवरणम्]

पादुका तैजसाभावे दारवी सम्प्रदीयते ॥ ३३७ ॥
पादयोस्ते च दातव्ये दक्षभागे सुरेश्वरि ।

पादुका—तैजस (= सोना या चाँदी की बनी हुई) के अभाव में लकड़ी की पादुका (= खड़ाऊँ) दिया जाता है । हे सुरेश्वरि! उनको पैरों के दाहिनी ओर देना चाहिये ॥ ३३७-३३८ ॥

[पादुकाशुद्धिमन्त्र]

प्रणवं सोमबीजं च भ्यामन्ते पादुके ततः ॥ ३३८ ॥
सोमदैवतमीदृक् च हूं फट् स्वाहा ततः परम् ।

पादुकाशुद्धि-मन्त्र—प्रणव तथा सोम बीज 'पादुका' के अन्त में 'भ्याम्' इसी प्रकार 'सोमदैवत' उसके बाद 'हुम् फट् स्वाहा' यह मन्त्र है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ग्लौं पादुकाभ्यां सोमदैवताभ्यां हुं फट् स्वाहा) ॥ ३३८-३३९॥

[पत्त्रोर्णविवरणम्]

उदीचीदिग्भवं स्थूलं रक्तं वा नीलमेव वा ॥ ३३९ ॥
हेमतन्तौ सन्ग्रथितं पत्त्रोर्णमिति कथ्यते ।

पत्त्रोर्ण—उत्तर दिशा में उत्पन्न स्थूल आकृति का लाल या नीला पत्ता सोने के धागे से बँधा हुआ (या गूँथा हुआ) पत्त्रोर्ण कहा जाता है ॥ ३३९-३४० ॥

[छत्रस्वरूपम्]

छत्रं तन्निर्मितं मुख्यं मध्यमं वाससा कृतम् ॥ ३४० ॥
तालपत्रादिवेणूत्थमधमं परिचक्षते ।

छत्र—ऐसे पत्त्रोर्ण से निर्मित छत्र उत्तम कोटि का होता है । वस्त्रनिर्मित मध्यम तथा ताड़ के पत्ते अथवा बाँस का बना छाता अधम कोटि का कहा जाता है ॥ ३४०-३४१ ॥

[छत्रदानमाहात्म्यम्]

तत्प्रदाय नरो देव्यै जायते मेदिनीपतिः ॥ ३४१ ॥

छत्रदान की महिमा—देवी के लिये उसका दान कर मनुष्य राजा हो जाता है ॥ ३४१ ॥

[छत्रशुद्धिमन्त्रः]

तारमैधे पाशमाये लक्ष्मीकामौ वधूरुषौ ।
चण्डविश्वौ रावशक्ती डाकिनीकुलिकौ ततः ॥ ३४२ ॥
छत्रायेति समुच्चार्य ङेऽन्तं वापीन्द्रदैवतम् ।
वरुणाधिदैवतायापि ततः परमुदीरयेत् ॥ ३४३ ॥
शोधय द्वितयं प्रोच्य पावयद्वितयं वदेत् ।
शेषे कूर्चं तथा चास्त्रं शिरोऽमुष्य तु शोधने ॥ ३४४ ॥

छत्रशुद्धि का मन्त्र—तार, मेधा, पाश, माया, लक्ष्मी, काम, वधू, क्रोध, चण्ड, विश्व, राव, शक्ति, डाकिनी, कुलिक के बाद 'छत्राय' कह कर ङेऽन्त 'वापीन्द्रदैवत' कहना चाहिये। उसके बाद 'वरुणाधिदैवताय' भी कहना चाहिये । 'शोधय' को दो बार कहकर 'पावय' को दो बार कहना चाहिये । अन्त में कूर्च, अस्त्र और शिर इसके शोधन में यह मन्त्र है।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं आं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं फ्रों फ्रौं फ्रें ब्लूं ख्फ्रें स्हौः छत्राय वापीन्द्रदैवताय वरुणाधिदैवताय शोधय शोधय पावय पावय हूं फट् स्वाहा) ॥ ३४२-३४४॥

[चामरविवरणम्]

चामरं शुभ्रमेवेह दातव्यं न तु मेचकम् ।
उत्तराशास्थचमरगवीनां पुच्छमेव तत् ॥ ३४५ ॥
हेमदण्डेन रजतदण्डेनाथ समन्वितम् ।
दैर्घ्याद् बालोच्चयाच्चापि फलाधिक्यं प्रजायते ॥ ३४६ ॥
तेषां बहूनामुत्सर्गे तले चन्द्रातपस्य हि ।
विधाय लम्बमानानि देव्यै तानि निवेदयेत् ॥ ३४७ ॥

चामर-विवरण—इस प्रकरण में शुभ्र ही चामर देना चाहिये न कि काला । यह उत्तर दिशा (= नेपाल, तिब्बत आदि) में स्थित चामरी गाय की पूँछ होती है । यह सोने या चाँदी के दण्ड से जुड़ा होता है । जितने ही लम्बे और अधिक बाल लगे रहते हैं, यह उतना ही उत्तम कोटि का होता है । उसके दान से अधिक फल मिलता है । यदि बहुत सारे चामरों को देना है तो सोने के छत्र के तल पर लटकाये हुए उनको देवी के लिये देना चाहिये ॥ ३४५-३४७ ॥

[चामरदानमहिम्नोऽभिधानम्]

सार्वभौमत्वमेतेन भवेत् तस्य न संशयः ।
बह्वभावे देयमेकं शृणु तच्छोधने मनुम् ॥ ३४८ ॥

चामर-दान की महिमा—इससे उन देने वाले लोगों को सार्वभौमत्व प्राप्त होता है । इसमें संशय नहीं है । बहुत चामरों के अभाव में एक ही देना चाहिये ।

अब उसके शोधन के विषय में मन्त्र सुनो ॥ ३४८ ॥

[चामरशोधनमन्त्र:]

मैधं मायां रमां कामं शाकिनीं डाकिनीं सृणिम् ।
वितानं चामरं चापि नव बीजानि चोद्धरेत् ॥ ३४९ ॥
ङेऽन्तं प्रकीर्त्य सुरभिदैवतं चामरं तथा ।
कूर्चमस्त्रत्रयं शेषे नमः स्वाहा समुद्धरेत् ॥ ३५० ॥

चामरशोधन-मन्त्र—मेधा, माया, रमा, काम, शाकिनी, डाकिनी, सृणि, वितान, चामर—इन नव बीजों को उद्धृत करना चाहिये । 'सुरभिदैवत' और 'चामर' को ङेऽन्त कहकर कूर्च, तीन अस्त्र और अन्त में 'नम: स्वाहा' कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं ह्लीं श्रीं क्लीं फ्रें ख्फ्रें ह्स्ख्फ्रूंक्ष्ख्रूं ख्फ्रक्षूं सुरभिदैवताय चामराय हुं फट् फट् फट् नम: स्वाहा) ॥ ३४९-३५० ॥

[व्यजनप्रकाराभिधानम्]

व्यजनं बर्हिरचितं प्रशस्तं मुख्यमेव च ।
मध्यमं वस्त्रघटितमधमं वेणुनिर्मितम् ॥ ३५१ ॥
परसञ्चालनीयं वा स्वसञ्चार्यमथापि वा ।
प्रदद्याद् भक्तिभावेन देव्यास्तापापनुत्तये ॥ ३५२ ॥

व्यजन प्रकार—मोर के पङ्ख का बना हुआ व्यजन (= पङ्खा) प्रशस्त और मुख्य होता है । कपड़े का बना मध्यम श्रेणी का और बाँस का अधम कोटि का होता है । दूसरे से सञ्चालनीय अथवा स्वसञ्चार्य पङ्खे को देवी के ताप को हटाने के लिये भक्तिपूर्वक देना चाहिये ॥ ३५१-३५२ ॥

[व्यजनशुद्धिमन्त्र:]

प्रणवं कामलं कामं कलाकालीमहारुषः ।
व्यजनं शुक्लदण्डौ च ङेऽन्तं वै वायुदैवतम् ॥ ३५३ ॥
व्यजनं तद्वदेवाद्यं हूं फट् स्वाहा ततः परम् ।

व्यजन की शुद्धि का मन्त्र—प्रणव, कमला, काम, कला, काली, महाक्रोध, व्यजन, शुक्ल, दण्ड के बाद ङेऽन्त 'वायुदैवत' उसी प्रकार 'व्यजन' उसके बाद 'हुं फट् स्वाहा' कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं श्रीं क्लीं ईं क्रीं क्षूं ख्फ्रछ्रैं ह्लौं ह्लां वायुदैवताय व्यजनाय हूं फट् स्वाहा) ॥ ३५३-३५४ ॥

[आरात्रिकप्रकाराभिधानम्]

आरात्रिकं नाम दीपवृक्षः पार्वति कथ्यते ॥ ३५४ ॥

सचोर्ध्वाधोभावसंस्थः पङ्क्तिसंस्थोऽपि वा भवेत्।
मण्डलाकारसंस्थो वा त्रिविधः परिकीर्तितः ॥ ३५५ ॥
पात्रं तैजसमेवात्र नैव मार्तिकदारवे ।
वृक्षवत् स प्रकर्तव्यो यावच्छक्योच्चतान्वितः ॥ ३५६ ॥
वर्तिः पूर्ववदत्रापि द्रव्यं तैलं हविस्तथा ।
अवरो नैव कर्तव्यः नाधिको नवतेरपि ॥ ३५७ ॥
वामेन वादयन् घण्टां दक्षेणैनं समुद्वहन् ।
उत्थायामुं चालयन् हि नीचोर्ध्वाधः क्रमेण हि ॥ ३५८ ॥
स्तुतिं मुखेनेरयंश्च कुर्यादारात्रिकं प्रिये ।
सर्वं दीपवदस्यापि शोधनं दैवतं तथा ॥ ३५९ ॥

आरती के प्रकार—हे पार्वति! आरती को दीपवृक्ष कहा जाता है । वह ऊर्ध्व-अधः भाव वाला अथवा पंक्ति में स्थित होता है अथवा मण्डलाकार स्थित । इस तरह वह तीन प्रकार का कहा गया है । इसमें पात्र सोना या चाँदी का ही होना चाहिये, मिट्टी अथवा लकड़ी का नहीं । उसे वृक्ष के समान बनाना चाहिये । जितनी सम्भव हो उतनी ऊँचाई बनानी चाहिये । बत्ती पूर्व कथन के अनुसार और द्रव्य तिल का तेल अथवा घी होना चाहिये । नव से कम या अधिक दीपक नहीं होना चाहिये । बाँयें हाथ से घण्टा बजाते हुए तथा दाँयें हाथ से दीपक लेकर नीचे ऊपर और फिर नीचे उसे बारम्बार घुमाना चाहिये । हे प्रिये! मुख से स्तुति करते हुए आरती करनी चाहिये । इसका शोधन और दैवत आदि सब कुछ दीप की भाँति होता है ॥ ३५४-३५९ ॥

[पुष्पमालाप्रकाराभिधानम्]

पुष्पमाला प्रदातव्या विधायारात्रिकं जनैः ।
एकजातीयकैः पुष्पैर्भिन्नजातीयकैरपि ॥ ३६० ॥
माला तथैकवर्णा स्याद् भिन्नवर्णापि वा भवेत् ।
सा पुनस्त्रिविधा ज्ञेया परिणाहवशेन तु ॥ ३६१ ॥
पतेद् हृदयपर्यन्तं या मालामोदशालिनी ।
वैकक्षिका सा विज्ञेया सर्वावरतया स्थिता ॥ ३६२ ॥
अधोऽवलम्बिनी नाभेः कौसुमी या स्रगुच्यते ।
सा धोरणी परिज्ञेया मध्यमा पूर्वतोऽधिका ॥ ३६३ ॥
आगुल्फस्त्रंसिनी या तु पादपद्मोपरि स्थिता ।
वनमालेति सा प्रोक्ता सर्वाभ्यः स्रग्भ्य उत्तमा ॥ ३६४ ॥
कश्चिद् विशेषोऽत्राप्यस्ति तमपि व्याहरामि ते ।
करवीरैर्जवापुष्पैर्वकैर्दमनकैरपि ॥ ३६५ ॥
नीलोत्पलैः सरसिजैर्लवङ्गैर्नागकेसरैः ।

जातीभिर्मालतीभिश्च मल्लिकाचम्पकादिभिः ॥ ३६६ ॥
रचिता या भवेयुर्हि स्रजः परमशोभनाः ।
मालाभ्योऽन्याभ्य एतास्तु देव्याः प्रीतिप्रदायिकाः ॥ ३६७ ॥
अतोऽन्येषु प्रसूनेषु तिष्ठत्सु वरवर्णिनि ।
अमीभिः कुसुमैस्तासां ग्रथने यत्नमाचरेत् ॥ ३६८ ॥

पुष्पमाला के प्रकार—आरती करने के बाद लोगों को चाहिये कि वे पुष्पमाला दें। माला के पुष्प एक जाति के या भिन्न जाति के हो सकते हैं । उसी प्रकार माला एक रंग की या रंग-बिरंगी हो सकती है । लम्बाई को ध्यान में रखकर वह तीन प्रकार की होती है । जो सुगन्धित माला हृदय तक लम्बी हो उसे वैकक्षिका समझना चाहिये । वह सबसे निम्नकोटि की मानी गयी है । नाभि तक नीचे लटकने वाले फूल की जो माला होती है उसे धोरणी मानना चाहिये । यह पूर्वकथित माला से अधिक महत्त्व की होती है, इसलिये वह मध्यम कोटि की होती है । एड़ी तक लटकने वाली पैर के ऊपर स्थित होने वाली माला वनमाला कही जाती है । वह समस्त मालाओं में उत्तम होती है। इस विषय में कुछ वैशिष्ट्य है । उसको भी मैं तुमको बतला रहा हूँ । कनेर, अड़हुल, वक (= मौलसिरी), दमनक (= दौना), नील कमल, कमल, लवङ्ग, नागकेशर, चम्पा, मालती, मल्लिका (= जूही), चम्पक से जो मालायें बनायी जाती हैं; वे परम शोभन होती हैं । अन्य मालाओं की अपेक्षा ये देवी के लिये अधिक प्रीतिदायक होती हैं । इसलिये हे वरवर्णिनि! अन्य फूलों के रहने पर भी इन फूलों से माला बनाने के लिये प्रयास करना चाहिये ॥ ३६०-३६८ ॥

[मालाशोधनमन्त्रः]

पूतत्वकारकमथो शृण्वासां मन्त्रमुत्तमम् ।
तारो मैधं त्रपा लक्ष्मीः कामः स्त्री शाकिनी रतिः ॥ ३६९ ॥
रावः प्रेतो भैरवी च नरसिंहस्ततः परम् ।
स्रजं युग्मं पावय च कूर्चास्त्रानलवल्लभाः ॥ ३७० ॥

माला-शोधन-मन्त्र—इन मालाओं को पवित्र करने वाले उत्तम मन्त्र को सुनो । तार, मेधा, त्रपा, लक्ष्मी, काम, स्त्री, शाकिनी, रति, राव, प्रेत, भैरवी, नरसिंह उसके बाद 'स्रजं' फिर दो बार 'पावय' कूर्च, अस्त्र और अग्निवल्लभा कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें क्लूं फ्रें स्हौः सौः क्ष्रौं स्रजं पावय पावय हूं फट् स्वाहा) ॥ ३६९-३७० ॥

[आत्मनिवेदनम्]

आत्मनः सेवकत्वेन यद् देव्यै विनिवेदनम् ।

तदात्मवेदनं प्रोक्तं नास्य द्रव्यं न शोधनम् ॥ ३७१ ॥
निमीलिताभ्यां नेत्राभ्यां करावुत्तानयन् पुरः ।
दासस्तवास्मीति मुहुरात्मानं विनिवेदयेत् ॥ ३७२ ॥
अदः संस्काररूपं स्यान्मुद्रारूपमथापि वा ।
इति राजोपचारास्ते मया ते प्रतिपादिताः ॥ ३७३ ॥

स्वात्म-निवेदन—सेवक के रूप में देवी के लिये अपने को समर्पित करना आत्मनिवेदन कहा गया है । इसका न तो कोई द्रव्य है और न कोई शोधन मन्त्र । आँखों को बन्दकर सामने हाथों को उत्तान रखकर 'मैं आपका दास हूँ'—इस प्रकार अपने को निवेदित करना चाहिये । यह आत्मनिवेदन संस्कार रूप या मुद्रारूप होता है । इस प्रकार मैंने तुमको राजोपचार बतलाये ॥ ३७१-३७३ ॥

[बलिद्रव्यप्रकाराभिधानम्]

त्वमिदानीं बलेर्द्रव्यं शोधनं च निशामय ।
भूतेभ्यो डाकिनीभ्यो वा परिवारेभ्य एव वा ॥ ३७४ ॥
अथापि मूलदेव्यै वा नैवेद्याद् भिन्नमेव यत् ।
दीयते स बलिः प्रोक्तस्तस्य द्रव्यं निशामय ॥ ३७५ ॥
माषभक्तं तथा लाजा धानाः सक्तव एव वा ।
पृथुकास्तण्डुला वापि स्विन्ना ब्रीहय एव वा ॥ ३७६ ॥
आमिषा (?क्षा) वा यवागूर्वा कृशरं पायसं तथा ।
आज्याभिषिक्तं दधि वा पक्वान्नानि फलानि वा ॥ ३७७ ॥
दग्धमीनो भटित्रं वा तेमनीकृतमेव वा ।
मदिरा वा प्रदातव्या बलित्वेन वरानने ॥ ३७८ ॥

बलिद्रव्य का प्रकार—अब तुम बलि के द्रव्य और उसके शोधन को सुनो । भूतों, डाकिनियों, देवी के परिवारों के लिये अथवा मूल देवी के लिये मूल द्रव्य से भिन्न जो वस्तु दी जाती है, वह बलि कही गयी है । उसका द्रव्य सुनो । उड़द, भात, धान का लावा, धाना, सत्तू, चिउड़ा, चावल, भिगोया हुआ धान, अमिक्षा (= छेना), यवागू (= लपसी), खिचड़ी, खीर, घी से मिश्रित दही, घी से मिश्रित पकाया गया अन्न, फल, भुनी हुई मछली, भटित्र (= लोहे के छड़ पर रखकर पकाया गया माँस) अथवा तेमनीकृत (= मिर्च मसाला मिला हुआ माँस) और मदिरा । हे वरानने! यह सब बलि के रूप में देनी चाहिये ॥ ३७४-३७८ ॥

[मद्यस्य सकलसाधारणबलित्वनिषेधः]

सर्वसाधारणत्वेन बलिर्नैषः प्रकीर्त्यते ।
अधिकारविशेषेण दातुं शक्यो बलिः स्वयम् ॥ ३७९ ॥
तत्राधिकारिणो मत्तः शृणु यत्नेन चेतसा ।

मद्य की बलि सबके लिये नहीं—यह (= मद्य) सर्वसाधारण के लिये बलि के रूप में नहीं कही जाती। विशेष अधिकार होने पर यह बलि स्वयं दी जा सकती है। इस विषय में मुझसे प्रयत्नपूर्वक अधिकारीजनों को सुनो ॥ ३७९-३८० ॥

[द्विजस्य मद्यदाने तत्पाने चानधिकारत्वनिर्देश:]

त्रय्यध्वनीनो भूदेवस्त्रिपदायज्ञसूत्रधृक् ॥ ३८० ॥
न कदाचित् स्पृशेद् हालां न च देव्यै निवेदयेत् ।
वस्तुष्वन्येषु तिष्ठत्सु देवीप्रीतिकरादिषु ॥ ३८१ ॥
किमेतया वै सुरया कदन्नमलरूपया ।
भूतप्रेतपिशाचार्थं यत्समस्तं सुरामिषम् ॥ ३८२ ॥
तद् ब्राह्मणेन नो देयं देव्यै नात्तव्यमेव वा ।
न चैतया तुष्यति सा बहु चापि घृणीयते ॥ ३८३ ॥
उद्विग्ना सा भवेत् तस्मात् दद्यान्नैव द्विज: सुराम् ।
हतो वेदो हतो धर्म: परलोको हत: स्वक: ॥ ३८४ ॥
कुलं हतं हता जातिर्हतं ब्राह्मण्यमेव च ।
प्राज्ञंमन्येन मूर्खेण पिबता ज्ञानत: सुराम् ॥ ३८५ ॥
किं कृतं साधितं किं वा किं च वा समुपार्जितम् ।
यदयं हतवान् स्वस्य सर्वं मद्योपसेवनात् ॥ ३८६ ॥

द्विज का मद्यदान और उसके पान में अधिकार नहीं—त्रयी के पथिक (= तीनों वेदों में से किसी का पाठक) एवं त्रिपदायज्ञ के सूत्रधार ब्राह्मण को मद्य का न तो स्पर्श करना चाहिये न देवी को देना चाहिये। देवी को प्रसन्न करने वाले अन्य पदार्थों के रहने पर कदन्न के मल के रूप में स्थित इस सुरा का क्या प्रयोजन? जो सब सुरा या आमिष भूत, प्रेत, पिशाचों के लिये है; उसे ब्राह्मण न तो देवी के लिए दे न उसको खाये। वह देवी इससे तुष्ट नहीं होती बल्कि बहुत घृणा करती है। इसको देने पर वह उद्विग्न हो जाती है। अत: ब्राह्मण (देवी के लिये) सुरा न दे। अपने को विद्वान् समझने वाला अतएव सुरा को ज्ञानपूर्वक पीने वाला द्विज अपने वेद, धर्म, परलोक, कुल, जाति और ब्राह्मणत्व का नाश कर डालता है। मद्य का सेवन कर इसने अपना सब कुछ नष्ट कर क्या सिद्ध कर लिया? या क्या प्राप्त कर लिया? अर्थात् कुछ नहीं ॥ ३८०-३८६ ॥

एवमेवाज्ञानमयो मामप्याशु हनिष्यति ।
उद्विग्नैवं महामाया भवेत्तदवलोकनात् ॥ ३८७ ॥
कैवर्तपुक्कसम्लेच्छरजकान्त्यावशायिनाम् ।
चर्मकारनटप्रोथमेदोवेणूपजीविनाम् ॥ ३८८ ॥
सिद्धदुर्गन्धिशुष्कान्नद्रवं मद्यं निवेद्य हि ।
सुधावत् पिबतां पुंसां कथं विट्सु नहि स्पृहा ॥ ३८९ ॥

अन्ये न सन्ति वस्त्वाद्या नैवेद्यकरणाय किम् ।
अस्पृश्यं च तदानीय मह्यं ददति कौलिकाः ॥ ३९० ॥
ऋचो यजूंषि सामानि ह्यथर्वाङ्गिरसस्तथा ।
वेदेभ्यः कोटिगुणितान् महामन्त्रांस्तथैव च ॥ ३९१ ॥
ये प्लावयन्ति देहस्थान् मद्यैराकण्ठपूरितैः ।
मामपि प्लावयिष्यन्ति किमाश्चर्यं हि ते जनाः ॥ ३९२ ॥
सात्त्विकैरेव नैवेद्यैः कन्दैः पुष्पैः फलैर्दलैः ।

उस मद्यपायी को देखने से—यह अज्ञानी इसी प्रकार मेरा भी नाश कर देगा —ऐसा सोचकर महामाया उद्विग्न हो जाती है । कैवर्त्त (= मल्लाह), पुक्कस (= निषाद से शूद्र स्त्री में उत्पन्न), म्लेच्छ, धोबी, अन्त्यावशायी (= अधम जाति से उत्पन्न), चमार, नट, प्रोथ (= खुदाई), मेदा एवं बाँस से जीविका चलाने वाले, पके दुर्गन्ध युक्त सूखे अन्न के द्रव रूप मद्य को देवी को निवेदित कर अमृत की तरह पीने वालों मनुष्यों की विष्ठा से स्पृहा क्यों नहीं होती । क्या अन्य वस्तुयें नैवेद्य देने के लिये नहीं हैं जो कौलिक लोग अस्पृश्य उसको लाकर मुझे देते हैं । ऋग्, यजुष, साम और अथर्व नामक वेदों से करोड़ों गुना अधिक महत्त्वपूर्ण देहस्थ मन्त्रों को जो आकण्ठ पीत मद्य से आप्लावित कर देते हैं वे लोग मुझे भी मद्य से आप्लुत कर दें तो इसमें क्या आश्चर्य । इसलिये कन्द, पुष्प, फल, पत्र आदि सात्त्विक नैवेद्य से ही पूजा करनी चाहिये ॥ ३८७-३९३ ॥

[भक्तिः जलं च पूजायामत्यावश्यकमिति निरूपणम्]

अभावे तोयभक्तिभ्यां सत्यं तुष्टा भवाम्यहम् ॥ ३९३ ॥
न मद्यमांसविस्तारैः प्रेतराक्षसभोजनैः ।

भक्ति और जल दोनों पूजा में अत्यावश्यक—उपर्युक्त वस्तुओं के न मिलने पर केवल जल और भक्ति से भी मैं तुष्ट हो जाती हूँ न कि मद्य-माँस के विस्तार से जो कि प्रेतों और राक्षसों का भोजन है, यह सत्य है ॥ ३९३-३९४ ॥

[प्रसङ्गतः ऋषीणां नामनिर्देशः]

ब्रह्मणो मानसाः पुत्राः मरीच्यत्र्यङ्गिरोमुखाः ॥ ३९४ ॥
एतेषामन्वयोद्भूताः पुनरन्ये सहस्रशः ।
कश्यपश्चैव दुर्वासा दत्तात्रेयश्च चन्द्रमाः ॥ ३९५ ॥
बृहस्पतिर्विश्रवाश्च शक्तिर्दक्षो मृकण्डुजः ।
नारदः कपिलो व्यासः कालाग्निर्जमदग्निजः ॥ ३९६ ॥
दाक्षः कविरथर्वा च शाण्डिल्यो गौतमो मनुः ।
नाचिकेतो भरद्वाजः श्वेताश्वतर एव च ॥ ३९७ ॥
और्वो दधीचिश्च्यवनः ऋचीकश्च पराशरः ।

शातातपो लोमशश्च जैगीषव्यश्च देवलः ॥ ३९८ ॥
पैठीनसिर्वीतहव्यः संवर्तोऽगस्तिरासुरिः ।
उपमन्युर्मतङ्गश्च तथा वाजश्रवाः कठः ॥ ३९९ ॥
उद्दालकश्चारुणेय आश्वलायन एव च ।
उत्तङ्कश्च यवक्रीतः कात्यायनऋतस्त्रवाः ॥ ४०० ॥
एते चान्ये च मुनयो वेदवेदाङ्गपारगाः ।
ईजानाः क्रतुभिः सर्वैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥ ४०१ ॥
गृणन्तो निगमं सर्वं कुर्वन्तो दुश्चरं तपः ।
ध्यायन्तो निष्कलं ब्रह्म जपन्तो मामकं मनुम् ॥ ४०२ ॥

प्रसङ्गात ऋषियों के नाम—मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा आदि सप्त ऋषि ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं । इनके वंश में पुनः अन्य हजारों ऋषि उत्पन्न हुए । कश्यप, दुर्वासा, दत्तात्रेय, चन्द्रमा, बृहस्पति, विश्रवा, शक्तिमान्, दक्ष, मार्कण्डेय, नारद, कपिल, व्यास, कालाग्नि, परशुराम, दाक्ष, कवि, अथर्वा, शाण्डिल्य, गौतम, मनु, नाचिकेत, भारद्वाज, श्वेताश्वतर, और्व, दधीचि, च्यवन, ऋचीक, पराशर, शातातप, लोमश, जैगीषव्य, देवल, पैठीनसि, वीतहव्य, संवर्त्त, अगस्ति, आसुरि, उपमन्यु, मतङ्ग, वाजश्रवा, कठ, उद्दालक, आरुणेय, आश्वलायन, उत्तङ्क, यवक्रीत, कात्यायन, ऋतस्त्रवा—ये सब एवं अन्य वेदवेदाङ्ग पारग ऋषि सब यज्ञ करने वाले, उत्तम दक्षिणा प्राप्त करने वाले, समस्त वेदों का पाठ करने वाले, दुश्चर तप करने वाले, निष्कल ब्रह्म का ध्यान करने वाले तथा मेरे मन्त्र का जप करने वाले हैं ॥ ३९४-४०२ ॥

सर्वदा सात्त्विकैरेवोपचारैः पूजयन्ति माम् ।
सदा मय्यर्पितहृदः सदा मद्भावभाविताः ॥ ४०३ ॥
सदा मच्छरणं प्राप्ताः शान्ता दान्ता जितेन्द्रियाः ।
वाय्वाहारा निराहारा ऊर्ध्वरेतस एव च ॥ ४०४ ॥
तपोबलाद् भ्रंशयितुं शक्रमप्यलमीदृशः ।
न निवेदितवन्तस्ते किमर्थं मदिरामपि ॥ ४०५ ॥
विज्ञायास्यां महादोषं निन्द्यतां पापहेतुताम् ।
गर्हाकरत्वं पातित्यकारित्वं पूतितामपि ॥ ४०६ ॥
परलोकविनाशित्वं तथा नरकगामिताम् ।
विप्रत्वजातिहन्तृत्वं म्लेच्छतुल्यत्वकारिताम् ॥ ४०७ ॥
अतस्तत्यजुरेवेमां सङ्गृह्य श्रुतिपद्धतिम् ।
यद्यस्याः दोषराहित्यं पुण्यकारित्वमेव च ॥ ४०८ ॥
स्यात् तदा ते कथं मह्यं ददुर्नैव सुरां द्विजाः ।
धर्मव्यवस्थां ज्ञात्वेत्थमन्येऽपि च द्विजातयः ॥ ४०९ ॥

निवेदयिष्यन्ति नैव मह्यं मद्यं कथंचन ।

ये सदा सात्त्विक उपचारों से ही मेरी पूजा करते हैं । सदा मेरे लिये हृदय अर्पित करने वाले ये मेरे भाव से भावित रहते हैं । ये सब सदा मेरी शरण में आने वाले, शान्त, दान्त, जितेन्द्रिय, वायु का आहार करने वाले, निराहार, ऊर्ध्वरेता हैं । अपनी तपस्या के बल से इन्द्र को भी पदच्युत करने का सामर्थ्य रखते हैं । ये सब मुझे मदिरा क्यों नहीं अर्पित किये ? क्योंकि वे लोग इसके महादोष जैसे निन्दनीयता, पापहेतुता, गर्हाकरत्व, पातित्यकारित्व, पूतिता (= दुर्गन्धयुक्त होना), परलोकविनाशित्व, नरकगामिता, ब्राह्मणत्वघातकता, म्लेच्छतुल्यकारिता को जानते थे, इसलिये वेदमार्ग का अनुसरण कर इसका परित्याग कर दिया । यदि यह सुरा दोषरहित एवं पुण्य देने वाली होती तो वे ब्राह्मण इस सुरा को मुझे क्यों नहीं देते ? इस प्रकार अन्य ब्राह्मण भी इसी प्रकार धर्म की व्यवस्था जानकर मेरे लिये मद्य कभी नहीं देंगे ॥ ४०३-४१० ॥

[द्विजस्य मदिराव्यवहारे भयप्रदर्शनम्]

बोधिता अपि शास्त्रार्थैरनादृत्य वचो मम ॥ ४१० ॥
मोहाद् व्यवहरिष्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
ये केचित् तान् धर्मराजः शासिष्यति न संशयः ॥ ४११ ॥
तीव्रैर्दण्डैर्महाघोरनरकादिनिपातनैः ।
इति सत्यं पुरा मह्यं प्रोवाच जगदम्बिका ॥ ४१२ ॥
ततोऽहमवदं देवि देवीवक्त्रोत्थिताक्षरैः ।
अतः परं श्रुत्युदितं धर्मं मद्वाक्यमेव च ॥ ४१३ ॥
देव्याज्ञां च समुल्लंघ्य ये दास्यन्ति सुरां द्विजाः ।
तेषां शास्त्री महामाया श्रोतव्यं शृण्वतः परम् ॥ ४१४ ॥
द्विजेतरः सम्प्रदद्याद् देव्यै मद्यं सदा रहः ।
स्वयं महाप्रसादं च भुञ्जीत प्रत्यहं प्रिये ॥ ४१५ ॥
मांसानि दग्धमीनाश्च सर्वदैव निवेदयेत् ।
शूद्रादीनामथैतैस्तु सद्यस्तुष्यति कालिका ॥ ४१६ ॥
द्विजानां यावती निन्दा कथिता मद्यदानतः ।
शूद्राणां तावती ज्ञेया प्रशस्तिर्वरवर्णिनि ॥ ४१७ ॥
अतः शूद्रः प्रयत्नेन देव्यै मद्यं निवेदयेत् ।

ब्राह्मण के द्वारा मदिरा पान करने पर भय—शास्त्रों के द्वारा बोधित होकर तथा मेरे वचनों का अनादर कर लोभ से उपहत चित्त वाले जो कोई ब्राह्मण मदिरा का व्यवहार करेंगे उनको धर्मराज तीव्र दण्ड प्रयोग और महाघोर नरक में पातन के द्वारा निःसन्देह दण्ड देंगे । जगदम्बा ने ऐसा मुझसे पहले सत्य कहा है । हे देवि! देवी के मुख से निकले अक्षरों के माध्यम से वही मैंने तुमको बतलाया । इसके

बाद भी श्रुति में वर्णित धर्म और मेरे वाक्य तथा देवी की आज्ञा का उल्लङ्घन कर जो ब्राह्मण देवी के लिये सुरा का अर्पण करेंगे महामाया उनका शासन करेगी। इसके बाद श्रोतव्य विषय को सुनो। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य से अन्य लोगों को चाहिये कि वे देवी के लिये मद्य एकान्त में दें। हे प्रिये! उन लोगों को वह महाप्रसाद स्वयं खाना चाहिये। देवी के लिये विविध प्रकार के माँस तथा भुनी हुई मछलियाँ सदा अर्पित करनी चाहिये। इनसे शूद्र आदि के ऊपर कालिका तत्काल प्रसन्न होती है। मद्यदान के कारण ब्राह्मणों की जितनी निन्दा की गयी हे वरवर्णिनि! शूद्रों की उतनी ही प्रशंसा होती है। इसलिये शूद्र प्रयत्नपूर्वक देवी के लिये मद्य निवेदित करे ॥ ४१०-४१७- ॥

दीर्घायुष्ट्वमरोगित्वं वाग्मित्वं राजमान्यताम् ॥ ४१८ ॥
पुत्रक्षेत्रकलत्रार्थपरिपूर्णत्वमेव च।
अन्ते स्वर्गादिगमनं शूद्रः प्राप्नोति मद्यदः ॥ ४१९ ॥
श्रूयते यत्फलाधिक्यं तन्त्रादौ मद्यदानतः।
तद्धि शूद्रपरं ज्ञेयं नैव द्विजपरं प्रिये ॥ ४२० ॥
स्वयं यदन्नो भवति तदन्नास्तस्य देवताः।
पितरश्च तदन्नाः स्युरित्येवं वैदिकी स्थितिः ॥ ४२१ ॥
प्राणिजातिषु सर्वासु मानुष्यमतिदुर्लभम्।
मानुष्येष्वपि देहेषु शूद्रः श्रेष्ठोऽन्त्यजातितः ॥ ४२२ ॥
शूद्राच्छतगुणो वैश्यो वैश्यात् साहस्रिको नृपः।
नृपात् कोटिगुणो विप्रो यज्ञस्वाध्यायतत्परः ॥ ४२३ ॥
अत एव हि सर्गादौ जगत् सृष्ट्वा चराचरम्।
यद् यत् सारतरं वस्तु तद् ब्रह्मादाद् द्विजातये ॥ ४२४ ॥
वेदाः षडङ्गशास्त्राणि क्षमा सत्यं तपो धृतिः।
शौचं दानं दया धर्मो विवेकः कलभाषिता ॥ ४२५ ॥
त्यागः शान्तिश्च मर्यादा स्वाध्यायोऽध्यात्मचिन्तनम्।
यज्ञाः सर्वे हविर्गव्यं पयो मेध्यान्नमेव च ॥ ४२६ ॥

देवी के लिये मद्य देने वाला शूद्र दीर्घायु, नीरोगता, वाग्मिता, राजसम्मान, पुत्र, क्षेत्र, स्त्री आदि की पूर्णता और अन्त में स्वर्ग आदि को गमन प्राप्त करता है। तन्त्र आदि में मद्यदान से जो अधिक फल की बात सुनी जाती है, उसे शूद्र के विषय वाली समझना चाहिये न कि द्विज के विषय से सम्बद्ध। जो स्वयं जिस अन्न को खाता है उसके देवता भी उस अन्न का नैवेद्य स्वीकार करते हैं पितर भी वहीं अन्न खाने वाले होते हैं—ऐसा वेद का नियम है। समस्त प्राणियों में मनुष्यता दुर्लभ है। मनुष्य देहों में भी शूद्र अन्त्यज की अपेक्षा वरीयान् है। शूद्र से वैश्य सौ गुना, वैश्य से क्षत्रिय हजार गुना और क्षत्रिय से करोड़ों गुना यज्ञ स्वाध्याय में

लगा हुआ ब्राह्मण श्रेष्ठ होता है । इसलिये सृष्टि के आदि में ब्रह्मा ने चराचर जगत् की सृष्टि कर जो-जो सार वस्तु थी उसको ब्राह्मण के लिये दिया । वेद, षडङ्गशास्त्र, क्षमा, सत्य, तपस्या, धैर्य, शौच, दान, दया, धर्म, विवेक, मुदृभाषिता, त्याग, शान्ति, मर्यादा, स्वाध्याय, अध्यात्म-चिन्तन, समस्त यज्ञ, हवि, गव्य, दूध, यज्ञीय अन्न—ये सब ब्राह्मण के लिये दिये गये ॥ ४१८-४२६ ॥

एतेषां विपरीतानि ददौ शूद्रेभ्य एव हि ।
त्रयाणामपि वर्णानां दासभावमदात् ततः ॥ ४२७ ॥
सर्वशिल्पोपजीवित्वं मन्त्रराहित्यमेव च ।
अनाशीस्त्वमशौचत्वमपांक्तेयत्वमेव च ॥ ४२८ ॥
अस्पृश्यत्वमपाठित्वमसम्भाष्यत्वमेव च ।
मद्यमांसोपयोगित्वं तद्विक्रेतृत्वमेव च ॥ ४२९ ॥
देवेभ्यस्तत्प्रदातृत्वं तदुत्पादित्वमेव च ।
म्लेच्छादिदेशगमनं तत्सम्पर्कित्वमेव च ॥ ४३० ॥
महासाहसकारित्वं वेदाश्रोतृत्वमेव च ।
एतस्मात् कारणाद् देवि वेदमर्यादयानया ॥ ४३१ ॥
ब्रवीमि मदिरादानेष्वेषामेवाधिकारिता ।
दोषोऽणुरपि नैतेषां देवेभ्यो मद्यदानतः ॥ ४३२ ॥
फलातिरेकता चापि श्रूयते निगमादिषु ।
अतः प्रयत्नतः शूद्रो दद्याद् देव्यै परिश्नुतम् ॥ ४३३ ॥
तामेव वर्जयेद् विप्रः सदा प्राणात्ययेऽपि हि ।
निशम्यापीदृशान् दोषानथ चेद् दातुमिच्छति ॥ ४३४ ॥
स च सा च विजानाति धर्मं वा पापमेव वा ।
कदाचिदनुकल्पोक्तां दद्याद् देव्यै सुरां द्विजः ॥ ४३५ ॥

ब्रह्मा ने शूद्रों को इनसे विपरीत वस्तुयें दीं । तीनों वर्णों की सेवा, सब प्रकार के शिल्प से जीविकोपार्जन, वेदमन्त्र से रहित होना, आशीर्वाद न देना, अशुद्धता, द्विजपंक्ति में न बैठना, अस्पृश्यता, वेदपाठ न करना, द्विज आदि से वार्त्तालाप न करना, मद्य-माँस का उपयोग करना, उसका विक्रय करना, उसको देवताओं के लिये देना, उसका उत्पादन, म्लेच्छ आदि देशों को जाना, उनसे सम्पर्क करना, महासाहस अर्थात् दुःसाहस और वेदाश्रवण—ये सब शूद्रों को दिये गये । हे देवि! इस कारण इस वेदमर्यादा के आधार पर मदिरा-दान में इनके अधिकार की बात कर रहा हूँ । देवताओं के लिये मद्यदान से इनको कोई पाप नहीं लगता प्रत्युत निगम आदि में अधिक फल-लाभ सुनाई पड़ता है । इसलिये शूद्र को चाहिए कि वह प्रयत्नपूर्वक देवी के लिये मदिरा दान करे । उसको ब्राह्मण प्राण-सङ्कट में भी न दे । इस प्रकार के दोषों को सुनकर भी यदि ब्राह्मण

मदिरा देना चाहता है तो इसका धर्म अथवा पाप वह ब्राह्मण अथवा वह देवी जानती है । यदि आवश्यक हो अथवा प्रबल भक्ति हो तो देवी के लिये अनुकल्पोक्त मदिरा देनी चाहिये ॥ ४२७-४३५ ॥

[मदिराया द्वादशविधस्यानुकल्पस्याभिधानम्]

उपमद्यानि ते वच्मि तानि देव्यवधारय ।
आर्द्रकस्य गुडस्यापि समे भावे भवेत् सुरा ॥ ४३६ ॥
चिरन्तनं चारनालमाब्दिकं त्वार्द्धिकं तथा ।
ताम्रपात्रे तथा क्षौद्रं पयो गव्यं तथात्र च ॥ ४३७ ॥
नारिकेलोदकं कांस्ये रीतौ तालरसोऽपि च ।
रसालश्च (स्य) रसो रङ्गे शङ्खे वा पानसो द्रवः ॥ ४३८ ॥
मधूकपुटके द्राक्षा तत्पुष्पं तद्दलेऽपि च ।
चिञ्चारसः पद्मपत्रेऽश्वत्थे कारकपानकम् ॥ ४३९ ॥
उपमद्यानि चैतानि द्वादश स्युर्वरानने ।

मदिरा के बारह प्रकार के अनुकल्प—हे देवि! अब मैं तुमको उपमद्य बतला रहा हूँ । उनको समझो । १. अदरख और गुड समभाग लेकर दोनों के रस से सुरा बनती है । २. एक साल या छह माह पुराना आनाल (= माँड़ अथवा गेहूँ जौ के आँटे का घोल) ३-५. ताम्रपात्र में मधु, दूध और गव्य, ६. काँसा में नारियल का पानी, ७. पीतल में ताड़ का रस, ८. राङ्गा में आम का रस, ९. शङ्ख में कटहल का रस, १०. महुए के दोना में अङ्गूर उसका पुष्प और रस, ११. कमल के पत्ते पर इमली का रस, १२. पीपल के पत्ते के कारकपानक, हे वरानने! ये बारह उपमद्य हैं ॥ ४३६-४३९ ॥

[द्विजस्य मद्यस्थाने तदनुकल्पदानेऽधिकाराभिधानम्]

द्विजो दित्सति चेन्मद्यं दद्यादेतानि नो सुराम् ॥ ४४० ॥
एतान्यपि न देयानि सात्त्विकैर्धर्मभीरुभिः ।
मद्यं वाप्युपमद्यं वा मद्यं नाम न गच्छति ॥ ४४१ ॥
पातित्यं किन्तु नामीभिस्तैरेव पतितो भवेत् ।
इति ते कथितः कृत्स्नो निषेधो विधिरेव च ॥ ४४२ ॥
मद्यदाने वरारोहे शोधनं शृण्वतः परम् ।
मद्यानामुपमद्यानामेकमेव भवेद्धि तत् ॥ ४४३ ॥
ये प्रयच्छन्ति तेऽनेनमनुना शोधयेत्तु(?यन्तु) तत्।

द्विज का मद्य के अनुकल्प-दान में अधिकार—यदि द्विज मद्य देना चाहता है तो इन्हीं को दे सुरा को नहीं । किन्तु जो सात्त्विक और धर्मभीरु हैं, उनके द्वारा ये भी नहीं दिये जाने चाहिये । मद्य हो या उपमद्य मद्य का नाम पतित नहीं होता

किन्तु इनके द्वारा मद्यदायी पतित होता है । हे वरारोहे! इस प्रकार तुमको मद्यदान के विषय में विधि और निषेध बतलाये गये । इसके बाद शोधन सुनो । मद्यों और उपमद्यों का वह (= शोधन) एक ही होता है । जो लोग उसे देते हैं उनको इसी मन्त्र से उसका शोधन करना चाहिये ॥ ४४०-४४४ ॥

[मद्याय तदनुकल्पस्य च शोधनमन्त्रः]

तारः सारस्वतः पाशः कुलकान्ता स्मरो रमा ॥ ४४४ ॥
कूर्चोऽङ्कुशः शाकिनी च छन्दो योगिन्यनन्तरम् ।
प्रेतो भैरव्यमा शक्तिर्नृसिंहो डाकिनी तथा ॥ ४४५ ॥
प्रलयव्ययफेत्कारी कर्णिकाहारशृङ्खलाः ।
शेषे भासाभिधं कूटं चतुर्विंशतिरित्यतः ॥ ४४६ ॥
डाकिनीदैवतं ङेऽन्तं तथा चैव सुराबलिः ।
पुनरेव हि वक्तव्यं तद्वन्निर्ऋतिदैवतम् ॥ ४४७ ॥
पुनर्मांसबलिस्तद्वच्छुद्धिं देहि द्वयं ततः ।
दोषं नुदद्वयं प्रोच्य प्रणवद्वितयं ततः ॥ ४४८ ॥
कूर्चयुग्मं चास्त्रयुगं शिरोऽन्तो मनुरीरितः ।

मद्य और उसके अनुकल्प का शोधन मन्त्र—तार मेधा पाश कुलकान्ता स्मर रमा कूर्च अङ्कुश शाकिनी छन्द योगिनी प्रेत भैरवी अमा शक्ति नृसिंह डाकिनी प्रलय व्यय फेत्कारी कर्णिका हार शृङ्खला उसके अन्त में भासाकूट ये सब चौबीस हुए । इसके बाद 'डाकिनीदैवत' को ङेऽन्त कहना चाहिये । उसी प्रकार 'सुराबलि' को भी ङेऽन्त कहना चाहिये । पुनः उसी प्रकार 'निर्ऋतिदैवतं' और 'मांसबलि' को भी ङेऽन्त कहना चाहिये । 'शुद्धिं' के बाद 'देहि' को दो बार फिर 'दोषं' के पश्चात् 'नुद' को दो बार, दो बार प्रणव, दो बार कूर्च, दो बार अस्त्र अन्त में शिरोमन्त्र कहना चाहिये । यह मन्त्र कहा गया ।

(मन्त्र-स्वरूप—ॐ ऐं आं ह्रीं क्लीं श्रीं हुं क्रों फ्रें क्रफ्रैं छ्रीं स्हौः सौः इं ब्लूं क्ष्रौं ख्फ्रें ह्स्फ्रें रहर्छ्रक्षह्रौं ह्स्ख्फ्रें छ्ररक्षह्रीं ह्रक्षम्लैं रग्रौं क्षह्रम्लव्य्रऊं डाकिनीदैवताय सुराबलये निर्ऋतिदैवताय मांसबलये शुद्धिं देहि देहि दोषं नुद नुद ओं ओं हुं हुं फट् फट् स्वाहा) ॥ ४४४-४४८ ॥

एवं संशोध्य वस्तूनि सर्वाण्येव वरानने ॥ ४४९ ॥
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण समष्टिव्यष्टिशोधनम् ।
उक्तानामप्यनुक्तानां शोधितानामशोधिनाम् ॥ ४५० ॥
कृताकृतानां सर्वेषां शोधनेऽयं महामनुः ।
पृथक् पृथक्तया तत् तत् द्रव्यशुद्धिर्यदि प्रिये ॥ ४५१ ॥
कर्तुं न शक्यते तर्हि मन्त्रेणैतेन निश्चितम् ।

सर्वेषां शुद्धिरुदिता द्रव्याणामर्हणाजुषाम् ॥ ४५२ ॥
सर्वेषामुपचाराणां राजार्हाणामपि प्रिये ।
मन्त्रेणैकेन भवति विशुद्धिः शिववाक्यतः ॥ ४५३ ॥
तारं मैधत्रयं व्रीडां कामक्रोधौ वधूरमे ।
रावाङ्कुशौ तार्क्ष्यकाल्यौ सुधासोमौ रुचिक्रमौ ॥ ४५४ ॥
नृसिंहं मेखलाकुण्डे डाकिनीहारकर्णिकाः ।
तुरीयाहंसकूटौ च अस्त्रे ह्याग्नेयवारुणे ॥ ४५५ ॥
कूर्चमस्त्रत्रयं शीर्षं मन्त्रोऽयमुदितस्तव ।
यावन्ति शोध्यवस्तूनि सम्भवन्ति धरातले ॥ ४५६ ॥
तावन्त्यनेन मन्त्रेण शोधितानि स्युरीश्वरि ।
रीत्यानया द्रव्यशुद्धिं विधाय वरवर्णिनि ॥ ४५७ ॥

हे वरानने! इस प्रकार समस्त वस्तुओं का संशोधन कर वक्ष्यमाण मन्त्र से समष्टि एवं व्यष्टि शोधन करना चाहिये । उक्त-अनुक्त, शोधित-अशोधित, कृत और अकृत सबके शोधन के लिये यह मन्त्र है । हे प्रिये! यदि तत्तद् द्रव्य की शुद्धि पृथक्-पृथक् न की जा सके तो इस मन्त्र से समस्त योग्य द्रव्यों की शुद्धि कही गयी है । हे प्रिये! राजा के योग्य समस्त उपचारों की शिववाक्य के कारण एक ही मन्त्र से शुद्धि होती है । वह मन्त्र है—तार, तीन मेधा, लज्जा काम क्रोध वधू रमा राव अङ्कुश तार्क्ष्य काली अमृत सोम रुचि क्रम नृसिंह मेखला कुण्ड डाकिनी हार कर्णिका तुरीयाकूट हंसकूट आग्नेयकूट और वारुणकूट दो, कूर्च तीन अस्त्र शिर ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं ऐं ऐं ह्रीं क्लीं हूं स्त्रीं श्रीं फ्रें क्रों क्रौं क्रीं ग्लूं ग्लौं म्लां भ्रीं क्ष्रौं रक्ष्रीं क्ह्लश्रीं ख्फ्रें ह्क्षम्लैं छ्रक्षह्रीं ब्रक्षम्लसस्त्रछरुं ल्हतह्सम‍ैं फट् फट् रक्षम्लह्कसछव्म्रऊं ह्हलव्म्रकऊं हूं फट् फट् फट् स्वाहा) ।

हे देवि! यह मन्त्र तुमको बतलाया गया । पृथ्वीतल पर जितनी शोध्य वस्तुयें हैं, हे ईश्वरि! उतनी सब इस मन्त्र से शोधित होनी चाहिये । हे वरवर्णिनि! इस रीति से द्रव्यशुद्धि करने के बाद—॥ ४४९-४५७ ॥

[कामपीठासनस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

कामपीठासने वस्तु स्मरेदृष्यादि साधकः ।
तारादस्य ङसन्तं श्रीकामपीठोपवेशनम् ॥ ४५८ ॥
नारायण ऋषिः प्रोक्तः प्रतिष्ठाच्छन्द उच्यते ।
कूर्मरूपी विष्णुरपि देवता परिकीर्तिता ॥ ४५९ ॥
विनियोगस्तु पूजार्थं कामपीठोपवेशने ।
इति संस्मृत्य सिद्धार्थाक्षतानादाय पार्वति ॥ ४६० ॥

कामपीठ आसन के ऋषि आदि—कामपीठ आसन पर साधक ऋषि आदि

वस्तु का स्मरण करे । ओं के बाद 'श्रीकामपीठोपवेशन' का ङसन्त उच्चारित करना चाहिये । अर्थात् 'ओं अस्य श्रीकामपीठोपवेशनस्य' ऋषि नारायण कहे गये हैं । इसका छन्द प्रतिष्ठा कहा जाता है । इसके कूर्मरूपी विष्णु देवता कहे गये हैं । इसका विनियोग कामपीठोपवेशन में पूजा के लिये होता है । हे पार्वति! ऐसा स्मरण कर श्वेत सरसों और अक्षत को लेकर निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए ॥ ४५८-४६० ॥

[समन्त्र:विघ्नापसारणविधि:]

तारं ततो महाक्रोधं दारयद्वितयं ततः ।
विघ्नं हूं फट् सर्वशेषे विकीर्यानिन तान् प्रिये ॥ ४६१ ॥
पार्ष्णिघातत्रयेणान्तरायान् भौमान् विनाशयेत् ।
तालत्रयेणान्तरिक्षान् दिव्यान् दिव्येक्षणेक्षणैः ॥ ४६२ ॥
धृत्वासनं ततो ब्रूयाद् वैदिकं तान्त्रिकं मनुम् ।

समन्त्र विघ्नापसारण विधि—तार उसके बाद महाक्रोध फिर दो बार 'दारय' और सबके अन्त में 'विघ्नं हूं फट्' कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं क्षूं दारय दारय विघ्नं हूं फट्) ।

हे प्रिये! इस मन्त्र से उनको बिखेर कर तीन बार ऐड़ी के घात से पृथ्वी के अन्दर रहने वाले विघ्नों का नाश करना चाहिये । फिर तीन बार ताली पीटकर अन्तरिक्ष में वर्त्तमान तथा दिव्य आँखों से देखकर स्वर्ग में स्थित विघ्नों को हटाना चाहिये । इसके बाद आसन पर बैठकर वैदिक और तान्त्रिक मन्त्रोच्चार करना चाहिये ॥ ४६१-४६३ ॥

[आसनशुद्धिमन्त्र:]

पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता ॥ ४६३ ॥
त्वं च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम् ।
आदावमुं पठित्वैवं तान्त्रिकं मन्त्रमुच्चरेत् ॥ ४६४ ॥

आसन शुद्धि मन्त्र—'हे पृथ्वि! तुमने लोकों को धारण किया है और तुमको विष्णु ने धारण किया है । हे देवि! तुम मुझको धारण करो और आसन को पवित्र करो ।' पहले इस मन्त्र को पढ़कर फिर तान्त्रिक मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये ॥ ४६३-४६४ ॥

[आसनशुद्धेस्तान्त्रिकमन्त्र:]

तारं मैधं धराबीजं बिन्दुनादविभूषितम् ।
मामुक्त्वा धारयद्वन्द्वमासनं पावय द्वयम् ॥ ४६५ ॥
पवित्रे वैष्णवि प्रोच्य हूं फट् स्वाहा च पश्चिमे ।

इति तान्त्रिकमुच्चार्य प्रणवं समुदाचरेत् ॥ ४६६ ॥
आधारशक्तिकमलासनाय हृदयं ततः ।
तारं मैधं कामपीठाय नमस्तदनन्तरम् ॥ ४६७ ॥
एवं सम्पूज्य निःश्रेण्यस्त्राभ्यां तत्रोपविश्य हि ।
बध्वा वीराद्यासनं च स्थित्वा चोदङ्मुखस्तथा ॥ ४६८ ॥
वामे गुरुभ्यो दक्षे च गणेशाय ततः परम् ।
मध्ये श्रीगुह्यकाल्यै च नमः सर्वत्र योजयेत् ॥ ४६९ ॥
पुष्पं गृहीत्वा गन्धाक्तं वक्ष्यमाणं मनुं पठन् ।
कराभ्यां मर्दयित्वा च समाघ्रायोपनासिकम् ॥ ४७० ॥
वामभागे त्यजेत् पुष्पं दूरतोऽनवलोकयन् ।
तारं मायां तथा कूर्चं फट्त्रयं वह्निवल्लभा ॥ ४७१ ॥

आसन-शुद्धि का तान्त्रिक मन्त्र—तार मेधा धराबीज जो कि बिन्दु और नाद से युक्त हो का उल्लेख कर 'माम्' कहने के बाद 'धारय' को दो बार फिर 'आसनं' के पश्चात् 'पावय' को दो बार कहे । 'पवित्रे वैष्णवि' कहकर अन्त में 'हूं फट् स्वाहा' कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं ब्लक्ष्स्त्रूं मां धारय धारय आसनं पावय पावय पवित्रे वैष्णवि हूं फट् स्वाहा) ।

इसके पश्चात् प्रणव का उच्चारण कर 'आधारशक्तिकमलासनाय' के बाद हृदय अर्थात् 'नमः' कहना चाहिये । फिर तार मेधा के पश्चात् 'कामपीठाय नमः' इससे पूजा करे ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं आधारशक्तिकमलासनाय नमः । ओं ऐं कामपीठाय नमः) ।

फिर निःश्रेणि अर्थात् 'अं' और अस्त्र (= फट्) कहते हुए उस पर बैठे । वीरासन या अन्य किसी आसन से उत्तर मुख बैठना चाहिये । बायीं ओर गुरु, दाहिनी ओर गणेश और मध्य में गुह्यकाली के लिये सर्वत्र 'नमः' जोड़ना चाहिये । गन्धयुक्त पुष्प लेकर वक्ष्यमाण मन्त्र का पाठ करना चाहिये । उस समय पुष्प को दोनों हाथों से मलकर नाक से सूँघकर पुष्प को न देखते हुए बायीं ओर दूर फेंक देना चाहिये । मन्त्र है—तार माया कूर्च तीन फट् और अग्निवल्लभा ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ह्रीं हूं फट् फट् फट् स्वाहा) ॥ ४६५-४७१ ॥

[भूतशुद्धिविधिः]

भूतशुद्धिं ततः कुर्यादघतृण्या(घमृष्ट्या?) महारणिम् ।
तत्प्रकारं प्रवक्ष्यामि मनो दत्त्वा निशामय ॥ ४७२ ॥
हृत्पुण्डरीकादात्मानं ज्वलद्दीपशिखाकृतिम् ।

सुषुम्णावर्त्मना ब्रह्मबीजमन्त्रेण मस्तके ॥ ४७३ ॥
सहस्रदलमध्यस्थे संयोज्य परमात्मनि ।
पञ्च भूतानि वै लिङ्गशरीरप्रकृतीनि हि ॥ ४७४ ॥
तत्र तत्र विलीनानि तत्तद्रूपैर्विचिन्त्य च ।
देहभूमिं लिङ्गपीठभुवि वारिणि तज्जलम् ॥ ४७५ ॥
हृत्तेजसि च तत्तेजोमुखसंस्थे समीरणे ।
तं वायुं भालगगने तदाकाशं विचिन्त्य च ॥ ४७६ ॥
जीवात्मानं च संयोज्य परमात्मनि निश्चलम् ।
बुद्ध्यहङ्कारप्रभृतीन् सर्वान् लीनान् विभाव्य च ॥ ४७७ ॥
वामनासापुटेनैव पूरयित्वा समीरणम् ।
सबिन्दुं वायुबीजं च धूम्रवर्णं विभाव्य च ॥ ४७८ ॥

भूतशुद्धि—इसके बाद अघमर्षण अर्थात् पापपुरुष के दाह के द्वारा महाअरणि नामक भूतशुद्धि करनी चाहिये । उसकी विधि मैं बतलाऊँगा । मन लगाकर सुनो । हृदयकमल से जलती हुई दीपशिखा के समान अपनी आत्मा को सुषुम्ना के रास्ते निकाल कर ब्रह्मबीज मन्त्र (= हौं/ॐ) के द्वारा मस्तक में स्थित सहस्रदल कमल के मध्य-स्थित परमात्मा के साथ जोड़ दें । लिङ्ग शरीर के मूलभूत पाँच महाभूतों को तत्तद् रूप से विलीन सोचकर देह भूमि को लिङ्गपीठ-भूमि में, उसके जल को जल में, उसके तेज को हृदय के तेज में पुन: तेज को मुख में स्थित वायु में, उस वायु को भालस्थित गगन में जोड़ दे । फिर आकाश का ध्यान कर जीवात्मा को परमात्मा में स्थित रूप से जोड़कर बुद्धि अहङ्कार आदि सबको लीन समझता हुआ बाँयें नासापुट से वायु को अन्दर ले जाकर बिन्दुसहित वायु बीज (= यं) का धूम्रवर्ण के रूप में ध्यान करे ॥ ४७२-४७८ ॥

तदेव बीजं देवेशि पञ्चाशद्वारमीरयेत् ।
तदुत्पन्नेन वातेन शुष्कं देहं विचिन्त्य च ॥ ४७९ ॥
दक्षनासापुटेनैव रेचयेद् वरवर्णिनि ।
पुनस्तेनैव मार्गेण वायुमुत्तोल्य सर्वशः ॥ ४८० ॥
सनादं तेजसो बीजं रक्तवर्णं समुच्चरन् ।
पञ्चाशद् वारं देवेशि दग्धं देहं विचिन्त्य च ॥ ४८१ ॥
वामनासापुटेनैव भस्मरूपेण पाप्मना ।
सहैव रेचयेद् वायुं ततो नासापुटेन च ॥ ४८२ ॥
वामेन वायुमुत्तोल्य सहस्रदलमध्यगम् ।
विभाव्य परमात्मानं चन्द्ररूपं वरानने ॥ ४८३ ॥
सानुस्वारं वारिबीजं पञ्चाशद्वारमुच्चरन् ।
तस्माच्चन्द्रात् सुधावृष्ट्या देहमाप्लाव्य सुन्दरि ॥ ४८४ ॥

भूबीजेन सनादेन शुद्धं संयोज्य विग्रहम् ।
लीनीकृतानि यानीह पञ्चभूतानि वै पुरा ॥ ४८५ ॥
यथास्थानं स्थापयित्वा ब्रह्मबीजं पुनर्गृणन् ।
अहङ्कारादिभिस्तत्त्वैः सहैव परमात्मनः ॥ ४८६ ॥
जीवात्मानं समाकृष्य स्थापयित्वा हृदम्बुजे ।
देवरूपमथात्मानं चिन्तयेत् क्षणमूर्जितः ॥ ४८७ ॥
भूतशुद्धिरियं प्रोक्ता महाघौघप्रणाशिनी ।

हे देवेशि! उस बीज का पचास बार उच्चारण कर उस उत्पन्न वायु से देह के शुष्क होने की भावना करे । तत्पश्चात् हे वरवर्णिनि! दाँयें नासापुट से उस वायु को बाहर निकाल देना चाहिये । पुन: उसी मार्ग से वायु को सब प्रकार से उत्तोलित (= स्थिर) कर नादयुक्त तेजोबीज (= रं) का रक्तवर्ण के रूप में ध्यान करते हुऐ पचास बार उच्चारण करना चाहिये । हे देवेशि! फिर शरीर को उसके द्वारा जला हुआ ध्यान कर बाँयें नासापुट से ही पाप के साथ भस्मरूप से उसको वायु के साथ बाहर निकाल देना चाहिये । हे वरानने! फिर बाँयें नासारन्ध्र से वायु को अन्दर ले जाकर परमात्मा की चन्द्ररूपी सहस्रदल के मध्य स्थित भावना कर वारि बीज (= वं) का अनुस्वारसहित पचास बार उच्चारण करे । हे सुन्दरि! उस चन्द्र से निकली सुधादृष्टि से देह को आप्लावित कर शरीर को नादयुक्त भूबीज (= लं) से जोड़ दे । पहले जो पञ्चमहाभूत लीन कर दिये गये थे, उनको यथास्थान स्थापित कर पुन: ब्रह्म बीज (= ॐ) का उच्चारण कर अहङ्कार आदि तत्त्वों के साथ जीवात्मा को परमात्मा से खींच कर हृदय-कमल में स्थापित करने के बाद अपने को देवस्वरूप तथा एक क्षण में उर्जस्वल समझना चाहिये । यह महापापसमूह की प्रणाशिनी भूतशुद्धि तुमको बतलायी गयी ॥ ४७९-४८८ ॥

[भूतापसारणविधिः]

पौराणिकेन मन्त्रेण तान्त्रिकेण तथैव च ॥ ४८८ ॥
भूतापसारणं कुर्याद् विकीर्य श्वेतसर्षपान् ।
अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः ॥ ४८९ ॥
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ।
वेतालाश्च पिशाचाश्च राक्षसाश्च सरीसृपाः ॥ ४९० ॥
अपसर्पन्तु ते सर्वे कालीपूजां करोम्यहम् ।
मैधमायामहाक्रोधप्रेतकूर्चोग्रभैरवीः ॥ ४९१ ॥
नृसिंहं डाकिनीं चैव फेत्कारीं तदनन्तरम् ।
पिशाचभूतवेतालराक्षसानिति कीर्तयेत् ॥ ४९२ ॥
उत्सारयद्वयं प्रोच्य यावत् पूजां करोम्यहम् ।
अन्ते कूर्चास्त्रमूर्द्धानो भूतप्रोत्सारणे मनुः ॥ ४९३ ॥

भूतशुद्धिं विधायेत्थं स्वं स्वं ध्यानं विधाय च ।
तत्तन्मन्त्रषडङ्गीयन्यासं कुर्वीत साधकः ॥ ४९४ ॥

भूतापसारण-विधि—साधक को चाहिये कि वह पौराणिक और तान्त्रिक मन्त्र से सफेद सरसों को बिखेर कर भूतापसारण करे । पौराणिकमन्त्र—वे भूत जो पृथ्वी पर स्थित हैं वे दूर भाग जायँ । जो भूत विघ्न करने वाले हैं वे शिव की आज्ञा से नष्ट हो जायँ । जो वेताल पिशाच राक्षस और सरीसृप (= रेंग कर चलने वाले साँप आदि) हैं, वे सब भाग जाँय । मैं काली पूजा करने जा रहा हूँ—यह पौराणिक मन्त्र हैं । तान्त्रिक मन्त्र निम्नलिखित है । मेधा माया महाक्रोध प्रेत कूर्च उग्र भैरवी नृसिंह डाकिनी फेत्कारी उसके बाद पिशाच भूत बेताल राक्षस को कहना चाहिये । 'उत्सारय' को दो बार कहकर 'मैं जब तक पूजा करूँगा' कहे । अन्त में कूर्च अस्त्र और शिर कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं ह्रीं क्षूं स्हौः हूं ढ्रीं सौः क्ष्रौं ख्फ्रें ह्स्ख्फ्रें पिशाचभूत वेतालराक्षसान् उत्सारय उत्सारय यावत् पूजां करोम्यहं हूं फट् स्वाहा) ।

इस प्रकार भूतशुद्धि कर अपना-अपना ध्यान करने के बाद साधक को तत्तत् मन्त्र और उनके षडङ्ग न्यास करने चाहिये ॥ ४८८-४९४ ॥

[प्राणायामविधिः]

प्राणायामं ततः कुर्यात् तमपि व्याहरामि ते ।
मूलमन्त्रस्य जापेन वारं षोडशकेन हि ॥ ४९५ ॥
वामनासापुटेनैव पूरयित्वाऽनिलं बलात् ।
पुनस्तस्य चतुःषष्ट्यावृत्त्या वायुं विकुम्भ्य च ॥ ४९६ ॥
पुनर्द्वात्रिंशदावृत्त्या मूलमन्त्रस्य पार्वति ।
नासापुटेन दक्षेण रेचयेत् सकलानिलम् ॥ ४९७ ॥
प्रकारेणेदृशेनैकः प्राणायामोऽभिजायते ।
आवश्यकं तत्त्रयं हि फलाधिक्यं तदुच्चये ॥ ४९८ ॥

प्राणायाम विधि—उसके बाद प्राणायाम करना चाहिये । वह भी मैं तुमको बतला रहा हूँ । मूलमन्त्र का सोलह बार जप के साथ बाँयें नासापुट से वायु को अन्दर भरकर पुनः उस मन्त्र का चौंसठ बार वायु को रोककर जप करने के बाद हे पार्वति! दाँयें नासारन्ध्र से बत्तीस बार जप करते हुए वायु को बाहर निकालना चाहिये। इस प्रकार से एक प्राणायाम होता है । तीन प्राणायाम आवश्यक होता है । उससे अधिक करने पर फलाधिक्य होता है ॥ ४९५-४९८ ॥

[मातृकान्यासः]

आरभेत ततो न्यासं मातृकाख्यं महाफलम् ।
स च नानाविधो ज्ञेयो यावच्छक्यं विधीयते ॥ ४९९ ॥

भेदाः कियन्तस्तस्यैव प्रकाश्यन्ते मया तव ।
सर्व एव हि कर्तव्यो नास्त्यत्र नियमः प्रिये ॥ ५०० ॥
अकृते नैव दोषः स्यात् फलाधिक्यं कृते पुनः ।
तत्रादावभिधास्येऽहं शुद्धं प्रकृतिरूपिणम् ॥ ५०१ ॥
ततोऽनु सकलान् वक्ष्ये सर्वान् विकृतिरूपिणः ।

मातृकान्यास—इसके बाद महाफल देने वाले मातृकान्यास का प्रारम्भ करना चाहिये । वह अनेक प्रकार का समझना चाहिये । जितनी शक्ति हो उतना किया जाता है । उसके कुछ भेद मेरे द्वारा तुमको बतलाये जा रहे हैं । हे प्रिये! सभी को करना चाहिये । ऐसा कोई नियम नहीं है । उसको न करने पर कोई दोष नहीं होता और करने पर फलाधिक्य होता है । उनमें से पहले मैं शुद्ध प्रकृतिन्यास को बतलाऊँगा । इसके बाद समस्त विकृति न्यासों का वर्णन करूँगा ॥ ४९९-५०२ ॥

[मातृकान्यासस्य ऋष्याद्यभिधानम्]

न्यासस्य मातृकाख्यस्य ब्रह्मा ऋर्षिरुदीर्यते ॥ ५०२ ॥
छन्दो गायत्र्यपि प्रोक्ता देवतास्य पुनः प्रिये ।
मातृकाशब्दचरमे सरस्वत्यभिधीयते ॥ ५०३ ॥
हुलाबीजानि चोक्तानि स्वराः शक्तय एव च ।
तत्तद्दैवतमन्त्राङ्गत्वेनेति च निरूप्य हि ॥ ५०४ ॥
मातृकान्यास एवास्य विनियोग इतीष्यते ।

मातृकान्यास के ऋषि आदि—मातृका नामक न्यास के ऋषि ब्रह्मा कहे जाते हैं । छन्द गायत्री और हे प्रिये! इसकी देवता मातृका सरस्वती है । बीज हुला और शक्तियाँ स्वरों को बतलाया गया है । तत्तद् देवता के मन्त्र के अङ्ग के रूप में मातृकान्यास में इसका विनियोग होता है ॥ ५०२-५०५ ॥

[मातृकान्यासान्तर्गत ऋष्यादि न्यासः]

स्मृत्वा करपुटेनैवं चरेदृष्यादिमस्य हि ॥ ५०५ ॥
ब्रह्मणे ऋषये हार्दं शिरसि प्रतिविन्यसेत् ।
गायत्र्यै छन्दसे हृच्च मुख एव निवेशयेत् ॥ ५०६ ॥
श्रीमातृकासरस्वत्यै देवतायै नमो हृदि ।
हल्भ्यो बीजेभ्यो नमश्च गुह्यमध्ये प्रविन्यसेत् ॥ ५०७ ॥
स्वरेभ्यस्त्वथ शक्तिभ्यो नमो युञ्जीत पादयोः ।
प्रणवाद्यानिमान् सर्वान् विन्यस्य स्वकलेवरे ॥ ५०८ ॥
नमः श्रीगुह्यकालीति मन्त्राङ्गत्वेन चेत्यपि ।
वर्णन्यासेऽपि च विनियोगाय नम इत्यपि ॥ ५०९ ॥
करसम्पुटयोर्न्यस्येदृष्यादिर्मातृकाभिधः ।

मातृकान्यास के अन्तर्गत ऋष्यादि न्यास—इसके ऋषि आदि का स्मरण करपुट से करना चाहिये । वह क्रम इस प्रकार है—

ॐ ब्रह्मणे ऋषये नमः । (शिर में)
ॐ गायत्र्यै छन्दसे नमः । (मुख में)
ॐ मातृकासरस्वत्यै देवतायै नमः । (हृदय में)
ॐ हल्भ्यो बीजेभ्यो नमः । (गुह्यमध्य में)
ॐ स्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः । (दोनों पैरों में)

ॐ ब्रह्मणे ऋषये गायत्र्यै छन्दसे मातृकासरस्वत्यै देवतायै हल्भ्यः बीजेभ्यो स्वरेभ्यो शक्तिभ्यो नमः । (सब अङ्गों में)

मन्त्र के अङ्ग के रूप में 'ॐ नमः श्रीगुह्यकालीविनियोगाय' कहना चाहिये ।

इसी प्रकार 'मम श्रीगुह्यकालीमन्त्राङ्गत्वेन वर्णन्यासे विनियोगाय नमः' कहकर कर सम्पुट में न्यास करना चाहिये ॥ ५०५-५०९ ॥

[मातृकान्यासान्तर्गतकरषडङ्गन्यासः]

एतस्या एव हि करषडङ्गन्यास उच्यते ॥ ५१० ॥
कुणपादिशतघ्नान्तं मध्ये वै बीजपञ्चकम् ।
आद्यन्तयोर्नादपाशौ हृदयाय नमो हृदि ॥ ५११ ॥
शीर्षकादिमहेत्यन्तं पञ्चबीजानि मध्यतः ।
प्रथमान्त्ये क्षेत्रकले शिरसेऽनु शिरो मनुः ॥ ५१२ ॥
कीलादिरज्जुचरमं मध्ये स्यादर्णपञ्चकम् ।
स्थाणुश (स) वौं पुरः पश्चात् शिखायै वषडित्यपि ॥ ५१३ ॥
उन्माथाद्यि(?द्य)रुणीशेषं पञ्चबीजानि मध्यतः ।
दुर्द्धर्षवाग्भवावादिचरमस्थौ वरानने ॥ ५१४ ॥
वर्मणे वर्ममनुना सहितः परिकीर्तितः ।
छुरिका पूर्वपाल्यन्तं मध्यतोऽक्षरपञ्चकम् ॥ ५१५ ॥
ताराश्वत्थावादिशेषौ ततो नेत्रत्रयाय हि ।
नेत्रमन्त्रेण सहितः कथितस्तव सुन्दरि ॥ ५१६ ॥
कुण्यादिद्रुमपर्यन्ता भवेन् मध्ये नवाक्षरी ।
आद्यन्ते नादनिःश्रेण्यावस्त्रायास्त्रमनूद्धृतः ॥ ५१७ ॥
इति ते मातृकान्यासः कराङ्गन्यास ईरितः ।

मातृकान्यासान्तर्गत करषडङ्गन्यास—इसी का करषडङ्गन्यास कहा जा रहा है । कुणप (= कं) से लेकर शतघ्न (= ङं) तक के पाँच बीज अर्थात् कं खं गं घं ङं, इनके आदि में नाद (= अं) और अन्त में पाश (= आं) फिर 'हृदयाय

नमः' कहकर हृदय में न्यास करना चाहिये । शीर्ष (= चं) से लेकर महा (= ञं) तक बीच में पाँच अक्षर तथा आदि और अन्त में क्षेत्र (= इं) और कला (= ईं) यह शिर के लिये शिरो मन्त्र है । कीलक (= टं) से लेकर रज्जु (= णं) तक के पाँच अक्षर उसके पहले स्थाणु (= उं) और अन्त में सर्व (ऊँ) यह 'शिखायै वषट्' है । उन्माथ (= तं) से लेकर रुणी (= नं) तक के पाँच बीज मध्य में और उनसे पहले दुर्द्धर्ष (= एं) और अन्त में वाग्भव (= ऐं) यह 'कवचाय हुम्' कवच मनु के साथ कहा गया । क्षुरिका (= पं) और अन्त में पालि (= मं), मध्य में पाँच अक्षर अर्थात् 'प' से 'म' तक तथा पहले तार (= ओं) और अन्त में अश्वत्थ (= औं) यह 'नेत्रत्रयाय वौषट्' के लिये नेत्रमन्त्र कहा गया । कुणि (= य) से लेकर द्रुम (= क्ष) पर्यन्त पाँच मध्य में और उनके आदि में नाद (= अं) और अन्त में निःश्रावणी ये 'अस्त्राय फट्' के लिये अस्त्र मन्त्र उद्धृत किया गया । इस प्रकार तुमको मातृका-न्यास कराङ्गन्यास बतलाया गया ॥ ५१०-५१७ ॥

[मातृकाध्यानं पूजनं च]

शृण्वतो मातृकाध्यानं यद्ध्यात्वा न्यासमाचरेत् ॥ ५१८ ॥
मातृका श्वेतदेहाभा त्रिनेत्रा शशिशेखरा ।
पञ्चाशद्वर्णरचितमुखबाहुशिरःपदा ॥ ५१९ ॥
चतुर्भुजा वामदोर्भ्यां सुधाकुम्भं च पुस्तकम् ।
दधती दक्षहस्ताभ्यां मुद्रामक्षस्रजं तथा ॥ ५२० ॥
तुङ्गपीनस्तनी स्मेरमुखी श्वेताम्बुजासना ।
ध्यात्वेत्थं मानसैरेवोपचारैः परिपूज्य च ॥ ५२१ ॥

मातृका का ध्यान एवं पूजन—इसके बाद मातृका-ध्यान को सुनो । इसका ध्यान करने के बाद न्यास करना चाहिये । मातृका का शरीर श्वेताभ है । वह तीन नेत्रों तथा मस्तक पर चन्द्रमा वाली बतलाई गई है । उसके मुख, भुजायें, शिर और पैर पचास वर्णों से रचित हैं। चार भुजाओं वाली वह बाँयीं दो भुजाओं से अमृतकलश और पुस्तक तथा दाँयीं दो भुजाओं से वरद मुद्रा एवं अक्षमाला धारण की हुई है । ऊँचे विशाल स्तनों वाली वह स्मेरमुखी है तथा कमल के आसन पर विराजमान है । इस प्रकार उसका ध्यान कर तथा मानस उपचारों से उसकी पूजा करने के बाद— ॥ ५१८-५२१ ॥

[सर्वाङ्गेषु अक्षरविन्यासक्रमः]

अकारादिक्षकारान्तान् वर्णान् बिन्दुसमन्वितान् ।
अङ्गेषु वक्ष्यमाणेषु विन्यसेदक्षरान् क्रमात् ॥ ५२२ ॥
ललाटे मुखवृत्ते च दक्षे नेत्रेऽक्षिण वामके ।
दक्षकर्णे वामकर्णे दक्षनासापुटे ततः ॥ ५२३ ॥

वामनासापुटे दक्षे गण्डे गण्डेऽथ वामके ।
ओष्ठेऽधरे चोर्ध्वदन्तेऽधोदन्ते मूर्द्धजिह्वयोः ॥ ५२४ ॥
दक्षिणे भुजमूले च कूर्परे मणिबन्धके ।
मूलाग्रयोरङ्गुलीनामेवं वामभुजेऽस्य च ॥ ५२५ ॥
ततो दक्षिणपन्मूले जानुमध्ये च गुल्फके ।
पादाङ्गुलीनां मूलेषु तथैवाग्रे ततः परम् ॥ ५२६ ॥
वामाङ्घ्रेरप्येवमेव दक्षपार्श्वेऽनु वामके ।
पृष्ठे नाभौ च जठरे हृद्यंसे दक्षिणे ततः ॥ ५२७ ॥
पुनः ककुदि वामांसे हृदादौ दक्षिणे करे ।
हृदादावथ वामेऽपि तदाद्यो दक्षवामयोः ॥ ५२८ ॥
पादयोरथ सर्वाङ्गव्यापकं तदनु स्मृतम् ।
इति स्थानानि सर्वाणि क्रमेण कथितानि ते ॥ ५२९ ॥
भेदानथास्याः नामानि ब्रवीमि कमलानने ।

सब अङ्गों में अक्षरन्यास—अकार से क्षकार तक के अक्षरों का बिन्दु के साथ वक्ष्यमाण अङ्गों में क्रम से न्यास करना चाहिये । वे अङ्ग हैं—ललाट, मुखमण्डल, दाँयाँ नेत्र, बाँयाँ नेत्र, दाँयाँ कान, बाँयाँ कान, दक्षिण नासापुट, वाम नासापुट, दाँयाँ गण्ड, बाँयाँ गण्ड, ओष्ठ, अधर, ऊर्ध्वदन्त, अधोदन्त, मूर्धा, जिह्वा, दक्षिण भुजमूल, कोहनी, कलाई, अङ्गुलियों के मूल एवं अग्रभाग, वामभुजा (वाम कूर्पर, वाममणिबन्ध, वामाङ्गुलि मूल, वामाङ्गुल्यग्र), दाँयें पैर का मूल, जानुमध्य, गुल्फ (= ऐड़ी), पैर की अङ्गुलियों का मूल, पैर की अङ्गुलियों का अग्रभाग, इसी प्रकार बाँयें पैर का मूल, जानुमध्य गुल्फ, पैर की अङ्गुलियों का मूल, उनके अग्रभाग, दाँयाँ पार्श्व, बाँयाँ पार्श्व, पीठ, नाभि, पेट, हृदय, दक्षिण स्कन्ध, दक्षिण ककुद, वाम स्कन्ध, वाम ककुद, दाँयाँ हाथ, बाँयाँ हाथ, दाँयाँ पैर, बाँयाँ पैर उसके पश्चात् सर्वाङ्ग व्यापक न्यास होता है । इस प्रकार तुमको सारे स्थान क्रम से कह दिये गये । हे कमलानने! अब इसके नाम और भेदों को कह रहा हूँ ॥ ५२२-५३०- ॥

[सामान्यतः मातृकाया द्वादशप्रकाराभिधानम्]

निस्तारा केवला प्रोक्ता शुद्धादौ प्रणवान्विता ॥ ५३० ॥
अन्तेऽपि तारसंयुक्ता कालातीता निगद्यते ।
निर्बिन्दुभिरकाराद्यैर्नित्या सा परिकीर्तिता ॥ ५३१ ॥
एषैवादौ सतारा चेत् ज्ञानदा कथ्यते बुधैः ।
अन्तेऽपि तेन सहिता मोक्षदा परिकीर्तिता ॥ ५३२ ॥
विपरीतक्रमेणैषा चेत् क्षकारपुरस्सराः ।
पुनः षडन्या जायन्ते मातृका वरवर्णिनि ॥ ५३३ ॥
स्थूला सूक्ष्मा स्वप्रकाशाऽविग्रहा निर्गुणाऽमृता ।

इति द्वादशधा प्रोक्ताः सामान्या मातृकाः प्रिये ॥ ५३४ ॥
सर्वेषामेव देवानामर्च्या न्यासा इमे मताः ।

सामान्य मातृका न्यास—तार रहित (मातृका) 'केवला' कही गयी है । पहले प्रणव लगी हुई यह 'शुद्धा' कही जाती है । आदि और अन्त में भी प्रणव से युक्त हो तो वह 'कालातीता' कही जाती है । बिन्दुरहित अकार आदि रूपा हो तो वह 'नित्या' कही गयी है । यही यदि आदि में ओंकारयुक्त हो तो विद्वान् लोग उसे 'ज्ञानदा' कहते हैं । अन्त में भी यह वह उस (अर्थात् तार) के सहित हो तो वह 'मोक्षदा' कही जाती है । हे वरवर्णिनि! इसी प्रकार विपरीत क्रम से अर्थात् क्षकार से लेकर अकार तक यह अन्य छह प्रकार की होती है । उपर्युक्त छह प्रकार के साथ स्थूला, सूक्ष्मा, स्वप्रकाशा, अविग्रहा, निर्गुणा और अमृता को लेकर हे प्रिये! सामान्य मातृका कुल बारह प्रकार की कही गयी है। ये न्यास समस्त देवों के अर्च्य माने गये हैं ॥ ५३०-५३४ ॥

[विशेषमातृकान्यासाभिधानम्]

विशेषमधुना वच्मि शृणुष्व कलभाषिणि ॥ ५३५ ॥
केशवादिमिमामेव वैष्णवाः परिकुर्वते ।
श्रीकण्ठादिं तथा शैवाः सौरा रव्यादिमेव च ॥ ५३६ ॥
हेरम्बादिं च गाणेशाः स्वस्वेष्टाख्यपुरस्सराः ।
शाक्तेष्वपि प्रिये भूयान् विशेषः कीर्त्यते जनैः ॥ ५३७ ॥
भैरव्यादिं त्रैपुरेयाः पाशादिं भौवनेश्वराः ।
सारस्वताश्च मैधादिं रमादिं कामला अपि ॥ ५३८ ॥
एवं स्वस्वेष्टदैवत्यबीजादिं सर्व एव हि ।
कुर्वते स्वस्वतन्त्रोक्तकीर्तितां मातृकां बुधाः ॥ ५३९ ॥

विशेष मातृका न्यास—हे मृदुभाषिणि! अब विशेष बतला रहा हूँ, सुनो। वैष्णव लोग इसको केशवादि करते हैं (अर्थात् पहले केशव नाम लेकर फिर न्यास करते हैं) । शैव लोग श्रीकण्ठादि, सूर्य सम्प्रदाय वाले ख्यादि, गाणपत्य लोग हेरम्बादि, इस प्रकार अपने-अपने इष्ट देव का कथन कर फिर श्रेष्ठ न्यास करते हैं। हे प्रिये! शाक्तों में और विशेष की चर्चा है । त्रिपुरासम्प्रदाय वाले आदि में भैरवी, भुवनेश्वरी वाले पाश, सारस्वत लोग मेधा, लक्ष्मी वाले रमा बीजों को कहते हैं। इस प्रकार सब के सब विद्वान् प्रारम्भ में अपने इष्टदेव के बीजाक्षर का प्रयोग करते हैं । फिर अपने-अपने तन्त्र में उक्त मातृका का न्यास करते हैं ॥५३५-५३९॥

[गुह्यकाल्या मातृकान्यासे विशेषाणामभिधानम्]

अतः परं गुह्यकाल्या मातृकान्यास ईश्वरि ।
विशेषाः सन्ति ये येऽस्मिन् कथयामि निशाम्यताम् ॥ ५४० ॥

त एव मातृकावर्णा बिन्दुमन्तो विसर्गिणः ।
सृष्टिक्रमस्थिता वापि संहारक्रमगाश्च ये ॥ ५४१ ॥
तत्तत्स्थानेषु विन्यस्याः किन्तु बीजोद्भवा भिदाः ।
आद्यस्थितैस्त्रपाबीजैः सिद्धिदा मातृकोच्यते ॥ ५४२ ॥
तैरेव पुनरन्तःस्थैः कौलिकी परिपठ्यते ।
तेषामेवादिसंस्थाभिर्योगिनीभिः करालिनी ॥ ५४३ ॥
अमूभिश्चरमस्थाभिर्विरजेति निगद्यते ।
रावाद्यैर्भोगदा ख्याता तदन्तैर्विजयापि च ॥ ५४४ ॥
गुह्यकाल्या मातृकासु विशेषाः परिकीर्तिताः ।

गुह्यकाली के मातृका-न्यास में विशेषण—हे ईश्वरि! इसके बाद गुह्यकाली के इस मातृका न्यास में जो विशेष है, उनको कह रहा हूँ । सुनो, वे ही मातृका वर्ण (अकार आदि) बिन्दु के साथ चाहे सृष्टि क्रम से या संहार क्रम से तत्तत् स्थानों में न्यस्त किये जाने चाहिये । इनके भेद अन्य बीजों के कारण हैं । यदि पहले त्रपा बीज (= ह्रीं) से युक्त हों तो यह 'सिद्धिदा' मातृका कही जाती है । वे ही अगर अन्तःस्थ (अर्थात् अन्त में त्रपा बीज वाले) हों तो वह मातृका 'कौलिकी' पढ़ी जाती है । उन्हीं मातृकाओं के आदि में यदि योगिनी बीज (= छ्रीं) हो तो वे 'करालिनी' कही जाती हैं। यही बीज यदि उनके अन्त में हो तो उसे 'विरजा' कहा जाता है । आदि में राव (= फ्रें) हो तो 'भोगदा' कही गयी है और यदि अन्त में 'फ्रें' हो तो 'विजया' नाम होता है । इस प्रकार गुह्यकाली के मातृका न्यास में विशेष कहे गये ॥ ५४०-५४४ ॥

[वक्ष्यमाणस्य विराण्मातृकान्यासस्य महत्त्वप्रतिपादनम्]

सर्वासु मातृकास्वस्या मन्ये यां सर्वतोऽधिकाम् ॥ ५४५ ॥
तां ते ब्रवीमि यत्नेन धारयैनां वरानने ।
नातः परतरा कापि मातृका सम्भविष्यति ॥ ५४६ ॥
मातृका गुह्यकाल्यास्तु यावत्यस्ते मयेरिताः ।
तासु मुख्या वक्ष्यमाणा सत्यं सत्यं सुरेश्वरि ॥ ५४७ ॥
प्रत्यहं विदधच्चैतां किमन्याभिः करिष्यति ।
अकुर्वन् प्रत्यहं चैनां किमन्याभिः करिष्यति ॥ ५४८ ॥
मातृकैषाऽन्वहं कार्या एतस्याः समुपासकैः ।
न्यासानन्यान् विहायापि गुह्याप्रीतिप्रदायिभिः ॥ ५४९ ॥
यामला डामरा नैनां तन्त्राण्यपि विदुः प्रिये ।
अहमेनां विजानामि वेद वा गुह्यकालिका ॥ ५५० ॥
तृतीयो नैव जानाति सत्येनैव ब्रवीमि ते ।
इयं विराण्मातृकाख्या भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥ ५५१ ॥

वक्ष्यमाण विराट् मातृका न्यास का महत्त्व—हे वरानने! इस गुह्यकाली की समस्त मातृकाओं में जिसको मैं सबसे श्रेष्ठ मानता हूँ, वह तुमको बतला रहा हूँ । इसका धारण करो । इससे बढ़कर कोई मातृका सम्भव नहीं है । हे सुरेश्वरि! गुह्यकाली की जितनी मातृकायें मैंने तुमको बतलायीं उनमें वक्ष्यमाण मातृका मुख्य है, यह सत्य है । यदि कोई प्रतिदिन इसको करता है तो दूसरी मातृकाओं से वह क्या करेगा (अर्थात् दूसरी मातृकायें उसके लिये महत्त्वहीन हो जाती हैं) । यदि साधक इसको प्रतिदिन नहीं करता तो अन्य मातृकाओं के न्यास से क्या करेगा (अर्थात् वक्ष्यमाण मातृकान्यास के न करने पर अन्य मातृकाओं का करना व्यर्थ हो जाता है) । इसलिये गुह्यकाली को प्रसन्न करने वाले इस गुह्यकाली के उपासकों को चाहिये कि वे अन्य न्यासों को छोड़कर भी इस मातृका न्यास को प्रतिदिन करे । हे प्रिये! यामल डामर और तन्त्र भी इसको नहीं जानते । या तो मैं इसको जानता हूँ या गुह्यकाली जानती हैं। तीसरा कोई नहीं जानता, यह मैं सत्य कह रहा हूँ । यह विराट् मातृका भोग-मोक्ष दोनों को देने वाली है ॥ ५४५-५५१ ॥

श्रीकण्ठादीनि नामानि शिवाख्यानि शिवस्य हि ।
पूर्णोदर्यादिभिः शक्तिनामभिर्मिलितानि हि ॥ ५५२ ॥
आदिभिर्मातृकावर्णैः प्रथमं प्रथितानि हि ।
फलातिरेकं दधति तथैषापि वरानने ॥ ५५३ ॥
पञ्चाशन्नरसिंहैस्तु भिन्नभिन्नाभिधान्वितैः ।
शिवस्वरूपैः पञ्चाशत् काल्यः शक्तय एधिताः ॥ ५५४ ॥
यादृशं फलबाहुल्यं यच्छन्ति न्यासकर्मणि ।
तन्मया कथितुं नैव शक्यते सत्यमीश्वरि ॥ ५५५ ॥
नामानि भिन्नभिन्नानि ब्रवीमि पुरतोऽनयोः ।
ततो न्यासक्रमं वक्ष्ये बीजादिपुटितं प्रिये ॥ ५५६ ॥

हे वरानने! शिव के श्रीकण्ठ आदि शिववाचक नाम पूर्णोदरी आदि शक्तिवाचक नामों के साथ मिलकर जो मातृका वर्णों के प्रारम्भ में जोड़े जाने वाले हैं, पहले ही बतला दिये गये । जिस प्रकार वे अतिरिक्त फल देते हैं उसी प्रकार यह भी (अतिरिक्त फल देती है)। भिन्न-भिन्न निर्वचन से युक्त शिवस्वरूप पचास नरसिंह नामों के साथ पचास काली शक्तियों को जोड़ दिया जाय तो न्यास-कर्म में वे जैसा फल देती हैं, हे ईश्वरि! उसका वर्णन मैं नहीं कर सकता, यह सत्य है । हे प्रिये! पहले मैं इन दोनों के भिन्न-भिन्न नामों को कहता हूँ । इसके बाद बीज आदि से सम्पुटित न्यास-क्रम को बतलाऊँगा ॥ ५५२-५५६ ॥

[पञ्चाशन्नरसिंहनामानि]

ज्वालामाली करालश्च भीमश्चैवापराजितः ।
क्षोभणश्च तथा सृष्टिः स्थितिः कल्पान्त इत्यपि ॥ ५५७ ॥

अनन्तश्च विरूपश्च वज्रायुधपराक्रमौ ।
प्रध्वंसनश्च तदनु विश्वमर्दन इत्यपि ॥ ५५८ ॥
उग्रो भद्रश्च मृत्युश्च सहस्रभुज एव च ।
विद्युज्जिह्वो घोरदंष्ट्रो महाकालाग्निरेव च ॥ ५५९ ॥
मेघनादश्च विकटस्तथा पिङ्गसटोऽपि च ।
प्रदीप्तो विश्वरूपश्च विद्युद्दशन एव च ॥ ५६० ॥
विदारो विक्रमश्चापि प्रचण्डः सर्वतोमुखः ।
वज्रो दिव्यश्च भोगश्च मोक्षो लक्ष्मीरपि क्रमात् ॥ ५६१ ॥
विद्रावणः कालचक्रः कृतान्तस्तप्तहाटकः ।
भ्रामकश्च महारौद्रो विश्वान्तकभयङ्करौ ॥ ५६२ ॥
प्रतप्तो विजयश्चापि सर्वतेजोमयस्तथा ।
ज्वालाजटालश्च खरनखरो नाददारणः ॥ ५६३ ॥
निर्वाणनरसिंहश्चेत्येकपञ्चाशदीरिताः ।
एषां पदानां सर्वेषामावश्यकतया स्थितम् ॥ ५६४ ॥
नरसिंहत्युपपदं नियोज्यं न्यासकर्मणि ।

नरसिंह के पचास नाम—ज्वालामाली, कराल, भीम, अपराजित, क्षोभण, सृष्टि, स्थिति, कल्पान्त, अनन्त, विरूप, वज्रायुध, पराक्रम, प्रध्वंसन, विश्वमर्दन, उग्र, भद्र, मृत्यु, सहस्रभुज, विद्युज्जिह्व, घोरदंष्ट्र, महाकालाग्नि, मेघनाद, विकट, पिङ्गसट, प्रदीप्त, विश्वरूप, विद्युद्दशन, विदार, विक्रम, प्रचण्ड, सर्वतोमुख, वज्र, दिव्य, भोग, मोक्ष, लक्ष्मी, विद्रावण, कालचक्र, कृतान्त, तप्तहाटक, भ्रामक, महारौद्र, विश्वान्तक, भयङ्कर, प्रतप्त, विजय, सर्वतेजोमय, ज्वाला, जटाल, खरनखर, नाददारण और निर्वाण—ये नरसिंह के इक्यावन नाम कहे गये । न्यासकर्म में इन पदों के साथ आवश्यक रूप में स्थित 'नरसिंह' उपपद जोड़ना चाहिये (जैसे—ज्वालामाली-नरसिंह, कराल-नरसिंह.........)॥ ५५७-५६४ ॥

[पञ्चाशत्कालीनामानि]

अथ काल्योऽपि पञ्चाशदेतेषां शक्तयः क्रमात् ॥ ५६५ ॥
निगद्यन्ते मया तुभ्यं तत्र चेतो निवेशय ।
धूमो जयोग्रौ ज्वाला च घोरनादौ धनं तथा ॥ ५६६ ॥
ततः कल्पान्तवेतालौ कङ्कालो नग्न एव च ।
घोरघोरतरश्चापि दुर्जयस्तदनन्तरम् ॥ ५६७ ॥
ततो मन्थानसंहारावाज्ञारौद्रावतः परम् ।
तिग्मः कृतान्तस्तदनु महारात्रिस्ततः परम् ॥ ५६८ ॥
संग्रामभीमौ च शवश्चण्डो रुधिर एव च ।
घोरो भयङ्करश्चापि सन्त्रासश्च प्रकथ्यते ॥ ५६९ ॥

करालविकरालौ च विभूतिर्भोग एव च ।
कालो वज्रश्च विकटो विद्या कामकला तथा ॥ ५७० ॥
ततो दक्षिणमाये च पुनर्भद्र महेश्वरि ।
श्मशानकुलनादाश्च मुण्डसिद्धी ततः परम् ॥ ५७१ ॥
उदारोन्मत्तसन्तापकपालानि क्रमात् ततः ।
निर्वाणं सर्वशेषे स्यादिति पञ्चाशदीरिताः ॥ ५७२ ॥
पूर्वोदितानां पञ्चाशत्पदानां वरवर्णिनि ।
यथैवोपपदत्वेन नरसिंहः प्रकीर्तितः ॥ ५७३ ॥
तथैषामपि शब्दानां काली ह्युपपदं भवेत् ।

काली के पचास नाम—अब मैं इन नरसिंहों की शक्तिभूत पचास कालियाँ भी तुमको बतला रहा हूँ । उसमें मन लगाओ । धूम, जय, उग्र, ज्वाला, घोर, नाद, धन, कल्पान्त, वेताल, कङ्काल, नग्न, घोर, घोरतर, दुर्जय, मन्थान, संहार, आज्ञा, रौद्र, तिग्म, कृतान्त, महारात्रि, संग्राम, भीम, शव, चण्ड, रुधिर, घोर, भयङ्कर, सन्त्रास, कराल, विकराल, विभूति, भोग, काल, वज्र, विकट, विद्या, कामकला, दक्षिण, माया, भद्र, श्मशान, कुल, नाद, मुण्ड, सिद्धि, उदार, उन्मत्त, सन्ताप, कपाल, सबके अन्त में निर्वाण इस प्रकार पचास नाम कहे गये । हे वरवर्णिनि! पूर्वोक्त पचास नामों के उपपद के रूप में जैसे 'नरसिंह' पद कहा गया, वैसे ही इन शब्दों के अन्त में 'काली' पद जोड़ना चाहिये (जैसे—धूमकाली, जयकाली, उग्रकाली, ज्वालाकाली आदि)॥ ५६५-५७३ ॥

[विराण्न्यासस्य प्रकाराभिधानम्]

अथ प्रकारं वक्ष्यामि विराण्न्यासस्य पार्वति ॥ ५७४ ॥
ऋषिर्विराण्न्यासस्य कालाग्नीरुद्रपश्चिमः ।
छन्दोऽनुष्टुप् समाख्यातं देवी निर्वाणमातृका ॥ ५७५ ॥
वेदादिबीजमुदितं शाकिनी शक्तिरुच्यते ।
हृन्मन्त्रः कीलकं प्रोक्तं विनियोगश्च मुक्तये ॥ ५७६ ॥
इति संस्मृत्य हस्ताभ्यामेनमृष्यादिमाचरेत् ।

विराट् न्यास के प्रकार—हे पार्वति! अब विराट् न्यास के प्रकार बतला रहा हूँ। इस विराट् न्यास के ऋषि कालाग्निरुद्र, छन्द अनुष्टुप्, देवी निर्वाणमातृका, बीज वेदादि (= ओंकार), शक्ति शाकिनी, कीलक हृन्मन्त्र (= नमः) कहा गया है । इसका विनियोग मुक्ति के लिये होता है । ऐसा स्मरण कर हाथों से इस ऋषि आदि न्यास को करना चाहिये ॥ ५७४-५७६ ॥

[विराण्न्यासरीतिः]

उद्धराम्यधुना रीतिमस्य न्यासस्य पार्वति ॥ ५७७ ॥

तारं रावं तत्तदर्णं नृसिंहं तं तमेव च ।
तां तां कालीं विग्रहयुग् भ्यामन्तां हृन्मनुं ततः ॥ ५७८ ॥
कीर्तयेदनया रीत्याऽपरमुन्नेयमीश्वरि ।
स्थानेषु तेषु तेष्वेव न्यसनीयं शनैः शनैः ॥ ५७९ ॥
इयं विराट्पूर्वा ते मातृका कथिता मया ।

विराट् न्यास की रीति—हे पार्वति! अब इस न्यास की रीति को उद्धृत कर रहा हूँ—तार राव फिर तत्तत् अकार आदि वर्ण उसके बाद नृसिंह के नामाक्षर उनके साथ 'नृसिंह' फिर काली के नामाक्षर अन्त में 'काली' विग्रह के साथ 'भ्याम्' और अन्त में हृदय मन्त्र कहे ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं फ्रें अं ज्वालामालिनरसिंहधूमकालीविग्रहाभ्यां नम:) ।

हे ईश्वरि! इसी रीति से अन्य का भी उन्नयन कर लेना चाहिये । (जैसे—ओं फ्रें आं करालनरसिंहजयकालीविग्रहाभ्यां नम:, ओं फ्रें इं भीमनरसिंहगुह्यकालीविग्रहाभ्यां नमः इत्यादि) धीरे-धीरे (ललाट, मुखवृत्त आदि) तत्तत् स्थानों में (पचास मातृकाओं सहित नरसिंह और काली के तत्तत् नामों का) न्यास करना चाहिये। यह तुमको विराट् मातृकान्यास बतलाया गया ॥ ५७७-५७९ ॥

[गुह्यकालीपूजायां विराण्न्यासस्यावश्यकताभिधानं तन्महत्त्वख्यापनं च]

नानया सदृशी कापि मातृकान्या भविष्यति ॥ ५८० ॥
न्यासानन्यान् विहायापि कुर्वीतेमां प्रयत्नतः ।
आरिराधयिषुश्चेत् स्याद् गुह्यकालीं वरानने ॥ ५८१ ॥
इमामवश्यं कुर्वीत प्रत्यहं भक्तिभावितः ।
विराट्मातृकानाम्ना ख्यातेयं कालिका प्रिया ॥ ५८२ ॥
सर्वशेषे विधायैनां मातृकां चरमाभिधाम् ।
ततः पूर्वोक्तरीत्यैव प्राणायामत्रयं चरेत् ॥ ५८३ ॥

गुह्यकाली पूजा में विराट् न्यास की आवश्यकता और महत्त्व—इसके समान कोई दूसरी मातृका नहीं होती । हे वरानने! यदि कोई गुह्यकाली की आराधना का इच्छुक है तो वह अन्य न्यासों को छोड़कर इस न्यास को करे । प्रतिदिन भक्ति से भावित होकर इसे अवश्य करना चाहिये । यह कालिका प्रिया विराट्मातृका के नाम से विख्यात है । सबके अन्त में चरम नामक मातृका न्यास को करने के बाद पूर्वोक्त रीति से तीन प्राणायाम करना चाहिये ॥ ५८०-५८३ ॥

[पीठन्यासाभिधानम्]

पीठन्यासं ततः कुर्याद् बहुविस्तारविस्तरम् ।
ऋषिस्तु पीठन्यासस्य माण्डूकायन उच्यते ॥ ५८४ ॥

प्रतिष्ठाच्छन्द उदितं देवता कूर्म एव च ।
बीजं मन्मथबीजं स्याच्छक्तिः कामठ(द?)मक्षरम् ॥ ५८५ ॥
पीठन्यासे विनियोग इति संस्मृत्य हस्तयोः ।
कृत्वा यथोक्तवच्चास्य ऋष्यादिन्यासमुत्तमम् ॥ ५८६ ॥

पीठन्यास—इसके बाद बहुविस्तार से विस्तृत पीठन्यास करना चाहिये । इस पीठन्यास के ऋषि माण्डूकायन कहे जाते हैं । छन्द, प्रतिष्ठा और देवता कूर्म कहा गया है । कामबीजाक्षर (= क्लीं) बीज और काम(?द) अक्षर (कं ह्लं ह्रं ख्रौं?) शक्ति है । पीठ न्यास में इसका प्रयोग होता है । ऐसा स्मरण कर हाथों में यथोक्त के समान उत्तम ऋष्यादि न्यास करना चाहिये ॥ ५८४-५८६ ॥

[पीठन्यासाङ्गषडङ्गन्यासाभिधानम्]

षडङ्गन्यासमपि च विदधीत वरानने ।
तारमेधौ तु सर्वेषामङ्गानां पुरतः स्थितौ ॥ ५८७ ॥
तत्तदङ्गीयमन्त्रास्तु तत्तदङ्गस्य शेषगाः ।
मध्ये त्रपारमाकामप्रासादाङ्कुशगारुडाः ॥ ५८८ ॥
एवं षडङ्गं विन्यस्य पीठन्यासं समाचरेत् ।
आदौ तारं प्रयुञ्जीत शेषे हृन्मन्त्रमेव च ॥ ५८९ ॥
मध्ये पदानि ङेऽन्तानि वक्ष्यमाणानि संवदेत् ।
आधारशक्तिं च मूलप्रकृतिं कूर्ममेव च ॥ ५९० ॥
अनन्तं पृथिवीं क्षीरसमुद्रं तदनन्तरम् ।
श्वेतदीपं कल्पवृक्षं ततो वै रत्नवेदिकाम् ॥ ५९१ ॥
रत्नसिंहासनं चापि दशैतानि हृदि न्यसेत् ।
धर्मं न्यसेद् दक्षिणांसे वामांसे ज्ञानमेव च ॥ ५९२ ॥
वामोरौ चापि वैराग्यमैश्वर्यं दक्षसक्थ्नि च ।
न्यसेदधर्मं वदने चाज्ञानं वामपार्श्वके ॥ ५९३ ॥
नाभाववैराग्यमपि ह्यनैश्वर्यं ततः परम् ।
विन्यस्य दक्षिणे पार्श्वे न्यसेदेतान् पुनर्हृदि ॥ ५९४ ॥

पीठन्यास का अङ्गभूत षडङ्गन्यास—हे वरानने! षडङ्गन्यास भी करना चाहिये । तार और मेधा सब अङ्गों के पहले होते हैं । इसके बाद तत्तत् अङ्ग से सम्बद्ध मन्त्र और तत्तत् अङ्ग के अन्त में होने वाले (नमः स्वाहा इत्यादि) होते हैं । मध्य में एक-एक क्रम से लज्जा, रमा, काम, प्रासाद, अङ्कुश, गारुड को रखा जाता है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं ह्रीं हृदयाय नमः । ओं ऐं श्रीं शिरसे स्वाहा । ओं ऐं क्लीं शिखायै वषट् । ओं ऐं हौं कवचाय हुम् । ओं ऐं क्रों नेत्रत्रयाय वौषट् । ओं ऐं क्रौं अस्त्राय फट्) ।

इस प्रकार षडङ्गन्यास करने के बाद पीठन्यास करना चाहिये । पहले तार का प्रयोग करना चाहिये । अन्त में हृन्मन्त्र । मध्य में वक्ष्यमाण ङेऽन्त पदों को कहना चाहिये। आधारशक्ति, मूलप्रकृति, कूर्म, अनन्त, पृथिवी, क्षीरसमुद्र उसके बाद श्वेतद्वीप, कल्पवृक्ष, उसके पश्चात् रत्नवेदिका और रत्नसिंहासन—इन दश का हृदय में न्यास करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं आधारशक्त्यै नमः । ओं मूलप्रकृत्यै नमः । ओं कूर्माय नमः। ओं अनन्ताय नमः । ओं पृथिव्यै नमः । ओं क्षीरसमुद्राय नमः । ओं श्वेतदीपाय नमः । ओं कल्पवृक्षाय नमः । ओं रत्नवेदिकायै नमः । ओं रत्नसिंहासनाय नमः) ।

दक्षिण स्कन्ध में धर्म, वामस्कन्ध में ज्ञान, वाम उरु में वैराग्य, दाँयीं सक्थि (= जङ्घा) में ऐश्वर्य, वदन में अधर्म, वाम पार्श्व में अज्ञान, नाभि में अवैराग्य, दाँयें पार्श्व में अनैश्वर्य का न्यास कर पुनः हृदय में इनका न्यास करना चाहिये ॥ ५८७-५९४॥

अनन्तमथ पद्मं च शेषं चानन्तसीमनि ।
अग्रेऽपि पूर्ववत् सर्वं विशेषः कोऽपि वर्तते ॥ ५९५ ॥
प्रणवानन्तरं बीजमेकैकं देवि तिष्ठति ।
तद्बीजं नाम च मया प्रोक्तं शेषं तु पूर्ववत् ॥ ५९६ ॥
नादं स्थाणुं तथा पालीं सूर्यात् सोमाच्च वह्नितः ।
मण्डलं विग्रहयुतं शेषमन्यत् पुरोक्तवत् ॥ ५९७ ॥
दर्वीं फलीं तथोन्माथं सत्त्वं चापि रजस्तमः ।
ततः सपाशमात्मानं पुनरात्मानमेव च ॥ ५९८ ॥
सनादमन्तरयुतं छुरिकासहितं पुनः ।
विन्यस्य परमात्मानं ज्ञानात्मानं त्रपान्वितम् ॥ ५९९ ॥
इति विन्यस्य हृदयकमलस्य वरानने ।
प्रादक्षिण्येन पूर्वदिः केशरेष्वष्टसु न्यसेत् ॥ ६०० ॥
दिशि तत्तत्क्रमेणैव तत्तद्बीजपुरस्सरम् ।
प्रभां सपाशां सकलां मायां स्थाणुयुतां जयाम् ॥ ६०१ ॥
सदुर्धर्षां तथा सूक्ष्मां विशुद्धां मैधसंयुताम् ।
सतारां नन्दिनीं प्रोच्य साश्वत्थां सुप्रभामपि ॥ ६०२ ॥
सनादां विजयां चापि सर्वसिद्धिप्रदां ततः ।
सनिःश्रेणीं पुनर्मध्ये नरसिंहसमन्विताम् ॥ ६०३ ॥
समुच्चरेद् वज्रनखदंष्ट्रायुधमपीश्वरि ।
महासिंहं संभ्रमास्त्रयुतं तत् कर्णिकासु च ॥ ६०४ ॥
प्रेतं सदाशिवमहाप्रेतासनमुदीरयेत् ।
सर्वोपरिष्टाद् रावश्रीगुह्यकाल्यासनं वदेत् ॥ ६०५ ॥

इत्ययं कथितो देवि पीठन्यासो मया तव ।
सामान्यसर्वदेवानां साधारणतया स्थित: ॥ ६०६ ॥

अनन्त पद्म शेष अनन्तसीमन् (का न्यास करना चाहिये) । आगे भी सब पूर्व की भाँति करना चाहिये । थोड़ा विशेष भी है । हे देवि! प्रणव के बाद एक-एक बीज स्थित होता है । उस बीज को मैने पहले बतला दिया । शेष पूर्व की भाँति करना चाहिये । नाद, स्थाणु, पाली के बाद सूर्यमण्डल सोममण्डल अग्निमण्डल को कहना चाहिये । शेष पूर्ववत् जानना चाहिये । दर्वी फली उन्माथ सत्त्व रजस् तमस् इसके बाद पाशसहित आत्मा पुन: नादसहित आत्मा फिर छुरिकासहित परमात्मा का न्यास करे । लज्जा से युक्त ज्ञानात्मा का न्यास कर, हे वरानने! हृदय कमल के चारों ओर पूर्व आदि आठ केशरों में न्यास करना चाहिये । इसी प्रकार तत्तद् बीज के साथ क्रम से तत्तद् दिशाओं में पाशबीज के साथ प्रभा को, कलाबीज के साथ माया को, स्थाणु के साथ जया, दुर्धर्षा के साथ सूक्ष्मा, मेधा के साथ विशुद्धा, तार के साथ नन्दिनी एवं अश्वत्थ के साथ सुप्रभा, नाद के साथ विजया, नि:श्रेणी के साथ सर्वसिद्धिप्रदा का न्यास करना चाहिये । मध्य में नरसिंह बीज रहना चाहिये । हे ईश्वरि! 'वज्रनखदंष्ट्रायुध' भी कहना चाहिये । उसके बाद 'महासिंह' को सम्भ्रम और अस्त्र से युक्त कहना चाहिये । प्रेत बीज के बाद 'सदाशिवमहाप्रेतासन' कहना चाहिये। सब के बाद राव बीज 'श्रीगुह्यकाल्यासन' कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं अं अनन्ताय नम: । ओं उं पद्माय नम: । ओं मं शेषाय नम: । ओं सूर्यमण्डलायानन्तसीम्ने नम:। ओं सोममण्डलाय धर्माय नम: । ओं वह्निमण्डलाय ज्ञानाय नम: । ओं सं वैराग्याय नम: । ओं रं ऐश्वर्याय नम: । ओं तं अधर्माय नम: । ओं लां अज्ञानाय नम: । ओं लौं अवैराग्याय नम: । ओं लीं अनैश्वर्याय नम: । ओं आं आत्मने नम: । औं अं अन्तरात्मने नम: । ओं पं परमात्मने नम: । ओं ह्रीं ज्ञानात्मने नम: । आं प्रभायै नम: इति पूर्वस्यां दिशि । ईं मायायै नम: इति पूर्वदक्षिणयो: कोणे । ऊं जयायै नम: इति दक्षिणस्यां दिशि । एं सूक्ष्मायै नम: इति दक्षिणपश्चिम कोणे । ऐं विशुद्धायै नम: इति पश्चिमायां दिशि । ओं नन्दिन्यै नम: इति पश्चिमोत्तरकोणे । औं सुप्रभायै नम: इति उत्तरस्यां दिशि । अं विजयायै नम: इति उत्तरपूर्वकोणे । अ: क्ष्रौं सर्वसिद्धिप्रदायै वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट् फट् इति कर्णिकासु न्यासो विधेय: । हौं सदाशिवमहाप्रेतासनाय नम: । फ्रें श्रीं गुह्यकाल्यासनाय नम:) ।

इस प्रकार हे देवि! मैंने तुमको पीठन्यास बतलाया । यह समस्त देवताओं के लिये साधारण रूप से प्रयुक्त होता है ॥ ५९५-६०६ ॥

[गुह्यकाल्या योगरत्नाख्यविशेषपीठन्यासाभिधानम्]

इदानीं गुह्यकाल्यास्तु पीठन्यासं निशामय ।

योगरत्नमिति ख्यातमगम्यं त्रिदशैरपि ॥ ६०७ ॥
स्थितं विशेषरूपेणासाधारणतयापि च ।
अप्राप्य संहितामेनामप्राप्यं दैवतैरपि ॥ ६०८ ॥
षण्मासमेनं विदधन् नृपसिंहासनं लभेत ।
शताब्दजीवी च भवेन्महाविभव एव च ॥ ६०९ ॥
विद्यावान् राजमान्यश्च स्त्रीणां वल्लभ एव च ।
भोगवान् विजयी युद्धे देहान्ते मोक्षभाग् भवेत् ॥ ६१० ॥

गुह्यकाली का योगरत्न नामक विशेष पीठन्यास—अब गुह्यकाली के पीठन्यास को सुनो । यह योगरत्न के नाम से विख्यात तथा देवताओं से भी अगम्य है । यह विशेष और असाधारण रूप में स्थित है । इस (न्याससंहिता) को विना प्राप्त किये देवताओं के भी द्वारा सबकुछ अप्राप्य है । वहीं छह महीने तक इस न्यास को (निरन्तर) करने वाला साधक राजसिंहासन प्राप्त कर लेता है । वह सौ वर्ष तक जीवित रहता है तथा महासमृद्धिशाली हो जाता है । वह विद्यावान्, राजा के द्वारा सम्मानित, स्त्रियों का प्रिय, उत्कृष्ट भोगवाला, युद्ध में विजयी और देहान्त में मोक्ष का भागी बनता है ॥ ६०७-६१० ॥

[योगरत्नाख्यपीठन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

योगरत्नाभिधेयस्य पीठन्यासस्य चास्य हि ।
विरूपाक्ष ऋषिः प्रोक्तश्छन्दोऽतिजगती मता ॥ ६११ ॥
सदाशिवो देवता च रावो बीजं निगद्यते ।
शक्तिश्च डाकिनी ख्याता फेत्कार्यस्य च कीलकम् ॥ ६१२ ॥
पीठन्यासे चास्य विनियोगः कथित ईश्वरि ।
इति संस्मृत्य ऋष्यादिन्यासं कृत्वा यथोक्तवत् ॥ ६१३ ॥
षडङ्गन्यासमेतस्य सावधानः समाचरेत् ।
विमस्करं विविधसंवदेद (?) वेण्वादि पञ्चकम् ॥ ६१४ ॥
(मस्करं विविधं वदेत् सवेण्वादिकपञ्चकम्)
हृदयाय नमश्चेति प्रथमाङ्गमुदाहृतम् ।
अदक्षिणमसङ्घातं सप्त द्वीपादिकान् वदेत् ॥ ६१५ ॥
ततोऽनु शिरसे स्वाहा द्वितीयाङ्गमिदं स्मृतम् ।
निःसात्वतं च निर्ह्रस्वं नान्द्यादीन् सप्त चोच्चरेत् ॥ ६१६ ॥
शिखायै वषडित्येवं तृतीयाङ्गमुदीरितम् ।
व्यर्घक्षोभणमाभाष्य सप्त रङ्कमुखानपि ॥ ६१७ ॥
कवचाय हूमित्येवं तुर्यमङ्गं मयेरितम् ।
कीलालकरुणाहीनं सप्त वैकारिकादिकान् ॥ ६१८ ॥
नेत्रत्रयाय वौषट् च पञ्चमाङ्गं प्रकीर्तितम् ।

च्युतान् प्राग्वंशयोनिभ्यां सप्तायादीनथोद्धरेत् ॥ ६१९ ॥
अस्त्राय फडिति ब्रूयात् षष्ठमङ्गमिदं मतम् ।

योगरत्नपीठन्यास के ऋषि आदि—इस योगरत्न नामक पीठन्यास के ऋषि विरूपाक्ष और छन्द अतिजगती कहे गये हैं । देवता सदाशिव, बीज राव कहा जाता है । शक्ति डाकिनी बीज और कीलक फेत्कारी बीज कहा गया है । हे ईश्वरि! इसका विनियोग पीठन्यास में कहा गया है । ऐसा ध्यानकर यथोक्त ऋष्यादिन्यास करने के पश्चात् (साधक) सावधान होकर इसका षडङ्गन्यास करे । मस्कर (= रहैं) को अनेक रूपों (= रह्लां रह्लीं आदि) में अर्थात् वेणु आदि पाँच रूपों में कहना चाहिये । 'हृदयाय' और 'नम:' यह प्रथम अङ्गन्यास कहा गया है । अदक्षिण और असङ्घात सात द्वीप (= रफ्रां) आदि को कहना चाहिये । उसके बाद 'शिरसे स्वाहा' कहना चाहिये । यह द्वितीय अङ्गन्यास कहा गया है । नान्दी आदि सात को सात्वत और ह्रस्व से रहित कहना चाहिये । 'शिखायै वषट्' यह तीसरा अङ्गन्यास है । अर्धक्षोभण से रहित सात रङ्कमुखों को कहने के बाद 'कवचाय हुम्' यह चतुर्थ अङ्गन्यास मैंने कहा । कीलाल और करुणा से अहीन सात वैकारिक आदि को कहकर 'नेत्रत्रयाय वौषट्' यह पञ्चम अङ्गन्यास कहा गया । प्राग्वंश और योनि से च्युत सात आर्य (= रक्ष्रां) आदि को उद्धृत करना चाहिये । 'अस्त्राय फट्' कहना चाहिये । यह छठाँ अङ्गन्यास माना गया[1] है ।

(मन्त्र-स्वरूप—रह्लां रह्लीं रह्लूं रह्लैं रह्लौं हृदयाय नम: । रफ्रां रफ्रीं रफ्रूं रफ्रैं रफ्रौं शिरसे स्वाहा । रछ्रां रछ्रीं रछ्रूं रछ्रैं रछ्रौं शिखायै वषट् । रस्त्रां रस्त्रीं रस्त्रूं रस्त्रैं रस्त्रौं कवचाय हूम् । रप्रां रप्रीं रप्रूं रप्रैं रप्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् । रक्ष्रां रक्ष्रीं रक्ष्रूं रक्ष्रैं रक्ष्रौं अस्त्राय फट्) ॥ ६११-६१९ ॥

[योगरत्नन्यासप्रकाराभिधानम्]

अत: परं योगरत्नप्रकारमवधेहि हे ॥ ६२० ॥
आदौ प्रणवशाकिन्यौ हृन्मन्त्रं चरमेऽपि च ।
मध्ये ङेऽन्तान् वक्ष्यमाणान् शब्दान् हृदि परिन्यसेत् ॥ ६२१ ॥
महामण्डूककूर्मौ च ह्यनन्तं पृथिवीमपि ।
ततो रक्तसमुद्रं च मांसद्वीपं तत: परम् ॥ ६२२ ॥
मांसद्वीपं रक्तपदादथवा रक्तबालुकाम् ।
चामुण्डामण्डलं पश्चात् प्राकारं भैरवीपदात् ॥ ६२३ ॥

---

[1] यहाँ समस्त षडङ्गों में सात की संख्या कही गयी है । यहाँ 'हृदयाय नम:' 'शिरसे स्वाहा' इत्यादि दो पद वाले न्यासाङ्गों के सहित सात संख्या का निर्धारण होता है । अन्यथा रह्लां रफ्रां आदि की संख्या पाँच ही उल्लिखित है फिर 'सप्त' की सङ्गति नहीं बैठेगी ।

महाश्मशानं तदनु वह्निज्वालामतः परम् ।
नरान्त्रतोरणं मुण्डमालामप्यथ कीर्तयेत् ॥ ६२४ ॥
कल्पवृक्षं ततो रत्नवेदिकामप्यनूच्चरेत् ।
रत्नसिंहासनं चापि षोडशैतान् हृदि न्यसेत् ॥ ६२५ ॥

योगरत्नन्यास के प्रकार—हे देवि! इसके बाद योगरत्नन्यास के प्रकार को जानो । आदि में प्रणव और शाकिनी, अन्त में हृन्मन्त्र, मध्य में वक्ष्यमाण शब्दों को ङेन्त कहकर न्यास करना चाहिये । वे शब्द हैं—महामण्डूक, कूर्म, अनन्त, पृथिवी, रक्तसमुद्र, मांसद्वीप, रक्तमांसद्वीप, रक्तबालुका, चामुण्डामण्डल, भैरवी-प्राकार, महाश्मशान, वह्निज्वाला, नरान्त्रतोरण, मुण्डमाला, कल्पवृक्ष, रत्नवेदिका और रत्नसिंहासन—इन सोलह का हृदय में न्यास करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं फ्रें महामण्डूकाय नमः । ओं फ्रें कूर्माय नमः। ओं फ्रें अनन्ताय नमः । ओं फ्रें पृथिव्यै नमः । ओं फ्रें रक्तसमुद्राय नमः । ओं फ्रें मांसद्वीपाय नमः । ओं फ्रें रक्तमांसद्वीपाय नमः । ओं फ्रें रक्तबालुकायै नमः । ओं फ्रें चामुण्डामण्डलाय नमः । ओं फ्रें भैरवीप्राकाराय नमः । ओं फ्रें महाश्मशानाय नमः । ओं फ्रें वह्निज्वालायै नमः । ओं फ्रें नरान्त्रतोरणाय नमः । ओं फ्रें मुण्डमालायै नमः । ओं फ्रें कल्पवृक्षाय नमः । ओं फ्रें रत्नवेदिकायै नमः । ओं फ्रें रत्नसिंहासनाय नमः) ॥ ६२०-६२५ ॥

दक्षिणांसे कृतयुगं वामे त्रेतायुगं तथा ।
वामोरौ द्वापरयुगं दक्षे कलियुगं तथा ॥ ६२६ ॥
ऋग्वेदं वदने न्यस्य वामपार्श्वे सुरेश्वरि ।
यजुर्वेदं तथा नाभौ सामवेदं न्यसेत् प्रिये ॥ ६२७ ॥
अथर्ववेदं तदनु दक्षपार्श्वे न्यसेदपि ।
आयुर्वेदं भुजे दक्षे धनुर्वेदं च वामके ॥ ६२८ ॥
गान्धर्ववेदं दक्षेऽङ्घ्रावर्थवेदं च वामके ।
पुनरिन्द्रं दक्षिणेंऽसे वामेंऽसे यममेव च ॥ ६२९ ॥
उरौ वामेऽपि वरुणं कुबेरं दक्षिणे तथा ।
न्यसेदग्निं च वदने निर्ऋतिं वामपार्श्वके ॥ ६३० ॥
नाभौ वायुं दक्षपार्श्वे न्यसेदीशानमेव च ।
पूर्वोक्तमन्त्रैराद्यन्तस्थितैः रावान्तसंस्थितैः ॥ ६३१ ॥
पञ्च प्रेतान् न्यसेद् बीजैः पञ्चभिर्भद्रिकादिभिः ।
ब्रह्माणं दक्षिणे नेत्रे विष्णुं वामे तथैव च ॥ ६३२ ॥
रुद्रं दक्षिणकर्णे च वामे कर्णे तथेश्वरम् ।
सदाशिवं ललाटे च तृतीयं प्रोक्तमासनम् ॥ ६३३ ॥

दक्षिण कन्ध में कृतयुग, वामस्कन्ध में त्रेता युग, वाम उरु में द्वापर तथा

दक्षिण उरु में कलियुग का न्यास करना चाहिये । हे सुरेश्वरि! वदन में ऋग्वेद, वाम पार्श्व में यजुर्वेद का न्यास करना चाहिये । हे प्रिये! नाभि में सामवेद को न्यस्त करना चाहिये। दाँयें पार्श्व में अथर्ववेद, दाँयीं भुजा में आयुर्वेद, वामभुजा में धनुर्वेद, दाँयें पैर में गान्धर्ववेद, वामपाद में अर्थवेद का न्यास करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं फ्रें कृतयुगाय नमः इति दक्षिणांसे । ओं फ्रें त्रेतायुगाय नमः इति वामांसे । ओं फ्रें द्वापरयुगाय नमः इति वामोरौ । ओं फ्रें कलियुगाय नमः इति दक्षौरौ । ओं फ्रें ऋग्वेदाय नमः इति वदने । ओं फ्रें यजुर्वेदाय नमः इति वामपार्श्वे । ओं फ्रें सामवेदाय नमः इति नाभौ । ओं फ्रें अथर्ववेदाय नमः इति दक्षपार्श्वे । ओं फ्रें आयुर्वेदाय नमः इति दक्षभुजे । ओं फ्रें धनुर्वेदाय नमः इति वामभुजे । ओं फ्रें गान्धर्ववेदाय नमः इति दक्षपादे । ओं फ्रें अर्थवेदाय नमः इति वामपादे ।)

पुनः इन्द्र को दक्षिण कन्धे पर, बायें पर यम को, वाम उरु पर वरुण, दक्षिण उरु पर कुबेर, मुख में अग्नि, वामपार्श्व में निर्ऋति, नाभि में वायु, दक्षिण पार्श्व में ईशान का न्यास करना चाहिये । आदि और अन्त में स्थित पूर्वोक्त मन्त्र जिनके अन्त में राव बीज लगा हो ऐसे भद्रिका आदि पाँच बीजों के द्वारा पञ्च प्रेतों का न्यास करना चाहिये। ब्रह्मा को दाँयें नेत्र में, विष्णु को वाम नेत्र में, रुद्र को दाँयें कान में, ईश्वर को वाम कर्ण में तथा सदाशिव को ललाट में न्यस्त करना चाहिये। (नेत्र और कर्ण के बाद ललाट पञ्चब्रह्म का) तीसरा आसन कहा गया है ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं फ्रें इन्द्राय नमः इति दक्षेंऽसे । ओं फ्रें यमाय नमः इति वामांसे । ओं फ्रें वरुणाय नमः इति वामोरौ । ओं फ्रें कुबेराय नमः इति दक्षोरौ । ओं फ्रें अग्नये नमः इति वदने । ओं फ्रें निर्ऋतये नमः इति वामपार्श्वे । ओं फ्रें वायवे नमः इति नाभौ । ओं फ्रें ईशानाय नमः इति दक्षपार्श्वे । ओं फ्रें रक्षफ्रछ्रां ब्रह्मणे फ्रें नमः इति दक्षनेत्रे । ओं फ्रें रक्षफ्रछ्रीं विष्णवे फ्रें नमः इति वामनेत्रे । ओं फ्रें रक्षफ्रछ्रूं रुद्राय फ्रें नमः इति दक्षकर्णे । ओं फ्रें रक्षफ्रछ्रैं ईश्वराय फ्रें नमः इति वामकर्णे । ओं फ्रें रक्षफ्रछ्रौं सदाशिवाय फ्रें नमः इति ललाटे) ॥ ६२६-६३३ ॥

अथ हृत्कमले यानि दलान्यष्टौ भवन्ति हि ।
तेषु क्रमेण विन्यस्याः पूर्वादिरष्टभैरवाः ॥ ६३४ ॥
तारकूर्चौ च वर्णौ द्वौ सर्वेषां पुरतः स्थितौ ।
नमोऽन्ते भैरवा ङेऽन्ता अष्टौ मध्ये व्यवस्थिताः ॥ ६३५ ॥
असिताङ्गो रुरुः क्रोध उग्र उन्मत्त एव च ।
चण्डः कपाली संहार इति ते क्रमशः स्थिताः ॥ ६३६ ॥
कश्चिदन्यो विशेषोऽत्र वर्तते स निशम्यताम् ।
कूर्चान्ते बीजमेकैकं देयं तत्क्रमशो ब्रुवे ॥ ६३७ ॥
अपरान्तकमुल्लोप्यं प्रकरीं पाणिगीतिकाम् ।

नादान्तकं च सम्भूतिं संहारिणमुपह्वरम् ॥ ६३८ ॥

इसके बाद हृदय-कमल में जो आठ दल होते हैं, उनमें पूर्व आदि के क्रम से आठ भैरवों का न्यास करना चाहिये । तार और कूर्च ये दो वर्ण बीज सबके पहले रहते हैं । अन्त में 'नमः' और बीच में आठ भैरवों को ङेऽन्त अर्थात् चतुर्थ्यन्त रखना चाहिये । आठ भैरवों के नाम हैं—असिताङ्ग, रुरु, क्रोध, उग्र, उन्मत्त, चण्ड, कपाली और संहार । ये क्रम से स्थापित किये जाते हैं ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं हूं खफ्रक्लूं असिताङ्गभैरवाय नमः । ओं हूं खफ्रक्लैं क्रोधभैरवाय नमः । ओं हूं ह्ग्लौं उग्रभैरवाय नमः । ओं हूं खफ्रछ्रीं उन्मत्तभैरवाय नमः । ओं हूं खफ्रह्लीं चण्डभैरवाय नमः । ओं हूं खफ्रछ्रां कपालिभैरवाय नमः । ओं हूं छरक्षह्लैं संहारभैरवाय नमः) ।

कूर्च के अन्त में एक-एक बीज रखना चाहिये । उसको क्रम से कह रहा हूँ । अपरान्तक, उल्लोप्य, प्रकरी, पाणिगीतिका, नादान्तक, सम्भूति, संहारी, उपह्वर (औपह्वर) ॥ ६३४-६३८ ॥

कमलं षोडशदलं प्रकल्प्य हृदये पुनः ।
क्रतूपकल्पिते पत्रे तं तं क्रतुमुपन्यसेत् ॥ ६३९ ॥
ज्योतिष्टोमोऽग्निष्टोमो वाजपेयश्च षोडशी ।
चयनं पुण्डरीकश्च राजसूयोऽश्वमेधकः ॥ ६४० ॥
बार्हस्पत्यं विश्वजिच्च गोमेधो नरमेधकः ।
सौत्रामण्यर्द्धसावित्री सूर्यक्रान्तो बलम्भिधः ॥ ६४१ ॥
तारं कूटं तत्तदाख्यं तन्नाम ङेऽन्तमन्वतः ।
क्रतुं च तादृशं प्रोच्य शिरः शेषे नियोजयेत् ॥ ६४२ ॥
ततो यद्यपि शीर्षस्थं सहस्रदलमम्बुजम् ।
तथाप्यष्टदलं ध्यात्वा पूर्वादिस्तद्दले क्रमात् ॥ ६४३ ॥
अष्टौ शिवान्न्यसेद् देवि मन्त्रोच्चारणपूर्वकम् ।
मन्त्रोऽप्यसौ प्रणवतः प्रासादः प्रथमो भवेत् ॥ ६४४ ॥
शेषे हृच्छिरसी ज्ञेये ङेऽन्ताष्टपदमन्तरम् ।
शिवः परशिवश्चापि प्रथमः केवलो मतः ॥ ६४५ ॥
तृतीयो देवि परमशिव इत्युच्यते बुधैः ।
परापरशिवश्चापि परमेष्ठिशिवोऽपि च ॥ ६४६ ॥
ज्ञेयस्ततोऽनु परमपरापरशिवोऽपि च।
परापरपदस्यान्ते परमेष्ठिशिवस्तथा ॥ ६४७ ॥
अष्टमोऽसौ परिज्ञेयः सर्वशेषे सदाशिवः ।
पदानामेव सर्वेषां शिवोऽन्ते परिनिष्ठितः ॥ ६४८ ॥

पुन: हृदय में षोडशदल कमल की कल्पना कर क्रतु (= बड़े याग) के रूप में उपकल्पित पत्तों पर तत्तत क्रतु की कल्पना करनी चाहिये । वे यज्ञ हैं—ज्योतिष्टोम, अग्निष्टोम, वाजपेय, षोडशी, चयन, पुण्डरीक, राजसूय, अश्वमेध, बार्हस्पत्य, विश्वजित्, गोमेध, नरमेध, सौत्रामणी, अर्धसावित्री, सूर्यक्रान्त और वलम्भिध । (न्यास के लिये) तार और उस क्रतु के तत्तत् कूट उसके बाद ङेऽन्त तत्तत् याग का नाम और ङेऽन्त 'क्रतु' को कहकर अन्त में शिर कहना चाहिये ।

(न्यास-मन्त्र—ओं गक्षटहलक्षचक्षफलक्षूं ज्योतिष्टोमाय क्रतवे स्वाहा । ओं तलठलहक्षथलहक्ष दललक्ष क्षरहम्लव्रईऊं अग्निष्टोमाय क्रतवे स्वाहा । ओं दलडक्षवलह्लसखों वाजपेयाय क्रतवे स्वाहा । ओं मक्षक्रस्हखफ्रछूं षोडश्यै क्रतवे स्वाहा। ओं डलहक्षम्लां चयनाय क्रतवे स्वाहा । ओं फलक्षह्लस्हव्म्रऊं पुण्डरीकाय क्रतवे स्वाहा । ओं पलहक्षक्षमझहच्रूं राजसूयाय क्रतवे स्वाहा । ओं ह्लसलहसकह्लीं अश्वमेधाय क्रतवे स्वाहा । ओं..........(बार्हस्पत्यम्) बार्हस्पत्याय क्रतवे स्वाहा । ओं क्षक्षक्स्लफ्रचक्षक्षौं विश्वजिते क्रतवे स्वाहा । ओं रलहक्षल्कसहफ्रआं गोमेधाय क्रतवे स्वाहा । ओं रलहक्षक्लस्हफ्रईं नरमेधाय क्रतवे स्वाहा । ओं ग्लरक्षफ्रथरक्लीं सौत्रामणये क्रतवे स्वाहा। ओं रलहक्षकहलह्स्त्रें छ्रीं अर्धसावित्र्यै क्रतवे स्वाहा । ओं...........(सूर्यक्रान्तकूटम्) सूर्यक्रान्ताय क्रतवे स्वाहा । ओं स्हफ्रसल्कह्लओं बलम्भिधाय क्रतवे स्वाहा) ।

इसके बाद यद्यपि शिर पर सहस्रदल कमल रहता है तो भी वहाँ अष्टदल कमल का ध्यानकर उन दलों में पूर्व आदि के क्रम से हे देवि! आठ शिवों का मन्त्रोच्चारणपूर्वक न्यास करना चाहिये । वह मन्त्र भी पहले प्रणव और प्रासाद, अन्त में हृदय और शिर, (बीच में) ङेऽन्त शिव के आठ पद (का न्यास करना चाहिये)—शिव, परशिव । इनमें प्रथम केवल शिव कहा गया है । हे देवि! तीसरा विद्वानों के द्वारा परमशिव कहा जाता है । परापर शिव और परमेष्ठी शिव के बाद परमपरापर शिव जानना चाहिये । परापर पद के अन्त में परमेष्ठी शिव और यह (सातवाँ शिव है) । सबके अन्त में सदाशिव को आठवाँ जानना चाहिये । सभी पदों के अन्त में शिव स्थित है ।

(न्यास-स्वरूप—ओं हौं शिवाय नम: स्वाहा । ओं हौं परशिवाय नम: स्वाहा । ओं हौं परमशिवाय नम: स्वाहा । ओं हौं परापरशिवाय नम: स्वाहा । ओं हौं परमेष्ठिशिवाय नम: स्वाहा । ओं हौं परमपरापरशिवाय नम: स्वाहा । ओं हौं परापरपरमेष्ठिशिवाय नम: स्वाहा । ओं हौं सदाशिवाय नम: स्वाहा) ॥ ६३९-६४८ ॥

पुनरष्टदलाम्भोजे हृन्मध्यपरिकल्पिते ।
क्लृप्तपूर्वादिहरिति न्यसेद् दिक्षु विदिक्षु च ॥ ६४९ ॥
तत्तद् बीजं वाग्भवाद्यं मध्ये तन्न्यास ङेऽन्तवत् ।
शेषे हृदयमन्त्रश्च मन्त्राश्चैषां प्रकीर्तिता: ॥ ६५० ॥

धर्मो ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च चतुर्दिशि ।
यशो विवेकः कामश्च मोक्षश्चेति विदिक्ष्वपि ॥ ६५१ ॥
ततो हृदयपद्मस्य द्वात्रिंशच्छदनस्य हि ।
द्वात्रिंशत्केशरेष्वेव प्रादक्षिण्येन विन्यसेत् ॥ ६५२ ॥
आदौ त्रपारावरुषः शेषे हार्दो मनुः प्रिये ।
भध्ये पादानि ङेऽन्तानि द्वात्रिंशत्संख्यकानि हि ॥ ६५३ ॥
कराली विकराली च महाकाल्यपराजिता ।
चामुण्डा भ्रामरी भीमा कुरुकुल्ला कपालिनी ॥ ६५४ ॥
घोरनादा चण्डघण्टा भैरवी मुण्डमालिनी ।
उल्कामुखी फेरुवक्त्रा चर्चिका सिंहवाहिनी ॥ ६५५ ॥
वज्रकापालिनी चण्डयोगेश्वर्यप्यनन्तरम् ।
मातङ्गी कुब्जिका सिद्धिलक्ष्मीश्चण्डेश्वरी तथा ॥ ६५६ ॥
ब्रह्माणी कालिका दुर्गा महामाया महोदरी ।
कौमारी चापि वाराही जयन्ती गुह्यकालिका ॥ ६५७ ॥

पुन: हृदय के मध्य में परिकल्पित अष्टदल कमल के ऊपर कल्पित पूर्व दिशा से लेकर चारों दिशाओं और विदिशाओं आदि में वाग्भव आदि बीज, मध्य में ङेऽन्त धर्म आदि और अन्त में हृदय मन्त्र कहना चाहिये । इनके मन्त्र कहे जा चुके हैं । ङेऽन्त पद ये हैं—धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य । इनको चारो दिशाओं में यश, विवेक, काम और मोक्ष को विदिशाओं में न्यस्त करना चाहिये ।

(न्यास-स्वरूप—ऐं क्रैं धर्माय नम: । ऐं क्लीं ज्ञानाय नम: । ऐं दूं वैराग्याय नम: । ऐं ऌां यशसे नम: । ऐं कें विवेकाय नम: । ऐं क्लीं कामाय नम: । ऐं म्लैं मोक्षाय नम:) ।

इसके बाद बत्तीस दल वाले हृदय कमल के बत्तीस केशरों में प्रदक्षिण क्रम से निम्नलिखित न्यास करना चाहिये । हे प्रिये! पहले त्रपा, राव और क्रोध और अन्त में हार्द मन्त्र कहना चाहिये । मध्य में बत्तीस ङेऽन्त पद जो कि निम्नलिखित हैं कहने चाहिए—काली, विकराली, महाकाली, चामुण्डा, भ्रामरी, भीमा, कुरुकुल्ला, कपालिनी, घोरनादा, चण्डघण्टा, भैरवी, मुण्डमालिनी, उल्कामुखी, फेरुवक्त्रा, चर्चिका, सिंहवाहिनी, वज्रकापालिनी, चण्डयोगेश्वरी, मातङ्गी, कुब्जिका, सिद्धिलक्ष्मी, चण्डेश्वरी, ब्रह्माणी, कालिका, दुर्गा, महामाया, महोदरी, कौमारी, वाराही, जयन्ती और गुह्यकालिका—ये बत्तीस देवियाँ तुमको क्रम से बतलायी गयीं ।

(न्यास-स्वरूप—ह्रीं फ्रें हूं कराल्यै नम:........इत्यादि) ॥ ६४८-६५७ ॥

द्वात्रिंशद् देव्य इति ते क्रमेण प्रतिपादिताः ।
ततो हृदयपद्मस्य कर्णिकायां पुनर्न्यसेत् ॥ ६५८ ॥

प्रणवादनु फेत्कारी नृसिंहो डाकिनी तथा ।
कृतान्तकालपदतो भीषणो ङेऽन्तयुक् ततः ॥ ६५९ ॥
तद्वन्महाभैरवोऽपि कूर्चास्त्रे तदनन्तरम् ।
ततः शिरःस्थपद्मस्य कर्णिकायां पुनर्न्यसेत् ॥ ६६० ॥
ततः प्रासादबीजं च शुद्धस्फटिकशब्दतः ।
विशदप्रभशब्दोऽपि ङेऽन्त उच्चार्य ईश्वरि ॥ ६६१ ॥
ङेऽन्तं ततोऽपि परमसदाशिवपदं भवेत् ।
कूर्चास्त्रहृच्छिरांस्यन्ते कथितानि मया तव ॥ ६६२ ॥
इति पीठन्यासराजो योगरत्नसमाह्वयः ।
सप्रकारस्थानमन्त्रो विविच्य प्रतिपादितः ॥ ६६३ ॥

इसके बाद हृदय कमल की कर्णिका में पुनः न्यास करना चाहिये । प्रणव के बाद फेत्कारी, नृसिंह, डाकिनी के पश्चात् 'कृतान्तकाल' पद के अनन्तर ङेऽन्तयुक्त 'भीषण' पद कहना चाहिये । उसी प्रकार 'महाभैरव' को भी कहना चाहिये । तदनन्तर कूर्च और अस्त्र को कहना चाहिये ।

(न्यास-स्वरूप—ओं हसखफ्रें क्षौं खफ्रें कृतान्तकालभीषणाय महाभैरवाय हूं फट्)।

इसके पश्चात् शिरस्थ कमल की कर्णिका में पुनः न्यास करना चाहिये । प्रासाद बीज के बाद 'शुद्धस्फटिक' शब्द उसके पश्चात् विशदप्रभ का ङेऽन्त उच्चारण कर हे ईश्वरि! 'परमसदाशिव' पद को भी चतुर्थ्यन्त कहना चाहिये । अन्त में कूर्च, अस्त्र, हृदय और शिव कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—हौं शुद्धस्फटिकविशदप्रभाय परमसदाशिवाय हूं फट् नमः स्वाहा)।

इस प्रकार योगरत्न नामक पीठन्यासराज का प्रकार स्थान और मन्त्र के सहित विवेचना कर प्रतिपादन किया गया ॥ ६५८-६६३ ॥

[योगरत्नन्यासमाहात्म्यम्]

देव्येतस्येतरे न्यासाः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
अकुर्वन्नितरान् न्यासानेतेनार्थं प्रसाधयेत् ॥ ६६४ ॥
अकुर्वन्नेनमितरैः कोटिन्यासैर्न साधयेत् ।
विधाय शपथं देवि कथयामि तवाग्रतः ॥ ६६५ ॥
योगरत्नसमो न्यासो न भूतो न भविष्यति ।
त्याज्यावरणपूजाऽपि त्याज्यौ ध्यानजपावपि ॥ ६६६ ॥
अर्घ्यस्य स्थापनं त्याज्यं न त्याज्यं योगरत्नकम् ।
योगरत्नं रत्नमिव कण्ठे बध्नीत साधकः ॥ ६६७ ॥
महिमानममुष्याहं ग्रन्थगौरवभीतितः ।

न ब्रवीमि वरारोहे वक्तुं चापि न शक्यते ॥ ६६८ ॥
कपालडामरे त्वस्य फलबाहुल्यमीरितम् ।
तथा शबरतन्त्रेऽपि ततो नात्रोदितं बहु ॥ ६६९ ॥
एतस्य सतताभ्यासात् पुरुषार्थचतुष्टयम् ।
दासवत्तस्य वशगं सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ६७० ॥

॥ इत्यादिनाथविरचितायां पञ्चाशत्साहस्र्यां श्रीमहाकालसंहितायां वस्तुशोधनमातृकान्यासोद्धारः षष्ठः पटलः ॥ ६ ॥

* * *

योगरत्नन्यास का माहात्म्य—हे देवि! दूसरे न्यास इस न्यास की सोलहवीं कला के बराबर नहीं हैं। दूसरे न्यासों को न करता हुआ भी इस न्यास से साधक अपनी इष्टसिद्धि कर लेता है और इसको न करने वाला अन्य करोड़ों न्यासों से भी लक्ष्यसिद्धि नहीं करता। हे देवि! तुम्हारे आगे शपथ लेकर कह रहा हूँ कि योगरत्न के समान दूसरा न्यास न हुआ और न होगा। आवरण पूजा का त्याग कर दे, ध्यान और जप को भी छोड़ दे, अर्घ्य की स्थापना का भी परित्याग कर दे किन्तु योगरत्न का त्याग नहीं करना चाहिये। साधक को चाहिये कि वह योगरत्न को रत्न की भाँति गले में धारण कर ले। हे वरारोहे! मैं ग्रन्थ-विस्तार के भय से इसकी महिमा का वर्णन नहीं कर रहा हूँ। वर्णन किया भी नहीं जा सकता। कपालडामर तथा शबरतन्त्र में इसका बहुत फल बतलाया गया है। इसलिये यहाँ बहुत नहीं कहा गया। इसके सतत् अभ्यास से चारों पुरुषार्थ दास की भाँति साधक के वश में हो जाते हैं। यह सत्य है। इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ६६४-६७० ॥

॥ इस प्रकार आदिनाथविरचित पचास सहस्र श्लोकों वाली महाकालसंहिता के 'वस्तुशोधनमातृकान्यासोद्धार' नामक षष्ठ पटल की आचार्य राधेश्याम-चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ६ ॥

* * *

सप्तमः पटलः

महाकाल उवाच—

ततः पूर्वोक्तविहितमृष्यादिन्यासमाचरेत् ।
ततः षडङ्गन्यासं च कुर्यात् तत्तन्मनूदितान् ॥ १ ॥

महाकाल ने कहा—इसके बाद पूर्वोक्त विधान वाला ऋष्यादि-न्यास करना चाहिये । तत्पश्चात् तत्तत् मन्त्रों में कहे गये षडङ्गन्यास को करना चाहिये ॥ १ ॥

[बहुन्यासोद्देशः]

तं विधायेतरान् न्यासान् यथाशक्ति समाचरेत् ।
बहवः सन्ति देवेशि नानाफलविधायिनः ॥ २ ॥
बह्वल्पक्षणसाध्याश्च देवीसन्तोषकारकाः ।
तेभ्यः कतिपये सारतरा निष्काशिता मया ॥ ३ ॥
आदौ नाम्ना प्रवक्ष्यामि पश्चादुद्धारतोऽपि तान् ।

बहुत न्यासों का उद्देश्य—उसको कर के अन्य न्यासों को भी यथाशक्ति करना चाहिये । हे देवेशि! अनेक प्रकार के फल देने वाले बहुत सारे न्यास हैं । इनमें से कुछ बहुत समय और कुछ अल्पक्षण के द्वारा साध्य हैं । सभी देवी के लिये सन्तोषकारक हैं । उनमें से मैंने कुछ सारभूत न्यासों का चयन किया है । पहले मैं उनके नाम बतलाऊँगा बाद में उनका उद्धार भी कहूँगा ॥ २-३- ॥

[पञ्चविंशतिमितसारतरन्यासोद्देशः]

वक्त्रन्यासो भवेदादौ ततोऽस्त्रन्यास एव च ॥ ४ ॥
दूतीन्यासस्ततो ज्ञेयो डाकिनीन्यास एव च ।
योगिनीन्यास इति च प्रथमं पञ्चकं मतम् ॥ ५ ॥
कुलतत्त्वं सिद्धिचक्रं कैवल्यममृतं तथा ।
विजयो जयपूर्वश्च द्वितीयं पञ्चकं स्मृतम् ॥ ६ ॥
दिव्यं वर्षायुतं तप्त्वा पञ्चैतान् पञ्चभिर्मुखैः ।
अब्रवीत् त्रिपुरारातिर्लब्ध्वा मां युगपत् प्रिये ॥ ७ ॥
भावना समयः सृष्टिः स्थितिः संहार इत्यपि ।
तृतीयं पञ्चकमिदं तव देवि मयेरितम् ॥ ८ ॥

अनाख्या च तथा भासा मन्त्रः सिद्धिर्विराडपि ।
तुर्यं पञ्चकमेतद्धि सर्वसिद्धिविधायकम् ॥ ९ ॥
बीजं कूटं क्रमो धातुस्तत्त्वं पञ्चमपञ्चकम् ।
पञ्चविंशतिसंख्याका न्यासा एते प्रकीर्तिताः ॥ १० ॥

पचीस सारभूत न्यासों के नाम—पहला वक्त्रन्यास, इसके बाद अस्त्रन्यास होता है । इसके पश्चात् दूतीन्यास जानना चाहिये । डाकिनीन्यास और योगिनीन्यास ये सब मिलकर प्रथम पञ्चक होते हैं । कुलतत्त्व, सिद्धिचक्र, कैवल्य, अमृत और जयविजय यह द्वितीय पञ्चक कहा गया है । हे प्रिये! दिव्य दश हजार वर्षों तक तप करने के बाद त्रिपुरारि ने इन्हे एक साथ प्राप्त कर अपने पाँच मुखों से इन पाँचों को मुझे बतलाया । हे देवि! भावना, समय, सृष्टि, स्थिति और संहार यह तृतीय पञ्चक मैंने तुमको बतलाया । अनाख्या, भासा, मन्त्र, सिद्धि और विराट् यह चतुर्थ पञ्चक है, जो कि सिद्धि प्रदान करने वाला है । बीज, कूट, क्रम, धातु और तत्त्व यह पाँचवा पञ्चक है। इस प्रकार ये पचीस संख्या वाले न्यास कहे गये ॥ ४-१०॥

[षोढान्यासनिर्देशः]

ततश्च लघुषोढा स्यान् महाषोढा ततः परम् ।
महानिर्वाणषोढा च सर्वशेषे प्रकीर्तिता ॥ ११ ॥
इत्येष न्यासनिवहः कर्तव्यः स्वस्वशक्तितः ।
अस्मिन्नेव ह्यवसरे योगरत्नादनन्तरम् ॥ १२ ॥
अथैषामुद्धृतिं वक्ष्ये क्रमेण परमेश्वरि ।

षोढ़ा न्यास का निर्देश—इसके बाद लघु षोढ़ान्यास फिर महाषोढ़ा और सबके अन्त में महानिर्वाणषोढ़ा न्यास कहे गये हैं । इस न्याससमूह को अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार करना चाहिये । हे परमेश्वरि! इसी अवसर पर योगरत्न के बाद क्रमशः इनका उद्धार बतलाऊँगा ॥ ११-१२- ॥

[प्रथमन्यासपञ्चके वक्त्रन्यासाभिधानम्]

वक्त्रन्यासं च तत्रादौ सावधाना निशामय ॥ १३ ॥
तारत्रपारावकूर्चयोगिनीप्रेतकालिकाः ।
दीपस्ततो डाकिनी च बीजानि स्युर्नवाग्रतः ॥ १४ ॥
ततो! महाचण्डयोगेश्वरीमूर्तय ईरयेत् ।
ऊर्ध्ववक्त्राय ततो विसन्ध्यथ ससन्धि वा ॥ १५ ॥
प्रज्वलद्दीपकारिणे ततः परमुदीरयेत् ।
फेत्कारिनरसिंहौ च भैरव्यङ्कुशकालिकाः ॥ १६ ॥
शेषे चेमानि बीजानि पञ्चैव परमेश्वरि ।
अस्त्रं हार्दं शिरांस्यन्ते ब्रह्मरन्ध्रे प्रविन्यसेत् ॥ १७ ॥

प्रथम न्यास पञ्चक में वक्त्रन्यास—उनमें पहले सावधान होकर वक्त्रन्यास को सुनो । तार त्रपा राव कूर्च योगिनी प्रेत काली दीप उसके बाद डाकिनी ये नव बीज पहले रहते हैं । इसके बाद 'महाचण्डयोगेश्वरीमूर्तये' कहना चाहिये । इसके अनन्तर सन्धिरहित या सन्धिसहित 'ऊर्ध्ववक्त्राय' फिर 'प्रज्वलद्दीपकारिणे' कहना चाहिये । हे परमेश्वरि! अन्त में फेत्कारी नरसिंह भैरवी अङ्कुश और काल—इन पाँच बीजों को कहकर अन्त में अस्त्र हृदय और शिरो मन्त्र को ब्रह्मरन्ध्र में न्यस्त करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ह्लीं फ्रें हूं छ्रीं स्हौः क्रीं रक्ष्रों महाचण्डयोगेश्वरिमूर्तये ऊर्ध्ववक्त्राय प्रज्वलद्दीपकारिणे ह्स्ख्फ्रें क्ष्रौं सौं क्रों क्लीं फट् नमः स्वाहा) ॥ १३-१७ ॥

वाग्भवं कमलाकामप्रासादक्षेत्रपा अपि ।
सुधासोमौ शक्तिसाम्ये नवेमानि पुरो वदेत् ॥ १८ ॥
ततो महावज्रदंष्ट्रायुधमूर्तय ईरयेत् ।
सिंहवक्त्राय च तत उग्राय च विसन्धिमत् ॥ १९ ॥
मृत्युमृत्यव उल्लिख्य सानुमक्षं समेखलम् ।
कुण्डहारोऽस्त्रहृच्छीर्षाण्यन्तेषु प्रयोजयेत् (?) ॥ २० ॥

वाग्भव कमला काम प्रसाद क्षेत्रपाल सुधा सोम शक्ति साम्य इन नव बीजों को पहले कहना चाहिये । इसके बाद 'महावज्रदंष्ट्रायुधमूर्तये' कहना चाहिये । 'सिंहवक्त्राय' उसके बाद सन्धिरहित 'उग्राय मृत्युमृत्यवे' कहकर सानु अक्ष मेखला कुण्ड हार के बाद अस्त्र हृदय और शिर को अन्त में जोड़ना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं श्रीं क्लीं हौं क्षौं ग्लूं ग्लौं ब्लूं रखध्रैं महावज्रदंष्ट्रायुधमूर्तये सिंहवक्त्राय उग्राय मृत्युमृत्यवे ह्लीं ह्लूं क्ष्रीं क्ष्रूं जक्रीं फट् नमः स्वाहा) इसका मुख और हृदय में न्यास करना चाहिये ॥ १८-२० ॥

मुखे न्यसेत् तदाकारं हृदये प्रविभावयेत् ।
पाशं भारुण्डया युक्तं प्रलयं गर्भमेव च ॥ २१ ॥
डाकिनी तुङ्गजम्भेष्टिवेताला नव कीर्तयेत् ।
वमदुल्काघोरमुखमूर्तये कीर्तयेत् ततः ॥ २२ ॥
फेरुवक्त्राय तदनु पदात् फेरुरवात्ततः ।
भीषणायेति सम्भाष्य बलिभोगविधिच्छटाः ॥ २३ ॥

पाश, भारुण्डा, प्रलय, गर्भ, डाकिनी, तुङ्ग, जम्भा, इष्टि और वेताल—इन नव बीजों का कथन करना चाहिये । उसके बाद 'वमदुल्काघोरमुखमूर्तये' कहना चाहिये । उसके पश्चात् 'फेरुवक्त्राय' पुनः 'फेरुरव' के बाद 'भीषणाय' कहकर बलि, भोग, विधि, छटा, डाकिनी 'फट् नमः स्वाहा' इससे दक्षिण नेत्र में न्यास करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—आं प्रीं ह्स्फ्रें रक्ष्रैं ख्फ्रें ज्रीं फ्रीं श्रीं स्फ्लक्ष्रूं वमदुल्काघोरमुखमूर्तये फेरुवक्त्राय फेरुरवभीषणाय छ्रीं ह्स्ख्फ्रीं र्क्ष्छ्रीं रझौं ख्फ्रें फट् नमः स्वाहा) ॥ २१-२३ ॥

डाकिनी फट् नमः स्वाहा न्यसेद् दक्षिणलोचने ।
कालीनीलौ नेमिविश्वौ मौञ्जीसूत्रे महाक्रमौ ॥ २४ ॥
सृष्टिस्ततोऽनु नखरदशनायुधमूर्तये ।
कपिवक्त्रायानु महापिङ्गलानु सटाय च ॥ २५ ॥
कपालयुगलं छन्दमन्दारौ भैरवी तथा ।
अस्त्रं हृच्छिरसी शेषे न्यसेद् वामेक्षणे प्रिये ॥ २६ ॥

काली, नील, नेमि, विश्व, मौञ्जी सूत्र महाक्रम सृष्टि उसके बाद 'नखरदशनायुधमूर्तये कपिवक्त्राय' के बाद 'महापिङ्गल' के पश्चात् 'सटाय' के पश्चात् दो कपाल छन्द मन्दार भैरवी अस्त्र हृदय शिर इससे हे प्रिये! वाम नेत्र में न्यास करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—क्रीं ज्रौं फ्रूं फ्रौं ह्लैं ह्लौं क्ष्रूं क्ष्रूं ह्स्ख्फ्रें नखरदशनायुधमूर्तये कपिवक्त्राय महापिङ्गलसटाय थ्रीं थ्रीं फ्रैं प्रीं सौः फट् नमः स्वाहा) ॥ २४-२६ ॥

धारा(?धरा) ताटङ्कनीले च जटाक्षरमहोदयाः ।
भ्रामरी च प्रचण्डा च केकराक्षी ततः परम् ॥ २७ ॥
ततो लावण्यपदतो निधानपदमुच्चरेत् ।
दिव्यमूर्तय उद्धृत्य नरवक्त्राय चोद्धरेत् ॥ २८ ॥
सर्वभोगवैभवाय तत एव समुद्धरेत् ।
औपह्वरं नान्दिकं च कुशिकं व्ययमेव च ॥ २९ ॥
सारसं (सुरसं?) फट् नमःशीर्षं दक्षनासापुटे न्यसेत् ।

धारा, ताटङ्क, नील, जटा, अक्षर, महोदय, भ्रामरी, प्रचण्डा, केकराक्षी उसके बाद 'लावण्य' पद के बाद 'निधान' पद कहना चाहिये । 'दिव्यमूर्तये' को उद्धृत कर 'नरवक्त्राय' को उद्धृत करना चाहिये । उसके बाद 'सर्वभोगवैभवाय' कहना चाहिये । औपह्वर, नान्दिक, कुशिक, व्यय, सारस के बाद 'फट् नमः' और शिर से दायें नासापुट में न्यास करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—लं र्स्त्रीं ज्रौं च्रूं र्ख्रैं र्ख्रौं ख्फ्रीं ख्फ्रूं ख्फ्रैं लावण्यनिधानदिव्यमूर्तये नरवक्त्राय सर्वभोगवैभवाय छ्रर्क्ष्ह्लैं र्छ्रां रह्लछ्ररक्षह्लैं रह्लछ्ररक्षह्लौं र्क्क्ष्रीं (?) फट् नमः स्वाहा) ॥ २७-२९ ॥

लाङ्गूलं वर्धमानं च सम्भूतियुगलं तथा ॥ ३० ॥
नादान्तकचतुष्कं च हारिणीमप्यनन्तरम् ।
विकरालनख प्रोच्य दन्तमूर्तय उद्धरेत् ॥ ३१ ॥

ऋक्षवक्त्राय मेचकेति सटाभारिण इत्यपि ।
नक्षत्रमन्दसम्मोहविजयाकालरात्रय: ॥ ३२ ॥
अस्त्रं हृदयशीर्षे च वामनासापुटे न्यसेत् ।

लाङ्गूल, वर्धमान, दो सम्भूति, चार नादान्तक, हारिणी के पश्चात् 'विकरालनख' कहकर 'दन्तमूर्तये' कहना चाहिये । 'ऋक्षवक्त्राय मेचकसटाभारिणे' के बाद नक्षत्र मन्द सम्मोह विजया कालरात्रि अस्त्र हृदय शिर इससे वामनासापुट में न्यास करे ।

(मन्त्र-स्वरूप—ह्फ्रीं ह्फ्रूं ख्फ्रह्लीं ख्फ्रह्लीं ख्फ्रक्ष्रीं ख्फ्रक्ष्रीं ख्फ्रक्ष्रीं ख्फ्रक्ष्रीं रजझक्ष्रैं विकरालनखदन्तमूर्तये ऋक्षवक्त्राय मेचकसटाभारिणे ब्लैं हस्फ्रीं हस्फ्रूं क्ष्रफ्लह्लीं ख्फ्रौं फट् नम: स्वाहा) ॥ ३०-३२- ॥

गारुडं खेचरीनागनाराचा: शूलमेव च ॥ ३३ ॥
नालीकं च भुशुण्डी च क्षुरप्र: प्रास एव च ।
पदाद् घोरतराच्चञ्चुपक्षमूर्तय उच्चरेत् ॥ ३४ ॥
तार्क्ष्यवक्त्रायेति चोक्त्वा खरतो नखरेत्यपि ।
तुण्डायेति समाभाष्य तन्त्रां सकुटिलां वदेत् ॥ ३५ ॥
कौलुञ्चं च विवत्सं च पिप्पलास्त्रानु हृच्चकम् ।
न्यसेत् कपोले दक्षे च सन्धानं शिञ्जिनीमपि ॥ ३६ ॥

गारुड खेचरी नाग नाराच शूल नालीक भुशुण्डी क्षुरप्र प्रास बीजों के बाद 'घोरतरचञ्चुपक्षमूर्तये' का उच्चारण करना चाहिये । 'तार्क्ष्यवक्त्राय' कहकर 'खरनखरतुण्डाय' कहने के पश्चात् तन्त्रा कुटिला कहना चाहिये । कौलुञ्च विवत्स पिप्पल अस्त्र के पश्चात् हृदय और क, इससे दाँयें कपोल पर न्यास करे ।

(मन्त्र-स्वरूप—क्रौं ख्रौं ब्रीं खफछ्रीं खफछ्रूं क्षरस्त्रीं क्षरस्त्रूं खफछ्रौं क्षरस्त्रौं घोरतरचञ्चुपक्षमूर्तये तार्क्ष्यवक्त्राय खरनखरतुण्डाय रक्षफ्रछ्रीं रक्षफ्रछ्सं छ्रखफ्रीं ह्लखफ्रीं स्त्रखफ्रीं फट् नम: स्वाहा) ॥ ३३-३६ ॥

मातृशङ्कू ततो वीरवेतालौ रञ्जिनीं घटीम् ।
मणिमालां सर्वशेषे बीजानि नव वै वदेत् ॥ ३७ ॥
ततो दीर्घसित प्रोच्य दंष्ट्रायुध समुद्धरेत् ।
मूर्तये ग्राहवक्त्राय तत: परमुदीरयेत् ॥ ३८ ॥
महाभोगभासुराय शब्दमीदृशमुद्धरेत् ।
योगतन्त्राद्वयं शिल्पं प्रतानद्वितयं तथा ॥ ३९ ॥
अस्त्रं हृदुत्तमाङ्गेऽपि कपोले दक्षिणेतरे ।

सन्धान शिञ्जिनी मातृ शङ्कु वीर वेताल रञ्जिनी घटी और सबके अन्त में मणिमाला इन नव बीजों को कहना चाहिये । उसके बाद 'दीर्घसित' कहकर 'दंष्ट्रायुध' कहना चाहिये । 'मूर्तये' उसके पश्चात् 'ग्राहवक्त्राय' उच्चरित करना

चाहिये । इसी प्रकार 'महाभोगभासुराय' को उद्धृत करना चाहिये । फिर योग तन्त्रा इन दोनों को फिर शिल्प और दो प्रतान के बाद अस्त्र हृदय और उत्तमाङ्ग कहना चाहिये । इसे बाँयें कपोल पर न्यास करे ।

(मन्त्र-स्वरूप—हलक्षीं हलक्षूं पौं फहलक्षूं सफहलक्षीं सफहलक्षूं रक्षफ्रछ्रैं रक्षफ्रछ्रौं रजझक्षूं दीर्घसितदंष्ट्रायुधमूर्तये ग्राहवक्त्राय महाभोगभासुराय रछूं रक्षफ्रछ्रीं क्षखफ्रैं खफ्रह्रैं खफ्रह्रैं फट् नमः स्वाहा) ॥ ३७-३९- ॥

न्यसेदथ शिखाद्वन्द्वं सेतुयुग्मं शुचिद्वयम् ॥ ४० ॥
हारिणीयुगलं रागं वज्रिक्रूरेत्यनन्तरम् ।
दन्तायुधान् ततः (मूर्तये) पञ्चगजवक्त्राय तत्परम् ॥ ४१ ॥
नागराजाय शुण्डाय तदन्वपि समुद्धरेत् ।
विहारं च विसृष्टिं च पाणिगीतिं सविस्मृतिम् ॥ ४२ ॥
विकोशपूर्वमन्त्रं च हृन्मन्त्रः सशिरो मनुः ।
दक्षिणे श्रवणे न्यस्येद् वियोगं तदनु प्रिये ॥ ४३ ॥

दो शिखा दो सेतु दो शुचि दो हारिणी एवं राग के बाद 'वज्रिक्रूर' के बाद 'दन्तायुधमूर्तये पञ्चगजवक्त्राय' उसके बाद 'नागराजाय शुण्डाय' कहना चाहिये । विहार विसृष्टि पाणिगीतिका विस्मृति विकोश के बाद अस्त्र हृन्मन्त्र शिर इससे दक्षिण श्रवण में न्यास करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—रथ्रीं रथ्रीं रठ्रीं रठ्रीं श्रैं श्रैं रजझक्षूं रजझक्षूं रकक्ष्रैं वज्रिक्रूरदन्तायुधमूर्तये पञ्चगजवक्त्राय नागराजाय शुण्डाय ह्क्षम्लैं ह्क्षम्लौं ह्ग्लौं ह्ग्लैं क्ष्रक्लूं फट् नमः स्वाहा) ॥ ४०-४३ ॥

उत्तानं च विरागं च विघटीमुपलं तथा ।
कृष्टिं वारीं बृंहतिं च ह्युत्सर्गमपि संवदेत् ॥ ४४ ॥
ह्रेषा दन्तशफा प्रोच्यायुधमूर्तय ईरयेत् ।
हयवक्त्राय तदनु निगालपदमन्वतः ॥ ४५ ॥
केशरोर्द्ध्वाय चाभाष्य कुलनारीं सयोगिनीम् ।
कूर्चं वधूं शाकिनीं च हृत्पूर्वास्त्रं शिरोऽपि च ॥ ४६ ॥
वामे श्रवसि विन्यस्येत् सर्वशेषे वरानने ।
अयं ते कथितो वक्त्रन्यासः परमशोभनः ॥ ४७ ॥

हे प्रिये! इसके बाद वियोग उत्तान विराग विघटी उपल कृष्टि वारी बृंहति उत्सर्ग को कहना चाहिये । 'ह्रेषा दन्तशफा' कहकर 'आयुधमूर्त्तये' कहना चाहिये । 'हयवक्त्राय' उसके बाद 'निगाल' पद के पश्चात् 'केशरोर्ध्वाय' कहकर कुलनारी योगिनी कूर्च वधू शाकिनी के पश्चात् हे वरानने! सबके अन्त में हृदय अस्त्र और शिर इससे वामकर्ण में न्यास करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ह्लखफ्रैं स्त्रखफ्रौं क्लखफ्रौं क्लखफ्रैं ह्लभ्रां क्षस्फ्रौं ग्लब्लौं क्षखौं क्ष्रफ्रहौं ह्लेषादन्तशंफायुधमूर्तये हयवक्त्राय निगालकेशरोद्धर्वाय ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें नमः फट् स्वाहा) ॥ ४४-४७ ॥

[वक्त्रन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देश:]

अथास्यर्ष्यादिकं वच्मि फलमक्षरनिर्णयम् ।
औडुलोमिर्ऋषिः प्रोक्तः शक्वरीच्छन्द उच्यते ॥ ४८ ॥
देवता गुह्यकाली तु फेत्कारी बीजमुच्यते ।
डाकिनी शक्तिराख्याता प्रलयः कीलकं मतम् ॥ ४९ ॥
वक्त्रन्यासे भवेदस्य विनियोगो वरानने ।

वक्त्रन्यास के ऋषि आदि—अब इसके ऋषि आदि, फल और अक्षरनिर्णय को बतलाऊँगा । इसके ऋषि औडुलोमि कहे गये हैं । छन्द शक्वरी कहा जाता है । देवता गुह्यकाली और बीज फेत्कारी कहा जाता है । डाकिनी शक्ति कही गयी है । कीलक प्रलय बीज माना गया है । हे वरानने! इसका विनियोग वक्त्रन्यास में किया जाता है ॥ ४८-४९ ॥

[वक्त्रन्यासस्य फलश्रुति:]

एतस्य प्रत्यहाभ्यासाद् विप्रो वाग्मी प्रजायते ॥ ५० ॥
आज्ञाप्रदो भूमिपेषु भूमिपालः प्रजायते ।
आर्यो गोऽश्वाजाविरत्नधनधान्यान्वितो भवेत् ॥ ५१ ॥
शूद्रो भुक्त्वा चिरं भोगानन्ते देव्यन्तिकं व्रजेत् ।

वक्त्रन्यास का फल—इसके प्रतिदिन के अभ्यास से ब्राह्मण वाग्मी हो जाता है; राजा अन्य राजाओं को आज्ञा देने वाला हो जाता है । आर्य (अर्थात् वैश्य) गाय, घोड़ा, बकरी, भेड़, रत्न, धन-धान्य आदि से सम्पन्न होता है । शूद्र बहुत काल तक भोगों को भोग कर अन्त में देवी के पास चला जाता है ॥ ५०-५१- ॥

[न्यासे वर्णनिर्णयप्रकाराभिधानम्]

अथ ब्रवीमि वर्णानां प्रतिमन्त्रं विनिर्णयम् ॥ ५२ ॥
व्यत्यासं येन नो गच्छेन् मृत्युं तेनाधिगच्छति ।
नव बीजानि सर्वेषां स्थितानि प्रथमं प्रिये ॥ ५३ ॥
आकारा वायुधोल्लेखमामूर्ति ङेऽन्तयुग्वचः ।
एकादशाक्षराणि स्युः मुखं प्रतिमनु प्रिये ॥ ५४ ॥
विशेषणार्थमष्टौ च पञ्चान्यानि समाप्तये ।
बीजानि स्युस्तदन्वस्त्रहृच्छिरो वर्णपञ्चकम् ॥ ५५ ॥
त्रिचत्वारिंशदर्णाः स्युरेवं प्रतिमनु प्रिये ।
नाधिका नापि च न्यूना इत्येवं निर्णयः कृतः ॥ ५६ ॥

न्यास में वर्ण-निर्णय—अब प्रत्येक मन्त्र के विषय में वर्णों का निर्णय बतला रहा हूँ ताकि (मन्त्र) उल्टा-पुल्टा न हो जाय (क्योंकि) इससे (साधक) मृत्यु को प्राप्त हो जाता है । हे प्रिये! सभी न्यासों के पहले नव बीज रहते हैं । आकार आयुध का उल्लेख और मूर्ति तक सब ङेऽन्त रहते हैं । इनमें ग्यारह अक्षर होते हैं। प्रतिमन्त्र मुख और उसके विशेषण के लिये आठ अक्षर तथा समाप्ति के लिये पाँच अन्य बीज होते हैं । उसके बाद अस्त्र हृदय और शिर में पाँच वर्ण होते हैं । हे प्रिये! इस प्रकार मन्त्र में तैंतालिस वर्ण होते हैं, न अधिक न कम—यही निर्णय किया गया है ॥ ५२-५६ ॥

[एकादशमुख्यादीनां वक्त्रन्यासाभिधाने सिद्धान्तनिरूपणम्]

एकादशास्यादीनां हि वक्त्रन्यासः कथं भवेत् ।
एतस्मिन् संशये देवि सिद्धान्तं त्वं निबोध मे ॥ ५७ ॥
तारो माया योगिनी च कूर्चः स्त्री शाकिनी तथा।
डाकिनी प्रलयश्चापि फेत्कारी तदनन्तरम् ॥ ५८ ॥
इमानि नव बीजानि सर्वेषां पुरतः स्मरेत् ।
तत्तद्वक्त्राय तावत्तावदक्षरमपीश्वरि ॥ ५९ ॥
एतान्येव हि बीजानि प्रतिलोम्ना पुनर्वदेत् ।
ततोऽन्वचिन्त्यमहिमशक्तये इति कीर्तयेत् ॥ ६० ॥
पूर्ववच्चास्त्रहृच्छीर्षाण्यन्ते च समुदाहरेत् ।
परावृत्य परावृत्य न्यासस्थानं तदेव हि ॥ ६१ ॥
यत्र यत्र समाप्तं स्यात् तत एव निवर्तते ।
प्रत्येकं भिन्नबीजत्वं नात्र नाक्षरनिर्णयः ॥ ६२ ॥
न भिन्नकालोऽपि च न भिन्नस्थलता तथा ।
इति देव्यधिकास्यानां नियोगः कथितो मया ॥ ६३ ॥

ग्यारहमुखी आदि के वक्त्रन्यास का सिद्धान्त—हे देवि! एकादशास्या आदि का वक्त्रन्यास कैसे होता है यह संशय होने पर तुम मुझसे सिद्धान्त जानो । सभी के पहले तार माया योगिनी कूर्च स्त्री शाकिनी डाकिनी प्रलय और फेत्कारी—ये नव बीज सबके पहले कहना चाहिये । हे ईश्वरि! पुनः तत्तत् वक्त्र के लिये उतने-उतने अक्षर कहने चाहिये । पुनः उन्हीं नव बीजों को उल्टे क्रम से कहना चाहिये । उसके बाद 'अचिन्त्यमहिमशक्तये' का उच्चारण करना चाहिये । अन्त में पूर्व की भाँति अस्त्र हृदय और शीर्ष को उद्धृत करना चाहिये । घूम-घूमकर न्यास-स्थान वही रहता है जहाँ न्यास समाप्त हो जाय वहीं घूम जाना चाहिये । प्रत्येक मन्त्र का बीज भिन्न-भिन्न होता है, अतः इसमें अक्षरनिर्णय नहीं होता, न समय और न स्थल ही भिन्न होते हैं । इस प्रकार मैंने देवी के अधिक मुखों का विनियोग तुम्हें बतलाया ।

(उदाहरण—मन्त्र-स्वरूप—ओं ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें ह्स्फ्रें ह्स्ख्फ्रें शुकवक्त्राय ह्स्खफ्रें हसफ्रें खफ्रें फ्रें स्त्रीं हूं ह्रीं ह्रीं ओं अचिन्त्यमहिमशक्तये फट् नम: स्वाहा) ॥ ५७-६३ ॥

[न्यूनवक्त्राणां वक्त्रन्यासाभिधाने निर्णयनिरूपणम्]

अधुना न्यूनवक्त्राणां निश्चयं कथयामि ते ।
यद्यदाकारवदनं तत् तदेवोल्लिखेद् बुध: ॥ ६४ ॥
तस्य तस्य स्थलं यद्यत् तेषु तेष्वेव विन्यसेत् ।
तद्धेयं तत् त्यजेद् देवि ग्राह्यं स्थानं तदास्यजम् ॥ ६५ ॥
पूर्वोक्त एव ऋष्यादिरस्यापि श्यामकुन्तले ।
अधिकास्यासमं सर्वमन्यदस्या अपि स्मृतम् ॥ ६६ ॥

न्यूनवक्त्रों वाली के वक्त्रन्यास का सिद्धान्त—अब तुमको न्यूनवक्त्रों का निर्णय बतला रहा हूँ । जिस-जिस आकार का मुख हो विद्वान् उस-उस आकार का उल्लेख करे । उस-उस का जो-जो स्थल है उन-उन स्थलों में उनका न्यास करना चाहिये । जो आस्यस्थान त्याज्य हैं उसका त्याग और जो ग्राह्य हैं, उसका ग्रहण करना चाहिये । हे श्यामकुन्तले! इसके भी ऋषि आदि पूर्वोक्त ही हैं । इसका अन्य सब कर्तव्य अधिकास्या के समान कहा गया है ॥ ६४-६६ ॥

[अस्त्रन्यासाभिधानम्]

इदानीमवधेहि त्वमस्त्रन्यासं महाफलम् ।
वक्त्रन्यासवदस्यापि न्यूनाधिक्ये तथोन्नयेत् ॥ ६७ ॥
दशवक्त्रास्त्रविन्यासं केवलं कथयामि ते ।

अस्त्रन्यास—अब तुम महाफलदायक अस्त्रन्यास को समझो । इसमें भी वक्त्र-न्यास की भाँति न्यूनाधिक्य का ज्ञान कर लेना चाहिये । तुमको केवल दशवक्त्रास्त्र न्यास बतलाऊँगा ॥ ६७-६७- ॥

[अस्त्रन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देश:]

स्वयम्भूर्ऋषिरुद्दिष्टो जगतीच्छन्द उच्यते ॥ ६८ ॥
गुह्यकाली च देवी स्याच्छूलं बीजमुदीर्यते ।
खड्ग: शक्ति: परिख्याता गदा कीलकमुच्यते ॥ ६९ ॥
विनियोगस्तथा चास्यास्त्रन्यासे त्रिदशेश्वरि ।

अस्त्रन्यास के ऋषि आदि—(इस न्यास के) ऋषि स्वयम्भू बतलाए गये हैं । इनका छन्द जगती कहा जाता है । देवी गुह्यकाली और बीज शूल है । खड्ग शक्ति और कीलक गदा कही जाती है । हे त्रिदशेश्वरि! इसका प्रयोग अस्त्रन्यास में किया जाता है ॥ ६८-६९- ॥

[अस्त्रन्यासोद्धारः]

प्रथमं दक्षिणे भागे वामे भागे ततो न्यसेत् ॥ ७० ॥
हारं रत्नं तथा मालां रत्नमालां च ङेऽन्तिनीम्।
हृदस्त्रं वह्निजाया च दक्षशङ्खे न्यसेत् प्रिये ॥ ७१ ॥
पञ्चार्णान् शेषगान् शेषे सर्वत्र विनियोजयेत् ।
तत्तद् वस्तु च तत्पूर्वं ङेऽन्तत्वेन तथोच्चरेत् ॥ ७२ ॥

अस्त्रन्यास का उद्धार—पहले दाँयें फिर बाँयें भाग में न्यास करना चाहिये । हार रत्न माला फिर ङेऽन्त 'रत्नमाला' तत्पश्चात् हृदय अस्त्र और वह्निजाया इसको हे प्रिये! दाँयें शङ्ख में न्यस्त करना चाहिये । अन्त में अन्तिम पाँच वर्ण (= नमः फट् स्वाहा) सबके अन्त में जोड़ना चाहिये । तत्तद् वस्तु का नाम ङेऽन्त के रूप में कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ह्क्षम्लैं रग्रें ग्रैं रत्नमालायै नमः फट् स्वाहा) ॥ ७०-७२ ॥

पुरतो मैधमुच्चार्य मणिमालायुगं ततः ।
रत्नमालां वामशङ्खे न्यसेद् रीत्या पुरोक्तया ॥ ७३ ॥
मायां करालीं कूर्चं च कर्त्रीं दक्षभ्रुवि न्यसेत् ।
लक्ष्मीमलक्ष्यं कापालं कपोले वामके भ्रुवि ॥ ७४ ॥
कामं महोदयं खड्गं खड्गं दक्षिणलोचने ।
प्रभञ्जनां गारुडं च चर्म चर्म तथैव च ॥ ७५ ॥
विन्यसेद् वामनयने लाङ्गूलं क्षेत्रपं तथा ।
तर्जनीं तर्जनीं दक्षनासापुट इति न्यसेत् ॥ ७६ ॥
भ्रामरीं च हयग्रीवं पाशं पाशमथापि च ।
न्यसेद् नासापुटे वामे वर्द्धमानं महारुषम् ॥ ७७ ॥
अङ्कुशं चाङ्कुशमपि दक्षिणे गण्ड ईरयेत् ।
आषाढं च प्रचण्डां च शक्तिं शक्तिमथापि च ॥ ७८ ॥
वामगण्डे न्यसेद् देवि कालरात्रिं सडाकिनीम् ।
दण्डं दण्डं वरारोहे कपोले दक्षिणे न्यसेत् ॥ ७९ ॥
चामुण्डामथ कूष्माण्डीं खट्वाङ्गं तदनन्तरम् ।
खट्वाङ्गं विन्यसेद् वामकपोले वरवर्णिनि ॥ ८० ॥

पहले मेधा का उच्चारण कर फिर दो मणिमाला उसके बाद पूर्वोक्त रीति से 'रत्नमाला' का वामशङ्ख में न्यास करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ऐं रजझक्षूं रजझक्षूं रत्नमालायै नमः फट् स्वाहा) ।

माया कराली कूर्च कर्त्री का दायें भौंह में न्यास करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ह्रीं ह्स्ख्फ्रौं हूं रभ्रीं दक्षभ्रुवें नमः फट् स्वाहा) ।

लक्ष्मी अलक्ष्य कापाल का कपोलद्वय अर्थात् दो बार वामभ्रू में न्यास करना चाहिये ।[१] काम महोदय खड्ग खड्ग का दक्षिण नेत्र में, प्रभञ्जना गारुड चर्म चर्म का वामनेत्र में न्यास करना चाहिये । लाङ्गूल क्षेत्रपाल तर्जनी तर्जनी का दक्षनासापुट में तथा भ्रामरी हयग्रीव पाश पाश का वामनासापुट में न्यास करना चाहिये । वर्धमान महाक्रोध अङ्कुश अङ्कुश का दक्षिण गण्ड में तथा आषाढ़ प्रचण्डा शक्ति शक्ति का हे देवि! वामगण्ड में न्यास करणीय है । हे वरारोहे! कालरात्रि डाकिनी दण्ड दण्ड का दक्षिण कपोल में एवं चामुण्डा कूष्माण्डी खट्वाङ्ग खट्वाङ्ग का हे वरवर्णिनि! वाम कपोल में न्यास करना चाहिये ॥ ७३-८० ॥

आनन्दं धनदां कुम्भं रत्नकुम्भं प्रविन्यसेत् ।
दक्षिणायां श्रुतौ देवि कङ्कालं त्रिपुटामपि ॥ ८१ ॥
मुण्डं मुण्डं न्यसेद् वामे श्रवणे वरवर्णिनि ।
खोटं ततश्च कोरङ्गीं शूलं शूलं ततः परम् ॥ ८२ ॥
न्यसेद्धनौ दक्षिणायां वेत्रमाषाढमेव च ।
भुशुण्डीं च भुशुण्डीं च वामायां विन्यसेद्धनौ ॥ ८३ ॥
विरूपयुग्मं नाराचं नाराचमथ पार्वति ।
दक्षिणेंऽसे न्यसेद् योगतन्त्रामथ दिगम्बरम् ॥ ८४ ॥
कोदण्डं चाथ कोदण्डं वामेंऽसे विन्यसेत् प्रिये ।
सञ्जीवनीं विनिमयं कुन्तं कुन्तं तथैव च ॥ ८५ ॥
दक्षिणे जत्रुणि न्यस्येत् सम्प्रदायं सभाजनम् ।
चक्रं चक्रं जत्रुणि च न्यसेद् वामे वरानने ॥ ८६ ॥
पोषं व्याडं पारिजातं पारिजातमतः परम् ।
दक्षिणायां तु कक्षायां न्यसेत् साधकसत्तमः ॥ ८७ ॥
कालं नृसिंहं घण्टां च घण्टां तादृशमीरयेत् ।
न्यसेत् कक्षातले वामे कङ्कालममरं तथा ॥ ८८ ॥
छुरिकां छुरिकां चापि दक्षिणे पार्श्वे ईरयेत् ।
औदुम्बरं मनः प्रेतं बालप्रेतं तथैव च ॥ ८९ ॥

हे देवि! आनन्द धनदा कुम्भ रत्नकुम्भ का दक्षिण श्रवण में न्यास करना चाहिये । हे वरवर्णिनि! कङ्काल त्रिपुटा मुण्ड मुण्ड का वाम श्रवण में न्यास करे । खोट उसके बाद कोरङ्गी उसके पश्चात् शूल शूल को दक्षिण हनु में न्यास करना चाहिये । वक्त्र आषाढ भुशुण्डी और भुशुण्डी का वाम हनु में न्यास करना चाहिये । हे पार्वति! दो विरूप और दो नाराच का दक्षिण अंश में तथा हे प्रिये! योगतन्त्रा दिगम्बर दो कोदण्ड का वाम अंश में न्यास करना चाहिये । सञ्जीवनी विनिमय एवं दो कुन्त का दक्षिण जत्रु (घुटना) में न्यास तथा हे वरानने! सम्प्रदाय भाजन तथा

---

[१] अग्रिम मन्त्रों के स्वरूप के लिये परिशिष्ट देखा जाय ।

दो चक्र का वाम जत्रु में न्यास करना चाहिये । पोष व्याड दो पारिजात का दक्षिण कक्ष में तथा काल नृसिंह दो घण्टा का साधकोत्तम वाम कक्ष में न्यास करे । कङ्काल, अमर और दो छुरिका को दक्षिण पार्श्व में कहना चाहिये। औदुम्बर मन प्रेत और बालप्रेत का वामपार्श्व में न्यास करना चाहिये ॥ ८१-८९ ॥

वामपार्श्वे न्यसेद् देवि नित्यमध्वानमेव च ।
तोमरं तोमरमथ न्यसेद् दक्षिणचूचुके ॥ ९० ॥
मन्थानमुग्रं ग्रावाणं ग्रावाणमपि च प्रिये ।
न्यसेत् समाहितमनाश्चूचुके दक्षिणेतरे ॥ ९१ ॥
संविदं तापिनीं पुष्पं पुष्पमालामपि प्रिये ।
कफोणौ दक्षिणे न्यसेत् ततो वैराजमध्वरम् ॥ ९२ ॥
कङ्कालं नरकङ्कालं कफोणौ दक्षिणेतरे ।
अरिष्टं क्रकचं चापि डिण्डिमं डिण्डिमं तथा ॥ ९३ ॥
प्रगण्डे दक्षिणे न्यस्येद् कबन्धं पिङ्गलामपि ।
नाकुलं नाकुलं चापि प्रगण्डे वाम उद्धरेत् ॥ ९४ ॥
कैकरं च विरिञ्चिं च विहङ्गममथैव च ।
विहङ्गमं वै गृध्राख्यं मणिबन्धे च दक्षिणे ॥ ९५ ॥
ककुदं लक्ष्मनिर्मोकं सर्पं च तदनन्तरम् ।
मणिबन्धे न्यसेद् वामे विमर्दं शेखरं तथा ॥ ९६ ॥
पुटकं कमण्डलुं प्रोच्य दक्षिणेऽङ्गुलिमूलके ।
संग्रहं स्थावरं चापि वंशमुन्मादवंशिकाम् ॥ ९७ ॥
वामेष्वङ्गुलिमूलेषु विन्यसेत् कमलानने ।
ग्लहवेतण्डकुलिकं मांसखण्डमथ क्रमात् ॥ ९८ ॥
अङ्गुल्यग्रेषु दक्षेषु न्यासार्थं समनूच्चरेत् ।
खलमक्षरमुच्चार्य मुद्गरं मुद्गरं तथा ॥ ९९ ॥
अङ्गुलीनां हि मूलेषु(अग्रेषु)वामेषु प्रतिविन्यसेत्।

हे देवि! नित्य अध्वा तोमर तोमर का दाँयें चूचुक में तथा मन्थान उग्र ग्रावा ग्रावा का वाम चूचुक में एकाग्रचित्त होकर न्यास करना चाहिये । हे प्रिये! संविद तापिनी पुष्प और पुष्पमाला का दाँयीं कुहनी में न्यास करना चाहिये, उसके बाद वैराज अध्वर कङ्काल और नरकङ्काल का दक्षिणेतर अर्थात् बाँयीं कुहनी में न्यास करना चाहिये । अरिष्ट क्रकच और दो डिण्डिम का दक्षिण प्रगण्ड में, कबन्ध पिङ्गला नाकुल और नाकुल का वाम प्रगण्ड में न्यास करे । कैकर विरिञ्चि विहङ्गम और गृध्र नामक विहङ्गम का दक्षिण मणिबन्ध में, ककुद लक्ष्म निर्मोक और उसके बाद सर्प का वाम मणिबन्ध में न्यास करे । विमर्द शेखर पुटक और कमण्डलु का उच्चारण कर दक्षिण अङ्गुलि मूल में तथा हे कमलानने! सङ्ग्रह

स्थावर वंश और उन्माद वंशी का वाम अङ्गुलि मूल में न्यास करना चाहिये । ग्लह वेतण्ड कुलिक मांसखण्ड का क्रम से दक्षिण अङ्गुल्यग्र में न्यास के लिये उच्चारण करना चाहिये । खल अक्षर का उच्चारण कर दो मुद्‌गर का वाम अङ्गुल्यग्र में न्यास करना चाहिये ॥ ९०-९९ ॥

तारकं कुब्जकमथ स्रुवं स्रुवमपि प्रिये ॥ १०० ॥
न्यसनीयो दक्षकुक्षौ हाकिनीं चञ्चुमेव च ।
कुण्डमप्यग्निकुण्डं च वामकुक्षौ विनिर्दिशेत् ॥ १०१ ॥
आदावुल्लोलमुन्मादं फलबीजं ततः परम् ।
बीजपूरं समाभाष्य दक्षिणायां स्फिचि न्यसेत् ॥ १०२ ॥
ततश्चूडामणिं प्रौढं डमरुं डमरुं तथा ।
वामे स्फिचि प्रविन्यस्य सम्मोहः पतनं तथा ॥ १०३ ॥
सूचीं सूचीं दक्षकटौ न्यसनीयः सुरेश्वरि ।
धेनुं मारिषमाभाष्य परिघं परिघं तथा ॥ १०४ ॥
न्यसनीयः कटौ वामे वीरं वेतालमेव च ।
परशुं ततोऽनु परशुं दक्षिणे वंक्षणे न्यसेत् ॥ १०५ ॥
याम्यं ततो जीवनीं च भिन्दिपालं ततः परम् ।
भिन्दिपालं ततः प्रोच्य वामे वंक्षण उच्चरेत् ॥ १०६ ॥
व्ययं ससारसं प्रोच्य गदामनु गदामपि ।
दक्षिणे जानुनि न्यस्येत् विराधयुगलं ततः ॥ १०७ ॥
मुसलं मुसलं प्रोच्य वामे जानुनि विन्यसेत् ।

हे प्रिये! तारक कुब्जक स्रुव और स्रुव का दक्षिण कुक्षि में न्यास करना चाहिये। हाकिनी, चञ्चु, कुण्ड और अग्निकुण्ड का वाम कुक्षि में निर्देश करना चाहिये । पहले उल्लोल, उन्माद और फलबीज उसके पश्चात् बीजपूर का आभाषण कर दाँयें स्फिक् (= चूतड, कूल्हा) में न्यास करना चाहिये । इसके बाद चूड़ामणि प्रौढ कहकर दो डमरू का वाम स्फिक् में न्यास कर, हे सुरेश्वरि! सम्मोह पतन दो सूची का दक्षिण कटि में न्यास करना चाहिये । धेनु मारिष का वर्णन कर परिघ और परिघ का वाम कटि में न्यास करना चाहिये । वीर, वेताल, परशु के बाद फिर परशु का दक्षिण वंक्षण में न्यास कर याम्य जीवनी दो भिन्दिपाल का वाम वंक्षण में न्यास उच्चरित करना चाहिये। व्यय सारस कहकर गदा के पश्चात् गदा इसका दक्षिण जानु में, दो विराध और दो मुसल को कहकर वाम जानु में न्यास करना चाहिये ॥ १००-१०७ ॥

मोदकं वासितां चैव यष्टिं यष्टिं ततः परम् ॥ १०८ ॥
न्यस्तव्यो दक्षिणे गुल्फे मोक्षं निर्वाणमेव च ।
पट्टिशं पट्टिशमथ वामगुल्फे प्रविन्यसेत् ॥ १०९ ॥

परन्तपं तथैवाज्ञां मुष्टिं मुष्टिमनन्तरम् ।
विन्यसेद् दक्षिणे पार्ष्णौ टङ्कन्यासौ ततः परम् ॥ ११० ॥
प्रासं प्रासमथाभाष्य वामपार्ष्णौ समादिशेत् ।
फैरवानु कुमारीं च कुणपं कुणपं तथा ॥ १११ ॥
दक्षपादाङ्गुलीमूले विन्यस्तव्यो वरानने ।
ओजस्विनं शफमथ शतघ्नीमप्यनन्तरम् ॥ ११२ ॥
शतघ्नीं वामपादाङ्गुलिमूलेषु प्रविन्यसेत् ।
ततः कामकलारङ्कौ ललितं ललितं तथा ॥ ११३ ॥
दक्षिणे प्रपदे न्यस्येदाम्नायातीतमेव च ।
शक्तिसर्वस्वचिच्छक्ती शिवापोतं समुद्धरेत् ॥ ११४ ॥
विन्यस्यः प्रपदे वामे सावधानेन साधकैः ।
इत्येषोऽस्त्रन्यास एवं मया ते प्रतिपादितः ॥ ११५ ॥
न्यूनाधिक्येष्वमुष्यापि वक्त्रन्याससमा क्रिया ।
तेषामपि च ऋष्यादिरस्यर्ष्यादिर्भवेच्छुभे ॥ ११६ ॥

मोदक वासिता दो यष्टि का दक्षिण गुल्फ में तथा मोक्ष निर्वाण दो पट्टिश का वाम गुल्फ में न्यास करना चाहिये । परन्तप आज्ञा मुष्टि मुष्टि का दक्षिण पार्ष्णि इसी प्रकार टङ्क न्यास और दो प्रास का वाम पार्ष्णि में न्यास करना चाहिये । हे वरानने! फैरव कुमारी कुणप कुणप का दक्षिण पैर के अङ्गुलिमूल में न्यास करना चाहिये । ओजस्वी शफ शतघ्नी और शतघ्नी का वाम पादाङ्गुलिमूल में न्यास करणीय है । उसके पश्चात् कामकला रङ्क ललित और ललित को दाँयें पैर में न्यस्त कर साधक-गण सावधानी के साथ आम्नायातीत शक्तिसर्वस्व चित्शक्ति और शिवापोत को उद्धृत कर वामपाद में न्यास करे । इस प्रकार मैंने तुमको अस्त्रन्यास का प्रतिपादन किया । इसके भी न्यूनाधिक्य के होने पर सारी क्रियायें वक्त्रन्यास के समान होंगी । हे शुभे! उनके ही ऋषि आदि इसके भी ऋषि आदि हैं ॥ १०८-११६ ॥

[अन्यप्रकारेणापि अस्त्रन्यासकथनम्]

अथवान्यप्रकारेण स्यादस्त्रन्यास ईश्वरि ।
फलातिरेकतोऽप्यस्मादतस्तमपि ते ब्रुवे ॥ ११७ ॥

अन्य प्रकार से भी अस्त्रन्यास—अथवा हे ईश्वरि! अन्य प्रकार से भी अस्त्रन्यास होता है । इस उक्त न्यास से इसका फल भी अधिक है । अत: उसको भी मैं तुमको बतला रहा हूँ ॥ ११७ ॥

[अस्त्रन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

अस्यर्षिः परमेष्ठी स्याद् बृहतीच्छन्द उच्यते ।
दिव्यास्त्राणि तथा चास्य देवता परिकीर्तिता ॥ ११८ ॥

ज्वरोन्मादोलूकबलातिबलाफैरवाणि च ।
बीजानि च षडुक्तानि क्रमशः पठितानि हि ॥ ११९ ॥
उत्पातभ्रामकस्वप्नापस्मारर्क्षाणि शक्तयः ।
सौरचाक्रैषीकगुह्यपैशाचानि च कीलकम् ॥ १२० ॥
प्रयोगोऽस्त्रन्यास एव कथितः परमेश्वरि ।

अस्त्रन्यास के ऋषि आदि—इसके ऋषि परमेष्ठी और छन्द बृहती हैं । दिव्य अस्त्र इसके देवता कहे गये हैं । ज्वर, उन्माद, उलूक, बल, अतिबल और फैरव ये छह इसके बीज कहे गये हैं । क्रमश: पठित, उत्पात, भ्रामक, स्वप्न, अपस्मार और ऋक्ष इसकी शक्तियाँ हैं । सौरचक्र एषीक गुह्य पिशाच कीलक हैं । हे परमेश्वरि! इसका प्रयोग अस्त्रन्यास में कहा गया है ॥ ११८-१२०- ॥

[अन्यप्रकारेणाप्यस्य विनियोगनिर्देश:]

अथ प्रकारं कथये प्रयोगस्यास्य सुन्दरि ॥ १२१ ॥
ताररावौ पुरः स्यातां शेषे पावकवल्लभा ।
पूर्वोदितेषु स्थानेषु दक्षवामाह्वयेषु च ॥ १२२ ॥
मध्ये भवेत् तत्तदस्त्रोपकूटं परमेश्वरि ।
ब्रह्मास्त्रं प्रथमं नारायणास्त्रं तदनन्तरम् ॥ १२३ ॥
शाङ्करास्त्रं वैष्णवास्त्रं वायव्यास्त्रमनन्तरम् ।
प्राजापत्यास्त्रमस्यानु वारुणास्त्रं ततोऽनु च ॥ १२४ ॥
कौबेरास्त्रं तथैन्द्रास्त्रं कम्पनास्त्रं ततोऽप्यनु ।
आग्नेयास्त्रं च याम्यास्त्रं सौपर्णास्त्रमनन्तरम् ॥ १२५ ॥
पाषाणास्त्रं च कालास्त्रं भौतास्त्रं पार्वतास्त्रकम् ।
नागास्त्रं वैद्युतास्त्रं च त्वाष्टास्त्रं तैमिरास्त्रकम् ॥ १२६ ॥
पार्जन्यास्त्रं तामसास्त्रं मातङ्गास्त्रं ततः स्मरेत् ।

अन्य प्रकार के विनियोग—हे सुन्दरि! इस प्रयोग का अन्य प्रकार बतला रहा हूँ। पूर्वोक्त दाँयें बाँयें स्थानों में तार और राव पहले रहते हैं अन्त में अग्निवल्लभा रहती है । मध्य में तत्तद् अस्त्रोपकूट रहते हैं । सबसे पहले ब्रह्मास्त्र उसके अनन्तर नारायणास्त्र शाङ्करास्त्र वैष्णवास्त्र वायव्यास्त्र प्राजापत्यास्त्र के पश्चात् वारुणास्त्र उसके पश्चात् कौबेरास्त्र तथा ऐन्द्रास्त्र फिर कम्पनास्त्र इसके बाद आग्नेयास्त्र और याम्यास्त्र बाद में सौपर्णास्त्र पाषाणास्त्र कालास्त्र और भौतास्त्र पार्वतास्त्र नागास्त्र वैद्युतास्त्र त्वाष्ट्रास्त्र तैमिरास्त्र पार्जन्यास्त्र तामसास्त्र और मातङ्गास्त्र का स्मरण करना चाहिये ॥ १२१-१२६ ॥

औदुम्बरास्त्रं स्कान्दास्त्रं जृम्भकास्त्रं ततः परम् ॥ १२७ ॥
गान्धर्वास्त्रं दानवास्त्रं जृम्भणास्त्रमितोऽप्यनु ।
प्रस्वापनास्त्रं तदनु कालकूटास्त्रमेव च ॥ १२८ ॥

अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चापि राक्षसास्त्रं गणास्त्रकम् ।
वैनायकास्त्रं भारुण्डास्त्रं वेतालास्त्रमेव च ॥ १२९ ॥
हैमनास्त्रं शाबरास्त्रं शारभास्त्रमनन्तरम् ।
प्रमथास्त्रं राजसास्त्रं कूष्माण्डास्त्रमितोऽप्यनु ॥ १३० ॥
माकरास्त्रं मूर्च्छनास्त्रं गालनास्त्रं ततः परम् ।
मोहनास्त्रं स्तम्भनास्त्रं निमीलनास्त्रमेव च ॥ १३१ ॥
अन्तर्द्ध्यस्त्राचेतनास्त्रं ततः परमुदीरयेत् ।
मारणास्त्रं त्रैदशास्त्रं सर्वशेषे नियोजयेत् ॥ १३२ ॥
वक्त्रबाह्वतिरेकत्वे न्यूनत्वे नास्य विक्रिया ।
इत्यनेन प्रकारेण प्रोक्तोऽस्त्रन्यास ईश्वरि ॥ १३३ ॥

औदुम्बरास्त्र स्कान्दास्त्र जृम्भकास्त्र उसके बाद गान्धर्वास्त्र दानवास्त्र तदनन्तर जृम्भणास्त्र प्रस्वापनास्त्र तदनु कालकूटास्त्र के पश्चात् ब्रह्मशिरोऽस्त्र राक्षसास्त्र गणास्त्र वैनायकास्त्र भारुण्डास्त्र वेतालास्त्र हैमनास्त्र शाबरास्त्र शारभास्त्र के पश्चात् प्रमथास्त्र राजसास्त्र कूष्माण्डास्त्र इसके अनन्तर माकरास्त्र मूर्च्छनास्त्र तत्पश्चात् गालनास्त्र मोहनास्त्र स्तम्भनास्त्र निमीलनास्त्र अन्तर्ध्यानास्त्र और अचेतनास्त्र को कहना चाहिये। सबके अन्त में मारणास्त्र और त्रैदशास्त्र का प्रयोग करना चाहिये । वक्त्र अथवा बाहु के अधिक या न्यून होने पर इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता । हे ईश्वरि! यह अस्त्रन्यास कहा गया ॥ १२७-१३३ ॥

[अस्त्रन्यासफलश्रुतिः]

पूर्वस्माल्लक्षगुणितः कर्तव्यो विजिगीषुणा ।
नैमित्तिके तथा काम्ये कार्योऽयं सर्वथा प्रिये ॥ १३४ ॥
निरालसस्याधिकारो नैवालस्ययुतस्य हि ।

अस्त्रन्यास का फल—हे प्रिये! विजय चाहने वाले को चाहिये कि वह पूर्व न्यास से एक लाख गुना अधिक करे । इसका अनुष्ठान, नैमित्तिक और काम्य कर्म में करना चाहिये । इसके अनुष्ठान में आलस्यरहित मनुष्य का अधिकार है, आलस्ययुक्त का नहीं ॥ १३४-१३४- ॥

[दूतीन्यासाभिधानम्]

दूतीन्यासमथो वक्ष्ये नानासिद्धिफलप्रदम् ॥ १३५ ॥
कर्तव्यो भूतिकामेन राज्ञा चैव विशेषतः ।
दूतीन्यासस्यास्य ऋषिः प्रजापतिरुदाहृतः ॥ १३६ ॥
जगतीच्छन्द उदितं शिवदूती च देवता ।
भोगो बीजं समुदितं शक्तिः सृष्टिरुदाहृता ॥ १३७ ॥
कृत्याबीजं कीलकं स्याद् विनियोगोऽस्य कथ्यते ।

दूतीन्यास—इसके बाद अनेक प्रकार की सिद्धि देने वाले दूतीन्यास को बतलाऊँगा । यह न्यास ऐश्वर्य चाहने वाले और विशेषतया राजा के द्वारा किया जाना चाहिये । इस न्यास के ऋषि प्रजापति कहे गये हैं । छन्द जगती और देवता शिवदूती कही गयी है । भोग बीज और सृष्टि शक्ति कही गयी है । कृत्या बीज कीलक है । इसका विनियोग बतलाया जा रहा है ॥ १३५-१३७- ॥

[दूतीन्यासप्रकाराभिधानम्]

देवि दूतीन्यास एव प्रकारमधुना शृणु ॥ १३८ ॥
चतुर्विंशतिदूत्यस्तु कपालाह्वयडामरे ।
ब्रह्माख्ये यामले चापि पृथक्त्वेन निरूपिताः ॥ १३९ ॥
भीमातन्त्रे व्यापिकाख्या पञ्चविंशतिकान्यपि ।
कालानले तु षड् दूत्यः सिद्धिलक्ष्म्युग्रचण्डयोः ॥ १४० ॥
पूजाविधौ गुह्यकाल्याः पञ्चविंशतिरीरिताः ।
तत्तन्मन्त्रास्ततस्तत्तच्छिवदूतीः स्वनामभिः ॥ १४१ ॥
तत्तत् स्थानानि वक्ष्येऽहं क्रमेण परमेश्वरि ।
न्यासस्थानं मन्त्र एवेत्यनाख्येयं मया मुहुः ॥ १४२ ॥

दूतीन्यास के प्रकार—हे देवि! अब दूतीन्यास के भेदों को सुनो । कपालडामरतन्त्र में चौबीस दूतियाँ (कही गयी हैं) ब्रह्मयामल में भी (उतनी ही) भिन्न रूप से निरूपित है। भीमातन्त्र में व्यापिका नामक पचोसवीं दूती भी कही गयी है । कालानल में सिद्धिलक्ष्मी और उग्रचण्डा के साथ छह दूतियाँ हैं । गुह्यकाली की पूजाविधि में पचीस (दूतियाँ) कही गयी हैं । हे परमेश्वरि! अब मैं क्रम से तत्तत् मन्त्रों, उनके अपने नामों के साथ तत्तद् दूतियों और तत्तत् स्थानों को बतलाऊँगा । न्यास का स्थान मन्त्र में ही (उल्लिखित रहता है) इसलिये मैं पुन: उसको नहीं कहूँगा ॥ १३८-१४२ ॥

[दूतीन्यासस्य स्वरूपवर्णनम्]

पाशत्रयाऽनु प्रकटपदाद् विकटरूपिणि ।
मायाकामौ तथा काली तदन्वट्टाट्टहासिनि ॥ १४३ ॥
लक्ष्मीसृणिरुषो दत्त्वा नरमुण्डाच्च मालिनि ।
चराचरं जगत् प्रोच्य स्तम्भय द्वितयं ततः ॥ १४४ ॥
महाक्रोधं गारुडं च प्रासादं तदनन्तरम् ।
सम्बोधनं चण्डशिवदूतीशब्दस्य तत्परम् ॥ १४५ ॥
श्रीपादुकां पूजयामि ललाटाय नमस्ततः ।

दूतीन्यास का स्वरूप—तीन पाश के पश्चात् 'प्रकट' पद के बाद 'विकटरूपिणि' फिर माया बीज एवं काम बीज फिर काली बीज इसके बाद

'अट्टाट्टहासिनि' पद फिर लक्ष्मी सृणि क्रोध बीजों को कहकर 'नरमुण्ड' के बाद 'मालिनि चराचरं जगत्' कहकर 'स्तम्भय' को दो बार फिर महाक्रोध गारुड उसके बाद प्रासाद तदनन्तर 'शिवदूती' पद का सम्बोधन उसके बाद 'श्रीपादुकां पूजयामि ललाटाय नमः' कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—आं आं आं प्रकटविकटरूपिणि ह्रीं क्लीं क्रीं अट्टाट्टहासिनि श्रीं क्रों हूं नरमुण्डमालिनि चराचरं जगत् स्तम्भय स्तम्भय क्षूं क्रौं हौं चण्डशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि ललाटाय नमः) ॥ १४३-१४५- ॥

पाशत्रयादनु महाश्मशानाद् वासिनीत्यपि ॥ १४६ ॥
शाकिनी योगिनी कान्ता नरकङ्कालधारिणि ।
ततः करङ्किणि प्रोच्य फेरुमुख्यपि कीर्तयेत् ॥ १४७ ॥
डाकिनीप्रलयावुक्त्वा फेत्कारीमपि कीर्तयेत् ।
ततः प्रलम्बोदरि च ऋक्षकर्णि विसन्धिमत् ॥ १४८ ॥
शब्दात् फेरुशिवाद् दूति वदेत् श्रीपादुकां ततः ।
पूजयामीति चिबुकाय नमस्तदनन्तरम् ॥ १४९ ॥
त्रिः पाशं पुनराभाष्य दंष्ट्राशब्दं ततः परम् ।
कराले लोलजिह्वे च नृसिंहप्रेतभैरवीः ॥ १५० ॥
ततो रुधिरशब्दानु वसापिशितभोजिनि ।
त्रिशिखां च त्रिशक्तिं च खेचरीमप्यनन्तरम् ॥ १५१ ॥
घोररावे महाचण्डकोपिन्यपि ततः परम् ।
शक्तिबीजं भूबीजं च विद्युद्बीजमपि प्रिये ॥ १५२ ॥
ततो रक्तशिवार्णेभ्यो दूति श्रीपादुकां वदेत् ।
पूजयामीति चोलिल्ख्य दक्षिणेत्यपि संस्मरेत् ॥ १५३ ॥
कर्णाय नम इत्यन्ते ....

तीन पाश के बाद 'महाश्मशानवासिनि' फिर शाकिनी योगिनी कान्ता के बाद 'नरकङ्कालधारिणि' फिर 'करङ्किणी' कहकर 'फेरुमुखी' भी कहना चाहिये । डाकिनी और प्रलय बीज कहकर फेत्कारी भी कहना चाहिये । फिर 'प्रलम्बोदरि' और सन्धि-रहित 'ऋक्षकर्णि' शब्द के पश्चात् 'फेरुशिव' के बाद 'दूति' कहना चाहिये । तत्पश्चात् 'श्रीपादुकां पूजयामि चिबुकाय नमः' कहना चाहिये ।[1] उसके बाद पाश को तीन बार कहकर 'दंष्ट्रा' शब्द उसके परे 'कराले लोलजिह्वे' फिर नृसिंह प्रेत भैरवी तत्पश्चात् 'रुधिर' शब्द के पीछे 'वसापिशितभोजिनि' उसके बाद त्रिशिखा त्रिशक्ति खेचरी के बाद 'घोररावे महाचण्डकोपिनि' । उसके बाद शक्ति बीज भूबीज विद्युत् बीज फिर हे प्रिये! 'रक्तशिवा' वर्णों के बाद 'दूति श्रीपादुकां' कहना चाहिये ।

---

[1] १. समस्त मन्त्र-स्वरूप के लिये परिशिष्ट का अवलोकन करें ।

'पूजयामि' का उल्लेख कर 'दक्षिण' का स्मरण करना चाहिये । अन्त में 'कर्णाय नम:' ॥ १४६-१५३ ॥

…………………… दूतीपाशादि मा व्यगात् ।
चतु:कलं महापिङ्गलजटाभारभासुरे ॥ १५४ ॥
हारेष्टिजम्भास्तदनु श्मशानाद्धावनेत्यपि ।
विमुक्तकेशि सङ्कीर्त्य हाहाराविणि चोद्धरेत् ॥ १५५ ॥
एकावलीं व्रतमथो षडङ्गं तदनन्तरम् ।
ततः खरमुखि प्रोच्य पिशाचिनि समुद्धरेत् ॥ १५६ ॥
पदात् कुलमताद् भूय: प्रवर्तिनि समालिखेत् ।
गवादित्र्यन्तगं क्रोधशिवदूतिपदं भवेत् ॥ १५७ ॥
श्रीपादुकां पूजयामि वामकर्णाय हृन्मनुः ।
कलाचतुष्कानु महाभैरवि प्रतिकीर्तयेत् ॥ १५८ ॥
खट्वाङ्गधारिणि तथा महामांसबलिप्रिये ।
ततो मुक्तामेखले च कर्णिकादुष्कृते तथा ॥ १५९ ॥
महामारीतिपदतस्त्रैलोक्यडामरीत्यपि ।
निशाचरीति संलिख्य महाकुण्डे समुद्धरेत् ॥ १६० ॥
शृङ्खलामथ पद्मं च दूति घोरशिवात् पदात् ।
श्रीपादुकां पूजयामि कूर्चाय नम इत्यपि ॥ १६१ ॥

पहले पाश फिर चार कला तत्पश्चात् 'महापिङ्गलजटाभारभासुरे' तदनु हार इष्टि जम्भा उसके पश्चात् 'श्मशानधावनविमुक्तकेशि' कहकर 'हाहाराविणि' को उद्धृत करना चाहिये । एकावली व्रत तदनन्तर षडङ्ग उसके बाद 'खरमुखि' कहकर 'पिशाचिनि' को उद्धृत करना चाहिये । 'कुलमत' पद के बाद 'भूय: प्रवर्त्तिनि' को लिखना चाहिये। तीन गो के अन्त में 'क्रोधशिवदूति' पद होना चाहिये । फिर 'श्रीपादुकां पूजयामि' के बाद हृदय मन्त्र कहना चाहिये । चार कला के बाद 'महाभैरवि' कहना चाहिये । 'खट्वाङ्गधारिणि महामांसबलिप्रिये' के बाद 'मुक्तामेखले' और 'कर्णिकादुष्कृते' तथा 'महामारी' पद के पश्चात् 'त्रैलोक्यडामरिनिशाचरि' लिखकर 'महाकुण्डे' उद्धृत करना चाहिये । शृङ्खला पद्म 'घोरशिव' के बाद 'दूति श्रीपादुकां पूजयामि कूर्चाय नम:' कहना चाहिये ॥ १५४-१६१ ॥

वेदसंख्यां कलामुक्त्वा पदाद् विकटतुङ्गत: ।
कोकामुखि समुद्धृत्य जालन्धरि ततः परम् ॥ १६२ ॥
क्रमगर्भाह्वये बीजे तत औपह्वराभिधम् ।
कुशिकं सदाशिवप्रेतारूढे तदनु भामिनि ॥ १६३ ॥
पातालतुलितोदर्यनु स्याद् बीजं नृसिंहकम् ।
दीपं नान्दिकबीजं च व्ययबीजमतः परम् ॥ १६४ ॥

कृतान्तशिवदूतीति तदन्ते समुदीरयेत् ।
श्रीपादुकां पूजयामि तथौष्ठाय नमोऽपि च ॥ १६५ ॥
कलाचतुष्कमाभाष्य भुजङ्गाद् राज इत्यपि ।
कटिसूत्रिणि सङ्कीर्त्य वह्निस्फुलिङ्ग इत्यपि ॥ १६६ ॥
पिङ्गलाक्षि पदाद् बीजं नाराचं समुदीरयेत् ।
नालीकं मन्दमपि च चर्पटं बीजमन्वतः ॥ १६७ ॥
द्वीपिचर्मावृताङ्गीति शिववाहिनि चेत्यपि ।
चण्डकापालेश्वरि च भुशुण्डीं शूलपूर्विकाम् ॥ १६८ ॥
सम्मोहं मणिमालां च कापालशिवदूत्यपि ।
श्रीपादुकां पूजयामि ततोऽनन्तरमीरयेत् ॥ १६९ ॥
ततो दक्षिणनेत्राय नमः पदपुरस्सरम् ।
कलादिमागता देवि शिवदूती दृगन्तिमा ॥ १७० ॥

(पाश के बाद) वेद संख्या (अर्थात् चार की संख्या में) कला बीज को कहकर 'विकटतुङ्गकोकामुखि' को उद्धृत कर 'जालन्धरि' उसके बाद क्रम गर्भ नामक बीज तत्पश्चात् औपह्वर और कुशिक बीज फिर 'सदाशिवप्रेतारूढे' उसके बाद 'भामिनि पातालतुलितोदरि' फिर नृसिंह बीज दीप नान्दिक बीज उसके बाद व्यय बीज फिर 'कृतान्तशिवदूति' कहना चाहिये । अन्त में 'श्रीपादुकां पूजयामि ओष्ठाय नमः' कहना चाहिये । (पाश के बाद) चार कलाओं को कहकर 'भुजङ्गराजकटिसूत्रिणि' कहकर 'वह्निस्फुलिङ्गपिङ्गलाक्षि' पद के बाद नाराच बीज का उच्चारण करना चाहिये । नालीक मन्द चर्पट बीज के बाद 'द्वीपिचर्मावृताङ्गि शिववाहिनि चण्डकापालेश्वरि' फिर शूल उसके बाद भुशुण्डी सम्मोह मणिमाला' 'कापालशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि' कहना चाहिये । फिर 'दक्षिणनेत्राय नमः' कहना चाहिये । हे देवि! कला से लेकर दृक् अन्त तक शिवदूती (अर्थात् 'ई' से लेकर दक्षिणनेत्राय नमः तक शिवदूती का वर्णन हुआ) ॥ १६२-१७० ॥

पञ्च सर्वानु प्रलयकालानलपदं भवेत् ।
ज्वालाजटालचितितो मध्यसंस्थे ततः परम् ॥ १७१ ॥
ततोऽनु विधिडाकिन्यौ केकराक्षीमतः परम् ।
पतनं प्रोच्य कल्पान्तरङ्गनृत्यपदं वदेत् ॥ १७२ ॥
ततो महानाटकिनि पदमीदृशमुच्चरेत् ।
दक्षिणं चापि कौलुञ्चं नादान्तकविरूपकौ ॥ १७३ ॥
चर्चरीकरशब्दानु तालिकावादिनीत्यपि ।
शिवदूतीति कथयेद् वज्रशब्दादनन्तरम् ॥ १७४ ॥
श्रीपादुकां पूजयामि वामनेत्राय हृन्मनुः ।
प्राग्वद् वदेत् पञ्चसर्वान् परापर ततः परम् ॥ १७५ ॥

रहस्यसमयेत्युक्त्वा चारिणि प्रतिकीर्तयेत् ।
ज्वालामालिन्यनु वदेद् विजयाबीजमीश्वरि ॥ १७६ ॥
गायत्रीं संहितां चापि करालीं तदनन्तरम् ।
यथाक्षरं हि प्रलयसमयेत्यपि कीर्तयेत् ॥ १७७ ॥
कोट्यर्कदुर्निरीक्ष्ये च ततो मृत्युवदन्यपि ।
चञ्चुं नान्दिकमुद्धृत्य सारसं च तथा घटीम् ॥ १७८ ॥
जय झङ्कारिणि प्रोच्य विसन्ध्युल्कापदं वदेत् ।
शिवदूतीति सङ्कीर्त्य ततः श्रीपादुकां वदेत् ॥ १७९ ॥
वदेद् दक्षिणगण्डाय पूजयामि पदादनु ।
सर्वशेषे हृन्मनुः स्यादित्येवं विध्यनुक्रमः ॥ १८० ॥

पाँच सर्व के पश्चात् 'प्रलयकालानल' पद होना चाहिये । फिर 'ज्वालाजटालचिति' के बाद 'मध्यसंस्थे' उसके परे विधि डाकिनी केकराक्षी इसके पश्चात् पतन कहकर 'कल्पान्तरङ्गनृत्य' पद कहना चाहिये । उसके पश्चात् 'महानाटकिनि' पद को इस प्रकार कहना चाहिये । दक्षिण कौलुञ्च नादान्तक विरूपक के बाद 'चर्चरीकर' शब्द के पश्चात् 'तालिकावादिनि' वज्र शब्द के बाद 'शिवदूति' कहना चाहिये । फिर 'श्रीपादुकां पूजयामि वामनेत्राय' के बाद हृदय मन्त्र कहना चाहिये । पूर्व की भाँति पाँच सर्व कहना चाहिये । 'परापर' के बाद 'रहस्यसमय' कहकर 'चारिणि' कहना चाहिये । 'ज्वालामालिनि' के बाद हे ईश्वरि! विजया बीज गायत्री संहिता कराली को यथाक्षर कहने के बाद 'प्रलयसमय' का कीर्त्तन करना चाहिये । 'कोट्यर्कदुर्निरीक्ष्ये' फिर 'मृत्युवदनि' कहकर चञ्चु नान्दिक को उद्धृत कर सारस घटी 'जय झङ्कारिणि' कहकर सन्धिरहित 'उल्का' पद कहना चाहिये । 'शिवदूति' कहकर फिर 'श्रीपादुकां पूजयामि दक्षिणगण्डाय' के पश्चात् सबके अन्त में हृदय मन्त्र होना चाहिये । यह विधि का अनुक्रम है ॥ १७१-१८० ॥

पूर्वोक्तरीतिवत् पञ्च सर्वान् प्रथममुद्धरेत् ।
ततोऽनु कोटिचामुण्डा मध्यचारिणि कीर्तयेत् ॥ १८१ ॥
प्रेतकङ्कालधारिण्यनु ब्रूयाद् बीजपञ्चकम् ।
कोशं पिण्डं च वेतालं सारिघं कुटिलामपि ॥ १८२ ॥
दिगम्बरि समाभाष्य ततः कपिलचञ्चल ।
क्रूरतारे भ्रमर्युक्त्वा भ्रामरि प्रतिकीर्तयेत् ॥ १८३ ॥
भौरं पुटकमृष्टिं च कुन्तं चत्वारि कीर्तयेत् ।
ततो भगवति प्रोच्य श्मशानशिवदूत्यपि ॥ १८४ ॥
श्रीपादुकां पूजयामि वामगण्डाय हृन्मनुः ।
सर्वपञ्चकमाभाष्य वदेदाकर्षणीति च ॥ १८५ ॥
आवेशिनि ततः सन्तोषिणि सम्मोहिनीत्यपि ।

बीजे विश्वमय्यूक्ते द्वे संहारं कृत्यया सह ॥ १८६ ॥
ततश्चण्डिनि चाण्डालिनि चण्डि चण्डिकेत्यपि ।
रतिपीयूषशक्त्यर्णान् प्रवदेत् सह निर्मलान् ॥ १८७ ॥
मदोन्मत्ते वदेदुग्रशिवदूतीति तत्परम् ।
श्रीपादुकां पूजयामि दक्षिणांसाय हृन्मनुः ॥ १८८ ॥

पूर्वोक्त रीति के समान पहले पाँच सर्व कहना चाहिये । इसके बाद 'कोटिचामुण्डामध्यचारिणि' का कथन करना चाहिये । 'प्रेतकङ्कालधारिणि' के बाद निम्नलिखित पाँच बीज कहना चाहिये । वे हैं—कोश पिण्ड वेताल सारिघ और कुटिला । 'दिगम्बरि' कहकर फिर 'कपिलचञ्चलक्रूरतारे भ्रमरि' कहकर 'भ्रामरि' कहना चाहिये । भौर पुटक ऋष्टि कुन्त इन चार बीजों का उच्चारण करना चाहिये । इसके बाद 'भगवति' कहकर 'श्मशानशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि वामगण्डाय' के बाद हृदय मन्त्र कहना चाहिये । पाँच सर्व कहकर 'आकर्षणि' कहना चाहिये । 'आवेशिनि' फिर 'सन्तोषिणि सम्मोहिनि' के पश्चात् विश्वमय दो बीजों को संहार और कृत्या के साथ कहकर 'चण्डिनि चाण्डालिनि चण्डि चण्डिके' कहकर रति अमृत शक्ति वर्णों को निर्मल के साथ कहना चाहिये । 'मदोन्मत्ते उग्रशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि दक्षिणांशाय' कहकर हृदय मन्त्र कहना चाहिये ॥ १८१-१८८ ॥

पञ्चैव शर्वानाभाष्य वदेत् कालि पुनर्महात् ।
कालवञ्चनि सङ्कीर्त्य विच्चे घोरे ततः परम् ॥ १८९ ॥
परापरेति सङ्कीर्त्य सम्भेदिनि समुद्धरेत् ।
सन्तर्जिनि पुनः प्रोच्य बलाहकिनि कीर्तयेत् ॥ १९० ॥
तत उक्त्वा कालरात्रिः कालान्तकगृहिण्यपि ।
परापरेति सङ्कीर्त्य सम्भेदिनि समुद्धरेत् ॥ १९१ ॥
कङ्कालादीनि पञ्चापि बीजानि समुदाहरेत् ।
नाकुलाद्यासुरान्तं च पञ्चबीजं ततः स्मरेत् ॥ १९२ ॥
खण्डिन्युपन्यस्य पुनर्मुण्डिनि प्रत्युपन्यसेत् ।
ततो रौद्र शिवेत्यर्णाद् दूति श्रीपादुकां वदेत् ॥ १९३ ॥
पूजयाम्यनु वामांसाय नमस्तदनन्तरम् ।
सर्वादिमाः पञ्चदूत्यः समाप्तिमगमत् प्रिये ॥ १९४ ॥

पाँच सर्वों को कहकर पुनः 'महाकालि कालवञ्चनि' कहकर 'विच्चे घोरे' के बाद 'परापर' कहकर 'सम्भेदिनि' को उद्धृत करना चाहिये । उसके बाद 'सन्तर्जिनि' कहकर 'बलाहकिनि' कहना चाहिए । इसके बाद 'कालरात्रिः' और 'कालान्तकगृहिणि' भी कहना चाहिए । इसके बाद 'परापर' कहकर 'सम्भेदिनि' को उद्धृत करना चाहिए । फिर कङ्काल आदि पाँच बीजों का उद्धार करना चाहिये । उसके बाद नाकुल से आसुर तक सभी पाँच बीजों का स्मरण करना चाहिये ।

'खण्डिनि' को प्रस्तुत कर 'मुण्डिनि' को उपन्यस्त करना चाहिये । इसके बाद 'रौद्रशिवदूति श्रीपादुकां' कहना चाहिये । 'पूजयामि' के पश्चात् 'वामांसाय नम:' कहना चाहिये । हे प्रिये! इस प्रकार सर्व आदि वाली पाँच दूतियों का न्यास समाप्त हो गया ॥ १८९-१९४ ॥

तारान् पञ्च समुल्लिखय प्रथमं वरवर्णिनि ।
ततो ब्रह्मकपालाच्च बद्धपद्मासने वदेत् ॥ १९५ ॥
चर्चितानु महाविष्णुकपाले तदनन्तरम् ।
धनदामथ यक्षं च कौमुदीं चित्रमेव च ॥ १९६ ॥
नन्दिनीबीजत: सार्द्रनारान्त्रकृत इत्यपि ।
योगपट्टिनि सङ्कीर्त्य शेषयज्ञोपवीतिनि ॥ १९७ ॥
ललितां रौरवं विश्वं वैराजं च कुमारिकाम् ।
विकरालिनि नि:सन्धि उन्मत्तशिवदूत्यपि ॥ १९८ ॥
श्रीपादुकां पूजयामि तदनन्तरमीरयेत् ।
वामवंक्षणमाभाष्य ङेऽन्तत्वेन नमोऽन्वितम् ॥ १९९ ॥
गर्भजन्ममृतित्राता हृत्पञ्चादौ समुदीरयेत् ।
खरकर्णि प्रोच्य महापिशाचिनि समालिखेत् ॥ २०० ॥
खद्योतपिङ्गलेत्युक्त्वा ज्वलदक्षीति चोद्धरेत् ।
संविदं पुनरिच्छां च मनश्च ससमाधिकम् ॥ २०१ ॥
प्रासादं यमजिह्वे च वडवामुखि कीर्तयेत् ।
विसन्ध्यवर्णेश्वरि च वज्रव्योमानु केश्यपि ॥ २०२ ॥
धूमं च सुरभिं छन्द: सूची फैरवमेव च ।
रहस्यरक्षिणी प्रोच्य कालार्णाच्छिवदूत्यपि ॥ २०३ ॥
श्रीपादुकां पूजयामि ततोऽनन्तरमीरयेत् ।
ततो दक्षिणपौरस्त्यं वंक्षणं समुदाहरेत् ॥ २०४ ॥
विभक्त्या तुर्यया युक्तं नम: शब्देन चान्तिमे ।

हे वरवर्णिनि! पहले पाँच तार लिखकर फिर 'ब्रह्मकपाल' पद के बाद 'बद्धपद्मासने' कहना चाहिये । 'चर्चित' के बाद 'महाविष्णुकपाले' उसके बाद धनदा यक्ष कौमुदी चित्रनन्दिनी बीज के बाद 'सार्द्रनारान्त्रकृतयोगपट्टिनि' कहकर 'शेषयज्ञोपवीतिनि' के पश्चात् ललित रौरव विश्व वैराज कुमारिका को कहने के बाद 'विकरालिनि' फिर सन्धिरहित 'उन्मत्तशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि' कहना चाहिये । फिर ङेऽन्त युक्त 'वामवंक्षण' को 'नम:' से अन्वित कर कहना चाहिये । पहले गर्भ जन्म मृत्यु त्राता हृदय इन पाँच बीजों को कहना चाहिये । फिर 'खरकर्णि' कहकर 'महापिशाचिनि' को लिखना चाहिये । 'खद्योतपिङ्गले' कहकर 'ज्वलदक्षि' को उद्धृत करना चाहिये । पुन: संविद् इच्छा मन समाधि प्रासाद यमजिह्वे और 'वडवामुखि'

कहना चाहिये । सन्धिरहित 'अवर्णेश्वरि वज्रव्योम' के बाद 'केशि' कहना चाहिये । धूम सुरभि छन्द सूची फैरव 'रहस्यरक्षिणि' कहकर 'कालार्णशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि' के बाद चतुर्थी विभक्ति के साथ 'दक्षिणवंक्षण' और अन्त में 'नमः' कहना चाहिये ॥ १९५-२०४- ॥

उच्चार्य पञ्च वेदादीन् जययुग्मं प्रकीर्तयेत् ॥ २०५ ॥
जीवद्वन्द्वं ततः कामाङ्कुशे इति समुद्धरेत् ।
कामद्राविणि सङ्कीर्त्य सर्वानु मदभञ्जिनि ॥ २०६ ॥
मारण्डं च विनादं च सम्भूतिं चतुरस्त्रकम् ।
विरञ्च्यन्ते पुनर्ब्रूयादनाख्येयस्वरूपिणि ॥ २०७ ॥
ततः पुनश्चर्पटिनि नगदन्तपदं ततः ।
ब्रह्माण्डे इति सङ्कीर्त्य सम्वर्तकविवर्तकौ ॥ २०८ ॥
पारीन्द्रं च शुभं युञ्ज वैधानं तदनन्तरम् ।
ततः क्षपणिके मुण्डशिवदूतीति कीर्तयेत् ॥ २०९ ॥
श्रीपादुकां पूजयामि गलाय नम इत्यपि ।
पञ्चागमानां मूर्द्धनोऽग्रे सकलाद् दैत्य इत्यपि ॥ २१० ॥
बलमर्दिनि संस्मृत्य निपीतरुधिरेऽपि च ।
छर्दिन्यन्ते कैतवार्णं तत आतङ्कमेव च ॥ २११ ॥
संहारिणीं च विघटीं विरागं चरमे वदेत् ।
शवाङ्गुली पुञ्जकृतकाञ्चीत्यप्य(तेत्य)प्यनूद्धरेत् ॥ २१२ ॥
हूं हूं कारपदान्नादभीषणे तदनन्तरम् ।
विवत्समथ सम्भावं संयोगं च वियोगकम् ॥ २१३ ॥
धम्मिलं शूलिनि प्रोच्य महाराक्षसि कीर्तयेत् ।
ततश्च शिवदूतीति प्रवदेद् वरवर्णिनि ॥ २१४ ॥
श्रीपादुकां पूजयामि वामपार्श्वाय हृन्मनुः ।

पाँच वेदादि और दो 'जय' कहना चाहिये । दो बार 'जीव' फिर 'कामाङ्कुशे' को उद्धृत करना चाहिये । 'कामद्रविणि' कहकर 'सर्व' के पश्चात् 'मदभञ्जिनि' फिर मारण्ड विनाद सम्भूति चतुरस्रक विरञ्चि के बाद 'अनाख्येयस्वरूपिणि' पुनः 'चर्पटिनिनगदन्त' पद के बाद 'ब्रह्माण्डे' कहकर सम्वर्त्तक विवर्त्तक पारीन्द्र शुभंयु वैधान उसके बाद 'क्षपणिके मुण्डशिवदूति' कहना चाहिये । 'श्रीपादुकां पूजयामि गलाय नमः' कहे । पहले आगमों के मूर्धा (= ओं) फिर 'सकलदैत्यबलमर्दिनि' का स्मरण कर 'निपीतरुधिरछर्दिनि' के अन्त में कैतवआतङ्कसंहारिणी विघटी और अन्त में विराग कहना चाहिये । 'शवाङ्गुलीपुञ्जकृतकाञ्चि' को भी उद्धृत करना चाहिये। 'हूं हूङ्कार' पद के बाद 'नादभीषणे' इसके विवत्स सम्भाव संयोग वियोग धम्मिल्ल के बाद 'शूलिनि' कहकर 'महाराक्षसि' कहना चाहिये । हे वरवर्णिनि!

इसके बाद 'शिवदूति' कहना चाहिये । 'श्रीपादुकां पूजयामि वामपार्श्वाय' के बाद हृदय मन्त्र कहना चाहिये ॥ २०५-२१४- ॥

प्रणवान् पञ्च संलिख्य वातवेगजयिन्यत: ॥ २१५ ॥
वेतण्डतुण्डि परमप्रचण्डि तदनन्तरम् ।
सुकृतं भद्रिकां चैव संहारिणमत: परम् ॥ २१६ ॥
औपदेयं च विरसं महाशङ्खाच्च मालिनि ।
त्रिलोकीपालिनि प्रोच्य संवर्तकपदं वदेत् ॥ २१७ ॥
कालानलज्वालिनि च भुजभीमे च कर्कशात् ।
उड्डियानं च यमलं झङ्कारं गुल्व(गुल?)मेव च॥ २१८ ॥
भानं च घोरतासीमे बलाच्च शिवदूत्यपि ।
श्रीपादुकां पूजयामि वस्तये नम इत्यपि ॥ २१९ ॥
प्रिये समुद्धृत्य पुरो गायत्रीमुखपञ्चकम् ।
अणिमादिप्रभावानु प्रकाशिनि समीरयेत् ॥ २२० ॥
चण्डातिचण्डतरतश्चण्डयोगेश्वरीत्यपि ।
रयिमुद्भिदमाभाष्य ह्यापं(?)छिप्पिं सतीर्थकम्॥ २२१ ॥
सकलानु जनान्ते च मनोरञ्जनि कीर्तयेत् ।
ततश्च दुष्टदुरभिप्रायभञ्जिनि चेत्यपि ॥ २२२ ॥
अस्यान्तिमे च प्रणतवाञ्छितप्रद ईरयेत् ।
पथ्यं शफमुरङ्कं च आम्नायातीतमेव च ॥ २२३ ॥
तत्त्वार्णवं सर्वशेषे सौम्यमूर्ते ततः परम् ।
भगवत्यन्तिमे सिद्धिशिवदूति प्रकीर्तयेत् ॥ २२४ ॥
श्रीपादुकां पूजयामि ततोऽनु समुदीरयेत् ।
ङेऽन्तं दक्षिणपार्श्वं च नमः पदजघन्यकम् ॥ २२५ ॥

पाँच प्रणवों को लिखने के उपरान्त 'वातवेगजयिनि' इसके उत्तर 'वेतण्डतुण्डि परमप्रचण्डि' कहना चाहिए । तदनन्तर सुकृत भद्रिका संहारी औपदेय विरस बीजों के बाद 'महाशङ्खमालिनि त्रिलोकीपालिनि' कहकर 'संवर्त्तक' पद कहे । 'कालानल-ज्वालिनि' 'कर्कश' के बाद 'भुजभीमे' फिर उड्डीयान यमल झङ्कार गुल भान घोर तासीम बल के पश्चात् 'शिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि वस्तये नम:' कहना चाहिये । हे प्रिये! पहले गायत्री के मुख (= ओं) को पाँच बार 'अणिमादिप्रभाव' के पश्चात् 'प्रकाशिनि' कहना चाहिये। 'चण्डातिचण्डतरचण्डयोगेश्वरि' के बाद रयि उद्भिद कहकर आप छिप्पि तीर्थ के पश्चात् 'सकल' के उत्तर 'जन' के अन्त में 'मनोरञ्जनि' कहना चाहिये । इसके बाद 'दुष्टदुरभिप्रायभञ्जिनि' इसके अन्त में 'प्रणतवाञ्छितप्रदे' कहना चाहिये । पथ्य शब्द उरङ्क आम्नायातीत तत्त्वार्णव और सबके अन्त में 'सौम्यमूर्तें' उसके पश्चात् 'भगवति' के अन्त में 'सिद्धिशिवदूति' कहना चाहिये ।

उसके पश्चात् 'श्रीपादुकां पूजयामि' कहना चाहिये । फिर ङेऽन्त 'दक्षिणपार्श्वे' फिर 'नमः' कहना चाहिये ॥ २१५-२२५ ॥

ताराद्याः षडिमाः प्रोक्ताः शिवदूत्यो वरानने ।
वाग्भवाद्याः सप्त मत्तो निबोधातः परं मताः ॥ २२६ ॥
पञ्च मैधान् समुद्धृत्य कालि कालि ततो वदेत् ।
ततो महाकालि चोक्त्वा मांसशोणितभोजिनि ॥ २२७ ॥
दण्डं त्रपां गामुच्चार्य रक्तकृष्णमुखीत्यपि ।
देवीत्युक्त्वा ततो मा मां ततो नाशयन्तु शत्रवः ॥ २२८ ॥
हृदयाच्छिवदूतीति ततः श्रीपादुकामपि ।
पूजयाम्यनु दण्डार्णं हृदयाय नमोऽन्तिमे ॥ २२९ ॥
पञ्चसारस्वतीमादौ नमो भगवतीति च ।
दुष्टचाण्डालिनि प्रोच्य रुधिरान्मांसभक्षिणि ॥ २३० ॥
कपालखट्वाङ्गपदाद् धारिणि प्रतिकीर्तयेत् ।
हनद्वन्द्वं दहयुगं पचयुग्मं ततोऽप्यनु ॥ २३१ ॥
मम शत्रूनिति प्रोच्य ग्रस ग्रस समादिशेत् ।
मारयद्वन्द्वमाभाष्य कूर्चत्रितयमालपेत् ॥ २३२ ॥
फट्शिरःशब्दमस्यानु शिवदूत्यस्य पश्चिमे ।
श्रीपादुकां पूजयामि लज्जाबीजं ततो वदेत् ॥ २३३ ॥
शिरःशब्दं चतुर्थ्यन्तं ततः स्वाहायुतं ततः ।

हे वरानने! ओंकार आदि वाली ये छह शिवदूतियाँ कही गयीं । इसके बाद मुझसे वाग्भव आदि वाली सात शिवदूतियों को जानो । पाँच मेधा को उद्धृतकर 'कालि कालि' कहना चाहिये । इसके बाद 'महाकालि' कहकर 'मांसशोणितभोजिनि' दण्ड लज्जा गो का उच्चारण कर 'रक्तकृष्णमुखि देवि' कहकर फिर 'मा मां शत्रवो नाशयन्तु' 'हृदयशिवदूति' के बाद 'श्रीपादुकां पूजयामि' दण्ड के बाद अन्त में 'हृदयाय नमः' कहना चाहिये । पहले पाँच सारस्वत बीज (= ऐं) फिर 'नमो भगवति दुष्टचाण्डालिनि' कहकर 'रुधिरमांसभक्षिणि कपालखट्वाङ्ग' पद के बाद 'धारिणि' कहना चाहिये । दो 'हन' दो 'दह' दो 'पच' इसके अनन्तर 'मम शत्रून्' कहकर 'ग्रस ग्रस' कहना चाहिये । 'मारय' को दो बार कहकर तीन कूर्च कहना चाहिये । 'फट्' शिरः के पश्चात् 'शिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि' फिर लज्जाबीज का उल्लेख करना चाहिये । चतुर्थ्यन्त 'शिरस्' शब्द उसके बाद 'स्वाहा' कहे ॥ २२६-२३३ ॥

प्रथमं पञ्चचैतन्यं वदेत् कमललोचने ॥ २३४ ॥
विजयं मन्दसंमोहावतः परमुदीरयेत् ।
महापिङ्गलशब्दानु जटाभारे तथैव च ॥ २३५ ॥
विकटार्णानु रसनाकराले तदनन्तरम् ।

सर्वसिद्धिमुदाहार्य देहियुग्मं ततोऽप्यनु ॥ २३६ ॥
दापयद्वितयस्यान्ते शिखार्णाच्छिवदूति च ।
श्रीपादुकां पूजयामि गां शिखायै वषट् ततः ॥ २३७ ॥
वाग्भवान् पञ्च संस्मृत्य पुरतः कमलानने ।
महाश्मशानपदतो वासिनि प्रतिभावयेत् ॥ २३८ ॥
घोराट्टहासिनि ततः पुनर्विकटतुङ्ग च ।
कोकामुखि त्रपाकामरमाबीजान्यतः परम् ॥ २३९ ॥
महापातालतुलितोदरि तस्याप्यनूच्चरेत् ।
भूतवेतालपदतः सहचारिणि कीर्तयेत् ॥ २४० ॥
ततः कवचशब्दानु शिवदूतीति चोद्धरेत् ।
श्रीपादुकां पूजयामि कवचाय च संभ्रमम् ॥ २४१ ॥

हे कमललोचने! पहले पाँच चैतन्य (= ऐं) कहना चाहिये । इसके बाद विजय मन्द सम्मोह कहना चाहिये । 'महापिङ्गल' शब्द के बाद 'जटाभारे' उसी प्रकार 'विकट' वर्ण के बाद 'रसनाकराले' तदनन्तर 'सर्वसिद्धिं' का उच्चारणकर 'देहि' को दो बार कहना चाहिये । 'दापय' के अन्त में शिखा वर्ण के बाद 'शिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि' गो बीज के बाद 'शिखायै वषट्' कहना चाहिये । हे कमलानने! पहले पाँच वाग्भव का संस्करण कर 'महाश्मशान' पद के उत्तर में 'वासिनि' की भावना करनी चाहिये । 'घोराट्टहासिनि' फिर 'विकटतुङ्गकोकामुखि' त्रपा काम रमा बीज उसके बाद 'महापातालतुलितोदरि' कहना चाहिये । उसके बाद 'भूतवेताल' पद से परे 'सहचारिणि' कहना चाहिये । इसके अनन्तर 'कवचशिवदूति' को उद्धृत करना चाहिये। 'श्रीपादुकां पूजयामि कवचाय' के बाद सम्भ्रम लिखना चाहिये ॥ २३४-२४१ ॥

मैधान् विशिखसंख्याकान् पुरतः समुदाहरेत् ।
लेलिहानपदस्यान्ते रसनास्यभयानके ॥ २४२ ॥
विस्रस्तचिकुरं प्रोच्य भारभासुर ईरयेत् ।
न बीजं किन्तु वर्णानि चामुण्डाभैरवीति हि ॥ २४३ ॥
डाकिनीगणशब्दानु वदेत् परिवृते पदम् ।
शाकिनीडाकिनीक्रोधबीजान्युक्तान्यतः परम् ॥ २४४ ॥
आगच्छ द्वितयं प्रोच्य सान्निध्यं पदमीरयेत् ।
कल्पयद्वन्द्वमाभाष्य ततस्त्रैलोक्यडामरे ॥ २४५ ॥
महापिशाचिनि ततो नेत्रतः शिवदूति च ।
श्रीपादुकां पूजयामि ततो नेत्रत्रयाय च ॥ २४६ ॥
वौषट् सर्वान्त उच्चार्यमिति देवि तवोदितम् ।
पूर्ववत् पञ्च चैतन्यबीजानि प्रतिकीर्तयेत् ॥ २४७ ॥

गुह्यातिगुह्यपदतः कुब्जिके रुट्त्रयं तथा ।
अस्त्रं ममार्णतः सर्वोपद्रवानिति कीर्तयेत् ॥ २४८ ॥
मन्त्रतन्त्रेति चाभाष्य यन्त्रचूर्णेत्यनन्तरम् ।
प्रयोगादिकशब्दस्य द्वितीयान्तविभक्तिकम् ॥ २४९ ॥
ततः परकृतानुक्त्वा कारितानप्युदाचरेत् ।
करिष्यन्ति समाभाष्य तान् सर्वाननु कीर्तयेत् ॥ २५० ॥
हनद्वन्द्वं मथयुगं मर्दयद्वितयं ततः ।
दंष्ट्राकरालि च पदं रावह्रीरोषणास्त्रयुक् ॥ २५१ ॥
गुह्यातिगुह्यपदतः कुब्जिके प्रतिभावयेत् ।
ततोऽस्त्रशिवदूतीति सम्बोधनतया वदेत् ॥ २५२ ॥
श्रीपादुकां पूजयामि ङेऽन्तास्त्रपदमन्वतः ।
अस्त्रमन्त्रः सर्वशेषे विष्ठितः परमेश्वरि ॥ २५३ ॥

पहले बाण संख्यक (= पाँच) मेधा को उदाहृत करना चाहिये । 'लेलिहान' पद के अन्त में 'रसनाऽऽस्यभयानके विस्रस्तचिकुर' कहकर 'भारभासुरे' कहना चाहिये । 'चामुण्डाभैरवीडाकिनीगण' शब्द न कि बीजों के बाद 'परिवृते' पद बोलना चाहिये । शाकिनी डाकिनी क्रोध बीजों का निर्वचन कर इसके बाद 'आगच्छ' को दो बार कहकर 'सान्निध्यं' पद का कथन करे । दो 'कल्पय' कहकर फिर 'त्रैलोक्य-डामरे महापिशाचिनि' फिर 'नेत्रशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि' फिर सबके अन्त में नेत्रत्रयाय वौषट्' कहना चाहिये । पूर्व की भाँति पाँच चैतन्य बीजों को कहना चाहिये । 'गुह्यातिगुह्य' पद के उत्तर 'कुब्जिके' फिर तीन क्रोध अस्त्र के बाद 'मम सर्वोपद्रवान्' कहना चाहिये । 'मन्त्रतन्त्र' कहकर 'यन्त्रचूर्ण' के बाद 'प्रयोगादिक' शब्द को द्वितीयान्त विभक्ति वाला फिर 'परकृतान्' कहकर 'कारितान्' को उदाहृत करना चाहिये । 'करिष्यन्ति' कहकर बाद में 'तान् सर्वान्' का कीर्तन करना चाहिये। दो 'हन' दो 'मथ' दो 'मर्दय' फिर 'दंष्ट्राकरालि' पद फिर राव ह्री रोष अस्त्र से युक्त 'गुह्यातिगुह्य' पद के बाद 'कुब्जिके' की भावना करनी चाहिये । इसके बाद 'अस्त्रशिवदूती' को सम्बोधन के रूप में कहना चाहिये । 'श्रीपादुकां पूजयामि' ङेऽन्त 'अस्त्र' पद के बाद सबके अन्त में अस्त्रमन्त्र कहना चाहिये ॥२४२-२५३॥

वाग्भवक्रोधयोः पञ्च त्रिबीजं क्रमतः पुरः ।
हूं हूं कारपदाद् घोरनादवित्रासितेत्यपि ॥ २५४ ॥
जगत्त्रये ततस्त्रीणि त्रपाबीजानि संलिखेत् ।
प्रसारितायुतभुजे महावेगप्रधाविते ॥ २५५ ॥
श्रुत्यर्धपद(?)माभाष्य कामबीजत्रयं स्मरेत् ।
पदविन्यासपदतस्त्रासितेति समुद्धरेत् ॥ २५६ ॥
ततः सकलपाताले लक्ष्मीबीजत्रयं ततः ।

ततोऽनु व्यापकशिवदूतितः परमेत्यपि ॥ २५७ ।
शिवपर्यङ्कशायिन्यनु वदेद् योगिनीत्रयम् ।
गलद्रुधिरतो मुण्डमालाधारिणि कीर्तयेत् ॥ २५८ ॥
घोरघोरतराद् रूपिणि शाकिनी त्रितयं पठेत् ।
ज्वालामालिपदात् पिङ्गजटाजूटे ततः परम् ॥ २५९ ॥
अचिन्त्यमहिम प्रोच्य प्रभावे बलशब्दतः ।
वधूत्रयाद् दैत्यदानवनिकृन्तनि कीर्तयेत् ॥ २६० ॥
सकलानु सुरेत्युक्त्वा कार्यसाधिक ईरयेत् ।
तारत्रयास्त्रहृच्छीर्षाण्यतः परमुदीरयेत् ॥ २६१ ॥
एवं समाप्तो देवेशि दूतीन्यासोऽयमुत्तमः ।
मेधादिमाः सप्तदूत्यो मया ते प्रतिपादिताः ॥ २६२ ॥
समन्यूनाधिकास्यानामेष साधारणो मतः ।
न चास्य वक्त्रबाह्वस्त्रभेदैर्भिन्ना क्रिया भवेत् ॥ २६३ ॥

पहले पाँच वाग्भव तीन क्रोध को क्रम से, फिर 'हूं हूङ्कार' पद के पश्चात् 'घोरनादवित्रासितजगत्त्रये' फिर तीन लज्जा बीजों को लिखना चाहिये । 'प्रसारितायुतभुजे महावेगप्रधाविते' इन श्रुत्यर्ध (= वेद का अर्थात् चार का आधा अर्थात् दो) पद को कहकर तीन कामबीजों का स्मरण करना चाहिये । 'पदविन्यासत्रासित' पद को उद्धृत करना चाहिये । इसके बाद 'सकलपाताले' फिर तीन लक्ष्मी बीज उसके पश्चात् 'व्यापकशिवदूति' के उत्तर 'परमशिवपर्यङ्कशायिनि' के बाद तीन योगिनीबीज कहना चाहिये । 'गलद्रुधिर' के बाद 'मुण्डमालाधारिणि' का कथन करना चाहिये । 'घोरघोरतररूपिणि' के बाद तीन शाकिनी बीज पढ़ना चाहिये । 'ज्वालामालि' पद के बाद 'पिङ्गजटाजूटे' उसके पश्चात् 'अचिन्त्यमहिम' कहकर 'बल प्रभावे' कहे । तीन वधू बीज के बाद 'दैत्यदानवनिकृन्तनि' का उच्चारण करना चाहिये । 'सकल' के बाद 'सुर' कहकर 'कार्यसाधिके' कहना चाहिये । इसके बाद तीन तार अस्त्र हृदय शिर कहना चाहिये । हे देवेशि! इस प्रकार यह उत्तर दूतीन्यास समाप्त हो गया । मैंने मेधा आदि वाली सात दूतियों का तुमको प्रतिपादन किया । समन्यून अधिक आस्य वाली देवियों के विषय में यह साधारण मत है । वक्त्र बाहु अस्त्र के भेद से इसकी क्रिया भिन्न नहीं होती ॥ २५४-२६३ ॥

[दूतीन्यासफलश्रुतिः]

एकाक्षरोपासकानामयुताक्षरसेविनाम् ।
साधारणो न्यासराजः कर्तव्यो भूतिमिच्छता ॥ २६४ ॥
काम्यनैमित्तिकार्चासु स्यादावश्यकतास्य हि ।
नित्ये न दोषोऽकरणे करणे फलभूमता ॥ २६५ ॥
मृत्यूल्लोलं तितीर्षूणामेष पोतो भवार्णवे ।

दिव्यौघा मानवौघाश्च सिद्धौघा ये प्रकीर्तिताः ॥ २६६ ॥
अनेन प्राप्तवन्तस्ते सिद्धिं परमदुर्लभाम् ।
यदा स्याच्छारदी पूजा वासन्ती वा वरानने ॥ २६७ ॥
कर्तव्य एव हि तदा दूतीन्यासः सुसंस्कृतः ।
अकुर्वन् देवि तत्रामुं विफलीकुरुतेऽखिलम् ॥ २६८ ॥
अतः प्रयत्नतस्तत्र कर्तव्यः शुभमिच्छता ।
विदधन्नित्यपूजायां षण्मासान् मत्समो भवेत् ॥ २६९ ॥
पर्वस्ववश्यं कर्तव्यो न्यासराजो वरानने ।
एतस्य नित्यता तत्राकरणे दोषदर्शनात् ॥ २७० ॥

दूतीन्यास का फल—चाहे एकाक्षर अथवा अयुताक्षर की उपासना करने वाले हों यह (दूती) न्यास (जो कि) न्यासों का राजा है, सर्वसाधारण है । ऐश्वर्य चाहने वाले को इसे करना चाहिये । काम्य और नैमित्तिक अनुष्ठानों में इसकी आवश्यकता होती है । नित्य कर्म में इसे न करने पर कोई दोष नहीं होता किन्तु करने पर अत्यधिक (उत्तम) फल की प्राप्ति होती है । संसार-सागर में उठने वाली मृत्यु की लहरों को पार करने की इच्छावालों के लिये यह पोत अर्थात विशाल जहाज है । जो मानवौघ, सिद्धौघ और दिव्यौघ (नामक तीन प्रकार के गुरु) कहे गये हैं । वे इससे परम दुर्लभ सिद्धि को प्राप्त किये । हे वरानने! जब वासन्ती या शारदी (शक्ति) पूजा हो, उस समय सुसंस्कृत दूतीन्यास करना ही चाहिये । हे देवि! उस समय जो इसको नहीं करता, वह अपना सब किया कराया व्यर्थ कर देता है। इसलिये शुभेच्छु को चाहिये कि उस समय प्रयत्नपूर्वक इसे करे । जो छह महीने तक नित्य पूजा में इसको करता है, वह मेरे समान हो जाता है । हे वरानने! पर्वों पर इस न्यासराज को अवश्य करना चाहिये । उस समय न करने से दोष होता है, इसलिये (पर्वों पर इसकी) नित्यता (अर्थात् अवश्यकरणीयता) है ॥ २६४-२७० ॥

[डाकिनीन्यासस्तस्य च ऋष्यादिनिर्देशः]

डाकिनीन्यासमधुना समाकर्णय सुन्दरि ।
यं कुर्वन् डाकिनीः सर्वाः समाकर्षति तत्क्षणात् ॥ २७१ ॥
ऋषिः स्वयम्भूरेतस्य गायत्रीच्छन्द इष्यते ।
डाकिन्यो देवताः सर्वा एतद्बीजं तु बीजकम् ॥ २७२ ॥
केकराक्षी शक्तिरुदिता कालरात्रिस्तु कीलकम् ।
डाकिनीन्यास एवास्य विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ २७३ ॥

डाकिनीन्यास और उसके ऋषि आदि—हे सुन्दरि! अब डाकिनीन्यास को सुनो, जिसको करने वाला (साधक) तत्क्षण समस्त डाकिनियों का आकर्षण कर लेता है । इस (डाकिनीन्यास) के ऋषि स्वयम्भू और छन्द गायत्री कहे गए हैं । समस्त डाकिनियाँ देवता हैं । इसका बीज बीजक है । केकराक्षी शक्ति और

कालरात्रि कीलक कही गयी है । इसका विनियोग केवल डाकिनीन्यास में ही करना चाहिये ॥ २७१-२७३ ॥

[डाकिनीन्यासस्य स्वरूपवर्णनम्]

तारमैधत्रपालक्ष्मीकामकूर्चास्त्रशाकिनीः ।
प्रलयश्चापि फेत्कारी कुलिकः प्रेतभैरवीः ॥ २७४ ॥
सागरो गुप्तिसन्तोषौ फैरवं कूटमन्वतः ।
कोलागिरिस्थान उक्त्वा चित्रघण्टेति कीर्तयेत्॥ २७५ ॥
सम्बोधनं च डाकिन्यास्ततः परमुदीरयेत् ।
मां ततो रक्षयुगलं त्वग्धातून् मम शब्दतः ॥ २७६ ॥
रक्षद्वन्द्वं पाहियुगं प्रासादसृणिगारुडान् ।
क्षेत्रपालं योगिनीं च डाकिनीकूटमन्वतः ॥ २७७ ॥
उदीर्य पञ्च दण्डादीन् सर्वसत्त्ववशङ्करि ।
क्रोधत्रितयमस्त्रे द्वे एकैकं हृच्छिरोऽपि च ॥ २७८ ॥
ग्रीवायाममुना न्यस्य स्थानं तस्या हि तद्विदुः ।

डाकिनीन्यास का स्वरूप—तार मेधा त्रपा लक्ष्मी काम कूर्च अस्त्र शाकिनी प्रलय फेत्कारी कुलिक प्रेत भैरवी सागर गुप्ति सन्तोष इसके बाद फैरवकूट के बाद 'कोलागिरिस्थाने चित्रघण्टे फिर 'डाकिनी' का सम्बोधन कहना चाहिये ।[1] इसके बाद 'मां' फिर दो बाद 'रक्ष' तत्पश्चात् 'मम' शब्द के पश्चात् 'त्वग्धातून्' फिर दो 'रक्ष' दो 'पाहि' के बाद प्रासाद सृणि गारुड क्षेत्रपाल योगिनी डाकिनी कूट को कहकर दण्ड आदि पाँच का उच्चारण कर 'सर्वसत्त्ववशङ्करि' कहे । तीन क्रोध दो अस्त्र एक-एक हृदय तथा शिर भी कहना चाहिये । इसका ग्रीवा में न्यास कर उसका स्थान भी वही कहा गया है ॥ २७४-२७८ ॥

एकं तारं पञ्च मैधान् ततः शङ्खादिपञ्चकम् ॥ २७९ ॥
विद्युन्नृसिंहखेचर्यः प्रलयोऽनाहतोऽपि च ।
नैगमं कूटमस्यानु स्थाने मुञ्जगिरेरनु ॥ २८० ॥
उल्कामुखी राकिनी च तारकं कोलखेदकौ ।
रक्षद्वन्द्वं मां पदान्ते मम रक्तपदादनु ॥ २८१ ॥
धातून् रक्षयुगं वापि चण्डविश्वौ सकिन्नरौ ।
दस्त्रशक्ती ततः कूटं खेचरीनामकं स्मरेत् ॥ २८२ ॥
खड्गादिपञ्च बीजानि सर्वदेववशङ्करि ।
रावत्रितयमस्त्रे द्वे नमः स्वाहा हृदि न्यसेत् ॥ २८३ ॥

एक तार पाँच मैध उसके बाद शङ्ख आदि पाँच विद्युत् नृसिंह खेचरी प्रलय

---

[1] इस न्यास का स्वरूप परिशिष्ट में देखा जाय ।

अनाहत इसके बाद नैगम कूट उसके पश्चात् 'मुञ्जगिरिस्थाने' इसके बाद 'उल्कामुखी' 'राकिनी' (का सम्बोधन) फिर तार कोल खेद के बाद 'मां' पद के अन्त में दो 'रक्ष' फिर 'मम' के बाद 'रक्तधातून्' 'रक्ष' को दो बार फिर किन्नर के साथ चण्ड विश्व दस्र शक्ति इसके बाद खेचरी कूट का स्मरण करना चाहिये । खड्ग आदि पाँच बीज फिर 'सर्वदेव- वशङ्करि' तीन राव दो अस्त्र 'नमः स्वाहा' इससे हृदय में न्यास करे ॥ २७९-२८३ ॥

प्रणवं पञ्च चैतन्यबीजं पुरत आदिशेत् ।
वधूविराजौ भारुण्डा तन्त्रेंऽशुयुगलं तथा ॥ २८४ ॥
तुङ्गहारौ तथा त्रेतां प्राणकूटमतः परम् ।
ततो विन्ध्यगिरिस्थाने घोरनादापदं वदेत् ॥ २८५ ॥
डाकिनीति च सम्बोध्य लिखेत् सत्त्वं तमो रतिम् ।
मां रक्षयुग्मं मम च मांसधातूनितीरयेत् ॥ २८६ ॥
रक्षद्वन्द्वं सर्वसिद्धवशङ्करि ततः परम् ।
फैरवं च कुमारीं च मौञ्जीसूत्रं सकर्णिकम् ॥ २८७ ॥
मेरुकूटं समाभाष्य विजयादित्रयं वदेत् ।
विस्मृतिद्वितयं चानु योगिनीत्रयमन्वतः ॥ २८८ ॥
अस्त्रं हृच्चापि मूर्धा च द्वे चैकं रूपमेव च ।
नाभौ न्यसेच्च लाकिन्याः स्थानमेतदुदाहृतम् ॥ २८९ ॥

पहले पाँच प्रणव फिर चैतन्य बीज का उल्लेख करना चाहिये । वधू विराज भारुण्डा तन्त्र दो अंशु तुङ्ग हार त्रेता इसके बाद प्राणकूट फिर 'विन्ध्यगिरिस्थाने घोरनादे' पद कहना चाहिये । 'डाकिनी' का सम्बोधन लिखकर सत्त्व तम रति के बाद 'मां' फिर दो 'रक्ष' तत्पश्चात् 'मम मांसधातून्' कहना चाहिये । फिर दो 'रक्ष' कहकर 'सर्वसिद्धिकरि' उसके बाद फैरव कुमारी मौञ्जीसूत्र कर्णिका और मेरु कूट को कहकर विजय आदि तीन का कथन करना चाहिये । दो विस्मृति के बाद तीन योगिनी फिर दो अस्त्र और हृदय तथा मूर्धा एक-एक इससे नाभि में न्यास करना चाहिये, यह लाकिनी का स्थान कहा गया है ॥ २८४-२८९ ॥

पञ्च चैतन्यबीजानि चत्वारि कुलयोषितः ।
शाकिन्याश्चैव डाकिन्याः काकिन्यास्त्रिद्विरूपकम् ॥ २९० ॥
विदिशं च प्रतानं च कौलुञ्चं तदनन्तरम् ।
पार्श्वकूटं नीलगिरिस्थाने पिङ्गजटे ततः ॥ २९१ ॥
संबुद्धिमपि काकिन्याः मां रक्षयुगलं ततः ।
ममानु मेदो धातूंश्च रक्ष रक्ष ततः परम् ॥ २९२ ॥
सर्वदैत्यवशङ्कर्यनु ब्रूयात् संहितां विधिम् ।
करालीं चञ्चुमस्यानु मन्त्रकूटं समादिशेत् ॥ २९३ ॥

रम्भायुगं बलियुगं मन्दारद्वितयं तथा ।
जम्भयुग्मास्त्रयुग्मे च एकैकं हृच्छिरोऽपि च ॥ २९४ ॥
लिङ्गे न्यसेदिदं स्थानं काकिन्याः परिकीर्तितम् ।

पाँच चैतन्य बीज चार कुलयोषित (= ह्लीं), शाकिनी के तीन डाकिनी के दो और काकिनी का रूप (= एक) विदिश प्रतान कौलुञ्च उसके अनन्तर पार्श्वकूट फिर 'नीलगिरिस्थाने' 'पिङ्गजटा' (का सम्वोधन) 'काकिनी' का सम्बोधन तत्पश्चात् दो 'रक्ष' फिर 'मम' के बाद 'मेदोधातून् रक्ष रक्ष' उसके बाद 'सर्वदैत्यवशङ्करि' कहना चाहिये। संहिता विधि कराली चञ्चु के पश्चात् मन्त्रकूट का आदेश करना चाहिये । दो रम्भा दो बलि दो मन्दार दो जम्भ दो अस्त्र एक-एक हृदय और शिर से लिङ्ग में न्यास करना चाहिये । यह कामिनी का स्थान कहा गया है ॥ २९०-२९४- ॥

पञ्चकं वाग्भवानां हि पुरतः समुदाहरेत् ॥ २९५ ॥
रञ्जिनी रागकुशिकौपह्वरं द्वितयं वदेत् ।
लाङ्गूलं वर्द्धमानं च वेत्रमाषाढमेव च ॥ २९६ ॥
भौमकूटं श्वेतगिरिस्थाने वेगाकुले ततः ।
वर्णमात्रं शाकिनि मां रक्ष रक्ष ततोऽप्यनु ॥ २९७ ॥
ममास्थिधातूनस्यानु रक्षद्वन्द्वमुदीरयेत् ।
सर्वग्रहवशङ्कर्यथो वेदीं जरया सह ॥ २९८ ॥
बीजत्रयं चाक्षरादि निर्गोत्रं तर्जनीमपि ।
वर्णकूटं त्र्यस्त्रयुगं विमर्दयुगलं तथा ॥ २९९ ॥
विशुद्धियुग्मं वैहङ्गमबीजं तदनन्तरम् ।
द्विरस्त्रमर्द्धे हृच्छीर्षे अपाने विन्यसेत् प्रिये ॥ ३०० ॥

पहले पाँच वाग्भव को उद्धृत करना चाहिये । फिर रञ्जिनी राग कुशिक को (एक बार) औपह्वर को दो बार कहना चाहिये । लाङ्गूल वर्धमान वेत्र आषाढ़ भौमकूट के बाद 'श्वेतगिरिस्थाने वेगाकुले शाकिनि मां रक्ष रक्ष' के पश्चात् 'ममास्थिधातून्' के बाद दो 'रक्ष' कहना चाहिये ! 'सर्वग्रहवशङ्करि' के पश्चात् वेदी जरा अक्षर आदि तीन बीज निर्गोत्र तर्जनी वर्णकूट दो त्र्यंस्र दो विमर्द दो विशुद्धि तदनन्तर वैहङ्गम बीज दो अस्त्र उसका आधा (अर्थात् एक-एक) हृदय और शिर हे प्रिये! इसका अपान में न्यास करना चाहिये ॥ २९५-३०० ॥

पञ्च मैथानि बीजानि हयग्रीवं सकालिकम् ।
अङ्कुशं गारुडं चैव ज्ञानेच्छे कुम्भकं तथा ॥ ३०१ ॥
रेचकं क्षेत्रपालं च तथैडाकूटमेव च ।
ततः सह्यगिरिस्थाने ह्येकपादापदं भवेत् ॥ ३०२ ॥
संबुद्धिमपि हाकिन्या मां ततो रक्ष युग्मकम् ।
ममानु मज्जाधातूंश्च रक्षद्वन्द्वं ततः परम् ॥ ३०३ ॥

ततः सर्वपशूच्चार्य वशङ्करि विभावयेत् ।
मौञ्जीयुगं गर्भयुग्मं मधु ताण्डवमेव च ॥ ३०४ ॥
प्रेतं च भैरवीं प्रोच्य पिशाचिन्यास्त्रयं ततः ।
गह्वरं कूटमस्यानु चर्पटादिचतुष्टयम् ॥ ३०५ ॥
प्रकरीं बिन्दुकं हारं द्विवारं फडिति स्मरेत् ।
हृदेकं शिर एकं च भ्रूमध्ये विन्यसेत् प्रिये ॥ ३०६ ॥

पाँच मेधा बीज हयग्रीव कालिका अङ्कुश गारुड ज्ञान इच्छा कुम्भक रेचक क्षेत्रपाल इडाकूट इसके बाद 'सह्यगिरिस्थाने एकपादे' फिर 'हाकिनी' का सम्बोधन तत्पश्चात् 'मां' फिर दो 'रक्ष' 'मम' के पश्चात् 'मज्जाधातून् रक्ष' को दो बार कहे । इसके बाद 'सर्वपशु' का उच्चारण कर 'वशङ्करि' कहना चाहिये । दो मौञ्जी दो गर्भ मधु ताण्डव प्रेत भैरवी बीजों को कहकर तीन पिशाचिनी गह्वर कूट के बाद चर्पट आदि चार प्रकरी विन्दुक हार, फिर 'फट्' का दो बार स्मरण करना चाहिये । एक हृदय एक शिर का हे प्रिये! भ्रूमध्य में न्यास करना चाहिये ॥ ३०१-३०६ ॥

सारस्वतानि बीजानि पञ्चैव प्रथमं वदेत् ।
कूर्चमायायोगिनीनां प्रत्येकं त्रीणि च स्मरेत् ॥ ३०७ ॥
व्यजनं विधृतिं सिद्धिफलशिल्पे सबिन्दुके ।
सुषुम्णा कूटमुच्चार्य गिरिस्थाने च दर्दुरात् ॥ ३०८ ॥
त्रिशीर्षे डाकिनीत्युक्त्वा मां रक्षयुगलं ततः ।
ततो मम वसागोर्दान्त्रधातूनि कीर्तयेत् ॥ ३०९ ॥
रक्षद्वन्द्वं सर्वनागवशङ्करि समीरयेत् ।
पिप्पलादिचतुष्कं च संबलद्वितयं तथा ॥ ३१० ॥
ततो रसपुटद्वन्द्वं त्रिकूटं कूटमन्वतः ।
नालीकं च भुशुण्डीं च नाराचं शूलमेव च ॥ ३११ ॥
कृत्या बीजं च फट्युग्मं कूर्चमेव समुद्धरेत् ।
गले न्यसेदिदं स्थानं डाकिन्याः परिकीर्तितम् ॥ ३१२ ॥

पहले पाँच सारस्वत बीज कहना चाहिये । फिर कूर्च माया और योगिनी का तीन-तीन बार का स्मरण करना चाहिये । व्यञ्जन विधृति सिद्धिफल शिल्प बिन्दुक बीजों और सुषुम्ना कूट का उच्चारण कर 'दर्दुर' के पश्चात् 'गिरिस्थाने त्रिशीर्षे डाकिनि' कहकर 'मां' 'रक्ष' को दो बार फिर 'ममवसागोर्दान्त्रधातूनि' कहना चाहिये। 'रक्ष' को दो बार फिर 'सर्वनागवशङ्करि' बोलना चाहिये । चार पिप्पलादि दो सम्बल इसके बाद दो रसपुट उसके अनन्तर त्रिकूट कूट फिर नालीक भुशुण्डी नाराच शूल कृत्याबीज दो फट् और कूर्च को उद्धृत करना चाहिये । इसका गर्दन में न्यास करना चाहिये । यह डाकिनी का स्थान कहा गया है ॥ ३०७-३१२ ॥

चैतन्याह्वयबीजानि प्रथमं पञ्च वर्तयेत् ।

स्त्रीत्रयं रावयुग्मं च कूर्चमेकं समुद्धरेत् ॥ ३१३ ॥
सेतुत्रयं वेणुमक्षं कर्णिकाशृङ्खले ह्यपि ।
वीरकूटं समुच्चार्य महेन्द्रगिरिशब्दत: ॥ ३१४ ॥
स्थाने घटोदरी शाकिनी ब्रूयाद्(?च्चैव) वरानने ।
मां रक्षयुगलं प्रोच्य मम क्लोमयकृत्पदम् ॥ ३१५ ॥
तत: स्नायुपुरीततिं रक्षरक्षेति कीर्तयेत् ।
सर्वरक्षोवशङ्कर्यनु ब्रूयात् कालदानवौ ॥ ३१६ ॥
नृसिंहं सधृतिं नागं कूष्माण्डीयुग्ममुत्क्रमात् ।
जघन्यस्थायिनीं त्रेतां मणिकूटमत: परम् ॥ ३१७ ॥
कुन्तसारिघसंहारान् सारसं व्ययमेव च ।
फट्द्वयं हृदयं शीर्षमेकैकं तालुनि न्यसेत् ॥ ३१८ ॥

पहले पाँच चैतन्य नामक बीज का उच्चारण करे । फिर तीन स्त्री दो राव एक कूर्च को उद्धृत करना चाहिये । तीन सेतु वेणु अक्ष कर्णिका शृङ्खला और वीरकूट का उच्चारण कर 'महेन्द्रगिरि' शब्द के बाद हे वरानने! 'स्थाने घटोदरि शाकिनि' कहना चाहिये । 'मां' दो बार 'रक्ष' कहकर 'मम क्लोमयकृत्' पद कहे । उसके बाद 'स्नायुपुरीतति रक्ष रक्ष' कहना चाहिये । 'सर्वरक्षोवशङ्करि' के पश्चात् काल दानव नृसिंह धृति नाग उत्क्रम के बाद दो कूष्माण्डी 'जघन्यस्थायिनि' त्रेता बीज मणिपूर कूट कुन्त सारिघ संहार सारस व्यय के बाद दो 'फट्' एक-एक हृदय और शिर कहना चाहिए । इसका तालु में न्यास करना चाहिये ॥ ३१३-३१८ ॥

वाग्भवाख्यानि पञ्चैव बीजानि पुरत: प्रिये ।
त्रिलक्ष्मीकं द्विकामं च रूपमायमुदाहरेत् ॥ ३१९ ॥
ग्रावाणं च तुरीयां च पथ्यं वाष्पमुरंकितम् ।
कूटं कापिलमस्यानु ततो मलयगिर्यपि ॥ ३२० ॥
स्थाने सूचीमुखी याकिनीति(?)ब्रूयात् सुरेश्वरि ।
मामुक्त्वा रक्षयुगलं शुक्रधातून् मर्मार्णत: ॥ ३२१ ॥
रक्षयुग्मं सर्वजगद्वशङ्करि ततो वदेत् ॥ ३२२ ॥
षट्चक्रं शक्तिसर्वस्वं शाम्भवं मोदकं तथा ।
चिच्छक्तिं वासितां चैव सर्वागमपरापरौ ॥ ३२३ ॥
तत्त्वार्णवौजस्विशफाम्नायातीतविराधकान् ।
धातुकूटं दाक्षिकं च चामरव्यजने तत: ॥ ३२४ ॥
उत्कोचिनीव्ययघटीदीपनान्दिकसारसान् ।
संहारकालरात्री च वर्णा: स्यु: पञ्चविंशति: ॥ ३२५ ॥
जिनसंख्यकबीजानि कूटमेकं तथैव च ।
सम्बोधनादवरगान्येतानि कथितानि ते ॥ ३२६ ॥

अस्त्रद्वयं हृच्छिरसी तदन्ते विनियोजयेत् ।
सहस्रदलराजीवे न्यसनीयं वरानने ॥ ३२७ ॥
इति ते डाकिनीन्यासो विस्तरात् प्रतिपादितः ।

हे प्रिये! पहले पाँच वाग्भव फिर तीन लक्ष्मी दो काम और एक मायाबीज को उद्धृत करना चाहिये । ग्रावा तुरीया पथ्य वाष्प उरङ्कित इसके बाद हे सुरेश्वरि! कपिल कूट तत्पश्चात् 'मलयगिरिस्थाने सूचीमुखि याकिनि' (?) कहना चाहिये । 'माम्' कहकर दो 'रक्ष' पुनः 'मम' वर्ण के बाद 'शुक्रधातून्' फिर दो रक्ष 'सर्वजगद्व-शङ्करि' कहना चाहिये । षट्चक्र शक्तिसर्वस्व शाम्भव मोदक चित्शक्तिवासिता सर्वागम परापर तत्त्वार्णव ओजस्वि शफ आम्नाय अतीत विराध धातुकूट दाक्षिक चामर व्यजन उसके बाद उत्कोचिनी व्यय घटी दीप नान्दिक सारस संहार कालरात्रि इस प्रकार पचीस वर्ण और चौबीस बीज तथा एक कूट होते हैं । ये सम्बोधन को छोड़कर तुमको बतलाये गये । उसके अन्त में दो अस्त्र, हृदय और शिर जोड़ना चाहिये । हे वरानने! इसका सहस्रदलकमल में न्यास करना चाहिये । इस प्रकार तुमको डाकिनीन्यास विस्तार के साथ बतलाया गया ॥ ३१९-३२७ ॥

[डाकिनीन्यासे न कश्चिद् भेदः इति निर्देशः]

नामतो मन्त्रतश्चापि स्थानतो वसतेरपि ॥ ३२८ ॥
दूतीन्यासवदस्यापि न्यूनाधिक्ये न विक्रिया ।
नित्यत्वेनोदितश्चैष न्यासस्त्रिपुरघातिना ॥ ३२९ ॥

डाकिनी न्यास में कोई भेद नहीं—नाम मन्त्र स्थान और वास की दृष्टि से इसका भी दूतीन्यास के समान न्यूनाधिक्य होने पर कोई अन्तर नहीं पड़ता । त्रिपुरारि के द्वारा यह न्यास नित्य के रूप में कहा गया है ॥ ३२८-३२९ ॥

[डाकिनीन्यासस्य फलश्रुतिः]

कर्तव्यो भूतिकामेन विशेषेण तु भूभुजा ।
षड् डाकिन्यः सिद्धिलक्ष्म्यां सप्त कामकलासु च ॥ ३३० ॥
कुब्जिकासु तथाष्टौ स्युर्गुह्यकालीषु वै नव ।
अनयैव दिशा तत्तत्डाकिनीन्यासमाचरेत् ॥ ३३१ ॥

डाकिनीन्यास का फल—ऐश्वर्य चाहने वाले (किसी भी व्यक्ति) विशेषतया राजा को यह न्यास करना चाहिये । सिद्धिलक्ष्मी में छह, कामकलाओं में सात, कुब्जिकाओं में आठ तथा गुह्यकालियों में नव डाकिनीन्यास करना चाहिये । इसी विधि से तत्तद् डाकिनीन्यास करना चाहिये ॥ ३३०-३३१ ॥

[योगिनीन्यासोपक्रमः]

अथातो योगिनीन्यासं व्याहरामि शुचिस्मिते ।

यो नित्यो नित्यपूजासु यश्च रक्षाकरः परः ॥ ३३२ ॥
यं विना सफला नार्चा प्रत्यूहो यं विनाऽन्वहम् ।
कुर्वन् यं लभते सिद्धिमभ्यवस्कन्दते रिपून् ॥ ३३३ ॥
अचलां श्रियमाधत्ते जीवेच्च शरदां शतम् ।

योगिनीन्यास—हे शुचिस्मिते! अब इसके बाद में योगिनीन्यास बतलाऊँगा जो कि नित्यपूजाओं में नित्य करणीय एवं उत्कृष्ट रक्षक हैं । जिसके विना पूजा सफल नहीं होती, जिसके विना प्रतिदिन विघ्न उपस्थित होता रहता है, जिसको करने वाला सिद्धि प्राप्त करता है और अपने शत्रुओं को नष्ट करता है, अचल सम्पत्ति प्राप्त करता है और सौ साल तक जीवित रहता है उस न्यास को मैं बतलाऊँगा ॥ ३३२-३३३- ॥

[योगिनीन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

ऋषिरेतस्य संवर्तो जगतीच्छन्द उच्यते ॥ ३३४ ॥
योगिन्यो देवताः सर्वास्तद्बीजं बीजमीरितम् ।
शक्तिः कृत्या कीलकं तु चर्पटं परिकीर्तितम् ॥ ३३५ ॥
षड्दीर्घभाग्भिस्तद्बीजैः कुर्यात् करषडङ्गके ।

योगिनीन्यास के ऋषि आदि—इसके ऋषि संवर्त और छन्द जगती कहा जाता है । समस्त योगिनियाँ इसकी देवता हैं और योगिनीबीज इसका बीज कहा गया है । कृत्या शक्ति और चर्पट कीलक कहा गया है । उसके छह दीर्घ बीजों से छह करन्यास करना चाहिये ॥ ३३४-३३५- ॥

[योगिनीन्यासमन्त्रोद्धारः]

इदानीमवधेहि त्वं मन्त्रस्थानं च नाम च ॥ ३३६ ॥
सर्वेषामेव मन्त्राणां बीजानि त्रीणि पूर्वतः ।
चत्वारि पश्चिमे चापि वर्णानि वरवर्णिनि ॥ ३३७ ॥
सर्वसाधारणत्वेन सप्त वर्णाः प्रकीर्तिताः ।
अतः परं भिन्नभिन्नान् मध्ये वर्णान् निशामय ॥ ३३८ ॥
तत्रापि त्रीणि बीजानि त्रिवर्णात् परगानि हि ।
ङेऽन्ता तत्तद्योगिनी चान्त्यचतुर्वर्णपूर्वगा ॥ ३३९ ॥
क्रमेण सर्वान् वक्ष्येऽथो तत्र चेतो निवेशय ।
वेदादिरावयोगिन्यः प्रथमं परिनिष्ठिताः ॥ ३४० ॥
कूर्चास्त्रशीर्षाण्यन्ते च चत्वारीमानि पार्वति ।
काममायारमाक्षेत्रपालगारुडकालिकाः ॥ ३४१ ॥
चामुण्डाखेचरीपाशा नृसिंहप्रेतशक्तयः ।
कापालकाकिनीविश्वाः संविज्ज्ञानरथन्तराः ॥ ३४२ ॥

ततस्त्रीणि गवादीनि तावान् मुक्तादिकं ततः ।
कुण्डादीनि च तावन्ति कर्णिकाहारशृङ्खलाः ॥ ३४३ ॥
फेत्कारीडाकिनीकृत्याः कर्णिकापद्मशृङ्खलाः ।
तन्त्रासमरहारिण्यो विरतित्र्यस्त्रशेखराः ॥ ३४४ ॥
विदिक्संहारभारुण्डाः कौलुञ्चं व्यजनान्तकाः ।
चर्चिका डामरी चैव सूर्यकर्णी च तापिनी ॥ ३४५ ॥
कुम्भोदरी फेरुमुखी मर्दिनी जातहारिणी ।
विडालाक्षी दीर्घनखा सूचीतुण्डी च शोषिणी ॥ ३४६ ॥
कपालिनी चण्डघण्टा कुरुकुल्ला वलाकिनी ।
एताः षोडश डाकिन्यो देयाः पूर्वोक्तसन्धया ॥ ३४७ ॥

योगिनीन्यास मन्त्र का स्वरूप—अब तुम मन्त्र, स्थान और नाम को समझो। हे वरवर्णिनि! पहले समस्त मन्त्रों के तीन बीज अन्त मे चार वर्ण, इस प्रकार सात वर्ण सर्वसाधारण (अर्थात् सभी अङ्गों के न्यास में लगने वाले) हैं । इसके बाद मध्य में आने वाले भिन्न-भिन्न वर्णों को सुनो । उसमें भी पूर्वोक्त तीन वर्णों के बाद तीन बीज आते हैं । उसके बाद ङेऽन्ता तत्तद् योगिनी आती है जो कि पूर्वोक्त अन्तिम चार वर्णों के पूर्व कही जाती है । अब मैं क्रम से सब (वर्णों) को कहूँगा, उसमें चित्त लगाओ । हे पार्वति! पहले वेदादि राव और योगिनी बीज लगाये जाते हैं । अन्त में कूर्च अस्त्र और शिर ये चार (?) लगते हैं । (तत्पश्चात् मध्य में आने वाले तीन-तीन बीज हैं—) (१) काम माया रमा, (२) क्षेत्रपाल गारुड काली, (३) चामुण्डा खेचरी पाश (४) नृसिंह प्रेत शक्ति, (५) कापाल काकिनी विश्व, (६) संविद् ज्ञान रथन्तर । उसके बाद तीन गो आदि, उतने ही मुक्ता आदि, उतने ही कुण्ड आदि, कर्णिका हार शृङ्खला, फेत्कारी डामरी कृत्या, कर्णिका पद्म शृङ्खला, तन्त्रा समरहारिणी, विरति त्र्यस्त्र शेखर, विदिश् संहार भारुण्ड, कौलुञ्च व्यजन अन्तक बीज जोड़े जाते हैं । (योगिनियों के नाम निम्नलिखित हैं)—(१) चर्चिका, (२) डामरी, (३) सूर्यकर्णी, (४) तापिनी, (५) कुम्भोदरी, (६) फेरुमुखी, (७) मर्दिनी, (८) जातहारिणी, (९) विडालाक्षी, (१०) दीर्घनखा, (११) सूचीतुण्डी, (१२) शोषिणी, (१३) कपालिनी, (१४) चण्डघटा, (१५) कुरुकुल्ला, (१६) वलाकिनी । इन सोलह डाकिनियों को पूर्वोक्त सन्धा अर्थात् नियम के अनुसार रखना चाहिये ॥ ३३६-३४७ ॥

[न्यसनीयमन्त्रस्थाननिर्देशः]

न्यसनीयस्य मन्त्रस्य शृणु स्थानान्यतः परम् ।
ब्रह्मरन्ध्रं ललाटं च कूर्चं दक्षिणलोचनम् ॥ ३४८ ॥
वामनेत्रं दक्षगण्डो वामगण्डस्तथैव च ।
दक्षकर्णो वामकर्णस्तालुकश्च ततः परम् ॥ ३४९ ॥

हृदयं जठरं नाभिं लिङ्गं गुदमनन्तरम् ।
स्थानानि षोडशैवैवं(?) कथितानि सुरेश्वरि ॥ ३५० ॥
सर्वं क्रमेण कर्तव्यं महान् दोषो व्यतिक्रमात् ।
इति ते कथितो देवि योगिनीन्यास उत्तमः ॥ ३५१ ॥
प्रथमं पञ्चकमितमितः सर्वाघनाशनम् ।
रावणाराधितं दिव्यं मनोवाञ्छितदायकम् ॥ ३५२ ॥

न्यसनीय मन्त्र के स्थान—इसके बाद न्यसनीय मन्त्र के स्थानों को सुनो । १. ब्रह्मरन्ध्र, २. ललाट, ३. कूर्च, ४. दक्षिणनेत्र, ५. वामनेत्र, ६. दक्षिणगण्ड, ७. वामगण्ड, ८. दक्षिणकर्ण, ९. वामकर्ण, १०. तालु, ११. हृदय, १२. उदर, १३. नाभि, १४. लिङ्ग, १५. गुदा इस प्रकार ये सोलह[1] स्थान कहे गये हैं। हे सुरेश्वरि! सब को उक्त क्रम से करना चाहिये । व्यतिक्रम होने से महान् दोष होता है । हे देवि! इस प्रकार तुमको उत्तम योगिनीन्यास बतलाया गया । यह प्रथम पञ्चक समस्त पापों का नाशक है । इसका प्रयोग रावण ने किया था । यह दिव्य तथा मनोवाञ्छित सिद्धि देने वाला है ॥ ३४८-३५२ ॥

[द्वितीयन्यासपञ्चकावतारः]

अतोऽवधारय शिवे द्वितीयं पञ्चकं महत् ।

द्वितीय न्यासपञ्चकावतार—हे शिवे! इसके बाद द्वितीय महापञ्चक न्यास को जानो ॥ ३५२- ॥

[तत्र कुलतत्त्वन्यासाभिधानम्]

तत्रापि कुलतत्त्वाख्यः प्रथमो न्यास उच्यते ॥ ३५३ ॥
कौलिकानां तु सर्वेषामावश्यकतया स्थितः ।
अन्येषां काम्यरूपस्तु त्रिपुरघ्नेन वर्णितः ॥ ३५४ ॥
अनुकल्पप्रदातॄणामप्यावश्यक उच्यते ।
उद्धारः कथितो ह्यस्य तस्माद् यत्नान्निशामय ॥ ३५५ ॥

कुलतत्त्वन्यास—उसमें भी कुलतत्त्व नामक न्यास प्रथम कहा जाता है । यह समस्त कौलिकों के लिये आवश्यक है । अन्य सम्प्रदायों के लिये त्रिपुरारि ने इसे काम्यरूप कहा है । जो लोग (पञ्च मकार के बदले) अनुकल्प देते हैं उनके लिये भी यह आवश्यक कहा जाता है । (भगवान् शङ्कर के द्वारा) इसका उद्धार कहा गया है, इस कारण यत्नपूर्वक उसे सुनो ॥ ३५३-३५५ ॥

[कुलतत्त्वन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

न्यासस्य कुलतत्त्वस्य परमेष्ठी ऋषिर्मतः ।

---

[1] मूलग्रन्थेऽङ्गानां संख्यापञ्चदशैवास्ति । षोडशमङ्गं पादौ स्यात्-अत्र विद्वांसः प्रमाणम् ।

छन्दोऽतिजगती प्रोक्ता पञ्चविंशतिशब्दतः ॥ ३५६ ॥
कुलदेव्यो देवताश्च त्रेताबीजं तु बीजकम् ।
घटीबीजं शक्तिरुक्ता कीलकं हारिणी मता ॥ ३५७ ॥
कुलतत्त्वन्यासजपे विनियोगः प्रकीर्तितः ।
एतस्य न्यासराजस्य मन्त्रोद्धारं निशामय ॥ ३५८ ॥
भिन्नभिन्नानि वर्णानि कियन्त्यपि वरानने ।
कियन्ति चैकरूपाणि मन्वन्तरगतानि हि ॥ ३५९ ॥
क्रमतः शृणु सर्वाणि श्रुत्वा चैवावधारय ।
पञ्चविंशतिमन्त्राणामादिस्थानि सुरेश्वरि ॥ ३६० ॥
बीजान्यष्टौ विभिन्नानि कूटं चैकं ततः परम् ।
नाड्यस्तथा भिन्नभिन्नास्ततः परमुदीरिताः ॥ ३६१ ॥
ततः परं नाड्यधिष्ठात्री काली देवतेति च ।
दश वर्णानि सर्वेषां समानानि भवन्ति हि ॥ ३६२ ॥
पञ्चविंशतितत्त्वानां नामानि त्र्यक्षराणि हि ।
ततः परं विभिन्नानि ततस्तत्त्वे कुलाक्षरात् ॥ ३६३ ॥
क्रमसिद्धेत्यष्टवर्णाः सर्वेषां सदृशा मताः ।
तत्त्वनाम्नश्च तत्त्वस्य स्थितिर्ज्ञेया सविग्रहा ॥ ३६४ ॥
द्विवर्णात्मकनामाढ्यास्ततो देव्यः पृथक् पृथक् ।
ततोऽनु कौलिकी शब्दाः देव्यम्बाशब्दतोऽपि च ॥ ३६५ ॥
श्रीपादुकां पूजयामि नम इत्यपि षोडश ।
वर्णाः समानाः सर्वेषां सर्वशेषे स्थितानि हि ॥ ३६६ ॥

कुलतत्त्व न्यास के ऋषि आदि—कुलतत्त्व न्यास के ऋषि परमेष्ठी माने गये हैं। छन्द पचीस शब्दों वाली अतिजगती कही गयी है । कुलदेवियाँ इसकी देवतायें और त्रेता बीज है । घटी बीज शक्ति कही गयी है और हारिणी कीलक मानी गयी है। इसका विनियोग कुलतत्त्व के न्यास में कहा गया है । इस न्यासराज का मन्त्रोद्धार सुनो । हे वरानने! मन्त्र के अन्तर्गत कितने भिन्न वर्ण हैं और कितने एक रूप हैं उन सबको क्रम से सुनो और सुनकर मन में धारण करो । हे सुरेश्वरि! पचीस मन्त्रों के आदि में भिन्न-भिन्न आठ बीज होते हैं और कूट एक होता है । उसके बाद भिन्न-भिन्न नाड़ियाँ कही गयी हैं । उसके बाद नाड़ियों की अधिष्ठात्री देवता काली और दश वर्ण सबके समान होते हैं । पचीस तत्त्वों के नाम तीन अक्षरों वाले हैं । उसके पश्चात् भिन्न अक्षर हैं । पुनः 'कुलतत्त्वे क्रमसिद्धे' ये आठ वर्ण सबमें समान माने गये हैं । नामयुक्त तत्त्व की स्थिति विग्रहसहित जाननी चाहिये । इसके अनन्तर द्विवर्णात्मक नाम वाली देवियाँ पृथक्-पृथक् हैं । इसके बाद 'कौलिकी' शब्द तथा 'देव्यम्बा' शब्द के बाद 'श्रीपादुकां पूजयामि नमः' ये सोलह

वर्ण सबमें समान रहते हैं और सबके अन्त में स्थित रहते हैं ॥ ३५६-३६६ ॥

ततोऽनु भिन्नभिन्नानि न्यसनीयस्थलानि हि ।
ज्ञेयोऽचलदशार्णान्ते चलत्र्यर्णादिषु प्रिये ॥ ३६७ ॥
विसन्धिर्यत्र यत्र स्यात् स्वरादिपदमेलनम् ।
अतः परं तान् क्रमशः सर्वानेवावधारय ॥ ३६८ ॥
प्रणवश्च तथा लज्जा क्षेत्रपालो रुडेव च ।
राकासटाजरावेद्यस्ततो वाग्भव एव च ॥ ३६९ ॥
प्रासादकमलारावा मुण्डं पृथुविधी नदः ।
पाशः काली स्मरस्तार्क्ष्यस्तारकाध्यानचञ्चवः ॥ ३७० ॥
हाकिनी च हयग्रीवः कलाऽमा चण्ड एव च ।
आदेशः(आवेशः?)कुब्जकश्चैव छटा चारुस्तथैव च ॥ ३७१ ॥
विश्वभूतौ मेघरती ककुच्छैशुकमारिषाः ।
धेनुः किन्नरकापालौ नासत्यौ काल एव च ॥ ३७२ ॥
मालाप्रेतौ भैरवी च नीलं दुष्कृतमेव च ।
महानङ्ग महामारी प्रचण्डा भूतिनी तथा ॥ ३७३ ॥
केकराक्षी कालरात्रिर्मन्दसम्मोह एव च ।
धनदानाकुलौ चैव विद्युच्छक्ती तथैव च ॥ ३७४ ॥
खेचरी बुद्धिकङ्कालनक्षत्रपतनानि हि ।
ततो नान्दिकसंहारावौपह्वरक एव च ॥ ३७५ ॥
मालाप्रेतौ भैरवी च लीनं दुष्कृतमेव च ।
पद्मोऽव्ययश्च कुशिकस्ततः पर उदाहृतः ॥ ३७६ ॥
सुरसः समरश्चैव ....

इसके बाद न्यसनीय स्थल भिन्न-भिन्न हैं । अचल दश वर्णों (= श्रीपादुकां पूजयामि नम:) के अन्त में चल तीन आदि वर्ण (= प्रपदे, गुल्फे आदि) में कहीं सन्धि नहीं होती । स्वर आदि वाले पदों की सन्धि होती है । इसके बाद उन (आठ-आठ) को क्रम से समझना चाहिए । (पचीस न्यासों के आठ-आठ वर्ण निम्नलिखित हैं)—

(१) प्रणव लज्जा क्षेत्रपाल क्रोध राका सटा जरा वेदी ।

(२) वाग्भव प्रासाद कमला राव मुण्ड पृथु विधि नद ।

(३) पाश काली स्मर तार्क्ष्य तारका ध्यान चञ्चु हाकिनी ।

(४) हयग्रीव कला अमा चण्ड आवेश कुब्जक छटा चारु ।

(५) विश्व भूत मेघ रति ककुत् शैशुक मारिष धेनु ।

(६) किन्नर कापाल दो नासत्य काल माला प्रेत भैरवी ।

(७) नील दुष्कृत महानङ्ग महामारी प्रचण्डा भूतिनी केकराक्षी कालरात्रि ।

(८) मन्द सम्मोह धनदा नाकुल विद्युत् शक्ति खेचरी बुद्धि (मति) ।

(९) कङ्काल नक्षत्र पतन नान्दिक संहार औपह्वर माला प्रेत ।

(१०) भैरवी लीन दुष्कृत पद्म अव्यय कुशिक सुरस समर ॥ ३३७-३७६ ॥

.... रागः सारस एव च ।
ततो नृसिंहयोगिन्यौ चामुण्डा कुलिकोऽपि च ॥ ३७७ ॥
रञ्जिनी कुटिला तन्द्रा संविद् यक्षो घटी तथा ।
भारुण्डा च विरिञ्चिश्च मणिमाला च चर्पटः ॥ ३७८ ॥
उत्कोचिनी हारिणी च काकिनीनागनेमयः ।
रौरवश्च त्रिवृद्वर्णौ कौलुञ्चं विजया तथा ॥ ३७९ ॥
सम्भूतिश्चतुरस्रं च सम्पुटोऽनाहतोऽपि च ।
विरसो विरतिश्चापि त्र्यस्रो दाक्षिक एव च ॥ ३८० ॥
भोगो गौरंशुदण्डौ च सृष्टिशुक्लौ ततः परम् ।
कृत्याकल्पौ सौमतं च प्रतानं विदिगेव च ॥ ३८१ ॥
संहारी च ततस्त्रेता मुक्ता नादान्तकोऽपि च ।
चामरव्यजने चापि विधृतिः शृङ्खला महा ॥ ३८२ ॥
अपरान्तकमौलिञ्जौ विरूपः प्रकरी तथा ।
कर्णिकाक्रमहाराश्च वेणुश्च तदनन्तरम् ॥ ३८३ ॥
औपदेयश्च मारण्डो विनादो बिन्दुकोऽपि च ।
अक्षप्रलयफेत्कारीसानवस्तदनन्तरम् ॥ ३८४ ॥

(११) राग सारस नृसिंह योगिनी चामुण्डा कुलिक रञ्जिनी कुटिला ।

(१२) तन्द्रा संवित् यक्ष घटी भारुण्डा विरिञ्चि मणिमाला चर्पट ।

(१३) उत्कोचिनी हारिणी काकिनी नाग नेमि रौरव त्रिवृद् वर्ण ।

(१४) कौलुञ्च विजया सम्भूति चतुरस्र सम्पुट अनाहत विरस विरति ।

(१५) तीन अस्र दाक्षिक भोग गौ अंशु दण्ड ।

(१६) सृष्टि शुक्ल कृत्या कल्प सौमत प्रतान विदिक् संहारी ।

(१७) त्रेता मुक्ता नादान्तक चामर व्यजन विधृति शृङ्खला महा ।

(१८) अपरान्तक मौलिञ्ज विरूप प्रकरी कर्णिका क्रम हार वेणु ।

(१९) औपदेय मारण्ड विनाद बिन्दुक अक्ष प्रलय फेत्कारी सानु ॥३७७-३८४ ॥

विमर्दडाकिनीसूत्रतुरीयापंक्तिशेखराः ।
मौञ्जीविराधौ तदनु ग्रावपथ्ये ततः परम् ॥ ३८५ ॥
मेखलायशिखाजम्भाः शक्तिविद्या ततोऽप्यनु ।

एकावली चेति देवि गर्भसर्वागमौ ततः ॥ ३८६ ॥
षट्चक्रबलिकुण्डानि चूडामणिरतः परम् ।
कौलुञ्चं वक्त्रकवचं(चे?)पारिजातेष्टिसेतवः ॥ ३८७ ॥
आम्नायातीतदीपौ च विद्यातत्त्वमतः परम् ।
जगदावृत्तिकं बीजं तथा ब्रह्मकपालकम् ॥ ३८८ ॥
तुङ्गनन्दादक्षिणाश्च नाराचस्तदनन्तरम् ।
तत्त्वार्णवस्ततः शक्तिसर्वस्वमपि सुन्दरि ॥ ३८९ ॥
परापरं शाम्भवं च जीवद्वयमतोऽनु च ।
शूलार्धचन्द्रनालीकक्षुरप्रास्तदनन्तरम् ॥ ३९० ॥
चिच्छक्तिः शक्तिलिङ्गे ....

(२०) विमर्द डाकिनी सूत्र तुरीया पंक्ति शेखर मौञ्ञी विराध ।

(२१) ग्राव पथ्य मेखला शिखा जम्भा शक्ति विद्या एकावली गर्भ ।

(२२) सर्वागम षट्चक्र बलि कुण्ड चूडामणि कौलुञ्च वक्त्र कवच ।

(२३) पारिजात इष्टि सेतु आम्नायातीत दीप विद्यातत्त्व जगदावृत्ति बीज ब्रह्मकपाल ।

(२४) तुङ्ग नन्दा दक्षिणा नाराच तत्त्वार्णव शक्तिसर्वस्व परापर शाम्भव ।

(२५) जीवद्वय (= तर्जनी) शूल अर्धचन्द्र नालीक क्षुरप्र चिच्छक्ति शक्ति लिङ्ग ॥ ३८५-३९०- ॥

.... च लाङ्गूलं वर्धमानकम् ।
गदा प्रासो भुशुण्डी च गायत्र्याषाढवेत्रकाः ॥ ३९१ ॥
कोशस्ततो महाकल्पस्थायी सर्वान्तिमः स्मृतः ।
पञ्चविंशतिमन्त्राणामिति बीजं शतद्वयम् ॥ ३९२ ॥
अष्टावष्टौ च गृह्णीयात् क्रमेणैव सुरेश्वरि ।
अथ क्रमेण सर्वेषां कूटान्यभिदधाम्यहम् ॥ ३९३ ॥
आदावौदयिकं कूटमचलाख्यं ततः परम् ।
खेचरीकूटमस्यानु गान्धर्वकूटमन्वतः ॥ ३९४ ॥
मणिकूटं रत्नकूटं कूटं सामयिकं ततः ।
मन्त्रकूटं वर्णकूटं मेरुकूटं ततः परम् ॥ ३९५ ॥
कूटं गह्वरसंज्ञं च कैलासं कूटमन्वतः ।
त्रिकूटकूटं तस्यानु प्रासादस्वस्तिकावपि ॥ ३९६ ॥
चण्डकूटं चक्रकूटं ध्वजवृद्धी ततः परम् ।
व्यूहकूटं सेतुकूटं कुलकूटं ततोऽप्यनु ॥ ३९७ ॥
मन्थानकूटं तदनु वक्त्रकूटमनन्तरम् ।
सर्वशेषे परिज्ञेयं डाकिनीकूटमीश्वरि ॥ ३९८ ॥

क्रमेण कूटानीमानि दद्याद् बीजानु पार्वति ।

इनके अतिरिक्त हे देवि ! लाङ्गूल वर्धमान गदा प्रास भुशुण्डी गायत्री अषाढ़ वेत्रक कोश और महाकल्पस्थायी ये दश और माने गये हैं । इस प्रकार पचीस मन्त्रों के दो सौ बीज होते हैं ।

हे सुरेश्वरि! उपर्युक्त बीजों में से आठ-आठ को क्रम से लेना चाहिये । अब सब (मन्त्रों) के कूटों को मैं क्रम से कह रहा हूँ । पहले औदयिककूट फिर अचल नामक कूट इसके बाद खेचरीकूट तत्पश्चात् गान्धर्वकूट मणिकूट रत्नकूट सामयिककूट मन्त्रकूट वर्णकूट मेरुकूट उसके बाद गह्वर नामक कूट फिर कैलासकूट त्रिकूटकूट उसके पश्चात् प्रासादकूट स्वास्तिककूट चण्डकूट चक्रकूट ध्वजकूट वृद्धिकूट उसके बाद व्यूहकूट सेतुकूट कुलकूट मन्थानकूट फिर वक्त्रकूट और हे ईश्वरि! सबके अन्त में डाकिनीकूट जानना चाहिये । हे पार्वति! बीजों के बाद क्रम से इन कूटों को देना चाहिये ॥ ३९१-३९८ ॥

अथ नाडीः क्रमेणैव शृणु तत्तदभिख्यया ॥ ३९९ ॥
इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्णा तदनन्तरम् ।
गान्धारी हस्तिजिह्वा च तत्पश्चात् स्यादलम्बुषा ॥ ४०० ॥
ततो विश्वोदरा ज्ञेया सरस्वत्यप्यनन्तरम् ।
कुहूश्च वारणा चैव रण्डा पूषाऽथ शङ्खिनी ॥ ४०१ ॥
चित्रा पयस्विनी चापि मधुमत्यथ चेतना ।
गालिनी धमनी चैव कपिला तत्परा भवेत् ॥ ४०२ ॥
विश्वदूता धारिणी च धोरिणी लम्बिका तथा ।
कैवल्या सर्वशेषे स्यात् क्रमान्नाड्य उदीरिताः ॥ ४०३ ॥

अब तत्तद् नामों से नाड़ियों को क्रम से सुनिये । इडा पिङ्गला सुषुम्ना उसके बाद गान्धारी हस्तिजिह्वा उसके बाद अलम्बुषा होता है । विश्वोदरा और सरस्वती को भी जानना चाहिये । कुहू वारणा रण्डा पूषा शङ्खिनी चित्रा पयस्विनी मधुमती चेतना गालिनी धमनी उसके बाद कपिला होती है । विश्वदूता धारिणी धोरिणी लम्बिका और सबके अन्त में कैवल्या होती है । ये क्रम से नाड़ियाँ कही गयीं ॥ ३९९-४०३ ॥

पञ्चविंशतितत्त्वानां नामानि त्र्यक्षराणि हि ।
अतो निशामय शिवे वक्ष्यमाणानि हि क्रमात् ॥ ४०४ ॥
आनन्दो नियमश्चापि प्रमाणं प्रकृतिस्तथा ।
निवृत्तिरपि वैराग्यमविद्यैश्वर्यमित्यपि ॥ ४०५ ॥
प्रतिष्ठोपाधिरद्वैतमाशयो वासना तथा ।
सङ्कल्पश्च विकल्पश्च विशुद्धिस्तदनन्तरम् ॥ ४०६ ॥
निमित्तमाभासमथो चैतन्यप्रत्ययावपि ।

प्रबोधावेशनिर्माणसमयास्तदनन्तरम् ॥ ४०७ ॥
जीवात्मा सर्वशेषे स्यात् तत्त्वनामा सविग्रहः ।
अतो नु कौलिक्यम्बानां नामानि क्रमतः शृणु ॥ ४०८ ॥

पचीस तत्त्वों के नाम तीन अक्षरों वाले हैं । हे शिवे! इसके बाद क्रम से कहे जाने वाले उनको सुनो । आनन्द नियम प्रमाण प्रकृति निवृत्ति वैराग्य अविद्या ऐश्वर्य प्रतिष्ठा उपाधि अद्वैत आशय वासना सङ्कल्प विकल्प विशुद्धि निमित्त आभास चैतन्य प्रत्यय प्रबोध आवेश निर्माण समय और सबके अन्त में जीवात्मा नामक तत्त्व है इन सबके अन्त में 'तत्त्व' पद का समास करना चाहिए । इसके बाद कुलाम्बाओं का नाम क्रम से सुनो ॥ ४०४-४०८ ॥

माया शक्तिस्तथा सिद्धिः परा नित्या तथैव च ।
सूक्ष्मा भद्रा जया रौद्री प्रभा विद्या ततः परम् ॥ ४०९ ॥
ज्येष्ठा क्रिया च दीप्ता च शान्तिः सृष्टिः स्थितिस्तथा।
काली मेधा तथा पुष्टिः श्रद्धा पूर्णा ततः परम् ॥ ४१० ॥
चन्द्रानन्दा च कल्पा च कौलिक्यम्बा मयोदिताः ।
सर्वाः क्रमेण दातव्या एकैका मनुमध्यतः ॥ ४११ ॥
शृणु हाटकगौराङ्गि न्यासस्थानान्यतः परम् ।
प्रपदे च तथा गुल्फौ ततो जङ्घेऽथ जानुनी ॥ ४१२ ॥
द्वावूरू वंक्षणौ चापि कटी पार्श्वौ ततः परम् ।
कक्षौ स्कन्धौ जत्रुणी च द्वे हनू सृक्किणी अपि ॥ ४१३ ॥
कपोलौ च तथा गण्डौ कर्णौ नासापुटे तथा ।
द्वे नेत्रे च भ्रुवौ द्वे च मणिं तावपि
(मणिबन्धावपि?)शङ्खकौ ॥ ४१४ ॥
ब्रह्मरन्ध्रं शिखा चैव कन्धरा व्यापकस्तथा ।
इति क्रमेण स्थानानि न्यासानां कथितानि ते ॥ ४१५ ॥

माया शक्ति सिद्धि परा नित्या सूक्ष्मा भद्रा जया रौद्री प्रभा विद्या उसके बाद ज्येष्ठा क्रिया दीप्ता शान्ति सृष्टि स्थिति काली मेधा पुष्टि श्रद्धा पूर्णा चन्द्रा आनन्दा और कल्पा ये कौलिकी अम्बायें मेरे द्वारा कही गयीं । सबको मन्त्रों के बीच एक-एक करके क्रम से देना चाहिये । हे स्वर्णगौराङ्गि! इसके बाद न्यास-स्थानों को सुनो । दोनों पैर, दोनों गुल्फ, दोनों जङ्घायें, दोनों घुटने, दोनों जाँघें, दोनों वंक्षण, दोनों कटिप्रदेश, दोनों पार्श्व, दोनों कक्ष (= बगलें), दोनों स्कन्ध, दोनों जत्रु, दोनों हनु, दोनों ओठ, दोनों कपोल, दोनों गण्ड, दोनों कान, दोनों नासापुट, दोनों नेत्र, दोनों भौंहें, दोनों मणिबन्ध, दोनों शङ्ख, ब्रह्मरन्ध्र, शिखा, कन्धरा और व्यापक ये न्यासों के स्थान क्रम से तुमको बतलाये गये ॥ ४०९-४१५ ॥

न्यूनाधिक्यादक्षराणां महान् दोषोऽभिजायते ।

अतो मन्त्रस्थवर्णानां संख्यां ते प्रब्रवीम्यहम् ॥ ४१६ ॥
चन्द्राङ्करुद्रमार्तण्डमनुसंख्यो मनुः प्रिये ।
पञ्चाशद्वर्णिको ज्ञेयो न न्यूनो नैव चाधिकः ॥ ४१७ ॥
पक्षाग्निवेददिग्विश्वाश्चत्वारोऽपि घनादिकाः ।
द्वाविंशाद्याश्च चत्वार एकपञ्चाशदर्णकाः ॥ ४१८ ॥
पञ्चमः षष्ठ ईशानि सप्तमोऽष्टम एव च ।
तिथिः कला मूर्च्छना च स्युर्द्विपञ्चाशदर्णकाः ॥ ४१९ ॥
इति ते मन्त्रवर्णानां निर्णय परिकीर्तितः ।
नाड्यर्णान्न्यूनताधिक्यं नैवान्यत्र कदाचन ॥ ४२० ॥
कुलतत्त्वन्यास एवं कथितस्ते सुरेश्वरि ।

न्यास करते समय अक्षरों के न्यूनाधिक्य से महान् दोष होता है । इसके बाद तुमको मन्त्रस्थ वर्णों की संख्या बतला रहा हूँ । हे प्रिये! चन्द्र अङ्क रुद्र मार्त्तण्ड और मनु अर्थात् क्रमशः प्रथम नवम एकादश द्वादश और चतुर्दश मन्त्र पचास वर्णों वाला है न कम न अधिक । पक्ष अग्नि वेद दिशा अर्थात् दो तीन चार दश विश्व (= तेरह) तथा घन आदि चार अर्थात् सत्रह अट्ठारह उन्नीस बीस तथा बाईस तेईस चौबीस एवं पचीसवाँ मन्त्र इक्यावन वर्णों वाले हैं । हे ईशानि! पञ्च षष्ठ सप्तम अष्टम तिथि (= पन्द्रहवाँ) कला (= सोलहवाँ) तथा मूर्च्छना (= इक्कीसवाँ) मन्त्र बावन अक्षरों वाले हैं । इस प्रकार तुमको मन्त्र के वर्णों का निश्चय बतलाया गया। अन्यत्र कहीं भी नाडी के वर्णों में न्यूनाधिक्य नहीं है । हे सुरेश्वरि! इस प्रकार तुमको कुलतत्त्व का न्यास बतलाया गया ॥ ४१६-४२०- ॥

[कुलतत्त्वन्यासमाहात्म्यकीर्तनम्]

नैवास्य महिमा शक्यः कथितुं किन्तु तत्त्वतः ॥ ४२१ ॥
गृहेऽपि लिखितश्चेत् स्यान् न्यासराजोऽयमीश्वरि।
सिद्धिं साधयति क्षिप्रं विपद्भ्यस्तारयत्यपि ॥ ४२२ ॥
लिखितेनामुना न्यासराजेनानन्ददायिना ।
कालिका कृतसान्निध्या भवत्येव न संशयः ॥ ४२३ ॥
प्रतिष्ठितं यत्र यन्त्रं तिष्ठत्यमरवन्दिते ।
मूर्तिर्वा जगदम्बाया गृहे देवालयेऽपि वा ॥ ४२४ ॥
तत्रावश्यं न्यासमेनं लिखित्वा स्थापयेत् सुधीः।
एतेनैव कृतावासा कालिका तत्र जायते ॥ ४२५ ॥
पूजां गृह्णाति विहितां सान्निध्यं नैव मुञ्चति ।
शरद्वसन्तयोरेनं त्रिदिनं यत्नतो न्यसेत् ॥ ४२६ ॥
काम्ये नैमित्तिके चापि कालिकोपासनापरः ।
आज्ञया त्रिपुरघ्नस्य लोकानां च हितेप्सया ॥ ४२७ ॥

कपालडामरादेनमुद्धृत्यात्र न्यवेशयम् ।
संहितायां मत्कृतायां मन्त्रन्यासावलीजुषि ॥ ४२८ ॥

कुलतत्त्वन्यास का माहात्म्य—हे ईश्वरि! तत्त्वतः इसकी महिमा नहीं कही जा सकती किन्तु यदि यह न्यासराज घर में लिख दिया जाय तो यह शीघ्र सिद्धि प्रदान करता है तथा विपत्तियों से छुटकारा भी दिलाता है । आनन्ददायी इस न्यासराज के लिखने से कालिका उस घर में निवास करती हैं इसमें संशय नहीं है । हे देववन्दिते! जिस घर या देवालय में यह यन्त्र अथवा जगदम्बा कालिका की मूर्ति प्रतिस्थापित रहती है विद्वान् इस न्यास को वहाँ अवश्य लिखकर स्थापित करे । इसी से वहाँ कालिका निवास करने लगती हैं । वह उसके लिये की गयी पूजा को स्वीकार करती है और वहाँ सदा सन्निहित रहती है । शरत् एवं वसन्त ऋतुओं में तथा नैमित्तिक अथवा काम्य कर्म के समय भी कालिका के उपासक को इसका तीन दिनों तक प्रयत्नपूर्वक न्यास करना चाहिये । शङ्कर की आज्ञा तथा लोगों के हित की कामना से मैंने कपालडामरतन्त्र से इसे निकाल कर मेरे द्वारा रचित मन्त्रन्यासावली वाली इस संहिता में इसे निविष्ट किया ॥ ४२१-४२८ ॥

[सिद्धिचक्रन्यासाभिधानम्]

अथातः सिद्धिचक्राख्यं न्यासं समवधारय ।
सिद्धिं नानाविधां येन क्षिप्रमाप्नोति साधकः ॥ ४२९ ॥

सिद्धिचक्रन्यास—अब इसके बाद सिद्धिचक्रन्यास को जानो जिसके द्वारा साधक अनेक प्रकार की सिद्धि को शीघ्र प्राप्त कर लेता है ॥ ४२९ ॥

[सिद्धिचक्रन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

न्यासस्य सिद्धिचक्रस्य प्रोक्तो रैभ्य ऋषिर्मया ।
पङ्क्तिश्छन्दः समुदितं देवताः सर्वसिद्धयः ॥ ४३० ॥
बीजं सिद्धिफलं नाम शक्तिरीश्वर उच्यते ।
दीपः कीलकमाख्यातं घटीतत्त्वमुदाहृतम् ॥ ४३१ ॥
विनियोगः सिद्धिचक्रन्यास एव वरानने ।

सिद्धिचक्रन्यास के ऋषि आदि—मेरे द्वारा कथित इस सिद्धिचक्रन्यास के ऋषि रैभ्य, छन्द पंक्ति, सामूहिक रूप में समस्त सिद्धियाँ इसकी देवता, सिद्धिफल बीज शक्ति ईश्वर कहे जाते हैं । दीप को कीलक कहा गया है और घटी को तत्त्व के रूप में उद्धृत किया है । हे वरानने! इसका विनियोग सिद्धिचक्रन्यास के लिये होता है ॥ ४३०-४३१ ॥

[सिद्धिचक्रन्यासमन्त्रोद्धारः]

अथ मन्त्रसमुद्धारं न्यासस्य शृणु यत्नतः ॥ ४३२ ॥

कुलतत्त्ववदेषोऽपि दुरूहो ह्युद्धृतिक्रमे ।
आदौ तु पञ्च बीजानि सर्वमन्त्रादिगानि हि ॥ ४३३ ॥
तत्राप्याद्यान्तिमे बीजे सर्वेषां निश्चले मते ।
मध्यगानि त्रिवर्णानि भिन्नभिन्नानि पार्वति ॥ ४३४ ॥
ततः परं चतुर्विंशभूभागाख्याः पृथक् पृथक् ।
ततोऽन्वमीषां हि पृथगुपनामानि वै पुनः ॥ ४३५ ॥
तैरेतेषां विग्रहान्ते विभक्तिः सप्तमीरिता ।
महानुभावाशब्दस्तु ङेऽन्तः साधारणस्ततः ॥ ४३६ ॥
चतुर्विंशत्यधिष्ठात्र्यो देवताः स्युस्ततः पृथक् ।
ताभिर्दैवतशब्दस्य स्त्रीचिह्नो विग्रहो मतः ॥ ४३७ ॥
चतुर्थ्यन्ता प्रकर्तव्या सा पुनर्वरवर्णिनि ।
उभयोरस्थिरा पूर्वमितरा तु स्थिरा मता ॥ ४३८ ॥
चतुर्विंशतिसंख्याकाः सिद्धयः स्युः पृथक् ततः ।
विग्रहस्तेन कर्तव्यः सिद्धिशब्दस्य सर्वगः ॥ ४३९ ॥
सा चतुर्थी विभक्त्यन्ता त्र्यक्षरा परिकीर्तिता ।
षडक्षरी सर्वशेषे सर्वसाधारणी स्मृता ॥ ४४० ॥

अब इस न्यास के मन्त्रोद्धार को प्रयत्नपूर्वक सुनो । यह भी कुलतत्त्व की भाँति उद्धारक्रम में दुरूह है (अर्थात् कुलतत्त्व की भाँति इसका भी उद्धार दुष्कर है ।) इस मन्त्र के प्रारम्भ में वे सभी पाँच बीज रहते हैं जो कि समस्त मन्त्रों के प्रारम्भ में स्थित होते हैं । उसमें भी आदिम और अन्तिम बीज सभी मन्त्रों में स्थिर माने गये हैं। हे पार्वति! उनके मध्यपाती तीन वर्ण भिन्न-भिन्न होते हैं । इसके बाद (कामरूप आदि) चौबीस भूभागों का नाम पृथक्-पृथक् रहता है । इसके पश्चात् इनके उपनाम (= योगिनी अप्सरस् आदि) भी पृथक्-पृथक् कहने चाहिये । उनके साथ इनके विग्रह के अन्त में सप्तमी विभक्ति कही जाती है । ङेऽन्त 'महानुभावा' शब्द सर्वत्र लिखना चाहिये । उसके बाद उन मन्त्रों की चौबीस अधिष्ठात्री देवतायें भी पृथक्-पृथक् कही जायेंगी । हे वरवर्णिनि! उनके साथ दैवत शब्द का स्त्री लिङ्ग वाला समास रहना चाहिये । वह स्त्री लिङ्ग वाला 'देवता' शब्द चतुर्थ्यन्त कहना चाहिये । उन दोनों अर्थात् देवता का नाम एवं 'देवतायै' में पहला अस्थिर है अर्थात् बदलता रहता है जबकि दूसरा (= देवतायै) स्थिर अर्थात् सर्वत्र यही रखा जाता है । इसके बाद चौबीस सिद्धियों का नाम पृथक्-पृथक् लिखना चाहिये । 'सिद्धि' शब्द का उसके साथ विग्रह (= संयोजन) करना चाहिये। यह अन्त में चतुर्थी विभक्ति जोड़ने पर तीन अक्षरों वाली (= सिद्धये) हो जाती है। सबके अन्त में षडक्षरी (= हूं फट् नमः स्वाहा) सब मन्त्रों के समान बतलायी गयी है ॥ ४३२-४४० ॥

सामान्योद्धृतिरेषोक्ता विशेषमवधारय ।
आद्यन्तौ पञ्च बीजानां ताररावौ स्थिरौ स्थितौ ॥ ४४१ ॥
मध्यगास्तु स्मररमामायाः कालीरतिस्त्रियः ।
भूतकूर्चरुषः क्षेत्रपालसोमामृतानि च ॥ ४४२ ॥
कालमुण्डसटाः प्रेतरम्भावट्यस्ततः परम् ।
हाकिनीसंहितानीला महेन्द्रेश्वरचञ्चवः ॥ ४४३ ॥
ततो मौञ्जीककुद्गर्भा नृसिंहप्राणशैशुकाः ।
दीपधेनू मारिषश्च भ्रामरीनागविद्युतः ॥ ४४४ ॥
भारुण्डायोगिनीच्छन्दास्तन्त्रगोनेमयस्ततः ।
कापालभैरवस्वापाः मेखलासम्पुटक्रमाः ॥ ४४५ ॥
प्रचण्डान्मन्दसम्मोहा डाकिनीहारकर्णिकाः ।
कालरात्रीष्टिमन्दारा युगान्तौपह्वरव्ययाः ॥ ४४६ ॥
संहारतन्त्राकुटिला हारिण्युत्कोचिनी बलिः ।
मणिमाला भोगकृत्यास्त्रेताचर्पटशृङ्खलाः ॥ ४४७ ॥
द्विसप्ततिरिति प्रोक्ता बीजानां परमेश्वरि ।
चतुर्विंशतिमन्त्राणां त्रित्रिबीजांशका गताः ॥ ४४८ ॥

मैने तुमको यह साधारण उद्धार बतलाया । अब विशेष को समझो । पाँच बीजों के आदि और अन्त में तार और राव (= ओं और फ्रें) स्थायी रूप से रहते हैं । मध्य में स्मर रमा माया, काली रति स्त्री, भूत कूर्च क्रोध, क्षेत्रपाल सोम अमृत, काल मुण्ड सटा, प्रेत रम्भा वटी, हाकिनी संहिता नील, महेन्द्र ईश्वर चञ्चु, मौञ्जी ककुद् गर्भ, नृसिंह प्राण शैशुक, दीप धेनु मारिष, भ्रामरी नाग विद्युत्, भारुण्डा योगिनी छन्द, तन्त्र गो नेमि, कापाल भैरव स्वप्न, मेखला सम्पुट क्रम, प्रचण्ड मन्द सम्मोह, डाकिनी हार कर्णिका, कालरात्रि इष्टि मन्दार, युगान्त औपह्वर व्यय, संहार तन्त्रा कुटिला, हारिणी उत्कोचिनी बलि, मणिमाला भोग कृत्या, त्रेता चर्पट शृङ्खला, हे परमेश्वरि! ये (२४ × ३) = बहत्तर बीज कहे गये हैं । चौबीस मन्त्रों में एक-एक के साथ तीन-तीन बीज हैं ॥ ४४१-४४८ ॥

भूभागा अथ कथ्यन्ते क्रमेण परमेश्वरि ।
कामरूपं च पूर्णश्च तथैवानर्त एव च ॥ ४४९ ॥
सौराष्ट्रं चैव काश्मीरं कोला तदनु कोशला ।
काञ्ची काशी वराहश्च जालन्धर इतः परम् ॥ ४५० ॥
काम्पिल्लो मथुरा चैव नैमिषं तदनन्तरम् ।
लङ्का तद्वदवन्ती च कोङ्कणं तदनन्तरम् ॥ ४५१ ॥
पाञ्चाल ओड्रियानञ्च गोमन्थःपौण्ड्रकोऽपि च ।
करवीरः कलिङ्गश्च मेदिनी तदनन्तरम् ॥ ४५२ ॥

भूभागाः कथिता एते क्रमेण मनुमध्यगाः ।

हे परमेश्वरि! अब क्रम से भूभागों का वर्णन किया जा रहा हैं । कामरूप पूर्णगिरि आनर्त्त सौराष्ट्र काश्मीर कोलापुर कोशल काञ्ची काशी वराह इसके बाद जालन्धर काम्पिल्ल मथुरा उसके पश्चात् नैमिषारण्य लङ्का अवन्ती कोंकण पाञ्चाल ओड्रियान गोमन्थ पौण्ड्रक करवीर कलिङ्ग मेदिनी मन्त्रों के मध्य में आने वाले ये भूभाग क्रम से कहे गये ॥ ४४९-४५२- ॥

अथैषामुपनामानि वक्ष्ये क्रमत ईश्वरि ॥ ४५३ ॥
गह्वरं च गिरिश्चैव विषयो देश एव च ।
मण्डलं च पुरञ्चापि पत्तनं नगरं तथा ॥ ४५४ ॥
ऊषरश्च (?) क्षेत्रतटे प्रदेशोऽपि पुरी तथा ।
अरण्यं पर्वतश्चैव नगरी तदनन्तरम् ॥ ४५५ ॥
ततो जनपदो ग्रामः पृष्ठं शिखरमेव च ।
काननं राजधानी च भूभागस्तलमेव च ॥ ४५६ ॥
उपनामानि तेषां हि चतुर्विंशतयः क्रमात् ।
अधिष्ठात्र्योऽथ सिद्धीनां मयोच्यन्ते शृणुष्व ताः ॥ ४५७ ॥

हे ईश्वरि! अब इनके उपनामों को क्रमशः कहूँगा । गह्वर गिरि विषय देश मण्डल पुर पत्तन नगर ऊषर क्षेत्र तट प्रदेश पुरी अरण्य पर्वत नगरी जनपद ग्राम पृष्ठ शिखर कानन राजधानी भूभाग और तल इस प्रकार इनके चौबीस उपनाम हैं । अब इसके बाद मैं इनकी अधिष्ठात्री देवताओं को बतलाऊँगा । उनको सुनो ॥ ४५३-४५७ ॥

योगिन्यप्सरसश्चैव डाकिनी कथ्यते ततः ।
चामुण्डा भैरवी चापि राक्षसी भूतिनी तथा ॥ ४५८ ॥
गुह्यकी जम्भकी पश्चाद् गन्धर्वा किन्नरी तथा।
कूष्माण्डी च तथा विद्याधरी यक्षिण्यनन्तरम् ॥ ४५९ ॥
वैष्णवी च तथा सिद्धा महेश्वर्यप्युदाहृता ।
घोणकी च ततो ज्ञेया ब्रह्माणी तदनन्तरम् ॥ ४६० ॥
कौमारी चापि वाराही नारसिंही ततः परम् ।
ऐन्द्री च गुह्यकाली च चतुर्विंशतिरीरिताः ॥ ४६१ ॥

योगिनी अप्सरा डाकिनी चामुण्डा भैरवी राक्षसी भूतिनी गुह्यकी जम्भकी गन्धर्वा किन्नरी कूष्माण्डी विद्याधरी यक्षिणी वैष्णवी सिद्धा महेश्वरी घोणकी ब्रह्माणी कौमारी वाराही नारसिंही ऐन्द्री गुह्यकाली ये चौबीस देवतायें कही गयी ॥ ४५८-४६१ ॥

अथ सिद्धीः समाचक्षे नाम्ना सिद्धिपदं विना ।
स्तम्भनं मोहनं चैव वशीकरणमेव च ॥ ४६२ ॥

मारणं तुर्यमुदितमाकर्षणमतः परम् ।
उच्चाटनं च द्वेषश्च द्रावणं शोषणं तथा ॥ ४६३ ॥
मूर्छनं क्षोभणमपि सन्त्रासोन्मादसंज्ञकौ ।
व्यञ्जनं (व्यजनं?)च तथा खड्गः खेचरी स्यात् ततः परम् ॥ ४६४ ॥
कामरूपित्ववेतालौ पादुका यक्षिणी तथा ।
गुटिका धातुवादश्च ततोऽन्तर्धानमेव च ॥ ४६५ ॥
अणिमाद्यष्ट इति च सर्वशेषे सुरेश्वरि ।
कूर्चास्त्रहृच्छिरांस्यन्ते सर्वसाधारणानि हि ॥ ४६६ ॥
मन्त्राणामिति सर्वेषां विभागस्ते मयोदितः ।
स्थानानीदानीमेतेषां शृणुष्व कमलेक्षणे ॥ ४६७ ॥
ब्रह्मरन्ध्रं च हृदयं ततोऽनु जठरं स्मृतम् ।
कफोणिद्वितयं चापि पार्श्वद्वितयमेव च ॥ ४६८ ॥
द्वावंसौ च कपोलौ द्वौ नेत्रद्वितयमेव च ।
कर्णयुग्मं तथा नासापुटद्वितयमेव च ॥ ४६९ ॥
सृक्कद्वयं भ्रूयुगलं ललाटं चिबुकं तथा ।
जानुद्वयं गुदं लिङ्गं नाभिं बिन्दुरनन्तरम् ॥ ४७० ॥
मूलाधारोऽथ वदनं तथाग्रौ करपादयोः ।
व्यापकं सर्वशारीरं चतुर्विंशतिकं मतम् ॥ ४७१ ॥
इति स्थलानीरितानि न्यसनीयानि वै क्रमात् ।
देशोपनामाधिष्ठात्री सिद्धीनां परमेश्वरि ॥ ४७२ ॥
बह्वल्पवर्णान् मन्त्राणां न वर्णनियमः कृतः ।
एवं ते कथितो न्यासः सिद्धिचक्राह्वयः प्रिये ॥ ४७३ ॥

अब 'सिद्धि' पद का उच्चारण न करते हुए सिद्धियों को बतलाऊँगा । स्तम्भन मोहन वशीकरण और मारण को चौथा कहा गया है । इसके बाद आकर्षण उच्चाटन विद्वेषण द्रावण शोषण मूर्च्छन क्षोभण सन्त्रास उन्माद व्यजन खड्ग खेचरी कामरूपता वेताल पादुका यक्षिणी गुटिका धातुवाद अन्तर्धान और हे सुरेश्वरि! सबके अन्त में अणिमा आदि आठ हैं । सबके अन्त में कूर्च अस्त्र हृदय और शिर समान रूप से जुड़े होते हैं । इस प्रकार मैंने तुमको मन्त्रों का विभाग बतलाया । हे कमलेक्षणे! अब इनके स्थानों को सुनो । ब्रह्मरन्ध्र, हृदय, जठर, दोनों कफोणि, दोनों पार्श्व, दोनों कन्धे, दोनों कपोल, दोनों नेत्र, दोनों कान, दोनों नासापुट, दोनों सृक्क (= गलफड़े), दोनों भौंह, ललाट, ठोडी, दोनों जानु, गुदा, लिङ्ग, नाभि, बिन्दु, मूलाधार, वदन, कराग्र, पादाग्र और चौबीसवाँ सम्पूर्ण शरीर में व्यापक न्यास है । इस प्रकार मैंने न्यसनीय अङ्गों को बतलाया । हे परमेश्वरि! इनकी अधिष्ठात्री देवतायें सिद्धि देश और उपनामों की अधिष्ठात्री देदतायें हैं । मन्त्रों के न्यून अधिक

वर्ण होने से उनमें नियम नहीं बनाया गया । हे प्रिये! इस प्रकार तुमको सिद्धिचक्र नामक न्यास बतलाया गया ॥ ४६२-४६३ ॥

[सिद्धिचक्रन्यासफलश्रुतिः]

ऐहिकव्युष्टिलिप्सूनां नित्यत्वेन व्यवस्थितः ।
पारत्रिकाप्तुकामानां काम्यत्वेन प्रकीर्तितः ॥ ४७४ ॥

सिद्धिचक्रन्यास का फल—ऐहलौकिक उत्थान चाहने वालों के लिये यह नित्यकरणीय है । पारलौकिक लक्ष्य के लिये यह काम्य कहा गया है ॥ ४७४ ॥

[कैवल्यन्यासाभिधानम्]

अथ कैवल्यनामानं न्यासं समवधारय ।
मुमुक्षूणामयं नित्यो नैवैहिकफलार्थिनाम् ॥ ४७५ ॥
न्यासमेनं समभ्यस्यन् मोक्षाशां धारयत्वलम् ।
अनभ्यस्यन्न्यासमेनं मोक्षाशां परिमुञ्चतु ॥ ४७६ ॥

कैवल्यन्यास वर्णन—अब कैवल्य नामक न्यास को सुनो । यह मोक्षार्थियों के लिये नित्य करणीय है किन्तु ऐहिक फल चाहने वालों के लिये नहीं है । इस न्यास का अभ्यास करने वाला मोक्ष की आशा करे । जो इसका अभ्यास नहीं करता उसे मोक्ष की आशा छोड़ देनी चाहिये ॥ ४७५-४७६ ॥

[कैवल्यन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

न्यासस्य कैवल्याख्यस्य ऋषिः कपिल उच्यते ।
त्रिष्टुप् छन्दः परिख्यातं गुह्यकाली च देवता ॥ ४७७ ॥
बीजं ताराभिधं ज्ञेयं ब्रह्मशक्तिरुदाहृता ।
कला कीलकमुद्दिष्टं तत्त्वं तत्त्वमपि प्रिये ॥ ४७८ ॥

कैवल्य न्यास के ऋषि आदि—इस कैवल्य नामक न्यास के ऋषि कपिल कहे जाते हैं । छन्द त्रिष्टुप् और देवता गुह्यकाली कही गयी है । ॐ को बीज समझना चाहिये । ब्रह्म को शक्ति कहा गया है । हे प्रिये! कला को कीलक और तत्त्व को तत्त्व कहा गया है ॥ ४७७-४७८ ॥

[कैवल्यन्यासस्य मन्त्रोद्धारः]

सर्वेषामेव मन्त्राणामादौ बीजानि वै नव ।
ततोऽनु कूटमेकैकं चक्रनामानि वै ततः ॥ ४७९ ॥
चलमेतत् त्रयमपि निश्चलं साम्प्रतं शृणु ।
चक्रे इति पदं सप्तम्यन्तं सर्वत्र वै स्थिरम् ॥ ४८० ॥
योगमार्गेण कैवल्यदायिनीत्यपि च स्थिरम् ।

गुह्यातिगुह्यतरतः शक्तिरूपापदं स्थिरम् ॥ ४८१ ॥
तत्तद्देवपदं लोलं वस्तुप्रत्ययतस्ततः ।
ससन्ध्यम्बापदं स्थेयं तत्पश्चाच्च प्रसीदताम् ॥ ४८२ ॥
तारं ससन्धिशीर्षं च सर्वशेषे प्रतिष्ठितम् ।
तारमैधस्मररमायोगिन्यङ्कुशकालिका: ॥ ४८३ ॥
प्रासादकूर्चौ च ततः पाशक्षेत्रपगारुडा: ।
वधूलज्जारावकालप्रेता भैरव्यनन्तरम् ॥ ४८४ ॥
कला विधियुगं रम्भायुग्मं बलियुगं ततः ।
नासत्ययुगलं चापि चण्डः सङ्घात एव च ॥ ४८५ ॥
विश्वश्च शैशुकश्चापि काकिनीनेमिविद्युतः ।

कैवल्य न्यास का मन्त्रोद्धार—(इस न्यास के) समस्त मन्त्रों के आदि में नव बीज निश्चित रहते हैं । उसके बाद एक-एक कूट फिर चक्र के नाम रहते हैं । ये तीनों (= बीज कूट और चक्र) चल हैं । अब निश्चल पदों को सुनो । 'चक्रे' यह सप्तमीविभक्त्यन्त पद सर्वत्र स्थायी रूप से रहता है । 'योगमार्गेण कैवल्यदायिनि' यह भी स्थिर पद है । 'गुह्यातिगुह्यतर' के बाद 'शक्तिरूपा' पद स्थिर है । उसके बाद लोल (= अस्थिर) (ब्रह्म विष्णु आदि) तत्तद् देवपद के पश्चात् 'वस्तुप्रत्यय' के अनन्तर ससन्धि 'अम्बा' पद स्थिर करना चाहिये । उसके पश्चात् 'प्रसीदताम्' । फिर ऊँकार और सन्धियुक्त शिर को सबके अन्त में प्रतिष्ठित करना चाहिये । तदनन्तर (निम्नलिखित बीजों में से नौ-नौ को एक-एक मन्त्र के पहले जोड़ना चाहिये)—तार मेधा स्मर रमा योगिनी अङ्कुश कालिका प्रासाद कूर्च उसके बाद पाश क्षेत्रपाल गारुड वधू लज्जा राव काल प्रेत भैरवी के पश्चात् कला के बाद विधि रम्भा बलि को दो-दो बार नासत्य को दो वार चण्ड सङ्घात विश्व शैशुक काकिनी नेमि विद्युत्—॥ ४७९-४८५ ॥

कुलिकश्च नृसिंहश्च गवादित्रितयं ततः ॥ ४८६ ॥
इष्टिव्रते सनिर्मोकवेतण्डे जम्भसंग्रहौ ।
सशिखे पंक्तिडाकिन्यौ हार एकावली तथा ॥ ४८७ ॥
कर्णिकाशृङ्खलातुङ्गचूडामणय एव च ।
मुक्तादित्रितयं भोगसृष्टी सान्वक्षमौञ्जयः ॥ ४८८ ॥
समुद्रश्च तथा धेनुमारिषे मेखलायुगम् ।
ताटङ्कलीले फेत्कारी त्रेता कृत्या तथैव च ॥ ४८९ ॥
औपह्वरं नान्दिकश्च दुष्कृतं पद्ममेव च ।
भ्रामरी च प्रचण्डा च केकराक्षी प्रभञ्जना ॥ ४९० ॥
संहारो मन्दसम्मोहौ पतनं कुशिकव्ययौ ।
सुरसः समरश्चैव रागः सारस एव च ॥ ४९१ ॥

नादान्तकश्चामरश्च व्यजनं विधृतिस्तथा ।
मारण्डश्च विनादश्च विमर्दः शेखरोऽपि च ॥ ४९२ ॥
शाम्भवं चेति च नवनवतिबीजसंहतिः ।
एकैकस्मिन् मनौ देवि नव बीजान्यनुक्रमात् ॥ ४९३ ॥

कुलिक नृसिंह गवादि तीन इष्टि व्रत निर्मोक वेतण्ड जम्भ संग्रह शिखा पंक्ति डाकिनी हार एकावली कर्णिका शृङ्खला तुङ्ग चूडामणि मुक्ता आदि तीन, भोग सृष्टि सानु अक्ष मौञ्जी समुद्र धेनु मारिष दो मेखला, ताटङ्क लीला फेत्कारी त्रेता कृत्या औपह्वर नान्दिक दुष्कृत पद्म भ्रामरी प्रचण्डा केकराक्षी प्रभञ्जना संहार मन्द सम्मोह पतन कुशिक व्यय सुरस समर राग सारस नादान्तक चामर व्यजन विधृति मारण्ड विनाद विमर्द शेखर और शाम्भव यह निन्यानबे बीजाक्षरों का समूह है । हे देवि! एक-एक मन्त्र में क्रम से नव बीज रहते हैं ॥ ४८६-४९३ ॥

अतः परं क्रमेणैव कूटानि व्याहरामि ते ।
आदौ कुण्डलिनीकूटं स्वाधिष्ठानं ततः परम् ॥ ४९४ ॥
मणिपूरककूटं च कूटं चानाहतं ततः ।
विशुद्धकूटमाज्ञाख्यकूटं शाङ्करकूटकम् ॥ ४९५ ॥
ईशानकूटं कूटं च परापरमतः परम् ।
शाम्भवं कूटमस्यानु कूटं पाशुपतं ततः ॥ ४९६ ॥
इत्येकादशकूटानि क्रमेणैवोदितानि ते ।
अथ नामानि चक्राणामानुपूर्व्या ब्रवीम्यहम् ॥ ४९७ ॥
आद्यानां खलु कूटानां षण्णां नाम्ना स्युरेव षट् ।
ततः परा च पश्यन्ती मध्यमा वैखरी तथा ॥ ४९८ ॥
ब्रह्मरन्ध्रं सर्वशेषे चक्राण्युक्तानि वै मया ।
वर्णप्रत्ययपौरस्त्या देवतां वच्मि साम्प्रतम् ॥ ४९९ ॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च कुमारश्चेश्वरस्तथा ।
कुलं शक्तिः शिवा सिद्धिर्ज्ञानं मोक्ष इति क्रमात् ॥ ५०० ॥
स्थानानि कलयेदानीं न्यासस्य कमलेक्षणे ।
गुदं लिङ्गं च नाभिश्च जठरं हृदयं तथा ॥ ५०१ ॥
घण्टिका कण्ठवदने ततः कूर्चालिके प्रिये ।
ब्रह्मरन्ध्रं सर्वशेषे यदध्यास्ते सदाशिवः ॥ ५०२ ॥
कैवल्यन्यास इति ते समन्त्रः प्रतिपादितः ।
अधिकारिविशेषेण न्यासस्यास्य महेश्वरि ॥ ५०३ ॥
नित्यता काम्यता चापि पुरैव प्रतिपादिता ।

इसके पश्चात् तुमको कूटों को क्रम से बतला रहा हूँ । पहले कुण्डलिनी कूट फिर स्वाधिष्ठान, मणिपूर अनाहत विशुद्ध आज्ञाकूट शाङ्करकूट ईशानकूट परापरकूट

उसके बाद शाम्भवकूट पाशुपतकूट ये ग्यारह कूट तुमको क्रम से बतलाये गये । अब क्रम से चक्रों का नाम बतला रहा हूँ । पहले छह कूटों के नाम ही छह चक्र हैं । इसके बाद परा पश्यन्ती मध्यमा वैखरी और सबके अन्त में ब्रह्मरन्ध्र ये चक्र मेरे द्वारा कहे गये। अब वर्ण-प्रत्यय के अनुसार देवता को बतला रहा हूँ । ब्रह्मा विष्णु रुद्र कुमार ईश्वर कुल शक्ति शिवा सिद्धि ज्ञान और मोक्ष ये क्रमशः देवतायें हैं । हे कमलेक्षणे! न्यास के स्थान को जानो । गुदा लिङ्ग नाभि जठर हृदय घण्टिका कण्ठ मुख कूर्च शिर और सबके अन्त में ब्रह्मरन्ध्र जिसमें सदाशिव रहते हैं । इस प्रकार तुमको मन्त्र के सहित कैवल्य न्यास बतलाया गया । हे महेश्वरि! अधिकारी के वैशिष्ट्य के अनुसार इस न्यास की नित्यकरणीयता और काम्यकरणीयता पहले ही प्रतिपादित की जा चुकी है ॥ ४९४-५०३ ॥

[अमृतन्यासाभिधानम्]

इदानीममृतन्यासं निशामय समासतः ॥ ५०४ ॥
विशेषतो विधानेऽस्य बीजानां विस्तरो भवेत् ।
सामान्यतो विधाने तु समासः पर्यवस्यति ॥ ५०५ ॥

अमृतन्यास—अब अमृतन्यास को संक्षेप में सुनो । इसके विशेष रूप से विधान में बीजाक्षरों का विस्तार होता है । सामान्य अनुष्ठान के विषय में समास अर्थात् संक्षेप ही उचित है ॥ ५०४-५०५ ॥

[प्रसन्नाविधिकर्मणि आवश्यकतैतस्याभिधानम्]

अस्यावश्यकता प्रोक्ता प्रसन्नाविधिकर्मणि ।
तत्रेदमः सुरावाची न्यसने देहवाच्यसौ ॥ ५०६ ॥

प्रसन्ना विधि में इसकी आवश्यकता—प्रसन्ना विधि के अनुष्ठान में इसकी आवश्यकता कही गयी है प्रसन्ना विधि के अनुष्ठान में 'अमृत' शब्द सुरा का वाचक है किन्तु न्यासविधि में यह देहवाची है ॥ ५०६ ॥

[अमृताख्यन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

न्यासस्यास्यामृताख्यस्य कात्यायन ऋषिर्मतः ।
छन्दो विराडिति ख्यातं काली कामकला सुरी ॥ ५०७ ॥
कामबीजं कीलकं स्याद् योगिनी शक्तिरुच्यते ।
वधूबीजं बीजमिह विनियोगस्तु सिद्धये ॥ ५०८ ॥

अमृतन्यास के ऋषि आदि—अमृत नामक इस न्यास के ऋषि कात्यायन छन्द विराट् कहा गया है । इसके कामकला काली देवता, कामबीज कीलक और योगिनी बीज शक्ति है । वधू बीज इसका बीज है । इसका प्रयोग सिद्धि के लिये होता है ॥ ५०७-५०८ ॥

[अमृताख्यन्यासस्य मन्त्रोद्धारः]

अस्य प्रकृतिरूपस्य मुख्यं कल्पं निशामय ।
ततो विकृतिरूपस्यानुकल्पं वक्ष्य ईश्वरि ॥ ५०९ ॥
ऋषिः प्रथमकल्पस्यानुकल्पस्यापि स स्मृतः ।
आदौ बीजातिरेकत्वं न्यूनत्वमितरत्र च ॥ ५१० ॥
द्वे विंशती बीजकूटे प्रथमं परिनिष्ठिते ।
पञ्चविंशतिमन्त्रेषु निश्चलत्वतया स्थिते ॥ ५११ ॥
पञ्चविंशतितत्त्वानि भिन्नानि परमेश्वरि ।
पञ्चविंशतिनामानि शिवस्यान्ते नियोजयेत् ॥ ५१२ ॥
मध्ये चात्मपदं पूर्वपदे नामा सविग्रहम् ।
तच्च नाम शिवस्यापि ङेऽन्तं युग्ममपि प्रिये ॥ ५१३ ॥
इमे पदे चञ्चले द्वे ज्ञातव्ये साधकोत्तमैः ।
इदममृतीकृत्यपदं तदनु योजयेत् (सुधीः?) ॥ ५१४ ॥
परमात्मनीति संलिख्य हुत्वा स्वयमितीरयेत् ।
जुषस्व वह्निजायान्त एकविंशतिवर्णकः ॥ ५१५ ॥
सर्वत्र निश्चलो मन्त्रो ज्ञातव्यः परमेश्वरि ।
न्यसनीया तथैकैका स्थानानां पञ्चविंशतिः ॥ ५१६ ॥
इति सामान्य उद्धारो न्यासस्य कथितो मया ।

अमृतन्यास का मन्त्रोद्धार—हे ईश्वरि! प्रकृति रूप इस न्यास का मुख्य कल्प सुनो। इसके बाद इसका विकृति रूप अनुकल्प बतलाऊँगा। प्रथम कल्प के ऋषि ही अनुकल्प के भी ऋषि हैं। पहले कल्प में बीजों की अधिकता और अनुकल्प में उनकी न्यूनता रहती है। सभी मन्त्रों में पहले दो × बीस = चालिस बीज कूट रखने होते हैं। पच्चीस मन्त्रों में बीज स्थायी रहते हैं। हे परमेश्वरि! पच्चीस तत्त्व भिन्न-भिन्न होते हैं। ये शिव के पचीस नाम हैं। इनको बीजकूटों के अन्त में जोड़ना चाहिये। दोनों के मध्य में 'आत्म' पद इसके पहले 'नाम' पद अर्थात् 'नामात्मने' ऐसा लिखना चाहिये। हे प्रिये! वह नाम और 'शिव' पद दोनों को चतुर्थ्यन्त कहना चाहिये। साधक इन दो पदों (= नाम और शिव) को चञ्चल अर्थात् परिवर्तनशील समझे। इसके पश्चात् 'इदममृतीकृत्य' जोड़ना चाहिये। 'परमात्मनि' लिखकर 'हुत्वा' कहना चाहिये। 'जुषस्व' के पश्चात् वह्निजाया कहना चाहिये। यह मन्त्र इक्कीस वर्णों वाला है। हे परमेश्वरि! इस मन्त्र को सर्वत्र स्थिर जानना चाहिये। इसके द्वारा एक-एक कर पचीस स्थानों का न्यास करना चाहिये। इस प्रकार मैने इस न्यास का सामान्य उद्धार बतलाया ॥ ५०९-५१६ ॥

[अमृताख्यन्यासे विशेषनिर्देशः]

विशेषमधुना वच्मि क्रमेण त्रिदशेश्वरि ॥ ५१७ ॥

तारवाग्भवह्लीकूर्चवधूलक्ष्मीमनोभुवाम् ।
पाशाङ्कुशमहाक्रोधभूतप्रासादविद्युताम् ॥ ५१८ ॥
परा चण्डाऽमृता। प्रेत:फेत्कारी शाकिनी रति:।
कूटं तात्पुरुषं कूटं वामदेवमनन्तरम् ॥ ५१९ ॥
सद्योजातं ततः कूटमघोरं कूटमन्वतः ।
ईशानकूटं तदनु चामुण्डाभैरवी विषाः ॥ ५२० ॥
वह्निवेतालभारुण्डानीलद्रावणमानसाः ।
वज्रशाङ्करकापालरौद्रानन्दगरुत्मताम् ॥ ५२१ ॥
चत्वारिंशच्च बीजानि कथितानि मया तव ।
सर्वेषामेव मन्त्राणां पुरोभाग इदं स्थितम् ॥ ५२२ ॥
पञ्चविंशतितत्त्वानां मनोर्नामानि वै शृणु ।
ज्ञानेच्छाकृतिधर्माश्च वैराग्यैश्वर्यमित्यपि ॥ ५२३ ॥
शक्तिः कैवल्यमुत्साहो धैर्यं गुह्यविवेककौ ।
विकारः सुखमानन्दः संज्ञा पुण्यं क्रिया तथा ॥ ५२४ ॥
विकृतिः प्रकृतिश्चैवाहङ्कारो महदादिकः ।
तन्मात्रं लिङ्गपरमात्मानौ चेति प्रकीर्तितौ ॥ ५२५ ॥

अमृतन्यास में विशेष—हे त्रिदशेश्वरि! अब मैं विशेष को क्रम से बतला रहा हूँ । तार वाग्भव लज्जा कूर्च वधू लक्ष्मी काम पाश अङ्कुश महाक्रोध भूत प्रासाद विद्युत् परा चण्डा अमृता प्रेत फेत्कारी शाकिनी रतिकूट तत्पुरुषकूट वामदेवकूट सद्योजातकूट अघोरकूट ईशानकूट उसके बाद चामुण्डा भैरवी विष वह्नि वेताल भारुण्डा नील द्रावण मानस वज्र शाङ्कर कापाल रौद्र आनन्द और गरुड—इन चालिस बीजों को मैंने तुमको बतलाया । यह समस्त मन्त्रों के पूर्व भाग में स्थित माना गया है । अब मन्त्र के पचीस तत्त्वों का नाम सुनो । ज्ञान इच्छा कृति धर्म वैराग्य ऐश्वर्य शक्ति कैवल्य उत्साह धैर्य गुह्य विवेक विकार सुख आनन्द संज्ञा पुण्य क्रिया विकृति प्रकृति अहङ्कार महत् आदि तन्मात्र लिङ्ग और परमात्मा ये तत्त्व कहे गये हैं ॥ ५१७-५२५ ॥

पुनस्तत्त्वान्तरं पञ्चविंशतिं त्वं निशामय ।
शिवेश्वरौ शुद्धिविद्ये लिङ्गजीवात्मसूक्ष्मकाः ॥ ५२६ ॥
अविद्या नियतिः कालः कला रागः कुलामृते ।
बुद्धिर्माया मनः कामो रजः सत्त्वं तमस्तथा ॥ ५२७ ॥
युक्तिः सिद्धिः सामरस्यं पञ्चविंशमिदं क्रमात् ।
अतः परं तु स्थानानि न्यासस्यास्य निशामय ॥ ५२८ ॥
शिरो ललाटास्यकण्ठाःस्कन्धौ द्वौ द्वौ कफोणिकौ ।
मणिबन्धावङ्गुलीनां मूलाग्रौ परिकीर्तितौ ॥ ५२९ ॥

वंक्षणौ जानुनी गुल्फौ पादाङ्गुल्यंघ्रिकाग्रकाः ।
व्यापकं सर्वशारीरं पञ्चविंशतिमं प्रिये ॥ ५३० ॥
इति ते मुख्यरूपेणामृतन्यास उदीरितः ।

पुनः दूसरे पचीस तत्त्वों को तुम सुनो । शिव ईश्वर शुद्धि विद्या लिङ्ग जीव आत्मा सूक्ष्म अविद्या नियति काल कला राग कुल अमृत बुद्धि माया मन काम रज सत्त्व तमस् युक्ति सिद्धि और सामरस्य ये क्रमशः पचीस तत्त्व हैं । इसके बाद इस न्यास के स्थानों को जानो । (१) शिर, (२) ललाट, (३) मुख, (४) कण्ठ, (५) दो स्कन्ध, (६) दो कफोणि, (७) मणिबन्ध, (१२) अङ्गुलियों का मूल, (१७) अङ्गुलियों का अग्र, (१९) वंक्षण, (२०) दोनों जानु, (२१) दोनों गुल्फ, (२३) पैर की अङ्गुलियाँ, (२४) पैर का अग्रभाग और (२५) सम्पूर्ण शरीर का व्यापक हे प्रिये! यह पचीसवाँ स्थान है । इस प्रकार तुमको मुख्य रूप से अमृत न्यास बतलाया गया ॥ ५२६-५३०- ॥

[अमृतन्यासानुकल्पाभिधानम्]

अनुकल्पं शृणिवदानीं मत्तः कथयतः शनैः ॥ ५३१ ॥
पौरस्था स्थितिरत्रापि सर्वैरान्तिमगोचराः ।
चत्वारिंशत्संख्यकानां बीजानां स्थान एव हि ॥ ५३२ ॥
नव बीजानि देवेशि परं भेद इयान् स्थितः ।
तानि प्रणवमैधह्लीयोगिनीनामकानि हि ॥ ५३३ ॥
नृसिंहडाकिनीरावकूर्चप्रासादकानि च ।
अन्यानि सर्ववर्णानि पूर्ववद् वरवर्णिनि ॥ ५३४ ॥
स्थानान्यपि च तान्येव न्यासस्य कथितानि ते ।
उक्त इत्यमृतन्यासः प्रकारद्वितयेन ते ॥ ५३५ ॥
इदानीं सावधाना त्वं जयाद्यं विजयं शृणु ।

अमृतन्यास का अनुकल्प—अब कथन करने वाले मुझसे धीरे-धीरे अनुकल्प को सुनो । यहाँ भी पहले की स्थिति है । हे देवेशि! चालिस बीजों के स्थान में नव बीज रहते हैं । इतना बहुत बड़ा भेद है । वे बीज हैं—प्रणव मेधा ह्लीं योगिनी नृसिंह डाकिनी राव कूर्च और प्रासाद । हे वरवर्णिनि! अन्य समस्त वर्ण पूर्ववत् हैं । स्थान भी वही हैं । इस प्रकार दो रूपों में अमृतन्यास तुमको बतलाया गया । अब जयविजय न्यास को सुनो ॥ ५३१-५३५- ॥

[जयविजयन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

न्यासस्यास्य ऋषिर्दक्षश्छन्दश्च जगती तथा ॥ ५३६ ॥
गुह्यकाली देवता च डाकिनी बीजमुच्यते ।
हारः शक्तिः कूर्चबीजं कीलकं परिपठ्यते ॥ ५३७ ॥

विनियोगो जये चास्य विवादस्य रणस्य च ।

जयविजय-न्यास के ऋषि आदि—इस न्यास के ऋषि दक्ष, छन्द जगती, देवता गुह्यकाली और बीज डाकिनी कहे जाते हैं । शक्ति हार और कूर्चबीज कीलक कहा जाता है । इसका प्रयोग विवाद एवं युद्ध में विजय के लिये होता है ॥ ५३६-५३७- ॥

[जयविजयन्यासोद्धार:]

आकर्णय समुद्धारमिदानीमस्य पार्वति ॥ ५३८ ॥
सप्तविंशतिमन्त्राः स्युरस्य न्यासेशितुः पराः ।
सामान्यतस्तु सर्वेषां मनूनामुद्धृतिं ब्रुवे ॥ ५३९ ॥
वक्ष्ये विशेषं तदनु विज्ञेयं बुद्धिशालिनाम् ।
प्रत्येकं नव बीजानि सर्वेषामादिगानि हि ॥ ५४० ॥
तानि भिन्नानि भिन्नानि चलत्वेनोदितानि हि ।
ततो भिन्नानि नामानि देवानां वरवर्णिनि ॥ ५४१ ॥
तेषां लोकपदस्यापि विग्रहो ङिविभक्तितः ।
आद्यं तयोस्तु तरलमितरत् स्थेयमुच्यते ॥ ५४२ ॥
देवानां पुनराख्या च भिन्नभिन्ना सुरेश्वरि ।
आराधिता पदं तेन सविग्रहमुदीर्यते ॥ ५४३ ॥
अत्रापि पूर्ववत् पूर्वं चलं स्थाष्णु द्वितीयकम् ।
ततः संख्या चला ज्ञेया ततो वक्त्रापदं स्थिरम् ॥ ५४४ ॥
गुह्यकाली प्रीयतां चेत्येतदक्षरसप्तकम् ।
स्थिरं समानं सर्वेषां कूटं भिन्नं चलं ततः ॥ ५४५ ॥
तस्यै जयानु विजयप्रदायै तदनन्तरम् ।
जयायै विजयायै च हृच्छीर्षे तदनन्तरम् ॥ ५४६ ॥
इत्येकविंशतिमिता वर्णाः शेषे स्थिराः प्रिये ।
इति सामान्य उद्धारो विशेषमवधारय ॥ ५४७ ॥

जयविजय-न्यास का उद्धार—हे पार्वति! अब इस न्यास का उद्धार सुनो । इस न्यासराज के उच्चकोटि के सत्ताईस मन्त्र हैं । मैं सामान्यतया समस्त मन्त्रों का उद्धार बतला रहा हूँ । इसके बाद बुद्धिमानों के लिये ज्ञातव्य विशेष उद्धार बतलाऊँगा । प्रत्येक नव बीज सबके पहले रखे जाते हैं । वे भिन्न-भिन्न और चल कहे गये हैं । हे वरवर्णिनि! इसके बाद देवताओं के भिन्न-भिन्न नाम कहे जाते हैं । उनके साथ ङि विभक्ति अर्थात् सप्तम्यन्त 'लोक' पद भी जुटता है । इन दोनों (= नाम एवं लोक) में प्रथम तरल अर्थात् परिवर्तनशील तथा दूसरा स्थिर कहा जाता है । हे सुरेश्वरि! देवताओं के नाम भिन्न-भिन्न होते हैं । उसके साथ 'आराधिता'

पद भी विग्रह (= ङेविभक्ति के साथ) कहा जाता है । यहाँ भी पूर्व की भाँति पहला चल और दूसरा (= आराधितायै) स्थिर होता है । इसके बाद संख्या को चल एवं 'वक्त्रा' पद को स्थिर जानना चाहिये । इसके बाद 'गुह्यकाली प्रीयताम्' ये सात अक्षर सबमें समान रूप से स्थिर रहते हैं । इसके बाद कूट भिन्न-भिन्न तथा चल होते हैं । इसके पश्चात् 'तस्यै जयविजयप्रदायै' कहना चाहिये । उसके अनन्तर 'जयायै विजयायै' का उच्चारण कर हृदय और शिर कहना चाहिये । हे प्रिये! इस प्रकार इक्कीस वर्ण स्थिर होते हैं । यह सामान्य उद्धार बतलाया गया है । अब विशेष को जानो ॥ ५३८-५४७ ॥

[जयविजयन्यासस्य विशेषाभिधानम्]

सर्वेषां नवबीजानां प्रत्येकं क्रमशो ब्रुवे ।
वेदादिमायामदनप्रासादकमलारुषः ॥ ५४८ ॥
तार्क्ष्याङ्कुशक्षेत्रपालाः सारस्वतवधूकलाः ।
रावचण्डामृतावेशकालीयोगिन्य इत्यपि ॥ ५४९ ॥
पाशो विश्वश्च भूतश्च कुम्भसोमौ सकिन्नरौ ।
राकामेषौ मेघपूर्वौ नासत्यादिद्वयं ततः ॥ ५५० ॥
त्रिशिखा च त्रिशक्तिश्च कालादित्यौ च भैरवी।
प्रेतो नृसिंहस्तदनु नक्षत्रं विद्युदेव च ॥ ५५१ ॥
मालानीलेऽपि चामुण्डा कुलिकं भूतिनी विधिः ।
धनदा च ततो रम्भा वटी बुद्धिक्षमे अपि ॥ ५५२ ॥
मानसं वज्रकापाले हाकिनी चञ्चुरेव च ।
भारुण्डा काकिनी चैव कङ्कालं नाकुलं तथा ॥ ५५३ ॥
तैजसं डामरं चापि दानवध्यानसंहिताः ।
फैरवं च कुमारी च ज्ञानेच्छे यक्ष(त्न?) एव च ॥ ५५४ ॥
विरिञ्चितापिनीधूमललितास्तदनन्तरम् ।
उल्कादित्रितयं शान्तिरुग्रं केशर एव च ॥ ५५५ ॥
गोकर्णनेमिच्छन्दाश्च तन्त्रादित्रितयं ततः ।
सुरभी रौरवं चापि प्राणानन्तौ धृतिस्तपः ॥ ५५६ ॥
दण्डादिपञ्चकं धाराद्वयमिष्टिः सदक्षिणा ।
नाराचशूलफेत्कार्यो भल्लवेण्वादिपञ्चकम् ॥ ५५७ ॥
आयादिपञ्चकं पश्चात् कल्पो मुक्ता महाक्रमः ।
अनाहतस्तथा भोगः सृष्टिस्त्रेता च कृत्यया ॥ ५५८ ॥
कोशपिण्डौ कराल्यादित्रितयं तदनन्तरम् ।
निस्तर्जनीकं रङ्कादित्रितयं तदनन्तरम् ॥ ५५९ ॥

जय विजय-न्यास का विशेष कथन—समस्त नव बीजों में से प्रत्येक को क्रम से बतला रहा हूँ । वेदादि माया काम प्रासाद लक्ष्मी क्रोध तार्क्ष्य अर्थात् गरुड अङ्कुश क्षेत्रपाल, सारस्वत स्त्री कला राव चण्ड अमृत आवेश काली योगिनी, पाश विश्व भूत कुम्भ सोम किन्नर राका मेष मेघ, नासत्य आदि दो त्रिशिखा त्रिशक्ति काल आदित्य भैरवी प्रेत नृसिंह, उसके बाद नक्षत्र विद्युत् माला नील चामुण्डा कुलिक भूतिनी विधि धनदा, उसके बाद रम्भा वटी बुद्धि क्षमा मानस वज्र कापाल हाकिनी चञ्चु, भारुण्डा काकिनी कङ्काल नाकुल तैजस डामर दानव ध्यान संहिता, फैरव कुमारी ज्ञान इच्छा यक्ष विरिञ्चि तापिनी धूम ललिता, उसके बाद उल्का आदि तीन शान्ति उग्र केशर गोकर्ण, नेमि छन्द तन्त्र आदि तीन सुरभि रौरव प्राण अनन्त, धृति तप दण्ड आदि पाँच दो बार धारा, इष्टि दक्षिणा नाराच शूल फेत्कारी भल्ल वेणु आदि पाँच, आय आदि पाँच उसके बाद कल्प मुक्ता महाक्रम अनाहत, भोग सृष्टि त्रेता कृत्या कोश पिण्ड कराली आदि तीन, उसके बाद तर्जनीरहित रङ्क आदि तीन कहना चाहिये ॥ ५४८-५५९ ॥

वैकारिकस्ततः सिन्धुः कीलालादिचतुष्टयम् ।
प्रभञ्जना प्रचण्डा च केकराक्ष्यादिकं त्रयम् ॥ ५६० ॥
अर्द्धचन्द्रं क्षुरप्रश्च महानङ्गादिकं द्वयम् ।
बलिः पृथुर्नदश्चापि तारकाधेनुमारिषाः ॥ ५६१ ॥
नालीकश्च भुशुण्डी च गदा च तदनन्तरम् ।
अखण्डचारुकुब्जाश्च द्रावमाये महादिमे ॥ ५६२ ॥
आवेशश्च छटा प्रासः परिघस्तदनन्तरम् ।
द्वीपो जम्भः षडङ्गश्च ककुच्छैशुक एव च ॥ ५६३ ॥
ततोऽनु मन्दसम्मोहौ पतनं संहृतिस्तथा ।
संग्रहद्वितयं भावातीतौ स्थावरजङ्गमौ ॥ ५६४ ॥
ग्लहमध्यान्तकाः शेषे कर्तृसारङ्ग एव च ।
खट्वाङ्गं च हलं तत्त्वं त्रिकुटा त्रिपुटापि च ॥ ५६५ ॥
तस्याप्यनु प्रदातव्यः सोषधीको विहङ्गमः ।
गायत्री कर्णिका चापि शृङ्खलौपह्वरे तथा ॥ ५६६ ॥
नान्दिकं चापि लाङ्गूलादिचतुष्कं ततः परम् ।
सुकृतं दुष्कृतं पद्मं कुशिको व्यय एव च ॥ ५६७ ॥
सन्धानं सिञ्जिनी चापि नैमेयं त्रिपुरा तथा ।
सुरसः समरश्चापि रागः सारस एव च ॥ ५६८ ॥
मातृशङ्कु तथा याम्यं जीवनी तोमरस्तथा ।
भद्रिका च तथा तन्द्रा कुटिला रञ्जिनी घटी ॥ ५६९ ॥
चर्पटं मणिमाला च हारिण्युत्कोचिनी तथा ।

संहारी च तथा नादान्तकश्चामरमेव च ॥ ५७० ॥
व्यजनं विधृतिश्चापि षट्चक्रादिद्वयं तथा ।
सम्भूतिश्चतुरस्रं च मारण्डाद्यं विनादकम् ॥ ५७१ ॥
आम्नायातीतविरती ततस्तत्त्वार्णवोऽपि च ।
शक्तिसर्वस्वमस्यानु परापरमतः परम् ॥ ५७२ ॥
शाम्भवं चापि चिच्छक्तिरिति सर्वान्तिमस्थिता ।
इत्यग्निवेदाश्विमिता बीजपंक्तिर्निरूपिता ॥ ५७३ ॥

उसके बाद वैकारिक फिर सिन्धु कीलाल आदि चार, प्रभञ्जना, प्रचण्डा केकराक्षी आदि तीन, अर्धचन्द्र क्षुरप्र महा अनङ्ग आदि दो, बलि पृथु नद तारका धेनु मारिष नालीक भुशुण्डी गदा उसके बाद, अखण्ड चारु कुब्जा महाद्राव महामाया आवेश छटा प्रास उसके बाद परिघ, द्वीप जम्भ षडङ्ग ककुत् शैशुक इसके पश्चात् मन्द सम्मोह पतन संहति, दो संग्रह भाव अतीत स्थावर जङ्गम ग्लह मध्य अन्तक उसके अन्त में कर्तृ सारङ्ग खट्वाङ्ग हल तत्त्व त्रिकुटा त्रिपुटा उसके बाद ओषधी विहङ्गम कहना चाहिये । गायत्री कर्णिका शृङ्खला औपह्वर नान्दिक लाङ्गूल आदि चार उसके बाद सुकृत दुष्कृत पद्म कुशिक व्यय सन्धान सिञ्जिनी नैमेय त्रिपुरा, सुरस समर राग सारस मातृ शङ्कु याम्य जीवनी तोमर, भद्रिका तन्द्रा कुटिला रञ्जिनी घटी चर्पट मणिमाला हारिणी उत्कोचिनी, संहारी नादान्तक चामर व्यजन विधृति षट्चक्र आदि दो, सम्भूति चतुरस्र, मारण्ड विनाद आम्नायातीत विरति उसके बाद तत्त्वार्णव शक्तिसर्वस्व के बाद परापर इसके बाद शाम्भव चित्शक्ति । यह सबके अन्त में स्थित है । इस प्रकार अग्निवेद अश्वि अर्थात् दो सौ तैंतालिस बीजों की पङ्क्ति कही गयी ॥ ५६०-५७३ ॥

एकैकस्मिन् मनौ देया नवसंख्या समन्विता ।
अतः परं लोकपदोपपदं पूर्वगं शृणु ॥ ५७४ ॥
शिवश्च वरुणश्चापि ह्यदितिः शच्यपि प्रिये ।
सप्तर्षिश्च वसुश्चैव यमो भूरपि च क्रमात् ॥ ५७५ ॥
रुद्रः सूर्यस्तथा विश्वेदेवा इन्द्रोऽग्निरेव च ।
सिद्धः साध्यश्च यक्षश्च निर्ऋतिः किन्नरस्तथा ॥ ५७६ ॥
अप्सरो भासुरश्चापि गन्धर्वस्तदनन्तरम् ।
विद्याधरोऽपि च प्रजापतिस्तुषित एव च ॥ ५७७ ॥
वायुश्च दानवः शेषे प्रलयः परिकीर्तितः ।
एतस्य लोकस्थाने तु काल इत्यभिधीयते ॥ ५७८ ॥
इयान् परं विशेषो हि सर्वान्तिमपदस्य च ।
सप्तविंशतिनामानि क्रमेणैवोदितानि ते ॥ ५७९ ॥

एक-एक मन्त्र में नव संख्या वाले बीज देना चाहिये । इसके बाद 'लोक' पद के पूर्ववर्त्ती उपपदों को सुनो । हे प्रिये! शिव वरुण अदिति शची सप्तर्षि वसु यम भू रुद्र सूर्य विश्वेदेव इन्द्र अग्नि सिद्ध साध्य यक्ष निर्ऋति तथा किन्नर अप्सरा भासुर गन्धर्व उसके बाद विद्याधर प्रजापति तुषित वायु दानव और अन्त में प्रलय कहा गया है । इस (= प्रलय) के साथ 'लोक' के स्थान पर 'काल' कहा जाता है । सबसे अन्तिम पद (= प्रलय) का इतना विशेष है । इस प्रकार तुमको सत्ताईस नाम बतलाये गये ॥ ५७४-५७९ ॥

अत आराधिता शब्दादादिस्थं शृणु वै पदम् ।
सदाशिवश्च वरुणोऽदितिः शच्यपि च प्रिये ॥ ५८० ॥
सप्तर्षिश्च वसुश्चैव मृत्युकालौ ततः परम् ।
मुनिभूपौ च तदनु रुद्रः सङ्कीर्त्यतेऽनघे ॥ ५८१ ॥
तदनु द्वादशादित्या विश्वेदेवास्ततः परम् ।
इन्द्रोऽग्निः सिद्ध उदितः साध्योऽपि तदनन्तरम्॥ ५८२ ॥
कुबेरो राक्षसश्चापि किन्नरोऽपि ततः परम् ।
अप्सरोनिवहस्तद्वद् भासुरोऽप्यनु तस्य हि ॥ ५८३ ॥
गन्धर्वश्च ततो विद्याधरः सङ्कीर्त्यते प्रिये ।
प्रजापतिश्च तुषितो वायुर्दानव एव च ॥ ५८४ ॥
शेषे महाभैरवश्च सप्तविंशतिरीरिता ।
संख्याचक्रपदात् पूर्वास्त्वं निशामय साम्प्रतम् ॥ ५८५ ॥
एकं त्रिपञ्चषट्सप्त तथाष्ट नव पार्वति ।
दशैकादश तस्यानु द्वादशापि त्रयोदश ॥ ५८६ ॥
चतुर्दश ततः पञ्चदश तस्यानु षोडश ।
ततः सप्तदश ग्राह्यं पुनरष्टादशापि च ॥ ५८७ ॥
ऊनविंशतिरस्यानु विंशतिस्तदनन्तरम् ।
एकविंशतिरस्यानु द्वाविंशतिरतः परम् ॥ ५८८ ॥
चतुर्विंशतिरस्यान्ते न त्रयोविंशतिः क्वचित् ।
त्रिंशत् षट्त्रिंशदिति च षष्टिश्चाशीतिरेव च ॥ ५८९ ॥
शतं सहस्रमिति च सप्तविंशतिरीरिता ।
देवि संख्याभिरेताभिर्वक्त्रशब्दस्य विग्रहः ॥ ५९० ॥

हे प्रिये! इसके बाद 'आराधिता' शब्द के आदि में स्थित पदों को सुनो । सदाशिव वरुण अदिति शची सप्तर्षि वसु मृत्यु काल, उसके बाद मुनि भूप उसके अनन्तर हे अनघे! रुद्र कहा जाता है । उसके बाद द्वादश आदित्य तत्पश्चात् विश्वेदेव उसके अनन्तर इन्द्र अग्नि सिद्ध कहा गया । तदनन्तर साध्य कुबेर राक्षस किन्नर उसके पश्चात् अप्सरोनिवह उसी प्रकार भासुर कहना चाहिये । हे प्रिये!

उसके बाद गन्धर्व और विद्याधर कहा जाता है । प्रजापति तुषित वायु दानव अन्त में महाभैरव इस प्रकार सब सत्ताईस पद कहे गये । अब तुम संख्या चक्रपद के पूर्ववर्त्ती शब्दों को सुनो । हे पार्वति! एक तीन पाँच छह सात आठ नव दश ग्यारह उसके बाद बारह तेरह चौंदह पन्द्रह सोलह सत्रह अट्ठारह उन्नीस बीस उसके बाद इक्कीस उसके पश्चात् बाईस इसके बाद चौबीस । इसके अन्त में कहीं भी तेईस नहीं है । तीस छत्तीस साठ अस्सी सौ सहस्र इस प्रकार सत्ताईस संख्यायें कही गयी । हे देवि! इन संख्यावाची शब्दों के साथ 'वक्त्र' शब्द को जोड़ना पड़ता है ॥ ५८०-५९० ॥

क्रमेण कृत्वा दातव्या विशेषणतया स्थितः ।
अतः परं क्रमेणैव कूटान्यप्यवधारय ॥ ५९१ ॥
शाम्भवं कूटमादौ स्याद् वारुणं कूटमन्वतः ।
आदित्यकूटं तदनु कूटं वैहायसं ततः ॥ ५९२ ॥
योगकूटं ततः प्रोक्तं कूटं वासवमन्वतः ।
तत्पश्चात् याम्यकूटं च कूटं नाभसमेव च ॥ ५९३ ॥
रौद्रकूटं च तस्यानु मार्तण्डकूटमन्वतः ।
तार्तीयकूटं तदनु कूटमैन्द्रमथापि च ॥ ५९४ ॥
आग्नेयकूटं तदनु सिद्धकूटं ततः परम् ।
कूटं वैकारिकं पश्चात् कूटं चैन्तामणेयकम् ॥ ५९५ ॥
पैशाचकूटं तदनु नादकूटं ततः परम् ।
प्रपञ्चकूटं तत्पश्चात् धराकूटमतः परम् ॥ ५९६ ॥
गान्धर्वकूटं तदनु मणिकूटमतः परम् ।
प्राजापत्यं ततः कूटमनन्तं कूटमन्वतः ॥ ५९७ ॥
वायवीयं ततः कूटं नैर्ऋतं कूटमप्यतः ।
सर्वशेषे परिज्ञेयं भैरवीकूटमीश्वरि ॥ ५९८ ॥
क्रमेण खलु कूटानां सप्तविंशतिरीरिता ।
उक्तो विशेषोद्धारस्ते न्यासस्यास्य महाफलः ॥ ५९९ ॥
विजिगीषू रिपून् राजाऽन्वहमेनं समाचरेत् ।
तेनास्य रिपवः सर्वे क्षयं यान्ति न संशयः ॥ ६०० ॥
वैतण्डिकाः जल्पिकाश्च ये बुभूषन्ति वै द्विजाः ।
तैरवश्यं प्रकर्तव्यो विवादे जयमीप्सुभिः ॥ ६०१ ॥
जयश्च विजयश्चापि यस्मादेतेन जायते ।
अतस्तेनैव नाम्नाऽयं प्रसिद्धिं समुपागतः ॥ ६०२ ॥

यह संख्यावाची शब्द क्रमशः तथा विशेषण के रूप में जुड़ा होना चाहिये । इसके बाद क्रम से कूटों को भी समझो । पहले शाम्भव कूट होना चाहिये । उसके

बाद वारुणकूट तदनु आदित्यकूट फिर वैहायसकूट फिर योगकूट कहा गया है । इसके पश्चात् वासवकूट तत्पश्चात् याम्यकूट फिर नाभसकूट रौद्रकूट उसके बाद मार्तण्डकूट तार्त्तीयकूट फिर ऐन्द्र और आग्नेयकूट उसके बाद सिद्धकूट वैकारिककूट पश्चात् चिन्तामणिकूट पैशाचकूट फिर नादकूट उसके परे प्रपञ्चकूट धराकूट गान्धर्वकूट मणिकूट फिर प्राजापत्य पुनः अनन्तकूट इसके पश्चात् वायवीय कूट फिर नैर्ऋतकूट और हे ईश्वरि! सबके अन्त में भैरवीकूट जानना चाहिये । इस प्रकार क्रम से सत्ताईस कूट कहे गये । इस प्रकार इस न्यास का महाफल वाला विशेष उद्धार तुमको बतलाया गया । शत्रुओं को जीतने की इच्छा वाले राजा को इसका अनुष्ठान प्रतिदिन करना चाहिये । इससे उस राजा के शत्रु शीघ्र नष्ट हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं । जो ब्राह्मण वितण्डावादी तथा जल्पवाले होना चाहते हैं विवाद में जय चाहने वाले उन लोगों के द्वारा इसे अवश्य किया जाना चाहिये । चूँकि इसके करने से जय और विजय मिलती है, इसलिये उस अर्थात् 'जयविजय' नाम से यह प्रसिद्ध हुआ ॥ ५९१-६०२ ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि स्थानान्यस्य वरानने ।
न्यासस्य न्यसनीयानि तत्र चेतो निवेशय ॥ ६०३ ॥
ललाटं मुखवृत्तं च कूर्चं चिबुकमेव च ।
ग्रीवा कण्ठश्च हृदयं जठरं नाभिरेव च ॥ ६०४ ॥
गुदं कटी वंक्षणं च ऊरू जङ्घे तथैव च ।
पार्ष्णी च प्रपदावंसौ पार्श्वे पृष्ठं तथैव च ॥ ६०५ ॥
ब्रह्मरन्ध्रं व्यापकं च स्थानान्येतानि पार्वति ।
एतेषु तत्तन्मन्त्रैस्तु न्यासो न्यस्यः प्रयत्नतः ॥ ६०६ ॥
न्यासोऽयं कवचप्रायो महोन्नतिकरोऽपि च ।
चिरजीवित्वकारी च कर्तव्यः सुसमाहितैः ॥ ६०७ ॥
शरद्वसन्तयोरस्य देव्यावश्यकतेरिता ।
अन्यत्र काम्यता चैव स्यान्नैमित्तिकतापि च ॥ ६०८ ॥
दिव्यौघा अथ सिद्धौघा उपासांचक्रिरे त्विमम् ।
तां तां सिद्धिं प्राप्नुवन्त एतेनैव वरानने ॥ ६०९ ॥
गुह्या यावद्यावदास्या यैर्यैश्च समुपासिता ।
तत्सर्वमस्मिन्न्यासे तु वर्तते त्रिदशेश्वरि ॥ ६१० ॥
अत एव हि सर्वेभ्यो न्यासेभ्यः श्रेष्ठ उच्यते ।
कर्तव्यः सर्वयत्नेन देवानामपि दुर्लभः ॥ ६११ ॥

॥ इत्यादिनाथविरचितायां पञ्चाशत्साहस्र्यां श्रीमहाकालसंहितायां
न्यासोद्धारप्रकरणे सप्तमः पटलः ॥ ७ ॥

◆

हे वरानने! इसके बाद इस न्यास के न्यसनीय स्थानों को बतलाऊँगा । उसमें मन लगाओ । ललाट मुखमण्डल कूर्च (= दाढ़ी) चिबुक (= ठोड़ी) ग्रीवा कण्ठ हृदय उदर नाभि गुदा दोनों कटिप्रदेश वंक्षण (= उरु सन्धि) जाँघें जङ्घायें एड़ियाँ पैर कन्धे दोनों पार्श्व पीठ ब्रह्मरन्ध्र और व्यापक हे पार्वति! ये स्थान हैं । इनमें तत्तत् मन्त्रों से प्रयत्नपूर्वक न्यास करना चाहिये । यह न्यास कवचसदृश एवं महाउन्नति करने वाला तथा चिरञ्जीव बनाने वाला है । इसे स्थिर चित्त होकर करना चाहिये । हे देवि! शरद एवं वसन्त ऋतु में इसकी आवश्यकता बतलायी गयी है अर्थात् इसे अवश्य करना चाहिए । अन्य ऋतुओं में यह नैमित्तिक एवं काम्य होता है । दिव्यौघ एवं सिद्धौघ गुरुओं ने इसकी उपासना की। हे वरानने! इसके द्वारा वे भिन्न-भिन्न सिद्धियों को प्राप्त किये । जितने-जितने मुखों वाली गुह्यकाली जिन-जिन लोगों के द्वारा उपासित हुई हे त्रिदशेश्वरि! वह सब इस न्यास में प्रतिष्ठित है । इसीलिये यह सब न्यासों में श्रेष्ठ कहा जाता है । देवताओं के लिये भी दुर्लभ इस न्यास को सम्पूर्ण यत्न से करना चाहिये ॥ ६०३-६११ ॥

॥ इस प्रकार आदिनाथविरचित पचास सहस्र श्लोकों वाली महाकालसंहिता के 'न्यासोद्धारप्रकरण' नामक सप्तम पटल की आचार्य राधेश्याम-चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ७ ॥

……

अष्टमः पटलः

महाकाल उवाच—

अन्यानपि महान्यासान् कथ्यमानान् शृणु प्रिये ।
येषां चिकीर्षयापि स्यात् सिद्धिः सार्वत्रिकी नृणाम् ॥ १ ॥

महाकाल ने कहा—हे प्रिये! अब अन्य कहे जाने वाले न्यासों को सुनो जिनके करने की इच्छामात्र से मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ १ ॥

[भावनान्यासोद्देशः]

तत्रादौ भावनान्यासं समाकर्णय भामिनि ।
तृतीयपञ्चके श्रेष्ठः सर्वेभ्यः कथितस्त्वयम् ॥ २ ॥
याः काल्यः पञ्चपञ्चाशदुक्ता देव्ययुताक्षरे ।
तासां वै भावनाऽमुष्मिन्नतः श्रेष्ठतया मतः ॥ ३ ॥

भावना न्यास—हे भामिनि! उनमें से पहले भावना न्यास को सुनो । तीसरे एवं पाँचवें पटल में यह न्यास सबसे श्रेष्ठ कहा गया है । हे देवि! अयुताक्षर मन्त्र में जो पचपन कालियाँ कही गयी हैं, उनकी इसमें भावना की जाती है । अतः यह श्रेष्ठ माना गया है ॥ २-३ ॥

[भावनान्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

अतः शृणूद्धारमस्य न्यासस्य कमलानने ।
सदाशिव ऋषिश्चास्य बृहतीच्छन्द ईरितम् ॥ ४ ॥
देवता गुह्यकाली च शाम्भवं बीजमुच्यते ।
रावः शक्तिः कीलकं तु भासाकूटमुदीर्यते ॥ ५ ॥
एतस्य विनियोगस्तु कैवल्यपदसिद्धये ।

भावना न्यास के ऋषि आदि—हे कमलानने! इस कारण इस न्यास का उद्धार सुनो । इस न्यास के ऋषि सदाशिव, छन्द बृहती कहे गये हैं । देवता काली और बीज शाम्भव कहा जाता है । शक्ति राव, कीलक भासाकूट कहा जाता है । इसका प्रयोग कैवल्यपद की सिद्धि के लिये होता है ॥ ४-५- ॥

[भावनान्यासोद्धारः]

उद्धारमस्याकलय दुरूहं धीमतामपि ॥ ६ ॥
सामान्यं प्रथमं देवि विशेषं तदनन्तरम् ।
मन्त्रास्तु पञ्चपञ्चाशत्स्युरस्मिन्न्यास उत्तमे ॥ ७ ॥
सर्वाणि पञ्चपञ्चाशत् तेषां तदनुसारतः ।
बीजान्यष्टौ तु पुरतः प्रतिमन्त्रस्थितानि हि ॥ ८ ॥
तानि वै भिन्नभिन्नानि ज्ञातव्यानि समन्ततः ।
कूटमेकं च तदनु भिन्नं भिन्नं तदप्युत ॥ ९ ॥
तदन्वेका भवेत् काली भिन्नभिन्ना पुमन्तिका ।
पुनः कूटं भिन्नभिन्नमेकैकं सुरवन्दिते ॥ १० ॥
स्वाङ्गे स्थलानि न्यासस्य विभिन्नानि ततः परम्।
भावयामीति वर्णानि तेनाहमपि च प्रिये ॥ ११ ॥
प्रतिमन्त्रं ततः सप्ताक्षराण्येतानि पार्वति ।

भावना न्यास का उद्धार—इस न्यास का उद्धार, जो कि बुद्धिमानों के लिये भी दुरूह है, सुनो । हे देवि! पहले सामान्य फिर विशेष उद्धार (सुनो) । इस उत्तम उत्तर न्यास में मन्त्रों की संख्या पचपन है । तदनुसार इनकी सब संख्या पचपन है। सबसे पहले प्रत्येक मन्त्र में आठ बीज स्थित रहते हैं । उन्हें अलग-अलग समझना चाहिये। सबमें एक-एक कूट होता है वह भी भिन्न-भिन्न समझना चाहिये । उसके बाद एक काली होती है, वह भी सब न्यासों में भिन्न-भिन्न होती है और पुल्लिङ्ग के अन्त में जुटती है । हे सुरवन्दिते! फिर सबमें एक-एक कूट रखा जाता है, वह भी प्रत्येक मन्त्र में भिन्न-भिन्न होता है । इसके बाद अपने अङ्ग में न्यास के भिन्न-भिन्न स्थल होते हैं । हे प्रिये! उसके पश्चात् 'भावयामि' तथा 'तेनाहं' कहना चाहिये । हे पार्वति! इस प्रकार प्रत्येक मन्त्र में ये सात अक्षर स्थायी रूप से जानने चाहिये ॥ ६-११- ॥

ज्ञेयानि निश्चलत्वेन देवानां तदनन्तरम् ॥ १२ ॥
नामानि लोकशब्देन तेषां वै विग्रहस्ततः ।
स ङ्यन्तः पदयोर्मध्ये चलं पूर्वं स्थिरं परम् ॥ १३ ॥
ततोऽनु प्रणवं बीजं सर्वत्रैव स्थिरं समम् ।
विरजस्तमाभामि चेति ब्रह्मभूयाय यामि च ॥ १४ ॥
प्रतिमन्त्रं स्थिरा ज्ञेया अमी वर्णाश्चतुर्दश ।
ततोऽनु बीजमेकैकं विभिन्नं प्रतिमन्त्रकम् ॥ १५ ॥
ततोऽस्त्रहृच्छिरांस्यन्ते सर्वेषां सदृशानि तु ।
स्थानानि मन्त्रमध्ये तु यान्युक्तानि सुरेश्वरि ॥ १६ ॥
ज्ञेयानि तानि वैतस्य न्यासस्यापि स्थलानि हि ।

मन्त्रानुदीर्य क्रमशस्तत्तत्स्थानानि संस्पृशेत् ॥ १७ ॥
न्यासस्य भावनाख्यस्य इत्युद्धारो मयोदितः ।
सामान्यतो विशेषेण त्वमिदानीं निशामय ॥ १८ ॥

उसके बाद देवताओं के नाम 'लोक' शब्द से युक्त होने चाहिये । वह भी सप्तम्यन्त होता है । देवता का नाम एवं 'लोके' इन दोनों पदों में पहला चल और दूसरा बाद वाला स्थिर है । इसके बाद प्रणव बीज सर्वत्र समान रूप से स्थिर रहता है। उसके पश्चात् 'विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि' ये चौदह वर्ण प्रत्येक मन्त्र में स्थायी समझने चाहिये । इसके बाद एक-एक बीज जो प्रत्येक मन्त्र में पृथक्-पृथक् होते हैं, रखना चाहिये । इसके बाद अस्त्र हृदय और शिर ये प्रत्येक मन्त्र में स्थायी रूप से समान रहते हैं । हे सुरेश्वरि! मन्त्र के मध्य में जो स्थान कहे गये हैं, मन्त्रों का उच्चारण कर उन स्थानों का स्पर्श करना चाहिये । इस प्रकार भावनात्मक न्यास का सामान्य उद्धार मैंने तुमको बतला दिया । अब तुम विशेष रूप से इसको सुनो ॥ १२-१८ ॥

[भावनान्यासस्य विशेषोद्धार:]

तारमायारमाकामप्रासादक्षेत्रपाः क्रमात् ।
ततः क्रोधमहाक्रोधौ सिद्धः काली तथैव च ॥ १९ ॥
हयग्रीवश्च साध्यश्च धर्मश्च सृणिताक्ष्यकौ ।
गौरी तथोल्का वेदी च जरा चण्डी खलस्तथा ॥ २० ॥
पातालकुक्कुटावेते मैधाद्याः परिकीर्तिताः ।
पाशकेशरकाकिन्यो नेमी रावः सछन्दकः ॥ २१ ॥
चण्डविश्वौ कला चैव प्रियभूजम्बुकास्तथा ।
ज्योतिर्नाको नारदश्च पुष्कलस्तदनन्तरम् ॥ २२ ॥
शर्वः शङ्कुस्तथा कुम्भोऽमृतमावेश एव च ।
सोमभूतौ किन्नरश्च तथाश्वत्थः सकल्ककः ॥ २३ ॥
ज्वालाप्रौढौ च सव्यश्च क्रूरसान्निध्यमत्सराः ।
नासत्यशक्तिरतयः प्राणमेघौ ततः परम् ॥ २४ ॥
त्वष्टा तारा तडिच्चैव ततोऽर्चिर्नाभसो लघुः ।
बलार्चानायकाश्चैव ततोऽद्वयसमुद्रगे ॥ २५ ॥
कालादित्यौ त्रपावध्वादिमौ प्रेतश्च भैरवी ।
तत्त्वं च कुलिकं चैव दानवश्च ततः परम् ॥ २६ ॥
वैकारिकश्च मन्दारः सिन्धुः कीलालमेव च ।
महेन्द्रकरुणेशानाः खड्गबुद्धिक्षमास्ततः ॥ २७ ॥
मालानीले च धनदा तपो धृतिरिति क्रमात् ।
सारधारालक्ष्यभव्याक्षरगोत्रा महोदयाः ॥ २८ ॥

भावना न्यास का विशेष उद्धार—(बीजाक्षर-वर्णन)—तार माया रमा काम प्रासाद क्षेत्रपाल को क्रम से कहकर उसके बाद क्रोध महाक्रोध सिद्ध और काली हयग्रीव साध्य धर्म सृणि तार्क्ष्य गौरी के पश्चात् उल्का वेदी जरा चण्डी खल पाताल कुक्कुट इनके आदि में मैध रहता है ऐसा कहे गये हैं । पाश केसर काकिनी नेमि राव छन्द चण्ड विश्व कला प्रिय भू जम्बुक ज्योति नाक नारद पुष्कल उसके बाद शर्व शङ्ख कुम्भ अमृत आवेश सोम भूत किन्नर अश्वत्थ कल्क ज्वाला प्रौढ सव्य क्रूर सान्निध्य मत्सर नासत्य शक्ति रति प्राण मेघ उसके बाद त्वष्टा तारा तडित् अर्चि नाभस लघु बला अर्चा नायक उसके पश्चात् अद्वय समुद्रगा काल आदित्य उनके पहले त्रपा वधू फिर प्रेत भैरवी तत्त्व कुलिक दानव उसके बाद वैकारिक मन्दार सिन्धु कीलाल महेन्द्र करुण ईशान खड्ग बुद्धि क्षमा उसके बाद माला नील धनदा तप धृति ये क्रम से रहते हैं । सार धारा लक्ष्य भव्य अक्षर गोत्र और महोदय बीज कहने चाहिये ॥ १९-२८ ॥

विषं च पूरकश्चापि कुम्भको रेचकस्तथा ।
मन्त्रावली च भारुण्डा तन्त्रो वर्णश्च सम्पुटः ॥ २९ ॥
नान्दीबलिपृथुह्रस्वनादसात्वततारकाः ।
औदुम्बरश्च कङ्कालमानसे शान्तिरेव च ॥ ३० ॥
उग्रडामरकानन्दकूर्माधारास्ततः परम् ।
तुलानुदात्तस्वरितरत्नो(न्तो?)दात्ताजशृङ्खलाः ॥ ३१ ॥
रौद्रश्च मोक्षसन्ताननिर्वाणत्रिवृतस्ततः ।
कापालमथ गोकर्णः सुरभीरौरवोऽपि च ॥ ३२ ॥
सूक्ष्मा प्रभा सुप्रभा च विशुद्धिर्नन्दिनी तथा ।
बृहन्मङ्गलगन्धर्वा वृत्ततुङ्गावनन्तरम् ॥ ३३ ॥
अखण्डपुण्ये चारुश्च सन्तानः कुब्जपूतने ।
श्रेष्ठं पुष्पं निर्मलं च कुलं चित्रं च मण्डलम् ॥ ३४ ॥
विरिञ्चित्रिपुटे चैव यक्षमित्रौ च तापिनी ।
पुरुचूडामणी पिच्छा खाता देशतलच्छटाः ॥ ३५ ॥
मणिर्नित्या वृषः पुष्टिः कौमुदी च सुदर्शनम् ।
बला विहङ्गमश्चापि परेष्टिव्रतपूर्तयः ॥ ३६ ॥
निर्मोकोत्तंसवेतण्डाः करम्भिस्तदनन्तरम् ।
प्रभा विराट् च सावित्री फैरवः स्वाप एव च॥ ३७ ॥
कुमार्योजस्ततो देयः सर्वशेषेऽपराजितः ।
वेणुः सानुस्तथाचाक्षो मस्करो मौञ्ज्यवप्लुतः ॥ ३८ ॥

विष पूरक कुम्भक रेचक मन्त्रावली भारुण्डा तन्त्र वर्ण सम्पुट नान्दी बलि पृथु ह्रस्व नाद सात्वत तारक औदुम्बर कङ्काल मानस शान्ति उग्र डामर आनन्द कूर्म

आधार उसके बाद तुला अनुदात्त स्वरित रत्न उदात्त अज शृङ्खला रौद्र मोक्ष सन्तान निर्वाण त्रिवृत् उसके बाद कापाल फिर गोकर्ण सुरभि रौरव सूक्ष्मा प्रभा सुप्रभा विशुद्धि नन्दिनी बृहत् मङ्गल गन्धर्व वृत्त तुङ्ग उसके बाद अखण्ड पुण्य चारु सन्तान कुब्ज पूतना श्रेष्ठ पुष्प निर्मल कुल चित्र मण्डल विरिञ्चि त्रिपुट यक्ष मित्र तापिनी पुरु चूडामणि पिच्छा खाता देश तल छटा मणि नित्या वृष पुष्टि कौमुदी सुदर्शन बला विहङ्गम परेष्टि व्रत पूर्ति निर्मोक उत्तंस वेतण्ड करम्भि उसके बाद प्रभा विराट् सावित्री फैरव स्वाप कुमारी ओजस् उसके बाद सबके अन्त में अपराजित देना चाहिये। वेणु सानु अक्ष मस्कर मौञ्जी अवप्लुत- ॥ २९-३८ ॥

विघसः सूत्रमनसी ईर्षश्च ससमाधिकः ।
रम्भावती(टी?) मठी चापि कुल्यौषध्यौ पिशाचिनी ॥ ३९ ॥
पराको रङ्कताटङ्कलीलार्घा धेनुरेव च ।
क्षोभणो मारिषश्चापि जगती नन्दया सह ॥ ४० ॥
जटा च हैमं विमलं प्रतापः कोरकादिमः ।
शौण्डोऽन्ते केशशिक्षे च सती मधु च डिण्डिमम् ॥ ४१ ॥
उद्धारादित्रयं चैव ततः परमुदीरयेत् ।
आयश्च मेखला कुण्डं गर्भो दीपस्तथैव च ॥ ४२ ॥
कुठारकर्तृखट्वाङ्गाः कोदण्डो मूर्वला तथा ।
तूणव्याडौ (सौडौ?) सैन्धवश्च वैधसस्तदनन्तरम् ॥ ४३ ॥
सर्वार्थश्च ललाटं च विचित्रं धन्यमेव च ।
उल्लाप्यं विस्मृतिः पाणिगीतिः शङ्खो महापदात् ॥ ४४ ॥
ऋतङ्कमर्गलं चापि वेगः सन्धानसिञ्जिनी ।
लिङ्गनैमेयपुन्नागत्रिपुराशेषदुर्घटाः ॥ ४५ ॥
महाङ्कुशमहानङ्गमहामारीमहाविषाः ।
महाद्रावमहामोहमहामायापतङ्गकाः ॥ ४६ ॥
रौद्रः सवित्री शङ्कुश्च मज्जनं याम्यमेव च ।
ऐन्द्रं च जीवनी चापि प्रवहस्तमनु प्रिये ॥ ४७ ॥
प्रभञ्जना भ्रामरी च प्रचण्डा डाकिनी तथा ।
केकराक्षी महारात्रिः कालरात्रिः सहान्तका ॥ ४८ ॥

विघस सूत्र मनस् ईर्ष्या समाधि रम्भावती मठी कुल्या औषधी पिशाचिनी पराक रङ्क ताटङ्क लीला अर्घ धेनु क्षोभण मारिष जगती नन्दा जटा हैम विमल प्रताप कोरक आदिम शौण्ड अन्त केश शिक्षा सती मधु डिण्डिम इसके बाद उद्धार आदि तीन को उद्धृत करना चाहिये। आय मेखला कुण्ड गर्भ दीप कुठार कर्तृ खट्वाङ्ग कोदण्ड मूर्वला तूण व्याड सैन्धव उसके बाद वैध सर्वार्थ ललाट विचित्र धन्य

उल्लाप्य विस्मृति पाणिगीति महाशङ्ग ऋतङ्क अर्गल वेग सन्धान सिञ्जिनी लिङ्ग नैमेय पुन्नाग त्रिपुरा शेष (?) दुर्घट महाअङ्कुश महाअनङ्ग महामारी महाविष महाद्राव महामोह महामाया पतङ्ग रौद्र सवित्री शङ्कु मज्जन याम्य ऐन्द्र जीवनी प्रवह उसके बाद हे प्रिये! प्रभञ्जना भ्रामरी प्रचण्डा डाकिनी केकराक्षी महारात्रि कालरात्रि अन्तक कहना चाहिये ॥ ३९-४८ ॥

गायत्री कर्णिके द्वे च शृङ्खलौपह्वरे तथा ।
वाडवं वीरवेतालौ भौवं तदनु भामिनि ॥ ४९ ॥
विजयो जयसम्मोहौ प्रलयः पतनं तथा ।
ततो युगान्तसंहारौ ततः सिद्धिफलं मतम् ॥ ५० ॥
सुकृतं दुष्कृतं पद्मं कुशिको व्यय एव च ।
शिल्पोग्रपुटकाश्चैव ततोऽनाहत एव च ॥ ५१ ॥
भोगः सृष्टिश्च फेत्कारी त्रेता चैव करालिनी ।
कृत्या तदनु सम्पूर्णा सुरसः समरस्तथा ॥ ५२ ॥
रागसारससङ्कल्पास्तर्जनी च कटङ्कटा ।
भद्रिका च तथा तन्द्रा कुटिला रञ्जिनी घटी ॥ ५३ ॥
अङ्कुरादित्रयं चापि चर्पटं मणिमालया ।
हारिण्युत्कोचिनी चैव विक्रमः संक्रमः पणः ॥ ५४ ॥
संविधानं च कलहस्त्रिदैवं कुलमुद्रिका ।
चक्रतुम्बी च विजया सम्भूतिश्चतुरस्त्रकम् ॥ ५५ ॥
त्र्यस्त्रश्च विवृतिश्चैव वासोऽनय-
ककुम्बिके(कुब्जिके) ।
कण्ठीरवोऽपि संहारी नादान्तकचामरौ ॥ ५६ ॥
श्रीकण्ठोऽथापि व्यजनं विधृतिर्विटपं तथा ।
विवासो दाक्षिकश्चापि सामुद्रश्च प्रतापकः ॥ ५७ ॥
विदिक् तथौपदेयं च मारण्डं सविनादकम् ।
विमर्दशेखरौ चापि कुडुक्कादित्रयं ततः ॥ ५८ ॥

गायत्री दो कर्णिका शृङ्खला औपह्वर वाडव वीर वेताल भौव उसके बाद हे भामिनी ! विजय जय सम्मोह प्रलय पतन इसके बाद युगान्त संहार इसके बाद सिद्धिफल कहा गया है । सुकृत दुष्कृत पद्म कुशिक व्यय शिल्प उग्र पुटक इसके पश्चात् अनाहत भोग सृष्टि फेत्कारी त्रेता करालिनी कृत्या उसके बाद सम्पूर्णा सुरस समर राग सारस सङ्कल्प तर्जनी कटङ्कटा भद्रिका तन्द्रा कुटिला रञ्जिनी घटी अङ्कुर आदि तीन चर्पट मणिमाला हारिणी उत्कोचिनी विक्रम संक्रम पण संविधान कलह त्रिदैव कुलमुद्रिका चक्रतुम्बी विजया सम्भूति चतुरस्त्र त्र्यस्त्र विवृति वास अनय ककुम्बिका (ककुब्जिका?) कण्ठीरव संहारी नादान्तक चामर श्रीकण्ठ व्यजन विधृति

विटप विवास दाक्षिक सामुद्र प्रताप विदिश औपदेय मारण्ड विनाद विमर्द शेखर कुडुक्क आदि तीन कहना चाहिये ॥ ४९-५८ ॥

मौलिङ्गश्च विरूपश्च तथा चैवापरान्तकः ।
प्रकरीबिन्दुकौ चापि मेधीमुखरकृष्टयः ॥ ५९ ॥
सन्तानश्च वितानश्च विवरो बृंहतिस्तथा ।
वशवाहौ सम्प्रदायभाजने तदनन्तरम् ॥ ६० ॥
अपायश्च निकारश्च वृद्ध्युड्डीशौ प्रवाहकः ।
निर्वेशोऽर्घादियुगलं सङ्गतिर्बर्ह एव च ॥ ६१ ॥
उद्भिद्द्रायौ तीर्थवाट्यौ मूलं वारुण्यनन्तरम् ।
खण्डकेतू श्रुतिर्मन्दा सन्ध्या वर्ष्म ततः परम् ॥ ६२ ॥
निष्ठा मौलिश्च तदनु विराधश्च तुरीयया ।
ग्रावापथ्यं च परतो मोदकं वासिता तथा ॥ ६३ ॥
ओजस्विशफमस्यानु षट्चक्रादिद्वयं ततः ।
आम्नायातीतमुल्लिख्य तत्त्वार्णव इतोऽप्यनु ॥ ६४ ॥
शक्तिसर्वस्वमथ च परापर उदीर्यते ।
शाम्भवोऽप्यथ चिच्छक्तिःसर्वान्ते परिनिष्ठिता ॥ ६५ ॥
खवेदयुगबीजानि भवन्त्येवं वरानने ।

मौलिङ्ग विरूप और अपरान्तक प्रकरी बिन्दु मेधी मुखर कृष्टि सन्तान वितान विवर बृहति वशवाह सम्प्रदाय भाजन उसके बाद अपाय निकार वृद्धि उड्डीश प्रवाह निर्वेश अर्घ आदि दो सङ्गति बर्ह उद्भिद् द्राय तीर्थ वाटी मूल वारुणी उसके बाद खण्ड केतु श्रुति मन्दा सन्ध्या वर्ष्म उसके बाद निष्ठा मौलि उसके परे विराध तुरीया ग्रावपथ्य के परे मोदक वासिता ओजस्वि शफ इसके बाद षट्चक्र आदि दो तत्पश्चात् आम्नायातीत का उल्लेखकर तत्त्वार्णव इसके बाद शक्तिसर्वस्व फिर परापर कहा जाता है । शाम्भव फिर सबके अन्त में चित्शक्ति रखी होती है । हे वरानने! इस प्रकार ख = शून्य, वेद = चार और युग = चार अर्थात् कुल ४४० बीजाक्षर होते हैं ॥ ५९-६५ ॥

[कूटवर्णनम्]

क्रमादिदानीं कूटानि गदतो मे निशामय ॥ ६६ ॥
शाम्भवं प्रथमं कूटं सद्योजातं द्वितीयकम् ।
कूटं तात्पुरुषं पश्चादघोरं कूटमन्वतः ॥ ६७ ॥
शाङ्करं वामदेवं च कूटद्वयमतः परम् ।
ततः पाशुपतं कूटमैशानं तदनन्तरम् ॥ ६८ ॥
माहेश्वरं त्रैपुरं च कूटयुग्मं ततो भवेत् ।
श्रीकण्ठकूटमस्यानु कूटं मृत्युञ्जयं तथा ॥ ६९ ॥

रौद्रानन्दौ ततः कूटौ परापरमतः परम् ।
लिङ्गकूटं ततश्चिन्तामणिकूटमुदीर्यते ॥ ७० ॥
कलाकूटं चन्द्रकूटं हंसकूटमितोऽप्यनु ।
सृष्टिस्थिती च संहारानाख्याभासाभिधा ततः ॥ ७१ ॥
पञ्च कूटाः परिज्ञेयास्ततोऽनन्तरमीश्वरि ।
मणिकूटं हेमकूटं रत्नकूटं ततः परम् ॥ ७२ ॥
उदयास्तौ ततः कूटौ खेचरीकूटमन्वतः ।
मन्थानकूटं त्रिजटाकूटं किञ्जल्ककूटकम् ॥ ७३ ॥
कुलकूटं च समयकूटं मालाह्वयं ततः ।
मेरुकूटं च कैलासकूटं तदनु भामिनि ॥ ७४ ॥
त्रिकूटकूटं कूटौ तु मन्त्रावर्णाह्वयौ ततः ।
गन्धर्वकूटं प्रासादकूटं मन्दारकूटकम् ॥ ७५ ॥
ततोऽपराजितं कूटं डाकिनीकूटमेव च ।
नीलकूटं सेतुकूटं कूटौ गह्वरकेशवौ (रौ?) ॥ ७६ ॥
चैतन्यकूटं परमार्थकूटं च परमेश्वरि ।
सदसत्कूटमस्यानु नित्यकूटमतः परम् ॥ ७७ ॥
पञ्चपञ्चाशतं कूटा एवं क्रमत ईरिताः ।

कूटवर्णन—अब मुझसे कहे जाने वाले कूटों को क्रमशः सुनो । पहला कूट शाम्भव दूसरा सद्योजात उसके बाद तत्पुरुष फिर अघोर इसके पीछे शाङ्कर और वामदेव दो कूट फिर पाशुपतकूट ऐशानकूट उसके बाद माहेश्वर और त्रैपुर दो कूट होते हैं । श्रीकण्ठकूट इसके बाद मृत्युञ्जयकूट फिर रौद्र और आनन्द दो कूट इसके पश्चात् परापर, लिङ्गकूट फिर चिन्तामणिकूट कहा जाता है । कलाकूट चन्द्रकूट हंसकूट इसके बाद सृष्टिकूट स्थितिकूट संहारकूट अनाख्याकूट और भासाकूट ये पाँच कूट जानने चाहिये । हे ईश्वरि! इसके बाद मणिकूट हेमकूट रत्नकूट उसके बाद उदय और अस्त दो कूट इसके पश्चात् खेचरीकूट फिर मन्थानकूट त्रिजटाकूट किञ्जल्ककूट कुलकूट समयकूट मालाकूट मेरुकूट हे भामिनि! उसके बाद कैलासकूट चित्रकूट फिर मन्त्र और वर्ण नामक दो कूट गन्धर्वकूट प्रासादकूट मन्दारकूट फिर अपराजितकूट और डाकिनीकूट नीलकूट सेतुकूट गह्वर और केशवकूट चैतन्यकूट परमार्थकूट उसके बाद हे परमेश्वरि! सदसत्कूट और नित्यकूट —इस प्रकार पचपन कूट क्रम से कहे गये ॥ ६६-७७ ॥

[कालीवर्णनम्]

अतः परं निबोध त्वं कालीर्भिन्नतया स्थिताः ॥ ७८ ॥
धूमकाली भवेदादौ जयकाली ततः परम् ।
उग्रकाली ततो ज्वालाकाली देवि प्रकीर्त्यते ॥ ७९ ॥

धनकाली घोरनादकाली षष्ठी प्रकाश्यते ।
कल्पान्तकाली वेतालकाली तदनु भामिनि ॥ ८० ॥
कङ्कालकाली च ततो नग्नकाली प्रकीर्त्यते ।
घोरघोरतराकाली काली दुर्जयपूर्विका ॥ ८१ ॥
मन्थानकाली संहारकाल्याज्ञाकाल्यनन्तरम् ।
रौद्रकाली तिग्मकाली भवेत् सप्तदशी हि सा: ॥ ८२ ॥
कृतान्तकाली च महारात्रिकाली तत: परम् ।
संग्रामकाली तदनु भीमकाली तत: परम् ॥ ८३ ॥
शवकाली चण्डकाली काली रुधिरपूर्विका ।
घोरकाली तत: काली भयङ्करपदादिमा ॥ ८४ ॥
सन्त्रासकाली च प्रेतकाली तदनु कीर्त्यते ।
कारालकाली विकरालकाली तदनन्तरम् ॥ ८५ ॥
तत: प्रलयकाल्यन्या विभूतिपदतोऽपि च ।
भोगकाली कालकाली वज्रकाली तथैव च ॥ ८६ ॥
काली विकटपूर्वा च विद्याकाली तत: परम् ।
शक्तिकाली कामकलाकाली दक्षिणकाल्यपि ॥ ८७ ॥
मायाकाली भद्रकाली महाकाली तत: परम् ।
श्मशानकाली च कुलकाली तदनु पठ्यते ॥ ८८ ॥
नादकाली मुण्डकाली सिद्धिकाली तथैव च ।
उदारकाली चोन्मत्तकाली तस्यानुगद्यते ॥ ८९ ॥
सन्तापकाली कापालकाली तदनु कीर्त्यते ।
आनन्दकाल्यनुभवेत् काली भैरवपूर्विका ॥ ९० ॥
निर्वाणकाली सर्वासां शेषेषु परिनिष्ठिता: ।
पञ्चपञ्चाशतं कालीनामान्युक्तान्यत: परम् ॥ ९१ ॥

काली-वर्णन—इसके बाद अब भिन्न रूप और नाम से स्थित कालियों को जानो । पहले धूमकाली उसके बाद जयकाली उग्रकाली ज्वालाकाली कही जाती है । धनकाली घोरनादकाली छठीं कही जाती है । हे भामिनि! उसके बाद कल्पान्तकाली वेतालकाली कङ्कालकाली नग्नकाली कही जाती है । घोरघोरतराकाली दुर्जयकाली मन्थानकाली संहारकाली आज्ञाकाली रौद्रकाली और सत्रहवीं तिग्मकाली है । कृतान्तकाली महारात्रिकाली उसके बाद संग्रामकाली उसके बाद भीमकाली शवकाली चण्डकाली रुधिरकाली घोरकाली फिर भयङ्करकाली सन्त्रासकाली उसके बाद प्रेतकाली कही जाती है । करालकाली उसके बाद विकरालकाली तत: प्रलयकाली फिर विभूतिकाली भोगकाली कालकाली वज्रकाली विकटकाली उसके परे विद्याकाली शक्तिकाली कामकलाकाली दक्षिणकाली मायाकाली भद्रकाली महाकाली

श्मशानकाली उसके बाद कुलकाली का पाठ होता है । नादकाली मुण्डकाली सिद्धिकाली उदारकाली उन्मत्तकाली कही जाती है । सन्तापकाली कापालकाली आनन्दकाली और भैरवकाली का ध्यान करना चाहिये । सबके अन्त में निर्वाण-काली स्थित है । इस प्रकार पचपन काली नाम कहे गये इसके बाद- ॥ ७८-९१॥

पुनः कूटानि कलय क्रमेणैव सुरेश्वरि ।
आदौ विसर्गा नाडी स्याद् हिंता नाडी ततः परम्॥ ९२ ॥
सङ्कोचिनी ततो नाडी तस्यानु क्षेपणी(क्षोभणी?) शिरा ।
आवेशिनी ततो नाडी घर्घरा धमनी तथा ॥ ९३ ॥
स्निग्धा नाडी कुहूर्नाडी नाडी चैव सरस्वती ।
पयस्विनी वारणा च गान्धारी च यशस्विनी ॥ ९४ ॥
पूषा शिरा शङ्खिनी च हस्तिजिह्वाऽप्यलम्बुषा ।
विश्वोदरा तथाऽव्यक्ता चित्रा तेजस्विनी तथा ॥ ९५ ॥
ततो मधुमती नाडी नाडी रसवहाऽपि च ।
द्राविणी गालिनी मन्दा मुदिता भ्रामिणी सती ॥ ९६ ॥
सौवीरी रञ्जनी रण्डा रेवती कपिला तथा ।
आप्यायनी विश्वदूता नाडी चापि कपर्दिनी ॥ ९७ ॥
चन्द्रा चन्द्रावती हेमा मैत्री नन्दा धमन्यपि ।
लोहिनी पूतना कल्पा नाडी वेगवती तथा ॥ ९८ ॥
धारिणी धोरिणी धीरा विवर्णा कृन्तिनी शिरा ।
अग्निज्वालारुची नाड्यौ तुरीया चापुनर्भवा ॥ ९९ ॥
धमन्यः पञ्चपञ्चाशत् क्रमेणैताः प्रकीर्तिताः ।

हे सुरेश्वरि! इनके कूटों को क्रम से सुनो । पहले विसर्गा नाडी उसके बाद हिता नाडी फिर सङ्कोचिनी नाडी उसके बाद क्षेपणी (क्षोभणी) फिर आवेशिनी नाडी तथा घर्घरा नाडी स्निग्धा नाडी कुहू नाडी फिर सरस्वती नाडी पयस्विनी वारणा गान्धारी यशस्विनी पूषा शङ्खिनी हस्तिजिह्वा अलम्बुषा विश्वोदरा अव्यक्ता चित्रा तेजस्विनी फिर मधुमती नाडी और रसवहा द्राविणी गालिनी मन्दा मुदिता भ्रामणी सती सौवीरी रञ्जनी रण्डा रेवती कपिला आप्यायनी विश्वदूता कपर्दिनी चन्द्रा चन्द्रावती हेमा मैत्री नन्दा लोहिनी पूतना कल्पा वेगवती धारिणी घोरिणी धीरा विवर्णा कृन्तिनी अग्निज्वाला रुचि तुरीया और अपुनर्भवा—ये पचपन धमनियाँ अर्थात् नाड़ियाँ तुमको क्रम से बतलायी गयीं ॥ ९२-९९ ॥

[भावनान्यासस्य स्थाननिर्देशः]

अतः परं तु स्थानानि शरीरस्य निबोध मे ॥ १०० ॥
अङ्गुल्यग्रं तु दक्षांघ्रेर्वामांघ्रेस्तद्द्वितीयकम् ।
दक्षपादाङ्गुलीमूलं वामपादाङ्गुलेरपि ॥ १०१ ॥

दक्षगुल्फो वामगुल्फो दक्षजङ्घा तथेतरा ।
दक्षजानुस्तथा वामजानुर्दक्षोरुरित्यपि ॥ १०२ ॥
वामोरुः वंक्षणो दक्षो वामवंक्षण एव च ।
दक्षकटो वामकटो दक्षिणं च ककुन्दरम् ॥ १०३ ॥
वामं ककुन्दरं चापि दक्षिणस्फिक् तथेतरा ।
गुदं लिङ्गं तथा वस्तिर्नाभिर्जठरमेव च ॥ १०४ ॥
हृदयं दक्षिणं पार्श्वं वामपार्श्वं तथैव च ।
दक्षिणं चूचुकं वामचूचुकं तदनन्तरम् ॥ १०५ ॥
दक्षस्कन्धस्तथा वामो दक्षजत्रु तथेतरत् ।
दक्षकक्षो वामकक्षो दक्षा हनुरथेतरा ॥ १०६ ॥
दक्षं सृक्कं तथा वामं दक्षो गण्डस्तथेतरः ।
दक्षकर्णो वामकर्णो दक्षनासापुटं तथा ॥ १०७ ॥
वामनासापुटं दक्षं लोचनं वाममेव च ।
दक्षः कपोलो वामश्च दक्षा भ्रूरप्यथेतरा ॥ १०८ ॥
दक्षशङ्खो वामशङ्खो ब्रह्मरन्ध्रमतः परम् ।
इति स्थानानि सर्वाणि क्रमेण कथितानि ते ॥ १०९ ॥
मन्त्रान्तर्न्यसनीयानि स्थानान्यपि सुरेश्वरि ।

भावना न्यास के स्थान—इसके बाद शरीर के स्थानों को मुझसे जानो । दाँयें पैर के अङ्गुल्यग्र फिर बाँयें पैर का अङ्गुल्यग्र, दाँयें पैर की अङ्गुली का मूल, बाँयें पैर की अङ्गुली का मूल, दक्ष गुल्फ, वामगुल्फ, दक्षजङ्घा, वामजङ्घा, दक्षजानु, वामजानु, दक्षिणउरु, वामउरु, दक्षिण वंक्षण, वाम वंक्षण, दक्षकटि, वामकटि, दक्षिण ककुन्दर (= नितम्बों का गड्ढा), वाम ककुन्दर, दक्षिण स्फिक्, वाम स्फिक्, गुदा, लिङ्ग, वस्ति, नाभि, जठर, हृदय, दक्षिण पार्श्व, वाम पार्श्व, दक्षिण चुचूक, वाम चुचूक, दक्षस्कन्ध, वामस्कन्ध, दक्षजत्रु, वामजत्रु, दक्षकक्ष, वामकक्ष, दक्षहनु इतर (= वाम) हनु, दक्ष सृक्क, दक्षगण्ड, वामगण्ड, दक्षकर्ण, वामकर्ण, दक्ष नासापुट, वाम नासापुट, दक्षनेत्र, वामनेत्र, दक्ष कपोल, वामकपोल, दक्ष भ्रू, वाम भ्रू, दक्षशङ्ख (= मस्तक की हड्डी) वामशङ्ख इसके बाद ब्रह्मरन्ध्र इस प्रकार तुमको सब स्थान क्रम से कहे गये । हे सुरेश्वरि! मन्त्र के भीतर इन स्थानों का न्यास करना चाहिये ॥ १००-१०९ ॥

[भावनान्यासस्य लोका:]

यद्यल्लोकः क्रमेणैव स स लोकोऽवधार्यताम् ॥ ११० ॥
नागलोकोऽथ भूर्लोको भुवर्लोकस्ततः परम् ।
स्वर्लोकः सूर्यलोकश्च चन्द्रलोकस्ततः परम् ॥ १११ ॥
भूतलोकः प्रेतलोकः पैशाचो लोक एव च ।

पितृलोकोऽप्सरोलोको गान्धर्वः कैन्नरोऽपि च ॥ ११२ ॥
लोको वैद्याधरो यक्षलोको वासव एव च ।
वैश्वदेवः सिद्धलोकः साध्यलोकस्ततः परम् ॥ ११३ ॥
बुधलोकः शुक्रलोको भौमलोको बृहस्पतेः ।
लोको लोकः शनेश्चापि तमो लोकस्ततः परम् ॥ ११४ ॥
सप्तर्षिलोकस्तदनु ततो वैराजलोककः ।
ध्रुवलोकश्चन्द्रलोकोऽग्निलोको यमलोककः ॥ ११५ ॥
तथा निर्ऋतिलोकश्च वारुणो लोक एव च ।
वायुलोकश्च कौबेरो लोकश्चैशानलोककः ॥ ११६ ॥
ततो तु डाकिनीलोको योगिनीलोक एव च ।
तस्यानु भैरवीलोकश्चामुण्डालोक एव च ॥ ११७ ॥
लक्ष्मीलोकश्च वैकुण्ठलोको वैशाखलोककः ।
ब्रह्मलोकस्ततो लोकः प्रमथानां प्रकीर्तितः ॥ ११८ ॥
मातृलोक उमालोकः शिवलोकस्ततः परम् ।
महर्लोको जनोलोकस्तपोलोकस्ततोऽपि च ॥ ११९ ॥
मर्त्यलोको रुद्रलोको गोलोकस्तदनन्तरम् ।
लोकः सदाशिवस्यापि सर्वशेषे प्रकीर्तितः ॥ १२० ॥
पञ्चपञ्चाशदेवं स्युर्लोकास्तेषु क्रमात् प्रिये ।
तास्ताः काल्योऽवतिष्ठन्ते तदधिष्ठात्र्य ईरिताः ॥ १२१ ॥

भावनान्यास के लोक—जो-जो लोक हैं, उनको क्रम से जानो । नागलोक भूलोक अन्तरिक्षलोक स्वर्गलोक सूर्यलोक उसके बाद चन्द्रलोक भूतलोक प्रेतलोक पैशाचलोक पितृलोक अप्सरालोक गन्धर्वलोक किन्नरलोक विद्याधरलोक यक्षलोक वसुलोक विश्वेदेवलोक सिद्धलोक साध्यलोक उसके बाद बुधलोक शुक्रलोक भौमलोक गुरुलोक शनिलोक राहुलोक उसके बाद सप्तर्षिलोक उसके पश्चात् वैराजलोक ध्रुवलोक चन्द्रलोक अग्निलोक यमलोक निर्ऋतिलोक वरुणलोक वायुलोक कुबेरलोक ईशानलोक इसके बाद डाकिनीलोक योगिनीलोक तत्पश्चात् भैरवीलोक चामुण्डालोक लक्ष्मीलोक वैकुण्ठलोक विशाखालोक ब्रह्मलोक उसके बाद प्रमथों का लोक कहा गया है । मातृलोक उमालोक शिवलोक उसके पश्चात् महर्लोक जनलोक तपोलोक तत्पश्चात् मर्त्यलोक रुद्रलोक गोलोक तदनन्तर सबके अन्त में सदाशिव-लोक कहा गया है । इस प्रकार पचपन लोक होते हैं । हे प्रिये! उनमें क्रम से भिन्न-भिन्न कालियाँ रहती हैं । वे उन लोकों की अधिष्ठात्री कही गयी हैं ॥ ११०-१२१ ॥

[भावनान्यासस्य बीजानि]

अतः परं पुनर्बीजं क्रमेणैव निशामय ।

एकैकं मन्त्रमध्यस्थं संवर्तकविवर्तकौ ॥ १२२ ॥
पारीन्द्रश्च शुभंयुश्च जैमनादिद्वयं ततः ।
धमिल्लः संबलाद्यश्च विवत्सादिद्वयं तथा ॥ १२३ ॥
संयोगश्च वियोगश्च पिप्पलो विकलोऽपि च ।
विजम्भोत्तानसंज्ञौ च सञ्जीवन्यादिपूर्विका ॥ १२४ ॥
विपक्षश्च विरागश्च कैतवातङ्कनामकौ ।
संहारिणी च विघटी चोत्क्रमादिद्वयं ततः ॥ १२५ ॥
विघ्नः स्वातिश्च यमलादिद्वयं तदनन्तरम् ।
मालोत्सर्गावेषणादिद्वितयं चान्त एव च ॥ १२६ ॥
ज्योत्स्नाग्राहग्रहाश्चापि तपनो वर्द्धनी तथा ।
समाधानादिसर्वस्वादिचतुष्टयमेव च ॥ १२७ ॥
शुद्धनिद्रादिचत्वारि गुणमूले च वारुणी ।
इति ते भावनान्यासः समासादुपवर्णितः ॥ १२८ ॥

भावनान्यास के बीज—इसके बाद मन्त्रों के मध्य में स्थित एक-एक बीज को क्रम से सुनो । संवर्तक विवर्तक पारीन्द्र शुभम्यु जैमन आदि दो, धम्मिल्ल संबलाद्य, विवत्स आदि दो, संयोग वियोग पिप्पल विकल विजम्भ उत्तान आदि सञ्जीवनी विपक्ष विराग कैतव आतङ्क संहारिणी विघटी, उत्क्रम आदि दो उसके बाद विघ्न स्वाति, यमल आदि दो उसके बाद माला उत्सर्ग, आवेषण आदि दो अन्त ज्योत्सना ग्राह ग्रह तपन वर्द्धनी समाधान आदि, सर्वस्व आदि चार, शुद्धनिद्रा आदि चार, गुण मूल वारुणी । इस प्रकार यह संक्षेप में तुमको भावनान्यास बतलाया गया ॥ १२२-१२८ ॥

[भावनान्यासमहिम्नः वर्णनम्]

विस्तरेण पुनर्वक्तुं मम शक्तिर्न विद्यते ।
न्यासास्तु बहवः सान्त न पुनर्भावनासमाः ॥ १२९ ॥
देवत्वदात्री देवानां सिद्धानां सिद्धिदायिनी ।
ऋषीणां ध्यानशीलानामेषैव हि परायणम् ॥ १३० ॥
ज्ञात्वेथमस्या माहात्म्यं यत्नमस्यां समाचरेत् ।
अनया साधकः सिद्धिभागी भवति निश्चितम् ॥ १३१ ॥
नित्यत्वेनोदिता चैषा विरक्तानां सुरेश्वरि ।
गृहिणां च तथा काम्या द्वयोर्नैमित्तिका सदा ॥ १३२ ॥

भावना न्यास की महिमा—इस न्यास की महिमा का विस्तार से वर्णन करने के लिये मेरे पास शक्ति नहीं है । न्यास तो बहुत से हैं, लेकिन भावना के समान कोई नहीं है । यह भावना देवताओं को देवत्व प्रदान करने वाली और सिद्धों को सिद्धि देने वाली है । ध्यानशील ऋषियों का यह अन्तिम आश्रयस्थल है । इसका

इस प्रकार का माहात्म्य जानकर इसके विषय में प्रयत्न करना चाहिये। इसके द्वारा साधक निश्चित रूप से सिद्धिभाक् होता है। हे सुरेश्वरि! विरक्तों के लिये यह नित्य करणीय है। गृहस्थों के लिये काम्य है एवं विरक्त एवं गृहस्थ दोनों के लिये यह नैमित्तिक भी है ॥ १२९-१३२ ॥

अयने चन्द्रसूर्योपरागे चैव युगादिषु ।
शारदीयासु पूजासु वासन्तीष्वपि पार्वति ॥ १३३ ॥
मन्वन्तरासु सर्वासु संक्रान्तिद्वादशस्वपि ।
चतुर्दश्यामथाष्टम्यां पुण्याहेष्वितरेषु च ॥ १३४ ॥
तथा सर्वेषु पीठेषु तीर्थेष्वपि विशेषतः ।
कर्तव्यो भावनान्यासः कालीसन्तोषकारिभिः ॥ १३५ ॥
विनैनां मानसी पूजा न कदापि फलावहा ।
भावना च समाधिश्च ध्यानमध्यात्मचिन्तनम् ॥ १३६ ॥
पर्यायवाचकाः शब्दाश्चत्वारः परिकीर्तिताः ।
चतुर्भिरुच्यते योगस्तं कुर्वन् योग्युदीर्यते ॥ १३७ ॥
योगी वा कल्पसंस्थायी शिवे वापि विलीयते।
शिव एव भवेत् साक्षात् भावनान्यासभावनात्॥ १३८ ॥
कठिनत्वाद् दुरूहत्वात् नैनां कुर्वन्ति पामराः ।
विज्ञा एव हि कुर्वन्ति ज्ञात्वास्याः फलमुत्तमम्॥ १३९ ॥
किमस्याः फलबाहुल्यकथनेन सुरेश्वरि ।

हे पार्वति! सूर्य के अयनपरिवर्तन, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, युगों के आदि में (अथवा जन्म के आदि अर्थात् जन्मदिन पर) शारदीय एवं वासन्ती पूजाओं में, समस्त मन्वन्तरों में, बारह संक्रान्तियों में, चतुर्दशी अष्टमी एवं अन्य पर्व दिनों में, समस्त पीठों सभी तीर्थों में काली को सन्तुष्ट करने वालों को यह भावनान्यास विशेष रूप से करना चाहिये। इसके बिना मानसी पूजा कदापि सफल नहीं होती। भावना, समाधि, ध्यान और अध्यात्मचिन्तन ये चारो शब्द पर्यायवाची कहे गये हैं। चारो को मिला कर योग कहा जाता है। उसको करने वाला योगी कहलाता है। ऐसा योगी या तो कल्पपर्यन्त जीवित रहता है या शिव में विलीन हो जाता है। भावनान्यास की भावना से वह साक्षात् शिव हो जाता है। पामर लोग कठिन और दुरूह होने के कारण इसको नहीं करते। इसके उत्तम फल को जानकर विज्ञानी लोग ही इसको करते हैं। हे सुरेश्वरि! इसके फलाधिक्य कथन से क्या लाभ? (अर्थात् यह समस्त फलदायक है) ॥ १३३-१३९ ॥

[समयन्यासोद्देशः तस्य ऋष्यादिनिर्देशश्च]

प्रकृतं समयन्यासं निबोधातः परं वरम् ॥ १४० ॥
एषोऽपि भावनान्याससमानः परिकीर्तितः ।

ऋषिरर्वावसुस्त्वस्य छन्दो गायत्र्युदीरिता ॥ १४१ ॥
गुह्यकाली देवता च कर्णिकाबीजमुच्यते ।
फेत्कारी शक्तिराख्याता कालरात्रिस्तु कीलकम् ॥ १४२ ॥
विनियोगोऽस्य समयपालने परिकीर्तितः ।

समय न्यास और उसके ऋषि आदि—इसके बाद प्रकरणप्राप्त परमश्रेष्ठ समयन्यास को जानो । यह भी भावनान्यास के समान ही कहा गया है । इसके ऋषि अर्वावसु, छन्द गायत्री कही गयी है । देवता गुह्यकाली, बीज कर्णिका कहा जाता है । शक्ति फेत्कारी और कीलक कालरात्रि कही गयी है । इसका विनियोग समय के पालन में होता है ॥ १४०-१४२ ॥

[समयन्यासस्य महत्त्वनिर्देशः]

एष कौलाचारवतां नित्यत्वेनोदितः प्रिये ॥ १४३ ॥
अनुकल्पवतां नैमित्तिकत्वेन प्रकाशितः ।
काम्यत्वेनोदितोऽन्येषां न्यासोऽयं समयाभिधः ॥ १४४ ॥

समय न्यास का महत्त्व—हे प्रिये! कौलाचार वालों के लिये यह नित्य करणीय कहा गया है किन्तु अनुकल्प (= पञ्च मकार के बदल अन्य वस्तु का प्रयोग करने) वालों के लिये यह नैमित्तिक कहा गया है । अन्य लोगों के लिये यह समय नामक न्यास काम्य कहा गया है ॥ १४३-१४४ ॥

[समयन्यासोद्धारः]

अत उद्धारमेतस्य समाकलय भामिनि ।
आदौ तु पञ्चबीजानि चलानि प्रतिमन्वपि ॥ १४५ ॥
ततस्तन्नामवचनं प्रतिमन्त्रं शुचिस्मिते ।
मूर्त्येति द्व्यक्षरपदं सर्वत्रैव स्थिरं मतम् ॥ १४६ ॥
प्रतिमन्त्रं पुनस्तत्तन्नाम तस्यानु चञ्चलम् ।
षडक्षरमिति स्थाष्णु ततः समयपालिनी ॥ १४७ ॥
पुनस्तत्तत्पदं देवि चरिष्णु प्रतिमन्त्रकम् ।
ततोऽम्बेति पदं स्थाष्णु तैरस्याः सन्धिरीरितः ॥ १४८ ॥
प्रसीदतां वह्निजाया षड्वर्णानि स्थिराणि हि ।
इति साधारणोद्धारः समयस्य प्रकाशितः ॥ १४९ ॥

समयन्यास का उद्धार—हे भामिनि! अब इसका उद्धार सुनो । सबसे पहले प्रत्येक मन्त्र में पाँच चलायमान बीज होते हैं । हे शुचिस्मिते! उसके बाद प्रत्येक मन्त्र में तत्तत् नाम कहना चाहिये । 'मूर्त्या' यह दो अक्षर वाला पद सर्वत्र स्थायी रहता है । पुनः उसके बाद प्रत्येक मन्त्र में तत्तत् नाम चञ्चल और छह अक्षर (= समय पालनी) स्थायी है । हे देवि! पुनस्तत् पद प्रत्येक मन्त्र में अस्थायी है ।

इसके बाद 'अम्बा' यह पद स्थायी हैं। उनके साथ इस अम्बा पद की सन्धि भी कही गयी हैं। 'प्रसीदताम्' तथा वह्निजाया (= स्वाहा) ये छह अक्षर स्थिर हैं। समय न्यास का यह साधारण उद्धार प्रकाशित किया गया ॥ १४५-१४९ ॥

[समयन्यासस्य विशेषेणोद्धारः]

इदानीं तु विशेषेण कथयाम्यवधारय ।
प्रणवो वाग्भवः पाशः कला शर्वश्च सुन्दरि ॥ १५० ॥
माया लक्ष्मीः कामवधूयोगिन्यस्तदनन्तरम् ।
काली क्रोधश्च रावश्च प्रासादो गारुडोऽपि च ॥ १५१ ॥
नृसिंहो भैरवी प्रेतदस्त्रशक्तय एव च ।
केशरः काकिनी नेमिश्छन्दो विश्वस्तथैव च ॥ १५२ ॥
भ्रामरी च प्रचण्डा च डाकिनी तदनन्तरम् ।
केकराक्षी कालरात्रिः सप्तमस्तु(पञ्चमस्तु?)ततः परम् ॥ १५३ ॥
भोगः सृष्टिश्च फेत्कारी त्रेता कृत्या ततोऽपि च ।
विजयो मन्दसम्मोहौ संहारः पतनादिमः ॥ १५४ ॥
ततश्च वेणुसान्वक्षमौञ्जीसूत्राणि पार्वति ।
गायत्री कर्णिका चापि शृङ्खलौपह्वरे तथा ॥ १५५ ॥
नान्दिकश्च पुरुश्चूडामणिः पिच्छा तथैव च ।
आदेशश्च छटा चैव तत आयः समेखलः ॥ १५६ ॥
कुण्डं गर्भश्च दीपश्च द्वीपजम्भौ ततः परम् ।
ककुत् षडङ्गपूर्वा च शैशुकः सर्वपश्चिमः ॥ १५७ ॥

समयन्यास का विशेष उद्धार—अब विशेष रूप से उद्धार कह रहा हूँ, सुनो। हे पार्वति! हे सुन्दरि! प्रणव वाग्भव पाश कला शर्व, माया, लक्ष्मी काम वधू योगिनी उसके बाद काली क्रोध राव प्रासाद गारुड, नृसिंह भैरवी प्रेत दस्त्र शक्ति केशर काकिनी नेमि छन्द विश्व, भ्रामरी प्रचण्डा हाकिनी केकराक्षी कालरात्रि, सातवाँ मन्त्र भोग सृष्टि फेत्कारी त्रेता कृत्या, उसके बाद विजय मन्द सम्मोह संहार पतन इसके बाद हे पार्वति! वेणु सानु अक्ष मौञ्जी सूत्र, गायत्री कर्णिका शृङ्खला औपह्वर नान्दिक, पुरु चूडामणि पिच्छा आदेश छटा उसके बाद आय मेखला कुण्ड गर्भ दीपक, द्वीप जम्भ ककुत् षडङ्ग सबके अन्त में शैशुक कहना होता है ॥१५०-१५७॥

ततो डमरुनाराचशूलानि परमेश्वरि ।
अर्द्धचन्द्रः क्षुरप्रश्च सुकृतं दुष्कृतं ततः ॥ १५८ ॥
पद्मस्ततश्च कुशिको व्ययः शेषे प्रतिष्ठितः ।
संदंशकश्च नालीको भुशुण्डी च गदा तथा ॥ १५९ ॥
प्रासस्ततो नु वृत्तं च तुङ्गखण्डे सवारुणी ।

कुब्जो वैकारिकश्चापि मन्दरः सिन्धुरेव च ॥ १६० ॥
महेन्द्रश्चेश्वरश्चाथ सुरसः समरोऽपि च ।
रागसारसभारुण्डाः संहारी तदनन्तरम् ॥ १६१ ॥
नादान्तकश्चामरं च व्यजनं विधृतिस्तथा ।
भद्रिका च तथा तन्द्रा कुटिला रञ्जिनी घटी ॥ १६२ ॥
सम्भूतिश्चतुरस्त्रं च त्र्यस्त्रं विरतिरेव च ।
श्रीकण्ठश्च परेष्टी च व्रतं निर्मोक एव च ॥ १६३ ॥
वेतण्डोऽपि ह्यौपदेयो मारण्डः सविनादकः ।
विमर्दः शेखरश्चापि विरसो दाक्षिकोऽपि च ॥ १६४ ॥
सौमतं च प्रतानं च विदिक् सर्वस्य पश्चिमा ।
मौलिञ्जश्च विरूपश्च तथा चैवापरान्तकः ॥ १६५ ॥
प्रकरी बिन्दुकौ चापि विजया तदनन्तरम् ।
ततो वैटपकौलुञ्चौ षट्चक्रादिद्वयं तथा ॥ १६६ ॥
सप्तविंशतिमन्त्राणामिति बीजान्यनुक्रमात् ।
उक्तानि ते वरारोहे मूर्तेः पूर्वपदं शृणु ॥ १६७ ॥

हे परमेश्वरि! इसके बाद डमरु नाराच शूल अर्धचन्द्र क्षुरप्र, सुकृत दुष्कृत, पद्म कुशिक और अन्त में व्यय स्थित है । सन्दंश नालीक भुशुण्डी गदा प्रास, उसके पश्चात् वृत्त तुङ्ग खण्ड वारुणी कुब्ज, वैकारिक मन्दर सिन्धु महेन्द्र ईश्वर, फिर सुरस समर राग सार भारुण्ड, संहारी के बाद नादान्त चामर व्यजन विधृति, भद्रिका तन्द्रा कुटिला रञ्जिनी घटी, सम्भूति चतुरस्त्र त्र्यस्त्र विरति श्रीकण्ठ, परेष्टी व्रत निर्मोक वेतण्ड औपदेय, मारण्ड विनाद विमर्द शेखर विरस, दाक्षिक सौमत प्रतान सबके अन्त में विदिशा मौलिञ्ज, विरूप अपरान्तक प्रकरी बिन्दु उसके पश्चात् विजया, इसके बाद वैटप कौलुञ्च तथा षट्चक्र आदि दो इस प्रकार सत्ताईस मन्त्रों के बीज क्रम से तुमको बतलाये गये । अब 'मूर्ति' के पूर्व पदों को सुनो ॥ १५८-१६७ ॥

ऋग्वेदश्च यजुर्वेदः सामवेदस्ततः परम् ।
अथर्ववेदस्तदनु ततः सत्ययुगं प्रिये ॥ १६८ ॥
त्रेतायुगं ततो द्वापरयुगं परिकीर्तितम् ।
ततः कलियुगं तस्यानु गायत्री प्रकीर्तिता ॥ १६९ ॥
त्रय्यध्ययनमस्यानु षट्कर्म तदनन्तरम् ।
वैखानसश्च वैराग्यं परमात्मा च कौलिकी ॥ १७० ॥
चण्डेश्वरी कुब्जिका च काली बाभ्रव्यपि प्रिये।
त्रिपुरा सुन्दरी राजराजेश्वर्यप्यनन्तरम् ॥ १७१ ॥
सदाशिवोऽथ हिरण्यगर्भो मन्त्रस्तथैव च ।
धर्मः पापमदृष्टं च सप्तविंशतिरीरिता ॥ १७२ ॥

एभिः पदैर्मूर्तिपदं विगृह्य वरवर्णिनि ।
टाबन्तप्रत्ययेनापि ततः सम्भावयेदिमाम् ॥ १७३ ॥
एतत्पदानु ये शब्दाः भवन्ति क्रमशः पुनः ।
ते वै समयपालिन्याः पूर्वोपपदताजुषः ॥ १७४ ॥
तत्तद्धर्माभिधेयत्वकार्यत्वप्रतिपादकाः ।
क्रमेण तान् प्रवक्ष्यामि तत्र चेतो निवेशय ॥ १७५ ॥
सप्तविंशतिसंख्याका धर्मिधर्माश्रयाः पृथक् ।

ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेद उसके बाद हे प्रिये! सत्ययुग त्रेतायुग द्वापरयुग कहा गया है । कलियुग उसके अनन्तर गायत्री कही गयी है । त्रय्यध्ययन षट्कर्म वैखानस वैराग्य परमात्मा कौलिकी चण्डेश्वरी कुब्जिका काली हे प्रिये! इसके बाद बाभ्रवी त्रिपुरा सुन्दरी राजराजेश्वरी सदाशिव हिरण्यगर्भ मन्त्र धर्म पाप अदृष्ट ये सत्ताईस पद कहे गये । हे वरवर्णिनि! इन पदों के साथ 'मूर्ति' पद को जोड़कर टाबन्त प्रत्यय के साथ भी जोड़कर फिर इसकी सम्भावना करनी चाहिये । इस पद के बाद पुनः जो शब्द आते हैं क्रमशः उनको 'समयपालिनी' पद के पूर्व जोड़ना चाहिये। ये पद तत्तत् धर्म और तत्तत् कार्य के प्रतिपादक के रूप में जुटते हैं । उनको मैं क्रम से बतला रहा हूँ उसमें चित्त लगाओ । ये सत्ताईस संख्या वाले तथा अलग-अलग धर्मी और धर्मवाची हैं ॥ १६८-१७५- ॥

[१]तत्र केचिद् धर्मिभूताश्चान्ये धर्मस्वरूपकाः ।
होत्रमाध्वर्यवं चापि तत औद्गात्रमेव च ॥ १७६ ॥
कृत्या शान्तिरिति ह्येका तपो ज्ञानं ततः परम्।
यज्ञो दानं च ब्राह्मण्यं ब्रह्मचर्यं तथैव च ॥ १७७ ॥
गार्हस्थ्यं तदनु ज्ञेयं वानप्रस्थत्वमेव च ।
सन्न्यासश्च ततश्चैवोपनिषत् कुलमेव च ॥ १७८ ॥
पूर्वाम्नायश्च तदनु पश्चिमाम्नाय एव च ।
उत्तराम्नाय इत्येवं दक्षिणाम्नाय एव च ॥ १७९ ॥
ऊर्ध्वाम्नायस्तथैवाध आम्नायः परिकीर्तितः ।
षडाम्नायश्चतुर्वेदः सिद्धिः स्वर्गस्तथैव च ॥ १८० ॥
नरकः कर्म चेत्येव सप्तविंशतिरीरिताः ।
एते समयपालिन्याः पूर्वशब्दाः सुरेश्वरि ॥ १८१ ॥
अधुनाम्बापदस्यापि पूर्वशब्दान्निशामय ।
ज्वालिनी विमला चैव प्रचण्डा विकटा तथा ॥ १८२ ॥
पिङ्गला मोक्षदा चैव स्वाहा श्रद्धा च मोदिनी ।

---

[१] एतदग्रिमैकापंक्तिस्त्रुटिता ।

विजया च ततः कपालिनी तदनु चण्डिका ॥ १८३ ॥
सुभगा भ्रामरी चापि मोहिनी तदनन्तरम् ।
महाकाली कालरात्रिश्चण्डघण्टा तथैव च ॥ १८४ ॥
कुरुकुल्ला भीषणा च तेजोवत्यपि च प्रिये ।
भगमालिन्यपि ततश्चर्चिका परिकीर्तिता ॥ १८५ ॥
महोदरी ततः संहारिणी चापि दिगम्बरा ।
महामारी चेति सप्तविंशतिः परिकीर्तिता ॥ १८६ ॥
सर्वैरेभिः पदैरम्बापदस्यापि च विग्रहः ।

उनमें कुछ धर्मी हैं अन्य धर्मस्वरूप वाले हैं । वे पद हैं—होत्र आध्वर्यव औद्गात्र कृत्याशान्ति तप ज्ञान उसके बाद यज्ञ दान ब्राह्मण्य ब्रह्मचर्य गार्हस्थ्य उसके बाद वानप्रस्थ जानना चाहिये । संन्यास उपनिषत् कुल पूर्वाम्नाय उसके बाद पश्चिमाम्नाय उत्तराम्नाय दक्षिणाम्नाय ऊर्ध्वाम्नाय उसी प्रकार अधराम्नाय कहा गया है। षडाम्नाय चतुर्वेद सिद्धि स्वर्ग नरक कर्म ये सत्ताईस कहे गये । हे सुरेश्वरि! ये 'समयपालिनी' के पूर्ववर्ती शब्द हैं । अब 'अम्बा' शब्द के भी पूर्ववर्त्ती शब्दों को सुनो । ज्वालिनी विमला प्रचण्डा विकटा पिङ्गला मोक्षदा स्वाहा श्रद्धा मोदिनी विजया कपालिनी उसके बाद चण्डिका सुभगा भ्रामरी मोहिनी उसके बाद महाकाली कालरात्रि चण्डघण्टा उसी प्रकार कुरुकुल्ला भीषणा तेजोवती हे प्रिये! भगमालिनी चर्चिका कही गयी है । महोदरी उसके बाद संहारिणी दिगम्बरा और महामारी इस प्रकार सत्ताईस पद कहे गये । इन सभी पदों के साथ 'अम्बा' पद का संयोजन होता है ॥ १७६-१८६- ॥

[समयन्यासस्य स्थाननिर्देशः]

न्यसनीयस्थलान्येवमतः परमितः शृणु ॥ १८७ ॥
ब्रह्मरन्ध्रं मुखं कर्णौ कपोलौ नयने तथा ।
भ्रुवौ नासापुटे चैव चिबुकं च हनू अपि ॥ १८८ ॥
गलः स्कन्धौ करौ वक्षः पार्श्वौ द्वौ चरणद्वयम्।
लिङ्गं व्यापकमित्येतत् स्थानं सर्वं मयोदितम् ॥ १८९ ॥
ईदृशः समयन्यासस्त्रिषु लोकेषु दुर्लभः ।
कर्तव्यो भक्तिभावेन फलाधिक्यमभीप्सता ॥ १९० ॥
नित्यनैमित्तिकत्वादिविचारः पूर्वमीरितः ।

समयन्यास के स्थान—यहाँ से न्यसनीय स्थलों को सुनो । १. ब्रह्मरन्ध्र २. मुख ३-४. दोनों कर्ण ५-६. दोनों कपोल ७-८. दोनों नेत्र ९-१०. दोनों भौंहें ११-१२. दोनों नासापुट १३. चिबुक १४-१५. दोनों हनु १६. गला १७-१८. दोनों कन्धे १९-२०. दोनों हाथ २१. वक्ष २२-२३. दोनों पार्श्व २४-२५. दोनों पैर २६. लिङ्ग और २७. व्यापक—इस प्रकार मैने स्थानों को बतलाया । इस प्रकार का समयन्यास

तीन लोकों में दुर्लभ है । फलाधिक्य चाहने वाला इसको भक्तिभाव से करे । इसका नित्य नैमित्तिक होने का विचार पहले कहा जा चुका है ॥ १८७-१९०- ॥

[सृष्टिन्यासोद्देशः तस्य च ऋष्यादिनिर्देशः]

सृष्टिन्यासमथो वक्ष्ये मुख्याङ्गं न्यासकर्मणि ॥ १९१ ॥
यद् यद् रूपेण सा देवी यां यां सृष्टिं चकार ह ।
सर्वं तदस्मिन् न्यासे तु वर्तते परमेश्वरि ॥ १९२ ॥
देव्यास्तु पञ्चाकारायाः आद्य आकार उच्यते ।
तस्य प्रधानमङ्गं हि विदुरेनं विपश्चितः ॥ १९३ ॥
सृष्टिन्यासः कौलिकानां काम्यत्वेन व्यवस्थितः ।
श्रुत्यध्वचारिणां नित्यत्वेन वै परिकीर्तितः ॥ १९४ ॥
उभयोरपि नैमित्तिकत्वेन परिकीर्तितः ।
सृष्टिन्यासस्य देवेशि जमदग्निऋषिर्मतः ॥ १९५ ॥
अत्यष्टिश्छन्द आख्यातं गुह्यकाली च देवता ।
मणिमाला तु बीजं स्यात् कर्णिका शक्तिरुच्यते ॥ १९६ ॥
फेत्कारी कीलकं प्रोक्तं विनियोगस्तु सिद्धये ।

सृष्टिन्यास और उसके ऋषि आदि—अब न्यासकर्म में मुख्य अङ्ग स्वरूप सृष्टिन्यास को बतलाऊँगा । हे परमेश्वरि! देवी ने जिस-जिस रूप से जिस-जिस सृष्टि को किया वह सब इस न्यास में है । पाँच आकार वाली देवी का यह प्रथम आकार कहा जाता है । इसको विद्वान् लोग उसका प्रधान अङ्ग मानते हैं । कौलाचार वालों के लिये सृष्टिन्यास काम्य माना गया है । वेदानुसरणकर्त्ताओं के लिये यह नित्यकरणीय बतलाया गया है । जहाँ तक इसके नैमित्तिक होने का प्रश्न है यह दोनों के लिये है । हे देवेशि! इस न्यास के ऋषि जमदग्नि कहे गये हैं । छन्द अत्यष्टि और देवता गुह्यकाली हैं । बीज मणिमाला और शक्ति कर्णिका कही जाती है । फेत्कारी बीज को कीलक कहा गया है । इसका प्रयोग सिद्धि के लिये बतलाया गया है ॥ १९१-१९६- ॥

[सृष्टिन्यासस्य सामान्योद्धारः]

अत उद्धारमेतस्य समाकलय भामिनि ॥ १९७ ॥
द्वात्रिंशत्संख्यका मन्त्रा एतस्मिन् न्यास ईरिताः ।
तत्रादौ सप्त बीजानि भिन्नभिन्नानि पार्वति ॥ १९८ ॥
पुनर्विभिन्ननामानि व्यस्तानां तदनन्तरम् ।
एतैर्हि रूपशब्दस्य विग्रहः परिकथ्यते ॥ १९९ ॥
टाबन्तप्रत्ययेनासौ कथितः परमेश्वरि ।
पदार्थानां विभिन्नानां नामानि तदनन्तरम् ॥ २०० ॥

सृष्टिकर्त्रीतिशब्दस्य तैः समासः प्रकल्प्यते ।
प्रतिमन्त्रं स्थिरा ज्ञेया पाश्चात्त्या चतुरक्षरी ॥ २०१ ॥
पदानि भिन्नभिन्नानि पुनरप्येवमीश्वरि ।
देवीशब्दस्य तैः शब्दैः सामान्यमिलनं तथा ॥ २०२ ॥
सिद्धिं प्रयच्छतु पदात् प्रणवश्च शिरस्तथा ।
एतानि नव वर्णानि प्रतिमन्त्रं स्थिराणि हि ॥ २०३ ॥
इति सामान्यतः प्रोक्त उद्धारः कमलानने ।

सृष्टिन्यास का सामान्य उद्धार—हे भामिनि! इसके बाद इसका उद्धार सुनो । इस न्यास में बत्तीस मन्त्र बतलाये गये हैं । हे पार्वति! उसमें पहले भिन्न-भिन्न सात बीज होते हैं । फिर अलग-अलग लोगों के भिन्न-भिन्न नाम होते हैं । इनके साथ 'रूप' शब्द का संयोजन होता है । हे परमेश्वरि! यह विग्रह टाबन्त प्रत्यय के साथ कहा गया है । उसके बाद विभिन्न पदार्थों के नाम होते हैं । उनके साथ 'सृष्टिकर्त्री' शब्द का समास होता है । प्रत्येक मन्त्र के अन्त में पाश्चात्य चतुरक्षरी (= इति न्यासः) स्थायी जानना चाहिये । हे ईश्वरि! पुनः भिन्न-भिन्न पद देने चाहिये । उन शब्दों के साथ 'देवी' शब्द का सामान्य मिलन होता है । 'सिद्धिं प्रयच्छतु' के पश्चात् प्रणव और शिर कहना चाहिये । ये नव वर्ण (= सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा) प्रति मन्त्र स्थायी रहते हैं । हे कमलानने! इस प्रकार सामान्य उद्धार कहा गया ॥ १९७-२०३- ॥

[सृष्टिन्यासस्य विशेषोद्धारः]

विशेषोद्धारमधुना समाकलय सादरा ॥ २०४ ॥
पाशं कामं रमां मायां कालिकाङ्कुशगारुडान् ।
प्रणवं शाकिनीं विश्वं रुद्रवधूचण्डयोगिनीः ॥ २०५ ॥
वेदीं जरां खलं चैव कुक्कुटं हाकिनीमपि ।
संहितां विधिमस्यानु नाभसं लघुमेव च ॥ २०६ ॥
अर्चामिद्वयमालिख्य ध्यानचञ्चू च कौणपी ।
सारस्वतं च प्रासादं क्षेत्रपालं सकिन्नरम् ॥ २०७ ॥
अमृतावेशसोमाश्च ततः परमुदीरयेत् ।
दस्त्रं शक्तिं च नक्षत्रं विद्युतं तदनन्तरम् ॥ २०८ ॥
ततः समुच्चरेद् देवि कुलिकप्रेतभैरवीः ।
भारुण्डां काकिनीं नेमिं छन्दः कालविषे क्षमाम्॥ २०९ ॥
कापालमथ गोकर्णं सुरभीं रौरवं तथा ।
मन्त्रवर्णौ सम्पुटं च वैकारिकमतः परम् ॥ २१० ॥
मन्दारसिन्धू तदनु महेन्द्रं चेश्वरं तथा ।
रम्भावट्यौ च देवेशि दण्डं गामंशुमेव च ॥ २११ ॥

शुल्कं राकां मुण्डमेषौ शिखां प्राग्भवमेव च ।
कल्याणसाधकौ चापि मठीं व्रध्नं रयादिमग् ॥ २१२ ॥
कल्पमुक्ता महामुक्त्वा क्रमं नृहरिमेव च ।
फैरवं च कुमारीं च द्वीपजम्भषडङ्गकान् ॥ २१३ ॥

सृष्टिन्यास का विशेष उद्धार—अब आदर के साथ तुम इसका विशेष उद्धार सुनो । पाश काम रमा माया कालिका अङ्कुश गारुड, प्रणव शाकिनी विश्व रुट् वधू चण्ड योगिनी, वेदी जरा खल कुक्कुट हाकिनी संहिता विधि, इसके बाद नाभस लघु अर्चा अद्वय ध्यान चञ्चु कौणपी, सारस्वत प्रासाद क्षेत्रपाल किन्नर उसके बाद अमृत आवेश सोम कहना चाहिये । दस्र शक्ति नक्षत्र उसके बाद विद्युत् उसके बाद हे देवि! कुलिक प्रेत और भैरवी कहना चाहिये । भारुण्डा काकिनी नेमि छन्द काल विष क्षमा, कापाल गोकर्ण सुरभि रौरव मन्त्र वर्ण सम्पुट, उसके बाद वैकारिक मन्दार सिन्धु उसके पश्चात् महेन्द्र ईश्वर रम्भा वटी, दण्ड गो अंशु कहना पड़ता है । शुल्क राका मुण्ड मेष, शिखा प्राग्भव कल्याण साधक मठी व्रध्न रय कल्प, मुक्ता महा क्रम नरसिंह फैरव कुमारी द्वीप जम्भ, षडङ्ग कहना चाहिये ॥ २०४-२१३ ॥

दक्षिणाककुदौ सङ्घातं शैशुकमतः परम् ।
वेणुं सानुं तथैवाक्षं मौञ्जीं सूत्रं ततः परम् ॥ २१४ ॥
सन्धानं सिञ्जिनीं चापि नान्दीबलिपृथूनपि ।
ह्रस्वं नदं सात्वतं च तारकां सर्वशेषगाम् ॥ २१५ ॥
आयं समेखलं कुण्डं गर्भदीपौ चिताध्वजौ ।
वृत्ततुङ्गाखण्डपुण्यचारुसन्तानकुब्जकान् ॥ २१६ ॥
पुरुचूडामणी पिच्छा खातादेशौ तलच्छटे ।
प्रभञ्जनाद्यानि कालरात्र्यन्तानि ततः परम् ॥ २१७ ॥
प्रहारिणं कुडुक्कं च करोटी वात्यया सह ।
वारीं सिद्धिफलं शिल्पं विजयं मन्दमेव च ॥ २१८ ॥
सम्मोहप्रलयौ चापि पतनं सयुगान्तकम् ।
ससंहारं ञ देवेशि ततोऽनाहतमेव च ॥ २१९ ॥
भोगं सृष्टिं च फेत्कारीं त्रेतां तदनु कीर्तयेत् ।
करालीमथ कृत्यां च परेष्टिव्रतपूर्त्तकान् ॥ २२० ॥
निर्मोकोत्तंसवेतण्डान् गायत्रीकर्णिके ततः ।
शृङ्खलौपह्वरे नान्दिकं तर्जनिकटङ्कटे ॥ २२१ ॥
वैरसं दाक्षिकं सौमतं प्रतानं विदिग्युतम् ।
वैटपं चापि कौलुञ्चं भद्रिकां तन्द्रया युताम् ॥ २२२ ॥
कुटिलां रञ्जिनीमुक्त्वा घटीं सङ्कुलमातृकाम् ।

सुकृतं दुष्कृतं पद्मं कुशिकं व्ययमेव च ॥ २२३ ॥
विजयां याम्यमपि च संहारिणमतः परम् ।
नादान्तकं चम्मरं च व्यञ्जनं विधृतिस्तथा ॥ २२४ ॥
ततो नु वीरवेतालौ सुरसः समरस्तथा ।
रागसारसभौवोग्रपुटकानि ततः परम् ॥ २२५ ॥
मौलिञ्जं च विरूपं च अपरान्तमतः परम् ।
प्रकरीबिन्दुकौ चापि चर्पटं मणिमालया ॥ २२६ ॥
सम्भूतिं चतुरस्त्रं च त्र्यस्त्रं विरतिमेव च ।
श्रीकण्ठं हारिणीमुत्कोचिनीमपि ततः परम् ॥ २२७ ॥
औपदेयं च भारुण्डं विनादं सविमर्दकम् ।
शेखरं त्रिपुरां चापि जीवनीं सर्वशेषगाम् ॥ २२८ ॥
इत्यब्धिकरनासत्यसंख्याकानि भवन्ति हि ।
बीजानि परमेशानि सर्वाणि मिलितानि हि ॥ २२९ ॥
प्रत्येकं सप्तसप्तैव देयानि प्रतिमन्त्रकम् ।
अतः परं तु नामानि शृण्वेतस्मादनन्तरम् ॥ २३० ॥

दक्षिणा ककुद सङ्घात शैशुक उसके पश्चात् वेणु स्नानु, अक्ष मौञ्जी सूत्र उसके बाद सन्धान सिञ्जिनी नान्दी बलि, पृथु ह्रस्व नद सात्वत सबके अन्त में तारका आय मेखला, कुण्ड गर्भ दीप चिता ध्वज वृत्त तुङ्ग, अखण्ड पुण्य चारु सन्तान कुब्जक पुरु चूडामणि, पिच्छा खाता देश तल छटा उसके बाद प्रभञ्जन से लेकर कालरात्रि तक (खफ्रां खफ्रीं खफ्रूं खफ्रें खफ्रैं खफ्रों खफ्रौं—ये सात बीज), प्रहारी कुडुक्क करोटी वात्या वारी सिद्धिफल शिल्प, विजय मन्द सम्मोह प्रलय पतन युगान्त संहार, हे देवेशि! उसके बाद अनाहत भोग सृष्टि फेत्कारी उसके बाद त्रेता कहना चाहिये । फिर कराली कृत्या, परेष्टि व्रत पूर्त निर्मोक उत्तंस वेतण्ड गायत्री, कर्णिका इसके पश्चात् शृङ्खला औपह्वर नान्दिक तर्जनी कटङ्कटा वैरस, दाक्षिक सौमत प्रतान विदिक् वैटप कौलुञ्च भद्रिका, तन्द्रा कुटिला रञ्जिनी को कहकर घटी सङ्कुलमातृका सुकृत दुष्कृत, पद्म कुशिक व्यय विजया याम्य इसके बाद संहारी नादान्तक, चामर व्यजन और विधृति कहे ।

इसके बाद वीर वेताल सुरस समर, राग सारस भौव उग्र पुटक उसके पश्चात् मौलिञ्ज विरूप, अपरान्त तत्पश्चात् प्रकरी बिन्दु चर्पट मणिमाला सम्भूति चतुरस्त्र, त्र्यस्त्र विरति श्रीकण्ठहारिणी उत्कोचिनी उसके बाद औपदेय भारुण्ड, विनाद विमर्दक शेखर त्रिपुरा सबके अन्त में वर्त्तमान जीवनी इस प्रकार अब्धि = चार, कर = दो, नासत्य = दो, इस प्रकार हे परमेशानि! सब मिलकर दो सौ चौबीस बीजाक्षर होते हैं। एक-एक मन्त्र के साथ सात-सात बीज जोड़ने चाहिये । इसके पश्चात् नामों को सुनो ॥ २१४-२३० ॥

प्रजापतिस्तथा वेदः प्रकृतिस्तदनन्तरम् ।
मायाविवेकौ तदनु वासनासत्त्व(तत्त्व?)मेव च॥ २३१ ॥
रजस्तमस्तथा धर्मो गन्धश्च रसना तथा ।
रूपं स्पर्शश्च शब्दश्च मृत्युः कुण्डलिनी तथा ॥ २३२ ॥
आत्मा पुण्यं च पापं च शरीरं तदनन्तरम् ।
आदिसर्गः स्वेदजश्च जरायुज इतः परम् ॥ २३३ ॥
अण्डजोद्भिज्जमयनं त्रुट्यादिकाल एव च ।
नानादर्शनमस्यानु ततश्चोपनिषन्मता ॥ २३४ ॥
ब्रह्मविद्या गुह्यकाली द्वात्रिंशत् परिकीर्तिताः ।
इदानीं सृष्टिकर्त्रीतो देवि पूर्वपदं शृणु ॥ २३५ ॥
प्रजा यागश्च पुरुषो भोगो मोक्षश्च जन्म च ।
विष्णुर्ब्रह्मा तथा रुद्रः सदाचारस्तथैव च ॥ २३६ ॥
पृथिवी च जलं तेजो वायुराकाशमेव च ।
मारी च नादबिन्दुश्च ज्ञानं स्वर्गस्तथैव च ॥ २३७ ॥
नरकः सुखदुःखं च मानसं तदनन्तरम् ।
ततश्च दंशमशकादिः स्यान् नरपशुस्तथा ॥ २३८ ॥
खगोऽङ्कुरश्च षड्ऋतुः कल्पो नानामतं तथा ।
आत्मप्रकाशः कैवल्यं कोटिब्रह्माण्डमेव च ॥ २३९ ॥
द्वात्रिंशदिति नामानि ससमासानि कारयेत् ।

प्रजापति वेद प्रकृति उसके बाद माया विवेक उसके पश्चात् वासनातत्त्व रजस् तमस् धर्म गन्ध रसना रूप स्पर्श शब्द मृत्यु कुण्डलिनी आत्मा पुण्य पाप शरीर उसके बाद आदिसर्ग स्वेदज जरायुज इसके अनन्तर अण्डज उद्भिज्ज, अयन, त्रुटि आदि काल, नानादर्शन इसके पश्चात् उपनिषत् ब्रह्मविद्या गुह्यकाली—ये बत्तीस नाम कहे गये। हे देवि! अब 'सृष्टिकर्त्री' पद के पूर्ववर्त्ती पदों को सुनो। प्राज याग पुरुष भोग मोक्ष जन्म विष्णु ब्रह्मा रुद्र सदाचार पृथिवी जल तेज वायु आकाश मारी नाद बिन्दु ज्ञान स्वर्गनरक सुखदुःख मानस उसके बाद दंशमशक नरपशु खग अङ्कुर षड्ऋतु कल्प नानामत आत्मप्रकाश कैवल्य कोटिब्रह्माण्ड—इन बत्तीस नामों को समास के साथ कहना चाहिये ॥ २३१-२३९- ॥

अतः परं तु कलय शब्दान् देवीपदादिमान् ॥ २४० ॥
आदावदितिशब्दः स्यात् ततो वेदवती प्रिये ।
चैतन्यभैरवी चापि भोगवत्यथ कथ्यते ॥ २४१ ॥
पूर्णेश्वरी महामोहिन्यन्विता विष्णुमायया ।
ततो दुर्गा पुनश्चण्डवारुणी परिकथ्यते ॥ २४२ ॥
नित्यक्लिन्ना च महिषमर्दिनी त्वरिता तथा ।

वाग्वादिन्युग्रचण्डा च कुब्जिका तदनन्तरम् ॥ २४३ ॥
राजराजेश्वरी कात्यायनी तदनु कथ्यते ।
चण्डयोगेश्वरी चान्नपूर्णा फेत्कार्यपि प्रिये ॥ २४४ ॥
सरस्वती सिद्धिलक्ष्मीस्तथा वै तुम्बुरेश्वरी ।
जयलक्ष्मीश्च धनदा चण्डेश्वर्यप्यनन्तरम् ॥ २४५ ॥
छिन्नमस्ताऽपि तदनु दिगम्बर्यप्यथोदिता ।
मातङ्गी डामरी चापि धूमावत्यनु कीर्त्यते ॥ २४६ ॥
विश्वरूपा सर्वशेषे द्वात्रिंशदिति कीर्तिताः ।

इसके बाद 'देवी' पद के पूर्ववर्त्ती शब्दों को जानो । हे प्रिये! पहले अदिति शब्द इसके बाद वेदवती और चैतन्यभैरवी फिर भोगवती कहा जाता है । पूर्णेश्वरी महामोहिनी जो कि विष्णुमाया से युक्त है । इसके बाद दुर्गा पुनः चण्डवारुणी कहा जाता है । नित्यक्लिन्ना महिषमर्दिनी त्वरिता वाग्वादिनी उग्रचण्डा उसके बाद कुब्जिका राजराजेश्वरी उसके पीछे कात्यायनी चण्डयोगेश्वरी और अन्नपूर्णा हे प्रिये! उसके बाद फेत्कारी भी कहना चाहिये । सरस्वती सिद्धिलक्ष्मी तुम्बुरेश्वरी जयलक्ष्मी धनदा उसके अनन्तर चण्डेश्वरी छिन्नमस्ता तत्पश्चात् दिगम्बरी कही गयी है । मातङ्गी डामरी धूमावती कही जाती है । सबके अन्त में विश्वरूपा इस प्रकार बत्तीस पद कहे गये ॥ २४०-२४६ ॥

[सृष्टिन्यासस्य स्थाननिर्देशः]

अतः परं तु न्यासस्य स्थानानि ह्यवधारय ॥ २४७ ॥
पादौ जङ्घे तथा जानुनी ऊरू वंक्षणौ ततः ।
गुदं लिङ्गं च नाभिश्च जठरं तदनन्तरम् ॥ २४८ ॥
करौ च मणिबन्धौ च कफोणी स्कन्धयुग्मकम्।
ग्रीवा कण्ठोऽथ चिबुकं मुखं नासा सकूर्चका ॥ २४९ ॥
ललाटं च शिरो ब्रह्मरन्ध्रं व्यापकमेव च ।
स्थानानि सृष्टिन्यासस्य कथितानि मया तव ॥ २५० ॥
इत्युद्धारो विशेषाख्यः समन्त्रः प्रतिपादितः ।

सृष्टिन्यास के स्थान—इसके बाद न्यास के स्थानों को जानो । १-२. दोनों पैर ३-४. दोनों टखने ५-६. दोनों घुटने ७-८. दोनों जाँघें ९-१०. दोनों वंक्षण ११. गुदा १२. लिङ्ग १३. नाभि १४. जठर उसके बाद १५-१६. दोनों हाथ १७-१८. दोनों कलाई १९-२०. दोनों कोहनी २१-२२. दोनों कन्धे २३. ग्रीवा २४. कण्ठ २५. चिबुक २६. मुख २७. नाक २८. कूर्च २९. ललाट ३०. शिर ३१. ब्रह्मरन्ध्र और ३२. व्यापक । इस प्रकार मैंने तुमको यह सृष्टिन्यास के स्थान बतलाये । इस प्रकार मन्त्र के सहित विशेष नामक उद्धार बतलाया गया ॥ २४७-२५०- ॥

[सृष्टिन्यासमहिमकीर्तनम्]

नित्यनैमित्तिकत्वं च पुरैव प्रतिपादितम् ॥ २५१ ॥
महाफलोऽयं विज्ञेयः सृष्टिन्यासो वरानने ।
एतस्यैव प्रसादेन प्रजापतय ईश्वराः ॥ २५२ ॥
विचित्रां चक्रिरे सृष्टिं स्वमहत्त्वप्रकाशिनीम् ।
अत एनं भक्तिभावाद् ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः ॥ २५३ ॥
ते स्वबुद्ध्या कल्पयन्ति शास्त्रे नानाविधं मतम् ।
शक्तिसामर्थ्यभाजः स्युः सर्वत्र शुभकर्मणि ॥ २५४ ॥
न्यासेनानेन सा देवी सृष्टिनाम्ना निगद्यते ।
किं बहूक्तेन देवेशि न्यासमेनं समाचरेत् ॥ २५५ ॥
वाक्सिद्धिं लभते मर्त्यः षण्मासान्नात्र संशयः ।

सृष्टिन्यास की महिमा—इसकी नित्यकरणीयता और नैमित्तिकता पहले ही बतलायी जा चुकी है । हे वरानने! सृष्टिन्यास को महाफल वाला जानना चाहिये । इसी की कृपा से प्रजापतियों ने ऐश्वर्यसम्पन्न होकर अपने महत्त्व को प्रकाशित करने वाली विचित्र सृष्टि की । इसलिये जो मनुष्य इसका भक्तिभाव से अनुष्ठान करते हैं वे अपनी बुद्धि से शास्त्र में अनेक मतों का प्रवर्त्तन करते हैं । वे सर्वत्र शुभ कार्य में शक्ति और सामर्थ्य से पूर्ण होते हैं । इस न्यास के कारण वह देवी सृष्टि नाम से पुकारी जाती है । हे देवेशि! अधिक कहने से क्या लाभ? जो मनुष्य इस न्यास को करता है वह छह महीने में निश्चित रूप से वाक्सिद्धि प्राप्त कर लेता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ २५१-२५५- ॥

[स्थितिन्यासोद्देशः तस्य च ऋष्यादिनिर्देशः]

ब्रवीमि ते स्थितिन्यासमधुना शृणु सादरा ॥ २५६ ॥
यमेनं विदधन्नित्यं विष्णुर्विष्णुत्वमाप्तवान् ।
मुख्यत्वेनैव सर्वेषां न्यासानामेष कीर्तितः ॥ २५७ ॥
विधेयो गाढयत्नेन नित्यं कल्याणमीप्सता ।
अथ ऋष्यादिमेतस्य समाकलय भामिनि ॥ २५८ ॥
ऋषिः कालकवृक्षीय एतस्य परिकीर्तितः ।
छन्दस्तु शक्वरी ज्ञेया गुह्यकाली च देवता ॥ २५९ ॥
व्ययबीजं बीजमुक्तं शक्तिरुत्कोचिनी तथा ।
घटीबीजं कीलकं स्यात् विनियोगस्तु पार्वति ॥ २६० ॥
सर्वदा सर्वकार्याणां सिद्धये परिकीर्तितः ।

स्थितिन्यास और उसके ऋषि आदि—अब इसके बाद तुमको स्थिति न्यास बतलाऊँगा। आदरयुक्त हो कर उसे सुनो । विष्णु ने इसको नित्य करते हुए विष्णुत्व प्राप्त किया। समस्त न्यासों में यह मुख्य कहा गया है । कल्याणेच्छु

साधक को इसे गाढ प्रयत्न के साथ नित्य करना चाहिये । हे भामिनि! अव इसके ऋषि आदि को सुनो । इसके ऋषि कालकवृक्षीय कहे गये हैं । छन्द शक्वरी समझनी चाहिये । देवता गुह्यकाली, बीज व्यय बीज और शक्ति उत्कोचिनी कही गयी है । कीलक घटी बीज है । हे पार्वति! इसका विनियोग समस्त कार्यों की सर्वदासिद्धि के लिये कहा गया है ॥ २५६-२६०- ॥

[स्थितिन्यासोद्धार:]

आदौ सामान्यमुद्धारमेतस्य त्वं निशामय ॥ २६१ ॥
ततो तु श्रोष्यसि पुनर्विशेषं वरवर्णिनि ।
सर्वेषामेव मन्त्राणां प्रणव: पुरत: स्थित: ॥ २६२ ॥
स निश्चल: पुनश्चैकं कूटं तच्चञ्चलं स्मृतम् ।
ततोऽनु पञ्च बीजानि विभिन्नानि चलानि च ॥ २६३ ॥
ततोऽनु च पुन: कूटमेकं तदपि चञ्चलम् ।
ततोऽनु पूर्ववत्तार एक: स च सनातन: ॥ २६४ ॥
ततो नामानि भिन्नानि तरलानि पृथक् पृथक् ।
तै: कल्पशब्दस्य शिवे विग्रह: परिनिष्ठित: ॥ २६५ ॥
स ङ्यन्तत्वेन विहितस्तस्मान्नामानि वै पृथक् ।
तैश्चासुरवधेत्यस्य पदस्य खलु विग्रह: ॥ २६६ ॥
स टान्तस्तदनु स्थाष्णु वक्ष्यमाणं षडक्षरम् ।
तज्जगत्स्थितिकर्त्रीति नामानि च पुनस्तत: ॥ २६७ ॥
विभिन्नानि तत: सप्तवर्णानि स्थैर्यभाञ्जि हि ।
तानि देवेशि नरसिंहसहितेति भवन्ति हि ॥ २६८ ॥

स्थितिन्यास का उद्धार—हे वरवर्णिनि! पहले तुम इस न्यास का सामान्य उद्धार सुनो । बाद में विशेष को सुनोगी । सब मन्त्रों के पहले प्रणव स्थित होता है और वह स्थिर रहता है । उसके बाद एक कूट होता है । वह चल कहा गया है । इसके बाद पाँच बीज होते हैं । वे भिन्न-भिन्न और चल होते हैं । उसके बाद एक कूट होता है और वह भी चञ्चल माना गया है । उसके पश्चात् एक तार होता है और वह स्थिर कहा गया है । इसके बाद भिन्न-भिन्न पृथक् नाम होते हैं और वे चञ्चल होते हैं । हे शिवे! उनके साथ 'कल्प' शब्द का संयोजन निश्चित रूप से रहता है और वह ङ्यऽन्त होता है । उसके बाद समस्त नाम अलग-अलग होते हैं। उनके साथ 'असुरवध' पद का संयोजन होता है और वह टान्त होता है । उसके बाद वक्ष्यमाण छह अक्षर स्थायी रहते हैं और वह शब्द है—'जगत-स्थितिकर्त्री' । उसके बाद फिर विभिन्न नाम रहते हैं । इसके पश्चात् स्थायी सात वर्ण रहते हैं । हे देवेशि! वे अक्षर 'नरसिंहसहित' हैं ॥ २६१-२६८ ॥

सविग्रहाणि तान्येवमावन्तानि वरानने ।
ततः पुनर्विभिन्नानि नामानि तरलानि वै ॥ २६९ ॥
तैः कालीति पदस्यापि विग्रहो विनिगद्यते ।
पूर्वा विशेषणीभूता विशेष्यत्वेन चापरा ॥ २७० ॥
ततः पुनर्विभिन्नं हि बीजत्रयमुदीर्यते ।
तत्पारिप्लवमाख्यातं प्रतिमन्त्रं वरानने ॥ २७१ ॥
अष्टौ वर्णास्ततो देवि सर्वमन्त्रान्तगाः स्थिराः ।
चिरं मामवतु स्वाहेत्येवंरूपा पृथक्तया ॥ २७२ ॥
इति सामान्य उद्धारः स्थितिन्यासस्य वर्णितः ।

हे वरानने! वे विग्रहसहित टाबन्त होते हैं । इसके बाद पुनः विभिन्न अस्थायी नाम होते हैं । उनके साथ 'काली' पद का संयोजन कहा जाता है । पहला पद विशेषण और दूसरा पद विशेष्य होता है । इसके बाद भिन्न-भिन्न तीन बीज कहे जाते हैं । हे वरानने! वह बीजसमूह प्रतिमन्त्र परिप्लव कहा गया है । (अर्थात् प्रत्येक मन्त्र के साथ परिवर्तनशील है) हे देवि! उसके बाद प्रतिमन्त्र के अन्त में होने वाले आठ वर्ण स्थायी हैं और वे 'चिरं मामवतु स्वाहा' रूप में पृथक् रूप में रहते हैं । इस प्रकार स्थितिन्यास का सामान्य उद्धार कहा गया ॥ २६९-२७२- ॥

[स्थितिन्यासस्य विशेषोद्धारः]

विशेषमधुना वच्मि तत्र चेतो निवेशय ॥ २७३ ॥
तत्रादौ क्रमतो वक्ष्ये कूटानि फलदानि हि ।
उदयं कूटमादौ स्यादस्तकूटं ततः परम् ॥ २७४ ॥
ततश्च खेचरीकूटं ततो मन्दारकूटकम् ।
प्रासादकूटं तदनु कूटं चाचलसंज्ञकम् ॥ २७५ ॥
मणिकूटं चण्डकूटं कूटं चैवापराजितम् ।
चक्रकूटं च गन्धर्वकूटं कूटं च गारुडम् ॥ २७६ ॥
मेरुकूटं च कैलासकूटं कूटं त्रिकूटकम् ।
मालाकूटं च मन्थानकूटं कैञ्जल्कमेव च ॥ २७७ ॥
ज्ञानकूटं च समयकूटं केशरकूटकम् ।
इच्छाकूटं धर्मकूटं कूटं मैनाकमेव च ॥ २७८ ॥
वासनाद्वैतवैराग्यकूटानि तदनन्तरम् ।
प्रतिबिम्बाभाससत्ताकूटानीत्थं वरानने ॥ २७९ ॥
चैतन्यकूटं च ततः प्रबोधं कूटमेव च ।
द्वात्रिंशदिति कूटानि वर्णितानि मया तव ॥ २८० ॥
प्रतिमन्त्रं प्रदेयानि पुरतश्चैकमेककम् ।

स्थितिन्यास का विशेष उद्धार—अब विशेष न्यास कह रहा हूँ । उसमें ध्यान

लगाओ । उसमें पहले क्रम से फलप्रद कूटों को बतलाऊँगा । पहले उदयकूट फिर अस्तकूट तत्पश्चात् खेचरीकूट फिर मन्दारकूट प्रासादकूट उसके बाद अचल नामक कूट फिर मणिकूट चण्डकूट अपराजितकूट चक्रकूट गन्धर्वकूट गारुडकूट मेरुकूट कैलासकूट त्रिकूटकूट मालाकूट मन्थानकूट किञ्जल्ककूट ज्ञानकूट समयकूट केशरकूट इच्छाकूट धर्मकूट मैनाककूट वासनाकूट अद्वैतकूट वैराग्यकूट उसके बाद प्रतिबिम्बकूट आभासकूट सत्ताकूट, हे वरानने! उसके बाद चैतन्यकूट और प्रबोधकूट इस प्रकार तुमको बत्तीस कूट बतलाये गये । प्रत्येक मन्त्र में यह एक-एक कूट पहले जोड़ना चाहिये ॥ २७३-२८० ॥

अतः श्रृणु त्वं बीजानि पञ्च पञ्च क्रमेण हि ॥ २८१ ॥
वाग्भवः पाशमाये च लक्ष्मीकामौ ततः परम् ।
तारश्च योगिनीक्रोधौ रावः प्रासाद एव च ॥ २८२ ॥
सिद्धः काली हयग्रीवो धर्मो गरुड एव च ।
क्षेत्रपालमहाक्रोधौ चण्डविश्वौ सकिन्नरौ ॥ २८३ ॥
नदी कामरती प्राणमैधौ तदनु पार्वति ।
खड्गो बुद्धिः क्षमा माला नीलं चेति ततः परम् ॥ २८४ ॥
त्रिवृत्कापालगोकर्णसुरभीरौरवाणि च ।
डामरश्चैव नाराचः शूलं तदनु पार्वति ॥ २८५ ॥
अर्द्धचन्द्रः क्षुरप्रश्च पञ्चबीजान्यतः परम् ।
संहिताहाकिनीध्यानविधयश्चञ्चुरेव च ॥ २८६ ॥
जम्भः षडङ्गात्रिककुच्छैशुकास्तदनन्तरम् ।
खेचर्यनन्तौ प्रेतश्च कुलिकं भैरवी तथा ॥ २८७ ॥
तत आयादिदीपान्तं बीजपञ्चकमिष्यते ।
भोगसृष्टी च फेत्कारी त्रेता कृत्या तथैव च ॥ २८८ ॥
वेणुसानू चाक्षमौञ्जीसूत्राणि तदनन्तरम् ।
भूतिनी च प्रचण्डा च डाकिनी तदनन्तरम् ॥ २८९ ॥
केकराक्षी कालरात्रिः पञ्चबीजान्यनुक्रमात् ।

इसके बाद तुम पाँच-पाँच बीजों को क्रम से सुनो । वाग्भव पाश माया लक्ष्मी काम (१), उसके बाद तार योगिनी क्रोध राव प्रासाद (२), सिद्ध काली हयग्रीव धर्म गरुड (३), क्षेत्रपाल महाक्रोध चण्ड विश्व किन्नर (४), नदी काम रति प्राण मेध (५), हे पार्वति! उसके बाद खड्ग बुद्धि क्षमा माला नील (६), तत्पश्चात् त्रिवृत् कापाल गोकर्ण सुरभि रौरव (७), डामर नाराच शूल उसके बाद हे पार्वति! अर्धचन्द्र क्षुरप्र (८), ये पाँच बीज होते हैं । इसके बाद संहिता हाकिनी ध्यान विधि चञ्चु (९), जम्भ षडङ्ग अत्रि ककुत् शैशुक (१०), उसके बाद खेचरी अनन्त प्रेत कुलिक भैरवी (११), ततः आय से लेकर दीप तक पाँच बीज वाञ्छित होते हैं

(और वे हैं रक्ष्रां रक्ष्रीं रक्ष्रूं रक्ष्रें रक्ष्रों)(१२) । भोग सृष्टि फेत्कारी त्रेता कृत्या (१३), वेणु सानु अक्ष मौञ्जी सूत्र (१४), उसके बाद भूतिनी प्रचण्डा डाकिनी तत्पश्चात् केकराक्षी कालरात्रि (१५), ये पाँच बीज क्रम से होते हैं ॥ २८१-२८९ ॥

कल्पो मुक्ता महा चैव क्रमो नृहरिरेव च ॥ २९० ॥
रङ्कताटङ्कनीलाश्च धेनुर्मारिष एव च ।
गायत्र्याद्याः नान्दिकान्ताः पञ्चवर्णास्ततः परम् ॥ २९१ ॥
विजयो मन्दसम्मोहौ संहारः पतनादिमः ।
भद्रिका च तथा तन्द्रा कुटिला रञ्जिनी घटी ॥ २९२ ॥
विटपं चैव कौलुञ्चशिल्पिसिद्धिफलादिमम् ।
श्रीकण्ठश्चाथ संहारी ततो नादान्तकोऽपि च ॥ २९३ ॥
चामरव्यजने चापि विधृतिस्तदनन्तरम् ।
वनस्पतिस्त्वङ्कुराद्यो विधानं संविधानकम् ॥ २९४ ॥
कलहोऽपि ततश्चौपदेयं मारण्डमेव च ।
विनादश्च विमर्दश्च शेखरोऽपि ततो मतः ॥ २९५ ॥
ततो गुह्यकपाटं च संसृष्टिः सविकोशका ।
सम्पूर्णाऽप्यथ मौनी च मौलिञ्जः सविरूपकः ॥ २९६ ॥
अपरान्तकश्च प्रकरी बिन्दुकस्तदनन्तरम् ।
विटङ्को योगतन्त्रा च दिगम्बर इतः परम् ॥ २९७ ॥
ततो रसपुटो ज्ञेयः संन्यासस्तदनन्तरम् ।
विरसो दाक्षिकश्चापि सौमतं सप्रतानकम् ॥ २९८ ॥
विदिक् च विकराली च मौनं चूलिकया सह।
विखलश्च विसारश्च विद्याबलमतः परम् ॥ २९९ ॥
चाक्रिकं विक्रियं चापि विपृथुस्तदनन्तरम् ।
शालङ्कश्च वियुक्तिश्च संव्यानं जैमनादिमम् ॥ ३०० ॥
ततः सबलधम्मिल्लौ विज्ञेयस्तदनन्तरम् ।
पाटवं पिप्पलं चाथ विजम्भो विकलादिकः ॥ ३०१ ॥
उत्तानं चेति कथितं द्वात्रिंशद्बीजमण्डलम् ।

कल्प मुक्ता महा क्रम नृसिंह (१६), रङ्क ताटङ्क नील धेनु मारिष (१७), गायत्री से लेकर नान्दिक तक पाँच वर्ण (वे हैं—छ्रक्षह्लां छ्रक्षह्लीं छ्रक्षह्लूं छ्रक्षह्लैं छ्रक्षह्लौं) (१८), उसके बाद विजय मन्द सम्मोह संहार पतन (१९), भद्रिका तन्द्रा कुटिला रञ्जिनी घटी (२०), विटप कौलुञ्च शिल्पि सिद्धि फल (२१), श्रीकण्ठ संहारी नादान्तक चामर व्यजन (२२), उसके बाद विधृति वनस्पति अङ्कुर विधान संविधान (२३), कलह औपदेय मारण्ड विनाद विमर्द (२४), इसके बाद शेखर कहा गया, फिर गुह्यकपाट संसृष्टि विकोशक सम्पूर्णा (२५), मौनी मौलिञ्ज विरूपक

अपरान्तक प्रकरी (२६), उसके बाद बिन्दुक विटङ्क योगतन्द्रा (योगतन्त्रा) दिगम्बर फिर रसपुट (२७), उसके बाद संन्यास तदनन्तर विरस दाक्षिक सौमत प्रतान (२८), विदिक् विकराली मौन चूलिका विखल (२९), विसार विद्याबल चक्रिक विक्रिय विपृथु (३०), शालङ्क वियुक्ति संव्यान जैमिन फिर सबलधम्मिल्ल (३१), पाटव पिप्पल विजम्भ विकल और उत्तान (३२)—ये सब बत्तीस बीजसमूह बतलाये गये ॥ २९०-३०१ ॥

प्रतिमन्त्रमथैकैकं कूटं ते क्रमशो ब्रुवे ॥ ३०२ ॥
गङ्गा च यमुना चैव सरस्वत्यथ कथ्यते ।
गोदावरी कृष्णवेल्ला नर्मदा गण्डकी तथा ॥ ३०३ ॥
कावेरी बाहुदा शिप्रा तुङ्गभद्रा च कौशिकी ।
विपाशा चन्द्रभागा च वितस्ता देविका तथा ॥ ३०४ ॥
चर्मण्वती धूतपापा मुरला वेत्रवत्यपि ।
सुवर्णरेखा तमसा वाग्मती च महानदी ॥ ३०५ ॥
करतोया पयोघ्नी च पारावत्यथ गोमती ।
ज्योतीरसा च सरयूः पर्णाशा ताम्रपर्ण्यपि ॥ ३०६ ॥
द्वात्रिंशत् सरितां कूटं क्रमेणैव प्रकीर्तितम् ।

अब प्रत्येक मन्त्र से जुडने वाले एक-एक कूट को तुम्हें बतला रहा हूँ—गङ्गा यमुना सरस्वती गोदावरी कृष्णवेल्ला नर्मदा गण्डकी कावेरी बाहुदा शिप्रा तुङ्गभद्रा कौशिकी विपाशा चन्द्रभागा वितस्ता देविका चर्मण्वती धूतपापा मुरला वेत्रवती सुवर्णरेखा तमसा वाग्मती महानदी करतोया पयोघ्नी पारावती गोमती ज्योतीरसा सरयू पर्णाशा और ताम्रपर्णी—ये बत्तीस नदीकूट क्रम से कहे गये ॥ ३०२-३०६- ॥

अथ नामानि कल्पानां क्रमेण प्रब्रवीमि ते ॥ ३०७ ॥
भूकल्पश्च भुवः कल्पस्तपः क्रतुरथापि च ।
वह्निः षट्क्रमतो दर्शः कृष्णश्चित्रस्तथैव च ॥ ३०८ ॥
रक्तोदो हरिकेशश्च लोहितः शिपिविष्टयुक् ।
बृहद्रथश्चौपलश्च खार्जूरीयश्च संभ्रमः ॥ ३०९ ॥
नैयग्रोधश्च सिंहश्च स्थूलाचित्यौ ततः परम् ।
औलूकमथ वैयानं कीलालं तपनं तथा ॥ ३१० ॥
सङ्घातवटरुद्राश्च मन्दाराजिरकौ श्रुतिः ।
द्वात्रिंशत्संख्यकैरेतैः कल्पशब्दस्य विग्रहः ॥ ३११ ॥

अब तुमको कल्पों का नाम क्रम से बतला रहा हूँ । भूकल्प भुवःकल्पः तपः क्रतु फिर वह्नि षट् क्रम दर्श कृष्ण चित्र रक्तोद हरिकेश लोहित शिपिविष्ट बृहद्रथ औपल खार्जुरीय सम्भ्रम, न्यग्रोध सिंह स्थूला चित्य उसके बाद औलूक वैयान

कीलाल तपन सङ्घात वट रुद्र मन्दार अजिरक श्रुति—इन बत्तीस पदों के साथ कल्प शब्द का संयोजन होता है ॥ ३०७-३११ ॥

सप्तम्यन्तः स कर्तव्योऽसुराणां नाम वै शृणु ।
आदौ बलाको गगनमूर्द्धा वेहण्ड एव च ॥ ३१२ ॥
उल्मुको मेघनादश्च धूम्रश्च त्रिशिरा अपि ।
अरुणो दाण्डिको वायुध्वजो जम्भल एव च ॥ ३१३ ॥
किरीटो रक्ततुण्डश्च किर्मीरो वाष्कलोऽपि च ।
खर्जूररोमा च ततो नागान्तक इतः परम् ॥ ३१४ ॥
काकवर्णोऽन्धकश्चापि सरभः शङ्कुकर्णयुक् ।
प्रतर्दनो वज्रवर्मा जालन्धरशकुन्तकौ ॥ ३१५ ॥
पूतिकञ्जो विराधश्च विश्वमर्दन इत्यपि ।
कोलतुण्डो जम्बुजालश्चञ्चूमुख इतः परम् ॥ ३१६ ॥
पिटकः सर्वशेषं च द्वात्रिंशदिति कीर्तिताः ।
एतैरसुरशब्दस्य विग्रहस्तदनन्तरम् ॥ ३१७ ॥
वधशब्दस्य देवेशि स टान्तत्वेन संस्थितः ।

यह कल्पान्त शब्द सप्तम्यन्त रखना चाहिये । अब असुरों का नाम सुनो । पहले वलाक फिर गगनमूर्धा वेहण्ड उल्मुक मेघनाद धूम्र त्रिशिरा अरुण दाण्डिक वायुध्वज जम्भल किरीटी रक्ततुण्ड किर्मीर वाष्कल खर्जूररोमा नागान्तक इसके बाद काकवर्ण अन्धक सरभ शङ्कुकर्ण प्रतर्दन वज्रवर्मा जालन्धर शकुन्तक पूतिकञ्ज विराध विश्वमर्दन कोलतुण्ड जम्बुजाल चञ्चुमुख और सबके अन्त में पिटक ये बत्तीस कहे गये । इनके साथ असुर शब्द का संयोजन होता है । उसके बाद हे देवेशि! वध शब्द को टान्त के रूप में रखते हैं ॥ ३१२-३१७ ॥

इदानीं नरसिंहानां नामान्याकर्णय क्रमात् ॥ ३१८ ॥
कपिलः पुष्करस्तीव्रनखः पाण्डर एव च ।
ततो जम्बालसम्मोहौ भूतादिर्हैतुकोऽपि च ॥ ३१९ ॥
लोहिताक्षश्च दुर्द्धर्षो बभ्रुः सर्वेश्वरोऽपि च ।
विश्वबाहुरनन्तश्च जटालस्तपनस्ततः ॥ ३२० ॥
सिन्धुनादो मृत्युमुखो हेमाम्भो रौरवोऽपि च ।
हव्यवाहः पूर्णभद्रो मणितारस्तथैव च ॥ ३२१ ॥
दैत्यान्तकस्तथोद्योतो विभूतिः शबलोऽपि च ।
धनञ्जयश्च शोणाक्षश्चित्राङ्गोत्साहनामकौ ॥ ३२२ ॥
रक्तरेखः सर्वशेषे ज्ञातव्यः परमेश्वरि ।
एतच्छब्दोपशब्दत्वे नरसिंहो व्यवस्थितः ॥ ३२३ ॥

अब क्रम से नरसिंहों का नाम सुनो । कपिल पुष्कर तीव्रनख पाण्डर जम्बाल

सम्मोह भूतादि हैतुक लोहिताक्ष दुर्द्धर्ष बभ्रु सर्वेश्वर विश्वबाहु अनन्त जटाल तपन सिन्धुनाद मृत्युमुख हेमाम्भ रौरव हव्यवाह पूर्णभद्र मणितार दैत्यान्तक उद्योत विभूति शबल धनञ्जय शोणाक्ष चित्राङ्ग उत्साह और हे परमेश्वरि! सबके अन्त में रक्तरेख जानना चाहिये । इस शब्द के साथ 'नरसिंह' शब्द रखना होता है ॥ ३१८-३२३ ॥

अथ नामानि कालीनां व्याहरामि वरानने ।
आनन्दः समयो भद्रो नियमस्त्रिदशस्तथा ॥ ३२४ ॥
हिरण्यो विकृतः क्रोध उल्का फेरुस्तथैव च ।
जीमूतो विग्रहो गुप्तश्चैतन्यस्तदनन्तरम् ॥ ३२५ ॥
विश्वः कुलं प्रतप्तश्च ज्योतीरूपं ततः परम् ।
मेधा तथोत्तरं व्याल आवर्तःस्यात् ततः परम् ॥ ३२६ ॥
सिंहनादश्च मन्त्रश्च कल्प उत्पात इत्यपि ।
सम्मोहश्चक्र आधारः समरस्तदनु स्मृतः ॥ ३२७ ॥
विनाशोऽप्यथ रक्षा च द्वात्रिंशत्संख्यका इमे ।
कालीशब्देन चैतेषां विग्रहः परिनिष्ठितः ॥ ३२८ ॥

हे वरानने! अब मैं तुमको कालियों का नाम बतला रहा हूँ । आनन्द समय भद्र नियम त्रिदश हिरण्य विकृत क्रोध उल्का फेरु जीमूत विग्रह गुप्त चैतन्य उसके बाद विश्व कुल प्रतप्त ज्योती रूप उसके बाद मेधा उसके बाद व्याल फिर आवर्त्त होता है । उसके बाद सिंहनाद मन्त्र कल्प उत्पात सम्मोह चक्र आधार समर उसके बाद विनाश फिर रक्षा ये बत्तीस हैं । इनका काली शब्द के साथ सम्बन्ध रहता है ॥ ३२४-३२८ ॥

अथैतस्मात् पदाद् देवि त्रित्रिबीजं निशामय ।
कुम्भस्तथैवामृतं च आवेशस्तदनन्तरम् ॥ ३२९ ॥
त्रिशिखा च त्रिशक्तिश्च चामुण्डा तदनु स्मृता ।
बुद्धिः क्षमा च माया च पूर्णा च ललिताऽरुणा ॥ ३३० ॥
धनदा च नृसिंहश्च तपस्तदनु कीर्तितम् ।
रासोऽनघः कुञ्चिका च प्राकारः कुहिका तथा ॥ ३३१ ॥
बीजानि कूटनाड्यौ च छन्दस्तदनु कथ्यते ।
सम्प्रदायो भाजनं च स्यादपायस्ततः परम् ॥ ३३२ ॥
मौनं तथा चूलिका च तत् पश्चाद् विख्रलो मतः ।
सर्वस्वं विप्रियं सन्तारस्ततः परमेश्वरि ॥ ३३३ ॥
पारीन्द्रशेषौ विज्ञेयौ सम्वर्तकविवर्तकौ ।
तथा जैमनसंव्यानौ सम्बलान्तौ प्रकीर्तितौ ॥ ३३४ ॥
तथा सम्भावसंयोगौ विवत्साद्यौ सुरेश्वरि ।
विक्रमश्चापि संक्रान्तिः कुलमुद्रा तथैव च ॥ ३३५ ॥

वीरवेतालभौवाश्च ततः परमुदीरिताः ।
सन्धानं सिञ्जिनी चापि नैमयोऽस्यानु कथ्यते ॥ ३३६ ॥
चर्पटं मणिमाला च हारिणी तदनु प्रिये ।
विराधश्च तुरीया च ग्रावा शेषे नियोजितः ॥ ३३७ ॥
मोदकं वासितौजस्विनस्ततः परिकीर्तिताः ।
पूत्यण्डं कुञ्चिका कामकला तदनु पठ्यते ॥ ३३८ ॥

हे देवि! अब इस पद के बाद आने वाले तीन-तीन बीजों को सुनो । कुम्भ अमृत और आवेश उसके बाद त्रिशिखा त्रिशक्ति चामुण्डा कही गयी है । बुद्धि क्षमा माया, पूर्णा ललिता अरुणा, उसके बाद धनदा नृसिंह तप कहे गये हैं । रास अनघ कुञ्चिका, प्राकार कुहिका बीजों (को कहना चाहिये) । कूट नाडी उसके बाद छन्द कहा जाता है । सम्प्रदाय भाजन उसके बाद अपाय होता है । मौन चूलिका उसके बाद विखल कहा गया है । सर्वस्व विप्रिय सन्तार उसके बाद हे परमेश्वरि! पारीन्द्र शेष सम्वर्तक विवर्तक जैमन संव्यान अन्त में संबल कहे गये । उसी प्रकार सम्भावना संयोग के पहले विवत्स जानना चाहिये । हे सुरेश्वरि! विक्रम संक्रान्ति कुलमुद्रा, वीर वेताल भौव कहे गये हैं । सन्धान सिञ्जिनी हे प्रिये! और उसके बाद नैमेय कहा जाता है । चर्पट मणिमाला हारिणी विराध तुरीया और अन्त में ग्रावा जोड़ा जाता है। तत्पश्चात् मोदक वासित ओजस्वी कहे गये हैं । उसके पश्चात् पूत्यण्ड कुञ्चिका कामकला पढ़ी जाती है ॥ ३२९-३३८ ॥

षट्चक्रसर्वागमौ च आम्नायातीत इत्यपि ।
शक्तिसर्वस्वमुल्लिख्य परापरमुदीर्यते ॥ ३३९ ॥
ततोऽपि वज्रकवचं चिच्छक्तिः शाम्भवादिमा ।
जगदावृत्तिरस्यानु नाराचः शूलमेव च ॥ ३४० ॥
अर्द्धचन्द्रश्च तदनु नालीकस्तदनु स्मृतः ।
भुशुण्डी च गदा ज्ञेया भोगसृष्टी ततः परम् ॥ ३४१ ॥
त्रेता च कुन्तः सारिघ ऋष्टिस्तदनु भामिनि ।
कराली तर्जनी चापि ततोऽनु स्यात् कटङ्कटा ॥ ३४२ ॥
पथ्या शफमुरङ्कश्च उत्तानं विघटी तथा ।
पाषाणः स्यात् ततो ज्ञेयं बीजं तत्त्वार्णवाह्वयम् ॥ ३४३ ॥
महाकल्पस्थायि बीजं ततो ब्रह्मकपालकम् ।
त्रिबीजपंक्तिरेषा तु सुरेशि प्रतिपादिता ॥ ३४४ ॥

षट्चक्र सर्वागम आम्नायातीत शक्तिसर्वस्व का उल्लेख कर परापर कहा जाता है। उसके बाद वज्रकवच शाम्भव के पश्चात् चित्शक्ति, जगदावृत्ति उसके बाद नाराच शूल तदनु अर्धचन्द्र तदनु नालीक कहा गया है । भुशुण्डी गदा उसके अनन्तर भोग सृष्टि तदनन्तर त्रेता कुन्त सारिघ ऋषि उसके पश्चात् हे भामिनि!

करालो तर्जनी फिर उसके बाद कटङ्कटा पथ्या शफ उरङ्क उत्तान विघटी और पाषाण होता है । उसके बाद तत्त्वार्णव नामक बीज जानना चाहिये । महाकल्प स्थायी बीज उसके बाद ब्रह्मकपाल हे सुरेशि! इस प्रकार यह तीन-तीन बीजों की पंक्ति मैंने तुमको बतलायी ॥ ३३९-३४४ ॥

[स्थितिन्यासस्य स्थाननिर्देश:]

अथ न्यासस्य वक्ष्येऽहं स्थानान्येतस्य वै क्रमात् ।
ब्रह्मरन्ध्रं ललाटं च कूर्चं नासा तथैव च ॥ ३४५ ॥
कपोलौ नयनं कर्णौ हनुश्चिबुकमेव च ।
गलो ग्रीवा च हृदयं जठरं नाभिरेव च ॥ ३४६ ॥
करो लिङ्गं गुदं चोरुर्जानु जङ्घा तथैव च ।
पाद: कटिश्च पृष्ठं च तथांसो जत्रुरेव च ॥ ३४७ ॥
शिखा च करयो: पादयो: पुनर्व्यापकं तत: ।
सर्वशेषे च सर्वाङ्गव्यापकं परिकीर्तितम् ॥ ३४८ ॥
इति न्यासस्थानमुक्तं क्रमेण त्रिदशार्चिते ।
एवंविध: प्रकर्तव्य: स्थितिन्यासस्तु साधकै: ॥ ३४९ ॥
नित्यता काम्यता नैमित्तिकत्वं चास्य यादृशी ।
सा कथ्यते गृहस्थानां नित्यत्वेन व्यवस्थित: ॥ ३५० ॥
काम्यत्वेन च कौलानां नैमित्तिकतयापि वा ।

स्थितिन्यास के स्थान—अब मैं तुमको इस न्यास के स्थानों को क्रम से बतलाऊँगा। ब्रह्मरन्ध्र ललाट कूर्च नाक दोनों कपोल नेत्रद्वय कर्ण हनु चिबुक गला ग्रीवा हृदय जठर नाभि हाथ लिङ्ग गुदा ऊरु जानु जङ्घा उसी प्रकार पैर कटि पीठ कन्धा जत्रु शिखा दोनों हाथ दोनों पैर पुन: व्यापक और सबके अन्त में सर्वाङ्ग व्यापक स्थान कहे गये हैं । हे देवपूजिते! इस प्रकार तुमको क्रम से न्यासस्थान बतलाया गया । साधकों को इस प्रकार का न्यास करना चाहिये । इसकी जिस प्रकार की नित्यता काम्यता या नैमित्तिकता है, वह कही जा रही है । गृहस्थों के लिये यह नित्य के रूप में व्यवस्थित है । कौलमार्गियों के लिये यह नैमित्तिक एवं काम्यतया व्यवस्थित है ॥ ३४५-३५०- ॥

[संहारन्यासोद्देशस्तस्य च ऋष्यादिनिर्देश:]

अधुना शृणु देवेशि न्यासं संहारनामकम् ॥ ३५१ ॥
येन सा कालिका देवी महामारीति कथ्यते ।
एष न्यासो गुह्यकाल्या: सदा सन्तोषदायक: ॥ ३५२ ॥
कर्तव्यो भक्तिभावेन धर्मार्थामृतकांक्षिभि: ।
यतीनामेष नित्य: स्याद् गृहिणां काम्य एव च ॥ ३५३ ॥

कौलानामेष वै देवि नैमित्तिकतयोच्यते ।
नित्योऽथवास्तु काम्यो वाप्यथ नैमित्तिकोऽपि वा ॥ ३५४ ॥
न्यासानामेव सर्वेषां श्रेष्ठत्वेन व्यवस्थित: ।
अस्य सामान्यमुद्धारं प्रथमं कथयामि ते ॥ ३५५ ॥
विशेषेण पुनर्वक्ष्ये येनैष स्फुटतामियात् ।
संहारनाम्नो न्यासस्य सम्वर्त ऋषिरीरित: ॥ ३५६ ॥
त्रिष्टुप् छन्द: समाख्यातं देवता गुह्यकालिका ।
प्रलयो बीजमुदितं खेचरी शक्तिरुच्यते ॥ ३५७ ॥
फेत्कारी कीलकं ज्ञेयं विनियोगस्तु सिद्धये ।

संहारन्यास और उसके ऋषि आदि—हे देवेशि! अब संहार नामक न्यास को सुनो । जिसके कारण वह कालिका देवी महामारी कही जाती हैं । गुह्यकाली का यह सन्तोषदायक न्यास धर्म अर्थ अमरत्व चाहने वालों के द्वारा भक्तिभाव के साथ किया जाना चाहिये । संन्यासियों के लिये यह नित्यकरणीय कहा गया है । गृहस्थों के लिये काम्य है। हे देवि! कौलों के लिये यह नैमित्तिक रूप में करणीय कहा जाता है । यह नित्य नैमित्तिक अथवा काम्य चाहे जो हो, समस्त न्यासों में श्रेष्ठ कहा गया है । पहले तुमको इसका सामान्य उद्धार बतला रहा हूँ फिर विशेष उद्धार बतलाऊँगा, जिससे यह स्पष्ट हो जाय । संहार नामक इस न्यास के ऋषि संवर्त कहे गये हैं । छन्द त्रिष्टुप् कहा गया । देवता गुह्यकाली हैं । बीज प्रलय और शक्ति खेचरी कही गयी है। फेत्कारी को कीलक जानना चाहिये । इसका प्रयोग सिद्धि के लिये होता है ॥ ३५१-३५७ ॥

[संहारन्यासस्य सामान्योद्धार:]

अथ सामान्यमुद्धारं पुरत: कथयामि ते ॥ ३५८ ॥
ततो विशेषं वक्ष्यामि स्फुटो येन भविष्यति ।
आदौ तु पञ्च बीजानि प्रतिमन्त्रं स्थिराणि हि ॥ ३५९ ॥
ज्ञातव्यानि वरारोहे तत: शब्दा: पृथक् पृथक् ।
तै: शब्दै रूपशब्दस्य समासस्तदनन्तरम् ॥ ३६० ॥
तच्च टाबन्तमुन्नेयं चलं पूर्वं स्थिरं परम् ।
पदानि च विभिन्नानि ततो ज्ञेयानि पार्वति ॥ ३६१ ॥
तैश्च संहारकर्त्रीति पदं खलु निगृह्यते ।
पदानि पूर्वसंस्थानि चञ्चलानि प्रचक्षते ॥ ३६२ ॥
पञ्च वर्णान्युत्तराणि सर्वत्रैव स्थिराणि च ।
स्थिराणि च पुन: सप्ताक्षराणि प्रतिमन्त्रकम् ॥ ३६३ ॥
विभावनीयानि शिवे वक्ष्यमाणानि ते मया ।
स्युर्गुह्यकाली देव्यम्बेत्यक्षराणि यथाक्रमम् ॥ ३६४ ॥

कूटद्वयं पुनर्ज्ञेयं प्रतिमन्त्रं स्थिरं ततः ।
ततो नु बीजत्रितयं भिन्नं भिन्नं वरानने ॥ ३६५ ॥
मम शत्रून् संहरतु इत्यष्टाक्षरमुज्ज्वलम् ।
ततः स्थिरतरं ज्ञेयं मन्त्रे मन्त्रे यथोदितम् ॥ ३६६ ॥
पुनश्च पञ्च बीजानि स्थेयांसि कथितानि ते ।
हृन्मन्त्रश्च शिरोमन्त्रः सर्वत्रैव स्थिरो मतः ॥ ३६७ ॥
संहारनाम्नो न्यासस्य इत्युद्धारो मयोदितः ।
सामान्यतो विशेषेण पुनर्देव्यवधारय ॥ ३६८ ॥

संहार न्यास का सामान्य उद्धार—अब तुम्हारे सामने सामान्य उद्धार कह रहा हूँ । इसके बाद इसका विशेष उद्धार बतलाऊँगा जिससे यह स्पष्ट हो जायगा । हे वरारोहे! पहले प्रतिमन्त्र पाँच बीज स्थिर जानने चाहिये । उसके बाद के शब्द पृथक्-पृथक् होते हैं । उसके बाद उन शब्दों के साथ 'रूप' शब्द जुड़ा रहता है और वह टाबन्त होता है । पहला शब्द चल होता है बाद वाला स्थिर । हे पार्वति! उसके बाद विभिन्न पदों को जानना चाहिये । उनके साथ 'संहारकर्त्री' पद नियोजित होता है। पूर्व स्थित पदों को विद्वान् लोग चञ्चल कहते हैं । बाद के पाँच वर्ण सर्वत्र स्थिर होते हैं । पुन: प्रत्येक मन्त्र में सात अक्षर स्थिर समझे जाने चाहिये । हे शिवे! मैं उनको तुम्हें बतलाऊँगा । वे क्रम से 'गुह्यकाली देव्यम्बा' ये अक्षर हैं। पुन: प्रत्येक मन्त्र में दो कूट स्थिर जानना चाहिये । हे वरानने! उसके बाद तीन बीज भिन्न-भिन्न होते हैं । इसके बाद प्रत्येक मन्त्र में 'मम शत्रून् संहरतु' ये उज्ज्वल आठ अक्षर स्थिरतर जानना चाहिये । उसके बाद पाँच बीज तुमको स्थिर बतलाये गये । हृदयमन्त्र और शिरोमन्त्र सर्वत्र स्थिर माना गया है । यह तुमको संहार नामक न्यास का सामान्य उद्धार मेरे द्वारा बतलाया गया । हे देवि! अब विशेष रूप से उसको सुनो ॥ ३५८-३६८ ॥

[संहारन्यासस्य विशेषोद्धार:]

भौवनेशी योगिनी च कूर्चो रामा च शाकिनी।
एतानि पञ्च बीजानि स्थिराण्याद्यानि सर्वतः ॥ ३६९ ॥
अथ शब्दान् पृथग्रूपानेतस्यानु ब्रुवे तव ।
आदौ प्रकाशस्तदनु महाप्रलय उच्यते ॥ ३७० ॥
वाडवोऽप्यथ षट्चक्रभेदश्चाथ प्रमाणतः ।
तपो विद्या च दहना गायत्रीजप एव च ॥ ३७१ ॥
लक्ष्मीस्ततश्च परमात्मविचारोऽपि भेषजम् ।
तस्यानु तत्त्वजिज्ञासा शान्तिर्होमस्तथैव च ॥ ३७२ ॥
सत्यं सदाचार इति निगमः काल एव च ।
प्रणवावर्त्तनप्राणायामो जलमथापि च ॥ ३७३ ॥

जाठरः पावकश्चैव सन्तोषो वेद एव च ।
त्रिः प्रतिसञ्चरत्येवं तितिक्षा क्रूर एव च ॥ ३७४ ॥
निदाघमोहावध्यात्मचिन्तनं तदनन्तरम् ।
सर्वशेषे परिज्ञेया उग्रचण्डा सुरेश्वरि ॥ ३७५ ॥
एभिः पदैस्तु सततं रूपेणेत्यस्य विग्रहः ।
अतः संहारकर्त्रीतिपदपूर्वपदं शृणु ॥ ३७६ ॥
तमो ब्रह्माण्डसप्ताब्धिभवबन्धभ्रमाः क्रमात् ।
दुरितं च तथाऽज्ञानं तृणदारु ततः परम् ॥ ३७७ ॥
ततो नु देवि सकलपातकं दैन्यमेव च ।
मायाव्याधिरथाधिश्च त्रिविधोत्पात एव च ॥ ३७८ ॥

संहारन्यास का विशेष उद्धार—भुवनेशी योगिनी कूर्च रामा शाकिनी ये पाँच बीज सर्वत्र पहले होते हैं और स्थिर हैं । अब इसके भिन्न रूप वाले शब्दों को तुमको बतला रहा हूँ । पहले प्रकाश फिर महाप्रलय कहा जाता है । फिर वाडव पुनः षट्चक्र भेद प्रभाव, तप विद्या दहना गायत्रीजप लक्ष्मी परमात्मविचार भेषज उसके बाद तत्त्व जिज्ञासा शान्ति होम सत्य सदाचार निगम काल प्रणव आवर्त्तन प्राणायाम जल जाठरपावक सन्तोष त्रिवेद तितिक्षा क्रूर निदाघ मोह अध्यात्मचिन्तन तदनन्तर हे सुरेश्वरि! सबके अन्त में उग्रचण्डा जानना चाहिये । इन पदों के साथ निरन्तर 'रूपेण' जोड़ना चाहिये । इसके बाद अब 'संहारकर्त्री' पद के पूर्वपदों को सुनो । तम ब्रह्माण्ड सप्ताब्धि भवबन्ध भ्रम दुरित तथा अज्ञान इसके बाद तृणदारु । हे देवि! उसके बाद सकलपातक, दैन्य माया व्याधि आधि त्रिविधोत्पात् कहना चाहिये ॥ ३६९-३७८ ॥

ग्रहदोषश्च मिथ्या च तथैवाधर्मसंशयौ ।
सर्वश्च जन्ममृत्यू च ह्यग्निराहार एव च ॥ ३७९ ॥
लोभस्तथैव पाषण्डभूतसर्गषडूर्मयः ।
मृदुर्हिमं च संवित्तिर्वासना तदनन्तरम् ॥ ३८० ॥
सर्वशेषे परिज्ञेयः सुरेशि सकलासुर ।
इत्युभावपि द्वात्रिंशत्संख्यकौ परिकीर्तितौ ॥ ३८१ ॥
अपरस्य तु संहारकर्त्र्या सार्द्धं तु विग्रहः ।
स्थिरसप्ताक्षरादूर्ध्वं कूटयुग्मं यदीरितम् ॥ ३८२ ॥
तत् सत्त्वकूटं संहारकूटं ज्ञेयं हि साधकैः ।
त्रित्रिबीजानि भिन्नानि प्रतिमन्त्रमथो शृणु ॥ ३८३ ॥
स्युः पाशाङ्कुशभैरव्यो लक्ष्मीगारुडमन्मथाः ।
देयास्ततश्चण्डविश्वकौणप्यः परमेश्वरि ॥ ३८४ ॥
बलिः पृथुर्नदश्चापि संदर्शनमतः परम् ।

यौक्तिकं मञ्जरी चापि ततोऽप्यनु विवर्तकः ॥ ३८५ ॥
पारीन्द्रश्च शुभंयुश्च विकलः स्यात् ततः परम् ।
विजम्भश्च तथोत्तानः कराटी वात्यया युता ॥ ३८६ ॥
वारी चेति ततो मेधी कृषिर्हाकिन्यपि प्रिये ।
कुलिकप्रेतखेचर्यो भारुण्डायक्षकाकिनीः ॥ ३८७ ॥
महाक्रमनृसिंहाश्च व्रज्यादेशच्छटा अपि ।
मन्दारसिन्धुमाहेन्द्रा अक्षा मौञ्ज्यादियुग्मकम् ॥ ३८८ ॥

उसके बाद ग्रहदोष मिथ्या अधर्म संशय सर्व जन्म मृत्यु, अग्नि आहार लोभ पाषण्ड भूतसर्ग षडूर्मि मृदु हिम संवित्ति वासना उसके बाद हे सुरेश्वरि! सबके अन्त में सकलासुर जानना चाहिये । इस प्रकार दोनों (अर्थात् 'रूपेण' एवं 'संहारकर्त्री' के साथ जुड़ने वाले) पद बत्तीस संख्या वाले कहे गये हैं । बाद वाले पदों का 'संहारकर्त्री' पद के साथ विग्रह होता है । स्थिर सात-सात अक्षरों के बाद जो दो कूट कहे गये उनको साधक लोग सत्त्वकूट और संहारकूट समझें । अब प्रत्येक मन्त्र के साथ जुड़ने वाले तीन-तीन भिन्न बीजों को सुनो । पाश अङ्कुश भैरवी, लक्ष्मी गारुड मन्मथ कहना चाहिये । उसके बाद हे परमेश्वरि! चण्ड विश्व कुणप, बलि पृथु नद, इसके बाद सन्दर्शन यौक्तिक मञ्जरी, उसके पश्चात् विवर्त्तक पारीन्द्र शुभंयु, उसके पश्चात् विकल होता है । विजम्भ उत्तान, कराटी वात्या वारी, मेधी हे प्रिये! कृषि हाकिनी होती है । कुलिक प्रेत खेचरी, भारुण्डा यक्ष काकिनी, महा क्रम नृसिंह, व्रज्या आदेश छटा, मन्दार सिन्धु माहेन्द्र, अक्ष मौञ्जी आदि दो (= रह्रैं रह्रौं) कहने चाहिये ॥ ३७९-३८८ ॥

जम्भः षडङ्गककुदौ भूतिन्यादित्रयं ततः ।
कुण्डो गर्भश्च दीपश्च कर्णिकाहारशृङ्खलाः ॥ ३८९ ॥
सृष्टिस्त्रेता च कृत्या च भुशुण्डी गदया युता ।
प्रासश्च मन्दसम्मोहौ संहारस्तदनन्तरम् ॥ ३९० ॥
अनयः कुञ्चिका कण्ठीरवो ज्ञेयस्ततः परम् ।
नाराचोऽप्यर्धचन्द्रश्च क्षुरप्रस्तदनन्तरम् ॥ ३९१ ॥
गायत्र्यौपह्वरश्चैव नान्दिकं स्यात् ततः परम् ।
तन्द्रा च कुटिला चैव रञ्जिन्यस्यानु पठ्यते ॥ ३९२ ॥
मणिमाला हारिणी च तथैवोत्कोचिनी मता ।
कुशिकश्च व्ययश्चापि चर्पटं तदनु प्रिये ॥ ३९३ ॥
शेखरश्च विमर्दश्च पश्चादेतस्य दुष्कृतम् ।
संहारी व्यजनं चाथ विधृतिः क्रमशस्त्रयः ॥ ३९४ ॥
अपरान्तस्ततश्चैव प्रकरीबिन्दुकौ मतौ ।
सौमतं च प्रतानं च विदिक् तदनु कथ्यते ॥ ३९५ ॥

इति वै त्रित्रिबीजानां सङ्घातः कथितो मया ।
द्वात्रिंशत्संख्यको देवि पुनर्बीजानि मे शृणु ॥ ३९६ ॥
स्थिराष्टाक्षरतः पश्चाच्छाकिनी च वधूरपि ।
कूर्चश्च योगिनी माया चेति बीजानि पञ्च वै ॥ ३९७ ॥
यान्यस्यैवादिभूतानि बीजानि कथितानि ते ।
तान्येव देवदेवेशि संहारक्रमतः खलु ॥ ३९८ ॥

जम्भ षडङ्ग ककुद् उसके बाद भूतिनी आदि तीन (= खफ्रीं खफ्रूं खफ्रें), कुण्ड गर्भ दीप कर्णिका हार शृङ्खला सृष्टि त्रेता कृत्या भुशुण्डी गदा प्रास मन्द सम्मोह संहार उसके बाद अनय कुञ्चिका कण्ठीरव को जानना चाहिये । उसके बाद नाराच अर्धचन्द्र क्षुरप्र उसके बाद गायत्री औपह्वर नान्दिक होना चाहिये । उसके बाद तन्द्रा कुटिला रञ्जिनी पढ़ी जाती है । मणिमाला हारिणी उत्कोचिनी कुशिक व्यय हे प्रिये! उसके बाद चर्पट शेखर विमर्द इसके बाद दुष्कृत संहारी व्यजन और विधृति ये तीन रहते हैं । इसके बाद अपरान्त प्रकरी और बिन्दु कहे गये हैं । उसके बाद सौमत प्रतान और विदिक् कहा जाता है । इस प्रकार मेरे द्वारा तीन-तीन बीजों का समूह तुम्हें बतलाया गया । हे देवि! मुझसे बत्तीस बीजों को पुनः सुनो । आठ अक्षर स्थिर होते हैं । उसके बाद शाकिनी वधू कूर्च योगिनी और माया ये पाँच बीज होते हैं । इसी के आदि भूत जो बीज तुमको बतलाये गये, हे देवदेवेशि! उन्हीं को संहारक्रम से जानना चाहिये ॥ ३८९-३९८ ॥

[संहारन्यासस्य स्थाननिर्देशः]

अधुना कलय स्थानं न्यासस्यास्य प्रयत्नतः ।
प्रपदं च तथा गुल्फः पार्ष्णिजानू तथैव च ॥ ३९९ ॥
वंक्षणश्च कटिः स्फिक् च कुक्षिः पार्श्वं च चूचुकम् ।
अंसो जत्रु च कक्षश्च कफोणिर्मणिबन्धकः ॥ ४०० ॥
कराङ्गुल्यस्तदग्रं च प्रगण्डो नासयान्विता (तः?) ।
ओष्ठोऽधरश्च दन्तश्च कपोलो गण्ड एव च ॥ ४०१ ॥
हनुः सृक्कं च कर्णश्च भ्रूः शङ्खः शिर एव च ।
ब्रह्मरन्ध्रं व्यापकं च सर्वं तदिति वर्णितम् ॥ ४०२ ॥
न्यासस्यैतस्य सर्वोऽपि विस्तरः प्रतिपादितः ।
एतेनैव तु न्यासेन तृतीयं पञ्चकं गतम् ॥ ४०३ ॥

संहारन्यास के स्थान—अब इस न्यास के स्थान को यत्न के साथ समझो । पैर गुल्फ एड़ी जानु वंक्षण कटि स्फिक् कुक्षि पार्श्व चूचुक अंस जत्रु कक्ष कफोणि मणिबन्ध कराङ्गुलियाँ उनके अग्रभाग प्रगण्ड नासिका ओष्ठ अधर दन्त कपोल गण्ड हनु सृक्क कान भौंह शङ्ख शिर ब्रह्मरन्ध्र और व्यापक यह सब बतला दिया गया ।

इस न्यास का सम्पूर्ण विस्तार प्रतिपादित हो गया । इसी न्यास से तीसरा और पाँचवा भी गतार्थ हो गया ॥ ३९९-४०३ ॥

[संहारन्यासस्य फलश्रुतिः]

नैमित्तिकत्वे कौलानां काम्यत्वे गृहधर्मिणाम् ।
नित्यत्वे यतिधर्माणां न्यास एष व्यवस्थितः ॥ ४०४ ॥
नित्यो भवतु काम्यो वाऽप्यथ नैमित्तिकोऽपि वा ।
फलातिरेककामैस्तु कर्तव्यः प्रत्यहं प्रिये ॥ ४०५ ॥
विद्यार्थिभिर्न्यास एष कर्तव्यः किन्तु यत्नतः ।
पाठशून्यापि तद्वाणी गद्यपद्यमयी भवेत् ॥ ४०६ ॥

संहारन्यास का फल—यह न्यास कौलों के लिये नैमित्तिक, गृहस्थों के लिये काम्य और संन्यासियों के लिये नित्य के रूप में व्यवस्थित है । हे प्रिये! नित्य नैमित्तिक अथवा काम्य कोई भी हो जो लोग अधिक फल चाहते हैं, वे इसका प्रतिदिन अनुष्ठान आयोजित करें । विद्यार्थी लोगों को भी यह न्यास यत्नपूर्वक सम्पन्न करना चाहिये । ऐसा करने पर पाठशून्य भी उस विद्यार्थी की वाणी गद्यपद्यमयी हो जाती है ॥ ४०४-४०६ ॥

[अनाख्यान्यासोद्देशस्तस्य च ऋष्यादिनिर्देशः]

चतुर्थं पञ्चकमतः शृणु देवि समीहिता ।
यस्यादिभूतः कथितोऽनाख्यान्यासः शुभावहः ॥ ४०७ ॥
अनाख्याख्यस्य चैतस्य ऋषिः कपिल इष्यते ।
छन्दोऽतिशक्वरी ज्ञेया देवता गुह्यकालिका ॥ ४०८ ॥
बीजं शाम्भवकूटं हि शक्तिर्माहेश्वराह्वयम् ।
कीलकं चास्य कथितं कूटमीशाननामकम् ॥ ४०९ ॥
विनियोगस्तु कैवल्यपदप्राप्त्यै वरानने ।

अनाख्या न्यास और उसके ऋषि आदि—हे देवि! अब इच्छा वाली तुम चौथे और पाँचवें न्यास को ध्यान से सुनो । जिस (= चतुर्थ और पञ्चम) में शुभङ्कर अनाख्या न्यास प्रथम कहा गया है । इस अनाख्या न्यास के ऋषि कपिल माने जाते हैं । इसके छन्द अतिशक्वरी और देवता गुह्यकाली को समझना चाहिये । बीज शाम्भवकूट और शक्ति माहेश्वर नामक कूट हैं । ईशानकूट को इसका कीलक कहा गया है। हे वरानने! इसका विनियोग कैवल्य पद को प्राप्त करने के लिये होता है ॥४०७-४०९ ॥

[अनाख्यान्यासस्य सामान्योद्धारः]

आदौ सामान्यमुद्धारं वक्ष्ये पश्चाद् विशेषतः ॥ ४१० ॥

सर्वेषामेव मन्त्राणामादौ बीजानि पञ्च वै ।
भिन्नभिन्नानि तानीह कथितानि मनुं प्रति ॥ ४११ ॥
ततो नु नामानि पृथक् पृथक् सर्वमनौ शिवे ।
ङेऽन्तानि तानि सर्वाणि प्रोक्तानि प्रतिमन्त्रकम्॥ ४१२ ॥
ततोऽप्यनाख्यारूपेति स्थिरमक्षरपञ्चकम् ।
सर्वेष्वपि हि मन्त्रेषु विज्ञातव्यं विचक्षणैः ॥ ४१३ ॥
पुनर्बीजत्रयं भिन्नं भिन्नं प्रतिमनु प्रिये ।
वर्णास्त्रयोदश ततः सर्वमन्त्रे स्थिरा मताः ॥ ४१४ ॥
तानि तु प्रेयसि चराचरे जगति चेत्यपि ।
स्वशक्तिसहिता चेति स्थैर्यभाञ्ज्युदितानि ते ॥ ४१५ ॥
पुनः कूटत्रयं सर्वमन्त्रेषु च पृथक् पृथक् ।
अष्टौ वर्णास्ततो देवि सर्वत्रैव स्थिरा मताः ॥ ४१६ ॥
परमात्मनि चेत्यस्माद्विलीयेऽष्टाक्षराद्यदः ।
ततस्तारः स्थिरः सोऽपि ततो हृन्मनुरुच्यते ॥ ४१७ ॥
तस्यान्तेऽपि शिरोमन्त्रः स चायं च स्थिरो मतः ।
इति सामान्यतः प्रोक्तो विशेषमधुना शृणु ॥ ४१८ ॥

अनाख्या न्यास का सामान्य उद्धार—पहले मैं सामान्य उद्धार बतलाऊँगा बाद में विशेष रूप से वर्णन करूँगा । सभी मन्त्रों के आदि में पाँच बीज रहते हैं । वे भिन्न-भिन्न होते हैं । वे मन्त्र के साथ कहे गये होते हैं । हे शिवे! उसके बाद समस्त मन्त्रों में पृथक्-पृथक् नाम होते हैं । प्रत्येक मन्त्र में वे सब ङेऽन्त अर्थात् चतुर्थी एकवचनान्त कहे गये होते हैं । इसके बाद 'अनाख्यारूपा' ये पाँच अक्षर स्थायी रहते हैं। विद्वान् लोग इनको सभी मन्त्रों में स्थिर समझें । हे प्रिये! पुनः प्रत्येक मन्त्र में तीन-तीन भिन्न बीज होते हैं । इसके पश्चात् समस्त मन्त्रों में तेरह वर्ण स्थिर माने गये हैं । हे प्रेयसि! वे हैं—'चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता ।' ये सब स्थिर कहे गये हैं। पुनः सब मन्त्रों में तीन-तीन पृथक् कूट रहते हैं । हे देवि! इसके बाद आठ वर्ण सर्वत्र स्थिर माने गये हैं । वे आठ अक्षर हैं—'परमात्मनि विलीये ।' उसके बाद ॐकार स्थायी है । उसके बाद हृन्मन्त्र और शिरोमन्त्र रहता है । वह भी स्थिर माना गया है । इस प्रकार सामान्य उद्धार कहा गया, अब विशेष को सुनो ॥ ४१०-४१८ ॥

[अनाख्यान्यासस्य विशेषोद्धारः]

सारस्वतत्रपालक्ष्मीकामवध्वः क्रमादिमाः ।
पाशकूर्चक्षेत्रपालहयग्रीवमहारुषः ॥ ४१९ ॥
संहिता हाकिनी ध्यानचञ्चूविधय एव च ।
गौरंशुशुक्लौ राका च मेषस्तदनु कथ्यते ॥ ४२० ॥

साक्षी पंक्तिर्योगकलौ मुकुलोऽपि ततः स्मृतः ।
विलासः संग्रहो घाटी भावातीतौ ततोऽपि च ॥ ४२१ ॥
कुम्भामृतावेशसोमकिन्नरास्तदनन्तरम् ।
मालानीले च कुलिकं प्रेतो भैरव्यथापि च ॥ ४२२ ॥
रौद्रानन्दौ च नागश्च भारुण्डा काकिनी तथा ।
त्वष्टा दस्रश्च शक्तिश्च नक्षत्रं विद्युदेव च ॥ ४२३ ॥
कर्ता सारङ्गखट्वाङ्गौ हलस्तदनु च क्रिया ।
इष्टिव्रते च निर्मोकवेतण्डधनदा अपि ॥ ४२४ ॥
कङ्कालं मानसं शान्तिरुग्रं डामरमेव च ।
नेमिश्चण्डश्च विश्वं च कुमारी फैरवादिमा ॥ ४२५ ॥
भोगः सृष्टिश्च फेत्कारी त्रेता कृत्या तथैव च ।
सान्वक्षमौञ्जीसूत्राणि रेचकः स्यात् ततः परम् ॥ ४२६ ॥
रङ्कता!टङ्कलीलाश्च धेनुर्मारिषमेव च ।
ततः सन्धानसिञ्जिन्यौ लिङ्गनैमेयसिन्धुराः ॥ ४२७ ॥
भ्रामरी च प्रचण्डा च डाकिन्यपि ततः परम् ।
केकराक्षी कालरात्रिरूनविंशति (त?) मा मता ॥ ४२८ ॥

अनाख्या न्यास का विशेष उद्धार—सारस्वत लज्जा लक्ष्मी काम वधू ये क्रम से रहते हैं । पाश कूर्च क्षेत्रपाल हयग्रीव महाक्रोध, संहिता हाकिनी ध्यान चञ्चु विधि, उसके बाद गौ अंशु शुक्ल राका मेष कहा जाता है । इसके पश्चात् साक्षी पंक्ति योग कला मुकुल माना गया है । विलास संग्रह घाटी (= घटी) भाव अतीत, उसके अनन्तर कुम्भ अमृत आवेश सोम किन्नर, माला नील कुलिक प्रेत भैरवी, फिर रौद्र आनन्द नाग भारुण्डा काकिनी, त्वष्टा दस्र शक्ति नक्षत्र विद्युत्, कर्त्ता सारङ्ग खट्वाङ्ग हल क्रिया, इष्टि व्रत निर्मोक वेतण्ड धनदा, कङ्काल मानस शान्ति उग्र डामर, नेमि चण्ड विश्व कुमारी फैरव, भोग सृष्टि फेत्कारी त्रेता कृत्या, सानु अक्ष मौञ्जी सूत्र रेचक, उसके बाद रङ्क ताटङ्क लीला धेनु मारिष, उसके पश्चात् सन्धान सिञ्जिनी लिङ्ग नैमेय सिन्धुर, भ्रामरी प्रचण्डा डाकिनी केकराक्षी और कालरात्रि यह उन्नीसवीं कही गयी है ॥ ४१९-४२८ ॥

सुरसः समरश्चैव रागः सारस एव च ।
त्रिपुरा च ततो ज्ञेया ततः कौलशिलं मतम् ॥ ४२९ ॥
मधुपर्कस्ततश्चापि त्रिदैवतमनूद्यते ।
त्रयीमयं त्रिदैवं च गायत्रीकर्णिके ततः ॥ ४३० ॥
शृङ्खलौपह्वरे वापि नान्दिकं तदनु स्मृतम् ।
ततश्च भद्रिका तन्द्रा कुटिला रञ्जिनी घटी ॥ ४३१ ॥
सुकृतं दुष्कृतं पद्मं कुशिको व्यय एव च ।

संहारिबीजं तदनु नादान्तक इतः परम् ॥ ४३२ ॥
चामरव्यजने उक्त्वा विधृतिः परिपठ्यते ।
औपदेयं च मारण्डविनादौ तदनन्तरम् ॥ ४३३ ॥
विमर्दशेखरौ चापि मौलिञ्जः सविरूपकः ।
अपरान्तश्च प्रकरीबिन्दुकौ तदनन्तरम् ॥ ४३४ ॥
विरसं दाक्षिकं चापि सौमतं सप्रतानकम् ।
विदिक् (च?)चर्पटं चापि
मणिमाला च हारिणी ॥ ४३५ ॥
उत्कोचिनी च कौलुञ्चं निस्तनः सविराधकः ।
तुरीया ग्रावपथ्ये च ततश्चापि मनोजवा ॥ ४३६ ॥
मोदकं वासितौजस्विशफानि तदनन्तरम् ।
शक्तिसर्वस्वमुल्लिख्य परापरमुदीरयेत् ॥ ४३७ ॥
शाम्भवं चापि चिच्छक्तिस्ततः सायुज्यमित्यपि ।
इति द्वात्रिंशदुदिता बीजपंक्तिर्वरानने ॥ ४३८ ॥

उसके बाद सुरस समर राग सारस त्रिपुरा जाननी चाहिये । ततः कौलशिल मधुपर्क त्रिदैवत कहा जाता है । त्रयीमय त्रिदैव, गायत्री कर्णिका शृङ्खला औपह्वर नान्दिक कहा गया है । इसके बाद भद्रिका तन्द्रा कुटिला रञ्जिनी घटी, सुकृत दुष्कृत पद्म कुशिक व्यय, संहारीबीज नादान्तक चामर व्यजन कहकर विधृति को पढ़ा जाता है । औपदेय मारण्ड विनाद उसके बाद विमर्द शेखर, मौलिञ्ज विरूपक अपरान्त प्रकरी विन्दु, उसके अनन्तर विरस दाक्षिक सौमत प्रतान विदिक्, चर्पट मणिमाला हारिणी उत्कोचिनी कौलुञ्च, निस्तन विराध तुरीया ग्रीवा पथ्य, मनोजवा मोदक वसित ओजस्वि शफ, तदनन्तर शक्तिसर्वस्व का उल्लेख कर परापर कहना चाहिये । शाम्भव चिच्छक्ति उसके बाद सायुज्य । हे वरानने! इस प्रकार बत्तीस बीज पंक्ति कही गयी ॥४२९-४३८ ॥

ङेऽन्तया तु विभक्त्या वै शब्दा ये संवृताः खलु ।
व्याहराम्यधुना तांस्तु यैस्तु व्यक्तिर्भविष्यति ॥ ४३९ ॥
परमाणुरथाग्निश्च चक्षुः स्यात् तदनन्तरम् ।
ततो लिङ्गशरीरं च परमात्मा तथैव च ॥ ४४० ॥
विश्वप्रपञ्चश्चाज्ञानमिन्द्रजालमतः परम् ।
निराकारमथाभ्यासः समीरो व्यक्तिरेव च ॥ ४४१ ॥
आम्नायश्चाध्वरो बीजाङ्कुरो कलिलमेव च ।
क्षीराहारौ च तेजश्च द्रवद्रव्यं तथैव च ॥ ४४२ ॥
होमः प्रपञ्चो मेधादिर्मादकादिस्ततः परम् ।
मयूखश्च क्रियादिश्च ततः सत्त्वगुणो मतः ॥ ४४३ ॥

रजोगुणस्ततो ज्ञेयस्तमोगुण इतः परम् ।
ततो जन्यपदार्थश्च पुनराकाशमुच्यते ॥ ४४४ ॥
सर्वत्रेति पदं सर्वं शेषे तु विनियोजयेत् ।
इति द्वात्रिंशसंख्याकाः शब्दास्तव मयोदिताः ॥ ४४५ ॥
अनाख्येति च शब्दस्य शब्दान् पूर्वस्थितान् शृणु ।
अनाख्यारूपशब्दस्य यैः समासः सुरेश्वरि ॥ ४४६ ॥
आदौ ह्यवयवं शैत्यं दर्शनं भोग एव च ।
चैतन्यं च ततो ज्ञेयमतीन्द्रियमपीश्वरि ॥ ४४७ ॥
अध्यासश्च प्रतीतिश्च ततोऽसम्भावनापि च ।
आनन्दमय इत्येवं धारणा जातिरेव च ॥ ४४८ ॥

अब जो शब्द ङेऽन्त विभक्ति से युक्त हैं उनको मैं बतला रहा हूँ । उससे स्पष्टता हो जायेगी । वे शब्द हैं—परमाणु अग्नि चक्षुष तदनन्तर लिङ्ग शरीर परमात्मा विश्वप्रपञ्च अज्ञान इन्द्रजाल फिर निराकार अभ्यास समीर व्यक्ति आम्नाय अध्वर बीजाङ्कुर कलिल क्षीर आहार तेजस् द्रवद्रव्यं होम प्रपञ्च मेधादि मादकादि उसके परे मयूख क्रियादि सत्त्वगुण रजोगुण तमोगुण पुनः जन्यपदार्थ फिर आकाश कहा जाता है । सबके अन्त में सर्वत्र पद को जोड़ना चाहिये । इस प्रकार तुमको मैंने बत्तीस शब्द बतलाया । हे सुरेश्वरि! अब जिनके साथ 'अनाख्यारूप' शब्द का समास होता है उन 'अनाख्या' शब्द के पूर्ववर्त्ती शब्दों को सुनो । अवयव शैत्य दर्शन भोग चैतन्य उसके बाद हे सुरेश्वरि! अतीन्द्रिय जानना चाहिये । अध्यास प्रतीति असम्भावना आनन्दमय धारणा जाति शब्द रहते हैं ॥ ४३९-४४८ ॥

प्रामाण्यमप्यपूर्वं च रसादिस्तदनन्तरम् ।
विश्वोत्पत्तिर्हरिश्चैव द्वयं तदनु कथ्यते ॥ ४४९ ॥
बलादिपरिपाकश्च ह्युष्णता क्लिन्नता तथा ।
विश्वोत्पत्तिस्तथाविर्भावतिरोभाव एव च ॥ ४५० ॥
तथावरकविक्षेपौ तत उन्नमनं मतम् ।
विभागः पालनं सृष्टिः संहारो ध्वंस एव च ॥ ४५१ ॥
शून्यता सर्वशेषे तु तत्तद्रूपं सुरेश्वरि ।
अनाख्याशब्दपूर्वस्थपदानि कथितानि ते ॥ ४५२ ॥
अथ बीजत्रयं देवि क्रमतो ह्यवधारय ।
उल्लोप्यं विस्मृतिः पाणिगीतिश्चेत्यङ्कुरत्रयम् ॥ ४५३ ॥
ततो गुह्यकपाटश्च संसृष्टिः सविकोशकः ।
सम्पूर्णा भस्मसङ्कल्पा विधानं संविधानकम् ॥ ४५४ ॥
कलहश्च ततः संदर्शनं यौक्तिकमञ्जरी ।
विवर्तकश्च पारीन्द्रः शुभंयुस्तदनन्तरम् ॥ ४५५ ॥

विक्रमश्चापि संक्रान्तिः कुलमुद्रा तथैव च ।
संव्यानं संबलं चापि धम्मिल्लस्तदनु स्मृतः ॥ ४५६ ॥
ततो विनिमयः सञ्जीवनी च सविपक्षका ।
अथ सम्भावसंयोगौ वियोगश्चापि कथ्यते ॥ ४५७ ॥
चाक्रिको विक्रियश्चापि सालङ्कस्तदनन्तरम् ।
विवृत्तमथ सङ्गूढं वैधानं स्यात् ततः परम् ॥ ४५८ ॥

प्रामाण्य अपूर्व रसादि उसके बाद विश्वोत्पत्ति और हरि ये दोनों कहे जाते हैं । बलादि परिपाक उष्णता क्लिन्नता विश्वोत्पत्ति आविर्भाव तिरोभाव आवरक विक्षेप इसके बाद उन्नमन कहा गया है । विभाग पालन सृष्टि संहार ध्वंस शून्यता और सबके अन्त में हे सुरेश्वरि! तत्तद्रूप कहा जाता है । तुमको 'अनाख्या' शब्द के पूर्ववर्त्ती शब्द बतलाये गये । हे देवि! अब क्रम से तीन बीजों को समझो । उल्लोप्य विस्मृति पाणिगीति, तीन अङ्कुर (= कहां कहीं कहूं), गुह्यकपाट संसृष्टि विकोशक, सम्पूर्णा भस्म सङ्कल्प, विधान संविधान कलह, सन्दर्शन यौक्तिक मञ्जरी, विवर्त्तक पारीन्द्र शुभंयु, विक्रम संक्रान्ति कुलमुद्रा, संव्यान संबल धम्मिल्ल, विनिमय सञ्जीवनी विपक्षका, सम्भाव संयोग वियोग कहे जाते हैं । उसके बाद चाक्रिक विक्रिय सालङ्क तदनन्तर विवृत्त सङ्गूढ वैधान होता है ॥ ४४९-४५८ ॥

आतङ्कादित्रयं पश्चात् पारावारौ सहेतुकौ ।
जूटं शापश्च शपथ एषणा चञ्चलान्तका ॥ ४५९ ॥
पृश्निक्षुद्रौ ततो ज्ञेयौ सर्वनाडी सुरार्चिते ।
आज्ञोदारपिनाकाश्च क्षुधासन्तानमोक्षकाः ॥ ४६० ॥
नन्दाजटावैमलाश्च पिङ्गला च चिता ध्वजः ।
अलक्ष्यमक्षरं चापि महोदय इतः परम् ॥ ४६१ ॥
चरमो गूढकीलौ च भावशौण्डिककौलिकाः ।
पंक्तियोगोत्तमाः पश्चात् स्थावरो जङ्गलग्लहौ ॥ ४६२ ॥
प्रादेशविघ्नस्वात्यश्च गुणमूले च वारुणी ।
अघं दिष्टस्तथा व्याडो महिमा यत्नजालयुक् ॥ ४६३ ॥
वीथीपणौषराश्चापि भवेदेकावली ततः ।
ततो तु वज्रकवचं तथा ब्रह्मकपालकम् ॥ ४६४ ॥
सर्वशेषे सान्तपनं जगदावृत्तिरेव च ।
महाकल्पस्थायिबीजं ततोऽपि परमेश्वरि ॥ ४६५ ॥
इत्थं सर्वेषु मन्त्रेषु त्रित्रिबीजं क्रमेण हि ।
सावधानतया देयं कूटानि शृण्वतः परम् ॥ ४६६ ॥
बीजवत्त्रित्रिकूटानि प्रदातव्यान्यनुक्रमात् ।
शाम्भवेशानलिङ्गानि कूटानि प्रथमानि हि ॥ ४६७ ॥

**वैहायसं वायवीयं हंसकूटं ततः परम् ।
प्रासादाचलमन्दारकूटानि तदनन्तरम् ॥ ४६८ ॥**

आतङ्क आदि तीन (= क्लखफ्रीं क्लखफ्रूं क्लखफ्रैं), बाद में पार आवार हेतु, जूट शाप शपथ, एषणा चञ्चला अन्तका, इसके बाद हे सुरार्चिते! पृश्नि क्षुद्र सर्वनाडी, आज्ञा उदार पिनाक, क्षुधा सन्तान मोक्ष, नन्दा जटा वैमल, पिञ्जला चिता ध्वज, अलक्ष्य अक्षर महोदय, इसके बाद चरम गूढ कील, भाव शौण्डिक कौलिक, पंक्ति योग उत्तम के पश्चात् स्थावर जङ्गल ग्लह, प्रादेश विघ्न स्वाती, गुण मूल वारुणी, अघ दिष्ट व्याड, महिमा यत्न जालयुक्, वीथी पण ऊषर, एकावली वज्रकवच ब्रह्मकपाल, सबके अन्त में सान्तपन जगदावृत्ति इसके बाद हे परमेश्वरि! महाकल्पस्थायी[1] बीज होता है । इस प्रकार सब मन्त्रों में तीन-तीन बीज क्रम से देना चाहिये । अब इसके बाद कूटों को सुनो। बीजों की भाँति क्रम से तीन-तीन कूटों को भी देना चाहिये । प्रथम कूट शाम्भव ईशान और लिङ्ग कहा गया है । उसके बाद वैहायस वायवीय और हंसकूट है । तदनन्तर प्रासाद अचल और मन्दारकूट है ॥ ४५९-४६८ ॥

**स्वस्तिकोदयगन्धर्वकूटानि स्युरतः परम् ।
ततः पाशुपतं कूटं कूटं माहेश्वरं तथा ॥ ४६९ ॥
ततः कूटं तत्पुरुषसंज्ञकं समुदीरितम् ।
त्रैपुरं शाङ्करं वापि रोदसीकूटमेव च ॥ ४७० ॥
वामदेवाघोरसद्योजातकूटान्यतः परम् ।
आग्नेयं नारसिंहं च वाराहं कूटमन्वतः ॥ ४७१ ॥
धराकूटं याम्यकूटं गौह्यकं कूटमेव च ।
रौद्रं मृत्युञ्जयं कूटं कूटं श्रीकण्ठसंज्ञकम् ॥ ४७२ ॥
पदक्रमजटाकूटान्यतः परमुदीरयेत् ।
मालाकूटं दृष्टिकूटं डाकिनीकूटमेव च ॥ ४७३ ॥
मन्दरेखापौर्णकामकूटानि तदनन्तरम् ।
सिद्धिकूटं शक्तिकूटं कूटं पैशाचनामकम् ॥ ४७४ ॥
सृष्टिः स्थितिश्च संहारकूटानीमान्यतः परम् ।
अनाख्या भासया सार्द्धं कूटं वासवमेव च ॥ ४७५ ॥
सत्त्वं रजस्तम इति कूटान्यस्यानु पार्वति ।
मन्थानमालात्रिजटाकूटान्येतस्य निश्चितम् ॥ ४७६ ॥
किञ्जल्ककुलनीलानि कूटान्येतस्य पश्चिमे ।
त्रिकूटमेरुकैलासाः कूटाः स्युस्तदनन्तरम् ॥ ४७७ ॥**

---

[1] एकावली से लेकर महाकल्पस्थायी तक के छह पदों का उल्लेख बत्तीस न्यास में नहीं है । ये बत्तीस से अधिक कहे गये हैं ।

सेतुकूटं मन्त्रकूटं कूटं सामयिकं तथा ।
मूलाधारः पुष्करं च कूटं हैरण्यगर्भकम् ॥ ४७८ ॥

इसके बाद स्वस्तिक उदय और गन्धर्व कूट होते हैं । फिर पाशुपतकूट माहेश्वरकूट फिर तत्पुरुषकूट कहा गया है । त्रैपुर शाङ्कर रोदसी कूट इसके बाद वामदेव अघोर सद्योजात कूट आग्नेयकूट फिर नारसिंहकूट वाराहकूट धराकूट याम्यकूट गुह्यकूट रौद्रकूट मृत्युञ्जयकूट श्रीकण्ठकूट पदकूट क्रमकूट जटाकूट कहने चाहिये । मालाकूट दृष्टिकूट डाकिनीकूट मन्दकूट रेखाकूट पूर्णकामकूट उसके बाद सिद्धिकूट शक्तिकूट पैशाचकूट सृष्टि स्थिति संहार कूट, अनाख्या भासा वासव कूट, इसके बाद हे पार्वति! सत्त्व रजस् और तमस् कूट, मन्थानमाला त्रिजटा कूट, किञ्जल्ककूट कुलकूट नीलकूट इसके बाद त्रिकूटकूट मेरुकूट कैलासकूट होते हैं । तदनन्तर सेतुकूट मन्त्रकूट तथा समयकूट, मूलाधार पुष्कर और हिरण्यगर्भ कूट होते हैं ॥ ४६९-४७८ ॥

विशुद्धानाहताज्ञाख्याः कूटाः स्युर्देव्यतः परम् ।
स्वाधिष्ठानं कुण्डलिनी मणिपूरकमेव च ॥ ४७९ ॥
प्राजापत्योग्रबृहतः पुनः कूटाः भवन्ति हि ।
ऋग्यजुःसामकूटानि तदनन्तरमीश्वरि ॥ ४८० ॥
ज्ञानमैश्वर्यकूटं च वैराग्यं कूटमेव च ।
ततः कूटाः पुनर्ज्ञेयाः शुद्धाविद्यामहोदयाः ॥ ४८१ ॥
बुद्ध्यहङ्कारचित्तानि कूटानीतः परं प्रिये ।
वासिष्ठं कापिलं कूटं गुह्याकूटं ततः परम् ॥ ४८२ ॥
धौमावत्यं तथा ज्योतिर्मयं चाङ्गिरसं तथा ।
प्रबोधाशयचैतन्यकूटानि तदनन्तरम् ॥ ४८३ ॥
द्वात्रिंशत् संख्यका पंक्तिरित्थं भवति भामिनि ।
एवं विशेषः कथितो ह्यनाख्यान्यास ईश्वरि ॥ ४८४ ॥

हे देवि! इसके बाद विशुद्ध अनाहत आज्ञा कूट होते हैं । स्वाधिष्ठान कुण्डलिनी मणिपूर पुनः प्राजापत्य उग्र बृहत् कूट होते हैं । हे ईश्वरि! उसके बाद ऋग् यजुः साम कूट, ज्ञानकूट ऐश्वर्यकूट वैराग्यकूट इसके बाद शुद्धा विद्या महोदय कूटों को जानना चाहिये । इसके बाद हे प्रिये! बुद्धि अहङ्कार और चित्त कूट, वसिष्ठ कपिल गुह्या कूट, धौमावत्य ज्योतिर्मय आङ्गिरस, प्रबोध आशय चैतन्य कूट होते हैं । हे भामिनि! इस प्रकार बत्तीस पंक्तियाँ होती हैं । हे ईश्वरि! इस प्रकार अनाख्या न्यास का विशेष उद्धार बतलाया गया ॥ ४७९-४८४ ॥

[अनाख्यान्यासस्य फलश्रुतिः]

कर्तव्यता पूर्वमुक्ता काम्यत्वे नित्यतासु च ।

नैमित्तिकत्वेऽपि तथा रीतिः प्रोक्ता पुरैव हि ॥ ४८५ ॥
अनाख्यासदृशो न्यासो न भूतो न भविष्यति ।
ज्ञात्वेत्थं चेतसि शिवे यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ४८६ ॥
किमन्यैर्न्यासविस्तारैरनाख्यां कुर्वतोऽन्वहम् ।
अकुर्वतो न्यासमेनं किमन्यैर्न्यासविस्तरैः ॥ ४८७ ॥

अनाख्या न्यास की फलश्रुति—इस न्यास की काम्य कर्त्तव्यता एवं नित्य कर्त्तव्यता पहले कही जा चुकी है । नैमित्तिक में भी रीति पहले ही कही गयी । अनाख्यासदृश न्यास न हुआ और न होगा । ऐसा मन में समझ कर हे शिवे! जैसा चाहो वैसा करो। कोई यदि इस न्यास को प्रतिदिन करता है तो अन्य न्यास विस्तारों से क्या लाभ? और इस न्यास को न करने वाले के लिये अन्य न्यास-विस्तार व्यर्थ है ॥ ४८५-४८७ ॥

[भासान्यासोद्देशस्तस्य च ऋष्यादिनिर्देश:]

भासान्यासमिदानीं त्वं मत्तः कलय सादरा ।
अनाख्यान्यासतोऽप्येष गूढः सर्वागमेष्वपि ॥ ४८८ ॥
स्थितिसंहारकौ न्यासौ जाग्रत्स्वप्नसमौ मतौ ।
सुषुप्तितुल्योऽनाख्याख्यःसमा भासा तुरीयया ॥ ४८९ ॥
यथा तुरीयया नैव संसारे पुनरागमः ।
भासामभ्यस्यतस्तद्वन्न भवेद् भवबन्धनम् ॥ ४९० ॥
कदाचित् पुनरावृत्तिः संसारे स्यादनाख्यया ।
भासया न परार्द्धानां कोटिभिः संसृतौ जनुः ॥ ४९१ ॥
इति सामान्यतो ह्यस्य फलं समुपवर्णितम् ।
विशेषतः पुनर्वक्तुं मम शक्तिर्न विद्यते ॥ ४९२ ॥
मुमुक्षूणामियं नित्याऽन्येषां काम्या निगद्यते ।
नैमित्तिकतया नैषा कदाप्युक्ता विचक्षणैः ॥ ४९३ ॥

भासा न्यास और उसके ऋषि आदि—अब तुम मुझसे आदरपूर्वक भासा न्यास सुनो । यह अनाख्या न्यास से भी गूढ है । समस्त आगमों में स्थिति संहार न्यास जाग्रत् और स्वप्न के समान माने गये हैं । अनाख्या सुषुप्ति के तुल्य तथा भासान्यास तुरीया अवस्था के सदृश माना गया है । जिस प्रकार तुरीया अवस्था प्राप्त होने के बाद संसार में पुन: आगम नहीं होता उसी प्रकार भासा न्यास का अभ्यास करने वाले को संसारबन्ध की यातना नहीं झेलनी पड़ती । अनाख्या के द्वारा कभी संसार में जन्म लेना पड़ सकता है किन्तु भासा न्यास से परार्ध कोटि सृष्टि में जन्म नहीं लेना पड़ता । यह सामान्यत: इसका फल बतलाया गया । विशेष रूप से बतलाने के लिये मेरे पास शक्ति नहीं है । यह मुमुक्षुओं के लिये

नित्य तथा अन्यों के लिये काम्य कही जाती है । किन्तु विद्वानों ने इसको नैमित्तिक कदापि नहीं कहा ॥ ४८८-४९३ ॥

एतस्य भासान्यासस्य सदाशिव ऋषिर्मतः ।
छन्दो बृहत्यप्युदिता देवता गुह्यकालिका ॥ ४९४ ॥
प्रणवो बीजमुदितं वाग्भवः शक्तिरुच्यते ।
शाकिनी कीलकं चापि डाकिनी तत्त्वमेव च ॥ ४९५ ॥
विनियोगस्तु कैवल्यलब्धये परिकीर्तितः ।

इस भासा न्यास के ऋषि सदाशिव माने गये हैं । छन्द बृहती और देवता गुह्यकाली कही गयी है । प्रणव अर्थात् ॐ बीज है, वाग्भव अर्थात् ऐं शक्ति कही गयी है । शाकिनी अर्थात् फ्रें कीलक और डाकिनी अर्थात् खफ्रें तत्त्व कहा गया है । इसका विनियोग कैवल्यप्राप्ति के लिए होता है ॥ ४९४-४९५- ॥

[भासान्यासस्य सामान्योद्धारः]

अथ सामान्यमुद्धारं पुरतः कथयामि ते ॥ ४९६ ॥
विशेषं तु पुनर्वक्ष्ये येन व्यक्तिर्भविष्यति ।
नव बीजानि पुरतः प्रतिमन्त्रं स्थिराणि च ॥ ४९७ ॥
ततो नामानि भिन्नानि भिन्नानि कथितानि हि ।
तैः शक्तिशब्दस्य शिवे कर्तव्यो विग्रहः सदा ॥ ४९८ ॥
स पुनर्ङिविभक्त्यन्तः कर्तव्यः सर्वदैव हि ।
पूर्वशब्दोऽस्थिरो ज्ञेयः स्थेयानप्युत्तरस्तथा ॥ ४९९ ॥
भासाकारेति वर्णानि चत्वारि प्रतिमन्त्रकम् ।
स्थिराण्युक्तानि देवेशि ततः शब्दाः पृथक् पृथक् ॥ ५०० ॥
सर्वेषु मनुषु ज्ञेया सप्तम्यन्ता सुरेश्वरि ।
निराभासेति तत् पश्चात् सुस्थिरा चतुरक्षरी ॥ ५०१ ॥
ततो नु पञ्चबीजानि सर्वत्रागन्तुकानि हि ।
ज्ञानविज्ञानरूपेति ततोऽनन्तरमीश्वरि ॥ ५०२ ॥
सप्तवर्णाः स्थिराः प्रोक्ता निखिलेषु मनुष्वपि ।
पुनः सर्वत्र बीजानि ततस्त्रीणि चलानि हि ॥ ५०३ ॥
ततो भगवती गुह्यकालीत्यष्टाक्षरं स्थिरम् ।
सर्वमन्त्रेषु विज्ञेयं कूटमेकं ततश्चलम् ॥ ५०४ ॥
सर्वत्रैव परिज्ञेयं विशेषेण चलं स्थिरम् ।
वर्णाः सप्तैव मयि लीयतां स्वाहेति पार्वति ॥ ५०५ ॥
प्रतिमन्त्रं सर्वशेषे स्थिरा ज्ञेया तु साधकैः ।
इति सामान्य उद्धारो भासान्यासस्य कीर्तितः ॥ ५०६ ॥

भासा न्यास का सामान्य उद्धार—अब तुम्हारे सामने इसका सामान्य उद्धार कह रहा हूँ । विशेष उद्धार को बाद में कहूँगा जिससे स्पष्टता हो जायेगी । सबसे पहले प्रत्येक मन्त्र में नव बीज स्थिर होते है । इसके बाद भिन्न-भिन्न नाम कहे जाते हैं । हे शिवे! उनका 'शक्ति' शब्द से संयोजन करना चाहिये और वह सदा ङिविभक्त्यन्त करना चाहिये । पूर्व शब्दों को अस्थायी तथा उत्तरवर्त्ती शब्द को स्थिर जानना चाहिये। हे देवेशि! 'भासाकारा' ये चार वर्ण प्रत्येक मन्त्र में स्थिर बतलाये गये हैं । इसके बाद के शब्द पृथक्-पृथक् होते हैं । हे सुरेश्वरि! इनको सभी मन्त्रों में भासाकारा को सप्तम्यन्त जानना चाहिये । इसके पश्चात् 'निराभासा' यह चतुरक्षरी स्थिर रहती है । इसके बाद सर्वत्र पाँच बीज आगन्तुक होते हैं । इसके बाद हे ईश्वरि! समस्त मन्त्रों में 'ज्ञानविज्ञानरूपा' ये सात वर्ण स्थिर कहे गये हैं । इसके बाद सर्वत्र तीन वीज चल होते हैं । इसके बाद 'भगवती गुह्यकाली' ये आठ अक्षर स्थिर रहते हैं । इसके पश्चात् सब मन्त्रों में एक कूट चल जानना चाहिये । हे पार्वति! 'मयि लीयतां स्वाहा' ये सात वर्ण सर्वत्र स्थिर होते हैं। साधक इनको प्रत्येक मन्त्र में स्थिर जाने। इस प्रकार भासा न्यास का सामान्य उद्धार कहा गया ॥ ४९६-५०६ ॥

[भासान्यासस्य विशेषोद्धारः]

अथ वक्ष्ये विशेषेण स्फुटस्तेन भविष्यति ।
प्रणवः शाकिनी माया डाकिनी योगिनी तथा॥ ५०७ ॥
प्रलयश्च वधूश्चैव फेत्कारी तार एव च ।
एतानि नव बीजानि स्थिराण्युक्तानि ते मया ॥ ५०८ ॥
श्रृण्वतः शक्तिशब्दस्य पूर्वस्थानि पदानि हि ।
ज्ञानमिच्छाक्रियाश्रद्धाधृतिर्मेधाऽणिमा तथा ॥ ५०९ ॥
माया प्रभा विशुद्धिश्च ऋद्धिर्नित्या स्मृतिस्ततः ।
प्रज्ञा प्रीतिश्च नीतिश्च कूटस्थं चेतनाऽपि च ॥ ५१० ॥
सत्यं शान्तिस्तथोत्साहः स्नेहः परिमितिस्तथा ।
ततः संयोगसंस्कारौ विवेकः प्रमितिः पुनः ॥ ५११ ॥
योगश्च सुखदुःखं च प्रलयः साक्ष्यथोदितः ।
उपाधिः सर्वशेषे स्यात् शक्तेः पूर्वस्थिता इमे ॥ ५१२ ॥
शब्दान् भिन्नानथो वच्मि भासाकारा पदादनु ।
भ्रमश्च संयमश्चैव वितर्कस्तदनन्तरम् ॥ ५१३ ॥
जुगुप्सा पतनं जाड्यं महद्बन्धनमेव च ।
तिमिरं ह्यध्वरं चापि स्यादकिञ्चनमन्वतः ॥ ५१४ ॥
नश्वरं तदनु ज्ञेयं ततो विस्मरणं पुनः ।
अबोधश्च तथा द्वेषो हर्षो जन्यं ततः परम् ॥ ५१५ ॥

मोहोऽलीकं च लोभश्च तदनन्तरमुच्यते ।
ततोऽनध्यवसायोऽपि कक्ष्योऽमूर्तो वियोगयुक् ॥ ५१६ ॥
तथैवानुपलब्धिश्च ततोऽहङ्कारमेव च ।
आशयश्च च्युतिश्चैव धर्माधर्मस्ततोऽप्यनु ॥ ५१७ ॥
असम्भावित इत्येवं तदनन्तरमुच्यते ।
अदृष्टमथ कैवल्यं सर्वशेषे प्रकीर्तितम् ॥ ५१८ ॥

भासा न्यास का विशेष उद्धार—अब विशेष रूप से कह रहा हूँ । इससे यह न्यास स्पष्ट हो जायगा । प्रणव शाकिनी माया डाकिनी योगिनी प्रलय वधू फेत्कारी और तार ये नव बीज मैने तुमको स्थिर बतलाये हैं । इसके बाद 'शक्ति' शब्द के पहले स्थित शब्दों को सुनो । ज्ञान इच्छा क्रिया श्रद्धा धृति मेधा अणिमा माया प्रभा विशुद्धि ऋद्धि नित्या स्मृति प्रज्ञा प्रीति नीति कूटस्थ चेतना सत्य शान्ति उत्साह स्नेह परिमिति उसके बाद संयोग संस्कार विवेक प्रमिति योग सुख दुःख प्रलय और सबके अन्त में साक्षी उपाधि ये सब 'शक्ति' के पूर्व स्थित कही गयी है । अब 'भासाकारा' पद के पहले आने वाले भिन्न-भिन्न शब्दों को कह रहा हूँ । भ्रम संयम वितर्क उसके बाद जुगुप्सा पतन जाड्य महद् बन्धन तिमिर अध्वर अकिञ्चन नश्वर उसके बाद विस्मरण फिर अबोध द्वेष हर्ष जन्य मोह अलीक लोभ कहा जाता है । तत्पश्चात् अनध्यवसाय कक्ष्य अमूर्त्त वियोग अनुपलब्धि अहङ्कार आशय च्युति धर्म अधर्म उसके बाद असम्भावित कहा जाता है । अदृष्ट और सबके अन्त में कैवल्य कहा गया है ॥ ५०७-५१८ ॥

द्वात्रिंशदिति शब्दाः स्युः भासाकूटात् पदात् पुरा ।
पञ्च पञ्चाथ बीजानि भिन्नान्याकर्णय प्रिये ॥ ५१९ ॥
प्रणवो वाग्भवः पाशः कला सर्वस्ततः परम् ।
लक्ष्मीमायाकामसृणिगारुडास्तदनन्तरम् ॥ ५२० ॥
रावश्छन्दश्चण्डविश्वौ कौणपी तदनन्तरम् ।
पुटककुम्भमहाक्रोधा रेचकक्षेत्रपालकौ ॥ ५२१ ॥
कालीहयग्रीवधर्मजयागौर्यस्ततः परम् ।
विचित्रं धन्यमुल्लोप्यं विस्मृतिःपाणिगीतियुक् ॥ ५२२ ॥
लक्ष्मबीजं विक्रमश्च संक्रमस्तदनन्तरम् ।
कुलमुद्रा चक्रतुम्बी तदनु प्रतिकथ्यते ॥ ५२३ ॥
मोचिनी चापि लाङ्गूलं वर्द्धमानं तथैव च ।
वेत्रमाषाढमस्यानु खड्गः बुद्धिः क्षमा प्रिये ॥ ५२४ ॥
माला नीलं च धूमश्च जयन्ती ललितं तथा ।
ततोऽरुणा निवृत्तिश्च कबन्धक्रकचौ ततः ॥ ५२५ ॥
अरिष्टं च श्मशानं च शवः पश्चान्निगद्यते ।

अनाहतश्च भोगश्च सृष्टि: फेत्कार्यपि प्रिये ॥ ५२६ ॥
त्रेता कोशश्च कृत्या च कराली तर्जनी तथा ।
कटङ्कटा ततो मुक्ता द्रावणानन्दखेचरी ॥ ५२७ ॥
धृति: कल्पो महा चैव क्रमश्च धनदा तप: ।
वेणुसान्वक्षमौञ्जीकसूत्राणि तदनन्तरम् ॥ ५२८ ॥
कोटिघण्टा पिञ्जला च चिता ध्वज इति क्रमात् ।
मन्त्रावली च भारुण्डा तन्त्रवर्णौ च सम्पुट: ॥ ५२९ ॥
ईहा क्षुधा च सन्तानो मोक्षो निर्वाण एव च ।
डमरुश्चैव नाराच: शूलं तदनु कीर्त्यते ॥ ५३० ॥
अर्द्धचन्द्र: क्षुरप्रश्च ध्यानं चञ्चुविधी अपि ।
संहिता हाकिनी चापि तदनन्तरमीर्यते ॥ ५३१ ॥
ततोऽनुदात्तस्वरिते रत्नोदात्ते सनिष्कले ।
नाभसं लघुरर्चा च नायकोऽप्यद्वयं तत: ॥ ५३२ ॥
कलावती च सर्वस्वं विप्रियं तदनन्तरम् ।
सन्तानमथ वैकक्षं तथेश: पारमेव च ॥ ५३३ ॥
अवारयूपौ हेतुश्च सम्प्रदायश्च भाजनम् ।
प्रश्नापायनिकाराश्च कृत्तिग्राहग्रहा अपि ॥ ५३४ ॥
तपनो वर्द्धनी चापि राजा च करका तथा ।
उलूकं लम्बिका चापि गुरु: शेषे सुरेश्वरि ॥ ५३५ ॥
रयिरुद्धित्तथा प्रायस्तीर्थं वाटी तथैव च ।
सन्ध्या वर्ष्म वितानं च किञ्जल्कं तिथिरेव च ॥ ५३६ ॥
वीथी पणश्च करणं चतुष्पथमथोषर: ।
पूत्यण्डकुञ्चिकाबालरण्डाकामकला: क्रमात् ॥ ५३७ ॥
उरङ्क: सर्वशेषे च द्वात्रिंशदिति कीर्तिता: ।

भासाकूट पद से पहले ये बत्तीस शब्द होते हैं । हे प्रिये! इसके बाद पाँच-पाँच भिन्न बीजों को सुनो । प्रणव वाग्भव पाश कला सर्व, उसके बाद लक्ष्मी माया काम सृणि गारुड, तदनन्तर राव छन्द चण्ड विश्व कुणप, फिर पुटक कुम्भक महाक्रोध रेचक और क्षेत्रपाल, काली हयग्रीव धर्म जया और गौरी, विचित्र धन्य उल्लोप्य विस्मृति पाणिगीति, लक्ष्म विक्रम संक्रम कुलमुद्रा चक्रतुम्बी, मोचिनी लाङ्गूल वर्धमान वेत्र आषाढ खड्ग, हे प्रिये! बुद्धि क्षमा माला नील धूम, जयन्ती ललित अरुणा निवृत्ति कबन्ध, क्रकच अरिष्ट श्मशान शव अनाहत, हे प्रिये! फिर भोग सृष्टि फेत्कारी त्रेता कोश, कृत्या कराली तर्जनी कटङ्कटा, मुक्ता द्रावण आनन्द खेचरी धृति, कल्प महा क्रम धनदा तप, वेणु सानु अक्ष मौञ्जी सूत्र, कोटि घण्टा

पिङ्गला चिता ध्वज, मन्त्रावली भारुण्डा तन्त्र वर्ण सम्पुट, ईहा क्षुधा सन्तान मोक्ष निर्वाण, डमरु नाराच उसके बाद शूल कहा जाता है । अर्धचन्द्र क्षुरप्र, ध्यान चञ्चु विधि संहिता तदनन्तर हाकिनी कही जाती है । फिर अनुदात्त स्वरित रत्न उदात्त निष्कल, नाभस लघु अर्चा नायक अद्वय, फिर कलावती सर्वस्व तदनन्तर विप्रिय सन्तान वैकक्ष, ईश पार अवार यूप हेतु, सम्प्रदाय भाजन प्रश्न अपाय निकार, कृत्ति ग्राह ग्रह तपन वर्द्धनी, राजा करका उलूक लम्बिका गुरु, हे सुरेश्वरि! रयि उद्भित्, तीर्थ वाटी सन्ध्या, वर्ष्म वितान किञ्जल्क तिथि वीथी, पण करण चतुष्पथ ऊषर पूत्यण्ड, कुञ्चिका बाल रण्डा कामकला सबके अन्त में उरङ्क ये बत्तीस कहे गये ॥ ५१९-५३७- ॥

सप्ताक्षरादनु प्रोक्ता या तु बीजत्रयी पुनः ॥ ५३८ ॥
साऽधुना कथ्यते देवि श्रूयतां सावधानया ।
मेखलाकुण्डगर्भाश्च मन्दसम्मोहसंहृतीः ॥ ५३९ ॥
सावित्रीशङ्कुयाम्याश्च मूर्वलातूणसैन्धुराः ।
वीरवेतालभौवाः स्युस्तन्द्रा कुटिलरञ्जिनी ॥ ५४० ॥
सुरसः समरो रागस्ताटङ्कं लीलया सह ।
धेनुश्च शृङ्खला कर्णिकया ह्यौपह्वरं तथा ॥ ५४१ ॥
ततश्च पद्मकुशिकौ दुष्कृताद्यौ सुरेश्वरि ।
सम्भूतिश्चतुरस्रं च त्र्यस्रं पश्चान्निगद्यते ॥ ५४२ ॥
चर्पटं मणिमाला च हारिण्यपि ततः परम् ।
नादान्तकश्चामरं च व्यजनं तदनूद्यते ॥ ५४३ ॥
कौलुञ्चं विजया चैव श्रीकण्ठस्तदनन्तरम् ।
मारण्डश्च विनादश्च विमर्द इति कथ्यते ॥ ५४४ ॥
विरूपोऽप्यपरान्तश्च प्रकरी तदनन्तरम् ।
दाक्षिकं सौमतं चापि प्रतानमथ कथ्यते ॥ ५४५ ॥
नित्यो वृषश्च पुष्टिश्च शिक्षा सत्यपि वै मधु ।
पौष्यं निर्मलमुल्लिख्य कुलं तदनु कथ्यते ॥ ५४६ ॥
प्रभा च सुप्रभा चैव विशुद्धिः स्यात्ततः परम् ।
ऋद्धिर्विभूतिर्दीप्ता च नन्दा चाथ जटा हिमम्॥ ५४७ ॥
काकिन्यथो नेमिच्छन्दौ भारुण्डातन्त्रवर्णकाः ।
ततः कापालगोकर्णसुरभ्यः परमेश्वरि ॥ ५४८ ॥
कुम्भकश्च महाक्रोधो रेचकः परिकीर्तितः ।
टङ्कन्यासर्षभाः कुन्तसारिघौ ऋष्टिरित्यपि ॥ ५४९ ॥
कर्त्रिसारङ्गखट्वाङ्गशिखाः प्राग्भव एव च ।

कल्याणं भूर्जम्बुकश्च नाकोऽपि तदनन्तरम्[१] ॥ ५५० ॥
तर्जनं साकलं स्यातामुल्लोलश्च निगद्यते ।
इति त्रिबीजनिश्रेणी क्रमेण कथिता मया ॥ ५५१ ॥

हे देवि! सप्ताक्षर के बाद जो बीजत्रयी कही गयी वह अब पुन: कही जा रही है । सावधानी से सुनो । मेखला कुण्ड गर्भ, मन्द सम्मोह संहार, सावित्री शङ्कु याम्य, मूर्वला तूण सैन्धुर, वीर वेताल भौव, तन्द्रा कुटिल रञ्जिनी, सुरस समर राग, ताटङ्क लीला धेनु, शृङ्खला कर्णिका औपह्वर, दुष्कृत पद्म कुशिक । हे सुरेश्वरि! सम्भूति चतुरस्र और बाद में त्र्यस्र कहा जाता है । चर्पट मणिमाला उसके बाद हारिणी, नादान्तक चामर व्यजन, कौलुञ्च विजया श्रीकण्ठ, मारण्ड विनाद विमर्द कहा जाता है। विरूप अपरान्त प्रकरी, उसके बाद दक्षिक सौमत प्रतान कहा जाता है । नित्य वृष पुष्टि, शिक्षा सती मधु, पौष्प निर्मल का उल्लेखकर उसके बाद कुल कहा जाता है। प्रभा सुप्रभा विशुद्धि, उसके पश्चात् ऋद्धि विभूति दीप्ता, नन्दा जटा हिम, काकिनी नेमि छन्द, भारुण्डा तन्त्र वर्णक, इसके अनन्तर हे परमेश्वरि! कापाल गोकर्ण सुरभि, कुम्भक महाक्रोध रेचक कहा गया है । टङ्क न्यास ऋषभ, कुन्त सारिघ ऋष्टि, कर्त्रि सारङ्ग खट्वाङ्ग, शिखा प्राग्भव कल्याण, भू जम्बुक नाक, तर्जन साकल उल्लोल इस प्रकार मैंने त्रिबीज श्रेणी को बतलाया ॥ ५३८-५५१ ॥

अथैककूटविस्तारं वर्णयामि सुरेश्वरि ।
वैराग्यकूटं प्रथमं ततोऽविद्याभिधेयकम् ॥ ५५२ ॥
उपाधिकूटमद्वैतकूटं तन्मात्रकूटकम् ।
तन्मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तानि च सुरेश्वरि ॥ ५५३ ॥
योगभूम्याह्वयं कूटं कूटमिन्द्रियनामकम् ।
वासनाक्षरकूटे च पारमार्थिकमन्वतः ॥ ५५४ ॥
ततः कूटानि प्रमाणप्रत्ययप्रकृतीनि च ।
प्रतिबिम्बं तथा सत्ता निमित्ताभासमेव च ॥ ५५५ ॥
जीवात्मबन्धनामानौ ततः कूटावुदाहृतौ ।
नित्यः साक्षी चिद्घनश्च परमात्मा ततः स्मृतः ॥ ५५६ ॥
चैतन्यापुनरावृत्ती तथैकात्म्यमपि प्रिये ।
विज्ञानमयमानन्दमयमस्यानु गद्यते ॥ ५५७ ॥
द्वात्रिंशदिति कूटानि क्रमेण कथितानि ते ।

हे सुरेश्वरि! अब एक कूट के विस्तार का वर्णन कर रहा हूँ । पहले वैराग्यकूट फिर अविद्या नामक कूट, उपाधिकूट अद्वैतकूट तन्मात्रकूट मनोकूट बुद्धिकूट

---

[१] परिशिष्टस्य भासान्यासे बीजत्रयीप्रकरणे 'भूर्जम्बुकनाक' इति त्रय्या बीजानामुल्लेखो नास्ति । ऐषा पंक्ति: कथमत्रोदिता इति विषये सुधिय: प्रमाणम् ।

अहङ्कारकूट चित्तकूट योगभूमि नामक कूट इन्द्रिय नामक कूट वासनाकूट अक्षरकूट पारमार्थिककूट इसके बाद प्रमाण प्रत्यय प्रकृतिकूट प्रतिबिम्बकूट, सत्ता निमित्त आभास जीवात्मा बन्ध नामक कूट कहे गये हैं। नित्या साक्षी चिद्घन उसके बाद परमात्मा कहा गया है। चैतन्य अपुनरावृत्ति उसी प्रकार हे प्रिये! ऐकात्म्य विज्ञानमय आनन्दमय कहा जाता है। इस प्रकार तुमको क्रमश: बत्तीस कूट बतलाये गये ॥ ५५२-५५७- ॥

[भासान्यासस्य स्थाननिर्देश:]

अत: परं स्थानमस्य न्यासस्य विनिबोध मे ॥ ५५८ ॥
शिरस्तालु च कण्ठश्च शङ्खः कूर्चश्च नासिका।
गण्डो जत्रु हनुश्चापि स्कन्धः कक्षो हृदेव च ॥ ५५९ ॥
जठरं नाभिवस्ती च गुदं मेहनमेव च।
वंक्षणश्चाप्यथोरुश्च जानु जङ्घा तथैव च ॥ ५६० ॥
प्रपदं पार्ष्णिगुल्फौ च पादाङ्गुल्यग्रमेव च।
पृष्ठं ग्रीवा हस्तयोश्च पादयोर्व्यापकं ततः ॥ ५६१ ॥
शेषे सर्वशरीरस्य व्यापकं परिकथ्यते।
इति स्थानानि भासाख्यन्यासस्य तव वर्णितः ॥ ५६२ ॥

भासा न्यास के स्थान—इसके बाद इस न्यास के स्थानों को मुझसे जानो। शिर तालु कण्ठ शङ्ख कूर्च नासिका गण्ड जत्रु हनु स्कन्ध कक्ष हृदय जठर नाभि वस्ति गुदा मेहन वंक्षण उरु जानु जङ्घा पैर पार्ष्णि दोनों गुल्फ पादाङ्गुलि का अग्रभाग, पीठ ग्रीवा दोनों हाथ दोनों पैर फिर व्यापक अन्त में सम्पूर्ण शरीर का व्यापक कहा जाता है। इस प्रकार तुमको भासा नामक न्यास के स्थान बतलाये गये ॥ ५५८-५६२ ॥

[अनाख्यान्यासस्यापि स्थानानीमान्येवेति निर्देश:]

एकत्वादुभयोः पूर्वं नोक्तमस्मान्निगद्यते।
अनाख्याख्यस्य च शिवे स्थानान्येतानि निश्चितम् ॥ ५६३ ॥
इति प्रपञ्चो भासाया यथाज्ञानं मयोदितः।
पञ्च न्यासानिमान्देवि जानेऽहं नैव चेतरः ॥ ५६४ ॥

अनाख्या न्यास के भी स्थान ये ही हैं—दोनों के एक होने से पहले (स्थानों को) नहीं कहा गया। इस कारण अब कहा जा रहा है। हे शिवे! अनाख्या नामक न्यास के भी ये ही स्थान निश्चित हैं। इस प्रकार भासा न्यास को अपने ज्ञान के अनुसार मैने बतलाया। हे देवि! इन पाँचों न्यासों को केवल मैं जानता हूँ, दूसरा कोई नहीं ॥ ५६३-५६४ ॥

[मन्त्रन्यासोद्देशस्तस्य च ऋष्यादिनिर्देशः]

मन्त्रन्यासमिदानीं त्वं निशामय समाहिता ।
सर्वे मन्त्रा गुह्यकाल्याः प्रतितिष्ठन्ति यत्र हि ॥ ५६५ ॥
महारुद्र ऋषिः प्रोक्तो मन्त्रन्यासस्य पार्वति ।
मध्या छन्दः समाख्यातं गुह्यकाली च देवता ॥ ५६६ ॥
बीजं कूटमनाख्याख्यं भासाशक्तिर्निगद्यते ।
हिरण्यगर्भकूटं हि कीलकं परिकीर्तितम् ॥ ५६७ ॥
विनियोगो गुह्यकालीप्रीतये समुदाहृतः ।

मन्त्रन्यास और उसके ऋषि आदि—अब तुम समाहित चित्त होकर इस मन्त्रन्यास को सुनो । गुह्यकाली के समस्त मन्त्र इसमें प्रतिष्ठित हैं । हे पार्वति! मन्त्रन्यास के ऋषि रुद्र बतलाये गये हैं । छन्द मध्या कहा गया है । देवता गुह्यकाली है । बीज अनाख्या नामक कूट है । शक्ति भासा कही जाती है । हिरण्यगर्भ कूट को कीलक कहा गया है । इसका विनियोग गुह्यकाली की प्रसन्नता के लिये होता है ॥ ५६५-५६७- ॥

[मन्त्रन्यासोद्धारः]

एकाक्षरी तु या प्रोक्ता विधात्राराधिता शुभा ॥ ५६८ ॥
तया न्यसेच्चरणयोरङ्गुलीमूल ईश्वरि ।
या कामोपासिता ह्युक्ता त्र्यक्षरी बीजबृंहिता ॥ ५६९ ॥
तया द्वयोः प्रपदयोर्विन्यसेत् सुसमाहितः ।
त्र्यक्षर्यन्या याऽभिहिता वरुणाराधिता सदा ॥ ५७० ॥
बीजमय्या तया गुल्फयुगले परिविन्यसेत् ।
पावकोपासिता या तु देवी पञ्चाक्षरीरिता ॥ ५७१ ॥
पार्ष्णिद्वयेऽपि च तया विन्यसेत् साधकोत्तमः ।
पञ्चबीजमयी या तु कथितादित्युपासिता ॥ ५७२ ॥
प्रविन्यसेत् तया जानुयुगले त्रिदशेश्वरि ।
या बीजैः पञ्चभिर्युक्ता पञ्चार्णा शच्युपासिता ॥ ५७३ ॥
तया द्वयोर्वंक्षणयोर्विन्यसेत् देशिकाग्रणीः ।
दानवाराधिता या तु महोग्रोग्रा नवाक्षरी ॥ ५७४ ॥
तयोर्द्वयोरेव शिवे विन्यसेच्छ्रोणिपिण्डयोः ।
पूजिता मृत्युकालाभ्यामन्या या तु नवाक्षरी ॥ ५७५ ॥
तया स्फिग्युगले देवि सिद्धिकामः प्रविन्यसेत्।
भरताराधिता मूलभूता या षोडशाक्षरी ॥ ५७६ ॥
कुक्षिद्वयेऽपि च तया विन्यस्यः सुरवन्दिते ।
वर्णव्यत्ययतो भिन्ना च्यवनोपासिता तु या ॥ ५७७ ॥

तयैव पार्ष्णियुगले साधकः परिविन्यसेत् ।
या वर्णपरिवर्त्तेन हारीतोपासितेरिता ॥ ५७८ ॥
एतया साधकश्रेष्ठो विन्यसेच्चूचुकद्वये ।
अग्रपश्चाद्भावभिन्ना बीजानां या मयेरिता ॥ ५७९ ॥
जाबालोपासिता श्रेष्ठा न्यसेदंसद्वये तया ।

मन्त्रन्यास का उद्धार—जो एकाक्षरी (विद्या) कही गयी है तथा जिस शुभा की विधाता ने आराधना की हे ईश्वरि! उसके द्वारा चरणों के अङ्गुलिमूल में न्यास करना चाहिये । जो काम के द्वारा उपासित हुई और बीज से वृद्धि को प्राप्त करायी गयी है, समाहितचित्ता होकर उससे दोनों पैरों में न्यास करना चाहिये । एक अन्य त्र्यक्षरी कही गयी है, जिसकी वरुण ने आराधना की, बीजमयी उसके द्वारा दोनों गुल्फों में न्यास करना चाहिये । अग्नि के द्वारा उपासित जो पञ्चाक्षरी कही गयी है, उत्तम साधक उससे दोनों एड़ियों में न्यास करे । जिस पञ्चबीजमयी की अदिति ने उपासना की थी, हे त्रिदशेश्वरि! उसके द्वारा दोनों जानुओं में न्यास करना चाहिये । पाँच बीजों से युक्त पाँच वर्णों वाली जिसकी शची ने उपासना की थी, आचार्यों में अग्रगामी साधक उससे दोनों वंक्षणों में न्यास करे । महा उग्र से भी उग्र नव अक्षरों वाली जिसकी उपासना दानवों ने की थी, हे शिवे! उसके द्वारा दोनों श्रोणिपिण्डों में न्यास करना चाहिये । जो अन्य नवाक्षरी मृत्यु और काल के द्वारा पूजित हुई थी हे देवि! सिद्धिकामी साधक उससे दोनों स्फिच् (= नितम्बों) में न्यास करे । जिस मूलभूत षोडशी की भरत ने आराधना की थी, हे सुरवन्दिते! उसके द्वारा दोनों कुक्षियों में न्यास करना चाहिये। जो वर्णों के उलटफेर से भिन्न प्रकार की है तथा जिसकी च्यवन ऋषि ने उपासना की थी साधक उसके द्वारा दोनों पार्ष्णि (= पीछे के दोनों भागों) को न्यस्त करे । वर्ण परिवर्तन के द्वारा जो हारीतोपासिता कही गयी है श्रेष्ठ साधक उसके द्वारा दोनों चुचूकों में न्यास करे । बीजों के आगे-पीछे रहने से भिन्न जिस विद्या का मैंने वर्णन किया तथा श्रेष्ठ जो जाबाल के द्वारा उपासित की गयी उसके द्वारा दोनों अंसों में न्यास करना चाहिये ॥ ५६८-५७९- ॥

प्रातिलोम्येन बीजानां या दक्षोपासिता मता ॥ ५८० ॥
तयैव त्रिदशेशानि जत्रुणोरुभयोर्न्यसेत् ।
या रामोपासिता सप्तदशी सर्वमनूत्तमा ॥ ५८१ ॥
कक्षयोरुभयोरेव तयैव प्रतिविन्यसेत् ।
हिरण्यकशिपूपास्या या ख्याता षोडशाक्षरी ॥ ५८२ ॥
तया सर्वमनुज्ञाता कफोणियुगले न्यसेत् ।
ब्रह्मणाराधिता या तु महासप्तदशीरिता ॥ ५८३ ॥
साधकस्तु तया न्यस्येदुभयोर्मणिबन्धयोः ।
ततः सप्तदशी या सा वसिष्ठाराधिता मता ॥ ५८४ ॥

तया कराङ्गुलीमूलयुगले प्रतिविन्यसेत् ।
विष्णुतत्त्वमिति ख्याता या हि पञ्चाक्षरी शुभा ॥ ५८५ ॥
तयैव विन्यसेद् विज्ञः कराङ्गुल्यग्रयोर्द्वयोः ।
अम्बाहृदयमित्येवं प्रसिद्धाष्टाक्षरी हि या ॥ ५८६ ॥
तया प्रगण्डयुगले साधकः परिविन्यसेत् ।
या महाषोडशी प्रोक्ता रुद्रेणाराधिता स्वयम् ॥ ५८७ ॥
तया नासापुटयुगे देशिकः परिविन्यसेत् ।
विश्वेदेवोपासिता या षोडशार्णा प्रकीर्तिता ॥ ५८८ ॥
तयैव मन्त्रविद्देवि विन्यसेदधरोष्ठयोः ।
रावणाराधिता या तु प्रोक्ता सप्तदशी प्रिये ॥ ५८९ ॥
ऊर्ध्वाधःस्थितयोर्दन्तयुगयोः परिविन्यसेत् ।
पुनरन्या रावणेज्या(या?) तु या षट्त्रिंशदक्षरी ॥ ५९० ॥
तया गण्डयुगे न्यस्येदेवमाह पुरद्विषः ।
आराधिताग्निसिद्धाभ्यां याऽष्टपञ्चाशदक्षरी ॥ ५९१ ॥
सुधीस्तया न्यसेन्नित्यं कपोलद्वन्द्वमीश्वरि ।

बीजों के प्रतिलोम होने से जो दक्ष के द्वारा उपासित कही गयी है, हे त्रिदशेशानि! उसके द्वारा दोनों जत्रुओं में न्यास करना चाहिये । जिसकी राम ने उपासना की थी और सत्रह अक्षरों वाली जो समस्त मन्त्रों में उत्तम है, उसके द्वारा दोनों कक्षों (= बगलों) में न्यास करना चाहिये । जो षोडशाक्षरी हिरण्यकशिपु के द्वारा उपास्य कही गयी है समस्त मन्त्रों का ज्ञाता साधक उसके द्वारा दोनों कफोणियों में न्यास करे । ब्रह्मा के द्वारा आराधित जो सप्तदशी (= सत्रह अक्षरों वाली) कही गयी है । साधक उसके द्वारा दोनों मणिबन्धों (= कलाइयों) में न्यास करे । इसके बाद जो वसिष्ठ के द्वारा आराधित सप्तदशी है, उससे दोनों हाथों के अङ्गुलिमूल में न्यास करना चाहिये । जो शुभा पञ्चाक्षरी विष्णुतत्त्व के रूप में प्रसिद्ध है विद्वान् उसके द्वारा दोनों हाथों के अङ्गुल्यग्र में न्यास करे । जो अष्टादशाक्षरी अम्बाहृदय नाम से प्रसिद्ध है साधक को उसके द्वारा दोनों गण्डों में न्यास करना चाहिये । जो महाषोडशी कही गयी है और जिसकी स्वयं रुद्र ने आराधना की आचार्य उसके द्वारा दोनों नासापुट में न्यास करे । जो षोडशार्णा विश्वेदेव के द्वारा उपासित कही गयी है, हे देवि! मन्त्रवेत्ता उसी के द्वारा अधर-ओष्ठ में न्यास करे । हे प्रिये! जो सप्तदशी रावण के द्वारा आराधित कही गयी है, उसके द्वारा ऊपर-नीचे स्थित दाँतों में न्यास करना चाहिये । पुनः जो छत्तीस अक्षरों वाली रावण के द्वारा पूज्य है उसके द्वारा दोनों गण्डों में न्यास करना चाहिये । ऐसा पुरद्विष (= शङ्कर) ने कहा है । जिस अष्टपञ्चाक्षरी की अग्नि और सिद्धों ने आराधना की हे ईश्वरि! बुद्धिमान् उसके द्वारा दोनों कपोल में न्यास करे ॥ ५८०-५९१- ॥

देवैश्च दानवैश्चैव महाराजिकभूमिपैः ॥ ५९२ ॥
सप्तर्षिभिस्तथा भोगेच्छुभिरन्यैर्नरामरैः ।
द्विशताधिकसप्ताशीत्यक्षरी या प्रकाशिता ॥ ५९३ ॥
भोगविद्येति या ख्याता भुवनेषु च त्रिष्वपि ।
हनुद्वयेऽनया न्यस्येदित्येतस्या विनिश्चयः ॥ ५९४ ॥
किन्नरोपासिता या च सुरेश्वरि शताक्षरी ।
तया कर्णयुगे न्यस्येत् सिद्ध्यर्थं साधकोत्तमः ॥ ५९५ ॥
षण्णां हि गुह्यमन्त्राणामुपदेशो भवेद् यदि ।
तदाग्रेऽपि प्रकर्तव्यो नो चेदेतदवध्यपि ॥ ५९६ ॥
उपदेशः शाम्भवे वा महान् शाम्भव एव वा ।
तुरीयायामथ महातुरीयायां सुरेश्वरि ॥ ५९७ ॥
निर्वाणे वाप्यथ महानिर्वाणेऽपि भवेद् यदि ।
तदा कर्तव्यतां वच्मि सावधानावधारय ॥ ५९८ ॥
शाम्भवेन नवार्णेन लोचने विन्यसेत् सुधीः ।
उद्धृतो यो मया पूर्वः महाशाम्भवनामकः ॥ ५९९ ॥
तेन मन्त्रेण देवेशि कूर्चस्थानं प्रविन्यसेत् ।
तृतीया या तु निःश्रेणी तुरीयाख्या पुरोदिता ॥ ६०० ॥
साधको मोक्षकामस्तु ललाटं विन्यसेत् तया ।
महातुरीयामन्त्रेण कैवल्यपददायिना ॥ ६०१ ॥
शिरो न्यसेत् सुरेशानि संन्यासी वाथ भूपतिः ।
मन्त्रेण निर्वाणाख्येन महागुप्ततरेण हि ॥ ६०२ ॥
ब्रह्मरन्ध्रं न्यसेद्देवि केवलं मोक्षवाञ्छया ।
सर्वशेषे यदुक्तं ते महानिर्वाणनामकम् ॥ ६०३ ॥
तेन सर्वस्य देहस्य व्यापकं विन्यसेत् सुधीः ।
इति मन्त्रन्यास उक्तः समस्तश्च त्रिपादिकः ॥ ६०४ ॥

देवताओं, दानवों, महाराजाओं राजाओं, सप्तर्षियों तथा भोग के इच्छुक अन्य देवताओं ने दो सौ सत्तासी अक्षरों वाली जिसका प्रकाशन किया और जो तीनों भुवनों में भोगविद्या के रूप में विख्यात है उससे दोनों हनु में न्यास करना चाहिये। ऐसा इसके बारे में निश्चय है । हे सुरेश्वरि! जो शताक्षरी किन्नरों के द्वारा उपासित की गयी साधकोत्तम अपनी सिद्धि के लिये उसके द्वारा दोनों कानों में न्यास करे । छह गुह्यमन्त्रों का यदि उपदेश साधक को प्राप्त है तभी आगे भी न्यास करना चाहिये । नहीं तो यहीं तक न्यास करना चाहिए । शाम्भव महाशाम्भव तुरीया महातुरीया निर्वाण और महानिर्वाण में यदि उपदेश हुआ है तो इसको करने की बात कह रहा

हूँ । सावधान होकर इसको सुनो । विद्वान् नव अक्षर वाले शाम्भव मन्त्र से दोनों आँखों में न्यास करे । हे देवेशि! मैंने जो पहले महाशाम्भव नामक मन्त्र बतलाया उससे कूर्च स्थान में न्यास करना चाहिये । तृतीय जो निःश्रेणी तुरीया नाम से पहले कही गयी, मोक्षार्थी साधक उससे ललाट में न्यास करे । हे सुरेशानि! संन्यासी हो अथवा राजा उसे कैवल्य पद देने वाले महातुरीया मन्त्र से शिर में न्यास करना चाहिये । हे देवि! मोक्ष की इच्छा से महागुप्ततर निर्वाण मन्त्र के द्वारा केवल ब्रह्मरन्ध्र में न्यास करना चाहिये और सबसे अन्त में जो तुमको महानिर्वाण नामक मन्त्र बतलाया उससे विद्वान् समस्त देह का व्यापक न्यास करे । इस प्रकार तुमको सम्पूर्ण त्रिपाद (= ऋष्यादि, सामान्य उद्धार तथा विशेषोद्धार) वाला मन्त्रन्यास बतलाया गया ॥ ५९२-६०४ ॥

[मन्त्रन्यासफलश्रुतिः]

गृहीतशाम्भवादीनां समस्तो न्यास इष्यते ।
तथा चानुपदिष्टानां षड्विंशत्यवधि प्रिये ॥ ६०५ ॥
मन्त्रन्यासस्तु तेनैव सम्पूर्णो भवति प्रिये ।
आमृतं पदमिच्छूनां परं पारमिव ध्रुवम् ॥ ६०६ ॥
अम्बुधाविव संसारे न्यासोऽयं पोतवन्मतः ।
कर्तव्यो यतिना नित्यं गृहस्थेनापि वा पुनः ॥ ६०७ ॥
कदाचित् कौलिकेनापि कार्यः शूद्रादिना तथा ।
पतितेन तु विप्रेण नैव कार्यः कदाचन ॥ ६०८ ॥
कुर्वन् स आशु म्रियते सत्यं सत्यं वचो मम ।
पतितानामिव स्त्रीणां नाधिकारोऽत्र वर्तते ॥ ६०९ ॥
किं बहूक्तेन देवेशि समासेन निगद्यते ।
यो वेदापर्युदस्तः संस्तस्य स्यादधिकारिता ॥ ६१० ॥
शूद्रादीनामपि भवेन्नैव निन्दितकर्मणाम् ।
उपदिष्टा अमी मन्त्रा येषां स्युः सुरवन्दिते ॥ ६११ ॥
तैरेवायं प्रकर्तव्यो न्यासो नान्यैः कदाचन ।
पुस्तके लिखितं दृष्ट्वा यो हठेन चिकीर्षति ॥ ६१२ ॥
स सान्वयो भवेद् भक्ष्यो योगिनीनां न संशयः ।

मन्त्रन्यास का फल—जिसने शाम्भव आदि मन्त्रों का उपदेश प्राप्त कर लिया है, उसके लिये समस्त न्यास विहित है तथा जिनको उनका उपदेश नहीं हुआ हे प्रिये! उनके लिये छब्बीस तक ही मन्त्रन्यास करने का विधान है । हे प्रिये! ऐसे लोगों को उतने से सम्पूर्ण न्यास का फल मिल जाता है । अमर पद को चाहने वालों के लिये यह उत्तम पार (= नौका) के समान है । यह न्यास संसाररूपी सागर

में पोत के समान माना गया है । यती गृहस्थ को इसे नित्य करना चाहिये । कौल मतानुयायी तथा शूद्र के द्वारा कभी-कभी किया जाना चाहिये । पतित ब्राह्मण इसे कदापि न करे । यदि वह करता है तो शीघ्र ही मर जायेगा, मेरा यह वचन सत्य है । पतित ब्राह्मणों की भाँति स्त्रियों को भी इसमें अधिकार नहीं है । हे देवि! अधिक कहने से क्या लाभ, संक्षेप में कहा जा रहा है जो वेद का विरोधी नहीं है अर्थात् अनुयायी है, उसी का इसमें अधिकार है । शूद्र आदि का भी अधिकार हो सकता है किन्तु निन्दित कर्म वालों का अधिकार नहीं है । हे सुरवन्दिते! जिनको इन मन्त्रों का उपदेश किया जा चुका है यह न्यास उन्हीं के द्वारा किया जाना चाहिये । अन्यों के द्वारा कभी नहीं। पुस्तक में लिखा हुआ देखकर जो हठपूर्वक इसको करना चाहता है, वह अपने वंश परिवार के साथ योगिनियों का नि:सन्देह भक्ष्य हो जाता है ॥ ६०५-६१२- ॥

[सिद्धिन्यासोद्देशस्तस्य च ऋष्यादिनिर्देश:]

अतोऽवधारय शिवे सिद्धिन्यासमनुत्तमम् ॥ ६१३ ॥
अवापुर्येन संसिद्धिं देवदैत्यर्षिमानवा: ।
काङ्क्षायन ऋषि: प्रोक्त: सिद्धिन्यासस्य सिद्धिद: ॥ ६१४ ॥
बृहती छन्द उदितं देवता गुह्यकालिका ।
बीजं ब्रह्मकपालाख्यबीजं कथितमस्य तु ॥ ६१५ ॥
शक्तिरप्युदिता चास्य जगदावृत्तिनामकम् ।
महाकल्पस्थायि बीजं कीलकं परिकीर्तितम् ॥ ६१६ ॥
विनियोग: सर्वकार्यसिद्धये परिनिष्ठित: ।

सिद्धिन्यास और उसके ऋषि आदि—हे शिवे! अब इसके बाद सिद्धिन्यास को सुनो। इसके द्वारा देवता दैत्य ऋषि और मनुष्यों ने सिद्धि प्राप्त की । इस न्यास के ऋषि सिद्धिनायक काङ्क्षायन ऋषि हैं । छन्द बृहती और देवता गुह्यकाली कही गयी हैं। ब्रह्मकपाल बीज कहा गया है । जगदावृत्ति इसकी शक्ति और कीलक महाकल्प स्थायी बीज को कहा गया है । इसका विनियोग सब कार्य की सिद्धि के लिये होता है ॥ ६१३-६१६- ॥

[सिद्धिन्यासस्य सामान्योद्धार:]

अथ सामान्यमुद्धारं पुरतो व्याहरामि ते ॥ ६१७ ॥
ततो विशेषं वक्ष्येऽहं ततो व्यक्तीभविष्यति ।
सर्वेषामेव मन्त्राणामादिभूतानि वै नव ॥ ६१८ ॥
बीजानि देवदेवेशि ज्ञातव्यानि स्थिराणि हि ।
तत: संख्या भिन्नभिन्ना विज्ञातव्या विपश्चिता ॥ ६१९ ॥
संख्यया च तया वक्त्रस्यापि विग्रह इष्यते ।

स टाबन्तो चलं पूर्वं स्थिरं परमिति क्रमात् ॥ ६२० ॥
गुह्यकाली देवतेति स्थिरं सप्ताक्षरं ततः ।
ततः शब्दा भिन्नभिन्नास्ते ङेऽन्ताः परिकल्पिताः ॥ ६२१ ॥
एकत्वं च बहुत्वं च वक्ष्यमाणक्रमेण हि ।
ज्ञेया ङेऽन्ता भ्यसन्ताश्च समुद्दिष्टवचोबलात् ॥ ६२२ ॥
चलाः सर्वे परिज्ञेया भिन्नं भिन्नं ततः परम् ।
तैः कर्तृत्वपदस्यापि विग्रहः सार्वकालिकः ॥ ६२३ ॥
चलं पूर्वं स्थिरं शेषे ताभ्यामपि सुरेश्वरि ।
समासः स्याद् रूपसिद्धिदायिनीति पदस्य हि ॥ ६२४ ॥
एवं दशापि वर्णानि स्थिराणि प्रतिमन्त्रकम् ।
ततोऽस्त्रबीजं बीजानां त्रितयं चास्त्रमेककम् ॥ ६२५ ॥
पञ्चापि भिन्नभिन्नानि प्रतिमन्त्रं सुरेश्वरि ।
पुनश्च नव बीजानि ज्ञातव्यानि स्थिराणि च ॥ ६२६ ॥
मम सिद्धिमिति प्रोच्य प्रयच्छतु ततः परम् ।
वह्निजाया सर्वशेषे ज्ञातव्या सुरवन्दिते ॥ ६२७ ॥
दशापीमान्यक्षराणि स्थेयांसि प्रतिमन्वपि ।
इति सामान्य उद्धारो मया ते परिकीर्तितः ॥ ६२८ ॥

सिद्धिन्यास का सामान्य उद्धार—अब तुम्हारे सामने इस न्यास का सामान्य उद्धार बतला रहा हूँ । इसके बाद विशेष उद्धार कहूँगा । इससे यह न्यास स्पष्ट हो जायगा । हे देवदेवेशि! समस्त मन्त्रों के पहले नव बीज स्थिर जानना चाहिये । इसके बाद विद्वान् भिन्न-भिन्न संख्या जाने । उस संख्या के साथ 'वक्त्र' का भी संयोजन वाञ्छित होता है । पूर्ववर्त्ती वह टाबन्त चल होता है और परवर्त्ती स्थिर होता है । इसके बाद 'गुह्यकाली देवता' ये सात अक्षर स्थिर होते हैं । उसके बाद वाले शब्द भिन्न-भिन्न होते हैं और वे ङेऽन्त कल्पित होते हैं । उद्दिष्ट वचन के अनुसार उन शब्दों में एकवचन और बहुवचन वक्ष्यमाण क्रम से होता है । तदनुसार वे ङेऽन्त एवं भ्यसन्त होते हैं । उन सबको परिवर्तनशील जानना चाहिये । उसके बाद भिन्न-भिन्न पद होते हैं । उनके साथ 'कर्तृत्व' पद का सर्वत्र संयोजन होता है । पूर्ववर्त्ती चल होता है । शेष स्थिर होता है । हे सुरेश्वरि! उन दोनों के साथ 'रूपसिद्धिदायिनी' पद का समास होता है । इस प्रकार प्रत्येक मन्त्र में दशवर्ण (= कर्तृत्वरूप सिद्धिदायिनी) स्थिर रहते हैं । उसके बाद (एक) अस्त्र बीज तीन अन्य बीज और पुनः एक अस्त्र ये पाँचों प्रत्येक मन्त्र में भिन्न-भिन्न रहते हैं । पुनः नव स्थिर बीजों को जानना चाहिये । 'मम सिद्धिं' कहकर उसके बाद 'प्रयच्छतु' और सबके अन्त में वह्निजाया जाननी चाहिये । हे सुरवन्दिते! ये दशो अक्षर प्रत्येक मन्त्र में स्थायी होते हैं । इस प्रकार मैंने तुमको सामान्य उद्धार बतलाया ॥ ६१७-६२८ ॥

[सिद्धिन्यासस्य विशेषोद्धारः]

विशेषमधुना तस्य कथयाम्यवधार्यताम् ।
तारमायारमाकामरावकूर्चस्त्रियः क्रमात् ॥ ६२९ ॥
योगिनी वाग्भवश्चेति स्थिराणीमानि वै नव ।
अथ संख्यां क्रमाद् वच्मि तत्र धेहि मनः शिवे ॥ ६३० ॥
एकं त्रीणि तथा त्रीणि पञ्च पञ्च षडेव हि ।
अष्टाथ नव सङ्कीर्त्य षड्वारं दश कीर्तयेत् ॥ ६३१ ॥
पुनः शतं ततो रावयुगलं दश कीर्तयेत् ।
ततोऽनु द्वादश दश तथैकादश चोल्लिखेत् ॥ ६३२ ॥
त्रयोदशानु च दश दश षोडश चेत्यपि ।
एकाद्यशीत्यन्तपदं ततः परमुदीरयेत् ॥ ६३३ ॥
ततोऽनु विंशतिरिति तथैवायुतमित्यपि ।
आभिः संख्याभिरारब्धो वक्त्रशब्दस्य विग्रहः ॥ ६३४ ॥
अथ ङेऽन्तान् भ्यसन्तांश्च भ्यामन्तांश्चावधारय ।
शब्दोद्देशक्रमेणैव प्रयोज्या मन्त्रकीर्तने ॥ ६३५ ॥
विधाता च ततोऽनङ्गो वरुणः पावकोऽपि च ।
अदितिश्च शची चापि दानवास्तदनन्तरम् ॥ ६३६ ॥
मृत्युकालौ च भरतश्च्यवनस्तदनूद्यते ।
हारीतोऽप्यथ जाबालो दक्षो रामस्तथैव च ॥ ६३७ ॥
हिरण्यकशिपुर्ब्रह्मा वसिष्ठो विष्णुरेव च ।
स्वं ततो रुद्र इत्येवं विश्वेदेवास्ततः परम् ॥ ६३८ ॥
रावणो रावणश्चापि सिद्धाः सप्तर्षयस्तथा ।
किन्नराश्च ततः कालाग्निरुद्राः परिकीर्तिताः ॥ ६३९ ॥
सप्तविंशतिसंख्याका इमे शब्दा मयोदिताः ।
अथ कर्तृत्वशब्दस्य शृणु पूर्वपदं प्रिये ॥ ६४० ॥

सिद्धिन्यास का विशेष उद्धार—अब उसका विशेष उद्धार बतला रहा हूँ; समझो। तार माया रमा काम राव कूर्च स्त्री योगिनी और वाग्भव क्रम से ये नव स्थिर रहते हैं । हे शिवे! अब क्रम से संख्याओं को कह रहा हूँ, उसमें मन को लगाओ । एक तीन तीन पाँच पाँच छ आठ नव कहकर दश को छह बार कहना चाहिये । पुनः सौ इसके बाद दो राव का दश बार उच्चारण करना चाहिये । इसके बाद द्वादश दश और एकादश का उल्लेख करना चाहिये । तेरह उसके बाद दश दश और सोलह कहकर फिर एक से लेकर अस्सी तक कहना चाहिये । इसके पश्चात् विंशति फिर अयुत कहना चाहिये । इन संख्याओं से 'वक्त्र' शब्द को जोड़ना होता है । इसके बाद ङेऽन्त भ्यसन्त और भ्यामन्त शब्दों को समझो । मन्त्र

के उच्चारण में ये शब्द पाठ के क्रम से ही प्रयोजनीय होते हैं । विधाता अनङ्ग वरुण पावक अदिति शची दानव मृत्युकाल उसके बाद भरत च्यवन कहे जाते हैं । हारीत जाबाल दक्ष राम हिरण्यकशिपु ब्रह्मा वसिष्ठ विष्णु स्व रुद्र उसके पश्चात् विश्वेदेव रावण रावण सिद्ध सप्तर्षि किन्नर उसके बाद कालाग्नि रुद्र बतलाये गये हैं । ये सत्ताईस शब्द मेरे द्वारा कहे गये । अब हे प्रिये! 'कर्त्तृत्व' शब्द के पूर्व पद को सुनो ॥ ६२९-६४० ॥

सृष्टिस्ततोऽनु त्रैलोक्यमोहनं परिकीर्तितम् ।
जगत्स्निग्धश्च दाहश्चाखिलदेहोद्भवस्ततः ॥ ६४१ ॥
इन्द्रसाम्राज्यानु देवपराभव इतीरयेत् ।
अष्टमं परिविज्ञेयं भूतान्तःकरणं प्रिये ॥ ६४२ ॥
तत्सप्तद्वीपसाम्राज्यमभिचारस्ततः परम् ।
योगवश्यं ब्रह्मविद्याप्रकाशस्तदनन्तरम् ॥ ६४३ ॥
प्रजासर्गो रावणवधस्त्रैलोक्यैश्वर्यमित्यपि ।
ब्रह्माण्डोत्पत्तिरित्येवं देवि षोडशिको मतः ॥ ६४४ ॥
ततः कामक्रोधवशीकरणं परिकीर्तितम् ।
पुनश्चतुर्दशभुवनपालनमपीरितम् ॥ ६४५ ॥
शिवमोहनमित्येवं संहारस्तदनन्तरम् ।
श्राद्धाधिष्ठानमपि च शिवदास्यमतः परम् ॥ ६४६ ॥
जगज्जयस्तथाकाशगतिः कल्पावधिस्थितिः ।
सङ्गीतं तदनु ज्ञेयं महाप्रलय इत्यपि ॥ ६४७ ॥
सप्तविंशतिरित्येते शब्दाः कर्तृत्वपूर्वगाः ।

सृष्टि इसके बाद त्रैलोक्यमोहन कहा गया है । जगत् स्निग्ध दाह अखिलदेहोद्भव इन्द्रसाम्राज्य के बाद देवपराभव कहना चाहिये । हे प्रिये! (ये सात शब्द हुए) आठवाँ शब्द भूतान्तःकरण जानना चाहिये । फिर सप्तद्वीप साम्राज्यम् उसके बाद अभिचार फिर योगवश्य तदनन्तर ब्रह्मविद्याप्रकाश फिर प्रजासर्ग रावणवध त्रैलोक्यैश्वर्य ब्रह्माण्डोत्पत्ति हे देवि! इस प्रकार सोलह कहे गये । इसके बाद कामक्रोध वशीकरण कहा गया है । पुनः चतुर्दश भुवनपाल का उल्लेख है । शिवमोहन उसके बाद संहार उसके बाद श्राद्धाधिष्ठान उसके बाद शिवदास्य तदनन्तर जगज्जय आकाशगति कल्पावधिस्थिति उसके अनन्तर सङ्गीत महाप्रलय इस प्रकार ये सत्ताईस शब्द जो कि कर्त्तृत्व पूर्वगामी हैं, कहे गये ॥ ६४१-६४७- ॥

अथात उपकूटानां नामान्याकर्णय प्रिये ॥ ६४८ ॥
प्राजापत्यास्त्रमादौ स्यान्मोहनास्त्रं ततः परम् ।
वारुणास्त्रं ततः पश्चादाग्नेयास्त्रमुदाहृतम् ॥ ६४९ ॥
गालनास्त्रं स्तम्भनास्त्रं कम्पनास्त्रं तथैव च ।

मारणास्त्रं चातिबलास्त्रं ततः परिकीर्त्तितम् ॥ ६५० ॥
उत्पातास्त्रं ततो ज्ञेयं ततोऽन्तर्द्धाननामकम् ।
अस्त्रे वैष्णवपार्जन्ये ततः परमुदीरिते ॥ ६५१ ॥
तामसास्त्रं ततो गान्धर्वास्त्रं ज्ञेयं ततोऽपि च ।
ततः षोडशिकं ब्रह्मास्त्रं देवि परिकीर्त्तितम् ॥ ६५२ ॥
निमीलनास्त्रं च नारायणास्त्रं मूर्च्छनास्त्रकम् ।
शाङ्करास्त्रं त्रैदशास्त्रं तैमिरास्त्रमतः परम् ॥ ६५३ ॥
गुह्यास्त्रं चैव चाक्रास्त्रं कालकूटं च माकरम् ।
जृम्भणास्त्रं सर्वशेषे प्रयोक्तव्यं तु साधकैः ॥ ६५४ ॥

हे प्रिये! इसके बाद उपकूटों के नाम सुनो । पहले प्राजापत्यास्त्र उसके बाद मोहनास्त्र फिर वारुणास्त्र तत्पश्चात् आग्नेयास्त्र कहा गया है । उसके बाद गालनास्त्र स्तम्भनास्त्र कम्पनास्त्र मारणास्त्र अतिबलास्त्र कहा गया है । उसके बाद उत्पातास्त्र फिर अन्तर्धान नामक अस्त्र जानना चाहिये । वैष्णवास्त्र पार्जन्यास्त्र कहे गये हैं । तामसास्त्र फिर गान्धर्वास्त्र जानना चाहिये । उसके बाद हे देवि! षोडशिक ब्रह्मास्त्र कहा गया है । निमीलनास्त्र नारायणास्त्र मूर्च्छनास्त्र शाङ्करास्त्र त्रैदशास्त्र तैमिरास्त्र इसके बाद गुह्यास्त्र चाक्रास्त्र कालकूट मकरकूट और सबके अन्त में साधकों को जृम्भणास्त्र का प्रयोग करना चाहिए ॥ ६४८-६५४ ॥

अन्वेतस्य सुरेशानि त्रिबीजानि निशामय ।
ज्ञानेच्छासंविदः कामलक्ष्मीमायास्ततः परम् ॥ ६५५ ॥
शाकिनीच्छन्दविश्वाश्च ततोऽनन्तरमीरिताः ।
अमृतावेशसोमाश्च शक्तिर्नक्षत्रविद्युतौ ॥ ६५६ ॥
ततश्च कुलिकं प्रेतबीजं भैरव्यपि प्रिये ।
क्षमामाले च नीलं च महाक्रोधः सरेचकः ॥ ६५७ ॥
क्षेत्रपालश्च तदनु गोंऽशुशुक्लाः क्रमान्मताः ।
फेत्कारी च तथा त्रेता कृत्या च तदनन्तरम् ॥ ६५८ ॥
अक्षमौञ्ज्यौ च सूत्रं च कुण्डगर्भौ सदीपकौ ।
बलितुङ्गौ तथा चूडामणिः शूलमतः परम् ॥ ६५९ ॥
अर्द्धचन्द्रः क्षुरप्रश्च पिङ्गलः सचिताध्वजः ।
भुशुण्डी च गदाप्रासौ कार्णिकाहारशृङ्खलाः ॥ ६६० ॥
हाकिनी विधिचञ्चू च भूतिनी ध्यानसंहिते ।
रम्भावध्वौ कौणपी च पृथुश्च नदतारके ॥ ६६१ ॥
अखण्डचारुकुब्जाश्च व्रज्यादेशच्छटा अपि ।
सिन्धुर्महेन्द्रेश्वरौ च षडङ्गः ककुदेव ॥ ६६२ ॥

शैशुकश्च तथा लीला धेनुर्मारिष एव च ।
प्रचण्डा केकराक्षी च कालरात्रिस्ततः परम् ॥ ६६३ ॥
त्रित्रिबीजमिति प्रोक्तं सर्वस्मिन् मन्त्र ईश्वरि ।

हे सुरेशानि! इसके बाद त्रिबीजों को सुनो । ज्ञान इच्छा संविद्, उसके बाद काम लक्ष्मी माया, शाकिनी छन्द विश्व, इसके अनन्तर अमृत आवेश सोम शक्ति नक्षत्र विद्युत् इसके बाद हे प्रिये! कुलिक प्रेतबीज भैरवी क्षमा माल नील, महाक्रोध रेचक क्षेत्रपाल उसके पश्चात् क्रम से गो अंशु शुक्ल कहे गये हैं । फेत्कारी त्रेता कृत्या उसके बाद अक्ष मौञ्जी सूत्र, कुण्ड गर्भ दीपक, बलि तुङ्ग चूडामणि, उसके बाद शूल अर्धचन्द्र क्षुरप्र, पिङ्गल चिता ध्वज, भुशुण्डी गदा प्रास, कर्णिका हार शृङ्खला कहे गये हैं । उसके बाद हाकिनी विधि चञ्चु, भूतिनी ध्यान संहिता, रम्भा वधू कुणप, पृथु नद तारक, अखण्ड चारु कुब्ज, व्रज्या आदेश छटा, सिन्धु महेन्द्र ईश्वर, षडङ्ग ककुद शैशुक, लीला धेनु मारिष, प्रचण्डा केकराक्षी उसके बाद कालरात्रि । हे ईश्वरि! इस प्रकार सब मन्त्रों में आने वाले तीन-तीन बीज कहे गये ॥ ६५५-६६३- ॥

इदानीमुपकूटानि एतस्यानन्तरं शृणु ॥ ६६४ ॥
कौबेरास्त्रमथैन्द्रास्त्रं वायव्यास्त्रं सयाम्यकम् ।
ततः कालास्त्रभूतास्त्रे मातङ्गैषीकमप्युत ॥ ६६५ ॥
औदुम्बरं च पैशाचं राक्षसं हैमनं ततः ।
सौरं गुह्यं शाबरं च ब्रह्महस्तशिरस्तथा ॥ ६६६ ॥
शारभं राजसं स्कान्दं आर्क्षं वैनायकं ततः ।
प्रामथं च ज्वरास्त्रं च कूष्माण्डं स्वप्न एव च ॥ ६६७ ॥
भ्रामकं फैरवं चापि सर्वशेषे प्रकीर्तितम् ।
स्थिराणि नव बीजानि त्वमिदानीं निशामय ॥ ६६८ ॥
वाग्भवो योगिनी रामा कूर्चो रावश्च मन्मथः ।
लक्ष्मी माया च तारश्च नवबीजान्यमूनि हि ॥ ६६९ ॥
पूर्वोदितानां बीजानां संहारक्रम एव वा ।
इत्युद्धारो विशेषेण मया समुपबृंहितः ॥ ६७० ॥

अब इसके बाद उपकूटों को सुनो । कौबेरास्त्र फिर ऐन्द्रास्त्र वायव्यास्त्र याम्यास्त्र फिर कालास्त्र भूतास्त्र मातङ्ग ऐषीक औदुम्बर पैशाच राक्षस हैमन सौर गुह्य शाबर ब्रह्म हस्त शिर शारभ राजस स्कान्द आर्क्ष उसके बाद वैनायक प्रामथ ज्वरास्त्र कूष्माण्ड स्वप्न भ्रामक एक सबके अन्त में फैरव कहा गया है । अब तुम स्थिर नव बीजों को सुनो । वाग्भव योगिनी रामा कूर्च राव मन्मथ लक्ष्मी माया तार ये नव बीज हैं अथवा पूर्वोक्त बीजों का संहारक्रम प्रयोज्य है । इस प्रकार मैंने विशेष उद्धार बतलाया ॥ ६६४-६७० ॥

[सिद्धिन्यासस्य स्थाननिर्देशः]

न्यसनीयस्थानमतः शृणु यत्नेन पार्वति ।
ब्रह्मरन्ध्रं भ्रूरपि च कपोलो नेत्रमेव च ॥ ६७१ ॥
नासापुटं च कर्णश्च गण्डः सृक्कं हनुस्तथा ।
कक्षो जत्रुश्च स्कन्धश्च चूचुकं पार्श्व एव च ॥ ६७२ ॥
हृदयं जठरं नाभिर्वस्तिर्लिङ्गं गुदं तथा ।
कटो वंक्षण ऊरुश्च जानुजङ्घापदं तथा ॥ ६७३ ॥
व्यापकं सर्वशेषे च सप्तविंशतिरित्यमी ।
इति सिद्धिन्यासकस्य स्थानमुक्तं मया तव ॥ ६७४ ॥

सिद्धिन्यास के स्थान—हे पार्वति! इसके बाद न्यास के स्थानों को प्रयत्नपूर्वक सुनो । ब्रह्मरन्ध्र भ्रू कपोल नेत्र नासापुट कर्ण गण्ड सृक्क हनु कक्ष जत्रु स्कन्ध चूचुक पार्श्व हृदय जठर नाभि वस्ति लिङ्ग गुदा कट वंक्षण ऊरु जानु जङ्घा पैर और सबके अन्त में व्यापक ये सत्ताईस हैं । इस प्रकार मैंने तुमको सिद्धिन्यास के स्थान बतलाये ॥ ६७१-६७४ ॥

[सिद्धिन्यासस्य फलश्रुतिः]

एतस्य सतताभ्यासात् ध्रुवं सिद्धिं लभेत वै ।
न्यासेनैवामुना पूर्वे राजानः ऋषयस्तथा ॥ ६७५ ॥
लेभिरे विविधां सिद्धिं देवाः सब्रह्मविष्णवः ।
इदानीमपि ये केचित् करिष्यन्त्येनमादृताः ॥ ६७६ ॥
करामलकवत्तेषां वशे तिष्ठन्ति सिद्धयः ।
गृहिणामथ कौलानामयं नित्यतयोदितः ॥ ६७७ ॥
यतीनामफलेहानां काम्यत्वेन व्यवस्थितः ।
न्यासानामेष सर्वेषां मुख्यत्वेनोदितः पुरा ॥ ६७८ ॥
अतोऽभून्मतिरेकीह(?)कुर्यादत्राग्रहं प्रिये ।
आग्रहात् सिद्धयः सर्वा भवन्ति वशवर्तगाः ॥ ६७९ ॥

सिद्धिन्यास का फल—इसके निरन्तर अभ्यास से साधक निश्चित रूप से सिद्धि प्राप्त करता है । इस न्यास के द्वारा ही प्राचीन काल में राजाओं, ऋषियों, देवताओं तथा ब्रह्मा-विष्णु ने सिद्धि प्राप्त की । अब भी जो लोग इस न्यास को आदरपूर्वक करेंगे, उनके वश में सिद्धियाँ हस्तामलक की भाँति रहेंगी । यह न्यास गृहस्थों और कौलों को नित्य करना चाहिये । संन्यासियों और फल न चाहने वालों के लिये यह काम्य कहा गया है । यह पूर्ववर्णित समस्त न्यासों में मुख्य कहा गया है । इसलिये हे प्रिये! इस विषय में एक ही मत है कि इसमें आग्रह करना चाहिये । आग्रह के कारण सारी सिद्धियाँ वशवर्त्ती हो जाती हैं ॥ ६७५-६७९ ॥

[विराट्न्यासोद्देशस्तस्य च ऋष्यादिनिर्देशः]

विराट्संज्ञं न्यासमतः शृणु यत्नेन पार्वति ।
ध्यानपूजादिकं सर्वं यस्मिन् देवि प्रतिष्ठितम् ॥ ६८० ॥
पुरा प्रोक्तं यथा ध्यानं विराडाख्यं मया तव ।
तथैवायं न्यासराजस्तन्नाम्ना ख्यातिमागतः ॥ ६८१ ॥
यत्र त्रिभुवनं सर्वं देव्यङ्गत्वेन कल्पितम् ।
स्वाङ्गे विन्यसनीयं हि कोऽस्मान्न्यासोऽधिको मतः ॥ ६८२ ॥
प्रत्यहं तु तदाकारभावनातः सुरेश्वरि ।
प्राप्य तन्मयतां सद्यः कैवल्यमधिगच्छति ॥ ६८३ ॥
किन्त्वेतस्योद्धृतिर्देवि सर्वन्यासेभ्य एव हि ।
कठिना च दुरूहा च तस्मादर्पय मानसम् ॥ ६८४ ॥
न्यासस्य हि विराट्नाम्नो लाट्यायन ऋषिर्मतः ।
जगती छन्द उदितं ब्रह्माण्डं देवता तथा ॥ ६८५ ॥
बीजं तु पौष्करं कूटं शक्तिर्हैरण्यगर्भकम् ।
कीलकं सत्त्वकूटं च तत्त्वं शक्त्याख्यकूटकम् ॥ ६८६ ॥
विनियोगस्तु कैवल्यपदलाभाय कीर्तितः ।

विराट् न्यास और उसके ऋषि आदि—हे पार्वति! अब यत्नपूर्वक विराट् न्यास को सुनो । हे देवि! इसमें ध्यान पूजा आदि सब कुछ स्थित हैं । मैंने पहले जो विराट् नामक ध्यान आदि तुमसे कहा उसी प्रकार यह न्यासराज भी उसी नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ । हे देवि! जिसमें सम्पूर्ण त्रिभुवन अङ्ग रूप में स्थित है, उसका अपने अङ्गों में न्यास करना चाहिये । इससे बढ़कर और कौन न्यास कहा गया है? हे सुरेश्वरि! साधक प्रतिदिन तदाकार भावना के द्वारा तन्मयता को प्राप्तकर सद्यः कैवल्य प्राप्त कर लेता है किन्तु हे देवि! इसका उद्धार अन्य सभी न्यासों की अपेक्षा कठिन और दुरूह है इसलिये इसमें मन को लगाओ । विराट् नामक इस न्यास के ऋषि लाट्यायन कहे गये हैं । छन्द जगती कहा गया है तथा देवता ब्रह्माण्ड है । बीज पौष्कर कूट शक्ति हिरण्यगर्भ कूट है । कीलक सत्त्वकूट और तत्त्व शक्ति नामक कूट है । इसका विनियोग कैवल्य पद की प्राप्ति के लिये होता है ॥ ६८०-६८६- ॥

[विराट्न्यासोद्धारः]

अथ सामान्यमुद्धारं समाकलय सादरा ॥ ६८७ ॥
षट्पञ्चाशत्संख्यकानि देव्यङ्गानि प्रचक्षते ।
सर्वं षट्पञ्चाशदेवं ज्ञातव्यं देववन्दिते ॥ ६८८ ॥
भिन्नं भिन्नं बीजमेकमादौ सर्वस्य वै मनोः ।

पृथक् पृथक् ततः कूटं पुनर्बीजं पृथक् पृथक् ॥ ६८९ ॥
उपकूटं पुनश्चैकं भिन्नं भिन्नं च तं वदेत् ।
पुनर्बीजं च नाड्येका भिन्ना भिन्ना च तच्च सा ॥ ६९० ॥
पुनर्बीजं पुनः सूक्तं पृथक् पृथगुदीरितम् ।
पुनर्बीजं पुनर्वर्णः पुनर्बीजं पुनर्नदी ॥ ६९१ ॥
इत्येकान्तररीत्यैव बीजं कूटं च षट् च षट् ।
विराट्रूपापदं गुह्यकालीति च पदं प्रिये ॥ ६९२ ॥
ङसन्तमुभयं कार्यं स्थिराण्येतानि वै नव ।
भिन्नभिन्नास्ततः शब्दाः षट्पञ्चाशदुदीरिताः ॥ ६९३ ॥
ङेऽन्ताश्च ते प्रकर्तव्यास्तत्तल्लिङ्गानुसारतः ।
तेषामनु ततो भिन्नाः शब्दास्तावन्त एव हि ॥ ६९४ ॥
तेऽपि ङेऽन्ताः प्रकर्तव्यास्तदाकारतयेरिताः ।
ततोऽनु पञ्च कूटानि प्रतिमन्त्रं स्थिराणि हि ॥ ६९५ ॥
बीजत्रयमयी पंक्तिस्ततः परमुदीर्यते ।
भिन्नभिन्ना प्रतिमनुः ज्ञेया सा च विचक्षणैः ॥ ६९६ ॥
फट्त्रयं हृदयं चैव शिरोऽपि तदनन्तरम् ।
सप्ताक्षराणि चैतानि स्थिराणि प्रतिमन्त्रकम् ॥ ६९७ ॥
इति सामान्यतः प्रोक्त उद्धारस्त्रिदशेश्वरि ।

विराट् न्यास का उद्धार—अब इसके सामान्य उद्धार को आदर के साथ सुनो । हे देवि! छप्पन अङ्ग कहे जाते हैं । हे देववन्दिते! इस प्रकार सब मन्त्रों को छप्पन ही जानना चाहिये । सब मन्त्रों के प्रारम्भ में एक-एक बीज होता है और वह भिन्न-भिन्न होता है । इसके बाद पृथक्-पृथक् कूट होते हैं । पुनः पृथक्-पृथक् बीज होता है । पुनः एक उपकूट होता है । उसे भिन्न-भिन्न कहना चाहिये । पुनः एक बीज होता है। फिर एक नाडी होती है और वह भिन्न-भिन्न होती है । पुनः एक बीज और एक सूक्त होता है और वह पृथक्-पृथक् कहा गया है । पुनः एक बीज पुनः वर्ण पुनः बीज पुनः नदीकूट इस प्रकार एक-एक के अन्तर से बीज और कूट छह छह होते हैं । हे प्रिये! उसके अतिरिक्त 'विराट्रूपा' और 'गुह्यकाली' पद कहा जाता है । दोनों पदों को ङस् विभक्त्यन्त कहना चाहिये । इस प्रकार ये नव पद स्थिर रहते हैं। इसके बाद भिन्न-भिन्न छप्पन शब्द कहे जाते हैं । वे सब तत्तत् लिङ्ग के अनुसार ङेऽन्त कहे जाने चाहिये । उनके बाद उतने ही शब्द भिन्न-भिन्न कहे जाते हैं । वे भी उसी आकार में ङेऽन्त करने चाहिये । इसके पश्चात् प्रतिमन्त्र स्थिर पाँच कूट होते हैं। उसके अनन्तर तीन-तीन बीजों वाली पंक्ति कही जाती है। विद्वान् लोग उसको प्रतिमन्त्र भिन्न-भिन्न समझें । हे त्रिदशेश्वरि! इस प्रकार सामान्य उद्धार कहा गया ॥ ६८७-६९७- ॥

[विराण्न्यासस्य विशेषोद्धार:]

विशेषमधुना वच्मि सावधानाऽवधारय ॥ ६९८ ॥
सामान्यस्तु यया रीत्या मया ते परिकीर्तितः ।
विशेषं तु तया रीत्या कथयिष्यामि बुध्यताम् ॥ ६९९ ॥
प्रणवो वाग्भवः पाशः कला माया रमा स्मरः ।
कालीहयग्रीवसृणिगारुडाः कामिनी तथा ॥ ७०० ॥
शाकिनीचण्डविश्वाश्च प्रासादः कूर्च एव च ।
भूतश्च किन्नरः क्षेत्रपालः कुम्भामृते अपि ॥ ७०१ ॥
रतिः सोमावेशमेघप्राणास्तदनु कीर्तिताः ।
नासत्यशक्ती नक्षत्रविद्युतौ त्रिशिखा ततः ॥ ७०२ ॥
त्रिशक्तिरथ चामुण्डा कूष्माण्डी खेचरी तथा ।
कोलो बुद्धिः क्षमा माला नीलं योगिन्यनन्तरम् ॥ ७०३ ॥
प्रेतः परा च धनदा भारुण्डा काकिनी तथा ।
नागश्चक्रोदुम्बरश्च रौद्रानन्दौ सयक्षकौ ॥ ७०४ ॥
विरिञ्चिस्तापिनी चेति त्रिपुटा सर्वशेषगा ।
प्रथमा बीजपंक्तिस्ते क्रमेण कथिता मया ॥ ७०५ ॥

विराट् न्यास का विशेष उद्धार—अब विशेष उद्धार कह रहा हूँ, सावधान होकर समझो। मैंने जिस प्रकार तुमको सामान्य न्यास बतलाया उसी रीति से विशेष को भी कहूँगा, समझो। प्रणव वाग्भव पाश कला माया रमा स्मर काली हयग्रीव सृणि गारुड कामिनी शाकिनी चण्ड विश्व प्रासाद कूर्च भूत किन्नर क्षेत्रपाल कुम्भ अमृत रति सोम आवेश मेघ उसके बाद प्राण कहे गये हैं। नासत्य शक्ति नक्षत्र विद्युत् त्रिशिखा त्रिशक्ति चामुण्डा कूष्माण्डी खेचरी कोल बुद्धि क्षमा माला नील योगिनी उसके अनन्तर प्रेत परा धनदा भारुण्डा काकिनी नाग चक्र उदुम्बर रौद्र आनन्द यक्ष विरिञ्चि तापिनी और सबके अन्त में त्रिपुरा यह प्रथम बीज पंक्ति तुमको बतलायी गयी ॥ ६९८-७०५ ॥

इदानीं क्रमतः कूटनामानि त्वं निशामय ।
मेरुकूटं च कैलासकूटं मन्दारकूटकम् ॥ ७०६ ॥
उदयास्तमयौ कूटौ त्रिकूटाचलकूटकौ ।
चण्डकूटं रत्नकूटं मणिकूटं तथैव च ॥ ७०७ ॥
प्रासादं स्वस्तिकं चापि कूटद्वयमितः परम् ।
ध्वजकूटं ततो मालारेखाकूटे सुरेश्वरि ॥ ७०८ ॥
मन्थानकूटं समयकूटं किञ्जल्ककूटकम् ।
वैराग्यैश्वर्यकूटे च केशवं(रं) शुद्धमेव च ॥ ७०९ ॥
उपाध्यद्वैतकूटौ च वासनायोगभूमिके ।

इच्छाकूटं कल्पकूटं धर्मकूटं ततः परम् ॥ ७१० ॥
निवृत्त्यविद्यामोहाख्यकूटानि तदनन्तरम् ।
विपाकद्वेषतामिस्ररागयोन्यभिधानि च ॥ ७११ ॥
कूटं निरञ्जनं पिण्डकूटमक्षरकूटकम् ।
ततो मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्ताख्यानि च पार्वति ॥ ७१२ ॥
प्रमाणप्रकृतिप्रज्ञाप्रत्ययाख्यान्यतः परम् ।
जीवात्मपरमात्मानावाभासप्रतिबिम्बकौ ॥ ७१३ ॥
चैतन्यसदसन्नित्यकूटानि तदनन्तरम् ।
सर्वशेषे तु विज्ञेयं कूटमैकात्म्यनामकम् ॥ ७१४ ॥

अब तुम क्रमशः कूट नामों को सुनो । मेरुकूट कैलासकूट मन्दारकूट उदयकूट अस्तमयकूट त्रिकूट अचलकूट चण्डकूट रत्नकूट मणिकूट इसके बाद प्रासाद और स्वस्तिक ये दो कूट फिर ध्वजकूट फिर मालाकूट रेखाकूट मन्थानकूट समयकूट किञ्जल्ककूट वैराग्यकूट ऐश्वर्यकूट केशरकूट विशुद्धकूट उपाधिकूट अद्वैतकूट वासनाकूट योगभूमिकूट इच्छाकूट कल्पकूट उसके पश्चात् धर्मकूट उसके अनन्तर निवृत्तिकूट अविद्याकूट मोहकूट फिर विपाककूट द्वेषकूट तामिस्रकूट रागकूट योनिकूट हैं । निरञ्जनकूट पिण्डकूट अक्षरकूट उसके बाद हे पार्वति! मनस्कूट बुद्धिकूट अहङ्कारकूट चित्तकूट तत्पश्चात् प्रमाणकूट प्रकृतिकूट प्रज्ञाकूट प्रत्ययकूट हैं । फिर जीवात्मकूट परमात्मकूट आभासकूट प्रतिबिम्बकूट चैतन्यकूट सदसत्कूट नित्यकूट और सबके अन्त में ऐकात्म्य नामक कूट को जानना चाहिये ॥ ७०६-७१४ ॥

इति क्रमेण कूटानि मन्त्राणां कथितानि ते ।
क्रमशोऽन्यानि बीजानि पुनर्देवि निशामय ॥ ७१५ ॥
प्रभा ततः सुप्रभा च विशुद्धिर्नन्दिनी तथा ।
रथन्तरं नित्यवृषपुष्टिकौमुद्य एव च ॥ ७१६ ॥
विहङ्गमः पूतना च पूर्णाधूमौ ततः परम् ।
ललिता च विराट् चैव फैरवं सकुमारिकम् ॥ ७१७ ॥
तृवृत्कापालगोकर्णसुरभीरौरवाणि च ।
नन्दा जटाऽथ हैमं च वैमलं दण्डगोंऽशवः ॥ ७१८ ॥
शुक्लो घण्टा पिङ्गला च चिता च ध्वज एव च ।
कल्पो मुक्ता महा चैव क्रमो नृहरिरेव च ॥ ७१९ ॥
क्रकचश्च तथारिष्टं श्मशानं शव एव च ।
सान्वक्षमौञ्जीसूत्राणि टङ्कन्यासौ ततः परम् ॥ ७२० ॥
ऋषभश्च अथाद्वैतं मेखला कुण्डमेव च ।
तन्त्रो वर्णः सम्पुटं च बीजान्येतान्यनुक्रमात् ॥ ७२१ ॥

हे देवि! इस प्रकार क्रमशः मन्त्रों के कूट तुमको बतलाये गये । अब अन्य बीजों को क्रमशः सुनो । प्रभा सुप्रभा विशुद्धि नन्दिनी रथन्तर नित्य वृष पुष्टि कौमुद्य विहङ्गम पूतना पूर्णा धूम ललिता विराट् फैरव कुमारिक त्रिवृत् कापाल गोकर्ण सुरभी रौरव नन्दा जटा हैम वैमल दण्ड गो अंशु शुक्ल घण्टा पिङ्गला चिता ध्वज कल्प मुक्ता महाक्रम नृसिंह क्रकच अरिष्ट श्मशान राव सानु अक्ष मौञ्जी सूत्र टङ्क न्यास ऋषभ अद्वैत मेखला कुण्ड तन्त्र वर्ण सम्पुट क्रमशः ये सब बीज हैं ॥ ७१५-७२१ ॥

आनुपूर्व्युपकूटानि निबोधातः परं प्रिये ।
ब्रह्मास्त्रं वैष्णवास्त्रं हि शाङ्करास्त्रं तथैव च ॥ ७२२ ॥
कौबेरास्त्रमथो ज्ञेयं वायव्यं वारुणं तथा ।
कम्पनास्त्रमथैन्द्रास्त्रं कालं भूतास्त्रमेव च ॥ ७२३ ॥
पार्जन्यं वैद्युतं नागमस्त्रत्रयमतः परम् ।
मातङ्गदानवाख्ये च राक्षसं शाबरं तथा ॥ ७२४ ॥
कालकूटं ब्रह्मशिरः पैशाचं जम्भनं तथा ।
वैनायकमथोत्पातः स्तम्भनं मारणं तथा ॥ ७२५ ॥
याम्यं नारायणास्त्रं च प्राजापत्यास्त्रमेव च ।
तामसं तैमिरं त्वाष्ट्रं सौपर्णं राजसं तथा ॥ ७२६ ॥
पाषाणं पार्वतं चापि जम्भकैषीकमित्यपि ।
औदुम्बरास्त्रं चाक्रास्त्रं गान्धर्वं हैमनं तथा ॥ ७२७ ॥
प्रस्वापनं सौरगुह्ये वेतालं शारभं तथा ।
वारणास्त्रं प्रामथास्त्रं स्कान्दमार्क्ष्यं तथैव च ॥ ७२८ ॥
कूष्माण्डास्त्रं मूर्च्छनास्त्रं भ्रामकास्त्रं तथैव च ।
गालनास्त्रं त्रैदशास्त्रं सर्वशेषे प्रतिष्ठितम् ॥ ७२९ ॥

हे प्रिये! इसके बाद उपकूटों की आनुपूर्वी को सुनो । ब्रह्मास्त्र वैष्णवास्त्र शाङ्करास्त्र कौबेरास्त्र फिर वायव्यास्त्र वारुणास्त्र कम्पनास्त्र इसके बाद ऐन्द्रास्त्र कालास्त्र भूतास्त्र पार्जन्य वैद्युत नाग ये तीन अस्त्र होते हैं । उसके बाद मातङ्ग दानव राक्षस शाबर कालकूट ब्रह्मशिर पैशाच जम्भन वैनायक उत्पात स्तम्भन मारण याम्य नारायणास्त्र तथा प्राजापत्यास्त्र होते हैं । तामस तैमिर त्वाष्ट्र सौपर्ण राजस पाषाण पार्वत जम्भक ऐषीक औदुम्बरास्त्र चाक्रास्त्र गान्धर्व हैमन प्रस्वापन सौर गुह्य वेताल शारभ वारणास्त्र प्रामथास्त्र (?) स्कान्द आर्क्ष्य कूष्माण्डास्त्र मूर्च्छनास्त्र भ्रामकास्त्र गालनास्त्र और सबके अन्त में त्रैदशास्त्र प्रतिष्ठित है ॥ ७२२-७२९ ॥

षट्पञ्चाशदिमे कूटाः क्रमेण परिकीर्तिताः ।
अतः परं पुनर्बीजं निःश्रेणीमवधारय ॥ ७३० ॥
अनाहतश्च भोगश्च सृष्टिः फेत्कार्यपि प्रिये ।
त्रेता कराली कृत्या च तर्जनी च कटङ्कटा ॥ ७३१ ॥

कोशः पिण्डः क्षुधा चैव सन्तानो मोक्ष एव च।
निर्वाणोऽप्यथ नाराचः शूलं भल्लार्धचन्द्रकौ ॥ ७३२ ॥
वत्सदन्तः क्षुरप्रश्च द्वाविंशो गोस्तनो मतः ।
सन्दंशकश्च नालीको भुशुण्डी परिघस्तथा ॥ ७३३ ॥
गदा च तोमरः प्रासः पट्टिशस्तदनन्तरम् ।
संहिता कौणपी ध्यानहाकिनीविधिचञ्चवः ॥ ७३४ ॥
रम्भावती च कुलिकं करम्भिश्चौषधी तथा ।
कङ्कालं मानसं शान्तिरुग्रं डामरमेव च ॥ ७३५ ॥
नाकुलं तैजसं वज्रमासुरं तदनन्तरम् ।
कूर्माधारौ द्रावणं च मङ्गलं च सुदर्शनम् ॥ ७३६ ॥
अध्वरः सर्वशेषे स्यात्तृतीया बीजसंहृतिः ।
अतः परं क्रमेणैव नाडीः कलय पार्वति ॥ ७३७ ॥

ये छप्पन कूट क्रम से कहे गये । इसके बाद पुनः निःश्रेणी बीज को समझो । हे प्रिये! अनाहत भोग सृष्टि फेत्कारी त्रेता कराली कृत्या तर्जनी कटङ्कटा कोश पिण्ड सुधा सन्तान मोक्ष निर्वाण नाराच शूल भल्ल अर्धचन्द्र वत्सदन्त क्षुरप्र द्वाविंश गोस्तन सन्दंशक नालीक भुशुण्डी परिघ गदा तोमर प्रास उसके बाद पट्टिश संहिता कोणपी ध्यान हाकिनी विधि चञ्चु रम्भावती कुलिक करम्भि औषधी कङ्काल मानस शान्ति उग्र डामर नाकुल तैजस वज्र उसके पश्चात् आसुर कूर्म आधार द्रावण मङ्गल सुदर्शन और सबके अन्त में अध्वर यह तीसरा बीज संहार है । हे पार्वति! इसके पश्चात् नाड़ियों को जानो ॥ ७३०-७३७ ॥

भासुरादौ भवेन्नाडी विसर्गा तदनन्तरम् ।
बन्धनी कम्पिनी निम्ना प्रबुद्धा च प्रकाशिनी ॥ ७३८ ॥
विलम्बिता तथाऽलस्या घर्घराऽवेशिनी तथा ।
गान्धारी शङ्खिनी हस्तिजिह्वा पूषा सरस्वती ॥ ७३९ ॥
यशस्विनी वारणा च कूहूरपि पयस्विनी ।
विश्वोदराऽलम्बुषा च हिता चण्डा च गालिनी ॥ ७४० ॥
सती मन्दा मधुमती द्राविणी चेतना तथा ।
सौवीरी कपिला रण्डा रञ्जनी रेवती ततः ॥ ७४१ ॥
उत्तराऽप्यायनी विश्वदूता चन्द्रा कपर्दिनी ।
नन्दा चन्द्रावती मैत्रीविकल्पा लम्बिकाऽचला ॥ ७४२ ॥
सम्मोहा कोटरा मूला तन्द्रावत्यपि घण्टिका ।
धारिणी धोरिणी धीरा सुरभी कृन्तनी तथा ॥ ७४३ ॥
इति क्रमेण वै नाड्यस्तव देवि मयेरिताः ।
बीजश्रेणीं पुनरपि निशामय ततोऽनु या ॥ ७४४ ॥

पहले भासुरा नाडी उसके पश्चात् विसर्गा बन्धनी कम्पिनी (?) निम्ना प्रबुद्धा प्रकाशिनी विलम्बिता आलस्या घर्घरा आवेशिनी गान्धारी शंखिनी हस्तिजिह्वा पूषा सरस्वती यशस्विनी वारणा कुहू पयस्विनी विश्वोदरा अलम्बुषा हिता चण्डा गालिनी सती मन्दा मधुमती द्राविणी चेतना सौवीरी कपिला रण्डा रञ्जनी रेवती उत्तरा आप्यायनी विश्वदूता चन्द्रा कपर्दिनी नन्दा चन्द्रावती मैत्री विकल्पा लम्बिका अचला सम्मोहा कोटरा मूला तन्द्रावती घण्टिका धारिणी धोरिणी धीरा सुरभी तथा कृन्तनी ये नाड़ियाँ क्रम से मैंने तुमको बतलायी। इसके पश्चात् जो बीजश्रेणी है, उसको पुनः सुनो ॥ ७३८-७४४ ॥

उल्का वेदी जरा चण्डी खलपातालकुक्कुटाः।
सारं धारालक्ष्यभव्याक्षरगोत्रा महोदयाः ॥ ७४५ ॥
तुलानुदात्तस्वरितरत्नोदात्ताजनिष्कलाः ।
प्रियभू(भ्रूः) जम्बुकज्योतिर्नाकनारदपुष्कलाः ॥ ७४६ ॥
नान्दी बलिः पृथुर्ह्रस्वनदसात्वततारकाः ।
वृत्ततुङ्गाखण्डपुण्यचारुसन्तानकुब्जकाः ॥ ७४७ ॥
पुरुचूडामणिव्रज्याखातादेशतलच्छटाः ।
आत्मा शिखा प्राग्भवस्त्रिस्थानकल्याणवासनाः ॥ ७४८ ॥
साधकः सर्वशेषे स्यात् तुर्या बीजानि ईरिताः।
अथ क्रमेण सूक्तानि व्याहरामि वरानने ॥ ७४९ ॥

उल्का वेदी जरा चण्डी खल पाताल कुक्कुट सार धारा लक्ष्य भव्य अक्षर गोत्र महोदय तुला अनुदात्त स्वरित रत्न उदात्त अज निष्कल प्रियभ्रू जम्बुक ज्योति नाक नारद पुष्कल नान्दी बलि पृथु ह्रस्व नद सात्वत तारक वृत्त तुङ्ग अखण्ड पुण्य चारु सन्तान कुब्जक पुरु चूडामणि व्रज्या खाता देश तल छटा आत्मा शिखा प्राग्भव त्रिस्थान कल्याण वासना और सबके अन्त में साधक ये चतुर्थ श्रेणी के बीज कहे गये। अब हे वरानने! अब तुमको सूक्तों को बतलाऊँगा ॥ ७४५-७४९ ॥

पौरुषं सूक्तमादौ स्यात् माहित्रं शुद्धवत्यपि ।
शिवसङ्कल्पसूक्तं च सूक्तमानन्दमेव च ॥ ७५० ॥
ततस्तु गृत्समदीयं तौषितं सूक्तमेव च ।
सोमारौद्रं सिद्धसूक्तं नाराशंसी ततः परम् ॥ ७५१ ॥
पावमानीयसूक्तं च भौमसूक्तं ततः परम् ।
हविष्यान्तं ततः सूक्तं नतमंहस्ततः परम् ॥ ७५२ ॥
वैश्वदेवं ततः सूक्तमस्यवामीयमित्यपि ।
शारीरसूक्तमैन्द्राग्नमग्निषोमीयमित्यपि ॥ ७५३ ॥
नक्षत्रसूक्तं तदनु मैत्रावरुणमेव च ।
भारुण्डानामकं सूक्तं कल्पसूक्तमतः परम् ॥ ७५४ ॥

पितृसूक्तं भार्गवं च सूक्तं वैनायकं तथा ।
वायव्यं यक्षसूक्तं च नैर्ऋतं तत्त्वमेव च ॥ ७५५ ॥
सूक्ते आर्यम्णवैभ्राजे गर्भसूक्तमतः परम् ।
कैवल्यामृतसूक्ते च लक्ष्मीसूक्तं ततोऽप्यनु ॥ ७५६ ॥
मानस्तोकं ततः सूक्तं सूक्तं गारुडमेव च ।
श्रीसूक्तं रौद्रसूक्तं च सूक्तं वै नादबैन्दवम् ॥ ७५७ ॥
देवीसूक्तं च माध्वीकमाथर्वणमतः परम् ।
महाप्रस्थानसूक्तं च त्वाष्ट्रहंसे ततः स्मृते ॥ ७५८ ॥
हैरण्यकेशसूक्तं च लयसूक्तमतः परम् ।
पर्यायाख्यं च ततः सूक्तमैन्द्रवारुणमेव च ॥ ७५९ ॥
बार्हस्पत्यं ततः सूक्तं तत औशनसं स्मृतम् ।
नाचिकेतसमेधे च ततः सूक्ते उभे मते ॥ ७६० ॥
सर्वशेषे परिज्ञेयं सूक्तं वै नीललोहितम् ।
सूक्तानन्तरबीजानि पुनरन्यानि वै शृणु ॥ ७६१ ॥

पहले पुरुष सूक्त होता है । फिर माहित्र शुद्धवती उसके बाद शिवसङ्कल्पसूक्त आनन्दसूक्त । उसके पश्चात् गृत्समदीयसूक्त तौषितसूक्त सोमारौद्रसूक्त सिद्धसूक्त नाराशंसीसूक्त उसके बाद पावमानीयसूक्त भौमसूक्त हविष्यान्तसूक्त तदनन्तर नतमंहसूक्त फिर वैश्वदेव उसके पश्चात् अस्यवामीयसूक्त शरीरसूक्त ऐन्द्राग्नसूक्त अग्निषोमीयसूक्त उसके बाद नक्षत्रसूक्त तदनन्तर मैत्रावरुणसूक्त फिर भारुण्डा नामक सूक्त तत्पश्चात् कल्पसूक्त पितृसूक्त भार्गवसूक्त वैनायकसूक्त वायव्यसूक्त यक्षसूक्त नैर्ऋतसूक्त तत्त्वसूक्त आर्यम्णसूक्त वैभ्राजसूक्त उसके बाद गर्भसूक्त कैवल्य एवं अमृतसूक्त उसके पश्चात् लक्ष्मीसूक्त मानस्तोकसूक्त फिर गारुडसूक्त श्रीसूक्त रौद्रसूक्त फिर नादबैन्दवसूक्त देवीसूक्त माध्वीकसूक्त उसके परे आथर्वणसूक्त महाप्रस्थानसूक्त फिर त्वाष्ट्रसूक्त हंससूक्त कहे गये हैं । हैरण्यकेशसूक्त उसके बाद लयसूक्त फिर पर्याय नामक सूक्त फिर ऐन्द्रवारुणसूक्त बार्हस्पत्यसूक्त फिर औशनससृक्त कहा गया है । नाचिकेतस और मेधा ये दोनों सूक्त बतलाये गये हैं । सबके अन्त में नीललोहितसूक्त को जानना चाहिये । सूक्तों के अनन्तर अब अन्य बीजों को ध्यान से सुनो ॥ ७५०-७६१ ॥

साक्षी पंक्तिस्तथा योग उत्तमः काल एव च ।
काकीमुखश्च मुकुलो वैकारिकस्ततः परम् ॥ ७६२ ॥
मन्दारसिन्धुकीलालमहेन्द्रकरुणेश्वराः ।
द्वीपजम्भषडङ्गात्रिककुत्सङ्घातशैशुकाः ॥ ७६३ ॥
विलासः संग्रहो घाटी कार्पटो भार एव च ।
संयमातीतसन्धानस्थावराः जङ्गमः शुचिः ॥ ७६४ ॥

ग्लहः खर्वस्तथा मध्यः कुठारः कर्तृसंयुतः ।
सारङ्गो वागुरा चेति खट्वाङ्गं बेधिनी हलः ॥ ७६५ ॥
परेष्टिव्रतपूर्त्तानि निर्मोकोत्तंसनामकौ ।
वेतण्डरङ्कताटङ्कलीलार्च्चा धेनुरेव च ॥ ७६६ ॥
क्षोभणो मारिषश्चेति सर्वशेषे प्रतिष्ठितः ।
एषा तु पञ्चमी बीजपंक्तिर्देवि तवोदिता ॥ ७६७ ॥

साक्षी पंक्ति योग उत्तम काल काकीमुख मुकुल उसके बाद वैकारिक मन्दार सिन्धु कीलाल महेन्द्र करुण ईश्वर द्वीप जम्भ षडङ्ग अत्रि ककुत् सङ्घात शैशुक विलास संग्रह घाटी कार्पट भार संयम अतीत सन्धान स्थावर जङ्गम शुचि ग्लह खर्व मध्य कुठार कर्तृ सारङ्ग वागुरा खट्वाङ्ग वेधिनी हल परेष्टिव्रत पूर्त्त निर्मोक उत्तंस वेतण्ड रङ्क ताटङ्क लीला अर्चा धेनु क्षोभण और सबके अन्त में मारिष स्थित है । यह पाँचवीं बीजपंक्ति तुमको बतलायी गयी ॥ ७६२-७६७ ॥

अतः परं क्रमेणैव वर्णान् समवधारय ।
शुक्लवर्णो भवेदादौ ततः शुभ्रोऽरुणस्तथा ॥ ७६८ ॥
वलक्षश्शुचिचित्राश्च त्रयो वर्णाः कमेण हि ।
सम्पृक्तरोहितौ वर्णौ कृष्णः श्वेतोऽसितस्तथा ॥ ७६९ ॥
धवलो मेचको गौरस्त्रयो वर्णा इमे ततः ।
रक्तपालाशशबलास्त्रयो वर्णास्ततः परम् ॥ ७७० ॥
श्यावकल्माषपिङ्गाश्च पाण्डरः शौक एव च ।
नीलकिर्म्मीरहरितलोहिताः सितकर्बुरः ॥ ७७१ ॥
रक्तनीलस्तथा पाण्डुः श्यामः कालस्तथैव च ।
रक्तपीतश्च कपिलो धूसरो धूम्र एव च ॥ ७७२ ॥
कर्बुरः पिङ्गलः कृष्णपाटलस्तदनन्तरम् ।
कौसुम्भश्चापि हारिद्रो मायूरः पाटलस्तथा ॥ ७७३ ॥
पाण्डुचित्रः शोणपीतौ कपिशो बभ्रुरेव च ।
ऐन्द्रगोपश्च हरितो हरिर्हरिण एव च ॥ ७७४ ॥
राजसः काद्रवश्चैव तैत्तिरोज्ज्वलसङ्कराः ।
इति वर्णा मताः सर्वे क्रमेणैव मयोदिताः ॥ ७७५ ॥

इसके बाद क्रम से वर्णों को जानो । पहले शुक्ल वर्ण फिर शुभ्र अरुण उसके बाद वलक्ष शुचि चित्र ये तीन क्रम से जानना चाहिये । सम्पृक्त रोहित कृष्ण श्वेत असित धवल मेचक और गौर ये तीन वर्ण होते हैं । फिर रक्त पालाश शबल ये तीन रङ्ग होते हैं । श्याव कल्माष पिङ्ग पाण्डर शुकसदृश नील किर्मीर हरित लोहित सितकर्बुर रक्तनील पाण्डु श्याम काल फिर रक्तपीत कपिल धूसर धूम्र कर्बुर पिङ्गल उसके पश्चात् कृष्णपाटल कौसुम्भ हारिद्र मायूर पाटल पाण्डुचित्र शोणपीत कपिश

बभ्रु ऐन्द्रगोप हरित हरिहरिण राजस काद्रव तैत्तिर उज्ज्वल सङ्कर ये रङ्ग माने गये हैं। मैने सबको क्रम से कह दिया ॥ ७६८-७७५ ॥

बीजान्येतदनुक्तानि यानि तानि निबोध मे।
प्रभञ्जना भ्रामरी च प्रचण्डा डाकिनी तथा ॥ ७७६ ॥
केकराक्षी महारात्रिः कालरात्रिस्तथैव च।
विजयो मन्दसम्मोहौ प्रलयः पतनं तथा ॥ ७७७ ॥
ततो युगान्तसंहारौ वेगः सन्धानसिञ्जिनी।
लिङ्गनैमयपुन्नागास्त्रिपुरा रौद्र एव च ॥ ७७८ ॥
मातृशङ्कू मज्जनं च याम्यमैन्द्रं च जीवनी।
यक्षो वीरश्च वेतालो वाडवो भौव एव च ॥ ७७९ ॥
उग्रश्च पुटकश्चेति चर्पटं मणिमालया।
हारिण्युत्कोचिनी चैव गायत्री कर्णिका तथा ॥ ७८० ॥
शृङ्खलौपह्वरे चापि नान्दिकं तदनन्तरम्।
भद्रिका च तथा तन्द्रा कुटिला रञ्जिनी घटी ॥ ७८१ ॥
सुरसः समरो रागः सारसः सुकृतं तथा।
पद्मोऽथ सर्वशेषे वै कुशिकः परिकीर्तितः ॥ ७८२ ॥

अब जो बीज यहाँ नहीं कहे गये उनको मुझसे जानो। प्रभञ्जना भ्रामरी प्रचण्डा डाकिनी केकराक्षी महारात्रि कालरात्रि विजय मन्द सम्मोह प्रलय पतन इसके बाद युगान्त संहार वेग सन्धान सिञ्जिनी लिङ्ग नैमेय पुन्नाग त्रिपुरा रौद्र मातृ शङ्कु मज्जन याम्य ऐन्द्र जीवनी यक्ष वीर वेताल वाडव भौव उग्र पुटक चर्पट मणिमाला हारिणी उत्कोचिनी गायत्री कर्णिका शृङ्खला औपह्वर उसके बाद नान्दिक भद्रिका तन्द्रा कुटिला रञ्जिनी घटी सुरस समर राग सारस सुकृत पद्म और सबके अन्त में कुशिक कहा गया है ॥ ७७६-७८२ ॥

सरितामथ नामानि क्रमेण शृणु पार्वति।
सरस्वती विपाशा च चन्द्रभागा च देविका ॥ ७८३ ॥
यमुनैरावती चापि गोमती देविका तथा।
वितस्ता सरयूः शिप्रा नर्मदा बाहुदा तथा ॥ ७८४ ॥
कावेरी गण्डकी कृष्णवेल्ला गोदावरी तथा।
तुङ्गभद्रा भीमरथी करतोया च ताप्यपि ॥ ७८५ ॥
पयोष्नी कौशिकी चैव सभङ्गोत्पलिनी तथा।
शरावतीरावती च पर्णाशा ताम्रपर्ण्यपि ॥ ७८६ ॥
कृतमाला मालिनी च तमसा वेत्रवत्यपि।
चर्मण्वती धूतपापा विरजा मुरला तथा ॥ ७८७ ॥
सुवर्णरेखा निर्बिन्ध्या वाग्मती च महानदी।

ज्योतीरसा च वरुणा शोणः पारावती तथा ॥ ७८८ ॥
मन्दाकिनी शतद्रुश्च हिरण्याक्षोऽथ घर्घरः ।
लौहित्यालकनन्दे च वंक्षुः शीता दृषद्वती ॥ ७८९ ॥
ततो भोगवती सर्वशेषे गङ्गा प्रकीर्तिता ।
बीजानां पंक्तयः षट् च षट् च कूटोपकूटयोः॥ ७९० ॥
इमे क्रमेण देवेशि मया ते परिकीर्तिता ।
बीजं कूटं पुनर्बीजमुपकूटं ततः परम् ॥ ७९१ ॥
पुनर्बीजं पुनर्नाडी पुनर्बीजं तथैव च ।
पुनः सूक्तं पुनर्बीजं पुनर्वर्णः सुरेश्वरि ॥ ७९२ ॥
पुनर्बीजं ततः शेषे नदी देवि प्रतिष्ठिता ।
अनयैव दिशा सर्वं कार्यमेकान्तरं प्रिये ॥ ७९३ ॥

हे पार्वति! अब नदियों के नाम क्रम से सुनो । सरस्वती विपाशा चन्द्रभागा देविका यमुना इरावती गोमती देविका वितस्ता सरयू शिप्रा नर्मदा बाहुदा कावेरी गण्डकी कृष्णवेल्ला गोदावरी तुङ्गभद्रा भीमरथी करतोया तापी पयोष्नी कौशिकी सभङ्गा उत्पलिनी शरावती इरावती पर्णाशा ताम्रपर्णी कृतमाला मालिनी तमसा वेत्रवती चर्मण्वती धूतपापा विरजा मुरला सुवर्णरेखा निर्विन्ध्या वाग्मती महानदी ज्योतीरसा वरुणा शोणभद्र पारावती मन्दाकिनी शतद्रु हिरण्याक्ष घर्घर (= घाघरा) लौहित्या अलकनन्दा वंक्षु शीता दृषद्वती भोगवती और सबके अन्त में गङ्गा कही गयी है । इस प्रकार बीजों की छह पंक्तियाँ और कूट, उपकूट की भी छह-छह पंक्तियाँ है । हे देवेशि! इनको मैंने क्रमशः तुमको बतलाया । बीज कूट उसके बाद बीज फिर उपकूट, पुनः बीज, फिर नाडी, पुनः बीज, पुनः सूक्त, पुनः बीज हे सुरेश्वरि! उसके बाद वर्ण, पुनः बीज उसके पश्चात् हे देवि! अन्त में नदी स्थित रहती है । हे प्रिये! इसी रीति से एक-एक के अन्तर से सबको करना चाहिये ॥ ७८३-७९३ ॥

षष्ठ्यन्तायाः नवाक्षर्याः स्थिरायाः परगानि हि ।
पदानि यानि ङेऽन्तानि शृणु तानि क्रमेण हि ॥ ७९४ ॥
जटाजूटं मस्तकं च ललाटं तदनन्तरम् ।
सीमन्तदण्डस्तदनु दक्षिणभ्रूरपि प्रिये ॥ ७९५ ॥
वामभ्रूर्दक्षिणः कर्णो वामकर्णस्ततः परम् ।
तिलकं नासिका चैव दक्षिणं चक्षुरप्यनु ॥ ७९६ ॥
वामचक्षुस्ततो ज्ञेयं पक्ष्माणि तदनन्तरम् ।
ततो दक्षिणगण्डश्च वामगण्डस्ततः परम् ॥ ७९७ ॥
दक्षिणश्च तथा वामः कपोलस्तदनन्तरम् ।
दक्षिणं कुण्डलं वामकुण्डलं तदनु प्रिये ॥ ७९८ ॥
ओष्ठस्तथाधरश्चाधोदन्तपङ्क्तिरितोऽप्यनु ।

ततोर्ध्वदन्तपंक्तिश्च मुखमण्डलमेव च ॥ ७९९ ॥
चिबुकं च गलो वक्षःस्थलं हारस्ततः परम् ।
बाहवोऽस्त्राणि पृष्ठं च तत्पश्चादुदरं मतम् ॥ ८०० ॥
अन्त्राणि जठरं प्राणा रोमाणि स्युरितः परम् ।
दृष्टिस्तथा निमेषोन्मेषस्ततो हृदयं भवेत् ॥ ८०१ ॥
चरणौ तदनु ज्ञेयौ पादोऽङ्गुल्यस्ततः परम् ।
वाङ्नाडी च कफोणी च मणिबन्धौ तथैव च ॥ ८०२ ॥
जङ्घे ऊरू कटिश्चापि वंक्षणे प्रपदे तथा ।
स्फिचौ सर्वाङ्गमस्यानु जिह्वात्रयमुदीर्यते ॥ ८०३ ॥
अन्नं ततो भोजनस्य समयः परिपठ्यते ।
सर्वशेषे ततः पार्श्वपरिवर्त उदाहृतः ॥ ८०४ ॥

षष्ठ्यन्त स्थिर नवाक्षरी के जो परगामी ङेऽन्त अर्थात् चतुर्थी एकवचनान्त पद हैं उनको क्रम से सुनो । जटाजूट मस्तक ललाट उसके बाद सीमन्तदण्ड इसके बाद हे प्रिये! दक्षिणभ्रू वामभ्रू दक्षिणकर्ण वामकर्ण उसके बाद तिलक नासिका दक्षिण चक्षु के बाद वामचक्षु इसके बाद पलकों को जानना चाहिये । इसके पश्चात् दक्षिण गण्ड फिर वामगण्ड तदनु दक्षिण कपोल वाम कपोल । हे प्रिये! उसके पश्चात् दक्षिण कुण्डल वाम कुण्डल ओष्ठ अधर अधोदन्तपंक्ति इसके बाद ऊर्ध्वदन्तपंक्ति मुखमण्डल चिबुक गल वक्षःस्थल हार उसके बाद भुजायें अस्त्र पीठ तत्पश्चात् उदर माना गया है । आँतें जठर प्राण रोमसमूह तत्पश्चात् दृष्टि फिर निमेष उन्मेष तदनु हृदय फिर दोनों पैर पुनः पैरों की अङ्गुलियाँ वाङ्नाडी कफोणी दोनों मणिवन्ध दोनों जङ्घायें दोनों ऊरु कटिप्रदेश दोनों वंक्षण दोनों प्रपद स्फिच् सर्वाङ्ग उसके बाद तीनों जिह्वायें अन्न फिर भोजन का समय पढ़ा जाता है । उसके बाद सबके अन्त में पार्श्व परिवर्तन कहा गया है ॥ ७९४-८०४ ॥

षट्पञ्चाशदिमे ख्याता देव्याः शारीरजाः क्रमात् ।
उद्देशक्रमतो देवि वचनानि प्रयोजयेत् ॥ ८०५ ॥
चतुर्थ्यन्तानि सर्वाणि स्युर्वाचां भेद एव च ।
एतेषामग्रतो यानि पदानि सुरवन्दिते ॥ ८०६ ॥
तान्याकलय सर्वाणि पूर्वोक्तक्रमगानि हि ।
यथायोग्यं प्रकृत्यादिः सर्वादौ परिनिष्ठितः ॥ ८०७ ॥
ब्रह्माण्डोर्ध्वकपालं च देवीलोकस्ततः परम् ।
मेरुशैलोऽजवीथी च नागवीथी ततोऽप्यनु ॥ ८०८ ॥
शिवलोकश्च वैकुण्ठलोको लोहितमेव च ।
मन्दाकिनी च सूर्यश्चन्द्रश्च किरणा अपि ॥ ८०९ ॥

तपोलोकः सत्यलोको जनलोकस्ततः परम् ।
महर्लोको हिमाद्रिश्च कैलासस्तदनूद्यते ॥ ८१० ॥
स्वर्लोकोऽथ भुवर्लोकस्तत एतौ प्रकीर्तितौ ।
दिक्पालग्रहलोकश्च सप्तर्षिध्रुवलोकयुक् ॥ ८११ ॥
रोदसी तदनुज्ञेयं द्यौर्लोको ब्रह्मलोकयुक् ।
नभो नक्षत्रमाला च दिग्विदिक्चय एव च ॥ ८१२ ॥
तत्तल्लोकफलानि स्युः स्वर्गस्तदनु कथ्यते ।
आन्तरिक्षं पर्वताश्च सिन्धवो वायवस्तथा ॥ ८१३ ॥
ततो वनस्पत्योषधयस्तत्पश्चाद् विद्युदेव च ।
अहोरात्रं चतुर्दशभुवनं पृथिवी तथा ॥ ८१४ ॥
सप्तपातालमस्यानु वेदा नद्यः कलास्तथा ।
काष्ठा मुहूर्तो ऋतवः पक्षौ वायनपूर्वगौ ॥ ८१५ ॥
मासा अब्दस्ततः पश्चात् चतुर्युगमुदाहृतम् ।
ततो वैश्वानरकालमृत्यवः परिकीर्तिताः ॥ ८१६ ॥
आब्रह्मस्तम्ब इत्येवं प्रलयस्तदनन्तरम् ।
महाकल्पः सर्वशेषे विज्ञेयस्त्रिदशेश्वरि ॥ ८१७ ॥

ये छप्पन क्रमशः देवी के शरीर से उत्पन्न होने वाले पद हैं । हे देवि! जिस क्रम से वर्णन किया गया उसी क्रम से वचनों का प्रयोग करना चाहिये । ये सब के सब चतुर्थ्यन्त होते हैं । केवल उच्चारण में भेद होता है । हे सुरवन्दिते! इनके बाद जो पद हैं पूर्वोक्त क्रम के अनुसार चलने वाले उन सबको सुनो । सबके आदि में प्रकृति आदि यथायोग्य लगे हुये हैं । ब्रह्माण्ड ऊर्ध्वकपाल देवीलोक उसके बाद मेरुशैल अजवीथी उसके बाद नागवीथी शिवलोक वैकुण्ठलोक लोहित मन्दाकिनी सूर्य चन्द्र किरण तपोलोक सत्यलोक जनलोक उसके बाद महर्लोक हिमाद्रि उसके पश्चात् कैलास कहा जाता है । स्वर्लोक फिर भुवःलोक ये दोनों कहे गये हैं । दिक्पाल ग्रहलोक सप्तर्षि ध्रुवलोक उसके बाद रोदसी (= क्षितिज) द्यौर्लोक ब्रह्मलोक नभ नक्षत्रमाला दिक् विदिक्चय तत्तत्लोक के फल उसके पश्चात् स्वर्ग कहा जाता है । अन्तरिक्ष पर्वत सिन्धु (= नदियाँ) वायु फिर वनस्पति ओषधी तत्पश्चात् विद्युत् अहोरात्र चतुर्दशभुवन पृथिवी इसके बाद सात पाताल फिर वेद नदियाँ कलायें काष्ठा मूहूर्त ऋतु दोनों पक्ष (= शुक्ल-कृष्ण) दोनों अयन (= उत्तरायण-दक्षिणायन) महीने अब्द उसके बाद चतुर्युग कहा गया है । इसके अनन्तर वैश्वानर काल मृत्यु कहे गये हैं। आब्रह्मस्तम्ब तक का प्रलय उसके बाद हे त्रिदशेश्वरि! सबके अन्त में महाकल्प जानना चाहिये ॥ ८०५-८१७ ॥

पूर्वोदितानां शब्दानामनन्तरतया स्थिताः ।
एते शब्दास्तद्विभक्तितत्तद्वचनयोगिनः ॥ ८१८ ॥

करणीयास्तत्सदृशा इत्येतस्य विनिश्चयः ।
इतः परममीषां ये पश्चाद्वर्तिन ईरिताः ॥ ८१९ ॥
पञ्च कूटास्तान् ब्रवीमि क्रमेण तव पार्वति ।
सृष्टिकूटं स्थितिकूटं संहारं कूटमेव च ॥ ८२० ॥
अनाख्याकूटमस्यानु भासाकूटं ततः परम् ।
पञ्च कूटा इमे देवि मन्त्रेषु निखिलेष्वपि ॥ ८२१ ॥
विज्ञातव्याः स्थिरतराः साधकेन विपश्चिता ।
अथो कूटानु या बीजत्रयी प्रोक्ता पृथक् पृथक्॥ ८२२ ॥
प्रतिमन्त्रं तान् ब्रवीमि बीजसङ्घान् वरानने ।
तथैव पूर्णो भविता विराण्न्यासो वरानने ॥ ८२३ ॥

ये शब्द तत्तद् विभक्ति और तत्तद् वचन के सहित पूर्वोक्त शब्दों के अव्यवहित पूर्व में स्थित रहते हैं । उनको उसी प्रकार करना चाहिये । यह इसका निश्चय है । हे पार्वति! इसके बाद जो इनके उत्तरवर्ती पाँच कूट हैं उनको क्रम से कह रहा हूँ । वे हैं—सृष्टिकूट स्थितिकूट संहारकूट अनाख्याकूट और उसके पश्चात् भासाकूट । हे देवि! ये पाँच कूट विद्वान् साधक के द्वारा समस्त मन्त्रों में स्थायी रूप से समझना चाहिये । इसके बाद कूटों के अनन्तर जो प्रत्येक मन्त्र के साथ तीन-तीन बीज कहे गये हैं प्रतिमन्त्र उन बीजसमूहों को बतला रहा हूँ । हे वरानने! इस प्रकार विराट् न्यास पूर्ण होता है ॥ ८१८-८२३ ॥

धन्योल्लोप्ये विस्मृतिश्च सम्पूर्णा मौनिभस्मनी ।
वनस्पतिर्विधानं च संविधानं तथैव च ॥ ८२४ ॥
ततो विक्रमसंक्रान्ती कुलमुद्रा ततोऽप्यनु ।
कुशतन्तू विहारश्च संसृष्टिस्तदनन्तरम् ॥ ८२५ ॥
ततः सिद्धिफलं शिल्पं योगतन्त्रा(न्द्रा) दिगम्बरा ।
शेषे रसपुटं चापि मौनं चूलिकयान्वितम् ॥ ८२६ ॥
विखलस्तस्य शेषे च सर्वस्वं विप्रियं ततः ।
सान्तारश्चापि तदनु समाधानमतः परम् ॥ ८२७ ॥
सन्दर्शनं यौक्तिकं च शुद्धनिद्रा ततोप्यनु ।
माया हारो विस्वरितं चाक्रिकं विक्रियं ततः ॥ ८२८ ॥
विपृथुस्तदनु ज्ञेयौ विवृत्तं सन्तलं ततः ।
सङ्गूढश्चापि तदनु सम्वर्तकविवर्तकौ ॥ ८२९ ॥
पारीन्द्रो जैमनं चापि संव्यानं सम्बलं ततः ।
ततो विवत्ससम्भावौ संयोगस्तदनु स्मृतः ॥ ८३० ॥
पाटलं पिप्पलं चापि विकलस्तदनन्तरम् ।

ततो विनिमयः सञ्जीवनी चापि विपक्षयुक् ॥ ८३१ ॥
कैतवान्तकबीजे च संहारिण्यप्यतः परम् ।
अनुवृत्तिस्ततो गुप्ताचारादिद्वितयं प्रिये ॥ ८३२ ॥
चण्डिलश्च विपाशश्च सम्मोही तदनूद्यते ।
सक्षतं चापि विभ्रान्तिः संभ्रान्तिस्तदनन्तरम् ॥ ८३३ ॥
कुडुक्कश्च कराटी च वात्या तदनु कथ्यते ।
सन्तानं च वितानं च विवरं स्यात्ततः परम् ॥ ८३४ ॥

धन्य उल्लोप्य विस्मृति सम्पूर्णा मौनि भस्म वनस्पति विधान संविधान विक्रम सङ्क्रान्ति कुलमुद्रा इसके बाद कुश तन्तु विहार उसके पश्चात् संसृष्टि उसके अनन्तर सिद्धिफल शिल्प योगतन्त्रा(न्द्रा) दिगम्बरा अन्त में रसपुट चूलिका से युक्त मौन विखल उसके बाद सर्वस्व विप्रिय फिर सान्तार तदनु समाधान फिर सन्दर्शन यौक्तिक शुद्धनिद्रा उसके बाद माया हार विस्वरित चाक्रिक विक्रिय विपृथु जानना चाहिये । विवृत्त उसके बाद सन्तल सङ्गूढ सम्वर्तक विवर्तक पारीन्द्र जैमन संव्यान सम्बल तत्पश्चात् विवत्स सम्भाव उसके बाद संयोग कहा गया हैं । पाटल पिप्पल विकल ततः विनिमय सञ्जीवनी विपक्ष कैतक(व) अन्तक उसके बाद संहारिणी फिर अनुवृत्ति हे प्रिये! उसके बाद गुप्ताचार आदि दो (गुप्ताचार और गुह्यकपाट?) चण्डिल विपाश उसके बाद सम्मोही कहा जाता है । सक्षत विभ्रान्ति तदनन्तर सम्भ्रान्ति कुडुक्क कराटी उसके बाद वात्या कही जाती है । सन्तान वितान उसके बाद विवर कहा जाता है ॥ ८२४-८३४ ॥

प्राकारः कुहिका चापि बीजानि तदनु प्रिये ।
तर्पणं भेदवरटौ जठराद्यौ ततः परम् ॥ ८३५ ॥
शपशस्तदनु ज्ञेयो याच्ञा च तदनु स्मृता ।
आक्रोशश्चापि संवृत्तिः सम्प्रदायश्च भाजनम् ॥ ८३६ ॥
अनपायस्तस्य शेषे स्यादुत्क्रामोऽन्वस्य कथ्यते।
प्रदेशनीराजने च संहारो यमलादिमः ॥ ८३७ ॥
उदीर्णं भानुमस्यानु ग्राहश्च ग्रह एव च ।
देवेशि तपनं पश्चादुद्भिद्वापौ ततः परम् ॥ ८३८ ॥
तीर्थं च तदनु ज्ञेयं पौषश्च सवनं तथा ।
क्षुद्रः सन्धानवर्ष्मणी च वितानं तदनन्तरम् ॥ ८३९ ॥
सम्भूतिश्चतुरस्रं च त्र्यस्रं तदनु कथ्यते ।
दाक्षिकं सौमतं चापि प्रतानं स्यात्ततः परम् ॥ ८४० ॥
नादान्तकश्चामरं च व्यजनं तदनूद्यते ।
विरूपश्चापरान्तश्च प्रकर्यपि वरानने ॥ ८४१ ॥
मारण्डश्च विनादश्च विमर्दस्तदनन्तरम् ।

ततः सन्ततिबर्हे च सामबीजं ततोऽप्यनु ॥ ८४२ ॥
वीथीपर्णौ च करणं वेहण्डस्तेजनं तथा ।
मेहनी तदनु ज्ञेया वासश्चानय एव च ॥ ८४३ ॥

हे प्रिये! उसके बाद प्राकार कुहिका बीजों को कहना चाहिये । तर्पण भेद वरट जठर आद्य उसके पश्चात् शपथ जानना चाहिये । तदनन्तर याच्ञा कही गयी है । आक्रोश संवृति सम्प्रदाय भाजन अनपाय उसके बाद उत्क्राम कहा जाता है । प्रदेश नीराजन संहार यमल उदीर्ण भानु उसके बाद ग्राह ग्रह । फिर हे देवेशि! तपन उद्भिद् दाप तीर्थ पौष सवन क्षुद्र सन्धान वर्ष्मा उसके बाद वितान सम्भूति चतुरस्र त्र्यस्र कहा जाता है । दाक्षिर्क सौमत उसके पश्चात् प्रतान होता है । नादान्तक चामर व्यजन विरूप अपरान्त मारण्ड विनाद उसके बाद विमर्द फिर सन्तति बर्ह सामबीज वीथी पर्ण करण वेहण्ड तेजन मेहनी उसके बाद वास (?) और आनय (?) कहना चाहिये ॥ ८३५-८४३ ॥

कुञ्चिका तदनु ज्ञेया विराधश्च तुरीयया ।
ग्रावा तदनु देवेशि मोदकं वासिता तथा ॥ ८४४ ॥
ओजस्विनी बीजमस्यानु पूत्यण्डं कुञ्चिका ततः ।
ततः कामकला ज्ञेया षट्चक्रं तदनन्तरम् ॥ ८४५ ॥
सर्वागमो भवेत् तस्मादाम्नायातीत इत्यपि ।
शक्तिसर्वस्वमस्यानु परापर इतः परम् ॥ ८४६ ॥
ततोऽनु वज्रकवचं शाम्भवं तदनन्तरम् ।
चिच्छक्तिर्जगदावृत्तिबीजं तदनु कथ्यते ॥ ८४७ ॥
लाङ्गूलं वर्द्धमानं च वेत्रमित्यस्य शेषगम् ।
बाला बाहुश्च खोटश्च विजया तदनन्तरम् ॥ ८४८ ॥
श्रीकण्ठोऽप्यथ कौलुञ्चः पाणिगीतिरितः परम् ।
सङ्कल्पः कलहश्चापि चक्रतुम्बी ततो मता ॥ ८४९ ॥
संन्यासश्च विचारश्च शुभंयुस्तदनन्तरम् ।
वियोगस्तदनु ज्ञेयमुत्तानं सर्वशेषगम् ॥ ८५० ॥
इति त्रिबीजनिःश्रेणी क्रमेण कथिता मया ।
दातव्या फट्त्रयादूर्ध्वं हृच्छीर्षे तदनु स्मृते ॥ ८५१ ॥
इति देवि मया तुभ्यं विराण्न्यास उदाहृतः ।
समासव्यासयोगेन दुरूहो धीमतामपि ॥ ८५२ ॥
न्यासस्यास्य स्थलान्येव मन्त्र एवोदितानि हि ।
तेनैव क्रमयोगेन स्वाङ्गे न्यस्यानि पार्वति ॥ ८५३ ॥
विराण्न्यासस्य उद्धार इति ते प्रतिपादितः ।
रीत्याऽनया प्रकर्तव्यो न्यास एष महाफलः ॥ ८५४ ॥

उसके बाद कुञ्चिका जाननी चाहिये । विराध, तुरीया उसके बाद हे देवेशि! ग्रावा मोदक वासिता ओजस्विनी बीज तत: पूत्पण्ड कुञ्चिका कामकला षट्चक फिर सर्वागम होता है । उसके परे आम्नायातीत शक्तिसर्वस्व फिर परापर इसके बाद वज्रकवच शाम्भव चित्शक्ति जगदावृत्ति कहा जाता है । लाङ्गूल वर्धमान वेत्र बाला बाहु खोट विजया उसके पश्चात् श्रीकण्ठ कौलुञ्च पाणिगीति फिर सङ्कल्प कलह पुन: चक्रतुम्बी कही गयी है । संन्यास विचार शुभंयु उसके बाद वियोग और सबके अन्त में उत्तान जानना चाहिये । इस प्रकार मैने त्रिबीज नि:श्रेणी बतलाया । तीन 'फट्' कहने के बाद 'नम:' और 'स्वाहा' कहने चाहिये । हे देवि! इस प्रकार मैने तुमको विराट् न्यास बतलाया । यह समास और व्यास के साथ विद्वानों के लिये भी दुरूह है । इस न्यास के स्थल मन्त्र में ही कह दिये गये हैं । हे पार्वति! उसी क्रम से अपने अङ्गों में इनका न्यास करना चाहिये । इस प्रकार तुमको विराट् न्यास का उद्धार बतलाया गया । इस महाफलदायी न्यास को इसी रीति से करना चाहिये ॥ ८४४-८५४ ॥

[विराण्न्यासस्य फलश्रुति:]

विराण्न्यासं विराट्ध्यानं तुरीयाजपमेव च ।
कुर्वन् किमर्थमात्मानं शोचते भवसागरे ॥ ८५५ ॥
विराण्न्याससमो न्यासो न भूतो न भविष्यति ।
इति बुध्वा समासेन यत्कर्तव्यं तदाचर ॥ ८५६ ॥
न्यासमेनं वेद काली त्रिपुरघ्नस्तथेश्वर: ।
तयो: प्रसादाज्जानेऽहं नान्यस्त्रिजगतीतले ॥ ८५७ ॥
कपालडामरे नायं नाऽप्यसौ यामलादिषु ।
न च शाबरतन्त्रेऽपि तन्त्रेष्वन्येषु का कथा ॥ ८५८ ॥
सर्वेभ्यो मन्त्रकल्पेभ्यो मदुक्ता संहिता वरा ।
अत एवामुमत्राहं समुद्धृत्य न्यवेशयम् ॥ ८५९ ॥
काम्यत्वेन न चैवायं कर्तव्य: कर्हिचित् प्रिये ।
योगिनीनां डाकिनीनां कुर्वन् व्रजति भक्ष्यताम् ॥ ८६० ॥
नित्यत्वेनैव निर्दिष्ट: सर्वेषां मन्त्रशालिनाम् ।
विशेषतस्तु यतीनां सन्त्यक्तैहिककर्मणाम् ॥ ८६१ ॥
मुमुक्षूणां च गृहिणां कौलाचारवतामपि ।
अशक्नुवान: सततं कर्तुं न्यासममुं प्रिये ॥ ८६२ ॥
नैमित्तिकतया कार्य: सदा पर्वणि पर्वणि ।
अल्पेनैव प्रयोगेण यदि सिद्धिं त्वमिच्छसि ॥ ८६३ ॥
भावनादीन् विराडन्तान् न्यासान् दश समाचरेत् ।
सुहृद: स्वानुपदिश्यात् यांस्तारयितुमिच्छसि ॥ ८६४ ॥

अमुनैव व्यतिक्रान्तं चतुर्थं पञ्चकं प्रिये ।
अतः परं निबोधान्यान् न्यासान् परमशोभनान् ॥ ८६५ ॥

॥ इत्यादिनाथविरचितायां पञ्चाशत्साहस्र्यां श्रीमहाकालसंहितायां
न्यासोद्धारप्रस्तावे भावनादिदशन्यासोद्धारो
नाम अष्टमः पटलः ॥ ८ ॥

***

विराट् न्यास का फल—विराट् न्यास विराट् का ध्यान तुरीया जप को करने वाला इस संसार में अपने बारे में क्यों सोचेगा । विराट् न्यास के समान अन्य कोई न्यास न हुआ और न होगा । संक्षेप में यह जानकर जो करना है वह करो । इस न्यास को काली तथा त्रिपुरारि ईश्वर जानते हैं । उन दोनों की कृपा से इसको मैं जानता हूँ। इस धरती पर अन्य कोई नहीं जानता । यह न्यास न कपालडामर में न यामल आदि में न शाबर तन्त्रों में मिलता है । अन्य तन्त्रों की क्या बात? सभी मन्त्रकल्पों में मेरे द्वारा कही गयी संहिता (= महाकालसंहिता) उत्तम है । इसीलिये मैंने यहाँ उसको उद्धृत कर निविष्ट किया । हे प्रिये! काम्य के रूप में इस न्यास को कभी नहीं करना चाहिये । ऐसा करने वाला योगिनियों और डाकिनियों का भक्ष्य हो जाता है । समस्त मन्त्रशाली लोगों के लिये यह नित्यकर्म के रूप में विहित है । उनमें भी विशेषतया उन संन्यासियों के लिये जिन्होंने ऐहलौकिक कर्म का त्याग कर दिये हैं । यह मोक्षेच्छु गृहस्थ कौल आचार वालों के लिये है । हे प्रिये! जो इस न्यास को नित्य नहीं कर सकते उन लोगों को चाहिये कि वे इसका नैमित्तिक रूप से पर्व-पर्व पर अनुष्ठान करें । यदि तुम अल्प प्रयोग से सिद्धि चाहती हो तो भावना से लेकर विराट् तक दश न्यासों को करो । जिनको तुम मोक्ष देना चाहती हो उन अपने सुहृदों को भी इसका उपदेश करना । हे प्रिये! इसी न्यास के द्वारा चतुर्थ और पञ्चम न्यास भी व्यतिक्रान्त हो गये । इसके बाद परम सुन्दर अन्य न्यासों को जानो ॥ ८५५-८६५ ॥

॥ इस प्रकार आदिनाथविरचित पचास सहस्र श्लोकों वाली महाकालसंहिता के 'न्यासोद्धारप्रस्ताव में भावना आदि दशन्यास का उद्धार' नामक अष्टम पटल की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ८ ॥

***

नवमः पटलः

श्रीमहाकाल उवाच—

पञ्चमं पञ्चकं मत्तो निबोधातः परं प्रिये ।
यस्याद्य भूतः कथितो बीजन्यासो महोदयः ॥ १ ॥

श्री महाकाल ने कहा—हे प्रिये! महान् उदय वाला बीज न्यास जिसका प्रथम है । इसके बाद मुझसे उस पाँचवें पञ्चक को जानो ॥ १ ॥

[बीजन्यासोद्देशः]

बीजन्यासस्तु सर्वेषां नित्यत्वेन व्यवस्थितः ।
यतीनामथ कौलानां गृहस्थानां तथेश्वरि ॥ २ ॥
पदार्थानां हि सर्वेषां ब्रह्माण्डोदरवर्तिनाम् ।
बीजन्यासस्तु बीजत्वेनोक्तस्त्रिपुरवैरिणा ॥ ३ ॥
अतः श्रेष्ठतमो ज्ञेयः कारणत्वेन शम्भुवत् ।
निशामयाधुनैतस्य समुद्धारं वदामि ते ॥ ४ ॥

बीजन्यास का कथन—हे सुरेश्वरि! यह बीज न्यास संन्यासियों, कौलों और गृहस्थों के लिये नित्य कर्म के रूप में कहा गया है । त्रिपुरारि के द्वारा यह ब्रह्माण्ड के अन्दर रहने वाले समस्त पदार्थों का बीज कहा गया है । अतः भगवान् शिव के समान सबका कारण होने से इसे श्रेष्ठतम जानना चाहिये । अब इसके उद्धार को सुनो । मैं तुमको बतला रहा हूँ ॥ २-४ ॥

[बीजन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

प्रजापतिर्ऋषिः प्रोक्तो बृहतीछन्दसा युतः ।
सर्वे भावा देवता च मैधं बीजमुदाहृतम् ॥ ५ ॥
कला शक्तिः सर्वबीजं कीलकं समुदाहृतम् ।
चराचरस्य जगतः सर्गेऽस्य विनियोगता ॥ ६ ॥

बीज न्यास के ऋषि आदि—इसके ऋषि प्रजापति और छन्द बृहती बतलाया गया है । सारे पदार्थ देवता हैं । मेधा बीज बतलाया गया है । कला शक्ति और सर्वबीज कीलक माना गया है । इसका विनियोग चर-अचर जगत् की सृष्टि के लिये होता है ॥ ५-६ ॥

[बीजन्यासस्य सामान्योद्धारः]

पुरतः शृणु सामान्यमुद्धारं सुरवन्दिते ।
वक्ष्ये विशेषं तदनु येन न्यासः स्फुटो भवेत् ॥ ७ ॥
बीजत्रयमयी पंक्तिरादौ प्रत्येकमीरिता ।
भिन्नभिन्नाभिधानेन ततः शब्दाः प्रकीर्तिताः ॥ ८ ॥
तैर्बीजशब्दस्य पुनर्विग्रहः परिपठ्यते ।
भिन्नभिन्नास्ततः शब्दाःज्ञेयाः ङेऽन्तावुभावपि ॥ ९ ॥
विशेष्यभूताः परगा विशेषणतया परे ।
ते लिङ्गग्राहिणः सर्वे परगानां वरानने ॥ १० ॥
भिन्नभिन्ना ततः पंक्तिर्बीजत्रयमयी पुनः ।
ततो ङेऽन्ता गुह्यकाली ङेऽन्तं च परमग्रिमम् ॥ ११ ॥
अनन्तशक्तिमूर्त्याख्यं शेषे कूर्चास्त्रमस्तकाः ।
इमानि शेषभूतानि षोडशार्णानि पार्वति ॥ १२ ॥
प्रतिमन्त्रं सुस्थिराणि ज्ञातव्यानि विपश्चिता ।
इति सामान्यमुदितो विशेषमधुना शृणु ॥ १३ ॥

बीजन्यास का सामान्य उद्धार—हे सुरवन्दिते! पहले इसका सामान्य उद्धार सुनो । उसके पश्चात् विशेष उद्धार बतलाऊँगा, जिससे यह न्यास स्पष्ट हो जायेगा । पहले प्रत्येक में तीन बीज वाली पंक्ति रहती है, उसके अक्षर भिन्न-भिन्न होते हैं । इसके बाद शब्द कहे जाते हैं । उनके साथ पुन: बीज शब्द कहे जाते हैं । वे शब्द भी भिन्न-भिन्न (तथा दो-दो की संख्या में होते हैं) वे दोनों ङेऽन्त होते हैं । उन युग्मकों में परवर्त्ती शब्द विशेष्य होते हैं; अन्य विशेषण होते हैं । हे वरानने! वे सब परवर्त्ती शब्दों के लिङ्गग्राही होते हैं । इसके बाद पुन: तीन बीजों वाली भिन्न-भिन्न पंक्ति होती है । इसके पश्चात् ङेऽन्त 'गुह्यकाली' शब्द रहता है । यह परवर्त्ती होता है। इसके पहले ङेऽन्त 'अनन्तशक्तिमूर्त्ति' पद रहता है । अन्त में कूर्च अस्त्र और शिर रहते हैं। हे पार्वति! ये अन्तिम सोलह वर्ण अन्त में होते हैं । विद्वान् इनको प्रत्येक मन्त्र में स्थिर समझे । इस प्रकार सामान्य उद्धार कहा गया अब विशेष को सुनो ॥ ७-१३ ॥

[बीजन्यासस्य विशेषोद्धारः]

तारमायारमामैथलक्ष्मीकामास्ततः परम् ।
पाशाङ्कुशौ गारुडश्च क्रोधः काली वधूरपि ॥ १४ ॥
प्रासादः क्षेत्रपालस्तु महाक्रोधात् परः स्थितः ।
अमृतादित्रयं रत्यादित्रयं तदनन्तरम् ॥ १५ ॥
नासत्यशक्तिचपला विश्वभूतौ मयुस्तथा ।
कुलिकप्रेतभैरव्यो योगिनीरावतारकाः ॥ १६ ॥

ततः क्षमादित्रितयं नाकुलादित्रयं तथा ।
त्रिशक्तिरथ चामुण्डा कूष्माण्डी तदनन्तरम् ॥ १७ ॥
भारुण्डातन्त्रवणाश्च ज्ञानादित्रितयं ततः ।
कालीहयग्रीवधर्माः कालादित्यौ धनप्रदा ॥ १८ ॥
नागो विरिञ्चिरमलं तापिन्यौदुम्बरौ ततः ।
रथन्तरं च पूर्णा च धूमश्च ललिता तथा ॥ १९ ॥
कैकरः सूचिवैराजौ जटादित्रितयं ततः ।
विराट्फैरवकौमार्यो गोकर्णादित्रयं ततः ॥ २० ॥
वृषपुष्टी कौमुदी च निर्मलं कुलचित्रके ।
इत्येकाशीतिबीजानि क्रमेण कथितानि ते ॥ २१ ॥
एकैकस्मिन् मनौ देया पंक्तिर्बीजत्रयात्मिका ।
चिदादौ तदनु ह्यात्मा आवापोद्वाप एव ॥ २२ ॥
ज्योतिः पातालमुदधिः षष्ठो हि परिकीर्त्यते ।
सप्तमश्चापि सङ्कल्पविकल्पः परमेश्वरि ॥ २३ ॥
कालो रूपं च शब्दश्च ततो गन्धो रसस्तथा ।
ततो मैथुन(स्पर्शो ?)मन्त्रं च
ततोऽग्निः पापमेव च ॥ २४ ॥
पुण्यमस्यानु चाज्ञानं ज्ञानं तदनु कथ्यंते ।
वासना कर्म च ध्यानं सत्त्वं चापि रजस्तमः ॥ २५ ॥
सर्वशेषे गुह्यकाली देवता परिकीर्तिता ।
एते शब्दाः परिज्ञेया बीजशब्दस्य पूर्वगाः ॥ २६ ॥

बीजन्यास का विशेष उद्धार—तार माया रमा मेधा लक्ष्मी काम उसके बाद पाश अङ्कुश गारुड क्रोध काली वधू प्रासाद महाक्रोध के बाद क्षेत्रपाल उसके पश्चात् अमृत आदि तीन फिर रति आदि तीन नासत्य शक्ति चञ्चला विश्व भूत मयु कुलिक प्रेत भैरवी योगिनी राव तारक उसके बाद क्षमा आदि तीन नाकुल आदि तीन त्रिशक्ति चामुण्डा तदनन्तर कूष्माण्डी भारुण्डा तन्त्र वर्ण फिर ज्ञान आदि तीन काली हयग्रीव धर्म काल आदित्य धनप्रदा नाग विरिञ्चि अमल तापिनी औदुम्बर तत्पश्चात् रथन्तर पूर्णा धूम ललिता कैकर सूची वैराज जटा आदि तीन फिर विराट् फैरव कौमारी गोकर्ण आदि तीन पुनः वृष पुष्टि कौमुदी निर्मल कुल चित्र ये इक्यासी बीज तुमको क्रम से बतलाये गये । एक-एक मन्त्र में तीन-तीन बीजों की पंक्ति देनी चाहिये । पहले 'चित्' फिर 'आत्मा' ततः 'आवापोद्वाप' ज्योतिर्बीज पाताल और छठा उदधि शब्द कहा जाता है । हे परमेश्वरि! सातवाँ शब्द 'सङ्कल्प-विकल्प' है । काल रूप शब्द फिर गन्ध रस उसके बाद मैथुन (स्पर्श?) अन्न फिर अग्नि पाप पुण्य उसके बाद अज्ञान और फिर ज्ञान कहा जाता है । वासना कर्मध्यान सत्त्व रजस् तमस् और

सबके अन्त में 'गुह्यकाली देवता' कही गयी है । ये शब्द बीज शब्द के पूर्वगामी कहे गये हैं ॥ १४-२६ ॥

बीजानन्तरगान् देवि साम्प्रतं त्वं निशामय ।
आदौ ब्रह्माण्डमाकाशो वायुस्तेजो जलं तथा ॥ २७ ॥
पृथिवी मनऔषध्यश्चक्षुःश्रोत्रमतः परम् ।
घ्राणं च रसनं त्वक् च विज्ञेयाऽत्र त्रयोदशी ॥ २८ ॥
प्रजासर्गस्तथा प्राणाः सुवर्ण नरकस्तथा ।
स्वर्गो माया मोक्षजन्ममरणानि यथाक्रमम् ॥ २९ ॥
लयो विष्णुस्तथा ब्रह्मा रुद्रोऽपि च चराचरम् ।
विशेष्यभूताः परगा इमे शब्दाः प्रकीर्तिताः ॥ ३० ॥
विज्ञेये लिङ्गवचने एभिरेव वरानने ।
पुनः पंक्तिं त्रिबीजानां शिवे समवधारय ॥ ३१ ॥
पृथुर्नदस्तारका चार्वण्डचारू च कुब्जकः ।
व्रज्यादेशौ छटा प्राग्भवं कल्याणं च साधकः॥ ३२ ॥
सिन्धुर्महेन्द्रेश्वरौ च षडङ्गं ककुदेव च ।
शैशुकं व्रतनिर्मोकवेतण्डा अक्षमौञ्जिके ॥ ३३ ॥
सूत्रं कुण्डं च गर्भश्च दीपो लीला ततः परम् ।
धेनुश्च मारिषश्चापि प्रचण्डा तदनन्तरम् ॥ ३४ ॥
केकराक्षी कालरात्रिः सम्मोहः पतनं तथा ।
संहारश्च ततो ज्ञेया शृङ्खलौपह्वरान्विता ॥ ३५ ॥
नान्दिकं पद्मकुशिकौ व्ययोऽथ समरः स्मृतः।
रागश्च सारसश्चाथ कुटिला रञ्जिनी घटी ॥ ३६ ॥
मणिमाला हारिणी च तदनूत्कोचिनी प्रिये ।
चतुरस्त्रादित्रयं च चामरादित्रयं ततः ॥ ३७ ॥
विनादादित्रयं चापि अपरान्तादि च त्रयम् ।
सौमतादित्रयं चाथ उल्लोप्यादित्रयं पुनः ॥ ३८ ॥
तुरीयाग्रावपथ्यानि ततः सर्वागमः प्रिये ।
आम्नायातीततत्त्वार्णवौ विज्ञेयौ ततः परम् ॥ ३९ ॥
परापरं वक्त्र वर्म(चर्म?)ततो ब्रह्मकपालकम्।
चिच्छक्तिर्जगदावृत्तिः सर्वशेषे परिस्थितम् ॥ ४० ॥
महाकल्पस्थायिबीजं न्यासः पूर्णोऽमुनाऽभवत्।
बीजसंज्ञोऽधुना स्थानान्याकर्णय सुरेश्वरि ॥ ४१ ॥

हे देवि! अब बीज के बाद वाले शब्दों को सुनो । पहले ब्रह्माण्ड फिर आकाश वायु तेज जल पृथिवी मन औषधि चक्षु श्रोत्र उसके बाद घ्राण रसना और तेरहवीं त्वक् समझी जानी चाहिये । प्रजासर्ग प्राण सुवर्ण नरक स्वर्ग माया मोक्ष जन्म मरण

को क्रम से जानना चाहिये । लय विष्णु ब्रह्मा रुद्र चराचर ये शब्द परगामी तथा विशेष्य माने गये हैं । हे वरानने! इन्हीं के द्वारा लिङ्ग और वचन भी जानने चाहिये । हे शिवे! इसके बाद पुन: त्रिबीजों की पंक्ति को जानो । पृथु नद तारक, चारु अण्ड चारु कुब्जक, व्रज्या देश छटा, प्राग्भव कल्याण साधक, सिन्धु महेन्द्र ईश्वर, षडङ्ग ककुद शैशुक, व्रत निर्मोक वेतण्ड, अक्ष मौञ्जिक सूत्र, कुण्ड गर्भ दीप, लीला धेनु मारिष, प्रचण्डा केकराक्षी कालरात्रि, सम्मोह पतन संहार, इसके बाद औपह्वर से युक्त शृङ्खला तथा नान्दिक जाननी चाहिये । पद्म कुशिक व्यय, समर राग और सारस कहा गया है । कुटिला रञ्जिनी घटी हे प्रिये! उसके बाद मणिमाला हारिणी उत्कोचिनी जानना चाहिये । चतुरस्र आदि तीन पुन: चामर आदि तीन और विनाद आदि तीन अपरान्त आदि तीन सौमत आदि तीन उल्लोप्य आदि तीन पुन: तुरीया ग्रावा पथ्य जानना चाहिये । हे प्रिये! उसके बाद सर्वागम आम्नायातीत तत्त्वार्णव जानने चाहिये । तत्पश्चात् परापर वक्त्र वर्म, फिर ब्रह्मकपाल चित्शक्ति और सबके अन्त में जगदावृत्ति स्थित है । इससे महाकल्प स्थायी बीज पूर्ण होता है । हे सुरेश्वरि! अब बीज वाले स्थानों को सुनो ॥ २७-४१ ॥

[बीजन्यासस्य न्यसनीयस्थाननिर्देश:]

ललाटं मुखवृत्तं च ग्रीवा गल उरस्तथा ।
जठरं नाभिवस्ती च मेढ्रं वंक्षणयोर्द्वयम् ॥ ४२ ॥
उरू जानुद्वयं जङ्घे गुल्फौ पार्ष्णी तत: परम् ।
प्रपदे पार्श्वयुगलं बाहुमूले तथांसयुक् ॥ ४३ ॥
हनू सृक्कद्वयं गण्डौ चक्षुषी श्रवणे तथा ।
कूर्चं च ब्रह्मरन्ध्रं च व्यापकं तदनन्तरम् ॥ ४४ ॥
इति स्थानानि सर्वाणि क्रमेण कथितानि ते ।
नित्यनैमित्तिकत्वं च पुरैव प्रतिपादितम् ॥ ४५ ॥

बीजन्यास के स्थान—ललाट मुखवृत्त ग्रीवा गला वक्ष:स्थल जठर नाभि वस्ति मेढ्र दोनों वंक्षण दोनों उरु दोनों जङ्घायें टखने एड़ियाँ उसके बाद पैर दोनों बगल दोनों बाहुमूल दोनों कन्धे ठुड्डी दोनों गलफड़े दोनों गण्ड दोनों आँखें दोनों कान कूर्च ब्रह्मरन्ध्र और उसके बाद व्यापक ये समस्त स्थान तुमको क्रम से बतलाये गये। इस न्यास की नित्यकरणीयता और निमित्तकरणीयता पहले ही बतलायी जा चुकी है ॥ ४२-४५ ॥

कूटन्यासमिदानीं त्वं विस्तराद् गदत: शृणु ।
बीजानां मध्यगा यत्रासते कूटास्त्रयस्त्रय: ॥ ४६ ॥

[कूटन्यासस्य मूलनिर्देश:]

अयं हि शम्भुना प्रोक्तो न्यासो वै वज्रडामरे ।

मया समानीय ततः संहितायां निवेशितः ॥ ४७ ॥
सिद्धिप्रदः सद्य एव सद्य एव क्षयप्रदः ।
शुद्धाशुद्धप्रकारेण कूटबाहुल्ययोगतः ॥ ४८ ॥
अत एव यथा शुद्धो भवेद् यत्नं तथा चरेत् ।

कूटन्यास और उसके मूल निर्देश—अब तुम विस्तार से कहने वाले मुझसे कूट न्यास को सुनो जिसमें बीजों के बीच तीन-तीन कूट बैठते हैं । इस न्यास को **वज्रडामर तन्त्र** में शिव ने बतलाया है । मैने वहाँ से ले आकर इसको इस महाकाल संहिता में निविष्ट करा दिया । यह न्यास कूटों के अधिक होने के कारण शुद्ध होने से तत्काल सिद्धि देने वाला तथा अशुद्ध होने से तत्काल विनाश करने वाला है । इसलिये जिस प्रकार शुद्ध हो वैसा ही प्रयास करना चाहिये ॥ ४६-४८- ॥

[अधिकारिभेदेनास्य नित्यत्वकाम्यत्वाद्यभिधानम्]

नित्यत्वेनोदितो ह्येष वेदोक्तायनचारिणाम् ॥ ४९ ॥
काम्यत्वेन च कौलानां नैमित्तिकतयाऽपि च ।
कर्तव्यो भक्तिभावेन सावधानतयाऽपि च ॥ ५० ॥

अधिकारी भेद से इसकी नित्यता और काम्यता आदि—वेदोक्त मार्ग के अनुसार आचरण करने वालों के लिये यह नित्य कहा गया है । कौल के लिये यह भक्तिपूर्वक सावधानी के साथ नैमित्तिक तथा काम्य के रूप में करणीय है ॥ ४९-५० ॥

[कूटन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

इदानीमस्य कलय ऋष्याद्यमरवन्दिते ।
ऋषिर्भुज्युः समाख्यातो मध्या छन्द उदीर्यते ॥ ५१ ॥
देवता गुह्यकाली च षट्चक्रं बीजमुच्यते ।
शक्तिश्च शक्तिसर्वस्वं शाम्भवं कीलकं मतम् ॥ ५२ ॥
कैवल्यपदलाभाय विनियोगः प्रकीर्त्यते ।

कूटन्यास के ऋषि आदि—हे अमरवन्दिते! अब इसके ऋषि आदि को जानो । इसके ऋषि भुज्यु कहे गये हैं । छन्द मध्या कहा जाता है । देवता गुह्यकाली और बीज षट्चक्र कहा जाता है । शक्तिसर्वस्व कूट शक्ति और कीलक शाम्भव कूट माना गया है । इसका प्रयोग कैवल्यपद के लाभ के लिये होता है ॥ ५१-५२- ॥

[कूटन्यासस्य सामान्योद्धारः]

आदौ सामान्यमुद्धारं शृण्वेतस्य समाहिता ॥ ५३ ॥
ततो विशेषं वक्ष्यामि येन भक्तिर्भविष्यति ।
पञ्चबीजी तु पुरतः सर्वेषु मनुषु स्थिरा ॥ ५४ ॥
भिन्ना त्रिकूटी विज्ञेया देवि प्रतिमनु क्रमात् ।

स्थिरा त्रिबीजी तदनु प्रतिमन्त्रं वरानने ॥ ५५ ॥
शेषेऽस्त्रहृच्छिरांस्येवं कूटन्यासो व्यवस्थित: ।

कूटन्यास का सामान्य उद्धार—पहले समाहितचित्त होकर इसका सामान्य उद्धार सुनो । इसके बाद विशेष को बतलाऊँगा, जिससे इसके प्रति (तुम्हारे मन में) भक्ति उत्पन्न होगी । सभी मन्त्रों में पहले पाँच बीज स्थायी रूप से रहते हैं । हे देवि! इसके बाद प्रत्येक मन्त्र में भिन्न-भिन्न तीन-तीन कूट रहते हैं । हे वरानने! उसके बाद प्रत्येक मन्त्र में तीन-तीन बीज स्थायी रूप से रहते हैं । अन्त में अस्त्र हृदय और शिर रहते हैं । इस प्रकार कूटन्यास बनता है ॥ ५३-५५- ॥

[कूटन्यासस्य विशेषोद्धार:]

विशेषं कलयेदानीमेतस्य परमेश्वरि ॥ ५६ ॥
तारो रावश्च माया च योगिनी वनिता तथा ।
पञ्चबीजात्मिका रेखा स्थिरा सर्वत्र कीर्तिता ॥ ५७ ॥
अतश्चलां वै कूटालीं कीर्त्यमानां मया शृणु ।
शाम्भवं वामदेव्यं च माहेश्वरमत: परम् ॥ ५८ ॥
सद्योजातं तत्पुरुषं ततोऽघोरं वरानने ।
श्रीकण्ठमृत्युञ्जयौ च रौद्रमस्यानु पठ्यते ॥ ५९ ॥
खेचरीकूटमन्दारकूटं कूटं च चाक्रिकम् ।
आदित्यं नाभसं चापि भानवं तदनु स्मृतम् ॥ ६० ॥
उदयास्तमयौ कूटौ चण्डकूटमत: परम् ।
सृष्टिस्थित्याख्यसंहारकूटानि तदनन्तरम् ॥ ६१ ॥
हेमकूटं रत्नकूटं मणिकूटमत: परम् ।
अनाख्याख्यं महाकूटं भासा पुष्करमेव च ॥ ६२ ॥
पदक्रमजटाकूटान्येतस्यानन्तरं प्रिये ।
सत्त्वकूटं रज:कूटं तम:कूटमत: परम् ॥ ६३ ॥
प्रासादध्वजमालाख्यकूटान्यस्यानु भामिनि ।
कूटं यत् कुण्डलिन्याख्यं
स्वाधिष्ठानाख्ययुग्मकम् ॥ ६४ ॥
तस्यानु कूटोपपदा डाकिनी वक्त्रदृष्टय: ।
ऋग्यजु:सामकूटानि कथितानि तत: परम् ॥ ६५ ॥
मेरुगह्वरकैलासकूटानीत: परं प्रिये ।
कूटं रथन्तरं ज्येष्ठकूटमाथर्वणं तथा ॥ ६६ ॥

कूटन्यास का विशेष उद्धार—हे परमेश्वरि! अब इसका विशेष उद्धार सुनो । तार राव माया योगिनी तथा वनिता इन पाँच बीजों वाली रेखा यह सर्वत्र स्थिर कही गयी है । इसके बाद मेरे द्वारा कहे जाने वाले चल अर्थात् परिवर्तनशील कूटसमूहों

को सुनो । शाम्भव वामदेव्य माहेश्वर हे वरानने! उसके बाद सद्योजात तत्पुरुष अघोर श्रीकण्ठ मृत्युञ्जय उसके पश्चात् रौद्रकूट पढ़ा जाता है । खेचरीकूट मन्दारकूट चाक्रिककूट आदित्यकूट नाभसकूट उसके बाद भानुकूट कहा जाता है । उदयकूट अस्तकूट इसके बाद चण्डकूट तदनन्तर सृष्टिकूट स्थितिकूट संहारकूट फिर हेमकूट रत्नकूट उसके पश्चात् मणिकूट फिर अनाख्या नामक महाकूट भासाकूट पुष्पककूट हे प्रिये! इसके पश्चात् पदकूटक्रम जटाकूट ततः सत्त्वकूट रजःकूट तमःकूट फिर हे भामिनि! प्रासाद और ध्वजमाला नामक कूट होते हैं । कुण्डलिनी नामक कूट फिर स्वाधिष्ठान ये दोनों उसके पश्चात् डाकिनीकूट वक्त्रकूट दृष्टिकूट, ऋग् यजुः और सामकूट कहे गये हैं । हे प्रिये! इसके बाद मेरु गह्वर और कैलासकूट फिर रथन्तर-कूट ज्येष्ठकूट तथा आथर्वणकूट कहे जाते हैं ॥ ५६-६६ ॥

वर्णकूटं मन्त्रकूटं तथा समयकूटकम् ।
कूटं धौमावत्यसंज्ञं प्रभा ज्योतिर्मयं तथा ॥ ६७ ॥
वैराग्यैश्वर्यधर्माख्यास्त्रयः कूटास्ततः परम् ।
रागद्वेषविपाकाख्याः कूटा एषामनु स्मृताः ॥ ६८ ॥
वाजपेयः षोडशी च पुण्डरीकस्ततः परम् ।
अहङ्कारो मनो बुद्धिः कूटत्रयमितः परम् ॥ ६९ ॥
राजसूयोऽश्वमेधश्च विश्वजित्तदनन्तरम् ।
अद्वैतवासनायोगभूमिकूटान्यतः परम् ॥ ७० ॥
जीवात्मपरमात्मानावद्वैतं कूटमेव च ।
ऐकात्म्यमथ निर्वाणं महानिर्वाणमेव च ॥ ७१ ॥
सप्तविंशतिसंख्याका रेखेत्थं त्रित्रिकूटिका ।
अथ त्रिबीजां पाश्चात्त्यां स्थिरां समवधारय ॥ ७२ ॥
शाकिनी डाकिनी क्रोधा इति न्यासः स्फुटोऽभवत् ।
न्यसनीयस्थानमितः परं कलय भामिनि ॥ ७३ ॥

वर्णकूट मन्त्रकूट समयकूट धूमावती नामक कूट प्रभाकूट तथा ज्योतिर्मयकूट उसके बाद वैराग्य ऐश्वर्य और धर्म नामक तीन कूट इनके बाद राग द्वेष एवं विपाक नामक कूट कहे गये हैं । उसके बाद वाजपेय षोडशी तथा पुण्डरीक एवं अहङ्कार मन और बुद्धि ये तीन कूट कहे जाते हैं । राजसूय अश्वमेध तदनन्तर विश्वजित् फिर अद्वैत वासना योग तथा भूमिकूट उसके बाद जीवात्मा परमात्मा एवं अद्वैतकूट ऐकात्म्य फिर निर्वाण और महानिर्वाण । इस प्रकार तीन-तीन कूटों वाली सत्ताईस संख्या वाली रेखा होती है । इसके बाद तीन-तीन बीजों वाली परवर्त्ती स्थिर शब्दावली को जानो । ये इस प्रकार बतलाये गये हैं—शाकिनी, डाकिनी और क्रोध । इस प्रकार यह कूट न्यास स्पष्ट हो गया । हे भामिनि! इसके बाद न्यसनीय स्थानों को जानो ॥ ६७-७३ ॥

[कूटन्यासस्य [illegible]ीयस्थाननिर्देशः]

पादौ जङ्घायुगं चापि जानुनी ऊरुयुग्मकम् ।
लिङ्गं च जठरं चापि वक्षोंऽसयुगलं तथा ॥ ७४ ॥
हनू कपोलौ दन्ताश्च नेत्रे कर्णौ तथैव च ।
नासापुटे भ्रुवौ शङ्खौ शिरश्चापि शिखा तथा ॥ ७५ ॥
मणि(ब?)न्धकक्षपृष्ठानि कटिर्दक्षकरादयः ।
तथा वामकरादिश्च दक्षपादादिरेव च ॥ ७६ ॥
वामपादादिरस्यानु कथितः परमेश्वरि ।
व्यापकं सर्वशारीरं प्रोक्ता स्थानस्थितिः स्थिरा॥ ७७ ॥

कूटन्यास के स्थान—दोनों पैर दोनों जङ्घायें दोनों जानु दोनों उरु लिङ्ग जठर वक्षःस्थल दोनों कन्धे हनू कपोलद्वय दाँत दोनों नेत्र दोनों कान दोनों नासापुट दोनों भौंहें दोनों शङ्ख अर्थात् मस्तक के दो भाग शिर शिखा मणिबन्ध कक्ष पृष्ठ कटि दाँयें हाथ आदि बाँयें हाथ आदि दाँयाँ पैर आदि और हे परमेश्वरि! उसके बाद बाँयाँ पैर आदि । फिर सम्पूर्ण शरीर का व्यापक । इस प्रकार स्थिर स्थानों की स्थिति बतलायी गयी ॥ ७४-७७ ॥

[कूटन्यासस्य माहात्म्यकीर्तनम्]

निर्वाणं प्रविविक्षूणामयमेकः परायणम् ।
सिद्धिदाता भोगदाता मोक्षदाता तथैव च ॥ ७८ ॥
यतीनां च गृहस्थानां सर्वथैवामृतप्रदा ।
कूटन्यासो हि कौलानामपि काम्यानुवर्तिनाम् ॥ ७९ ॥

कूटन्यास का माहात्म्य—निर्वाण के क्षेत्र में प्रवेश की इच्छा वालों के लिये यह एकमात्र आश्रय-स्थल है । यह सिद्धि, भोग और मोक्ष को देने वाला है । यह कूटन्यास संन्यासियों तथा गृहस्थों तथा काम्यानुवर्त्ती कौल साधकों के लिये सर्वथा अमरत्व देने वाला है ॥ ७८-७९ ॥

[क्रमन्यासोद्देशः]

अथ शृणु क्रमन्यासं क्रमो येन हि बुद्ध्यते ।
स क्रमः कीदृगिति चेत्तदुत्तरपदं शृणु ॥ ८० ॥
आम्नायास्तु सुरेशानि षडेव प्रतिपादिताः ।
तेष्वाम्नायेषु सर्वेषु मन्त्रा उक्ताः पृथक् पृथक् ॥ ८१ ॥
देव्यश्च तत्तन्मन्त्राणां सौम्योग्रास्तेषु चेरिताः ।
तासां तत्तद्ध्यानपूजास्तेष्वेव प्रतिपादिताः ॥ ८२ ॥
येन क्रमेण कथिताः स क्रमः क्रम उच्यते ।
सोऽत्र तिष्ठति वै न्यासे तेन न्यासः क्रमाह्वयः ॥ ८३ ॥

यावान् क्रमः क्रमन्यासे वर्तते त्रिदशेश्वरि ।
तावान् क्रमो मया वाच्यो न न्यूनो नाधिकोऽपि च॥ ८४ ॥
विस्तरेण तदुल्लेखे भवेदप्रस्तुताभिधा ।
या या देवी यदाम्नायसमयप्रतिपादिता ॥ ८५ ॥
आविर्भूता यथा चापि यस्या यस्याः शरीरतः ।
क्रमेऽमुष्मिन् प्रब्रवीमि तमेव त्रिदशेश्वरि ॥ ८६ ॥
एतस्य चानुसन्धेयो विस्तरो डामरादिषु ।

क्रमन्यास—अब इसके बाद क्रमन्यास को सुनो, जिससे क्रम को जाना जाता है । वह क्रम कैसा है? यदि यह जानना चाहती हो तो उत्तर सुनो । हे सुरेशानि! आम्नायों की संख्या छह कही गयी है । उन समस्त आम्नायों में अलग-अलग मन्त्र कहे गये हैं । उन्हीं आम्नायों में तत्तत् मन्त्रों की सौम्य तथा उग्र देवियाँ कही गयी हैं। उन्हीं में उन देवियों का ध्यान और उनकी पूजा भी कही गयी है । जिस क्रम से यह सब कहा गया वह क्रम 'क्रम' कहा जाता है । चूँकि वह क्रम इस न्यास में है इसलिये यह क्रम नामक न्यास है । हे त्रिदशेश्वरि! इस क्रम न्यास में जितना क्रम है मैं उतना ही क्रम बतलाऊँगा न कम न अधिक । क्योंकि विस्तार से उल्लेख करने पर अप्रस्तुताभिधान दोष हो जायगा । जिस आम्नाय के समय अर्थात् सिद्धान्त में जिस देवी का प्रतिपादन किया गया है और जिस-जिस देवता के शरीर से जिस प्रकार वह देवी प्रकट हुई, हे त्रिदशेश्वरि! इस क्रम में मैं तुमको वह बतलाऊँगा । इसका विस्तृत वर्णन डामर आदि तन्त्रों में खोजना चाहिये ॥ ८०-८६- ॥

[क्रमन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

क्रमन्यासस्य देवेशि संवर्त ऋषिरीरितः ॥ ८७ ॥
प्रतिष्ठा छन्द आख्यातं षडाम्नायस्थशब्दतः ।
वदेद्देव्यो देवताश्च फेत्कारी बीजमुच्यते ॥ ८८ ॥
कुटिला शक्तिरुदिता हारिणी कीलकं मतम् ।
विनियोगस्तु वै मन्त्रः क्रमन्यासे प्रकीर्तितः ॥ ८९ ॥
नास्य सामान्यमुद्धारो न विशेषो वरानने ।
षडेव मन्त्राः षट्स्थानान्येवमाह पुरद्विषः ॥ ९० ॥
तांश्च तानि क्रमाद् वक्ष्ये सावधाना निशामय ।

क्रम न्यास के ऋषि आदि—हे देवेशि! क्रमन्यास के ऋषि संवर्त कहे गये हैं। छन्द प्रतिष्ठा है । षडाम्नाय में स्थित देवियाँ इसकी देवतायें कहनी चाहिये । बीज फेत्कारी कहा जाता है । कुटिला शक्ति कही गयी और हारिणी कीलक माना गया है। मन्त्र का विनियोग क्रमन्यास के सम्बन्ध में कहा गया है । हे वरानने! इस न्यास का न सामान्य उद्धार है और न विशेष । इसके छह ही मन्त्र है और छह ही

स्थान—ऐसा त्रिपुरारि ने कहा है । उन मन्त्रों और उन स्थानों को मैं क्रम से कहूँगा। सावधान होकर सुनो ॥ ८७-९० ॥

[क्रमन्यासस्य मन्त्रोद्धार पूर्वाम्नायस्थषोडशदेवीनां मन्त्राः]

तारो मैधो रमा कामो वधूर्लज्जाङ्कुशः कला ॥ ९१ ॥
किन्नरश्चेति बीजानि नवैव प्रथमं प्रिये ।
चण्डेश्वर्याश्च सम्बुद्धिरतः परमुदीरिता ॥ ९२ ॥
योगिनीशाकिनीक्रोधा अस्त्रशीर्षे ततः परम् ।
वेदादिर्भौवनेशी च लक्ष्मीरोषाङ्कुशास्तथा ॥ ९३ ॥
काली वधूश्च कामश्च कूटं तदनु शाम्भवम् ।
भैरवीकूटमस्यानु माहेश्वरमतः परम् ॥ ९४ ॥
परापरं ततः कूटं तदनु व्योमकूटकम् ।
चण्डेश्वरीति तदनु खेचरी योगिनी तथा ॥ ९५ ॥
शाकिनीगारुडौ द्वे द्वे रोषास्त्रे शिर एव च ।
तारचैतन्यमायाश्रीकामाः काली तथैव च ॥ ९६ ॥
पाशाङ्कुशौ चण्डरोषमहारोषास्ततः परम् ।
फेत्कारी शाकिनी चेति बीजान्यादौ त्रयोदश ॥ ९७ ॥
हरसिद्धे सर्वसिद्धिं ततः कुरुयुगं प्रिये ।
देहि द्वयं दापय च द्वितयं तदनन्तरम् ॥ ९८ ॥
कूर्चद्वयं फट्त्रयं च स्वाहैकं परिपठ्यते ।
मैधत्रपारमाकामफेत्कारीरोषसंज्ञकाः ॥ ९९ ॥
सम्बुद्धिः कुक्कुटीत्येवं कालीपाशाङ्कुशास्ततः ।
रावचण्डावस्त्रयुग्मं स्वाहा तदनु भामिनि ॥ १०० ॥

क्रमन्यास के मन्त्रोद्धार में पूर्वाम्नाय देवियों के मन्त्र—हे प्रिये! तार मेधा रमा काम वधू लज्जा अङ्कुश कला और किन्नर ये नव बीज सबसे पहले कहे जाते हैं । इसके बाद 'चण्डेश्वरी' का सम्बोधन कहा गया है । योगिनी शाकिनी क्रोध उसके बाद अस्त्र तथा शिर (यह प्रथम न्यास का प्रथम मन्त्र है) । वेदादि भुवनेश्वरी लक्ष्मी रोष अङ्कुश काली वधू और काम उसके पश्चात् शाम्भवकूट फिर भैरवीकूट तत्पश्चात् माहेश्वरकूट फिर परापरकूट तदनु व्योमकूट उसके अनन्तर 'चण्डेश्वरि' तदनु खेचरी योगिनी शाकिनी गारुड दो-दो क्रोध और अस्त्र तथा अन्त में शिर (यह प्रथम न्यास का द्वितीय मन्त्र है) । तार चैतन्य माया श्री काम काली उसी प्रकार पाश अङ्कुश चण्ड रोष महारोष उसके बाद फेत्कारी और शाकिनी ये तेरह बीज पहले रहते हैं । 'हरसिद्धे सर्वसिद्धिम्' के बाद 'कुरु' को दो बार 'देहि'-'दापय' को दो-दो बार तदनन्तर दो कूर्च तीन 'फट्' और एक 'स्वाहा' पढ़ा जाता है (यह तृतीय मन्त्र है) । मेधा त्रपा रमा काम फेत्कारी रोष फिर 'कुक्कुटी' का सम्बोधन तत्पश्चात् काली पाश

अङ्कुश राव चण्ड दो अस्त्र और उसके पश्चात् हे भामिनि! 'स्वाहा' कहना चाहिये (यह चतुर्थ मन्त्र है) ॥ ९१-१०० ॥

वेदादिरङ्कुशस्तार्क्ष्यः फेत्कारी रुट् च योगिनी ।
फेत्कारीति ततो देयं सम्बोधनपदं प्रिये ॥ १०१ ॥
ददद्वयं देहि चैकं दापयैकं शिरोऽपि च ।
चैतन्यप्रेतडाकिन्यो युगान्तस्तदनन्तरम् ॥ १०२ ॥
वाडवं कूटमस्यानु एह्येहि भगवत्यपि ।
बाभ्रवीति पदं पश्चान्महाप्रलयशब्दतः ॥ १०३ ॥
तथा ताण्डवशब्दाच्च कारिणीति प्रविन्यसेत् ।
गगनग्रासिनि पदं ततः परमुदीरयेत् ॥ १०४ ॥
मायाकूर्चौ योगिनी च वधूः शाकिन्यनन्तरम् ।
शत्रून् हन युगं चापि सर्वैश्वर्यं दद द्वयम् ॥ १०५ ॥
महोत्पातानिति प्रोच्य विध्वंसययुगं वदेत् ।
सर्वरोगानिति प्रोच्य नाशयद्वितयं तथा ॥ १०६ ॥
वेदादिलक्ष्मीकामप्रासादपाशास्ततः परम् ।
महाकृत्याभिचारानु ग्रहदोषानितीरयेत् ॥ १०७ ॥
निवारय युगं प्रोच्य मथद्वन्द्वमुदीरयेत् ।
सृणिकालामृतं प्रोच्य प्रलयं तदनून्द्धरेत् ॥ १०८ ॥
फेत्कारीं वह्निजाया च तारलक्ष्मीत्रपास्मराः ।
वधूरावरुडस्त्राणि ब्रह्मवेतालराक्षसि ॥ १०९ ॥
कालीमहाक्रोधचण्डास्ततः परमुदीरयेत् ।
ततो वदेद् विष्णुशरावतंसिक इति प्रिये ॥ ११० ॥
ततो योगिनि प्रेतामा महारुद्रपदं ततः ।
कुणपारूढ इति च वाग्भवः पाश एव च ॥ १११ ॥
प्रासादः फट्त्रयं चापि नमः स्वाहा ततः परम्।

वेदादि अङ्कुश तार्क्ष्य फेत्कारी क्रोध योगिनी इसके बाद हे प्रिये! 'फेत्कारी' पद का सम्बोधन देना चाहिये । 'दद' को दो बाद 'देहि' को एक बार 'दापय' एक बार फिर शिर कहना चाहिये (यह प्रथम का पञ्चम मन्त्र है) । चैतन्य प्रेत डाकिनी उसके बाद युगान्त तदनु वाडवकूट उसके बाद 'एहि एहि भगवति बाभ्रवि' ये पद कहने चाहिये । उसके पश्चात् 'महाप्रलय' शब्द तथा 'ताण्डव' शब्द के बाद 'कारिणि' कहना चाहिये। इसके बाद 'गगनग्रासिनि' पद कहना चाहिये । माया कूर्च योगिनी वधू शाकिनी के बाद 'शत्रून्' फिर 'हन' को दो बार 'सर्वैश्वर्यं' के पश्चात् 'दद' को दो बार 'महोत्पातान्' को कहकर 'विध्वंसय' को दो बार कहना चाहिये । 'सर्वरोगान्'

कहकर 'नाशय' को दो बार कहना चाहिये । वेदादि लक्ष्मी काम प्रासाद पाश उसके बाद 'महाकृत्याभिचार' कहकर 'ग्रहदोषान्' कहना चाहिये । दो बार 'निवारय' कहने के पश्चात् 'मथ' को दो बार कहना चाहिये । सृणि काल अमृत कहकर प्रलय को उद्धृत करना चाहिये । फेत्कारी तथा वह्निजाया (यह षष्ठ मन्त्र का स्वरूप है) । तार लक्ष्मी त्रपा स्मर वधू राव क्रोध अस्त्र बीजों के बाद 'ब्रह्मवेतालराक्षसि' के बाद काली महाक्रोध चण्ड कहना चाहिये । हे प्रिये! इसके बाद 'विष्णुशरावतंसिके' कहना चाहिये । फिर 'योगिनि प्रेतामा महारुद्रकुणपारूढ' कहने के बाद वाग्भव पाश प्रासाद तीन 'फट्' 'नमः स्वाहा' कहना चाहिये (यह सप्तम मन्त्र है) ॥ १०१-१११ ॥

तारमाये कूर्चमैधे लक्ष्मीकामौ तथैव च ॥ ११२ ॥
पाशाङ्कुशौ च प्रासादस्ततो भगवतीति च ।
महाघोरकरालिन्यनु तामसि समुद्धरेत् ॥ ११३ ॥
महाप्रलयशब्दाच्च ताण्डविन्यपि कीर्तयेत् ।
ततो दद्यात् सुरेशानि चर्चरीकरतालिके ॥ ११४ ॥
जयद्वयं जननि च जम्भयुग्ममतः परम् ।
महाकालीति संलिख्य प्रवदेत कालनाशिनि ॥ ११५ ॥
भ्रमरि भ्रामरि प्रोच्य डमरुभ्रामिणीति च ।
चैतन्यानङ्गभूतानि योगिनी स्त्री च शाकिनी ॥ ११६ ॥
डाकिनी प्रलयश्चापि फेत्कार्यस्त्रे नमः शिरः ।
कालीवेदादिरुड्रावववधूचण्डाः क्रमादिमे ॥ ११७ ॥
चण्डखेचरि संलिख्य ज्वलयुग्ममुदीरयेत् ।
प्रज्वलद्वितयं चापि ततो निर्मांसशब्दतः ॥ ११८ ॥
देहे हृच्छिरसी चापि प्रणवः कुलकामिनी ।
कामकूर्चौ भगवति महाडामरि चोद्धरेत् ॥ ११९ ॥
ततो डमरुहस्ते च नीलपीतमुखीत्यपि ।
जीवब्रह्मगलेत्युक्त्वा निष्पेषिणि समुद्धरेत् ॥ १२० ॥
योगिनीवनितारावडाकिन्यस्तदनन्तरम् ।
महाश्मशानरङ्गानु चर्चरीगायिके वदेत् ॥ १२१ ॥
तुरुद्वन्द्वं मर्दयुगं मर्दयद्वितयं तथा ।
फेत्कारीबीजतः स्वाहा तारह्रीपाशबीजतः ॥ १२२ ॥

इसके बाद तार माया कूर्च मेधा लक्ष्मी काम पाश अङ्कुश प्रासाद के बाद 'भगवति महाघोरकरालिनि' के अनन्तर 'तामसि' कहना चाहिये । 'महाप्रलय' शब्द के बाद 'ताण्डविनि' कहना चाहिये । इसके पश्चात् हे सुरेशानि! 'चर्चरीकरतालिके' 'जय' को दो बार फिर 'जननि' तत्पश्चात् 'जम्भ' को दो बाद फिर 'महाकालि कालनाशिनि भ्रमरि भ्रामरि' कहकर 'डमरुभ्रामिणि' कहना चाहिये । चैतन्य अनङ्ग भूत योगिनी स्त्री

शाकिनी डाकिनी प्रलय फेत्कारी बीजों के बाद अस्त्र 'नमः' और शिर बीज कहने चाहिये (यह अष्टम मन्त्र है) । काली वेदादि रुष राव वधू चण्ड इनको क्रम से कहकर 'चण्डखेचरि' लिखकर दो बाद 'ज्वल' कहना चाहिये । 'प्रज्वल' को दो बार फिर 'निर्मांसदेहे' हृदय और शिर कहना चाहिये (यह नवम मन्त्र का स्वरूप है) । प्रणव कुलकामिनी काम कूर्च 'भगवति महाडामरि' को उद्धृत करना चाहिये । इसके बाद 'डमरुहस्ते नीलपीतमुखि जीवब्रह्मगले' कहकर 'निष्पेषिणि' को उद्धृत करना चाहिये । योगिनी वनिता राव डाकिनी के अनन्तर 'महाश्मशानरङ्ग' के पश्चात् 'चर्चरी गायिके' कहना चाहिये । 'तुरु', 'मर्द', 'मर्दय' तथा फेत्कारी बीज के बाद 'स्वाहा' कहना चाहिये (यह दशम मन्त्र का रूप है) ॥ ११२-१२२ ॥

त्रिलोकीवन्दिते ङेऽन्ता कर्तव्या शबरेश्वरी ।
शेषे नमः कुलवधूः पद्मावति शिरस्तथा ॥ १२३ ॥
तारो रमा त्रपा लक्ष्मीः कमले कमलालये ।
प्रसीद द्वितयं चापि रमयोरन्तरे त्रपा ॥ १२४ ॥
महालक्ष्मीस्ततो ङेऽन्ता शेषे हृन्मन्त्रसंयुता ।
प्रणवानु प्रभाबीजं बगलामुखि चेत्यपि ॥ १२५ ॥
ततश्च सर्वदुष्टानां मुखं वाचं समुद्धरेत् ।
स्तम्भय प्रोच्य जिह्वां च कीलय द्वितयं वदेत्॥ १२६ ॥
बुद्धिं नाशय सङ्कीर्त्य प्रभां तारं शिरोऽपि च ।
तारं हृदयमन्त्रश्च श्वेतशब्दानु कीर्तयेत् ॥ १२७ ॥
पुण्डरीकासनायै च ततः प्रतिपदादनु ।
तथा समरशब्दानु विजयानु च सुन्दरि ॥ १२८ ॥
प्रदायै भगवत्यै च ङेऽन्ता चैवापराजिता ।
लज्जालक्ष्मीस्मराश्चास्त्रं शिरः प्रणव एव च ॥ १२९ ॥
तारमैधौ पाशकाल्यौ लक्ष्मीकामरुषस्ततः ।
शाकिनी डाकिनी चापि फेत्कारी तदनन्तरम् ॥ १३० ॥
पिङ्गलायाश्च सम्बुद्धिर्वारद्वयमतः परम् ।
ततो महापिङ्गले च अस्थिभेदि
(न्यम्बिके) त्रयम्बिके (?) ॥१३१॥
कूर्चद्वयं चास्त्रयुगं शीर्षं शेषे विनिःक्षिपेत् ।

तार ह्रीं पाश बीजों के बाद 'त्रिलोकीवन्दिते' कहकर 'शबरेश्वरी' का चतुर्थ्यन्त (= शबरेश्वर्यै) और अन्त में 'नमः' कूलवधू फिर 'पद्मावति' के बार शिर कहना चाहिये (यह एकादश मन्त्र है) । तार रमा त्रपा लक्ष्मी के बाद 'कमले कमलालये' कहकर 'प्रसीद' को दो बार दो रमा बीजों के बीच त्रपा फिर ङेऽन्त 'महालक्ष्मी' पद अन्त में हृन्मन्त्र होना चाहिये (यह द्वादश मन्त्र है) । प्रणव के बाद प्रभा बीज फिर

'बगलामुखि' फिर 'सर्वदुष्टानां मुखं वाचं' को उद्धृत करना चाहिये । 'स्तम्भय' कहकर 'जिह्वां' फिर 'कीलय' को दो बार कहना चाहिये । 'बुद्धिं नाशय' कहने के बाद प्रभा तार और शिर कहना चाहिये (यह त्रयोदश मन्त्र है) । तार ह्न्मन्त्र 'श्वेत' शब्द के बाद 'पुण्डरीकासनायै' फिर 'प्रतिपद' के पश्चात् 'समरविजय' के बाद हे सुन्दरि! 'प्रदायै भगवत्यै' के बाद 'अपराजिता' को चतुर्थ्यन्त कहना चाहिये । फिर लज्जा लक्ष्मी काम अस्त्र शिर और प्रणव कहना चाहिये (यह चतुर्दश मन्त्र है) । तार मेधा पाश काली लक्ष्मी काम रोष फिर शाकिनी डाकिनी फेत्कारी तदनन्तर 'पिङ्गला' का सम्बोधन दो बार उसके पश्चात् 'महापिङ्गले अस्थिभेदिन्यम्बिके' दो कूर्च दो अस्त्र और अन्त में शिर रखना चाहिये (यह पञ्चदश मन्त्र है) ॥ १२३-१३१- ॥

तारमायाक्षेत्रपालाङ्कुशाश्चापि गुडत्रयम् ॥ १३२ ॥
हयग्रीवेश्वरि ततश्चतुर्वेदमयीत्यपि ।
शाकिनीयोगिनीकान्ताकूर्च्चास्तदनु भामिनि ॥ १३३ ॥
ततश्च सर्वविद्यानां मय्यधिष्ठानमीश्वरि ।
कुरुद्वन्द्वं शिरस्तारस्ततः सम्पुटकृन्मनुः ॥ १३४ ॥
मैधत्रपारमाकामवधूरोषाश्च योगिनी ।
प्रेतो भैरव्यपि शिवे शाकिनी डाकिनी तथा ॥ १३५ ॥
प्रलयश्चापि फेत्कारी क्रोधास्त्रे शिर एव च ।
मनूनेतावतः स्मृत्वा दक्षपार्श्वे प्रविन्यसेत् ॥ १३६ ॥
पूर्वाम्नायस्थिता देव्य एताः षोडश कीर्तिताः ।
क्रमेण तत्तद्देवीभ्यस्तास्ताः देव्यो विनिर्गताः ॥ १३७ ॥
तत्तद्देवीमनुभ्यस्तु तत्तन्मन्त्रा अपि प्रिये ।
एताः षोडश विज्ञेयाः पूर्वाम्नायस्य पालिकाः ॥ १३८ ॥
तत्तत्क्रमस्य योगेन क्रमन्यासोऽभिधीयते ।
अतस्त्वं दक्षिणाम्नायदेवीमन्त्रान् निबोध मे ॥ १३९ ॥

तार माया क्षेत्रपाल अङ्कुश तीन गुड के बाद 'हयग्रीवेश्वरि' फिर 'चतुर्वेदमयि' के पश्चात् शाकिनी योगिनी कान्ता कूर्च के बाद हे भामिनि! 'सर्वविद्यानां मय्यधिष्ठानं' कहकर हे ईश्वरि ! 'कुरु' को दो बार फिर शिर और तार कहना चाहिये (यह षोडश मन्त्र है) । मेधा त्रपा रमा काम वधू रोष योगिनी प्रेत भैरवी शाकिनी डाकिनी प्रलय फेत्कारी क्रोध अस्त्र और शिर । इन मन्त्रों का स्मरण कर दक्ष पार्श्व में न्यास करना चाहिये । ये सोलह देवियाँ पूर्वाम्नाय में स्थित कही गयी हैं । तत्तद् देवियों से क्रमशः भिन्न-भिन्न देवियाँ आविर्भूत हुईं । हे प्रिये! इसी प्रकार तत्तद् देवियों के मन्त्रों से तत्तत् मन्त्र भी निकले । इन सोलह देवियों को पूर्वाम्नाय की पालिका समझना चाहिये । तत्तत् क्रम के योग से क्रमन्यास कहा जाता है इसलिये तुम मुझसे क्रमप्राप्त दक्षिणाम्नाय देवी मन्त्रों को जानो ॥ १३२-१३९ ॥

[दक्षिणाम्नायस्थदेवीनां मन्त्राः]

यस्याद्यभूता मातङ्गी सद्यो विश्ववशङ्करी ।
अत्रापि पूर्ववज्ज्ञेयो मन्त्राणां सम्पुटः शिवे ॥ १४० ॥
तारो रमा स्मरो माया योगिनी शाकिनी रुषः ।
द्विः स्फुर प्रस्फुरयुगं सान्निध्यं कुरु युग्मकम् ॥ १४१ ॥
कूर्चास्त्रशीर्षाण्यन्ते च तत्तन्मन्त्रास्ततोऽनु च ।
मेधामायारमातारा नमो भगवतीति च ॥ १४२ ॥
मातङ्गेश्वरि सङ्कीर्त्य ततः सर्वजनाक्षरात् ।
मनोहरि ततः सर्वमुखरञ्जनि चेत्यपि ॥ १४३ ॥
सर्वराजवशङ्कर्यनु सर्वस्त्रीपदं स्मरेत् ।
पुनः पुरुषशब्दानु वशङ्करि समुद्धरेत् ॥ १४४ ॥
सर्वदुष्टमृगेत्युक्त्वा वशङ्करि ततोऽप्यनु ।
सर्वग्रहपदाद्देवि सर्वसत्त्वपदादपि ॥ १४५ ॥
वशङ्करीति प्रत्येकं ततः परमुदीरयेत् ।
सर्वलोकममुं मे च वशमानय चेत्यपि ॥ १४६ ॥
शिरः शेषे ततो माया नमो भगवतीति च ।
माहेश्वरि विसन्ध्युक्त्वा अन्नपूर्णे शिरस्तथा ॥ १४७ ॥
पाशमायाङ्कुशास्तारत्रपालक्ष्मीरुषः स्मरः ।
पाशो ङेऽन्ता ततोऽप्यश्वारूढास्त्रद्वितयं शिरः ॥ १४८ ॥
ज्वलयुग्मं शूलिनि च ततो दुष्टग्रहं वदेत् ।
ग्रस सङ्कीर्त्य शीर्षं च.......................

दक्षिणाम्नायस्थ देवियों के मन्त्र—इस मन्त्र की प्रथम देवी विश्ववशङ्करी मातङ्गी है। हे शिवे! यहाँ भी पूर्व की भाँति मन्त्रों का सम्पुट जानना चाहिये। तार रमा स्मर माया योगिनी शाकिनी रोष के बाद 'स्फुर' दो बार 'प्रस्फुर' दो बार फिर 'सान्निध्यं' के पश्चात् 'कुरु' दो बार अन्त में कूर्च अस्त्र शिर (यह मुख्य मन्त्र है)। इसके बाद इससे उद्धृत मन्त्र हैं। मेधा माया रमा तार फिर 'नमो भगवति मातङ्गेश्वरि' कहकर 'सर्वजन' अक्षरों के बाद 'मनोहरि' फिर 'सर्वमुखरञ्जनि' तथा 'सर्वराजवशङ्करि' के पश्चात् 'सर्वस्त्री' पद कहना चाहिये। पुनः 'पुरुष' शब्द कहकर 'वशंकरि' को उद्धृत करना चाहिए। 'सर्वदुष्टमृग' कहकर 'वशङ्करि' फिर हे देवि! 'सर्वग्रह' पद के बाद 'सर्वसत्त्व' पद के पश्चात् 'वशङ्करि' कहना चाहिये। 'सर्वलोकममुं मे वशमानय' और अन्त में शिर कहना चाहिये (यह प्रथम मन्त्र है)। माया 'नमो भगवति माहेश्वरि' के बाद सन्धिरहित 'अन्नपूर्णे' कहकर शिर कहना चाहिये (यह द्वितीय मन्त्र है)। पाश माया अङ्कुश तार त्रपा लक्ष्मी क्रोध स्मर पाश बीजों के पश्चात् 'अश्वारूढा' को ङेऽन्त कहकर दो अस्त्र और शिर कहना चाहिये (यह तृतीय मन्त्र है)। दो 'ज्वल',

'शूलिनि' के बाद 'दुष्टग्रहं' कहना चाहिये । 'ग्रस' कहकर शिर कहना चाहिये (यह चतुर्थ मन्त्र है) ॥ १४०-१४९ ॥

.... रमालज्जास्मरास्ततः ॥ १४९ ॥
तारो माया मैधमाये तारो ङेऽन्ता सरस्वती ।
हृन्मन्त्रश्च ततस्तारो माया च कमला स्मरः ॥ १५० ॥
प्रासादश्च सृणिश्चापि वज्रप्रस्तारिणीति च ।
स्वाहा तारो भौवनेशी कूर्चः पाशोऽङ्कुशस्तथा॥ १५१ ॥
वधूः क्रोधः क्षेत्रपालः कुलनारी फडन्तिमा ।
तारमैधत्रपा नित्यक्लिन्नेऽनु च मदद्रवे ॥ १५२ ॥
वाग्भवो भौवनेशी च स्वाहा च तदनन्तरम् ।
कूर्चो द्रोहश्च विशिरा (त्रिशिखा?)
ब्रध्नो मैधस्य पञ्चकम् ॥ १५३ ॥
ततो दद्यान्मुण्डमधुमत्ये इति पदं प्रिये ।
तस्यानु शक्तिभूतिन्यै त्रपात्रितयमस्त्रयुक् ॥ १५४ ॥
तारमैधे च समरपदाद् विजयदायिनि ।
मत्तमातङ्गयायिन्यनु श्रीपाशकुलाङ्गनाः ॥ १५५ ॥
ततो भगवतीत्युक्त्वा जयन्ति समरे जयम् ।
देहि द्वयं समाभाष्य मम शत्रूनितीरयेत् ॥ १५६ ॥
विध्वंसय युगं विद्रावय द्वन्द्वं ततः परम् ।
भञ्जयुग्मं ततो ज्ञेयं मर्दय द्वितयं तथा ॥ १५७ ॥
तुरुद्वयं रमा कामवध्वौ हृच्छिर एव च ।

रमा लज्जा काम तत्पश्चात् तार माया मेधा माया तार फिर ङेऽन्त 'सरस्वती' अन्त में हृन्मन्त्र (यह पञ्चम मन्त्र है) । तार माया कमला स्मर प्रासाद सृणि के बाद 'वज्रप्रस्तारिणि स्वाहा (यह षष्ठ मन्त्र है) । तार भुवनेश्वरी कूर्च पाश अङ्कुश वधू क्रोध क्षेत्रपाल कुलाङ्गना और अन्त में फट् (यह सप्तम मन्त्र है) । तार मेधा त्रपा 'नित्यक्लिन्ने मदद्रवे' के अनन्तर वाग्भव भुवनेश्वरी और 'स्वाहा' (यह अष्टम मन्त्र है)। कूर्च द्रोह विशिरा (त्रिशिखा?) ब्रध्न और पाँचवाँ बीज मेधा है । हे प्रिये! इसके बाद 'मुण्डमधुमत्यै' पद देना चाहिये । उसके पश्चात् 'शक्तिभूतिन्यै' तीन त्रपा और अस्त्र कहना चाहिये (यह नवम मन्त्र है) । तार मेधा 'समर' पद के बाद 'विजयदायिनि मत्तमातङ्गयायिनि' के अनन्तर श्री पाश कुलाङ्गना फिर 'भगवति' कहकर 'जयन्ति समरे जयं' फिर 'देहि' को दो बार कहकर 'मम शत्रून्' कहना चाहिये । इसके पश्चात् 'विध्वंसय' और विद्रावय' को दो-दो बार फिर 'भञ्ज' को दो बार फिर 'मर्दय' को दो बार 'तुरु' को दो बार फिर रमा काम वधू हृदय शिर (यह दशम मन्त्र का रूप है) ॥ १५०-१५७- ॥

प्रणवो वाग्भवश्चापि ततो रक्ताम्बरे पदम् ॥ १५८ ॥
अस्यानु कथयेद्देवि रक्तस्रगनुलेपने ।
महामांसपदाद्रक्तप्रिये तदनु च प्रिये ॥ १५९ ॥
महाकान्तारतो ङ्यन्तान् मां त्राहि द्वितयं ततः ।
कमलाकाममायारुड्रावास्त्राणि शिरस्ततः ॥ १६० ॥
मायाश्रमस्ततश्चार्थ ऋतम्भर इतः परम् ।
सङ्कटादेवि चोल्लिख्य सङ्कटेभ्यो वदेत्ततः ॥ १६१ ॥
मामुक्त्वा तारय युगं कमला काम एव च ।
प्रासादकूर्चपाशाश्च शेषे फट् वह्निवल्लभा ॥ १६२ ॥
वदद्वयं समाभाष्य वाग्वादिनि समुद्धरेत् ।
कुलिकं बीजमुच्चार्य क्लिन्नक्लेदिनि कीर्तयेत् ॥ १६३ ॥
महाक्षोभं कुरु ततो कल्पबीजं च तारयुक् ।
मोक्षं कुरु ततः शेषे कुलिकं बीजमुच्यते ॥ १६४ ॥
तारो मैधं तथा काली कूर्चं माया स्मरस्ततः ।
मेखलामौञ्जिकुण्डानि रागसारसभद्रिकाः ॥ १६५ ॥
दृष्टिं निवेशय द्वन्द्वं कूर्चास्त्रे वह्निवल्लभा ।
ऊर्ध्वं सम्पुटमुन्नेयं षड्विंशतिभिरक्षरैः ॥ १६६ ॥
एताः षोडश वै देव्यो दक्षिणाम्नायगोचराः ।
क्रमेण निर्गतास्तत्तद्देवीतः कमलानने ॥ १६७ ॥
आसां मन्त्रास्तथैवैते तत्तन्मन्त्रेभ्य उद्गताः ।
पार्श्वे तु दक्षिणे न्यस्येन्मन्त्रान् षोडश साधकः ॥ १६८ ॥

प्रणव वाग्भव फिर 'रक्ताम्बरे' उसके बाद हे देवि! 'रक्तस्रगनुलेपने' कहना चाहिये । 'महामांस' पद के बाद 'रक्तप्रिये' उसके पश्चात् हे प्रिये! सप्तम्यन्त 'महाकान्तार' पद के बाद 'मां' फिर 'त्राहि' को दो बार पुनः कमला काम माया शेष में राव अस्त्र और शिर (यह एकादश मन्त्र का स्वरूप है) । माया श्रम के बाद अर्थ फिर ऋतम्भरे कहकर संकटा देवी का उल्लेख करने के बाद 'सङ्कटेभ्यो' कहना चाहिये । 'माम्' कहकर 'तारय' को दो बार फिर कमला काम प्रासाद कूर्च पाश और अन्त में 'फट्' तथा वह्निवल्लभा कहना चाहिये (यह द्वादश मन्त्र है) । दो 'वद' कहकर 'वाग्वादिनि' को उद्धृत करना चाहिये । कुलिक बीज का उच्चारण कर 'क्लिन्नक्लेदिनि' कहना चाहिये । 'महाक्षोभं कुरु' के बाद तार से युक्त कल्पबीज फिर 'मोक्षं कुरु' के बाद अन्त में कुलिक बीज कहना चाहिये (यह त्रयोदश मन्त्र है) । तार मेधा काली कूर्च माया स्मर के बाद मेखला मौञ्जी कुण्ड राग सारस भद्रिका 'दृष्टिं' के बाद 'निवेशय' दो बार फिर कूर्च अस्त्र और अग्निवल्लभा (यह चतुर्दश मन्त्र है) । इसके ऊपर छब्बीस अक्षरों से सम्पुट को अपनी बुद्धि से जोड़ना

चाहिये । ये सोलह देवियाँ दक्षिण-आम्नाय वाली हैं । हे कमलानने! ये क्रम से तत्तद् देवियों से निर्मित हुई हैं । इनके ये मन्त्र भी तत्तत् मन्त्रों से उद्धृत होते हैं ! साधक इन सोलह मन्त्रों का दक्षिण पार्श्व में न्यास करे ॥ १५९-१६८ ॥

[प्रतीच्याम्नायस्थदेवीनां मन्त्रा:]

प्रतीच्याम्नायगाः सर्वाः क्रमन्यासे निशामय ।
तत्राधः सम्पुटं वक्ष्ये बीजवर्णपुरस्कृतम् ॥ १६९ ॥
तारो मैधश्च पाशश्च त्रपा योगिन्यमाक्रुधः ।
हारिण्युत्कोचिनीनादान्तकचामरसौमताः ॥ १७० ॥
द्वादशैतानि बीजानि पुरतः प्रतिविन्यसेत् ।
ततो भगवति प्रोच्य आगच्छ द्वितयं ततः ॥ १७१ ॥
ततो वदेत् सन्निहिता भवयुग्ममतः परम् ।
शाकिनी डाकिनी कृत्या कौलुञ्चः प्रकरी तथा ॥ १७२ ॥
कूर्चमस्त्रं शिरश्चापि (वदेत् पश्चाच्च मन्त्रवित्) ।
सप्तविंशतिवर्णानि कथितानि मया तव ॥ १७३ ॥
ऊनचत्वारिंशवर्णाः सर्व एते प्रकीर्तिताः ।
सम्पुटस्थानथो मन्त्रवर्णान् मध्ये स्थितान् शृणु ॥ १७४ ॥
प्रणवो वाग्भवो माया कामो लक्ष्मीश्च.शाकिनी ।
प्रलयश्चापि फेत्कारी सत्त्वकूटं ततः परम् ॥ १७५ ॥
उक्त्वा भगवतीत्येवं विच्चे घोरे ततः परम् ।
श्रीकुब्जिके च त्रेतार्णान् सान्वक्षौ कुलिकं तथा ॥ १७६ ॥
पञ्चानामपि वर्गाणां यथोक्तान् पञ्च वर्णकान् ।
शेषगान् समनूद्धृत्य विसन्धि तदनन्तरम् ॥ १७७ ॥
अघोरामुखि संलिख्य उषस्तृष्णापराधकान् ।
किणिद्वन्द्वं ततो विच्चे वधू रुट् प्रेत एव च ॥ १७८ ॥
ततोऽनु पादुकामुक्त्वा पूजयामि नमः शिरः ।

पश्चिमाम्नायस्थ देवियों के मन्त्र—(हे देवि! अब) क्रमन्यास में पश्चिमाम्नायस्थ समस्त देवियों को सुनो । उसमें बीजवर्ण के बाद सम्पुट को बतलाऊँगा । तार मेधा पाश त्रपा योगिनी अमा क्रोध हारिणी उत्कोचिनी नादान्तक चामर सौमत इन बारह बीजों का पहले न्यास करना चाहिये । इसके पश्चात् 'भगवति' कहकर 'आगच्छ' को दो बार कहना चाहिये । इसके बाद 'सन्निहिता' कहना चाहिये फिर 'भव' को दो बार बोलना चाहिये । पुन: शाकिनी डाकिनी कृत्या कौलुञ्च प्रकरी कूर्च अस्त्र और शिर कहना चाहिये (यह प्रथम मन्त्र है) । इस प्रकार मैंने तुमको सत्ताईस वर्ण बतलाये (पहले के बारह वर्णों को जोड़कर) ये सब उन्चास वर्ण कहे गये हैं । अब सम्पुटस्थ अर्थात् मध्य में स्थित मन्त्र वर्णों को सुनो। प्रणव वाग्भव माया काम लक्ष्मी शाकिनी

प्रलय फेत्कारी सत्त्वकूट कहकर 'भगवति विच्चे घोरे' उसके पश्चात् 'श्रीकुब्जिके' कहने के बाद सानु अक्ष और कुलिक इन तीनों वर्णों को तथा (कादि) पाँच वर्गों के यथोक्त अन्तिम पाँच वर्णों को उद्धृत कर सन्धिरहित 'अघोरामुखि' लिखकर उषा तृष्णा अपराध बीजों को कहना चाहिये । फिर 'किणि' को दो बार फिर 'विच्चे' उसके बाद वधू क्रोध प्रेत के पश्चात् 'पादुकाम्' कहकर 'पूजयामि नमः' कहे फिर शिर (यह द्वितीय मन्त्र है) ॥ १६९-१७८- ॥

त्रपारमाशृण्यनङ्गवधूवाग्भवगारुडाः ॥ १७९ ॥
योगिनी शाकिनी काली फेत्कारी रुष एव्र च ।
अघोरे सिद्धिमुच्चार्य मे पदाद् देहि दापय ॥ १८० ॥
स्वाहा शेषे ततस्तारलक्ष्मीपाशाङ्कुशस्मराः ।
कूर्चस्ततोऽनु धनदा समाधिस्तदनन्तरम् ॥ १८१ ॥
एकानंशे समुल्लिख्य डमरु डामरि स्मरेत् ।
नीलाम्बरे नीलपदाद् विभूषण इतीरयेत् ॥ १८२ ॥
नीलनागासने प्रोच्य सकलानु सुरासुरान् ।
वशे ततः कुरु युगं जल्पिके कल्पिके तथा ॥ १८३ ॥
सिद्धिदे वृद्धिदे चापि योगिनीस्त्रीरुषः स्मरः ।
रावप्रासादास्त्रशीर्षाण्यतः परमुदीरयेत् ॥ १८४ ॥
तारो हृन्मन्त्रसंयुक्तश्चामुण्डे सन्धिनान्वितः ।
करङ्किणि समाभाष्य करङ्कपदमीरयेत् ॥ १८५ ॥
मालाधारिणितः किं किं विलम्बस इतीरयेत् ।
ततो भगवतीत्युक्त्वा शुष्कानिनि समुच्चरेत् ॥ १८६ ॥
कौरजद्वितयं बिन्दुरहितं तदनन्तरम् ।
ततो निःसन्ध्यन्त्रकरावदनद्धे
(वनद्धे?) भो युगं तथा ॥ १८७ ॥
वला द्वन्द्वं ततः कृष्णभुजङ्गपदमुद्धरेत् ।
तस्यानु वेष्टिततनुसम्बुद्धिस्तदनन्तरम् ॥ १८८ ॥
ज्ञेयो लम्बकपालाया हुड्डयुग्ममतः परम् ।
हट्टद्वन्द्वं पटयुगं पताकाहस्त इत्यपि ॥ १८९ ॥
ज्वल ज्वल समाभाष्य ज्वालामुखि ततो वदेत् ।

त्रपा रमा शृणि काम वधू वाग्भव गारुड योगिनी शाकिनी काली फेत्कारी क्रोध बीजों के बाद 'अघोरे सिद्धिं' कहकर 'मे' पद के पश्चात् 'देहि दापय' अन्त में 'स्वाहा' (यह तृतीय मन्त्र है) । तार लक्ष्मी पाश अङ्कुश स्मर कूर्च उसके बाद धनदा समाधि तदनन्तर 'एकानंशे' लिखकर 'डमरु डामरि' का स्मरण करना चाहिये । 'नीलाम्बरे नील' पद के बाद 'विभूषणे' कहना चाहिये । 'नीलनागासने' कहकर

तत्पश्चात् 'सुरासुरान् वशे' के पश्चात् 'कुरु' को दो बार फिर 'जल्पिके कल्पिके सिद्धिदे वृद्धिदे' के अनन्तर योगिनी स्त्री क्रोध स्मर राव प्रासाद अस्त्र अन्त में शीर्ष (यह चतुर्थ मन्त्र है) । तार हृन्मन्त्र से संयुक्त 'चामुण्डे' को सन्धियुक्त करके 'करङ्किणि' कहकर 'करङ्क' पद कहना चाहिये । 'मालाधारिणि' के पश्चात् 'किं किं विलम्बसे' यह कहने के पश्चात् 'भगवति' कहकर 'शुष्कानिनि' का उच्चारण करना चाहिये । बिन्दुरहित दो कौरज के पश्चात् सन्धिरहित 'अन्त्रकरावनद्धे भो' को दो बार कहकर 'वला' को दो बार फिर 'कृष्णभुजङ्ग' पद को उद्धृत करना चाहिये । उसके बाद 'वेष्टिततनु' का सम्बोधन तदनन्तर 'लम्बकपाले' के अनन्तर 'हुड्ड' को दो बार अत: पर 'हट्ट' को दो बार 'पट; को दो बार 'पताका हस्ते ज्वल ज्वल' कहकर फिर 'ज्वालामुखि' कहना चाहिये ॥ १७९-१८९- ॥

विसन्ध्यवर्णतो निष्कं तर्जनीत्रितयं प्रिये ॥ १९० ॥
खट्वाङ्गधारिण्युक्त्वा च हाहा चट्टयुगं ततः ।
हूं हूं केवलवर्णं हि न तु बीजं वरानने ॥ १९१ ॥
अट्टाट्टहासिनि ततः उड्ड उड्ड ततः परम् ।
सन्धानरहितावेतौ पूर्वत्र च परत्र च ॥ १९२ ॥
ततो वेतालमुखि च सिकिद्वन्द्वमितोऽप्यनु ।
स्फुलिङ्गपिङ्गलाक्षीति ततश्चल चलेत्यपि ॥ १९३ ॥
चालय द्वितयस्यानु करङ्कपदमीश्वरि ।
नमोऽस्तु ते मालिनितः स्वाहा शेषे निगद्यते ॥ १९४ ॥
मैधमायारमापाशा अमृतं कलया सह ।
पाशश्च पद्मकूटं च नमो भगवतीति च ॥ १९५ ॥
वार्तालि द्वितयं चापि वाराहि युगलं तथा ।
वराहमुख्यपि द्विश्च ततो मैधामृते प्रिये ॥ १९६ ॥
अन्धे अन्धिनि हृन्मन्त्रो रुन्धे रुन्धिनि हृन्मनुः ।
जम्भे जम्भिन्यनु नमो मोहे मोहिन्यतो नमः ॥ १९७ ॥
एतद् विसन्धि त्रितयं स्तम्भे स्तम्भिनि वै नमः ।
सर्वदुष्टप्रदुष्टानां सर्वेषां सर्वशब्दतः ॥ १९८ ॥
वाक्चित्तचक्षुःश्रोत्रमुखगतिजिह्वापदं ततः ।
स्तम्भं कुरु युगं शीघ्रं वशं कुरु युगं ततः ॥ १९९ ॥
चैतन्यकालीकमलाश्छिन्नसर्गा पिशाचिनी ।
पञ्चाकृतिधरा तारामाक्रोधास्त्रशिरांसि च ॥ २०० ॥

हे प्रिये! सन्धिरहित 'अ' वर्ण के बाद 'निष्क' फिर तीन तर्जनी के पश्चात् 'खट्वाङ्गधारिणि' कहकर 'हा हा' तथा दो 'चट्ट' 'हूं हूं' कहे । हे वरानने! उपर्युक्त दोनों केवल वर्ण हैं क्रोधबीज नहीं । 'अट्टाट्टहासिनि' फिर 'उड्ड उड्ड' को पूर्वत्र

परत्र दोनों जगह सन्धिरहित कहना चाहिये । फिर 'वेतालमुखि' दो 'सिकि' इसके पश्चात् 'स्फुलिङ्गपिङ्गलाक्षि' फिर 'चल चल' और दो 'चालय' के पश्चात् हे ईश्वरि! 'करङ्क' पद के पश्चात् 'मालिनि' के पीछे 'नमोऽस्तु ते' और अन्त में 'स्वाहा' कहा जाता है (यह पञ्चम मन्त्र है) । मेधा माया रमा पाश अमृत कला पाश पद्मकूट के बाद 'नमो भगवति' दो 'वार्तालि' दो 'वाराहि' दो 'वराहमुखि' इसके बाद हे प्रिये! मेधा अमृत 'अन्धें अन्धिनि' हृन्मन्त्र फिर 'सन्धे सन्धिनि' फिर हृन्मन्त्र 'जम्भे जम्भिनि' के बाद 'नम: मोहे मोहिनि' के पश्चात् 'नम:' ये तीनों सन्धिरहित होने चाहिये । फिर 'स्तम्भे स्तम्भिनि नम: सर्वदुष्टप्रदुष्टानां सर्वेषां सर्व' शब्द के बाद 'वाक्चित्तचक्षु:श्रोत्रमुखगतिजिह्वा' पदों को फिर 'स्तम्भं' के बाद दो 'कुरु' 'शीघ्रं वशं' के बाद दो 'कुरु' चैतन्य काली कमला छिन्नसर्गा (= सन्धिरहित?) पाँच आकृति वाली पिशाचिनी के बाद तार अमा (?) क्रोध अस्त्र और शिर कहना चाहिये (यह षष्ठ मन्त्र है) ॥ १९०-२०० ॥

भौवनेशी शाकिनी च डाकिनी काम एव च ।
पूर्णेश्वरीति सङ्कीर्त्य सर्वान् कामांश्च पूरय ॥ २०१ ॥
तारास्त्रशीर्षाण्यन्ते च वासिष्ठं कूटमन्वतः ।
उग्रस्वप्नावतीकूटौ कूटं वै कालिकं तथा ॥ २०२ ॥
वेदादिमायाशाकिन्यः क्रोधबीजं ततः परम् ।
महादिगम्बरीत्युक्त्वा मैधश्रीकामपाशकाः ॥ २०३ ॥
मुक्तकेशी(शि)ततश्चण्डाट्टहासिनि समुद्धरेत् ।
योगिनीकामिनीकालीपीयूषानि यथाक्रमम् ॥ २०४ ॥
मुण्डमालिन्यतस्तारः स्वाहा च तदनन्तरम् ।
मायारमाङ्कुशानङ्गवधूवाग्भवगारुडाः ॥ २०५ ॥
योगिनी शाकिनी काली फेत्कारी रुष एव च ।
अघोरेऽनु च सिद्धिं मे देहि दापयमस्तकाः ॥ २०६ ॥
कालीद्वयं चतूरोषी सृणित्रितयमेव च ।
रमायुगं त्रपायुग्मं योगिनी शाकिनी वधूः ॥ २०७ ॥
चण्डघटे ततः शत्रून् जम्भय द्वितयं ततः ।
मारयद्वितयं चापि कूर्चास्त्रे शिर एव च ॥ २०८ ॥
वेदादिमैधपाशश्रीकूर्चांकुशमहारुषः ।
कालीतार्क्ष्यौ शाकिनी चानङ्गमाले स्त्रियं ततः ॥ २०९ ॥
विसन्ध्याकर्षय युगं त्रुटच्छेदय पूर्ववत् ।
द्वे रुषौ द्वे तथास्त्रे च शिर एकमतः परम् ॥ २१० ॥

भौवनेशी शाकिनी डाकिनी काम के बाद 'पूर्णेश्वरि' कहकर 'सर्वान् कामांश्च पूरय' तार अस्त्र शिर के पश्चात् वसिष्ठ कूट फिर उग्र कूट स्वप्नावती कूट तथा

कालिक कूट (यह सप्तम मन्त्र है) । वेदादि माया शाकिनी क्रोध बीज उसके बाद 'महादिगम्बरि' कहकर मेधा श्री काम पाश 'मुक्तकेशि' उसके बाद 'चण्डाट्टहासिनि' को उद्धृत करना चाहिये । क्रम से योगिनी कामिनी काली पीयूष 'मुण्डमालिनि' के बाद तार और उसके बाद 'स्वाहा' कहना चाहिये (यह अष्टम मन्त्र है) । माया रमा अङ्कुश काम वधू वाग्भव गारुड योगिनी शाकिनी काली फेत्कारी रोष 'अघोरे' के बाद 'सिद्धिं मे देहि दापय शिर' (यह देवी का नवम मन्त्र है) । दो कालीबीज चार क्रोध-बीज तीन सृणि दो रमा दो त्रपा फिर योगिनी शाकिनी वधू 'चण्डघण्टे' फिर 'शत्रून्' के बाद दो बार 'जम्भय' दो 'मारय' फिर कूर्च अस्त्र और शिर (यह देवी का नवम मन्त्र है) । वेदादि मेधा पाश श्री कूर्च अङ्कुश महाक्रोध काली तार्क्ष्य शाकिनी 'अनङ्गमाले स्त्रियं' फिर सन्धिरहित दो बार 'आकर्षय' 'त्रुट' और 'छेदय' को भी पूर्ववत् अर्थात् दो बार, दो क्रोध दो अस्त्र तथा एक शिर (यह देवी का दशम मन्त्र है) ॥ २०१-२१० ॥

तारमैधे पाशकलासर्वा एह्येहि तत्परम् ।
ततो नु स्याद् भगवति किरातेश्वरि चेत्यपि ॥ २११ ॥
ततो विपिनशब्दानु कुसुमानु तथैव च ।
वतंसितानुकर्णे च पादाद् भुजगतस्ततः ॥ २१२ ॥
निर्मोककञ्चुकिन्येव त्रपा राका युगं युगम् ।
कह ज्वल प्रज्वल च द्वितयं द्वितयं द्वयम् ॥ २१३ ॥
सर्वसिद्धिं दद युगं तद्वद्देहि च दापय ।
सर्वशत्रून् दहद्वन्द्वं बन्धयुग्मं पचद्वयम् ॥ २१४ ॥
मथ विध्वंसय तथा युगं युगमुदीरयेत् ।
त्रिकूर्चास्त्रं नमः शीर्षं वेदादिः कुलकामिनी ॥ २१५ ॥
गुडाध्वानौ महाविद्ये विश्वं मोहय पूर्वगम् ।
चैतन्यकमलानङ्गास्त्रैलोक्यं तदनन्तरम् ॥ २१६ ॥
ससन्ध्यावेशय ततो रोषोऽन्वस्त्रयुगं शिरः ।
पाशः कला सर्वमैधाश्वत्थाश्च तदनन्तरम् ॥ २१७ ॥
ङेऽन्ता क्षेमङ्करी चापि स्वाहा शेषे भवेत् प्रिये।
प्रणवो भौवनेशी च लक्ष्मीः कामश्च योगिनी ॥ २१८ ॥
वधूः सिद्धा रक्तपा च कूर्चास्त्रे तदनन्तरम् ।
करालिनि समाभाष्य ततो मायूरि कीर्तयेत् ॥ २१९ ॥
शिखिपिच्छिकाहस्त इति खेचरीमेघविद्युतः ।
ऋक्षकर्णीति संलिख्य जालन्धरि ततः परम् ॥ २२० ॥
मा मां द्विषन्तु तदनु शत्रवो न तुदन्तु च ।
ततो भूपतयः प्रोच्य भयं मोचय सन्धियुक् ॥ २२१ ॥
हूं फट् स्वाहा सर्वशेषे ....

तार मेधा पाश कला सर्वा के बाद 'एह्येहि' उसके बाद 'भगवति किरातेश्वरि' फिर 'विपिन' शब्द के बाद 'कुसुमावतंसितकर्णे' फिर 'पादुभुजग निर्मोककञ्चुकिनि' के पश्चात् त्रपा राका को दो-दो बार 'कह ज्वल प्रज्वल' को दो-दो बार 'सर्वसिद्धि' फिर 'दद' को दो बार उसी प्रकार 'देहि' और 'दापय' को भी दो-दो बार 'सर्वशत्रून्' दो 'दह' दो 'बन्ध' दो 'पच' तथा 'मथ' एवं 'विध्वंसय' को भी दो-दो बार कहना चाहिये । तीन कूर्च अस्त्र और 'नमः' तथा शिर (यह एकादश मन्त्र है) । वेदादि कुलकामिनी गुड अध्वा के पश्चात् 'महाविद्ये विश्वं मोहय मोहय' चैतन्य कमला अनङ्ग उसके बाद 'त्रैलोक्यं' तथा सन्धियुक्त 'आवेशय' फिर दो क्रोध के पीछे दो अस्त्र तथा शिर (यह द्वादश मन्त्र है) । पाश कला सर्व मेधा अश्वत्थ तदनन्तर ङेऽन्त 'क्षेमङ्करी' और हे प्रिये! अन्त में 'स्वाहा' होता है (यह त्रयोदशी देवी का मन्त्र है) । प्रणव भौवनेशी लक्ष्मी काम योगिनी वधू सिद्धा रक्ता कूर्च अस्त्र के बाद 'करालि' कहकर फिर 'मायूरि' का कथन करना चाहिये । 'शिखिपिच्छिकाहस्ते' फिर खेचरी मेघ विद्युत् 'ऋक्षकर्णि' लिखकर 'जालन्धरि' उसके बाद 'मा मां द्विषन्तु' के अनन्तर 'शत्रवो न तुदन्तु' के पश्चात् 'भूपतयः' कहकर सन्धियुक्त 'भयं मोचय' और सबके अन्त में 'हूं फट् स्वाहा' कहना चाहिये (यह चतुर्दशी देवी का मन्त्र है) ॥ २११-२२१ ॥

.... तारः काली च शाकिनी ।
उक्त्वा वेतालमुखि च चर्चिके तदनन्तरम् ॥ २२२ ॥
क्रोधबीजं योगिनी च वधूबीजमतः परम् ।
ज्वालामालिनि पदाद् विस्फुलिङ्गानु वमनीत्यपि ॥ २२३ ॥
महाकापालिनि ततः कात्यायनि तथैव च ।
कमलानङ्गडाकिन्यः कह युग्मं धमद्वयम् ॥ २२४ ॥
ग्रसद्वन्द्वं पाशशृणिप्रासादास्तदनन्तरम् ।
नरमांसाच्च रुधिरपरिपूरितशब्दतः ॥ २२५ ॥
कपालेऽमा मेघशक्ती कूर्चानि त्रीणि फड्युगम् ।
स्वाहैकं सम्पुटमथो शृणु त्वमधरं प्रिये ॥ २२६ ॥
मायानङ्गौ मैधतारो भोगनेत्रे तथैव च ।
दुष्कृतं पद्मसुरससमरास्तदनन्तरम् ॥ २२७ ॥
तन्त्रा च कुटिला चैव चर्पटं मणिमालया ।
नादान्तकश्चामरं च बीजानीमानि षोडश ॥ २२८ ॥
ततो वदेद् भगवति महाबलपराक्रमे ।
एह्येहि सान्निध्यमिति कुरुयुग्ममतः परम् ॥ २२९ ॥
कूर्चे अस्त्रे समुच्चार्य मम सर्वमनोरथान् ।
पूरय द्वितयं प्रोच्य पालय द्वितयं वदेत् ॥ २३० ॥
मां रक्ष युगलं सर्वोपद्रवेभ्यस्ततः परम् ।

शिरः शेषे समाभाष्य पिचिण्डां प्रतिविन्यसेत् ॥ २३१ ॥
एता वै पश्चिमाम्नायदेव्यो मन्त्राश्च तादृशाः ।

तार काली शाकिनी बीजों को कहकर 'वेतालमुखि चर्चिके' उसके बाद क्रोध बीज योगिनी वधूबीज फिर 'ज्वालामालिनि' पद के बाद 'विस्फुलिङ्गवमनि महाकापालिनि' तत्पश्चात् 'कात्यायनि' फिर कमला अनङ्ग डाकिनी के बाद 'कह' को दो बार दो 'धम' दो 'ग्रस' तदनन्तर पाश शृणि प्रासाद फिर 'नरमांस' के पश्चात् 'रुधिरपरिपूरितकपाले' अमा मेघ शक्ति तीन कूर्च दो 'फट्' और एक 'स्वाहा' (यह पञ्चदशी देवी का मन्त्र है) । हे प्रिये! इसके बाद अब तुम अधर मन्त्र को सुनो । माया काम मेधा तार भोग नेत्र दुष्कृत पद्म सुरस समर उसके बाद तन्त्रा कुटिला चर्पट मणिमाला नादान्तक चामर ये सोलह बीज होते हैं । इसके बाद 'भगवति महाबलपराक्रमे एह्येहि सान्निध्यं' के बाद 'कुरु' को दो बार इसके बाद कूर्च अस्त्र का उच्चारणकर 'मम मनोरथान्' कहना चाहिये । फिर 'पूरय' को दो बार कहकर 'पालय' को दो बार कहना चाहिये । सर्वोपद्रवेभ्यः के बाद 'मां' के बाद दो 'रक्ष' अन्त में शिर कहकर पिचिण्डा का न्यास करना चाहिये । ये पश्चिमाम्नाय की देवियाँ हैं । इनके मन्त्र भी उसी प्रकार हैं ॥ २२२-२३१- ॥

[उत्तराम्नायस्थदेवीनां मन्त्राः]

इदानीमुत्तराम्नायदेवीराकलय प्रिये ॥ २३२ ॥
यासामाद्या भगवती गुह्यकाली भयानका ।
तत्रादौ सम्पुटं वच्मि विस्तरादधरेतरम् ॥ २३३ ॥
मैधं रावं तारलज्जे ततो दण्डादिपञ्चकम् ।
राकामेषौ शिल्परागौ विवत्सादिद्वयं ततः ॥ २३४ ॥
ततः सामयिकं कूटं वार्णिकं भैरवं तथा ।
गह्वरं मन्त्रकूटं च पञ्चमे(?)क्रमशः प्रिये ॥ २३५ ॥
महाकल्पस्थाग्निबीजं शाम्भवं वज्रवर्म च ।
जगदावृत्तिकं ब्रह्मकपालं तदनन्तरम् ॥ २३६ ॥
जययुग्मं जीवयुगं ज्वल प्रज्वल तत्समम् ।
महाभैरवशब्दानु शिवासनपदादनु ॥ २३७ ॥
संविष्टे विकरालानु रूपधारिणि कीर्तयेत् ।
मेखलादिचतुष्कं च कूर्चमस्त्रद्वयं तथा ॥ २३८ ॥
स्वाहा च चरमे चोर्द्ध्वं सम्पुटं परिकीर्तितम् ।
रमा माया च सानुश्च भोगः कूटोऽप्यनाहतः ॥ २३९ ॥
ततोऽनु डाकिनीहारौ संहिता मेखलाऽपि च ।
ततश्च योषिद्योगिन्यौ पुनः सिद्धिकरालि च ॥ २४० ॥
शेषेऽस्त्रं ह्लींकूर्चरावयोगिन्यः प्रेत एव च ।

काली ततोऽङ्कुशं चापि शाकिनी वनिता तथा॥ २४१ ॥
रमा चण्डश्च कालश्च विद्युन्नागस्तथैव च ।
स्वाहान्ते ....

उत्तराम्नायस्थ देवियों के मन्त्र—हे प्रिये! अब उत्तराम्नायस्थ देवियों को सुनो । जिसमें पहली देवी भयानक गुह्यकाली है । उसमें पहले सम्पुट बतला रहा हूँ फिर अधर और उत्तर को विस्तार से कहूँगा । मेधा राव तार लज्जा इसके बाद दण्ड आदि पाँच (= ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं) राका मेष शिल्प राग उसके बाद विवत्स आदि दो फिर सामयिककूट वार्णिककूट भैरवकूट गह्वरकूट मन्त्रकूट हे प्रिये! फिर क्रमश: पञ्चम बीज महाकल्पस्थायी बीज शाम्भव बीज 'वज्रवर्म जगदावृत्तिक' उसके बाद 'ब्रह्मकपाल' के पश्चात् 'जय जीव ज्वल' और 'प्रज्वल' को दो-दो बार फिर 'महाभैरव' शब्द के बाद 'शिवासन' पद के पश्चात् 'संविष्टे' 'विकराल' के बाद 'रूपधारिणि' कहना चाहिये । मेखला आदि चार कूर्च, दो अस्त्र तथा 'स्वाहा' (यह प्रमुख मन्त्र है)। इस प्रकार अन्त में और ऊपर अर्थात् पहले सम्पुट कहा गया । रमा माया सानु भोग बीज अनाहत कूट इसके पश्चात् डाकिनी हार संहिता मेखला फिर योषित् योगिनी के पश्चात् 'सिद्धिकरालि' अन्त में अस्त्र (यह प्रथम मन्त्र है) । ह्लीं कूर्च राव योगिनी प्रेत काली फिर अङ्कुश शाकिनी वनिता रमा चण्ड काल विद्युत् नाग फिर अन्त में 'स्वाहा' (यह द्वितीय मन्त्र है) ॥ २३३-२४१- ॥

.........डाकिनी चापि फेत्कारी हार एव च॥ २४२ ॥
तारो माया च संविच्च चण्डयोगेश्वरीत्यपि ।
ततः काली च रावश्च नमः शेषे नियोजयेत् ॥ २४३ ॥
कमला भौवनेशी च चैतन्यं शक्तिरेव च ।
आदित्यनादक्षेत्राणि पाशादनु कला तथा ॥ २४४ ॥
सुबन्ता राजदेवी च राजलक्ष्मीरपि प्रिये ।
भैरवी चापि मारीचमैधमायारमास्तथा ॥ २४५ ॥
वेदादिमायाकमलाः प्रलयः प्रेत एव च ।
तारलज्जाकूर्चरावास्ततो राज्यप्रदे इति ॥ २४६ ॥
डाकिनी चापि फेत्कारी उग्रचण्डे ततो वदेत् ।
रणमर्दिनि सङ्कीर्त्य रुड्रावौ योगिनी वधूः ॥ २४७ ॥
सदा रक्ष द्वयं त्वं मां कालांदित्यौ ततः परम् ।
ततो मृत्युहरे प्रोच्य नमः स्वाहा नियोजयेत् ॥ २४८ ॥
वेदादिमायाहृन्मन्त्रास्ततः परमभीषणे ।
कूर्चयुग्मं करङ्कार्णाद् वदेत् कङ्कालमालिनि ॥ २४९ ॥
शाकिनीद्वयतः कात्यायनिशब्दं विनिर्दिशेत् ।
व्याघ्रचर्मावृतकटि कालीयुग्मं ततो वदेत् ॥ २५० ॥

श्मशानचारिणि प्रोच्य नृत्य नृत्य ततः परम् ।
गाय युग्मं हस युगं हूं हूंकारानु नादिनि ॥ २५१ ॥
उक्त्वाऽङ्कुशयुगं देवि शववाहिनि कीर्तयेत् ।
मां रक्ष युगलं चापि फट्युगं क्रोधयोर्द्वयम् ॥ २५२ ॥
हृच्छीर्षे तदनु ज्ञेये ....

डाकिनी फेत्कारी हार तार माया संवित् 'चण्डयोगेश्वरि' के पश्चात् काली राव और अन्त में 'नम:' जोड़ना चाहिये (यह तृतीय मन्त्र है) । कमला भौवनेशी चैतन्य शक्ति आदित्य नाद क्षेत्र पाश के बाद कला तथा सुप्प्रत्ययान्त 'राजदेवी' और 'राजलक्ष्मी' के पश्चात् हे प्रिये! 'भैरवी' भी (सुप्प्रत्ययान्त होना चाहिये) । मारीच मेधा माया रमा वेदादि माया कमला प्रलय प्रेत तार लज्जा कूर्च राव उसके बाद 'राज्यप्रदे' फिर डाकिनी फेत्कारी फिर 'उग्रचण्डे' कहना चाहिये । 'रणमर्दिनि' कहकर रोष राव योगिनी वधू फिर 'सदा' 'रक्ष' को दो बार 'त्वं मां' के बाद काल आदित्य उसके अनन्तर 'मृत्युहरे' कहकर 'नम: स्वाहा' जोड़ना चाहिये (यह चतुर्थ मन्त्र है) । वेदादि माया हृन्मन्त्र तत्पश्चात् 'परमभीषणे' फिर दो कूर्च के पश्चात् 'करङ्क' वर्ण के बाद 'कङ्कालमालिनि' तदनु दो शाकिनी के बाद 'कात्यायनि' शब्द का निर्देश करना चाहिये । 'व्याघ्रचर्मावृतकटि' के बाद दो 'कालि' कहना चाहिये । 'श्मशानचारिणि' कहकर 'नृत्य नृत्य' तत: परं 'गाय' को दो बार 'हस' को दो बार 'हूं हूङ्कार' के बाद 'नादिनि' का उच्चारण कर हे देवि! दो अङ्कुश 'शववाहिनि' का कीर्त्तन करना चाहिये । 'मां' 'रक्ष' को दो बार 'फट्' को दो बार दो क्रोध उसके बाद हृदय और शिर जानना चाहिये (यह पञ्चम मन्त्र है) ॥ २४२-२५२ ॥

.....................वाग्भवाः पञ्च तत्परे ।
कामकूर्चरमामुक्तास्ततो महिषमर्दिनि ॥ २५३ ॥
एको नित्यः पञ्च मैधास्तारः कुम्भक एव च।
प्रकृतिश्च तथा घ्राणस्ततो भगवतीति च ॥ २५४ ॥
मर्यादादिश्च संहारकूटस्तदनु भामिनि ।
हिरण्यगर्भकूटं च चण्डहुङ्कारशब्दतः ॥ २५५ ॥
कापालिनीति प्रवदेज्जय रङ्केश्वरीति च ।
ततोऽनु हृच्छिरो मन्त्रो मैधमायारमास्तथा ॥ २५६ ॥
प्रलयः कुलिकं चापि तथेर्ष्या धारणाऽपि च ।
घ्राणो दण्डादित्रयं च संहारानाख्यकूटकौ ॥ २५७ ॥
शिवशक्तिपदस्यान्ते दद्यात् समरसेति च ।
चण्डकापालेश्वरि च कूर्चो हृन्मन्त्रसंयुतः ॥ २५८ ॥
बीजानि त्रीणि पुरतः एतस्यैवादिमानि हि ।
आदित्यकूटं तदनु ऋवर्णे (?) युगलं ततः ॥ २५९ ॥

महासुवर्णपदतः कूटेश्वरि समालिखेत् ।
आदित्यकूटादारभ्य चत्वारि सुरवन्दिते ॥ २६० ॥
आद्यानि विपरीतानि हृच्छीर्षे तदनन्तरम् ।

पाँच वाग्भव उसके पश्चात् काम कूर्च रमा मुक्ता फिर 'महिषमर्दिनि' के बाद एक नित्य पाँच मेधा तार कुम्भक प्रकृति तथा घ्राण इसके पश्चात् 'भगवति' तथा मर्यादा बीज हे भामिनि! उसके बाद संहारकूट उसके बाद हिरण्यगर्भकूट फिर 'चण्डहुङ्कार' शब्द के पश्चात् 'कापालिनि' कहना चाहिये । 'जय रङ्केश्वरि' के पश्चात् हृदय और शिर मन्त्र (यह षष्ठ मन्त्र है) । मेधा माया रमा, प्रलय कुलिक ईर्ष्या, धारणा घ्राण दण्ड आदि तीन बीज संहारकूट और अनाख्याकूट 'शिवशक्ति' पद के अन्त में 'समरसा' (का सम्बोधन) 'चण्डकापालेश्वरि' कूर्च और हृन्मन्त्र (यह सप्तम मन्त्र है) । पहले इसी के प्रथम तीन बीज (= ऐं ह्रीं श्रीं) आदित्यकूट उसके पश्चात् दो 'ॠ' वर्ण फिर 'महासुवर्ण' पद के बाद 'कूटेश्वरि' लिखना चाहिये । हे सुरवन्दिते! अदित्यकूट से लेकर चार कूट और फिर आद्य (तीन बीज) विपरीत क्रम से कहने के बाद हृदय और शिर कहना चाहिये (यह अष्टम मन्त्र है) ॥ २५३-२६१- ॥

तारमैधरमामायाशाकिनीप्रेतकालिकाः ॥ २६१ ॥
रण्डा नाडी हंससूक्तं कपिलो वर्ण एव च ।
दशैतान् पुरतः प्रोच्य जय वागीश्वरीरयेत् ॥ २६२ ॥
ज्ञानं प्रकटय द्वन्द्वं बुद्धिं मे देहि युग्मकम् ।
देविका तटिनी चापि हेमकूटमतः परम् ॥ २६३ ॥
ज्ञानकूटं वाग्भवश्च योगिनीरावमन्मथाः ।
कूर्चोऽस्त्रयुगलं शीर्षं प्रणवः सृणिकालिके ॥ २६४ ॥
रावचण्डौ योगिनी च खेचरी कूर्च एव च ।
फेत्कारीचपलाकालरात्रिमायाभुजङ्गमाः ॥ २६५ ॥
महारोषखगाधीशौ बीजानीमानि षोडश ।
चामुण्डे ज्वलयुग्मं च हिलियुग्मं किलिद्वयम् ॥ २६६ ॥
मम शत्रूनिति प्रोच्य त्रासय द्वितयं वदेत् ।
मारय द्वितयं चापि हनद्वन्द्वं पचद्वयम् ॥ २६७ ॥
भक्षय द्वितयं प्रोच्य कालीयुग्मं त्रपायुगम् ।
क्रोधद्वितयमस्त्रस्य द्वितयं शिर एव च ॥ २६८ ॥
मायानाकुलकूर्चास्त्राण्यतः परमुदीरयेत् ।
तारश्च कमला माया सारस्वतमतः परम् ॥ २६९ ॥
वज्रवैरोचनीये च कूर्चद्वन्द्वास्त्रमस्तकाः ।

तार मेधा रमा माया शाकिनी प्रेत काली बीज रण्डा सूत्र नाडीसूक्त हंससूक्त कपिल वर्ण इन दश को पहले कहकर 'जय वागीश्वरि' कहना चाहिये । 'ज्ञानं' के

बाद 'प्रकटय' को दो बार 'बुद्धिं मे' 'देहि' को दो बार, देविका नदी इसके बाद हेमकूट फिर ज्ञानकूट वाग्भवबीज योगिनी राव काम कूर्च दो अस्त्र एक शिर (यह नवम मन्त्र है) । प्राण सृणि कालिका राव चण्ड योगिनी खेचरी कूर्च फेत्कारी चपला कालरात्रि माया भुजङ्गम महाक्रोध गारुड—इन सोलह बीजों को कहने के बाद 'चामुण्डे' फिर दो 'ज्वल' दो 'हिलि' दो 'किलि' 'मम शत्रून्' कहकर 'त्रासय' को दो बार कहना चाहिये । 'मारय' 'हन' 'पच' 'भक्षय' (इन चार) को दो-दो बार कहकर दो काली बीज दो लज्जाबीज दो क्रोध दो अस्त्र और एक शिर (यह दशम मन्त्र है) । माया नाकुल कूर्च अस्त्र इसके बाद तार कमला माया सारस्वत बीज इसके पश्चात् 'वज्रवैरोचनीये' फिर दो कूर्च अस्त्र और शिर (यह एकादश मन्त्र है) ॥ २६२-२७० ॥

पञ्च सारस्वतानुक्त्वा त्रीणि कूर्चानि तत्परम् ॥ २७० ॥
हूं हूंकारपदाद् घोरनादवित्रासित प्रिये ।
जगत्त्रये समाभाष्य त्रपात्रितयमुद्धरेत् ॥ २७१ ॥
प्रसारितायुतभुजे महावेगप्रधाविते ।
त्रिकाम्या: पदविन्यासत्रासितेति प्रकीर्तयेत् ॥ २७२ ॥
तत: सकलपाताले कमलात्रितयं तत: ।
ततो व्यापकशब्दानु शिवदूति समुद्धरेत् ॥ २७३ ॥
पुन: परमशब्दानु शिवपर्यङ्कशायिनि ।
योगिनी त्रितयस्यान्ते गलद्रुधिरशब्दत: ॥ २७४ ॥
मुण्डमालाधारिणि च घोरघोरतरेत्यपि ।
रूपिणि प्रोच्य रावाणां त्रितयं समुदीरयेत् ॥ २७५ ॥
ज्वालामालि पदात् पिङ्गजटाजूटे समालिखेत् ।
विसन्ध्यचिन्त्यमहिमबलशब्दादनु प्रिये ॥ २७६ ॥
प्रभावे त्रीणि वध्वाश्च दैत्यदानवशब्दत: ।
निकृन्तनीति सकलसुरकार्यानुसाधिके ॥ २७७ ॥
प्रणवत्रितयं चास्त्रं हृदा शीर्षेण चान्वितम् ।
वेदादिमायाकमलाकाममैधाङ्कुशा: क्रमात् ॥ २७८ ॥
कालीपाशक्रोधमहाक्रोधप्रासादनामका: ।
अमाताक्ष्यौं च फेत्कारी धनदाचण्डयोगिनी(?)॥ २७९ ॥
शाकिनी मेघचपले रतिप्रेतौ सभूतकौ ।
खेचरीकालनागाश्च बीजानां षट् च विंशति: ॥ २८० ॥

हे प्रिये! पाँच सारस्वत बीजों को कहकर तीन कूर्चों उसके बाद 'हूं हूङ्कार' पद के बाद 'घोरनादवित्रासितजगत्त्रये' कहकर तीन लज्जा बीजों को उद्धृत करना चाहिये । 'प्रसारितायुतभुजे महावेगप्रधाविते' तीन काम बीजों के बाद 'पदविन्यास-त्रासित' कहना चाहिये । इसके बाद 'सकलपाताले' के पश्चात् तीन लक्ष्मी बीज फिर

'व्यापक' शब्द के बाद 'शिवदूति' को उद्धृत करना चाहिये । पुनः 'परम' शब्द के बाद 'शिवपर्यंकशायिनि' कहने के बाद तीन योगिनी बीजों के अन्त में 'गलद्रुधिर' शब्द के पश्चात् 'मुण्डमालाधारिणि घोरघोरतररूपिणि' कहकर तीन राव बीजों को उद्धृत करना चाहिये । 'ज्वालामालि' पद के बाद 'पिङ्गजटाजूटे' लिखना चाहिये । सन्धिरहित 'अचिन्त्यमहिमबल' शब्द के बाद हे प्रिये! 'प्रभावे' कहना चाहिये । तीन वधू बीजों के बाद 'दैत्यदानव' शब्द के पश्चात् 'निकृन्तनि सकलसुरकार्य' के पश्चात् 'साधिके' फिर तीन प्रणव और अस्त्र को हृदय और शिरोमन्त्र से जोड़ना चाहिये (यह बारहवाँ मन्त्र है) । वेदादि माया कमला काम मेधा अङ्कुश फिर क्रमशः काली पाश क्रोध महाक्रोध प्रासाद नामक बीज फिर अमा तार्क्ष्य फेत्कारी धनदा चण्ड योगिनी शाकिनी मेघ चपला रति प्रेत भूत खेचरी काल और नाग—ये सब छब्बीस बीज हैं ॥ २७१-२८० ॥

कालसङ्कर्षिणि ततो रोषयुग्मं शिरोऽपि च ।
षट्त्रिंशदक्षरो मन्त्रः सिद्धिलक्ष्मीभिदाभिधः ॥ २८१ ॥
एताः षोडश वै देव्य उत्तराम्नायगोचराः ।
अथोपरितनं वच्मि सम्पुटं कमलानने ॥ २८२ ॥
मैधमायारमाकामयोगिन्यः शाकिनी तथा ।
दक्षिणाजम्भमन्दारचूडामणय एव च ॥ २८३ ॥
सन्तार(न)मौनवैकक्षसंवर्तकविवर्तकाः ।
पारीन्द्रश्च शुभंयुश्च जैमनादिचतुष्टयम् ॥ २८४ ॥
विराधश्च तुरीया च मोदको वासिता तथा ।
पञ्चविंशतिबीजेभ्यः आगच्छद्वितयं लिखेत् ॥ २८५ ॥
हस द्वयं वलायुगं महाकुणपभोजिनि ।
दृष्टिं निवेशययुगं मायाप्रासादगारुडाः ॥ २८६ ॥
नृसिंहप्रेतभैरव्यः कमलाशाकिनीरुषः ।
फट्त्रयं शिरसा युक्तं सर्वशेषे नियोजयेत् ॥ २८७ ॥
हृदये विन्यसेद्देवि मनूनेतान् समुच्चरन् ।

'कालसङ्कर्षिणि' इसके बाद दो क्रोध और शिर यह छत्तीस अक्षरों वाला सिद्धिलक्ष्मीभिद् नामक मन्त्र है (यह तेरहवाँ मन्त्र है) । इस प्रकार उत्तराम्नाय में ये सोलह देवियाँ[1] हैं । हे कमलानने! अब ऊपर के सम्पुट को कह रहा हूँ । मेधा माया रमा काम योगिनी शाकिनी दक्षिणा जम्भ मन्दार चूडामणि सन्तान मौन वैकक्ष संवर्त्तक

---

[1] सोलह देवियों के नाम निम्नलिखित हैं—गुह्यकाली, सिद्धिकराली, चण्डयोगेश्वरी, उग्रचण्डा, कात्यायनी, रङ्केश्वरी, चण्डकापालेश्वरी, महासुवर्णकूटेश्वरी, जयवागीश्वरी, चामुण्डा, व्यापकशिवदूती, कालसङ्कर्षिणी, महाकुणपभोजिनी, (?) । तीन देवियों के नाम अज्ञात हैं ।

विवर्तक पारीन्द्र शुभंयु जैमन आदि चार विराध तुरीया मोदक वासिता इन पचीस बीजों के बाद 'आगच्छ' को दो बार लिखना चाहिये । दो बार 'हस' दो 'वला' के बाद 'महाकुणपभोजिनि दृष्टिं' के पश्चात् 'निवेशय' को दो बार फिर माया प्रासाद गारुड नृसिंह प्रेत भैरवी कमला शाकिनी रोष तीन 'फट्' और सबके अन्त में शिर जोड़ना चाहिये । हे देवि! उपर्युक्त मन्त्रों का उच्चारण करता हुआ साधक हृदय में न्यास करे ॥ २८१-२८७- ॥

[ऊर्ध्वाम्नायस्थदेवीनां मन्त्राः]

अतः परं ब्रवीम्यन्या ऊर्ध्वाम्नायगताः शिवाः ॥ २८८ ॥
देवी यासामादिभूता महात्रिपुरसुन्दरी ।
मोक्षलक्ष्मीः सर्वशेषे शेषेऽन्यास्तु चतुर्दश ॥ २८९ ॥
आदावाकर्णय शिवे उपरिस्थितसम्पुटम् ।
प्रणवत्रितयं मैधत्रितयं कमलास्मरौ ॥ २९० ॥
नक्षत्रविद्युतौ माया गर्भदीपौ च योगिनी ।
जयद्वन्द्वं जीवयुगं मम सर्वमनोरथान् ॥ २९१ ॥
पूरय द्वितयं प्रोच्य वर्द्धय द्वितयं तथा ।
अधिष्ठानं कुरु युगं चर्पटादिचतुष्टयम् ॥ २९२ ॥
कामवध्वौ पृथुनदौ हृदस्त्रे शिर एव च ।
पराकूटं च चित्कूटं ज्येष्ठकूटं तथैव च ॥ २९३ ॥
मैधानङ्गौ तथा प्रेतस्तारमैधत्रपारमाः ।
कामो भगवति प्रोच्य महामोहिनि कीर्तयेत् ॥ २९४ ॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीति सकलानु सुरासुर ।
मोहिन्यनु च वै दद्यात् सकलं जनमित्यपि ॥ २९५ ॥
मोहय द्वितयं चापि वशीकुरु युगं तथा ।
कामाङ्गद्राविणि पदात् कामाङ्कुश इतीरयेत् ॥ २९६ ॥
वधूत्रयात् कामरमे ह्रीमैधप्रणवा अपि ।
चैतन्यकालीप्राणाश्च डाकिनीप्राणशाकिनीः ॥ २९७ ॥
मैधमायारमाश्चेति नव बीजानि पार्वति ।
त्रैलोक्यविजयायै च नमः स्वाहा नियोजयेत् ॥ २९८ ॥
शक्तिचूडाह्वयौ कूटौ फेत्कारी बीजमेव च ।
शाङ्करास्त्रं व्योमकूटं नादान्तकचतुष्टयम् ॥ २९९ ॥
दाक्षिकं सौमतं चापि नित्येऽनित्यपदादनु ।
भोगप्रिये समाभाष्य नित्योदितपदादनु ॥ ३०० ॥
वैभवे पाशमायाश्रीकामप्रेताश्च भैरवी ।
कूर्चो नमश्च स्वाहा च ....

ऊर्ध्वाम्नायस्थ देवियों के मन्त्र—इसके बाद मैं ऊर्ध्वाम्नाय में स्थित शिवाओं को बतला रहा हूँ जिनमें प्रथम देवी त्रिपुरसुन्दरी है । अन्तिम देवी मोक्षलक्ष्मी है । अवशिष्ट अन्य चौदह देवियाँ हैं । हे शिवे! पहले ऊपर स्थित सम्पुट को सुनो—तीन प्रणव तीन मेधा कमला काम नक्षत्र विद्युत् माया गर्भ दीप योगिनी के बाद 'जय' और 'जीव' को दो-दो बार 'मम सर्वमनोरथान्' के पश्चात् 'पूरय' को दो बार कहकर 'वर्द्धय' को दो बार कहना चाहिये । 'अधिष्ठानं' के पश्चात् 'कुरु' को दो बार फिर चर्पट आदि चार काम वधू पृथु नद हृदय अस्त्र और शिर (यह प्रथम मन्त्र है) । पराकूट चित्कूट ज्येष्ठकूट मेधा काम तथा प्रेत तार मेधा त्रपा रमा काम 'भगवति' कहकर 'महामोहिनि' कहना चाहिये । 'ब्रह्मविष्णुशिवादिसकल' के पश्चात् 'सुरासुरमोहिनि' के बाद 'सकलं जनम्' का कथन करना चाहिये । 'मोहय' को दो बार कहकर 'वशीकुरु' को दो बार 'कामाङ्गद्राविणि' पद के बाद 'कामाङ्कुशे' का उच्चारण करे । तीन वधू काम रमा ह्रीं मेधा प्रणव चैतन्य काली प्राण डाकिनी प्राण शाकिनी मेधा माया रमा हे पार्वति! इन नव बीजों को (कहना चाहिये)। फिर 'त्रैलोक्यविजयायै नमः स्वाहा' कहे (यह द्वितीय मन्त्र है) । शक्ति और चूडा नामक दो कूट फेत्कारी बीज शाङ्कर अस्त्र व्योमकूट नादान्तक आदि चार दाक्षिक सौमत 'नित्येऽनित्य' पद के बाद 'भोगप्रिये' कहकर 'नित्योदित' पद के पश्चात् 'वैभवे' फिर पाश माया श्री काम प्रेत भैरवी कूर्च 'नमः स्वाहा' (यह तीसरा मन्त्र है) ॥ २८८-३०१ ॥

.... तारा हृन्मन्त्र एव च॥ ३०१ ॥
कामेश्वरि पदात् कामाङ्कुशे कामप्रदायिके ।
भगवत्यनु वै नीलपताके च भगान्तिके ॥ ३०२ ॥
रतिहृन्मन्त्रोऽस्तु ते च परमान्ते तथैव च ।
गुह्ये कूर्चत्रयं चापि मदने मदनान्तक ॥ ३०३ ॥
देहे त्रैलोक्यमिति च विसन्ध्यावेशयेरयेत् ।
रोषास्त्रशीर्षण्यन्ते च वेदादिमैंध एव च ॥ ३०४ ॥
पाशो माया ब्रह्म चापि ततः परमशब्दतः ।
हंसेश्वरि समालिख्य कैवल्यं साधयापि च ॥ ३०५ ॥
स्वाहा तारश्च हृन्मन्त्रं प्रचण्डपदमन्वतः ।
घोरदावानलेत्युक्त्वा वासिन्यै तदनन्तरम् ॥ ३०६ ॥
त्रपारोषौ च समयविद्याकुलपदं ततः ।
पुनश्च तत्त्वधारिण्यै महामांसेत्यपि प्रिये ॥ ३०७ ॥
रुधिरेत्यपि संलिख्य प्रियायै बलिशब्दतः ।
योगिनी कामिनी कामो धूमावत्यै ततः परम् ॥ ३०८ ॥
सर्वज्ञतासिद्धिदायै रावास्त्रानलवल्लभा ।
तारपाशौ मैधमाये कमला तदनन्तरम् ॥ ३०९ ॥
शक्तिसौपर्णिकमलासने वर्णाभिधानतः ।

उच्चाटय द्वयं प्रोच्य विद्वेषय युगं वदेत् ॥ ३१० ॥
हूं फट् स्वाहा सर्वशेषे ....

तार हृन्मन्त्र 'कामेश्वरि' पद के बाद 'कामाङ्कुशे कामप्रदायिके भगवति' के पश्चात् 'नीलपताके भगान्तिके' रति हृदय मन्त्र 'परमगुह्ये' फिर तीन कूर्च 'मदने मदनान्तकदेहे त्रैलोक्यं' के बाद सन्धिरहित 'आवेशय' कहना चाहिये। रोष अस्त्र शिर (यह चतुर्थ मन्त्र है)। वेदादि मेधा पाश माया ब्रह्म के बाद 'परम' शब्द के पश्चात् 'हंसेश्वरि' लिखकर 'कैवल्यं साधय स्वाहा' (यह पञ्चम मन्त्र है)। 'प्रचण्ड' पद के बाद 'घोरदावानल' कहकर 'वासिन्यै' उसके बाद त्रपा रोष 'समयविद्याकुल' इसके अनन्तर 'कुलतत्त्वधारिणे महामांस' भी (कहना चाहिये)। हे प्रिये! 'रुधिर' लिखकर 'प्रियायै' के पहले 'बलि' कहना चाहिये। योगिनी कामिनी काम 'धूमावत्यै' उसके बाद 'सर्वज्ञातासिद्धिदायै' राव अस्त्र अनलवल्लभा कहना चाहिये (यह षष्ठ मन्त्र है)। तार पाश मेधा माया कमला उसके बाद 'शक्तिसौपर्णि कमलासने' वर्णों के बाद दो 'उच्चाटय' कहकर दो 'विद्वेषय' कहना चाहिये। सबके अन्त में 'हूं फट् स्वाहा' (यह सप्तम मन्त्र है) ॥ ३०२-३१० ॥

.... तारकामामृतान्यपि।
त्रपावधूकूर्चरावयोगिनीचण्डसंज्ञका: ॥ ३११ ॥
ततो ङेऽन्ता च कामाख्या फट् स्वाहा तदनन्तरम्।
चैतन्यपाशप्रासादा: प्रेतश्च शृणिरेव च ॥ ३१२ ॥
कालश्चतुरशीत्युक्त्वा कोटिमूर्तय ईरयेत्।
ततो ङेऽन्ता विश्वरूपा ब्रह्माण्डजठरा तथा ॥ ३१३ ॥
तार: स्वाहा च चैतन्यमायाप्राणाश्च डाकिनी।
प्राणरावौ मैधमायाकमलास्तदनन्तरम् ॥ ३१४ ॥
त्रैलोक्यविजया ङेऽन्ता नम: स्वाहा तथैव च।
वेदादिमायाहृन्मन्त्राश्चित्राम्बर इतीति च ॥ ३१५ ॥
चिन्तामणिं प्रकटय परमर्द्धिं दद द्वयम्।
गुह्याकूटं रत्नकूटं हेमकूटं तथैव च ॥ ३१६ ॥
योगिनी कामवनिता डाकिनी रुष एव च।
फट् स्वाहा तदनु ज्ञेया प्रणव: काम एव च ॥ ३१७ ॥
दण्ड: कामो ब्रह्मविद्ये जगद्ग्रसनशब्दत:।
शीले महाविद्य इति मायाकूर्चौ प्रभा तथा ॥ ३१८ ॥
विष्णुमाये समाभाष्य क्षोभय द्वितयं लिखेत्।
स्मराङ्कुशौ पाशप्रभे सर्वास्त्राणि ग्रसद्वयम् ॥ ३१९ ॥

तार काम अमृत त्रपा वधू कूर्च राव योगिनी चण्ड नामक बीज तत्पश्चात् ङेऽन्त 'कामाख्या' तदनन्तर 'फट् स्वाहा' यह (अष्टम मन्त्र है)। चैतन्य पाश प्रासाद प्रेत

शृणि काल 'चतुरशीति' कहकर 'कोटिमूर्तये' का कथन करना चाहिये । इसके बाद ङेऽन्त 'विश्वरूपा' तथा ब्रह्माण्डजठरा' तार और 'स्वाहा' (यह नवम मन्त्र है) । चैतन्य माया प्राण डाकिनी प्राण राव मेधा माया कमला उसके बाद चतुर्थ्यन्त 'त्रैलोक्यविजया' 'नमः स्वाहा' (यह दशम मन्त्र है) । वेदादि माया हृन्मन्त्र 'चित्राम्बरे' के बाद 'चिन्तामणि प्रकटय परमर्द्धि' के बाद 'दद' को दो बार फिर गुह्यकूट रत्नकूट हेमकूट योगिनी काम वनिता डाकिनी क्रोध 'फट् स्वाहा' (यह एकादश मन्त्र है) । प्रणव काम दण्ड काम के पश्चात् 'ब्रह्मविद्ये जगद्ग्रसन' शब्द के बाद 'शीले महाविद्ये' फिर माया कूर्च प्रभा 'विष्णुमाये' कहकर 'क्षोभय' को दो बार लिखना चाहिये । स्मर अङ्कुश पाश प्रभा 'सर्वास्त्राणि' फिर 'ग्रस' को दो बार कूर्च अस्त्र (यह बारहवाँ मन्त्र है) ॥ ३११-३१९ ॥

कूर्चास्त्रप्रणवानुक्त्वा प्रभा च बगलामुखि ।
सर्वशत्रून् समाभाष्य स्तम्भय द्वितयं ततः ॥ ३२० ॥
ततश्च ब्रह्मशिरसे ब्रह्मास्त्राय ततः परम् ।
रोषानङ्गप्रभातारा हृच्छीर्षे तदनन्तरम् ॥ ३२१ ॥
वेदादिर्भौवनेशी च कमलात्रितयं ततः ।
द्वौ कामौ निर्विकारस्थचिदानन्दपदं ततः ॥ ३२२ ॥
धनरूपा ततो ङेऽन्ता मोक्षलक्ष्मीस्तथैव च ।
ततोऽमितानन्तशक्तितत्त्वायै सन्धिवर्जितम् ॥ ३२३ ॥
द्वौ कामौ कमलास्तिस्रो माया प्रणव एव च ।
एवमूर्द्ध्वाम्नायसंस्थाः देव्यः षोडश कीर्तिताः ॥ ३२४ ॥
अधःसम्पुटमीशानि शृण्वतः परमुत्तमम् ।
चैतन्यकमलामायाप्रेता भैरव्यपि प्रिये ॥ ३२५ ॥
कै(सौ?)मतं दाक्षिको रागो भद्रिका कुशिकोऽव्ययः ।
मेरुत्रिकूटकैलासकूटानि तदनन्तरम् ॥ ३२६ ॥
ततश्च खेचरीमुद्रां पुनः प्रकटय द्वयम् ।
सान्निध्यमावेशय च योगिनीडाकिनी रुषः ॥ ३२७ ॥
अस्त्रत्रितयसंयुक्तस्ततो हृच्छीर्षयोर्मनुः ।
एवं षोडशदेवीनां मनुभिः सम्पुटीकृतैः ॥ ३२८ ॥
ब्रह्मरन्ध्रे न्यसेद्देवि सदोर्ध्वाम्नायगोचरैः ।

प्रणव प्रभा को कहकर 'बगलामुखि सर्वशत्रून्' कहकर 'स्तम्भय' को दो बार फिर 'ब्रह्मशिरसे ब्रह्मास्त्राय' उसके बाद क्रोध अनङ्ग प्रभा तार हृदय शिर (यह तेरहवाँ मन्त्र है) । वेदादि भुवनेश्वरी तीन कमला दो काम उसके बाद 'निर्विकारस्थचिदानन्द' पद फिर 'धनरूपा' तथा 'मोक्षलक्ष्मी' दोनों को चतुर्थ्यन्त (कहना चाहिये)। इसके

बाद सन्धिरहित 'अमितानन्तशक्तितत्त्वायै' दो काम तीन कमला माया और प्रणव (यह चौदहवाँ मन्त्र है) । इस प्रकार ऊर्ध्वाम्नाय में स्थित सोलह देवियाँ कही गयीं । हे ईशानि! अब उत्तम अध: सम्पुट को सुनो । हे प्रिये! चैतन्य कमला माया प्रेत भैरवी सौमत दाक्षिक राग भद्रिका कुशिक अव्यय मेरुकूट त्रिकूटकूट कैलासकूट उसके बाद 'खेचरीमुद्रां' फिर 'प्रकटय' को दो बार 'सान्निध्यमावेशय' योगिनी डाकिनी क्रोध इसके बाद तीन अस्त्र से संयुक्त हृन्मन्त्र और शिरोमन्त्र । हे देवि! इस प्रकार सोलह देवियों के मन्त्रों से सम्पुटित ऊर्ध्वाम्नाय से सम्बद्ध मन्त्रों से सदा न्यास करना चाहिये ॥ ३२०-३२८- ॥

[अधआम्नायस्थदेवीनां मन्त्रा:]

निशामयाध आम्नायगोचरान् देवतामनून् ॥ ३२९ ॥
यस्याद्यभूता विख्याता भीमादेवी भयानका ।
आदौ सम्पुटमाख्यास्ये ऊर्ध्वस्थं सुरवन्दिते ॥ ३३० ॥
चैतन्यपञ्चकं तारपञ्चकं पाशपञ्चकम् ।
मायालक्ष्मीकामवधूयोगिन्य: क्रोधरावकौ ॥ ३३१ ॥
डाकिनीप्रलयौ चापि फेत्कारी कृत्यया सह ।
स्फुर प्रस्फुर युग्मं च जय जीव तथैव च ॥ ३३२ ॥
विसन्ध्येह्येहि तदनु भगवत्यपि कीर्तयेत् ।
कापालिनि समुल्लिख्य करालि तदनन्तरम् ॥ ३३३ ॥
विरूपमपरान्तं च त्र्यस्त्र: विरतिरेव च ।
विमर्दशेखरौ चापि सर्वस्वं विप्रियं तत: ॥ ३३४ ॥
कुलमालावर्णमेरुकूटानि तदनन्तरम् ।
खण्डकेतू ततो बीजे सङ्गतिर्बर्ह एव च ॥ ३३५ ॥
कूर्चत्रयं फट्त्रयं च चरमे शिर एव च ।
मैधह्रीकमलाक्रोधकामरावाश्च योगिनी ॥ ३३६ ॥
वनिता चापि फेत्कारी भीमादेवि तत: परम् ।
भीमनादे समाभाष्य ततो भीमकरालि च ॥ ३३७ ॥
महाप्रलयचण्डानु लक्ष्मी: सिद्धेश्वरीरयेत् ।
बृहद्रथन्तरौ कूटौ ज्येष्ठकूटादनुस्मृतौ ॥ ३३८ ॥
महाघोरपदाद् घोरतरे भगवतीति च ।
भयहारिणि सङ्कीर्त्य द्विषतस्तदनन्तरम् ॥ ३३९ ॥
निर्मूलय द्वयं सन्धियुतं विद्रावय द्वयम् ।
उत्सादय युगं चापि महाराज्यपदादनु ॥ ३४० ॥
लक्ष्मीं वितर युग्मं च देहि द्वितयमेव च ।
दापय द्वयमस्यानु डाकिनीप्रलयावपि ॥ ३४१ ॥

अमाप्रेतौ पाशसृणी क्षेत्रपालस्ततोऽप्यनु ।
शक्तिप्रासादसंज्ञौ च जययुग्ममितोऽप्यनु ॥ ३४२ ॥
राक्षसक्षयकारिण्यनु तारह्रीरुषः क्रमात् ।
पिशाचिनीत्रयं सर्गरहितं फट्त्रयं तथा ॥ ३४३ ॥
नमः स्वाहा च तदनु ....

अधःआम्नायस्थ देवियों के मन्त्र—अधराम्नाय से सम्बद्ध देवतामन्त्रों को सुनो। जिसकी प्रथम देवी भयानक भीमा देवी है । हे सुरवन्दिते! पहले ऊर्ध्वस्थ सम्पुट को कहूँगा । पाँच चैतन्य पाँच तार पाँच पाश माया लक्ष्मी काम वधू योगिनी क्रोध राव डाकिनी प्रलय फेत्कारी कृत्या के साथ 'स्फुर प्रस्फुर जय जीव' इन चारों को दो-दो बार फिर सन्धिरहित 'एह्येहि' तत्पश्चात् 'भगवति' कहना चाहिये । 'कापालिनि' का उल्लेख कर तदनन्तर 'करालि' विरूप अपरान्त त्र्यस्र विरति विमर्द शेखर सर्वस्व विप्रिय के पश्चात् कुलकूट मालाकूट वर्णकूट मेरुकूट तदनन्तर खण्डबीज केतुबीज सङ्गति बर्ह तीन कूर्च तीन फट् और अन्त में शिर (यह प्रथम मन्त्र है) । मेधा ह्रीं कमला क्रोध काम राव योगिनी वनिता फेत्कारी 'भीमादेवि' उसके बाद 'भीमनादे' कहकर फिर 'भीमकरालि महाप्रलयचण्ड' के बाद 'लक्ष्मि सिद्धेश्वरि' कहना चाहिये। ज्येष्ठकूट के बाद बृहद्कूट रथन्तरकूट ततः 'महाघोर' पद के बाद 'घोरतरे भगवति भयहारिणि' कहकर 'द्विषतः' के अनन्तर सन्धियुक्त 'निर्मूलय' को दो बार, दो 'विद्रावय' उत्सादय को भी दो बार 'महाराज्य' पद के बाद 'लक्ष्मीं' कहकर 'वितर' को दो बार 'देहि' को दो बार 'दापय' को दो बार इसके पश्चात् डाकिनी प्रलय अमा प्रेत पाश श्रृणि क्षेत्रपाल उसके बाद शक्ति प्रासाद फिर 'जय' को दो बार इसके बाद 'राक्षसक्षयकारिणि' के पश्चात् तार ह्रीं क्रोध सन्धिरहित तीन पिशाचिनी तीन फट् 'नमः स्वाहा' (यह द्वितीय मन्त्र है) ॥ ३२९-३४३ ॥

.... मैधमाये ततः परम् ।
पाशाङ्कुशौ भैरवी च कामबीजं ततः परम् ॥ ३४४ ॥
महाभोगिपदाद् राजभूषणे परिकीर्तयेत् ।
सृष्टिस्थितिप्रलयतः कारिण्यपि समुद्धरेत् ॥ ३४५ ॥
हूं हूंकारपदान्नादभूरिदारिणि चेत्यपि ।
भगवत्यपि संलिख्य हाटकेश्वरि कीर्तयेत् ॥ ३४६ ॥
अमृतं शक्तिरानन्दौ रौद्रो लक्ष्मीरपि क्रमात् ।
चैतन्यचण्डशाकिन्यो डाकिनीबीजमन्वतः ॥ ३४७ ॥
मम शत्रूनिति प्रोच्य मारय द्वितयं लिखेत् ।
बन्धय द्वितयं चापि मर्दयद्वितयं तथा ॥ ३४८ ॥
ततः पातय युग्मं च चत्वार्येव क्रियापदम् ।
धनधान्यायुरारोग्यैश्वर्यं देहि युगं ततः ॥ ३४९ ॥

दापय द्वितयं चापि मानसं वज्रमेव च ।
कापालमथ भारुण्डा प्रासाद: पाश एव च ॥ ३५० ॥
अङ्कुशो मैधतारौ च हृदयं शिर एव च ।
तारमैधरमामायारोषरावाश्च डाकिनी ॥ ३५१ ॥
प्रलयश्चापि फेत्कारी संविच्चेति दश क्रमात् ।
तत: प्रविश संसारं महामाये च कीर्तयेत् ॥ ३५२ ॥
संविदस्त्रं ब्रह्मशिरोनिकृन्तनि समुद्धरेत् ।
पुनश्च विष्णुतनुता(तो?) निर्दलिन्यपि पार्वति ॥ ३५३ ॥
श्रद्धा च जम्भिके पेटी स्तम्भिके तदनन्तरम् ।
छिन्धि युग्मं भिन्धियुगं दहद्वन्द्वं मथ द्वयम् ॥ ३५४ ॥
युगलं पञ्च(पच?) वै पञ्चशवारूढे तत: परम्।
पञ्चागमप्रिये मन्त्रे न तु सम्बोधनं तव ॥ ३५५ ॥
पीयूषशक्तिखेचर्य: कमलाकामसंविद: ।
पञ्च पाशुपतास्त्रानु धारिण्यपि समुद्धरेत् ॥ ३५६ ॥
कूर्चत्रयं फट्युगं च शेषे चानलवल्लभा ।

मेधा माया उसके बाद पाश अङ्कुश भैरवी काम बीज उसके पश्चात् 'महाभोगिराजभूषणे' कहना चाहिये । 'सृष्टिस्थितिप्रलय' के बाद 'कारिणि' को उद्धृत करना चाहिये । 'हूं हूङ्कार' पद के अनन्तर 'नादभूरिदारिणि भगवति' का उल्लेख कर 'हाटकेश्वरि' कहना चाहिये । अमृत शक्ति आनन्द रौद्र लक्ष्मी चैतन्य चण्ड शाकिनी डाकिनी बीज के बाद 'मम शत्रून्' कहकर 'मारय' को दो बार लिखना चाहिये । 'बन्धय' और 'मर्दय' को दो-दो बार फिर 'पातय' को दो बार कहे । उपर्युक्त ये चारो क्रियापद हैं । 'धनधान्यायुरारोग्यैश्वर्यं' के अनन्तर 'देहि' को दो बार तत्पश्चात् 'दापय' को दो बार फिर मानस वज्र कापाल भारुण्डा प्रासाद पाश अङ्कुश मेधा तार हृदय और शिर (यह तृतीय मन्त्र है) । तार मेधा रमा माया क्रोध राव डाकिनी प्रलय फेत्कारी और संवित् ये दश बीज क्रम से कहने चाहिये । इसके बाद 'प्रविश संसारं महामाये' कहना चाहिये । संवित् अस्त्र 'ब्रह्मशिरोनिकृन्तनि' को उद्धृत करना चाहिये । पुन: 'विष्णुतनु' के पश्चात् हे पार्वति! 'निर्दलिनि' भी कहना चाहिये । श्रद्धा 'जम्भिके' पेटी (पेटकी) 'स्तम्भिके' उसके पश्चात् 'छिन्धि भिन्धि दह मथ' को दो-दो बार 'पच' को दो बार 'पञ्चशवारूढे'[1] उसके बाद पञ्चागमप्रिये'[2] दो मन्त्र (?) (अथवा मन्त्र में

---

[1] ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वर और सदाशिव ये पाँच जब प्रलय के समय मृत हो जाते हैं, तब इनके शरीर पञ्च शव कहे जाते हैं ।

[2] भगवान् सदाशिव के पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर एवं ऊर्ध्व मुखों से पृथक्-पृथक् आगमों का अवतरण हुआ । पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर एवं ऊर्ध्व मुखों के नाम क्रमश: तत्पुरुष अघोर सद्योजात वामदेव तथा ईशान हैं । इन मुखों से क्रमश: गारुड भैरव भूत वाम एवं शैवसिद्धान्त नाम के पाँच आगम प्रकट हुए ।

उक्त पञ्चाशवारूढे पञ्चागमप्रिये) कहना चाहिये । 'मन्त्रे' यह पद तुम्हारा सम्बोधन नहीं है । अमृत शक्ति खेचरी कमल काम संविद् के अनन्तर 'पञ्च पाशुपतास्त्रधारिणि' तीन कूर्च दो फट् अन्त में अग्निवल्लभा को उद्धृत करना चाहिये ॥ ३४४-३५६-॥

चैतन्यपाशवेदादिहृन्मन्त्राः प्रथमं स्मृताः ॥ ३५७ ॥
परमार्णाच्च शिवविपरीताचारकारिणि ।
भौवनेशीरमाकामयोगिनीवनिता अपि ॥ ३५८ ॥
महाघोरपदं प्रोच्य विकरालिनि कीर्तयेत् ।
तस्यानु खण्डार्द्धशिरोधारिणि प्रतिकीर्तयेत् ॥ ३५९ ॥
भगवत्युग्र इति च शाकिनी डाकिनी ततः ।
प्रलयश्चापि फेत्कारी कूटः संहारनामकः ॥ ३६० ॥
हैरण्यगर्भकूटश्च कूर्चास्त्रे शिर एव च ।
मायाकूर्चौ सर्वशेषे पाशलज्जारुषः स्मरः ॥ ३६१ ॥
कमलामैधताराश्च कालादित्यौ च शाकिनी ।
डाकिनीयोगतन्त्रा(न्द्रा)दिचतुष्टयमतः परम् ॥ ३६२ ॥
त्र्यस्त्रस्य व्यञ्ज(ज?)नस्यापि विमर्दस्यापि विस्मृतेः ।
सान्तस्य(?)त्रिदशेशानियुग्मं युग्मं युगं युगम् ॥ ३६३ ॥
ततश्च वज्रचण्डीति सम्बोधनमुदीर्यते ।
महाकापालिनि प्रोच्य मालिन्यपि कपालतः ॥ ३६४ ॥
कापालिकाचारपदात् प्रवर्तिनि पदं स्मृतम् ।
तुरुद्वन्द्वं धमयुगं गगनग्रासिनीत्यपि ॥ ३६५ ॥
महामाये महामायाप्रवर्तिन्यप्यतः परम् ।
सर्वैश्वर्यं देहि युगं दापय द्वितयं ततः ॥ ३६६ ॥
सर्वापदं समाभाष्य निर्मूलय युगं लिखेत् ।
ततोऽङ्कुशो गारुडश्च कालादित्यौ तथैव च ॥ ३६७ ॥
प्रेतश्च कुलिकश्चापि हूं फट् स्वाहा तथैव च ।

चैतन्य पाश वेदादि हृन्मन्त्र पहले कहे गये हैं । 'परम' वर्ण के बाद 'शिवविपरीताचारकारिणि' भौवनेशी रमा काम गोगिनी वनिता के बाद 'महाघोर' पद कहकर 'विकरालिनि' कहना चाहिये । उसके बाद 'खण्डार्धशिरोधारिणि' का उच्चारण करना चाहिये । 'भगवत्युग्रे' के बाद शाकिनी डाकिनी प्रलय फेत्कारी संहारकूट हैरण्यगर्भकूट कूर्च अस्त्र शिर सबके अन्त में माया कूर्च (यह पञ्चम मन्त्र है) । स्मर कमला मेधा तार काल आदित्य शाकिनी डाकिनी इसके बाद योगतन्द्रा आदि चार इसके बाद हे त्रिदशेशानि! त्र्यस्त्र व्यजन विमर्द विस्मृति बीजों के दो-दो इसके बाद 'वज्रचण्डि' यह सम्बोधन कहा जाता है । 'महाकापालिनि' कहकर 'कपालमालिनि' फिर 'कपालिकाचार' पद के बाद 'प्रवर्तिनि' पद कहा गया है । 'तुरु' और 'धम' का

दो-दो बार प्रयोगकर 'गगनग्रासिनि महामाये महामायाप्रवर्त्तिनि' के पश्चात् 'सर्वैश्वर्यं देहि दापय' को दो-दो बार कहना चाहिये । इसके बाद 'सर्वापदं' का कथन कर 'निर्मूलय' को दो बार लिखना चाहिये । तत्पश्चात् अङ्कुश गारुड काल आदित्य प्रेत कुलिक 'हूं फट् स्वाहा' (यह षष्ठ मन्त्र है) ॥ ३५७-३६७- ॥

सारस्वतश्च वेदादित्रपाकामरमारुषः ॥ ३६८ ॥
समाधानादि चत्वारि गुप्ताचारादि च त्रयम् ।
सम्प्रदायादिद्वयं च ततोऽपायो निकारयुक् ॥ ३६९ ॥
ज्वालेश्वरि समालिख्य ज्वलज्ज्वलनवासिनि ।
चिताङ्गारपदस्यान्ते हारिणि प्रतिकीर्तयेत् ॥ ३७० ॥
मृतचैलावृतार्णाच्च शरीरे समुदीरयेत् ।
ब्रह्मास्त्रं तदनु प्रोच्य वदेत् प्रकटयेति च ॥ ३७१ ॥
शत्रून् स्तम्भय युग्मं च मारय द्वितयं ततः ।
सर्वान् कामान् पूरय च द्वितयं प्रविभावयेत् ॥ ३७२ ॥
रोषत्रपास्त्रत्रितयं स्वाहा शेषे नियोजयेत् ।
पाशमायाङ्कुशप्रेतचण्डामृततडिद्रुषः ॥ ३७३ ॥
कुलेश्वरि समाभाष्य कौलिकानामितीरयेत् ।
ततश्च सर्वसमयलाभं कुरु विभावयेत् ॥ ३७४ ॥
द्विषदो जहि युग्मं च हृच्छीर्षे तदनन्तरम् ।

सारस्वत वेदादि त्रपा काम रमा रोष समाधान आदि चार गुप्त आचार आदि तीन सम्प्रदाय आदि दो इसके बाद निकारयुक्त अपाय 'ज्वालेश्वरि' को लिखकर 'ज्वलज्ज्वलनवासिनि चिताङ्गार' पद के अन्त में 'हारिणि' कहना चाहिये । 'मृतचैलावृत' वर्ण के बाद 'शरीरे' कहना चाहिये । 'ब्रह्मास्त्रं' के पश्चात् 'प्रकटय शत्रून्' कहकर 'स्तम्भय' 'मारय' को दो-दो बार फिर 'सर्वान् कामान्' के अनन्तर 'पूरय' की दो बार भावना करनी चाहिये । रोष त्रपा तीन अस्त्र के बाद अन्त में 'स्वाहा' जोड़ना चाहिये (यह सप्तम मन्त्र है) । पाश माया अङ्कुश प्रेत चण्ड अमृत तडित् रोष 'कुलेश्वरि' कहकर 'कौलिकानां' का उच्चारण करना चाहिये । इसके अनन्तर 'सर्वसमयलाभं कुरु' की भावना करनी चाहिये । 'द्विषदः' के पश्चात् 'जहि' को दो बार तदनन्तर हृदय और शिर (यह अष्टम मन्त्र है) ॥ ३६८-३७४- ॥

प्रणवो मैधमाये च मन्मथः कमलापि च ॥ ३७५ ॥
कालेश्वरि समाभाष्य ततः सर्वमुखाक्षरात् ।
स्तम्भिन्युक्त्वा सर्वजनमनोहरि समालिखेत् ॥ ३७६ ॥
पुनः सर्वजनं प्रोच्य वशङ्करि समादिशेत् ।
सर्वदुष्टार्णतो ब्रूयाद्देवि निर्दलिनीत्यपि ॥ ३७७ ॥
सर्वस्त्रीपुरुषाकर्षिण्युक्त्वा वै वन्दिशृङ्खलाम् ।

त्रोटय द्वितयं सर्वशत्रून् जम्भय युग्मकम् ॥ ३७८ ॥
द्विषानुच्चार्य तदनु द्वयं निर्दलयेरयेत् ।
सर्वान् स्तम्भय युग्मं च मोहनास्त्रेण कीर्तयेत् ॥ ३७९ ॥
द्वेषिणोऽनु युगं ब्रूयादुच्चाटयपदं प्रिये ।
सर्त्रवश्यं कुरुयुगं शीर्षं देहि द्वयं ततः ॥ ३८० ॥
सर्वं ङेऽन्ता कालरात्री कामिनी च गणेश्वरी ।
हृन्मन्त्रः सर्वशेषे च कालरात्रिमनुस्त्वयम् ॥ ३८१ ॥

प्रणव मेधा माया मन्मथ कमला 'कालेश्वरि' कहकर 'सर्वमुख' अक्षरों के बाद 'स्तम्भिनि' का कथन कर 'सर्वजनमनोहरि' का उल्लेख करना चाहिये । पुनः 'सर्वजन' कहकर 'वशङ्करि' का आदेश करना चाहिये । हे देवि! 'सर्वदुष्ट' वर्ण के बाद 'निर्दलिनि' कहना चाहिये । 'सर्वस्त्रीपुरुषाकर्षिणि' कहकर 'वन्दिशृङ्खलां' 'त्रोटय' को दो बार फिर 'सर्वशत्रून्' कहने के पश्चात् 'जम्भय' को दो बार कहना चाहिये । 'द्विषान्' कहकर उसके पश्चात् 'निर्दलयेत्' को दो बार कहना चाहिये । 'सर्वान् मोहनास्त्रेण' के पश्चात् 'स्तम्भय' को दो बार कहना चाहिये । 'द्वेषिणो' के पश्चात् हे प्रिये! 'उच्चाटय' पद को दो बार कहना चाहिये । 'सर्ववश्यं' के पश्चात् 'कुरु' को दो बार 'शीर्षं' के पश्चात् दो 'देहि' तत्पश्चात् 'कालरात्री कामिनी' एवं 'गणेश्वरी' इन सबको ङेऽन्त एवं सबके अन्त में हृन्मन्त्र कहना चाहिये । यह कालरात्रि का मन्त्र है (यह नवम मन्त्र है) ॥ ३७५-३८१ ॥

वेदादींस्त्रीन् पुरः प्रोच्य मैधांस्तावत ईरयेत् ।
मायारमाकामवधूयोगिनीरुष एव च ॥ ३८२ ॥
ततश्च रावडाकिन्यौ फेत्कारी प्रलयादिमा ।
षोडशैतानि बीजानि पुरतः समुदीरयेत् ॥ ३८३ ॥
ततो भ्रामरि सङ्कीर्त्य भ्रमराकारधारिणि ।
जयद्वयं जीवयुगं स्फुरप्रस्फुरमुक्तवत् ॥ ३८४ ॥
ज्वलप्रज्वलनाम्न्योश्च क्रिययोर्युगलं वदेत् ।
भीषणाकारधारिण्यनु ब्रूयाद् भगवतीत्यपि ॥ ३८५ ॥
प्रचण्डतरशब्दानु तथा दावानलादनु ।
वदेज्ज्वलितवक्त्रे च हूंहूङ्कारार्णतो वदेत् ॥ ३८६ ॥
नादिन्यनु च देवेशि खेचरीचक्रवासिनि ।
भूतिन्यादिद्वयं प्रोच्य मन्दादिद्वितयं वदेत् ॥ ३८७ ॥
संसृष्टिं च विकोशं च कैतवातङ्कमेव च ।
शुद्धनिद्रादियुगलं विवृत्तं संतलं तथा ॥ ३८८ ॥
आम्नायातीततत्त्वार्णवौ ततः परमीरयेत् ।
मम शत्रून् ग्रस द्वन्द्वं भक्षय द्वितयं तथा ॥ ३८९ ॥

साम्राज्यं देहि युगलं दापय द्वितयं तथा ।
एका रुडस्त्रत्रितयं हृच्छिरो मन्त्र एव ॥ ३९० ॥

पहले तीन वेदादि को उच्चारित कर उतने ही मेधा बीजों को कहना चाहिये । माया रमा काम वधू योगिनी क्रोध पुनः राव डाकिनी प्रलय के पश्चात् फेत्कारी ये सोलह बीज पहले कहे जाने चाहिये । ततः 'भ्रामरि' कहकर 'भ्रमराकारधारिणि' फिर दो 'जय' दो 'जीव' उसी प्रकार दो-दो 'स्फुर' 'प्रस्फुर', 'ज्वल' 'प्रज्वल' नामक दो क्रियाओं को दो-दो बार कहना चाहिये । 'भीषणाकारधारिणि' के पश्चात् 'भगवति' भी बोलना चाहिये । 'प्रचण्डतर' शब्द के पश्चात् 'दावानल' के अनन्तर 'ज्वलितवक्त्रे' कहना चाहिये । हे देवेशि! 'हूं हूङ्कार' वर्ण के बाद 'नादिनि' के पश्चात् 'खेचरीचक्रवासिनि' भूतिनी आदि दो बीजों का उच्चारण कर मन्द आदि दो बीजों को बोलना चाहिये । संसृष्टि विकोश कैतव आतङ्क शुद्ध निद्रा आदि दो विवृत्त संतल आम्नायातीत तत्त्वार्णव का कथन करना चाहिये । 'मम शत्रून्' के बाद 'ग्रस' को दो बार दो 'भक्षय' 'साम्राज्य' के पश्चात् दो 'देहि' दो 'दापय' एक क्रोध तीन अस्त्र हृत् तथा शिरो मन्त्र (यह दशम मन्त्र है) ॥ ३८२-३९० ॥

मैधतारौ त्रपारोषौ स्मरवध्वौ सुधारमे ।
ततः शाकिनिडाकिन्यौ योगिनी खेचरी तथा ॥ ३९१ ॥
ततः श्मशानशब्दानु कापालिनि विभावयेत् ।
पश्चात् सम्बोधनतया खेचरीसिद्धिदायिनी ॥ ३९२ ॥
परापरकुलार्णाच्च पूर्ववच्चक्रनायिका ।
अङ्कुशो गारुडः क्षेत्रपालश्चण्डश्च किन्नरः ॥ ३९३ ॥
त्रिशूलझङ्कारिणि च ततो डामरमुख्यपि ।
ततो वज्रशरीरे च ततोऽत्रिककुदौ प्रिये ॥ ३९४ ॥
नमः स्वाहा तदन्ते च तारसारस्वतौ ततः ।
योगिनी च वधूर्माया रावो लक्ष्मीश्च मन्मथः ॥ ३९५ ॥
डाकिनीरोषसंवर्तफेत्कार्यो विधृतिस्तथा ।
शेखरो विरतिश्चापि षोडशी विदिगिष्यते ॥ ३९६ ॥
भगवत्यनु वै रक्तदन्तिके परिकीर्तयेत् ।
लेलिहानार्णतो ब्रूयाद् रसनानु भयानके ॥ ३९७ ॥
ततो घोरतर प्रोच्य तथा दशनचर्चिते ।
ब्रह्माण्डे चण्डयोगेश्वरीशक्तिपदमन्वतः ॥ ३९८ ॥
ततश्च तत्त्वमहिते कुशिकोऽव्यय एव च ।
औपह्वरं नान्दिकं च घटी चैतानि पञ्च वै ॥ ३९९ ॥
प्रचण्डचण्डिनि ततो महामारीसहायिनि ।
चामुण्डायोगिनीशब्दाड्डाकिनी शाकिनीति च ॥ ४०० ॥

भैरवीमातृगणतो मध्यगे तदनन्तरम् ।
जय युग्मं कह द्वन्द्वं हस प्रहस पूर्ववत् ॥ ४०१ ॥
युगलं युगलं जृम्भ तुरु धाव तथैव च ।
श्मशानवासिनि प्रोच्य शववाहिनि कीर्तयेत् ॥ ४०२ ॥
नरमांसेति संलिख्य प्रवदेद् भोजिनीति च ।
कङ्कालमालिनिं ततो भद्रा च कुटिला तथा ॥ ४०३ ॥
चर्पटं मणिमाला च विजया चेति पञ्च ताः ।
ससन्धि हृद्द्वयं प्रोच्य शिरः प्रणव एव च ॥ ४०४ ॥
कूर्चत्रयं फट्त्रयं च सर्वशेषे शिरोऽपि च ।

मेधा तार त्रपा रोष समर वधू सुधा लक्ष्मी इसके पश्चात् शाकिनी डाकिनी योगिनी खेचरी फिर 'श्मशान' शब्द के बाद 'कापालिनि' कहना चाहिये । बाद में सम्बोधन के रूप में 'खेचरीसिद्धिदायिनी' 'परापरकुल' वर्णों के बाद 'चक्रनायिका' को पूर्ववत् अर्थात् सम्बोधन के रूप में कहना चाहिए । पुनः अङ्कुश गारुड क्षेत्रपाल चण्ड किन्नर के बाद 'त्रिशूलझङ्कारिणि' फिर 'डामरमुखि' पुनः 'वज्रशरीरे' तब हे प्रिये! अत्रि ककुद 'नमः स्वाहा' (यह एकादश मन्त्र है) । तार सारस्वत योगिनी वधू माया राव लक्ष्मी मन्मथ डाकिनी रोष संवर्त फेत्कारी विधृति शेखर विरति विदिक् ये सोलह बीज कहे जाते हैं। बाद में 'भगवति रक्तदन्तिके' का परिकीर्तन करना चाहिये । 'लेलिहान' वर्ण के बाद 'रसनाभयानके' फिर 'घोरतर' का उच्चारणकर 'दशनचर्चिते ब्रह्माण्डे चण्डयोगेश्वरीशक्ति' पद के बाद 'तत्त्वमहिते' फिर कुशिक अव्यय औपह्वर नान्दिक और घटी इन पाँच कूटों के पश्चात् 'प्रचण्डचण्डिनि' फिर 'महामारीसहायिनि चामुण्डायोगिनी' शब्द के बाद 'डाकिनीशाकिनीभैरवीमातृगणमध्यगे' तदनन्तर दो 'जय' दो 'कह' 'हस' और 'प्रहस' को पूर्ववत् दो-दो 'जृम्भ तुरु धाव' को भी उसी प्रकार (दो-दो) फिर 'श्मशानवासिनि' कहकर 'शववाहिनि' का उच्चारण करना चाहिये। 'नरमांस' लिखकर 'भोजिनि' कहना चाहिये । 'कङ्कालमालिनि' फिर भद्रा कुटिला चर्पट मणिमाला विजया इन पाँच को सन्धिसहित उच्चरित कर दो हृदय को कहकर शिर प्रणव तीन कूर्च तीन 'फट्' और सबके अन्त में शिर भी कहना चाहिये (यह बारहवाँ मन्त्र है) ॥ ३९१-४०४ ॥

वेदादी रौद्रकूटश्च ससन्धिर्हन्मनुस्ततः ॥ ४०५ ॥
चण्डातिचण्डे तदनु शाम्बरीति ततः परम् ।
कालवञ्चनि चोद्धृत्य महाङ्कुश इतीरयेत् ॥ ४०६ ॥
आग्नेयकूटं पातालनागवाहिनि कीर्तयेत् ।
गगनग्रासिनि प्रोच्य ब्रह्माण्डपदमन्वतः ॥ ४०७ ॥
निष्पेषिणि शिरोयुक्तमाकाशत्रितयं ततः ।
मनोरुषश्च तदनु त्रितयं त्रितयं प्रिये ॥ ४०८ ॥

तावन्त्यस्त्राणि तदनु हृदयं शिर एव च ।
आगमानां शिरो मैधत्रपे च कमला स्मर: ॥ ४०९ ॥
रोषयोगिन्यङ्गनाश्च शाकिनी डाकिनी तथा ।
प्रलयश्चापि फेत्कारी मेखलाहारसानव: ॥ ४१० ॥
भगवत्यपि सम्बोध्य महामारि तत: परम् ।
जगदुन्मूलिनि तत: पुन: कल्पान्तकारिणि ॥ ४११ ॥
शिरोनिविष्टानु वामचरणे तदनन्तरम् ।
दिगम्बरीति समयकुलचक्रपदादनु ॥ ४१२ ॥
चूडालये मां तदनु रक्ष त्राहि युगं युगम् ।
पालय द्वितयं चापि तत: परमुदीरयेत् ॥ ४१३ ॥
ततोऽनु प्रज्वलद्दावानलज्वालाजटाल च ।
जटिले त्रिगुणं चाथ चरमे च नम: शिर: ॥ ४१४ ॥

वेदादि रौद्रकूट सन्धिसहित हृन्मन्त्र उसके बाद 'चण्डातिचण्डे' उसके अनन्तर 'शाम्बरि' तत्पश्चात् 'कालवञ्चनि' को उद्धृत कर 'महाङ्कुशे' कहना चाहिये । आग्नेय-कूट 'पातालनागवाहिनि' का कथन करना चाहिये । 'गगनग्रासिनि' कहकर 'ब्रह्माण्ड' पद के अनन्तर 'निष्पेषिणि' शिर से युक्त तीन आकाश उसके बाद हे प्रिये! मनस (अर्थात् मानस) क्रोध को तीन-तीन बार उतने ही अस्त्र उसके बाद हृदय शिर (यह तेरहवाँ मन्त्र है) । आगमों का शिर मेधा त्रपा कमला स्मर रोष योगिनी अङ्गना शाकिनी डाकिनी प्रलय फेत्कारी मेखला हार सानु के बाद 'भगवति' ऐसा सम्बोधन कर फिर 'महामारि' तत्पश्चात् 'जगदुन्मूलिनि' पुन: 'कल्पान्तकारिणि शिरोनिविष्ट' के बाद 'वामचरणे' तदनन्तर 'दिगम्बरि' 'समयकुलचक्र' पद के बाद 'चूडालये मां' तदनु 'रक्ष' 'त्राहि' को दो-दो बार इसके बाद 'पालय' का दो बार कथन करना चाहिये । इससे परे 'प्रज्वलद्दावानलज्वालाजटालजटिले' त्रिगुण और अन्त में 'नम:' तथा शिर (यह चौदहवाँ मन्त्र है) ॥ ४०५-४१४ ॥

तारं मैधं च माया च कमला मन्मथो वधू: ।
योगिनीरावसंवर्तफेत्कार्य: कूर्च एव च ॥ ४१५ ॥
प्रासादक्षेत्रपालौ च विश्वं चामृतमेव च ।
विद्युन्नृसिंहौ प्रेतश्च कुलिको भैरवी तथा ॥ ४१६ ॥
काकिनीमेखलातुङ्गपतनानि च संहृति: ।
कैतवं च विवत्सं च तुरीयामोदकौ तत: ॥ ४१७ ॥
षट्चक्रं शक्तिसर्वस्वं शाम्भवं च परापरम् ।
ततो नु वज्रकवचं ततो ब्रह्मकपालकम् ॥ ४१८ ॥
महाकल्पस्थायिबीजं सर्वशेषे सुरेश्वरि ।
षट्त्रिंशदक्षरो मन्त्रो महोग्रतरनामक: ॥ ४१९ ॥

मध्ये नाम्नो मितो रक्तमुण्डेश्वर्या वरानने ।
तारश्च शाकिनी बीजं ततः सर्वाभयप्रदे ॥ ४२० ॥
सर्वसम्पत्प्रदे चापि सर्वसिद्धिं ददद्वयम् ।
मृत्युं हरयुगं चापि मृत्युञ्जयपदादनु ॥ ४२१ ॥
गृहिण्युक्त्वा नमः स्वाहा ....

तार मेधा माया कमला काम वधू योगिनी राव संवर्त फेत्कारी कूर्च प्रासाद क्षेत्रपाल विश्व अमृत विद्युत् नृसिंह प्रेत कुलिक भैरवी काकिनी मेखला तुङ्ग पतन संहृति (= संहार) कैतव विवत्स तुरीया मोदक षट्चक्र शक्तिसर्वस्व शाम्भव परापर उसके बाद वज्रकवच फिर ब्रह्माण्डकपाल और सबके अन्त में महाकल्पस्थायी बीज । हे सुरेश्वरि! महोग्रतर नामक यह मन्त्र छत्तीस अक्षरों वाला है । हे वरानने! मध्य में 'रक्तमुण्डेश्वरी' के नाम का सम्बोधन रहता है । फिर तार शाकिनी बीज पुन: 'सर्वाभयप्रदे सर्वसम्पत्प्रदे सर्वसिद्धिं' दो 'दद' 'मृत्युं' के बाद दो 'हर' फिर 'मृत्युञ्जय' पद के बाद 'गृहिणि' कहकर 'नम: स्वाहा' (यह पन्द्रहवाँ मन्त्र है) ॥ ४१५-४२१ ॥

.... मैधानां पञ्चकं ततः ।
पाशाङ्कुशौ प्रेतपरे खेचरीविद्युदंशवः ॥ ४२२ ॥
ततो महाडाकिनितो ङेऽन्ता सैव निगद्यते ।
निपीतबालनरतो रुधिरायै ततः परम् ॥ ४२३ ॥
त्वगस्थिचर्माक्षरतो वशिष्टायै तथैव च ।
महाश्मशानशब्दानु तथा धावनशब्दतः ॥ ४२४ ॥
पुनः प्रचलिताद् पिङ्गजटाभारा सङेऽन्तिका ।
नृसिंहरौरवौ प्रोच्य वैमलं विश्वमेव च ॥ ४२५ ॥
खेचर्यन्तानि वै पञ्च बीजानीमानि पार्वति ।
ममाभीष्टपदात् सिद्धिं देहि युग्मं ततः परम् ॥ ४२६ ॥
वितरद्वितयं चापि रोषरावौ तथैव च ।
डाकिनी काकिनी चैव शाकिनी राकिनी तथा ॥ ४२७ ॥
लाकिनी हाकिनी चेति क्रमेणैताः षडीरिताः ।
किन्तु सम्बुद्धिरेतासां न तु बीजानि पार्वति ॥ ४२८ ॥
नरेति प्रोच्य रुधिरं पिब युग्मं ततः परम् ।
महामांसं खादयुगं बीजान्यष्टौ ततः परम् ॥ ४२९ ॥
तारलक्ष्मीत्रपाकामरुद्रावा योगिनी वधूः ।
अस्त्रद्वयं शिरोयुक्तं सर्वशेषे सुरार्चिते ॥ ४३० ॥

पाँच मेधा फिर पाश अङ्कुश प्रेत परा खेचरी विद्युत् अंशु तत्पश्चात् 'महाडाकिनी' को ङेऽन्त कहा जाता है । 'निपीतबालनर' के बाद 'रुधिरायै' ततः परं 'त्वगस्थिचर्म' अक्षर के पश्चात् 'वशिष्टायै' 'महाश्मशान' शब्द के बाद 'धावन' शब्द के अनन्तर

पुन: 'प्रचलित' के पश्चात् हे पार्वति! ङेऽन्त 'पिङ्गजटाभारा' नृसिंह रौरव बीजों का उच्चारण कर वैमल विश्व खेचरी तक इन पाँच बीजों को (कहना चाहिये)। 'ममाभीष्ट' पद के पश्चात् 'सिद्धिं' फिर दो 'देहि' तत: परं दो 'वितर' रोष राव 'डाकिनी काकिनी शाकिनी राकिनी लाकिनी हाकिनी' इन छह को क्रमश: कहना चाहिये। किन्तु हे पार्वति! उक्त छह के सम्बोधन को न कि बीजों को उच्चरित करना चाहिये। 'नर' कहकर 'रुधिरं' के बाद दो 'पिब' 'महामांसं' के बाद दो 'खाद' उसके पश्चात् निम्नलिखित आठ बीज कहने चाहिये। वे हैं—तार लक्ष्मी त्रपा काम रोष राव योगिनी और वधू। हे सुरार्चिते! दो अस्त्र और अन्त में शिर (यह सोलहवाँ मन्त्र है) ॥ ४२२-४३० ॥

अथाधराख्यं कलय सम्पुटं पूर्णताकरम्।
प्रणव: पाशमैधौ च माया लक्ष्मी: स्मरो वधू: ॥ ४३१ ॥
योगिनीरावडाकिन्यस्त्रेताभोगायमेखला: ।
इन्द्रसंख्यानि चैतानि बीजानि पुरत: प्रिये ॥ ४३२ ॥
ततो भगवति प्रोच्य महाभोगाच्च भासुरे।
भीमशब्दानु विकरालिनि कालि तथैव च ॥ ४३३ ॥
उक्त्वा कापालिनि पुन: गुह्यकालि प्रकीर्तयेत्।
घोररावे समाभाष्य विकटदंष्ट्रे तथैव च ॥ ४३४ ॥
सम्मोहिनी शोषिणी च सम्बोधनतया तत: ।
करालवदने चेति मदनोन्मादिनीति च ॥ ४३५ ॥
ज्वालामालिनि संलिख्य शिवासन इतीरयेत्।
इमं बलिमिति स्थाप्य प्रयच्छामि सकृद् वदेत् ॥ ४३६ ॥
गृह्ण द्वन्द्वं खादयुगं मम सिद्धिमत: परम्।
कुरु युग्मं समुद्धृत्य मम शत्रूनथोच्चरेत् ॥ ४३७ ॥
नाशय क्लेदय तथा मारय ग्लापयेत्यपि।
स्तम्भयोच्चाटय हन विध्वंसय मथापि च ॥ ४३८ ॥
विद्रावय पच छिन्धि शोषय त्रासय त्रुट।
मोहयोन्मूलय तथा भस्मीकुरु तत: परम् ॥ ४३९ ॥
जृम्भय स्फोटय तथा भक्ष विभ्रामयेति च।
हर विक्षोभय तुरु दम मर्दय पातय ॥ ४४० ॥
अष्टाविंशतिकस्यास्य युगं युगमितीरयेत्।
तत उच्चारयेदेतत् सर्वभूतवशङ्करि ॥ ४४१ ॥
तत: सर्वजनेत्युक्त्वा मनोहारिणि चोद्धरेत्।
सर्वशत्रुक्षयं प्रोच्य करिशब्दं विनिर्दिशेत् ॥ ४४२ ॥
ज्वलयुग्मं प्रज्वलयुगं ब्रह्मरूपिणि चेत्यपि।
कालि कापालि सङ्कीर्त्य महाकापालि कीर्तयेत् ॥ ४४३ ॥

चामरादि द्वयं सम्भूतिद्वयं हारिणीं तथा ।
राज्यं मे समनूद्धृत्य देहि युग्ममथो वदेत् ॥ ४४४ ॥
किलियुग्माच्च चामुण्डा यमघण्टे हिलेर्युगात् ।
मम सर्वाभीष्टपदं ततो वै साधय द्वयम् ॥ ४४५ ॥
संहारिणि पदं दत्त्वा सम्मोहिनि पदं वदेत् ।
कुरुकुल्लेति सम्बोध्य ततः किरि युगं पठेत् ॥ ४४६ ॥
कूर्चयुग्मास्त्रयुग्मं च शिरोऽन्तो मनुरीरितः ।
अधस्तात् सम्पुटमिदं मतेनावेष्ट्य तान् मनून् ॥ ४४७ ॥
पादयोर्विन्यसेद्देवि अधआम्नायगोचरान् ।
इत्ययं कथितो देवि क्रमन्यासो महाफलः ॥ ४४८ ॥

अब पूर्णताकारी अधर नामक सम्पुट को सुनो । प्रणव पाश मेधा माया लक्ष्मी काम वधू योगिनी राव डाकिनी तथा त्रेता भोग अयमेखला हे प्रिये! इन्द्र संख्यक अर्थात् चौदह बीज पहले होते हैं । इसके बाद 'भगवति' कहकर 'महाभोगभासुरे' भीम शब्द के अनन्तर 'विकरालिनि कालि' कहकर 'कापालिनि' पुन: 'गुह्यकाली' का कथन करना चाहिये । 'घोररावे' का उल्लेख कर 'विकटदंष्ट्रे' तथा 'सम्मोहिनी शोषिणी' के सम्बोधन तत्पश्चात् 'करालवदने मदनोन्मादिनि ज्वालामालिनि' लिखकर 'शिवासने' का कथन करना चाहिये । 'इमं बलिं' की स्थापना कर 'प्रयच्छामि' को एक बार कहना चाहिये । 'गृहण' और 'खाद' को दो-दो बार फिर 'मम सिद्धिं' पुन: 'कुरु' को दो बार उद्धृतकर 'मम शत्रून्' का उच्चारण करना चाहिये । 'नाशय क्लेदय मारय ग्लापय स्तम्भय उच्चाटय हन विध्वंसय मथ विद्रावय पच छिन्धि शोषय त्रासय त्रुट मोहन उन्मूलय भस्मीकुरु' उसके पश्चात् 'जृम्भय स्फोटय भक्ष विभ्रामय हर विक्षोभय तुरु दम मर्दय पातय' इन अट्ठाईस शब्दों का दो-दो बार उल्लेख करना चाहिये । इसके अनन्तर 'सर्वभूतवशङ्करि सर्वजन' कहकर 'मनोहारिणि' को उद्धृत करना चाहिये । 'सर्वशत्रुक्षयं' का उच्चारणकर 'करि' शब्द का निर्देश करना चाहिये । 'ज्वल प्रज्वल' को दो-दो बार फिर 'ब्रह्मरूपिणि कालि कापालि' का सङ्कीर्तनकर 'महाकापालि' का उल्लेख करना चाहिये । चामर आदि दो-दो सम्भूति हारिण के अनन्तर 'राज्यं मे' को उद्धृत कर 'देहि' को दो बार कहना चाहिये । दो 'किलि' चामुण्डा बीज के पश्चात् 'यमघण्टे' दो 'हिलि' के बाद 'मम सर्वाभीष्टं' पद फिर दो 'साधय' पुन: 'संहारिणि' पद देकर 'सम्मोहिनि' पद का कथन करना चाहिये। 'कुरुकुल्ले' ऐसा सम्बोधन कर दो 'किरि' पढ़ना चाहिये । दो कूर्च दो अस्त्र और अन्त में शिर यह मन्त्र कहा गया । यह अध:सम्पुट है । हे देवि! उपर्युक्त अधराम्नायगोचर मन्त्रों को इस स्वीकृत मन्त्र से आवेष्टित कर दोनों पैरों में न्यास करना चाहिये । हे देवि! इस प्रकार महाफल वाला यह क्रमन्यास कहा गया ॥ ४३१-४४८ ॥

[क्रमन्यासस्य गोपनीयतमता]

षडाम्नायस्थदेवीनामेकत्रैव व्यवस्थिति: ।
तासां मनूनामपि च सहावस्थानमेकत: ॥ ४४९ ॥
अत एवायमधिको न्यासेभ्योऽन्येभ्य उत्तम: ।
कपालडामरमृते संहितां चान्तरा मम ॥ ४५० ॥
नान्यत्रैष प्रसिद्धोऽभूत् सत्यं सत्यं सुरेश्वरि ।

क्रमन्यास की महागोपनीयता—(चूँकि इस न्यास में) षडाम्नायस्थ देवियों की एक जगह स्थिति है और उनके मन्त्रों का भी एकत्र यहीं अवस्थान है अत: यह उत्तम न्यास अन्य न्यासों की अपेक्षा अधिक प्रशस्य है । हे सुरेश्वरि! कपाल डामर और इस महाकालसंहिता के अतिरिक्त इसका अन्यत्र उल्लेख नहीं है । यह सत्य है ॥ ४४९-४५०- ॥

[क्रमन्यासप्रसङ्गपतितषडाम्नायस्थदेवीनां यथाक्रमं प्राधान्यनिर्देश:]

पूर्वाम्नाये महागोप्ये सर्वाद्या त्रिपुरारिणा ॥ ४५१ ॥
उक्ता चण्डेश्वरी शेषे हयग्रीवेश्वरी तथा ।
एवं च दक्षिणाम्नाये मातङ्ग्याद्या प्रकीर्तिता ॥ ४५२ ॥
वाग्वादिनी च चरमे मध्ये चान्याश्चतुर्दश ।
तथैव पश्चिमाम्नाये कुब्जिका प्रथमा स्मृता ॥ ४५३ ॥
चर्चिका सर्वशेषे तु महाघोरतराकृति: ।
उत्तराभिध आम्नाये गुह्यकाली मतादिमा ॥ ४५४ ॥
कालसङ्कर्षिणी सर्वशेषस्था परिकीर्तिता ।
ऊर्ध्वाम्नायादिभूता वै ज्ञेया त्रिपुरसुन्दरी ॥ ४५५ ॥
मोक्षलक्ष्मी: सर्वशेषे इत्येतस्य विनिर्णय: ।
अध आम्नायादिभूता भीमादेवी भयङ्करा ॥ ४५६ ॥
शेषे महाडाकिनी च कथिता तव सुन्दरि ।
आम्नायानां च षण्णां वै समासादादिपश्चिमा ॥ ४५७ ॥
देव्यावुक्तेऽथ सर्वेषां मध्ये ज्ञेयाश्चतुर्दश ।

षडाम्नायस्थ देवियों का प्राधान्य—भगवान् शङ्कर ने महागोपनीय पूर्वाम्नाय में सबसे पहली चण्डेश्वरी तथा अन्त में हयग्रीवेश्वरी का उल्लेख किया है । इसी प्रकार दक्षिणाम्नाय में प्रथम मातङ्गी कही गयी है । अन्त में वाग्वादिनी और मध्य में अन्य चौदह देवियाँ है । उसी प्रकार पश्चिमाम्नाय में कुब्जिका पहली देवी कही गयी है और सबके अन्त में महाघोरतर आकार वाली चर्चिका का उल्लेख है । उत्तर नामक आम्नाय में प्रथम गुह्यकाली है और कालसङ्कर्षिणी सबके अन्त में कही गई है । ऊर्ध्व आम्नाय की आदिभूता त्रिपुरसुन्दरी है और अन्त में मोक्षलक्ष्मी है । अधराम्नाय में प्रथमदेवी भयङ्करी भीमादेवी है और हे सुन्दरि! अन्त में महाडाकिनी तुमको

बतलायी गयी । छहों आम्नायों में संक्षेप में आदि और अन्त की दो देवियाँ कही गयीं । सबके मध्य में चौदह-चौदह देवियाँ जाननी चाहिये ॥ ४५१-४५७- ॥

[क्रमन्यासमाहात्म्यकीर्तनम्]

तासामाविर्भावमध्ये यः क्रमः परिकीर्तितः ॥ ४५८ ॥
स हि क्रमः क्रमन्यासरूपत्वेन स्थितः प्रिये ।
मन्त्रे कामकलाकाल्या अयुताक्षरनामनि ॥ ४५९ ॥
मृत्युञ्जयप्राणनाम्ना विख्यातित्वमुपेयुषि ।
गुह्यकाल्यास्तथा बीजमालामय्यभिधावति ॥ ४६० ॥
प्रायशोऽमी अमूश्चापि मन्त्रा देव्यो व्यवस्थिताः।
कपालडामरे त्वस्य विशेषास्त्रिपुरारिणा ॥ ४६१ ॥
विविच्य कथिता देवि साधकानां हितेप्सया ।
ग्रन्थबाहुल्यभयतो न विशिष्य मयेरिता ॥ ४६२ ॥
उक्तः सूक्ष्मतया किन्तु क्रमन्यासप्रसङ्गतः ।
विराट्ध्यानक्रमन्यासावुभौ तुल्यौ मतौ मम ॥ ४६३ ॥
गुह्यायाः विश्वरूपत्वं तत्र तु प्रतिपादितम् ।
अत्र सर्वाम्नायसंस्थाः समन्त्रा देव्य ईरिताः ॥ ४६४ ॥
नैमित्तिकत्वं काम्यत्वमथ नित्यत्वमेव च ।
पुरैवैतस्य कथितं तव त्रिदशवन्दिते ॥ ४६५ ॥
किं बहूक्तेन देवेशि सत्यपूर्वं वदाम्यहम् ।
क्रमन्याससमो न्यासो न भूतो न भविष्यति ॥ ४६६ ॥
यदीच्छसि परां सिद्धिं सर्वैश्वर्यं च पार्वति ।
भक्तिं भुक्तिं तथा मुक्तिं क्रमन्यासं तदा कुरु ॥ ४६७ ॥

क्रमन्यास का माहात्म्य—उनके आविर्भाव में जो क्रम कहा गया हे प्रिये! वही क्रम क्रमन्यास के रूप में स्थित है । कामकलाकाली के अयुताक्षर नामक तथा गुह्यकाली के मृत्युञ्जयप्राण नाम से प्रख्यात बीजमाला नामक मन्त्रों में प्रायः ये मन्त्र और ये देवियाँ व्यवस्थित हैं । त्रिपुरारि ने साधकों के हित की इच्छा से कपालडामर-तन्त्र में इसका विस्तार से वर्णन किया है । हे देवि! ग्रन्थ-विस्तार के भय से मैंने विशेष रूप से नहीं बतलाया । मैंने इसे सूक्ष्म रूप में किन्तु क्रमन्यास के प्रसङ्ग से कहा है। मेरे मत में विराट् ध्यान और क्रमन्यास दोनों समान महत्त्व के हैं । वहाँ अर्थात् विराट् ध्यान में गुह्यकाली की विश्वरूपता प्रतिपादित है और यहाँ समस्त आम्नायों में स्थित देवियाँ स्वमन्त्रों के साथ कथित हैं । हे त्रिदशवन्दिते! इनका नित्यत्व नैमित्तिकत्व एवं काम्यत्व तुमको पहले ही बतला दिया गया । हे देवेशि! अधिक कहने से क्या लाभ? मैं सत्यपूर्वक कहता हूँ कि क्रमन्यास के समान न्यास न हुआ और न होगा । हे पार्वति! यदि तुम परम सिद्धि भोग मोक्ष भक्ति और समस्त

ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहती हो तो क्रमन्यास को करो ॥ ४५८-४६७ ॥

[धातुन्यासोद्देशः]

धातुन्यासमिदानीं त्वं समाकलय तत्त्वतः ।

[धातुपदस्य नानार्थवाचकत्वाभिधानम्]

नानाभिधायी शब्दोऽयं कथ्यते शास्त्रवेदिभिः ॥ ४६८ ॥
त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः ।
धातुशब्देन कथ्यन्ते वातपित्तकफास्त्रयः ॥ ४६९ ॥
धातवः पञ्च भूतानि तन्मात्राः धातवस्तथा ।
धातवः गैरिकादीनि धातवश्चेन्द्रियाणि हि ॥ ४७० ॥
शब्दानामादिभूतानि कथ्यन्ते धातवस्तथा ।
स्वभावो धातुरुदितः शरीराङ्गानि धातवः ॥ ४७१ ॥
धातवः स्वर्णरूप्यादि मलमूत्राणि धातवः ।
एवं स्थिते हि शब्दार्थे नानावस्त्वभिधायिनि ॥ ४७२ ॥
तन्वङ्गान्यत्र गृह्यन्ते नेतराणि वरानने ।
कर्ममीमांसकश्रेष्ठाः जैमिन्याद्याः महर्षयः ॥ ४७३ ॥
देवतां विग्रहवतीं नैवाङ्गीकुर्वते हि ते ।
किन्तु तां तां मन्त्रमयीं मन्यन्ते ज्ञानशालिनः ॥ ४७४ ॥
ये च श्रुतिपुराणादौ श्रूयन्तेऽस्त्रांशुबाहवः ।
प्रपञ्चत्वेन तत्प्रोक्तं न तु सत्यतया तथा ॥ ४७५ ॥
देव्यास्तु मन्त्ररूपाया नान्यान्यङ्गानि वर्ष्म वा ।
एवंब्रुवद्भिः शास्त्रज्ञैरेष न्यासोऽभिधीयते ॥ ४७६ ॥
बीजात्मकस्य मन्त्रस्य बीजान्येव हि केवलम् ।
अङ्गत्वेनोदितानीत्थं तानीदानीं शृणु प्रिये ॥ ४७७ ॥

धातुन्यास—अब तुम तत्त्वतः धातुन्यास को समझो । शास्त्रवेत्ता लोग इस 'धातु' शब्द को अनेक अर्थों का वाचक कहते हैं । त्वचा रक्त मांस मेदा अस्थि मज्जा और शुक्र (ये सात) धातुयें हैं । वात पित्त कफ ये तीन भी धातु शब्द से कहे जाते हैं । पञ्चभूत भी धातु हैं और उनकी पञ्च तन्मात्रायें भी धातु हैं । गैरिक (= गेरु) आदि (खनिज पदार्थ) भी धातु हैं और इन्द्रिय को भी धातु कहा जाता है । शब्दों के आदिभूत अर्थात् कारण भी धातु कहे जाते हैं । स्वभाव भी धातु कहा गया है और शरीर के अंग भी धातु हैं । सोना चाँदी आदि तथा मलमूत्र आदि भी धातु हैं । हे वरानने! इस प्रकार नाना वस्तु का कथन करने वाले शब्दार्थ के होने पर यहाँ शरीर के अङ्ग ही (धातु शब्द से) गृहीत होते हैं अन्य पदार्थ नहीं । जैमिनि आदि ऋषि कर्ममीमांसकों में श्रेष्ठ हैं । वे देवता को शरीरधारी नहीं मानते । किन्तु वे ज्ञानशाली तत्तद् देवता को मन्त्रस्वरूप मानते हैं । वेद पुराण आदि में जो देवताओं

के अस्त्र अंशु और भुजायें आदि सुनी जाती हैं वह उन देवताओं के प्रपञ्च का कथन है न कि वे सत्य हैं । मन्त्ररूपा देवी के भी न अन्य अङ्ग हैं न तेज । ऐसा कहने वाले शास्त्रज्ञों के द्वारा यह न्यास कहा जाता है । बीजात्मक मन्त्र के वीज ही इस प्रकार अङ्ग के रूप में कहे गये हैं । हे प्रिये! अब उनको सुनो ॥ ४६८-४७७ ॥

[धातुन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

धातुन्यासस्य हि ऋषिर्दृप्तबालाकिरुच्यते ।
सुप्रतिष्ठा तथा च्छन्दो देवता गुह्यकालिका ॥ ४७८ ॥
बीजं सारस्वतं बीजं पाशः शक्तिर्निगद्यते ।
कला कीलकमुद्दिष्टं तत्त्वं तारमुदीर्यते ॥ ४७९ ॥
निस्त्रैगुण्येन कैवल्यपदलाभे नियोगता ।

धातुन्यास के ऋषि आदि—धातुन्यास के ऋषि दृप्तबालाकि कहे जाते हैं । छन्द सुप्रतिष्ठा तथा देवता गुह्यकाली हैं । बीज सारस्वत और शक्ति पाश कहा जाता है । कला कीलक और तार तत्त्व कहा जाता है । इसका विनियोग त्रिगुणरहित होकर कैवल्यलाभ के लिये होता है ॥ ४७८-४७९ ॥

[धातुन्यासस्य सामान्योद्धारः]

अथ सामान्यमुद्धारं बोधयामि भवादृशीम् ॥ ४८० ॥
ततो विशेषं वक्ष्यामि येन व्यक्तो भविष्यति ।
बीजैरवयवाकारचेष्टावेशादिकल्पना ॥ ४८१ ॥
नान्या तनुर्मन्त्रमयी मर्त्यवद्गात्रसंस्थितिः ।
आदौ तु सप्त बीजानि कूटस्थानि वरानने ॥ ४८२ ॥
ततोऽनु संख्यास्तासूहो विधेयः सूक्ष्मया धिया ।
सभूपक्षगुणाब्धीषुरसनन्दावधिः सदा ॥ ४८३ ॥
स नित्यविग्रही ज्ञेयोऽक्षराक्षरचयैरिमाः ।
एत एवान्तरस्थायि वर्णनिर्णय उच्यते ॥ ४८४ ॥
सप्तवर्णात्मकः शब्दो ङसन्तस्तदनन्तरम् ।
पूर्ववच्च परिज्ञेया चतुर्वर्णी पुनः प्रिये ॥ ४८५ ॥
अन्वेतस्याङ्गसंस्थानं तच्च ङेऽन्तमुदीरितम् ।
ततो नु तत्तद्बीजानि समुच्चारणवन्ति हि ॥ ४८६ ॥
एतत् पूर्वं चलं ज्ञेयं तत्पूर्वौ निश्चलौ तथा ।
उच्चारितस्य बीजस्य नाम बीजपदस्य च ॥ ४८७ ॥
विग्रहो ङेऽन्तयुक् पूर्वं चलं शेषं स्थिरं मतम् ।
सप्त बीजानि हृच्छीर्षे मनुश्चैकदश प्रिये ॥ ४८८ ॥
वर्णाः कालव्यापिनस्ते समासोऽयमुदीरितः ।

धातुन्यास का सामान्य उद्धार—अब आप जैसी के लिये सामान्य उद्धार बतला रहा हूँ । इसके बाद विशेष उद्धार बतलाऊँगा जिससे (इस मन्त्र का स्वरूप) स्पष्ट हो जायगा । बीजों के द्वारा (देवी के) अवयव आकार चेष्टा वेशभूषा आदि की कल्पना की जाती है । देवी की कोई दूसरी मन्त्रमयी देह नहीं है । उसका शरीर मर्त्यलोकस्थ (मनुष्य आदि) के समान नहीं है । हे वरानने! पहले सात बीज कूटस्थ (अर्थात् सभी मन्त्रों में स्थित रहते हैं) । इसके बाद संख्यायें होती हैं । सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा उनमें ऊह करना चाहिये । वे संख्यायें भू = एक, पक्ष = दो, गुण = तीन, अब्धि = चार, इषु = पाँच, रस = छह और नन्द = सात तक होती हैं । इस (मन्त्र) को नित्यविग्रही समझना चाहिये । अक्षर-अक्षर के समूहों से ये (संख्यायें) होती हैं । यही अन्तर स्थायी वर्णनिर्णय कहा जाता है । शब्द सात वर्ण वाला है एवं उसके अन्त में ङस् विभक्ति होती है । हे प्रिये! पुनः चार वर्णों का समूह पूर्ववत् जानना चाहिये । इसके बाद अङ्गस्थान होता है और वह चतुर्थ्यन्त कहा गया है । इसके बाद उच्चारण वाले तत्तत् बीज होते हैं । उच्चारित बीज का और बीज पद का नाम और विग्रह ङेऽन्त होता है । पहला चल (अर्थात् परिवर्तनशील) और दूसरा स्थिर माना गया है। हे प्रिये! सात बीज हृदय और शिर इस प्रकार यह ग्यारह अक्षरों वाला होता है । वे वर्ण कालव्यापी होते हैं । इस प्रकार तुमको (धातुन्यास का) संक्षेप बतलाया गया ॥ ४८०-४८८- ॥

[धातुन्यासस्य विशेषेणोद्धारः]

अथ विस्तरमाख्यास्ये तत्रैवावहिता भव ॥ ४८९ ॥
आद्यस्तारः समुद्दिष्टो जन्ममृत्युभयापहः ।
रावयोरन्तरस्थानि चतुर्वर्णानि तत्परे ॥ ४९० ॥
मन्दाक्षयोगिनीकूर्चनारीसंज्ञानि तानि च ।
ततो मन्त्रमयार्णानु विग्रहपदमुच्यते ॥ ४९१ ॥
गुह्यकाली ततो ज्ञेया विभक्तिः पूर्वमीरिता ।

धातुन्यास का विशेष उद्धार—अब मैं विशेष उद्धार को बतलाऊँगा उसी में ध्यान लगाओ । पहला बीज जन्म-मृत्यु के भय को दूर करने वाला तार कहा गया है। उसके बाद दो राव (= फ्रें) के बीच चार वर्ण होते हैं । वे वर्ण हैं—मन्दाक्ष योगिनी कूर्च और स्त्री । इसके बाद 'मन्त्रमय' वर्ण फिर 'विग्रहा' पद कहा जाता है । इसके बाद 'गुह्यकाली' समझना चाहिये । इसकी भी विभक्ति (ङस्) पूर्व की भाँति कही गयी है ॥ ४८९-४९१- ॥

[धातुन्यासस्य न्यसनीयस्थाननिर्देशः]

अथाङ्गान्यवधेहि त्वं क्रमेण त्रिदशार्चिते ॥ ४९२ ॥
आदौ दक्षिणपादाङ्गुल्यग्रं सम्प्रतिपादितम् ।

ततो वामपदङ्गुल्यग्रं दक्षप्रपदस्ततः ॥ ४९३ ॥
एतस्यानु परिज्ञेयो वामप्रपद एव हि ।
दक्षपादाङ्गुलीमूलं वामपादाङ्गुलेरपि ॥ ४९४ ॥
दक्षगुल्फो वामगुल्फो दक्षपार्ष्णिस्तथेतरः ।
दक्षपादौ वामपादौ दक्षजङ्घा तथेतरा ॥ ४९५ ॥
दक्षजानु तथा वामजानु दक्षोरुरेव च ।
अष्टादशतमो ज्ञेयो वामोरुर्दक्षवंक्षणः ॥ ४९६ ॥
वामवंक्षणवस्ती च नाभिर्दक्षकटस्तथा ।
ततो वामकटः श्रोणी गुह्यं नितम्बमेव च ॥ ४९७ ॥
जघनं तत्परं दक्षककुन्दरमुदीर्यते ।
वामं ककुन्दरं दक्षस्फिग् वामस्फिगतः परम् ॥ ४९८ ॥
सौभगं जठरं चापि हृदयं तदनन्तरम् ।
दक्षपार्श्वं वामपार्श्वं पर्शुका तत्परा मता ॥ ४९९ ॥
दक्षस्तनो वामकुचो दक्षचूचुकमेव च ।
वामं चूचुकमस्यानु क्रोडं वक्षोऽपि तत्परम् ॥ ५०० ॥
दक्षांसमथ वामांसं दक्षकक्षस्तथेतरः ।
दक्षवामौ कूर्प्परौ द्वौ प्रगण्डौ तादृशौ ततः ॥ ५०१ ॥

धातुन्यास के न्यसनीय स्थान—हे त्रिदशार्चिते! अब तुम क्रम से न्यसनीय अङ्गों को जानो । पहले दक्षिणपादाङ्गुल्यग्र फिर वामपादाङ्गुल्यग्र तत्पश्चात् दक्षप्रपद इसके बाद वामप्रपद जानना चाहिये । दक्षपादाङ्गुलीमूल फिर वामपादाङ्गुलीमूल दक्षगुल्फ वामगुल्फ दक्षपार्ष्णि, वामपार्ष्णि फिर दक्षपाद वामपाद दक्षजङ्घा वामजङ्घा दक्षजानु वामजानु दक्षिण ऊरु को अठारहवाँ अङ्ग जानना चाहिये । वाम उरु दक्षिण वंक्षण वाम वंक्षण दोनों वस्तियाँ नाभि दक्षिण कटि वाम कटि श्रोणी गुह्य नितम्ब जघन उसके बाद दक्षिण ककुन्दर (= नितम्ब का गड्ढा) वाम ककुन्दर दक्षिण स्फिक् (= कूल्हा) वाम स्फिक् सौभग जठर हृदय दक्षपार्श्व वामपार्श्व उसके बाद पर्शुका (= पसली) दक्षिण स्तन वाम स्तन दक्षिण चूचुक वाम चूचुक इसके बाद क्रोड वक्ष दक्षअंश वामअंश दक्षिण कक्ष वाम कक्ष, दक्षिण कूर्पर वाम कूर्पर उसी प्रकार दोनों प्रगण्ड (को समझना चाहिए) ॥ ४९२-५०१ ॥

प्रकोष्ठौ पुनरीदृक्षौ मणिबन्धौ तथेदृशौ ।
दक्षहस्ताङ्गुलीमूलं वामहस्ताङ्गुलेरपि ॥ ५०२ ॥
अङ्गुल्यग्रं दक्षवामकरयोस्तदनन्तरम् ।
दक्षहस्तो वामहस्तो दक्षबाहुस्तथेतरः ॥ ५०३ ॥
दक्षं जत्रु तथा वामं कण्ठो ग्रीवा ततः परम् ।
घाटा पृष्ठं कशेरुश्च दक्षा हनुरथेतरा ॥ ५०४ ॥

चिबुकं चौष्ठमधरमूर्ध्वदन्तास्ततः परम् ।
अधोदन्ता दक्षसृक्कं वामसृक्कं तथैव च ॥ ५०५ ॥
दक्षगण्डो वामगण्डः कपोलो दक्षिणस्ततः ।
वामः कपोलस्तालुः स्याज्जिह्वा च तदनन्तरम् ॥ ५०६ ॥
दक्षनेत्रं वामनेत्रं दक्षपक्ष्म तथेतरत् ।
दक्षवामावथापाङ्गौ नासिका दक्षतारका ॥ ५०७ ॥
तारका च तथा वामा दृष्टिश्च तदनन्तरम् ।
दक्षकर्णो वामकर्णो दक्षभ्रूरप्यथेतरा ॥ ५०८ ॥
कूर्चो ललाटं तदनु ततो भ्रमरकं मतम् ।
केशपाशो मुखनखं रोमाणि तदनन्तरम् ॥ ५०९ ॥
कूर्परश्चापि कङ्कालः करोटिस्तदनन्तरम् ।
त्वग्रक्तं मांसमेदोऽस्थीनि मज्जाशुक्रमेव च ॥ ५१० ॥
वपा मन्या शिरा चैव मस्तिष्कं चान्त्रमेव च ।
गुल्मः स्नायुर्यकृच्चापि वाक् स्वभावस्तथैव च ॥ ५११ ॥
शरीरगतिचेष्टाश्च मुष्टिरञ्जलिरेव च ।
चपेटवेशौ मुकुटं चूडामणिरतः परम् ॥ ५१२ ॥
दक्षकुण्डलमस्यानु वामकुण्डलमेव च ।
हारश्च वलयश्चापि केयूरं कङ्कणं तथा ॥ ५१३ ॥
मुद्रिका मेखला हंसो नूपुरं तदनन्तरम् ।
क्षौमं च तिलकं चापि सिन्दूरं कज्जलं तथा ॥ ५१४ ॥
हास्यं तन्द्रा च शयनं निद्रा जागरणं ततः ।
क्षुधालस्ये तथा क्रोधः प्रसादोऽपि ततः परम् ॥ ५१५ ॥
सर्वशेषे परिज्ञेयः सर्वविग्रह एव च ।
इत्येषा तनुमर्यादा षष्टिरेकशताधिका ॥ ५१६ ॥
शास्त्रविद्भिः परिज्ञेया भगवत्या मनुष्यवत् ।

इसी प्रकार दोनों प्रकोष्ठ, उसी प्रकार दोनों मणिबन्ध, दक्षहस्ताङ्गुलिमूल, वामहस्ताङ्गुलिमूल पुनः दक्ष वाम दोनों हाथों के अङ्गुल्यग्र, दक्षहस्त वामहस्त, दक्ष बाहु वाम बाहु दक्ष जत्रु वाम जत्रु कण्ठ ग्रीवा उसके पश्चात् घाटा पृष्ठ कशेरू (= रीढ़ की हड्डी) दक्षिण हनु वाम हनु चिबुक ओष्ठ अधर ऊर्ध्वदन्त अधोदन्त दक्षसृक्क वामसृक्क दक्षगण्ड वामगण्ड दक्ष कपोल वाम कपोल तालु जिह्वा दक्षनेत्र वामनेत्र दक्ष पक्ष्म वाम पक्ष्म दक्ष तथा वाम अपाङ्ग नासिका दक्ष तारका वाम तारका दक्ष दृष्टि वाम दृष्टि दक्षकर्ण वामकर्ण दक्ष भ्रू वाम भ्रू कूर्च ललाट उसके बाद भ्रमरक (= मस्तक पर लटकने वाले बालों की लट) केशपाश मुख नख रोमावली कूर्पर कङ्काल करोटि (= खोपड़ी) त्वचा रक्त मांस मेदा अस्थि मज्जा शुक्र वपा मन्या

(= धमनियाँ) शिरायें मस्तिष्क आँत गुल्म स्नायु यकृत् वाक् स्वभाव शरीर गति चेष्टा मुट्ठी अञ्जलि चपेटा वेश मुकुट चूडामणि दक्षकुण्डल वामकुण्डल हार वलय केयूर कङ्कण मुद्रिका मेखला हंस नूपुर क्षौम (= रेशमी वस्त्र) तिलक सिन्दूर कज्जल हास्य तन्द्रा शयन निद्रा जागरण भूख आलस्य क्रोध प्रसन्नता और सबके अन्त में सम्पूर्ण शरीर जानना चाहिये। भगवति के शरीर की यह मर्यादा विद्वान् लोगों के द्वारा मनुष्य की भाँति एक-सौ साठ जाननी चाहिये ॥ ५०२-५१६ ॥

[धातुन्यासे व्यवह्रियमाणबीजनिर्देशः]

अथ क्रमेण बीजानि व्याहरामि वरानने ॥ ५१७ ॥
डाकिनी केकराक्षी च भ्रामरी तदनन्तरम्।
प्रचण्डाचण्डविश्वाश्च ततोऽङ्कुश उदीर्यते ॥ ५१८ ॥
पुनर्गारुडताटङ्कौ लीलामन्दौ ततः परम्।
सम्मोहः कमला कामः समाधिरपि तत्परः ॥ ५१९ ॥
प्रासादः पतनं चापि संहारः प्रेत एव च।
कुलिको दस्त्रशक्ती च वेदी चापि जरा ततः ॥ ५२० ॥
बलिः पृथुरनन्तश्च खेचरी च क्रमस्ततः।
नृसिंह आदेश इतश्छटा फैरवमेव च ॥ ५२१ ॥
कुमारी तदनु ज्ञेया मुक्ता चापि महा प्रिये।
मन्दारसिन्धुककुदः शैशुकः काकिनी तथा ॥ ५२२ ॥
नेमिरंशुश्च शुक्लश्च तथेष्टिव्रतसानवः।
अक्षो जम्भः षडङ्गं च मेखला कुण्डमेव च ॥ ५२३ ॥
कापालमथ गोकर्णो गर्भो दीप इतः परम्।
भोगसृष्टी ततो ज्ञेये औपह्वर इतः परम् ॥ ५२४ ॥
नान्दिकं चापि फेत्कारी त्रेता दुष्कृतमेव च।
पद्मं धन्यमथोल्लोप्यं कराली कृत्ययान्विता ॥ ५२५ ॥
कुशिकश्च व्ययश्चापि नक्षत्रं विद्युदेव च।
नाराचशूलसुरसाः समरस्तदनन्तरम् ॥ ५२६ ॥

धातुन्यास में व्यवह्रियमाण बीज—हे वरानने! अब बीजों को क्रम से बतला रहा हूँ। डाकिनी केकराक्षी भ्रामरी उसके बाद प्रचण्डा चण्डविश्वा इसके बाद अङ्कुश कहा जाता है। पुनः गारुड ताटङ्क लीला मन्द उसके बाद सम्मोह कमला काम समाधि उसके बाद प्रासाद पतन संहार प्रेत कुलिक दस्त्र शक्ति वेदी जरा बलि पृथु अनन्त खेचरी क्रम नृसिंह आदेश छटा फैरव कुमारी उसके बाद हे प्रिये! मुक्ता महा मन्दार सिन्धु ककुद शैशुक काकिनी नेमि अंशु शुक्ल इष्टि व्रत सानु अक्ष जम्भ षडङ्ग मेखला कुण्ड कापाल फिर गोकर्ण इसके बाद गर्भ दीप तत्पश्चात् भोग सृष्टि को जानना चाहिये। इसके बाद औपह्वर इसके परे नान्दिक फेत्कारी त्रेता दुष्कृत पद्म

धन्य उल्लोप्य कराली कृत्या कुशिक व्यय नक्षत्र विद्युत् नाराच शूल सुरस उसके बाद समर (को जानना चाहिए)॥ ५१७-५२६ ॥

महाक्रोधक्षेत्रपालावर्द्धचन्द्रः क्षुरप्रयुक् ।
रागः सारसधेनू च मारिषस्तदनु स्मृतः ॥ ५२७ ॥
नालीकश्च भुशुण्डी च नन्दा चापि जटा तथा ।
तन्द्रा च कुटिला चापि गदा प्रासश्च रञ्जिनी ॥ ५२८ ॥
घटीकालीहयग्रीवप्राणमेधाश्च चर्पटः ।
मणिमालावेशसोमचामुण्डा अपि तत्परे ॥ ५२९ ॥
कूष्माण्डी हारिणी चापि तथैवोत्कोचिनी ततः।
बुद्धिः क्षमा च विजया सम्भूतिस्तदनु स्मृता ॥ ५३० ॥
प्रतानं च विदिक् त्र्यस्त्रं विरतिर्मालया सह ।
नीलनागसमूहाश्च दाक्षिकः सौमतोऽपि च ॥ ५३१ ॥
नादान्तकश्चामरं च भारुण्डा तन्त्रमेव च ।
व्यजनं विधृतिश्चापि संसृष्टिश्च विकोशयुक् ॥ ५३२ ॥
ततो रसपुटो ज्ञेयो भवेत् संन्यास इत्यपि ।
मारण्डश्च विनादश्च मौनं चूलिकयान्वितम् ॥ ५३३ ॥
विमर्दशेखरौ चापि ततो विस्वरितं मतम् ।
व्युत्तरं च विरूपं स्यादपरान्तं च जैमनम् ॥ ५३४ ॥
संव्यानं च विवत्सश्च सम्भारः प्रकरी तथा ।
बिन्दुकश्चापि संयोगो वियोगश्च विजम्भयुक् ॥ ५३५ ॥
उत्तानषट्चक्रबीजे सर्वागम इतः परम् ।
आम्नायातीतमस्यानु ततस्तत्त्वार्णवो मतः ॥ ५३६ ॥
शक्तिसर्वस्वमथ च परापर इतोऽप्यनु ।
अस्यानु शाम्भवं ज्ञेयं चिच्छक्तिस्तदनन्तरम् ॥ ५३७ ॥
ततो ब्रह्मकपालाख्यं महाबीजं वरानने ।
महाकल्पस्थायिबीजं सर्वशेषे प्रकीर्तितम् ॥ ५३८ ॥
यावन्ति हि प्रतीकानि तावन्त्येतान्यपि प्रिये ।
ज्ञातव्यं सर्वमन्त्रस्य तत्तदङ्गमिति ध्रुवम् ॥ ५३९ ॥
ताररावत्रपा उक्त्वा योगिनीकूर्चकामिनीः ।
शाकिनी हार्दमन्त्रश्च शिरो मन्त्रस्ततः परम् ॥ ५४० ॥
इति न्या(व्या?)सेन कथितो
धातुन्यासो मया तव ।

महाक्रोध क्षेत्रपाल अर्धचन्द्र क्षुरप्र राग सारस धेनु उसके बाद मारिष कहा गया है। नालीक भुशुण्डी नन्दा जटा तन्द्रा कुटिला गदा प्रास रञ्जिनी घटी काली हयग्रीव

प्राण मेध चर्पट मणिमाला आवेश सोम चामुण्डा कूष्माण्डी हारिणी उसके पश्चात् उत्कोचिनी बुद्धि क्षमा विजया उसके बाद सम्भूति कही गयी है । प्रतान विदिक् त्र्यस्र माला के साथ विरति नील नाग समूह दाक्षिक सौमत नादान्तक चामर भारुण्डा तन्त्र व्यजन विधृति विकोश से युक्त संसृष्टि फिर रसपुट ज्ञेय होता है । संन्यास मारण्ड विनाद चूलिका से युक्त मौन विमर्द शेखर फिर विस्वरित कहा गया है । व्युत्तर विरूप अपरान्त जैमन संव्यान विवत्स सम्भार प्रकरी बिन्दुक संयोग विजम्भ से युक्त वियोग उत्तान बीज षट्चक्र बीज इसके बाद सर्वागम आम्नायातीत इसके पश्चात् तत्त्वार्णव कहा गया है । शक्तिसर्वस्व परापर इसके बाद शाम्भव तदनन्तर चिच्छक्ति होती है । हे वरानने! इसके बाद ब्रह्मकपाल नामक महाबीज सबके अन्त में महाकल्पस्थायी बीज कहा गया है । हे प्रिये! जितने प्रतीक हैं उतने ही इन बीजों को भी जानना चाहिये । समस्त मन्त्रों के तत्तत् अङ्ग के रूप में तार राव त्रपा योगिनी कूर्च कामिनी शाकिनी हृदयमन्त्र तथा शिरोमन्त्र को जानना चाहिये । इस प्रकार मैंने विस्तार से तुमको धातुन्यास बतलाया ॥ ५२७-५४०- ॥

[धातुन्यासस्याधिकारिमहात्म्ययोर्निर्देशः]

गृहस्थानां यतीनां च कौलाचारवतामपि ॥ ५४१ ॥
त्रयाणामेष वै नित्यस्त्रिपुरघ्नेन वर्णितः ।
यतः शरीरं सर्वेषामावश्यकतया मतम् ॥ ५४२ ॥
तदयं विग्रहाकारो न्यासेऽस्मिन्नभिधीयते ।
एनं न्यासमकृत्वा तु पूजा वै निष्फला भवेत् ॥ ५४३ ॥
मन्त्र एव विजानीयादस्य न्यासस्य भूमिकाः ।
सृष्ट्यादयो ये भासान्ता न्यासाः पञ्च पुरोदिताः ॥ ५४४ ॥
तैः पञ्चभिः समो ज्ञेयो धातुन्यासो वरानने ।

धातुन्यास के अधिकारी एवं उसका माहात्म्य—त्रिपुरारि ने गृहस्थों संन्यासियों तथा कौल मतावलम्बियों के लिये भी इसे नित्यकरणीय कहा है । चूँकि शरीर सबके लिये आवश्यक माना गया है इसलिये इस न्यास में वह विग्रहाकार कहा जाता है । इस न्यास को न करने पर गुह्यकाली की पूजा व्यर्थ हो जाती है । इस न्यास की भूमिकायें मन्त्र में ही जाननी चाहिये । सृष्टि से लेकर भासा तक जिन पाँच न्यासों का पहले वर्णन किया जा चुका है । हे वरानने! इस (एक) धातुन्यास को उन पाँच के बराबर जानना चाहिये ॥ ५४१-५४४- ॥

[तत्त्वन्यासोद्देशः]

तत्त्वन्यासमिदानीं त्वं समाकलय सादरा ॥ ५४५ ॥
अपरिग्रहिणामेष नित्यत्वेन प्रकाश्यते ।
काम्यत्वेन गृहस्थानां कौलानामप्युदीर्यते ॥ ५४६ ॥

नैमित्तिकत्वेन वापि कदाचिद् गृहिकौलयोः ।

तत्त्वन्यास—अब तुम आदर के साथ तत्त्वन्यास को सुनो । संन्यासियों के लिये यह नित्यकरणीय है । गृहस्थों एवं कौलों के लिये काम्य कहा जाता है । कभी-कभी गृहस्थों एवं कौलों के लिये यह नैमित्तिक भी माना जाता है ॥ ५४५-५४६- ॥

[तत्त्वन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देश:]

अस्य गर्ग ऋषिः प्रोक्तो गायत्रीच्छन्द इष्यते ॥ ५४७ ॥
वदेद्व्यष्टिसमष्ट्यर्णाद् रूपिणीति सुरेश्वरि ।
गुह्यकाली देवता च प्रणवो बीजमुच्यते ॥ ५४८ ॥
रावः शक्तिः कीलकं तु सारस्वतमुदीर्यते ।
विनियोगः समुद्दिष्टस्तत्त्वज्ञाने जपे तथा ॥ ५४९ ॥

तत्त्वन्यास के ऋषि आदि—इस तत्त्वन्यास के ऋषि गर्ग, छन्द गायत्री माना गया है । हे सुरेश्वरि! व्यष्टि और समष्टि वर्ण (अर्थात् गारूपिणी यरूपिणी त्रीरूपिणी तथा गायत्रीरूपिणी कहना चाहिये ?) । देवता गुह्यकाली और बीज प्रणव कहा जाता है । राव शक्ति तथा सारस्वत कीलक उच्चरित होता है । इसका विनियोग तत्त्वज्ञान तथा जप के विषय में कहा गया है ॥ ५४७-५४९ ॥

[तत्त्वन्यासस्य सामान्योद्धार:]

अथ प्राकृतमुद्धारं प्रथमं शृणु पार्वति ।
विशेषं श्रोष्यसि ततो भविष्यति ततः स्फुटः ॥ ५५० ॥
सप्त बीजानि पुरतः समस्तानामपि प्रिये ।
मन्त्राणां तानि च शिवे कूटस्थान्यखिलेष्वपि ॥ ५५१ ॥
ततो नामानि भिन्नानि षट्त्रिंशत्संख्यकानि हि ।
तैस्तत्त्वशब्दस्य सदा विग्रहो ङिविभक्तिकः ॥ ५५२ ॥
अस्थिराणि तु पूर्वाणि स्थिरं शेषगतं पदम् ।
सन्धिहीना स्थिराऽशेषकर्माणीति षडक्षरी ॥ ५५३ ॥
पुनः संशमयामीति तथैवापनयामि च ।
पूर्ववत् सुस्थिरा ज्ञेया सन्धियुक्ता नवाक्षरी ॥ ५५४ ॥
भवबन्धं चेति ततः स्थिरोह्या चतुरक्षरी ।
हित्वा तत्त्वार्णमेवं स्युरूनविंशतिसंमिताः ॥ ५५५ ॥
ततो नु पञ्च बीजानि भिन्नानि प्रतिमन्वपि ।
गुह्यकालि प्रसीदेति स्थिरा सप्ताक्षरी ततः ॥ ५५६ ॥
एकं कूटं ततो भिन्नं भिन्नं ज्ञेयं मनौ मनौ ।
अस्त्रमन्त्रः शिरो मन्त्रः सर्वशेषे तथोदितः ॥ ५५७ ॥
इति सामान्य उद्धार उदितस्तव पार्वति ।

तत्त्वन्यास का सामान्य उद्धार—हे पार्वति! अब पहले सामान्य उद्धार सुनो । बाद में विशेष उद्धार सुनोगी । तब यह न्यास स्पष्ट हो जायगा । हे प्रिये! समस्त मन्त्रों में पहले सात बीज सर्वत्र रहते हैं । हे शिवे! सभी मन्त्रों में वे कूटस्थ (अर्थात् कभी परिवर्तित नहीं होने वाले) हैं । इसके बाद छत्तीस की संख्या में भिन्न-भिन्न नाम होते हैं । उनके साथ 'तत्त्व' शब्द को सदा जोड़ना पड़ता है । वह भी 'ङि' विभक्ति वाला होता है । पूर्व शब्द (= पृथिवी आदि) अस्थिर (अर्थात् परिवर्तनशील) तथा परवर्त्ती 'तत्त्व' शब्द स्थिर होता है । 'अशेषकर्मणि' यह छह अक्षरों का समूह सन्धिरहित होकर स्थिर अर्थात् सर्वत्र एक जैसा रहता है । पुन: 'संशमयामि' तथा 'अपनयामि' इनको सन्धियुक्त बनाने पर नव अक्षरों का समूह (= संशमयाम्यपनयामि) सुस्थिर जानना चाहिये । फिर 'भवबन्धं' इस चतुरक्षरी को स्थिर जानना चाहिये । इस प्रकार '(पृथिवी) तत्त्वे' इत्यादि वर्णों को छोड़कर ('अशेष............ भवबन्ध' तक) उन्नीस वर्ण रहते हैं । इसके बाद प्रत्येक मन्त्र में भिन्न-भिन्न पाँच बीज होते हैं। तत्पश्चात् 'गुह्यकालि प्रसीद' यह सप्ताक्षरी स्थिरतया रहती है । फिर प्रत्येक मन्त्र में एक-एक कूट भिन्न-भिन्न रहते हैं । सबके अन्त में अस्त्रमन्त्र शिरोमन्त्र कहा जाता है। हे पार्वति! इस प्रकार तुमको सामान्य मन्त्रोद्धार बतलाया गया ॥ ५५०-५५७- ॥

[तत्त्वन्यासस्य विशेषोद्धार:]

विशेषमधुना वच्मि तत्त्वन्यासससमाश्रयम् ॥ ५५८ ॥
प्रणवो मैधमाये च योगिनी शाकिनी वधूः ।
रुड् चेतीमानि बीजानि सप्ताशेषे स्थिराणि हि ॥ ५५९ ॥
अथाकलय नाम त्वं भिन्नं तत्त्वपदादिगम् ।
पृथिव्यापस्ततस्तेजो वायुराकाशमेव च ॥ ५६० ॥
गन्धो रसश्च चक्षु(रूप)श्च स्पर्शः शब्दस्तथैव च ।
आत्मा ततो नु जीवात्मा परमात्मा ततः परम् ॥ ५६१ ॥
सत्ताऽविद्यानिवृत्तिश्च प्रकृतिर्महदेव च ।
अहङ्कारस्ततः पञ्चतन्मात्रं समुदाहृतम् ॥ ५६२ ॥
भावाभावप्रपञ्चौ द्वावद्वैतं वासना तथा ।
प्रज्ञा प्रमाणमिति च परमार्थ इतः परम् ॥ ५६३ ॥
आभासप्रतिबिम्बौ च सूक्ष्मं कैवल्यमेव च ।
चैतन्यं च प्रबोधश्च तथैवाशय एव च ॥ ५६४ ॥
आनन्दश्च ततो ब्रह्ममयः सर्वान्तिमो मतः ।
एवं शब्दाः परिज्ञेयाः षट्त्रिंशत्संख्यका इमे ॥ ५६५ ॥

तत्त्वन्यास का विशेष उद्धार—अब तत्त्वन्यासमिश्रित विशेष उद्धार कह रहा हूँ। प्रणव मेधा माया योगिनी शाकिनी वधू और क्रोध ये सात बीज सभी मन्त्रों में स्थिर

हैं। अब तुम 'तत्त्व' पद के आदि में रहने वाले भिन्न-भिन्न नाम को सुनो। पृथिवी जल तेज वायु और आकाश गन्ध रस रूप स्पर्श तथा शब्द, आत्मा जीवात्मा परमात्मा उसके पश्चात् सत्ता अविद्या निवृत्ति प्रकृति महत् अहङ्कार पञ्च तन्मात्रायें कही गयी हैं। भावप्रपञ्च अभावप्रपञ्च दोनों, अद्वैत वासना प्रज्ञा प्रमाण इसके बाद परमार्थ आभास प्रतिबिम्ब सूक्ष्म कैवल्य चैतन्य प्रबोध आशय आनन्द और सबसे अन्तिम ब्रह्ममय कहा गया है। इस प्रकार इन शब्दों को छत्तीस की संख्या में जानना चाहिये ॥ ५५८-५६५ ॥

विभिन्नरूपामधुना पञ्च बीजावलीं शृणु।
स्मरो रमा च प्रासादो डाकिनो प्रलयोऽपि च ॥ ५६६ ॥
पाशश्चण्डश्च विश्वश्च सुधासोमौ तथैव च।
कला दस्रश्च शक्तिश्च नक्षत्रं विद्युदेव च ॥ ५६७ ॥
खेचरीप्रेतभैरव्य: कालादित्यौ तत: परम्।
भारुण्डादिद्वयं काकिन्यादियुग्मं महारुषा ॥ ५६८ ॥
कुलिक: संहिता चञ्चुहाकिनीविधयस्तत:।
भ्रामरी च प्रचण्डा च केकराक्षी तत: परम् ॥ ५६९ ॥
महारात्रि: कालरात्रिरास्ययुग् बीजवर्जिता।
तृवृत्कापालगोकर्णसुरभीरौरवाणि च ॥ ५७० ॥
त्रेताद्यनाहतान्तं च विपरीतक्रमेण हि।
मन्दसम्मोहपतनयुगान्ता: संहृतिस्तत: ॥ ५७१ ॥
मन्दारसिन्धू च ततो महेन्द्रकरुणेश्वरा:।
कल्पो मुक्ता महा चैव क्रमश्च नरसिंहयुक् ॥ ५७२ ॥
जम्भ: षडङ्गककुदौ सङ्घात: सह शैशुक:।
वेणु: सानुरथाक्षश्च मौञ्जीसूत्रे तथैव च ॥ ५७३ ॥
ताटङ्कलीले धेनुश्च क्षोभणो मारिषस्तथा।
आयश्च मेखला कुण्डं गर्भो दीपस्तत: परम् ॥ ५७४ ॥
वीरवेतालभौवानि व्युग्र: पुटकमेव च।
गायत्री कर्णिका शृङ्खलौपह्वरकनान्दिकम् ॥ ५७५ ॥
विजया चापि सम्भूतिश्चतुरस्त्रादि च त्रयम्।
सुकृतं दुष्कृतं पद्मं कुशिको व्यय एव च ॥ ५७६ ॥
संहार्यादिद्वयं प्रोच्य चामरादित्रयं पठेत्।
कलामानी च सुरस: समरो रागसारसौ ॥ ५७७ ॥
औपदेयश्च मारण्डो विनादादित्रयं तत:।
भद्रिका च तथा तन्द्रा कुटिला रञ्जिनी घटी॥ ५७८ ॥

अब विभिन्न रूप वाली पाँच बीजावली को सुनो। स्मर रमा प्रासाद डाकिनी

और प्रलय, पाश चण्ड विश्व सुधा और सोम, कला दस्र शक्ति नक्षत्र और विद्युत्, खेचरी प्रेत भैरवी काल और आदित्य, भारुण्डा आदि दो काकिनी आदि दो तथा महाक्रोध, कुलिक संहिता चञ्चु हाकिनी तथा विधि, भ्रामरी प्रचण्डा केकराक्षी महारात्रि बीजरहित आस्ययुक्त कालरात्रि तृवृत् कापाल गोकर्ण सुरभि और रौरव, त्रेता से लेकर अनाहतपर्यन्त विपरीत क्रम से मन्द सम्मोह पतन युग संहृति, मन्दार सिन्धु फिर महेन्द्र करुण ईश्वर, कल्प मुक्ता महा क्रम नरसिंह, जम्भ षडङ्ग ककुद् सङ्घात शैशुक, वेणु सानु अक्ष मौञ्जी सूत्र, ताटङ्क लीला धेनु क्षोभग और मारिष, आय मेखला कुण्डगर्भ और उसके बाद दीप, वीर वेताल भाव व्युग्र और पुटक, गायत्री कर्णिका शृङ्खला औपह्वर और नान्दिक, विजया सम्भूति तथा चतुरस्र आदि तीन, सुकृत दुष्कृत पद्म कुशिक तथा व्यय, संहारी आदि दो का उच्चारणकर चामर आदि तीन का पाठ करना चाहिये । कलामानी (= कलावती) सुरस समर राग और सारस, औपदेय मारण्ड तथा विनाद आदि तीन, भद्रिका तन्द्रा कुटिला रञ्जिनी तथा घटी (कहना होता है)॥ ५६६-५७८ ॥

मौलिङ्गश्च विरूपश्चापरान्तादित्रयं ततः ।
सौरङ्गश्चर्पटादीनि चत्वारि तदनन्तरम् ॥ ५७९ ॥
विरसो दाक्षिकः सौमतप्रताने विदिक् तथा ।
विचित्रं धन्यमुल्लोप्यं विस्मृतिः पाणिगीतिका ॥ ५८० ॥
विटङ्को योगतन्त्रा(न्द्रा)दिचतुष्टयमतः परम् ।
विकराली च मौनं च चूलिकादित्रयं ततः ॥ ५८१ ॥
विज्ञेयं तदनु प्राज्ञैः कलावत्यादिपञ्चकम् ।
ध्वानो विवत्ससम्भावौ संयोगश्च वियोगयुक् ॥ ५८२ ॥
विराधश्च तुरीया च ग्रावादित्रितयं ततः ।
कौलविद्या तत्त्वहीनं शक्ति-
विद्यादिसप्तकम् (पञ्चकम्) ॥ ५८३ ॥
भगमालिन्यतः शक्तिसर्वस्वं च परापरम् ।
ततो नु वज्रकवचं कपालं ब्रह्मशब्दतः ॥ ५८४ ॥
शाम्भवं वेदवत्याद्यं चिच्छक्तिर्जगदावृत्तिः ।
महाकल्पस्थायिबीजं सर्वशेषे निगद्यते ॥ ५८५ ॥
अथ क्रमेण कूटानि सावधाना निशामय ।
भासासंहारावनाख्यं कूटं तदनु पार्वति ॥ ५८६ ॥
सत्त्वं रजस्तमः कूटं पुष्करादिद्वयं ततः ।
गुह्यकं चन्द्रकूटं च कूटद्वन्द्वं परा कला ॥ ५८७ ॥
उदयास्ताभिधौ कूटौ चण्डचक्रौ ततः परम् ।
मणिरत्ने तथा कूटे मन्थानः सेतुरेव च ॥ ५८८ ॥

समयो वर्णमन्त्रौ च कैलासो मेरुरेव च ।
वैराग्यैश्वर्यनिर्वाणमहानिर्वाणमेव च ॥ ५८९ ॥
अविद्या च विपाकश्च वासनाद्वैतमेव च ।
जीवात्मपरमात्मानावानन्दमय एव च ॥ ५९० ॥
इति षट्त्रिंशसंख्यानि कूटानि कथितानि ते ।

मौलिङ्ग विरूप उसके पश्चात् अपरान्त आदि तीन, तदनन्तर सौरङ्ग चर्पट आदि चार, विरस दाक्षिक सौमत प्रतान और विदिक्, विचित्र धन्य उल्लोप्य विस्मृति एवं पाणिगीतिका, विटङ्क फिर योगतन्द्रा आदि चार, उसके पश्चात् विकराली मौन तथा चूलिका आदि तीन, उसके बाद विद्वान् लोग कलावती आदि पाँच को जाने । ध्यान विवत्स सम्भाव संयोग और वियोग, विराध तुरीया तथा ग्रावा आदि तीन, कौल विद्या (?) तत्त्वहीन (?) शक्ति विद्या आदि पाँच, इसके पश्चात् भगमालिनी शक्ति सर्वस्व परापर वज्रकवच और ब्रह्मकपाल, शाम्भव वेदवती चिच्छक्ति जगदावृत्ति और सबके अन्त में महाकल्प स्थायी बीज कहा जाता है । अब सावधान होकर क्रम से कूटों को सुनो । भासा संहार अनाख्या ये तीन कूट उसके बाद हे पार्वति! सत्त्वकूट रजसकूट तमस्कूट पुष्कर आदि दो कूट गुह्यकूट चन्द्रकूट पराकूट कलाकूट उदयकूट अस्तकूट उसके बाद चण्डकूट चक्रकूट मणिकूट रत्नकूट फिर मन्थानकूट सेतुकूट समयकूट वर्णकूट मन्त्रकूट कैलासकूट मेरुकूट वैराग्यकूट ऐश्वर्यकूट निर्वाणकूट महानिर्वाणकूट अविद्याकूट विपाककूट वासनाकूट अद्वैतकूट जीवात्मकूट परमात्मकूट आनन्दमयकूट इस प्रकार तुमको छत्तीस कूट बतलाये गये ॥ ५६९-५९०- ॥

[तत्त्वन्यासस्य न्यसनीयस्थाननिर्देशः]

न्यसनीयस्थानमतो निशामय सुरेश्वरि ॥ ५९१ ॥
गुल्फौ जङ्घे तथा जानू तत उरू च वंक्षणौ ।
गुह्यं वस्तिश्च नाभिश्च जठरं पार्श्वयोर्युगम् ॥ ५९२ ॥
हृदयं च तथा स्कन्धौ जत्रुणी च शिरा तथा ।
हनू कपोलौ सृक्कणी च
तत ओष्ठोऽधरोऽपि च ॥ ५९३ ॥
ऊर्ध्वदन्ता अधोदन्ता गण्डौ नासापुटे तथा ।
नेत्रे कर्णौ भ्रुवौ चापि मणिबन्धौ सकूर्चकौ ॥ ५९४ ॥
भालः शिरः शिखा चैव दोः पदोर्व्यापकानि च ।
सर्वशारीरगं शेषे व्यापकं परिकीर्तितम् ॥ ५९५ ॥
उक्तस्तत्त्वन्यास इत्थं प्रपञ्चत्वेन बृंहितः ।
पञ्चमं पञ्चकं चापि गतमेतेन पार्वति ॥ ५९६ ॥
नैमित्तिकत्वं काम्यत्वमथ नित्यत्वमेव च ।
विविच्य तु विशेषेण पुरैव प्रतिपादितम् ॥ ५९७ ॥

तत्त्वन्यास के न्यसनीय स्थान—हे सुरेश्वरि! अब न्यास के योग्य स्थान को सुनो। दोनों गुल्फ दोनों जङ्घायें घुटने जाँघें दोनों वक्षण गुह्य वस्ति नाभि जठर दोनों पार्श्व हृदय दोनों कन्धे दोनों जत्रु शिरा दोनों हनू दोनों कपोल दोनों सृक्क, ओष्ठ अधर ऊर्ध्वदन्त अधोदन्त दोनों गण्ड दोनों नासापुट दोनों नेत्र दोनों कान भौंहें दोनों मणिबन्ध दोनों कूर्च ललाट शिर शिखा दोनों भुजाओं दोनों पैरों के व्यापक तथा अन्त में सम्पूर्ण शरीर का व्यापक कहा गया है। इस प्रकार उक्त तत्त्वन्यास विस्तार के साथ कहा गया। हे पार्वति! इससे पञ्चम पञ्चक भी गतार्थ हो गया। इस न्यास के नैमित्तिकत्व काम्यत्व और नित्यत्व का विशेष विवेचन कर पहले ही कर दिया गया है ॥ ५९१-५९७ ॥

[लघुषोढान्यासोदेश:]

इदानीं लघुषोढाख्यं महान्यासं निशामय ।
कठिनोद्धारमतुलं सर्वाघौघविनाशनम् ॥ ५९८ ॥
अङ्गी मुख्यो न्यास एकः षडङ्गान्यस्य पार्वति ।
अतो हि षोढाभिधया ख्यातो न्यासो महोदयः ॥ ५९९ ॥
नासाविष्टो मुमुक्षूणां भोगैहिकफलप्रदः ।
कर्तव्या गृहिणा नित्यं कौलाचारवतापि च ॥ ६०० ॥
एनां कुर्वन् स्ववामोरौ शक्तिं संस्थाप्य यत्नतः ।
कुर्वीत षोढां तेनैव सिद्धिः स्यान्नान्यथा भवेत् ॥ ६०१ ॥
स्वकीया परकीया वा शक्तिरावश्यकी प्रिये ।
स्त्रिया अप्येवमेव स्यादित्याचारो व्यवस्थितः ॥ ६०२ ॥
अत एव हि भिक्षूणां नाधिकारोऽत्र वर्तते ।
ते ईहमाना अपि वै पतन्ति वनितां शिवे ॥ ६०३ ॥
पूजाकाले येऽन्वहं तु कुर्वतेऽमुं फलार्थिनः ।
तेऽपि शक्तिं पुरःकृत्वा करिष्यन्ति न संशयः ॥ ६०४ ॥
ततस्तेषां फलं भावि नान्यथा वै कदाचन ।

लघु षोढान्यास—अब लघु षोढान्यास नामक महान्यास को सुनो। इस न्यास का उद्धार कठिन है। यह अतुल और सम्पूर्ण पापसमूह को नष्ट करने वाला है। हे पार्वति! मुख्य अङ्गी न्यास एक है। इसके छह अङ्ग हैं। इस कारण यह महोदय न्यास षोढा कहा गया है। यह मोक्षार्थियों का अभिप्रेत नहीं है; क्योंकि यह भोग एवं ऐहलौकिक फल देने वाला है। इसको गृहस्थ एवं कौलमार्गी लोगों को नित्य करना चाहिये। शक्ति अर्थात् स्त्री को अपनी बायीं गोद में बैठाकर इस न्यास को करना चाहिये। इसी से सिद्धि होती है अन्य प्रकार से नहीं। हे प्रिये! इसमें स्वकीया या परायी स्त्री आवश्यक होती है। स्त्री के लिये भी ऐसी ही आचार व्यवस्था है। इसीलिये इसके अनुष्ठान का अधिकार संन्यासियों को नहीं है। क्योंकि हे शिवे! वे

स्त्री की इच्छा करने मात्र से पतित हो जाते हैं । जो फलार्थी पूजाकाल में इसको प्रतिदिन करते हैं वे भी सन्देहरहित होकर स्त्री को सामने बैठाकर इस न्यास को करें तभी उनको फल का लाभ मिलता है; अन्यथा नहीं ॥ ५९८-६०४- ॥

[लघुषोढान्यासोद्धार:]

उद्धारं कलयेदानीमेतस्य सुरवन्दिते ॥ ६०५ ॥
प्राणायामं विधायादौ ध्यानं पूर्वोदितं तत: ।
षोढान्यासं प्रकुर्वीत सर्वकामार्थसिद्धये ॥ ६०६ ॥
आद्ये न्यासद्वये देवि सर्वत्रैव नवाङ्कुरी ।
विज्ञातव्या प्रतिमनु कालव्यापितया प्रिये ॥ ६०७ ॥
रक्तचर्माम्बरे स्थित्वा वामाङ्गन्यस्तशक्तिक: ।
द्वीपिचर्मनृमुण्डे वा षोढान्यासं समाचरेत् ॥ ६०८ ॥
साधक: सिद्धिमाप्नोति द्वितीय इव भैरव: ।
कालीकुलक्रमे षोढान्यासात् साक्षाच्छिवो भवेत् ॥ ६०९ ॥
सा नास्ति सिद्धिर्या न स्यात् त्रैलोक्ये सचराचरे ।

लघु षोढा न्यास का उद्धार—हे सुरवन्दिते! अब इसके उद्धार को जानो । पहले प्राणायाम करे फिर पूर्वोक्त ध्यान कर तत्पश्चात् समस्त कामना की सिद्धि के लिये षोढा न्यास को करना चाहिये । हे देवि! प्रथम दो (= उग्रमातृक्रम एवं कालीकुलक्रम) न्यासों में सर्वत्र प्रत्येक मन्त्र में कालव्यापी के रूप में नवाङ्कुरी (= नव बीजाक्षरों के समूह) को जानना चाहिये । साधक लालवस्त्र अथवा मृग आदि के चर्म पर बैठ कर बायीं गोद में स्त्री को बैठाकर अथवा गैंडा के चमड़े या नरमुण्ड पर (स्त्री को बैठाकर) षोढान्यास करना चाहिए । ऐसा करके साधक द्वितीय भैरव की भाँति सिद्धि प्राप्त करता है। कालीकुलक्रम में षोढान्यास करने से साधक साक्षात् शिव हो जाता है । चराचरयुक्त त्रैलोक्य में कोई ऐसी सिद्धि नहीं है जो साधक को न प्राप्त हो ॥ ६०५-६०९- ॥

[लघुषोढान्यासपरिचय:]

उग्रमातृक्रम: कालीकुलं पीठश्च योगिनी ॥ ६१० ॥
दैवतं मन्त्ररूपं च षोढान्यासो लघुस्त्वयम् ।
पञ्चक्रमाख्यो न्यासोऽयं सर्वागमसुगोपित: ॥ ६११ ॥
षण्णाममीषां न्यासानामृष्यादिस्तु पृथक् पृथक् ।
स्वमत्या न्यसनीयोऽयं कठिनामाकृतिं वहन् ॥ ६१२ ॥

लघु षोढान्यास का परिचय—उग्रमातृक्रम कालीकुलक्रम पीठक्रम योगिनीक्रम दैवतक्रम एवं मन्त्रक्रम यह लघु षोढान्यास है । पाँच क्रमों वाला यह न्यास समस्त आगमों में सुगोपित है । इन छह न्यासों के ऋषि आदि पृथक्-पृथक् हैं ।

साधक को अपनी बुद्धि के अनुसार कठोर रूप धारण करते हुए इस न्यास को करना चाहिये ॥ ६१०-६१२ ॥

[पञ्चक्रमषोढान्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

गुह्यकालीपञ्चक्रमषोढान्यासस्य पार्वति ।
सदाशिव ऋषिः प्रोक्तो बृहतीच्छन्द इष्यते ॥ ६१३ ॥
शिवशक्तिसमरसपदान्निर्वाणकारिका ।
श्रीगुह्यकाली देवता कौरजं बीजमुच्यते ॥ ६१४ ॥
मायाशक्तिर्डाकिनी च कीलकं परिपठ्यते ।
फेत्कारीतत्त्वमुदितं सर्वसिद्धिपदादनु ॥ ६१५ ॥
वदेत् साधनसिद्ध्यर्थे जपे च विनियोगता ।

पञ्चक्रम षोढान्यास के ऋषि आदि—हे पार्वति! गुह्यकाली के पञ्चक्रम षोढान्यास के ऋषि सदाशिव हैं । छन्द बृहती माना जाता है । देवता गुह्यकाली हैं जो कि शिवशक्ति सामरस्य पद के कारण निर्वाण देने वाली हैं । बीज कौरज, शक्ति माया, कीलक डाकिनी और तत्त्व फेत्कारी कहा जाता है । सर्वसिद्धिसाधन की सिद्धि के लिये जपार्थ इसका प्रयोग होता है ॥ ६१३-६१५- ॥

[उग्रमातृक्रमन्यासोद्धारः]

उग्रमातृक्रमोद्धारं तत्रादौ शृणु पार्वति ॥ ६१६ ॥
कराङ्गानां च हृदयाङ्गानामपि च युक्तितः ।
प्रकारः केवलो ह्यास्ते किमपि ह्यधिकं नहि ॥ ६१७ ॥
वक्ष्ये तत्रापि पुरतः कराङ्गन्यासमुत्तमम् ।
ततोऽपरं षडङ्गाख्यं न्यासं वक्ष्यामि शोभनम् ॥ ६१८ ॥
आदौ सर्वत्र योज्यानि नवबीजान्यनुक्रमात् ।
वेदादिशाकिनीमायायोगिनीकूर्चकामिनीः ॥ ६१९ ॥
रमास्मरौ डाकिनी च सर्वत्रैवादिसंस्थिताः ।
द्वाभ्यां द्वाभ्यां सवर्णाभ्यां स्वराभ्यां
पुटितात्मकम् (?का) ॥ ६२० ॥
योगेश्वरी सुबन्ता हि पूर्वोपपदसंयुता ।
अङ्गुष्ठादिक्रमेणैव न्यस्या मन्त्रैस्तदीयकैः ॥ ६२१ ॥
पूर्वोपपदमाख्यास्ये तत्र धेहि मनः प्रिये ।
महाचण्डश्च परमप्रचण्डस्तदनन्तरम् ॥ ६२२ ॥
नरमुण्डमहामारी महामाया ततः परम् ।
उन्मत्तचण्डोग्रसंज्ञौ कालरात्रिस्तथैव च ॥ ६२३ ॥
सर्वशेषे विश्वगे नादनिःश्रेणिसंयुता ।
करयोर्व्यापकत्वेन न्यसनीया वरानने ॥ ६२४ ॥

कराङ्गन्यास ईदृक्षः कथितस्तव यत्नतः ।
भिन्नं भिन्नं षडङ्गाख्यं हार्दादीनां ब्रुवेऽधुना ॥ ६२५ ॥

उग्रमातृका न्यास का उद्धार—हे पार्वति! उनमें से पहले उग्रमातृका क्रमोद्धार को सुनो । कराङ्गों एवं हृदयाङ्गों का केवल युक्ति के कारण भेद है । इसके अतिरिक्त कुछ नहीं । उनमें भी पहले उत्तम कराङ्गन्यास ही कहूँगा । इसके पश्चात् दूसरा शोभन षडङ्गन्यास बतलाऊँगा । पहले सर्वत्र नव बीजों को क्रम से जोड़ना चाहिये । वे हैं—वेदादि शाकिनी माया योगिनी कूर्च कामिनी रमा स्मर और डाकिनी । ये सर्वत्र पहले रखे जाते हैं । दो-दो सवर्ण स्वरों के द्वारा सम्पुटित कर आदि में उपपद से युक्त 'योगेश्वरी' को रखा जाता है । उसके मन्त्रों से अङ्गुष्ठ आदि के क्रम से उसका न्यास करना चाहिये । हे प्रिये! अब मैं (योगेश्वरी के) पूर्ववर्त्ती उपपदों को बतलाऊँगा उसमें मन लगाओ । 'महाचण्ड' उसके बाद 'परमप्रचण्ड' तदनन्तर 'नरमुण्ड महामारी' फिर 'महामाया' 'उन्मत्तचण्डोग्र' 'कालरात्रि' हे विश्वव्यापिनि! सबके अन्त में नाद नि:श्रेणि (= अं) से युक्त न्यास करना चाहिये अर्थात् ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें अं आं महाचण्डयोगेश्वरि (आं अं) अङ्गुष्ठाभ्यां नम: । ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें इं ईं परमप्रचण्डयोगेश्वरी (ईं इं) तर्जनीभ्यां स्वाहा । ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें उं ऊं नरमुण्डमहामारी योगेश्वरी (ऊं उं) मध्यमाभ्यां वषट् । ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें एं ऐं महामाया योगेश्वरी (ऐं एं) अनामिकाभ्यां हूं । ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें ओं औं उन्मत्तचण्डोग्रयोगेश्वरी (औं ओं) कनिष्ठाभ्यां वौषट् । ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें अं अ: कालरात्रियोगेश्वरी (अ: अं) करपृष्ठाभ्यां फट् से लेकर कालरात्रियोगेश्वरी अ: अं तक पाठ कर दोनों हाथों में व्यापक न्यास करना चाहिये । तुमको इस प्रकार का कराङ्गन्यास प्रयत्नपूर्वक बतलाया गया । अब हृदय आदि का भिन्न-भिन्न षडङ्गन्यास बतला रहा हूँ ॥ ६१६-६२५ ॥

आस्तेऽनुवर्तमाना सा नवबीजी वरानने ।
शुद्धाः स्वराः षोडश च बिन्दुसर्गविवर्जिताः ॥ ६२६ ॥
तारो नमश्च परमपदाच्छिवतमेरयेत् ।
विपरीताचारमहाभैरवेति ततः परम् ॥ ६२७ ॥
कालशब्दादनु वदेन्निसूदनपदं प्रिये ।
पुनः कालमुखेत्युक्त्वा खाहि भुङ्क्ष्व युगं युगम् ॥ ६२८ ॥
कालियुग्मं महाकालियुगलं चाध्वनां त्रयम् ।
हासिन्यनु च सानुः स्याद् गुडम(ध्वा?) कुलाङ्गना ॥ ६२९ ॥
हृदयाय नमश्चेति प्रथमाङ्गमुदाहृतम् ।
नवबीजानु कुणपादिपञ्चकमुदीरयेत् ॥ ६३० ॥
ततो वेदादिहृन्मन्त्रौ ङेऽन्तोऽस्यान्ते सदाशिवः ।
भगवानप्यथाध्वा च तत एह्येहि कीर्तयेत् ॥ ६३१ ॥

परमात्मने सर्वशत्रुपदादन्तो(न्ते ?) निसूदनः ।
तद्वद् ब्रह्मशिरश्चापि शैखो(?) मनुरतः परम् ॥ ६३२ ॥
परमव्योमवासिन्यनु कौरजत्रयं भवेत् ।
व्योमरूपे ततः सत्ये ध्रुवे गुह्ये त्रिपूरकम् ॥ ६३३ ॥
वाविधानी(?)क्षेत्रपालधनदाकुलयोषितः ।
ङेऽन्तं ब्रह्मशिरः स्वाहा द्वितीयं समुदाहृतम् ॥ ६३४ ॥

हे वरानने! पूर्वोक्त नव बीजों का समूह यहाँ भी रहता है । उसके बाद बिन्दु और विसर्ग से रहित शुद्ध सोलह स्वर रहते हैं । तार और नमः 'परम शिवतम' कहना चाहिये । उसके बाद 'विपरीताचारमहाभैरव' पद कहना चाहिये । फिर 'काल' शब्द के बाद हे प्रिये! 'निषूदन' पद कहना चाहिये । पुन: 'कालमुख' कहकर 'खाहि' 'भुङ्क्ष्ण' को दो-दो बार, दो 'कालि', दो 'महाकालि', तीन अध्वा बीज 'हासिनि' के पश्चात् सानु गुड अध्वा और कुलाङ्गना तथा 'हृदयाय नमः' यह प्रथम अङ्गन्यास है । नव बीज के बाद कुणप आदि पाँच का उच्चारण करना चाहिये । इसके बाद वेदादि हृन्मन्त्र इसके पश्चात् ङेऽन्त 'सदाशिव' ङेऽन्त 'भगवान्' अध्वा बीज 'एह्येहि' कहना चाहिये । 'परमात्मने शत्रु' पद के अन्त में 'निसूदन' को भी उसी प्रकार अर्थात् चतुर्थ्यन्त फिर 'ब्रह्मशिर' (भी चतुर्थ्यन्त) पुन: शिरोमन्त्र—यह शिरोमन्त्र है । एक दूसरा भी शिरोमन्त्र है—'परमव्योमवासिनि' के पश्चात् तीन कौरज होता है । फिर 'व्योमरूपे सत्ये ध्रुवे गुह्ये' तीन पूरक (= तीन पूरण = बं बं बं ?) वाविधानी (?) क्षेत्रपाल धनदा कुलाङ्गना ङेऽन्त 'ब्रह्मशिर' के पश्चात् 'स्वाहा' ॥ ६२६-६३४ ॥

प्रवदेन्नवबीजीतः शीर्षकादीनि पञ्च वै ।
चण्डकापालिनी देवि त्रिकूर्चं च ज्वलत्रयम् ॥ ६३५ ॥
प्रज्वलद्वितयं चापि हित्ति छित्ति युगं युगम् ।
भित्ति योजय च द्वे द्वे ग्रन्थाग्रं गृह्ण च द्वयम् ॥ ६३६ ॥
हृज्जम्भिते स्तम्भिते च मोहिते चर्च्चिते तथा ।
जम्भय द्विश्च परमचण्डेतः शीघ्रमानय ॥ ६३७ ॥
तारत्रपे महत्सूक्ष्मे लागुडं बीजमेव च ।
ङेऽन्ता च भगवच्छक्तिः गौः शिखायै वषट् तथा ॥ ६३८ ॥
नव बीजानु कीलादिपञ्चकं प्रणवत्रयम् ।
भीमरावे भगवति विसन्ध्येह्येहि तत्परम् ॥ ६३९ ॥
मातर्देवि तरद्वन्द्वं द्विस्तुरु प्रस्फुरद्वयम् ।
व्योषो (?) मायामेघमाले महामारीश्वरीति च ॥ ६४० ॥
विद्युत्कटाक्षे क्षपितदुरिते तदनन्तरम् ।
अरूपे बहुरूपे च विरूपे ज्वलितमुख्यपि ॥ ६४१ ॥
चण्डेश्वर्यनु हट्टद्विः स्याद्वज्रायुधधारिणि ।

हनयुग्मं ततः कूर्चं ततो डामरमुख्यपि ॥ ६४२ ॥
बीजे विजयमन्दाख्ये भवतस्तदनन्तरम् ।
कीर्तयेद् वज्रशब्दानु शरीरे कवचाय हुम् ॥ ६४३ ॥

नवबीज समूह के पश्चात् शीर्षक आदि पाँच का कथन करना चाहिये । हे देवि! 'चण्डकापालिनी' फिर तीन कूर्च और तीन 'ज्वल' दो 'प्रज्वल' 'हिति' और 'छिति' को दो-दो, 'भिति' और 'योजय' को दो-दो बार, 'ग्रन्थाग्रं' के पश्चात् 'गृह्ण' को दो बार फिर हृदयमन्त्र 'जम्भिते' 'स्तम्भिते' 'मोहिते' 'चर्चिते' तथा 'जम्भय' को दो-दो बार, 'परमचण्डे शीघ्रमानय' के बाद तार त्रपा महत् सूक्ष्म लागुड बीज फिर ङेऽन्त 'भगवच्छक्ति' गौ बीज 'शिखायै वषट्' (कहना चाहिये) । नव बीजों के बाद कील आदि पाँच तीन प्रणव 'भीमरावे भगवति' सन्धिरहित 'एह्येहि' उसके पश्चात् 'मातर्देवि' दो 'तर' 'तुरु' और 'प्रस्फुर' को दो-दो बार व्योष(?) माया मेघमाला 'महामारीश्वरि विद्युत्कटाक्षे क्षपितदुरिते' तदनन्तर 'अरूपे बहुरूपे विरूपे ज्वलितमुखि चण्डेश्वरि' के बाद दो 'हट्ट' का कथन होना चाहिये । 'वज्रायुधधारिणि' दो 'हन' पश्चात् कूर्च फिर 'डामरमुखि' पुनः विजय एवं मन्द नामक दो बीज के पश्चात् 'वज्र' शब्द के अनन्तर 'शरीरे कवचाय हुम्' कहना चाहिये ॥ ६३५-६४३ ॥

नवबीजादनून्माथादिपञ्चकमुदीरयेत् ।
वज्रमध्ये फट्त्रयं च तारसंभ्रमरोषणाः ॥ ६४४ ॥
अस्त्रं महाकिरातानु चाण्डाले सन्धिवर्जितम् ।
ततोऽवतरयुग्मं च सन्धा(न्धि)नोनं पुनर्वदेत् ॥ ६४५ ॥
आवाहनमुखीत्येवं बीजं मौञ्जबलं ततः ।
शक्तिः सन्तानमपि च वज्रसारमुखेत्यपि ॥ ६४६ ॥
ह्रीं जहि द्विः कालियुगं कालविध्वंसिनीत्यपि ।
रोषस्तोकौ गह्वरं च दक्षिणास्त्रे ततः परम् ॥ ६४७ ॥
नेत्रत्रयाय वौषट् च पञ्चमं समुदाहृतम् ।
नवभ्यो देवि बीजेभ्यः छुरिकादीनि पञ्च वै ॥ ६४८ ॥
आगच्छ द्वौ रुट्त्रितयं चक्रराजेश्वरीत्यपि ।
महाशब्दे तरद्वन्द्वं निर्बिन्दुः सामिधेन्यपि ॥ ६४९ ॥
व्योममाला ज्वलयुगं महारौद्रे ततः परम् ।
रौषिकानलमाभाष्य द्विःपत(तप?) द्विश्च तापय ॥ ६५० ॥
कट्टद्वयं हट्टयुगं घोराचारपदादनु ।
महाघोरपदाच्चापि वाडवाग्निं ग्रस द्वयम् ॥ ६५१ ॥

नव बीजों के बाद उन्माथ आदि पाँच को उद्धृत करना चाहिये । 'वज्रमध्ये' के बाद तीन 'फट्' तार सम्भ्रम रोष अस्त्र 'महाकिरात' के पश्चात् 'चाण्डाले' सन्धिरहित 'अवतर' को दो बार पुनः सन्धिरहित 'आवाहनमुखि' तत्पश्चात् मौञ्जबल शक्ति

सन्तान बीज फिर 'वज्रसारमुखे' पुनः दो-दो 'ह्रीं' और 'जहि', दो 'कालि' ततः 'कालविध्वंसिनि' फिर क्रोध स्तोक गह्वर दक्षिण अस्त्र इसके बाद 'नेत्रत्रयाय वौषट्' यह पञ्चम हृदयादि न्यास है । हे देवि! नव बीजों के पश्चात् छुरिका आदि पाँच दो 'आगच्छ' दो क्रोध बीज 'चक्रराजेश्वरि महाशब्दे (अथवा 'महाचक्रराजेश्वरि') दो 'तर' सामिधेनी व्योममाला दो 'ज्वल' उसके बाद 'महारौद्रे' 'रौषिकानलं' कहकर दो 'तप' और दो 'तापय' दो-दो 'कट्ट' 'हट्ट' 'घोराचारे' पद के पश्चात् 'महाघोरे' पद के अनन्तर 'वाडवाग्निं' फिर दो 'ग्रस' कहना चाहिए ॥ ६४४-६५१ ॥

ज्वालय द्विर्दक्षिणा च द्वे बीजे भैमतान्त्रिके ।
नाम्ना कुलधरं चैकं प्रमीतं तदनन्तरम् ॥ ६५२ ॥
अस्त्राय फट् सर्वशेषे पूर्वमेतत् षडङ्गकम् ।
व्यापकद्वयमन्यद्धि वर्तते सुरवन्दिते ॥ ६५३ ॥
गलाधोनाभिपर्यन्तमेकमुक्तं पुरारिणा ।
आब्रह्मरन्ध्रपादान्तं द्वितीयं समुदाहृतम् ॥ ६५४ ॥
नवबीजादनु भवेत् कुण्यादिदशबीजकम् ।
किन्तु सतर्जनीयुक्तं गुडादनु वरानने ॥ ६५५ ॥
तारान् महाबलो ङेऽन्तो नमो रुद्राय चेत्यपि ।
फेत्कारीसानुह्रीरोषबीजान्यस्त्रं तथैव च ॥ ६५६ ॥
ततो महाचण्डयोगेश्वरी श्रीपादुकामपि ।
सर्वशेषे पूजयामि प्रथमं व्यापकं त्वदः ॥ ६५७ ॥
द्वितीयं नवबीजीतः स्वराः षोडश सेन्दुकाः ।
कुणपादि द्रुमान्तं च ससन्तर्जनितत्परम् ॥ ६५८ ॥
षष्टिरेवं समुच्चार्य महाव्यापकमाचरेत् ।
उग्रमातृक्रमन्यासः प्रथमोऽयमुदाहृतः ॥ ६५९ ॥

दो बार 'ज्वालय' दक्षिणा दो भैम और तान्त्रिक बीज एक कुलधर उसके बाद प्रमीत सबके अन्त में 'अस्त्राय फट्' यह पूर्व षडङ्ग है । हे सुरवन्दिते! अन्य दो व्यापक हैं। इसके विषय में त्रिपुरारि ने कहा है कि गले से लेकर नाभि तक एक व्यापक है तथा ब्रह्मरन्ध्र से पैर तक दूसरा व्यापक है । नवबीज के बाद कुणी आदि दश बीज कहना चाहिये । किन्तु हे वरानने! उसे गुड के बाद तथा तर्जनीयुक्त कहना चाहिये। तार के बाद ङेऽन्त 'महाबल' तथा 'नमो रुद्राय' फिर फेत्कारी सानु ह्रीं रोष बीजों को तथा अस्त्र फिर 'महाचण्डयोगेश्वरि श्रीपादुकां' सबके अन्त में 'पूजयामि' कहना चाहिये । यह प्रथम व्यापक न्यास है । द्वितीय व्यापक न्यास इस प्रकार है— नव बीजों के बाद स्वर को बिन्दुयुक्त लिखना चाहिये । तर्जनी के साथ कुणप से लेकर द्रुम तक इस प्रकार साठ वर्णों का उच्चारण कर महाव्यापक न्यास करना चाहिये । यह प्रथम उग्रमातृका क्रमन्यास कहा गया ॥ ६५२-६५९ ॥

[कालीकुलक्रमन्यासस्योद्देशः ऋष्यादिनिर्देशश्च]

कालीकुलक्रमन्यासमधुना कलय प्रिये ।
श्रीक्रोधभैरव ऋषिः प्रतिष्ठाच्छन्द एव च ॥ ६६० ॥
कोटियोगिन्यनु परिवृता दक्षिणशब्दतः ।
काल्यादिनवकाली च देवता परिकीर्तिता ॥ ६६१ ॥
अश्रु कान्तानृहरयोर्बीजशक्तिककीलकाः ।
रुट्तत्त्वं मम गुह्यानु काली प्रीत्यर्थ एव च ॥ ६६२ ॥
जपे नियोग उच्चार्य न्यासं कालीकुलं चरेत् ।

कालीकुलक्रमन्यास और उसके ऋषि आदि—हे प्रिये! अब कालीकुलक्रमन्यास को सुनो । इसके ऋषि श्री क्रोधभैरव, छन्द प्रतिष्ठा, कोटि योगिनियों से चारो और परिवृत दक्षिणकाली आदि नव कालियाँ इसकी देवता बतलायी गयी हैं । अश्रु कान्ता और नृसिंह क्रमशः इसके बीज शक्ति और कीलक बतलाये गये हैं । क्रोध तत्त्व है । 'मम गुह्यकालीप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः' कहकर कालीकुलन्यास को करना चाहिये ॥ ६६०-६६२- ॥

[कालीकुलक्रमन्यासस्य मन्त्रोद्धारः]

उद्धारमधुनैतस्य प्रवदामि समासतः ॥ ६६३ ॥
तान्येवादौ तु बीजानि यान्युक्तानि पुरा नव ।
प्रणवो डाकिनी लज्जा पुनर्बीजत्रयं स्थिरम् ॥ ६६४ ॥
एभ्यो द्वादशबीजेभ्यः स्वराः सर्वे (ऽ)हलान्विताः ।
सबिन्दवोऽमी एकैकं क्रमान् मन्त्रेषु योजिताः ॥ ६६५ ॥
कर्तव्यास्तत्परं बीजे ज्ञानेच्छे समहाक्षरे ।
एवं वर्णाः सप्तदश विज्ञातव्या वरानने ॥ ६६६ ॥
एषु त्रयोदशमतश्चलो वर्णो न चेतरे ।
काली श्रीपादुकायै हृन्नववर्णाश्च पश्चिमे ॥ ६६७ ॥
अचलामातृकास्थानमेषां स्थानं वरानने ।
सर्वशेषे विशेषोऽस्ति तमाकर्णय पार्वति ॥ ६६८ ॥
ज्ञानेच्छयोरनु महावर्णतः पूर्वमीश्वरि ।
वेदादिरावडाकिन्यस्तत्राधिकतया मताः ॥ ६६९ ॥
एतस्यानन्तरो यश्च सर्वाङ्गव्यापको मनुः ।
तस्योद्धारं तु चरमे कथयिष्यामि सुन्दरि ॥ ६७० ॥

कालीकुलक्रमन्यास का मन्त्रोद्धार—अब मैं इसका उद्धार संक्षेप में बतला रहा हूँ । पहले जो नव बीज कहे गये वे ही इस मन्त्र के आदि में कहे जाते हैं । उसके बाद प्रणव डाकिनी और लज्जा ये तीन बीज उक्त होते हैं । इन बारह बीजों

के बाद हल्‌रहित समस्त स्वर बिन्दु के साथ एक-एक करके सभी मन्त्रों के साथ जोड़े जाते हैं । उसके पश्चात् महाक्षर के साथ ज्ञान और इच्छा बीजों को जोड़ा जाता है । हे वरानने! इस प्रकार (प्रत्येक मन्त्र में) सत्रह वर्ण जानने चाहिये । इनमें से तेरहवाँ वर्ण चल अर्थात् परिवर्त्तनशील है । शेष नहीं । अन्त में 'काली-श्रीपादुकायै' तथा हृदय (= नमः) ये नव वर्ण होते हैं । हे वरानने! इनका स्थान अचला मातृका स्थान है । हे पार्वति! सबके अन्त में जो विशेष है उसको सुनो । हे ईश्वरि! ज्ञान और इच्छा के बाद महाक्षर के पूर्व वेदादि राव डाकिनी वहाँ अधिक माने गये हैं । इसके अनन्तर जो सर्वांगव्यापक मन्त्र है, हे सुन्दरि! उसका उद्धार अन्त में कहूँगा ॥ ६६३-६७० ॥

सृष्टिः स्थितिश्च संहारोऽनाख्या भासा तथैव च।
ज्ञानं सूर्यश्च सोमश्च ज्ञानानन्दस्तथैव च ॥ ६७१ ॥
ज्ञानं प्रभा नभः क्षीरं महार्चिः केतुरित्यपि ।
कुलिशं च पाशुपतं च तापिनी च नराशनी ॥ ६७२ ॥
ऋक्षश्च सिद्धिदा चैव ऋद्धिदा दंष्ट्रिणी तथा ।
मन्त्रदा ज्वालिनी मन्त्रसिद्धिस्तदनु कथ्यते ॥ ६७३ ॥
गणेश्वरी तथा माया नित्या शान्ता ततः परम् ।
विद्या तथा नन्दिनी च सन्धिहीना ततोऽयु(?ह्य)मा ॥ ६७४ ॥
पुनः ससन्धिरानन्दो बलस्तदनु वन्दिताः ।
सुभगा स्याज्जयलक्ष्मीः
सिद्धिलक्ष्मीश्च कुब्जिकाः ॥ ६७५ ॥
विश्वलक्ष्मीरथ जयावहा काल्यम्बया सह ।
सुन्दरी त्रिपुरा चैव डामरी तदनन्तरम् ॥ ६७६ ॥
पूर्णेश्वरी नैःश्रेयसी राजेश्वर्यप्यनन्तरम् ।
दुर्गा भैरव्यथ मलापकर्षिण्यपि कथ्यते ॥ ६७७ ॥
एकपञ्चाशदुदिताः सर्वाङ्गव्यापकं शृणु ।
नवबीज्यास्ताररावडाकिन्यो ज्ञानमिच्छया ॥ ६७८ ॥
ततो नादादि निःश्रेणिचरमं षोडशोच्चरेत् ।
कुणपादि द्रुमान्तं च पञ्चत्रिंशद्बलोऽपि च ॥ ६७९ ॥
ततो महागुह्यकाली माता च तदनन्तरम् ।
प्रपञ्चारूपा च तथा त्रितयं ङेऽन्तमुच्चरेत् ॥ ६८० ॥
महायोगिन्यनु ततो डाकिनी शबरोत्यपि ।
सप्ताक्षरी ततः सर्वचरमीयाणि योजयेत् ॥ ६८१ ॥
एतेन वारत्रितयं सर्वाङ्गव्यापकं न्यसेत् ।
विस्तरेणैव कथितो न्यासः कालीकुलक्रमः ॥ ६८२ ॥

सृष्टि स्थिति संहार अनाख्या भासा ज्ञान सूर्य सोम ज्ञानानन्द ज्ञान प्रभा नभ क्षीर महार्चि केतु कुलिश पाशुपत तापिनी नराशनी ऋक्ष सिद्धिदा ऋद्धिदा दंष्ट्रिणी मन्त्रदा ज्वालिनी उसके बाद मन्त्रसिद्धि कही जाती है । गणेश्वरी माया नित्या शान्ता विद्या नन्दिनी इसके बाद सन्धिरहित 'अमा' (?) पुन: सन्धियुक्त आनन्दबल उसके बाद 'वन्दिता' सुभगा जयलक्ष्मी सिद्धिलक्ष्मी कुब्जिका विश्वलक्ष्मी जयावहा काली अम्बा सुन्दरी त्रिपुरा डामरी पूर्णेश्वरी नै:श्रेयसी तत्पश्चात् राजेश्वरी दुर्गा भैरवी मलापकर्षिणी कही जाती है । ये इक्यावन पद एवं बीज कहे गये ।[१] अब सर्वांग व्यापक को सुनो। नव बीज तार राव डाकिनी ज्ञान इच्छा नादादि नि:श्रेणि इन सोलह का उच्चारण करना चाहिये । कुणप से लेकर द्रुम तक पैंतीस हल का भी उच्चारण करना चाहिये । इसके बाद 'महागुह्यकाली' 'माता' उसके बाद 'प्रपञ्चरूपा' इन तीनों का ङेऽन्त उच्चारण करना चाहिये । महायोगिनी के बाद डाकिनी शबरी के सम्बोधन के बाद सप्ताक्षरी (= श्रीपादुकायै नम:) जोड़ना चाहिये । इससे तीन बार सर्वांग-व्यापक करना चाहिये । इस प्रकार तुमको विस्तार से कालीकुलक्रमन्यास बतलाया गया ॥ ६७१-६८२ ॥

[पीठन्यासोद्देश: ऋष्यादिनिर्देशश्च]

पीठन्यासमिदानीं त्वं सावधाना निशामय ।
ऋषि: पीठक्रमन्यासस्य कौषीतकि ईरित: ॥ ६८३ ॥
अत्यष्टिश्छन्द आख्यातं सकलानु कुलाकुल ।
परमाधिदैवतश्रीराजराजेश्वरीत्यपि ॥ ६८४ ॥
देवता योगिनी बीजं डाकिनी शक्तिरेव च ।
वधू: कीलकमुद्दिष्टं रावस्तत्त्वमुदाहृतम् ॥ ६८५ ॥
श्रीगुह्यकाली प्रीत्यर्थे विनियोग उदाहृत: ।
अष्टौ बीजानि देव्यत्र सुस्थिराण्युदितानि हि ॥ ६८६ ॥
तानि प्रणवडाकिन्यौ त्रपारावौ रमारुषौ ।
योगिनीवनिते चापि सर्वत्रामूनि योजयेत् ॥ ६८७ ॥
शक्तिश्रीपादुकायै हृदन्ते स्थास्नुर्नवाक्षरी ।
अथ मध्यगतान् वक्ष्ये संस्थानान् जगदीश्वरि ॥ ६८८ ॥
नाद: पाशस्तथा क्षेत्रं सिद्धियोनिपदादनु ।
महाराविणीपीठसिद्धिकालीति तदनन्तरम् ॥ ६८९ ॥
महाचर्चिक आभाष्य परातिपरशब्दत: ।
ब्रूयाद् गुह्यमङ्गलेति भ्रूमध्ये परिविन्यसेत् ॥ ६९० ॥

---

[१] उक्तैकपञ्चाशतशब्देषु कानि बीजानि कानि च प्रयोज्यपदानि इति निश्चेतुं नैव शक्यते । एतानि खण्डश: कृत्स्नतया वा उच्चार्याणि? कश्चैषामुच्चारणक्रम:? अत्र विद्वांस: प्रमाणम् ।

अष्टौ बीजानि तान्येव कलां स्थाणुं सशर्वकम् ।
ओड्डियानमहापीठे महाचण्डपदादनु ॥ ६९१ ॥
योगेश्वरी कालकाली छिप्पिणी शङ्खिनी तथा ।
मोहिनी च ततो गुह्यातिगुह्यपदमीरयेत् ॥ ६९२ ॥
परापर समाभाष्य वक्त्रमध्ये प्रविन्यसेत् ।

पीठन्यास और उसके ऋषि आदि—अब तुम सावधान होकर पीठन्यास को सुनो । पीठक्रमन्यास के ऋषि कौषीतकि कहे गये हैं । छन्द अत्यष्टि कहा गया है । देवता सकलकुलाकुलपरमाधिदैवत श्रीराजराजेश्वरी, बीज योगिनी, शक्ति डाकिनी और कीलक वधू बीज कहा गया है । तत्त्व राव को कहा गया । इसका विनियोग गुह्यकालीप्रीत्यर्थ कहा गया है । हे देवि! यहाँ आठ बीज स्थायी कहे गये हैं । वे हैं—प्रणव डाकिनी त्रपा राव रमा क्रोध योगिनी और स्त्री । इनको सब जगह जोड़ना चाहिये । 'शक्तिश्रीपादुकायै' के अन्त में हृदय—यह नव अक्षरों का समूह स्थायी है । हे जगदीश्वरि! अब मध्यवर्त्ती संस्थानों को कहूँगा । नाद पाश क्षेत्र के पश्चात् 'सिद्धियोनि' पद के बाद 'महाराविणीपीठे सिद्धिकाली' तदनन्तर 'महाचर्चिके' कहकर 'परातिपर' शब्द के बाद 'गुह्यमङ्गले' कहना चाहिये । बाद में (अन्य स्थायी पदों को कहना चाहिये । इस मन्त्र से) भ्रूमध्य में न्यास करना चाहिये । पूर्वोक्त आठ बीज कला स्थाणु शर्व के पश्चात् 'ओड्डियानमहापीठे महाचण्ड' के अनन्तर 'योगेश्वरि' 'कालकालि छिप्पिणि शंखिनि मोहिनि' उसके बाद 'गुह्यातिगुह्य' पद का उच्चारण करना चाहिये । 'परापर' कहकर (अन्त्य स्थायी वर्णों का कथन कर इससे) वक्त्र मध्य में न्यास करना चाहिये ॥ ६८३-६९२ ॥

बीजाष्टकं ततः सेन्दु सप्तमादिस्वरत्रयम् ॥ ६९३ ॥
जालन्धरमहापीठे महाचण्डपदादनु ।
कापालिनी ततः कालान्तककाली च धीवरी ॥ ६९४ ॥
गुह्यान्तरान्तरा चेति ललाटे विन्यसेत् प्रिये ।
दशमाजन्वितं सेन्दुं बीजाष्टकमुपन्यसेत् ॥ ६९५ ॥
दुर्द्धर्षमथ चैतन्यं कामरूपपदादनु ।
महापीठे महाचण्डराविणी तदनन्तरम् ॥ ६९६ ॥
यमान्तकपदात् काली फेत्कारिण्यप्यनन्तरम् ।
असन्धानातिगुह्याचिन्त्येति न्यासस्थलं मुखम् ॥ ६९७ ॥
अष्टभ्यः प्रणवाश्वत्थौ ततः पूर्णागिरीति च ।
महापीठे पुलिन्दिनी महाचण्डाच्च रोषिणी ॥ ६९८ ॥
कालीशब्दात् तथा कालवञ्चनी च परापरम् ।
गुह्यातिगुह्य सङ्कीर्त्य विशुद्धावेव विन्यसेत् ॥ ६९९ ॥
अष्टबीजी तथा नादो निःश्रेणी तदनन्तरम् ।

स्यात् प्रयागमहापीठे वेश्याब्रह्मवती तथा ॥ ७०० ॥
महाचण्डपदाद्दण्डिन्यपि सन्धिविवर्जिता ।
अतिगुह्यरहस्येति न्यासस्थानमनाहतम् ॥ ७०१ ॥
अष्टभ्यः कुणपादीनि पञ्चबीजानि सुन्दरि ।
वाराणसीमहापीठे रुद्रवत्यथ कीर्तयेत् ॥ ७०२ ॥
महाचण्डपदस्यान्ते शूलिनी शौण्डिनी तथा ।
गुह्यातिगुह्ययोगिन्युक्त्वा न्यसेन्मणिपूरके ॥ ७०३ ॥
अष्टानां चरमे पञ्च शीर्षकादीनि कीर्तयेत् ।
कोलापुरमहापीठे कैवर्ती तदनन्तरम् ॥ ७०४ ॥
गुहेशीतो महाचण्डातिवेगिन्यपि कीर्तयेत् ।
स्वाधिष्ठाने न्यसेदेतत् ....

आठ बीज, पुनः बिन्दु के साथ सप्तम से लेकर परवर्त्ती तीन स्वर (ऋ ॠ ऌ) फिर 'जालन्धरमहापीठे महाचण्डकापालिनी कालान्तककालि धीवरि गुह्यान्तरान्तरा...........' से हे प्रिये! ललाट में न्यास करना चाहिये । सविन्दु दशम अच् से युक्त दुर्द्धर्ष और चैतन्य के पूर्व आठ बीजों को उपन्यस्त करना चाहिये । फिर 'कामरूप' पद के बाद 'महापीठे महाचण्डराविणि' तदनन्तर 'यमान्तक' पद के बाद 'कालि' 'फेत्कारिणी', सन्धिरहित 'अति गुह्याचिन्त्य.......' इस मन्त्र का न्यासस्थल मुख है । आठ बीजों के अनन्तर प्रणव और अश्वत्थ फिर 'पूर्णागिरिमहापीठे पुलिन्दिनि महाचण्डरोषिणी कालि कालवञ्चनि परापरगुह्यातिगुह्य......' कहकर विशुद्धि (= कण्ठ) में न्यास करना चाहिये । आठ बीज नाद निःश्रेणी उसके बाद 'प्रयागमहापीठे वेश्याब्रह्मवति महाचण्ड' पद के बाद 'दण्डिनि' सन्धिरहित 'अतिगुह्यरहस्य........' से अनाहत में न्यास करना चाहिये । हे सुन्दरि! आठ बीजों के बाद कुणप आदि पाँच बीज फिर 'वाराणसीमहापीठे रुद्रवति' कहना चाहिये । 'महाचण्ड' पद के अन्त में 'शूलिनि शौण्डिनि गुह्याति गुह्ययोगिनि.....' कहकर मणिपूर में न्यास करना चाहिये । आठ बीजों के अन्त में पाँच शीर्षक आदि का कथन करना चाहिये । 'कोलापुर-महापीठे कैवर्त्ति' तदनन्तर 'गृहेशि' के पश्चात् 'महाचण्डातिवेगिनि......' से हे प्रिये! स्वाधिष्ठान में न्यास करना चाहिये ॥ ६९३-७०५ ॥

.... ततो बीजाष्टकं प्रिये ॥ ७०५ ॥
कीलादिरज्जुपर्यन्तं पञ्चबीजान्यतः परम् ।
अट्टहासमहापीठे खड्गकी तदनन्तरम् ॥ ७०६ ॥
नारायणी चक्रिणी च गुह्यकाली च पश्चिमे ।
मूलाधारे प्रविन्यस्य बीजान्यष्टौ समुच्चरेत् ॥ ७०७ ॥
उन्माथादीनि पञ्चापि जयन्तीति पदं ततः ।
महापीठे बन्धकी च घोणवत्यपि कीर्तयेत् ॥ ७०८ ॥

महाचण्डाङ्कुशवती ततो गुह्यातिगुह्य च ।
पातालचारिणी पश्चात् कुण्डलिन्यां प्रविन्यसेत्॥ ७०९ ॥
छुरिकादीनि पञ्चापि बीजाष्टक्त ईरयेत् ।
हस्तिनापुरमहापीठे रजकी शक्रवत्यपि ॥ ७१० ॥
महाचण्डवज्रिणी च विसन्धानातिगुह्यया ।
एतेनोरसि विन्यस्य बीजाष्टकमुदीरयेत् ॥ ७११ ॥
कुण्यादिधूमलान्तानि चत्वारि तदनन्तरम् ।
एकाम्रनाथमहापीठे चामुण्डाशिवदूत्यपि ॥ ७१२ ॥
महाचण्डकर्तरी च स्यात् कुलार्णवचारिणी ।
विन्यस्य जानुद्वितये पुनरष्टौ समुल्लिखेत् ॥ ७१३ ॥
वेध्यादीनि द्रुमान्तानि पञ्च बीजानि संस्मरेत् ।
देवीकोटमहापीठे कोटवी चण्डिकापि च ॥ ७१४ ॥
महाचण्डात् खड्गिनी च सन्धिहीनातिगुह्यतः ।
योगेश्वरीति सङ्कीर्त्य जङ्घयोर्न्यासमाचरेत् ॥ ७१५ ॥
पूर्वरीतिर्निवृत्ताथ पुनरन्या निगद्यते ।
चैतन्यडाकिनीलज्जाः शाकिनी कमला तथा ॥ ७१६ ॥
पञ्चेमानि समुद्धृत्य स्वरान् षोडश सेन्दुकान् ।
करवीरमहापीठे चण्डचण्डेश्वरी ततः ॥ ७१७ ॥
महागुह्ये न्यसेल्लिङ्गे सर्वमन्यत् पुरोक्तवत् ।
इमानि पञ्च बीजानि पञ्चत्रिंशद्धलस्तथा ॥ ७१८ ॥
राजगृहमहापीठे सृष्टिस्थितिपदादनु ।
संहारानाख्यया सार्द्धं भासा कालीकुलेति च ॥ ७१९ ॥
महाचण्डपदाद् योगेश्वरी चापि परापर ।
परमरहस्यकालीक्रम सर्वं पुरोक्तवत् ॥ ७२० ॥
व्यापकं विन्यसेत् सर्वं पीठन्यासोऽयमीरितः ।

हे प्रिये! कील से लेकर रज्जुपर्यन्त पाँच बीज उसके बाद अट्टहास महापीठ खड्गकी नारायणी चक्रिणी और सबके अन्त में गुह्यकाली—इनका मूलाधार में न्यास कर इसके पश्चात् आठ बीजों का उच्चारण करना चाहिये । उन्माथ आदि पाँच के पश्चात् 'जयन्तीमहापीठे बन्धकि घोणवति' का कीर्तन करना चाहिये । 'महाचण्डाङ्कुशवती' फिर 'गुह्यातिगुह्यपातालचारिणि.....' से कुण्डलिनी (मूलाधार) में न्यास करना चाहिये । आठ बीजों के बाद छुरिका आदि पाँच फिर 'हस्तिनापुरमहापीठे रजकि शक्रवति महाचण्डवज्रिणि' सन्धिरहित 'अतिगुह्य......' से वक्षःस्थल पर न्यास करना चाहिये । आठ बीजों का उच्चारण करना चाहिये । कुणि से लेकर धूमल तक चार-चार बीज तदनन्तर 'एकाम्रनाथमहापीठे चामुण्डाशिवदूति महाचण्ड-

कर्त्तरि कुलार्णवचारिणि शक्ति.......' से दोनों जानुओं पर न्यास करना चाहिये । पुन: आठ बीजों का उल्लेख करना चाहिये । तत्पश्चात् वेध्य से लेकर द्रुम पर्यन्त पाँच बीजों का स्मरण करना चाहिये । 'देवीकोटमहापीठे कोटवि चण्डिके महाचण्डखङ्गिनि' के बाद सन्धिरहित 'अतिगुह्ययोगेश्वरि.......' कहकर दोनों जङ्घाओं में न्यास करना चाहिये । यहाँ तक पूर्व रीति समाप्त हो गयी । अब दूसरी रीति कही जाती है— चैतन्य डाकिनी लज्जा शाकिनी कमला इन पाँचों को उद्धृत कर अनुस्वार-रहित सोलह स्वरों को कहना चाहिये । 'करवीरमहापीठे चण्डचण्डेश्वरि महांगुह्ये...' इससे लिङ्ग में न्यास करना चाहिये । इसमें अन्य सब बीजाक्षर आदि पूर्व की भाँति कहे जायेंगे । उपर्युक्त पाँच बीज और पैंतीस हल के पश्चात् 'राजगृहमहापीठे सृष्टिस्थिति' पद के बाद 'संहार-अनाख्या-भासा' के साथ 'कालीकुलमहाचण्ड-योगेश्वरि परापर-परम-रहस्यकाली-क्रम' के पश्चात् शेष सब पूर्वोक्त की भाँति कहकर व्यापक न्यास करना चाहिये । यह पीठन्यास कहा गया ॥ ७०६-७२०- ॥

[योगिनीन्यासोद्देश:]

निबोधात: परं देवि योगिनीन्यासमुत्तमम् ॥ ७२१ ॥

[योगिनीन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देश:]

अस्य श्रीयोगिनीन्यासस्य जम्भक ऋषिर्मत: ।
मध्याच्छन्द: समाख्यातं परापरपदादनु ॥ ७२२ ॥
चामुण्डासहित प्रोच्य योगिनी देवता तत: ।
योगिनीबीजमाख्यातं त्रपाशक्तिरुदाहृता ॥ ७२३ ॥
कूर्च: कीलकमाख्यातं डाकिनी तत्त्वमुच्यते ।
परमाभीष्टसिद्ध्यर्थे विनियोग उदाहृत: ॥ ७२४ ॥

योगिनीन्यास और उसके ऋषि आदि—हे देवि! इसके बाद उत्तम योगिनी न्यास को जानो । इस योगिनीन्यास के ऋषि जम्भक माने गये हैं । छन्द मध्या और परापरचामुण्डा योगिनी देवता हैं । बीज योगिनी (= छ्रीं) कही गयी है और त्रपा (= ह्रीं) शक्ति के रूप में उद्धृत है । कूर्च कीलक और डाकिनी तत्त्व कहा जाता है । इसका विनियोग परम अभीष्ट की सिद्धि के लिये उद्धृत किया गया है ॥ ७२१-७२४ ॥

[योगिनीन्यासस्य सामान्यतो मन्त्रोद्धारनिर्देश:]

उद्धारमधुनैतस्य सावधाना निशामय ।
आदौ बीजत्रयं तारडाकिनीकुलयोषित: ॥ ७२५ ॥
शक्त्यै नम: सर्वशेषे स्थिरमेतद्द्वयं मतम् ।
किञ्चिदेकप्रकारं च विभिन्नं किञ्चिदेव हि ॥ ७२६ ॥
तन्निर्णेतुमशक्यत्वात् भिन्नं भिन्नमहं ब्रुवे ।
सागरो गुप्तिसन्तोषौ कौबेरास्त्रमत: परम् ॥ ७२७ ॥

ततो महाचण्डकालीं डाकिनी योगिनी स्मरेत् ।
मम सङ्कीर्त्य त्वग्धातून् रक्षयुग्मं त्रपारुषौ ॥ ७२८ ॥
कापालिनी महाकाली वैपरीत्येन कीर्तयेत् ।
विशुद्धिपीठे षोडश च सर्वमन्यत् पुरोदितम् ॥ ७२९ ॥
मन्त्रेणानेन देवेशि विशुद्धौ विन्यसेत् सुधीः ।
त्रिबीजी तारकं कोलः खेद आग्नेयकूटकम् ॥ ७३० ॥
ततो महाचण्डकालि षड्वर्णानुद्धरेत् प्रिये ।
पुनर्ममासृग्धातूंश्च रक्षद्वन्द्वं त्रपारुषौ ॥ ७३१ ॥
महाकालि कापालिनि सन्धिहीनमनाहत ।
पीठे द्वादश सङ्कीर्त्य पुरोवत्स्यादनाहते ॥ ७३२ ॥
बीजत्रयं सत्त्वतमोरतयश्चैन्द्रमस्त(स्त्र?)कम् ।
सम्बोधनं महाचण्डकाल्या लाकिनि तत्परम् ॥ ७३३ ॥
मम मांसपदाद् धातून् रक्षयुग्मं त्रपारुषौ ।
महाकालि समाभाष्य कापालिनि समुद्धरेत् ॥ ७३४ ॥
मणिपूरकपीठे च दश सर्वं पुरोक्तवत् ।
नाभौ प्रविन्यसेद् ....

योगिनीन्यास का सामान्य मन्त्रोद्धार—अब सावधान होकर इसका उद्धार सुनो। (मन्त्र में) पहले तार डाकिनी और कुलाङ्गना ये तीन बीज तथा सबके अन्त में 'शक्त्यै नमः' ये दोनों स्थिर माने गये हैं। शेष में से कुछ शब्द तो एक प्रकार के हैं और कुछ भिन्न-भिन्न हैं। उसका निर्णय करना सम्भव नहीं है, इसलिये मैं उनको अलग-अलग कह रहा हूँ। सागर गुप्ति सन्तोष कौबेर अस्त्र (= गदा) इसके बाद 'महाचण्डकालि डाकिनि योगिनि मम' कहकर 'त्वग्धातून्' के पश्चात् दो 'रक्ष' त्रपा और क्रोध फिर 'महाकालि कापालिनि' कहना चाहिये। 'विशुद्धिपीठे षोडश' के बाद पूर्वोक्त अन्य का कथन करना चाहिये। हे देवेशि! विद्वान् इस मन्त्र से विशुद्धि चक्र में न्यास करे। तीन बीज तारक कोल खेद आग्नेयकूट के बाद हे प्रिये! 'महाचण्डकालि' इन छ वर्णों को उद्धृत करना चाहिये। पुनः 'ममासृग्धातून्' के बाद दो 'रक्ष' त्रपा और क्रोध 'महाकालि कपालिनि अनाहतपीठे द्वादश........' को पूर्व की भाँति कहकर अनाहत में न्यास करना चाहिये। तीन बीज सत्त्वतम रति ऐन्द्रास्त्रकूट 'महाचण्डकाली' का सम्बोधन उसके बाद 'लाकिनि' के बाद 'मम मांसधातून्' फिर दो 'रक्ष' त्रपा क्रोध 'महाकालि' कहकर 'कापालिनि' को उद्धृत करना चाहिये। 'मणिपूरकपीठे दश.........' शेष पूर्व की भाँति कहकर इस मन्त्र से नाभिन्यास करना चाहिये ॥ ७२५-७३५ ॥

.... बीजत्रयं पुनरपीरयेत् ॥ ७३५ ॥
रूपं रसस्तथा गन्धो वारुणास्त्रं ततः परम् ।

महाचण्डपदात् कालि काकिन्यपि समुद्धरेत् ॥ ७३६ ॥
ममानु मेदो धातूंश्च रक्षयुग्मं त्रपारुषौ ।
नाभिस्थानवदस्यानु समानाष्टाक्षरी मता ॥ ७३७ ॥
स्वाधिष्ठानानु पीठे षट् स्वाधिष्ठाने प्रविन्यसेत् ।
श्रमार्थर्तम्भरा वायव्यास्त्रं वाच्यं त्रिबीजतः ॥ ७३८ ॥
महाक्षराच्चण्डकालि शाकिन्यपि नवाङ्कुरम् ।
ममास्थि तदनु ग्राह्या प्राक्तनी षोडशाक्षरी ॥ ७३९ ॥
मूलाधारानु पीठे च चतुस्तत्रैव विन्यसेत् ।
त्रयमध्वमनः क्रोधाः याम्यास्त्रं तदनन्तरम् ॥ ७४० ॥
चण्डकाली हाकिनि च महाक्षरयुगात् पठेत् ।
मम मज्जापदस्यान्ते सैव स्यात् षोडशाक्षरी ॥ ७४१ ॥
आज्ञापीठे द्वीतिवाच्यं सन्धिहीनं वरानने ।
आज्ञाचक्रे न्यसेदेनं पुनर्बीजत्रयं स्मरेत् ॥ ७४२ ॥
जीवदिक्क्षतकालास्त्रं महाचण्डपदादनु ।
काली याकिनि(?) चोद्धृत्य मम शुक्रं समुद्धरेत्॥ ७४३ ॥
वर्णाः षोडश तेऽत्रापि व्योमपीठेऽनु सर्व च ।
प्रविन्यसेद् ब्रह्मरन्ध्रे मन्त्रोऽन्यो व्यापको ह्यतः ॥ ७४४ ॥
तान्येव त्रीणि बीजानि मैधं काली च योगिनी।
वधूः कूर्चः स्वराः सर्वे ततो वै निखिला हलः ॥ ७४५ ॥
अनन्तकोटिपदतः कालिकाशब्दमुच्चरेत् ।
ततो महासिद्धिचक्रयोगिनीशक्ति चोद्धरेत् ॥ ७४६ ॥
युक्तायै गुह्यकाल्यै हृत् सर्वाङ्गव्यापको मनुः ।

तीन बीज कहना चाहिये । रूप रस गन्ध वारुणास्त्र उसके पश्चात् 'महाचण्ड' पद के बाद 'कालि काकिनि' को उद्धृत करना चाहिये । 'मम मेदो धातूंश्च' फिर दो 'रक्ष' त्रपा और क्रोध के पश्चात् नाभि स्थान की भाँति यहाँ भी आठ अक्षर कहना चाहिये । 'स्वाधिष्ठानपीठे षट्........' के द्वारा स्वाधिष्ठान में न्यास करना चाहिये । श्रम अर्थ ऋतम्भरा वायव्यास्त्र इनको तीन बीजों के बाद कहना चाहिये । 'महा' के बाद 'चण्डकालि शाकिनि' इन नवाङ्कुरों को 'मम अस्थि' के पश्चात् पूर्वोक्त सोलह अक्षरों का ग्रहण करना चाहिये । 'मूलाधारपीठे' के बाद चार वर्ण कहकर उसी (= मूलाधार) में न्यास करना चाहिये । तीन बीज अध्वा मन क्रोध याम्यास्त्र तदनन्तर 'चण्डकालि हाकिनि' से पहले 'महा' इन दो अक्षरों को कहने के बाद 'मम मज्जा' पदके अन्त में वही षोडशाक्षरी फिर 'आज्ञापीठे द्वि.......' को सन्धिहीन कहना चाहिये । इस मन्त्र का आज्ञाचक्र में न्यास करना चाहिये । पुनः तीन बीज का उच्चारण करे । जीव दिक् क्षत कालास्त्र के पश्चात् 'महाचण्ड' पद के पश्चात् 'कालि याकिनि' को उद्धृत कर 'मम शुक्रं' को कहना चाहिये । पूर्वोक्त सोलह वर्ण यहाँ भी

कहे जायेंगे । 'व्योमपीठे सर्व........' को ब्रह्मरन्ध्र में न्यास करना चाहिये । व्यापक न्यास का मन्त्र इससे भिन्न है । पूर्वोक्त तीन बीज मेधा काली योगिनी वधू कूर्च स्वरों के बाद समस्त व्यञ्जन फिर 'अनन्तकोटि' पद के बाद 'कालिका' शब्द का उच्चारण करना चाहिये । फिर 'महासिद्धिचक्रयोगिनीशक्ति' को उद्धृत करना चाहिये । तत्पश्चात् 'युक्तायै गुह्यकाल्यै' हृदय यह सर्वांग व्यापक मन्त्र है ॥ ७३६-७४६- ॥

[दैवतन्यासस्तस्य च ऋष्यादिनिर्देश:]

इत्युक्त्वा योगिनीन्यासो(सं?)दैवतो न्यास उच्यते ॥ ७४७ ॥
अस्य दैवतन्यासस्य प्रजापतिऋषिर्मतः ।
पंक्तिश्छन्दः स्यात् समस्तदेवता देवता तथा ॥ ७४८ ॥
तारमैधो बीजकीलौ पाशः शक्तिरुदाहृतः ।
त्रपा तत्त्वं ततः सर्वसिद्ध्यर्थे विनियोगता ॥ ७४९ ॥

दैवत न्यास और उसके ऋषि आदि—इस प्रकार योगिनी न्यास का कथन कर अब दैवत न्यास को कहा जा रहा है । इस दैवत न्यास के ऋषि प्रजापति कहे गये हैं । छन्द पंक्ति और देवता समस्त देवतायें हैं । तार बीज, मेधा कीलक और पाश शक्ति है। त्रपा तत्त्व है । इसका विनियोग समस्त उद्देश्यों की सिद्धि के लिये होता है ॥ ७४७-७४९ ॥

[दैवतन्यासस्य मन्त्रोद्धार:]

भिन्नं भिन्नं समुद्धारं मन्त्राणां त्वं निशामय ।
प्रणवो डाकिनी लज्जा ततो भगवते पदम् ॥ ७५० ॥
रुद्राय कालादित्यौ च हृत्पूर्वं परमात्मने ।
आद्यो मनुरयं प्रोक्तो ह्यन्येषामुद्धृतिं शृणु ॥ ७५१ ॥
वेदादिडाकिनीलज्जास्तारो नृहरिरेव च ।
गौः षष्ठी च पदद्वन्द्वं ततो ङेऽन्तमुदीरयेत् ॥ ७५२ ॥
आदौ क्षपिततमा........? नरसिंहस्ततः परम् ।
कालादित्यौ ततो ङेऽन्तो ज्ञानात्मा हृदयं तथा ॥ ७५३ ॥
तृतीये तु द्वितीयाद्याश्चत्वारोऽर्णाः सशुक्लिनः ।
वीर्यनिर्जितदिक्चक्रपदं ङेऽन्तमतः परम् ॥ ७५४ ॥
कालादित्यौ च धर्माय नम इत्यन्तिमाक्षरम् ।
आद्यस्याद्यास्त्रयो वर्णा मानसं नृहरिस्तथा ॥ ७५५ ॥
ङेऽन्तं तेजश्चण्डपदं कालादित्यावतः परम् ।
वैराग्याय नमश्चान्ते पञ्चमे तत आदिमा ॥ ७५६ ॥
बीजत्रयी च धनदाऽद्वैतादित्यास्तदन्वथ ।
ङेऽन्तोऽमृतात्मा तत्पश्चात् कालादित्यावतः परम् ॥ ७५७ ॥

ऐश्वर्याय नमोऽन्ते च षष्ठ आदौ त्रिबीज्यथ ।
ततस्तारकफोणौ च ज्वलयुगं प्रज्वलद्वयम् ॥ ७५८ ॥
ङेऽन्तं गीर्वाणमुखं च कालादित्यावनन्तरम् ।
अधर्माय नमश्चान्ते सप्तमं कथयामि ते ॥ ७५९ ॥

दैवतन्यास के मन्त्र का उद्धार—तुम मन्त्रों के भिन्न-भिन्न उद्धार को सुनो। प्रणव डाकिनी लज्जा बीज उसके बाद 'भगवते' पद फिर 'रुद्राय', काल आदित्य बीज 'परमात्मने' के पश्चात् हृदय मन्त्र—यह प्रथम मन्त्र कहा गया है । अब दूसरे मन्त्रों का उद्धार सुनो । वेदादि डाकिनी लज्जा तार नृसिंह के पश्चात् 'गो' और 'षष्ठी' इन दोनों पदों का चतुर्थ्यन्त उच्चारण करना चाहिये । पहले क्षपित तमा उसके बाद नरसिंह उसके बाद ङेऽन्त 'ज्ञानात्मा' और हृदय कहना चाहिए (यह दूसरा मन्त्र है) । तीसरे मन्त्र में द्वितीय से लेकर चार वर्ण शुक्ल बीज के साथ तत्पश्चात् 'वीर्य-निर्जितदिक्चक्र' पद को ङेऽन्त कहना चाहिये । फिर काल आदित्य अन्त में 'धर्माय नम:' कहना चाहिये (यह तृतीय मन्त्र है) । आद्य के प्रथम तीन वर्ण मानस नृसिंह पुन: 'तेजश्चण्ड' पद को चतुर्थ्यन्त कहकर फिर काल आदित्य अन्त में 'वैराग्याय नम:' कहना चाहिए (यह चतुर्थ मन्त्र है) । पञ्चम मन्त्र में पहले प्रथम बीजत्रयी = त्रयाणां समूह: त्रयी, बीजानां त्रयी बीजत्रयी; अर्थात् तीन बीजों का समूह (प्रणव = ॐ, डाकिनी = खफ्रें, लज्जा = ह्रीं) फिर धनदा अद्वैत आदित्य उसके बाद ङेऽन्त 'अमृतात्मा' तत्पश्चात् काल आदित्य उसके अनन्तर अन्त में 'ऐश्वर्याय नम:' कहना चाहिए (यह पञ्चम मन्त्र है)। पहले तीन बीज फिर तार कफोण तत्पश्चात् दो 'ज्वल' दो 'प्रज्वल' ङेऽन्त 'गीर्वाणमुख' उसके बाद काल आदित्य 'अधर्माय' अन्त में 'नम:' कहना चाहिए (यह षष्ठ मन्त्र है) । अब मैं तुमको सप्तम मन्त्र कह रहा हूँ ॥ ७५०-७५९ ॥

त्रिबीजी दण्डग्रावौ च ज्वालामाली ततः परम्।
कालादित्यप्रथमतो ङेऽन्तो वज्रमहाबलः ॥ ७६० ॥
अज्ञानाय नमः शेषे मनूनन्यानथो शृणु ।
आदौ सर्वत्र वेदादिः कालादित्यौ च पश्चिमे ॥ ७६१ ॥
सत्त्वं च ब्रह्मणे चाद्य आधानं नाद एव च ।
विष्णवेऽयं द्वितीयः स्यात् तृतीये चाध्वतारकौ ॥ ७६२ ॥
रुद्राय तुर्ये जीवार्णमीश्वरायाथ पञ्चमे ।
इच्छा सदाशिवाय स्यात् षष्ठे तु ग्लानिबीजतः ॥ ७६३ ॥
आत्मज्ञानाय तदनु परज्ञानाय पूरकात् ।
दण्डादघोराय ततस्त्वचोघोराय तत्परम् ॥ ७६४ ॥
प्रासादात् घोररूपाय भैरवाय तथा रुषः ।
शुक्लाच्च वीरभद्राय प्रेतात् ङेऽन्तमतः परम् ॥ ७६५ ॥

शरभवनमित्येवं पदं देवि नियोजयेत् ।
बलप्रमथनः पश्चात् प्रचण्डदण्ड इत्यपि ॥ ७६६ ॥
परमात्मा वाक्पतिश्च ङेऽन्तांश्चतुर ईरयेत् ।
ततो भूतलपातालवासिशब्दो भ्यसन्तिमः ॥ ७६७ ॥
प्रचण्डभैरवायाथ वदेत् सर्वात्मने प्रिये ।
नमो रुद्राय चेत्यन्ते ....

तीन बीज दण्ड ग्राव उसके बाद 'ज्वालामाली' फिर काल आदित्य ङेऽन्त 'वज्रमहाबल' 'अज्ञानाय नमः' (यह सप्तम मन्त्र है) । अब अन्य मन्त्रों को सुनो—सब मन्त्रों के पहले वेदादि अन्त में काल आदित्य सत्त्व फिर 'ब्रह्मणे'—यह प्रथम मन्त्र है । आधान नाद और 'विष्णवे'—यह द्वितीय मन्त्र है । तृतीय मन्त्र में अध्व और तारक (के अतिरिक्त शेष वहीं वर्ण रहते हैं । बीच में) 'रुद्राय' होता है । चतुर्थ में सब वर्ण पूर्ववत् केवल जीव तथा 'ईश्वराय' भिन्न है । पञ्चम में इच्छा बीज और 'सदाशिवाय'; षष्ठ में ग्लानिबीज के बाद 'आत्मज्ञानाय'; उसके पश्चात् (सप्तम में) पूरक के बाद 'परज्ञानाय' होता है । (अष्टम में) दण्ड के बाद 'अघोराय'; उसके बाद (नवम में) त्वचा के बाद 'घोराय'; (दशम में) प्रसाद बीज के बाद 'घोररूपाय'; (एकादश में) क्रोध के बाद 'भैरवाय'; (द्वादश में) शुक्ल के बाद 'वीरभद्राय'; इसके बाद (त्रयोदश में) प्रेत के बाद ङेऽन्त 'शरभ वन' । हे देवि! इस प्रकार पद का निवेश करना चाहिये ।

'बलप्रमथन' के पश्चात् 'प्रचण्डदण्ड परमात्मा' तथा 'वाक्पति' इन चार को ङेऽन्त कर उच्चारण करना चाहिये । इसके अनन्तर 'भूतलपातालवासि' शब्द को चतुर्थी बहुवचनान्त कहकर हे प्रिये! 'प्रचण्डभैरवाय' कहना चाहिये तथा अन्तिम मन्त्र के लिये 'सर्वात्मने नमो रुद्राय' कहना चाहिये ॥ ७६०-७६८ ॥

.... स्थानान्याकलयाधुना ॥ ७६८ ॥
आदौ ललाटेऽनु दृशोर्गण्डयोः कर्णयोरपि ।
स्कन्धयोरथ बाह्वोश्च कराङ्गुलिषु वक्षसि ॥ ७६९ ॥
जङ्घायां पादयोः पादाङ्गुलीष्वथ अनाहते ।
पुनस्तालुनि बिन्दौ चार्धचन्द्रे नाद एव च ॥ ७७० ॥
निरोधिकायां व्यापिन्यां रसनायां ततः परम् ।
कुलकूले मनोन्मन्यामुन्मन्यां शाम्भवान्तिमे ॥ ७७१ ॥
षोडशान्ते च सूक्ष्मान्ते परान्ते कूल एव च ।
सप्तविंशतिरेतानि व्यापकं शृण्वतः परम् ॥ ७७२ ॥
चैतन्यडाकिनीलज्जातारेभ्यः परिकीर्तयेत् ।
ङेऽन्तः प्रचण्डचण्डानु महाघोरानु भैरवः ॥ ७७३ ॥
क्रमाद्‌द्विः द्विरनूच्चार्य मर्दय ज्वल प्रज्वल ।

डाकिनी भासाकूटं च कौमुदी रोषसंविदौ ॥ ७७४ ॥
कालनाशक मां रक्षद्वितयं तदनन्तरम् ।
ङेऽन्तो महाप्रचण्डानु भैरवः प्राग् द्विबीज्यपि ॥ ७७५ ॥
एतेन व्यापकं न्यस्येद् देवतान्यास ईदृशः ।

हे प्रिये! अब (न्यसनीय) स्थानों को सुनो । पहले ललाट में, तत्पश्चात् दोनों आँख गण्ड कान स्कन्ध बाहु कराङ्गुलियों में वक्षस्थल जङ्घा दोनों पैर फिर पादाङ्गुलियों में तत्पश्चात् अनाहत तालु बिन्दु अर्धचन्द्र नाद निरोधिका व्यापिनी रसना कुलकूल मनोन्मनी (= समना) उन्मना शाम्भवान्तिम षोडशान्त सूक्ष्मान्त परान्त कूल ये सत्ताईस स्थान हैं । इसके पश्चात् व्यापक को सुनो । चैतन्य डाकिनी लज्जा तार के पश्चात् 'प्रचण्डचण्डमहाघोरभैरव का चतुर्थ्यन्त उच्चारण करने के बाद 'मर्दय ज्वल प्रज्वल' को दो-दो बार कहना चाहिये । डाकिनी भासाकूट कौमुदी रोष संवित् के अनन्तर 'कालनाशक मां' फिर दो 'रक्ष' तत्पश्चात् ङेऽन्त 'महाप्रचण्डभैरव' इसके पहले द्विबीजी (= नमः) (अथवा पहले ङेऽन्त 'महाप्रचण्ड भैरव' को कहना चाहिये बाद में द्विबीजी को भी कहना चाहिये) । इससे व्यापक न्यास करना चाहिये । इस प्रकार का यह देवता न्यास है ॥ ७६९-७७५- ॥

[मन्त्रक्रमन्यासस्तस्य च ऋष्यादिनिर्देशः]

अथ मन्त्रक्रमन्यासं षष्ठमाकलयाबले ॥ ७७६ ॥
भरद्वाज ऋषिस्तस्य छन्द उष्णिक् तथैव च ।
समस्तमन्त्राश्चैतस्य देवताः परिकीर्तिताः ॥ ७७७ ॥
तारो बीजं त्रपा शक्तिर्हाकिनी कीलकं तथा ।
कूर्चस्तत्त्वं ततः सर्वाभीष्टसिद्ध्यर्थ एव च ॥ ७७८ ॥
विनियोगः समुद्दिष्टो न्यासोद्धारमथो शृणु ।

मन्त्रक्रमन्यास और उसके ऋषि आदि—हे अबले! अब छठवें मन्त्रक्रमन्यास को समझो । इसके ऋषि भरद्वाज, छन्द उष्णिक् तथा समस्त मन्त्र इसकी देवतायें कही गयी हैं । तार बीज, त्रपा शक्ति, हाकिनी कीलक और कूर्च तत्त्व है । इसका विनियोग सर्वाभीष्ट सिद्धि के लिये कहा गया है ॥ ७७६-७७८ ॥

[मन्त्रक्रमन्यासस्य मन्त्रोद्धारः]

दशानामपि वक्त्राणां दश मन्त्राःपृथक् पृथक् ॥ ७७९ ॥
तांस्ते विविच्य वक्ष्यामि ततोऽन्यानपरान् क्रमात् ।
अखिलानां पुरस्तारो डाकिनी भुवनेश्वरी ॥ ७८० ॥
तत्तद्वक्त्राय हृच्चान्ते विशेषं मध्यगं शृणु ।
वधूबीजान्महाचण्डयोगेश्वरि समुद्धरेत् ॥ ७८१ ॥
मानसं वज्रकापाले प्रथमोऽयं मनुर्मतः ।

वेदादियोगिनीरोषवधूमर्म्मरिसंविदः ॥ ७८२ ॥
तार्तीये सानुरस्त्राणां त्रितयं समुदाहृतम् ।
तुर्ये तु निगमादीरुड्बान्धवः सानुचुल्लिकौ ॥ ७८३ ॥
रुट्संविदस्त्राणि ततः पञ्चमं कलयाधुना ।
वधूबान्धवमाण्डिल्यकुम्भाङ्गाः क्रोध एव च ॥ ७८४ ॥
दिव्यभालः संविदस्त्रे कूर्चत्रितयमेव च ।
अस्त्रत्रितयमस्यानु षष्ठं वच्म्यधुना प्रिये ॥ ७८५ ॥
पुष्पमालैकावली च कौमुदीचामरक्रमाः ।
संविद् रुडस्त्रे त्रिस्त्रिश्च सप्तमं कथयामि ते ॥ ७८६ ॥
योगिनीविद्युदमृतमेखलाहारकिन्नराः ।
संविद्रोषत्रयं चास्त्रत्रितयं तदनन्तरम् ॥ ७८७ ॥
अष्टमः शाकिनीभोगशृङ्खलाप्रलयांशवः ।
भ्रामरीसंविदस्त्राणि त्रिस्त्रिः कूर्चास्त्रयोरपि ॥ ७८८ ॥
नवमे तु पुरः प्रेतो हैमनास्त्रं च दण्डयुक् ।
काली नित्यश्च शङ्खश्च दशमं कलयाधुना ॥ ७८९ ॥
नित्यकामप्रभारत्नकुम्भाः फलकमेव च ।
दिव्यभालः पुष्पमाला संविद् रोषास्त्रयोस्त्रयम् ॥ ७९० ॥

मन्त्रक्रमन्यास के मन्त्र का उद्धार—दश वक्त्रों के पृथक्-पृथक् दश मन्त्र हैं। उनको मैं तुम्हें अलग-अलग कर बतलाऊँगा। फिर अन्य-अन्य को क्रम से कहूँगा। सभी मन्त्रों के पहले तार डाकिनी और भुवनेश्वरी बीज होते हैं। इसके बाद तत्तत् वक्त्र और अन्त में हृदय मन्त्र होता है। अब मध्यवर्ती विशेष शब्दों को सुनो। वधू बीज के पश्चात् 'महाचण्डयोगेश्वरि' कहना चाहिये। मानस बीज 'वज्रकापाले' यह पहला मन्त्र कहा गया है। वेदादि योगिनी रोष वधू 'मर्मरि' संविद् (यह द्वितीय मन्त्र है)। तार्तीय सानु और तीन अस्त्र—यह तीसरा मन्त्र है। चौथे में वेदादि क्रोध बान्धव सानु चुल्लिका क्रोध संविद् और अस्त्र होते हैं। अब पाँचवें मन्त्र को समझो। वधू बान्धव माण्डिल्य कुम्भक अङ्ग क्रोध दिव्यमाल संवित् अस्त्र तीन कूर्च तीन अस्त्र—(यह पञ्चम मन्त्र है)। हे प्रिये! अब षष्ठम मन्त्र बतला रहा हूँ। पुष्पमाला एकावली कौमुदी चामर क्रम संवित् के पश्चात् तीन-तीन रोष और अस्त्र—(यह षष्ठम मन्त्र है)। अब तुमको सप्तम बतला रहा हूँ। योगिनी विद्युत् अमृत मेखला हार किन्नर संविद् के बाद तीन रोष और तीन अस्त्र—(यह सप्तम मन्त्र है)। अष्टम मन्त्र वह है जिसमें शाकिनी भोग शृङ्खला प्रलय अंशु भ्रामरी संवित् अस्त्र तथा तीन-तीन कूर्च और अस्त्र होते हैं। नवम मन्त्र में पहले प्रेत हैमन अस्त्र दण्ड काली नित्य और शङ्ख बीज होते हैं। अब दशवें को सुनो, नित्य काम प्रभा रत्न कुम्भ फलक दिव्य भाल पुष्पमाला संविद् के बाद रोष और अस्त्र तीन बार—(यह दशम मन्त्र है) ॥ ७८०-७९० ॥

प्राक्पदानि तु वक्त्रस्य प्रवदाम्यधुना तव ।
द्वीपी सिंहश्च फेरुश्च कपि ऋक्षो नरस्तथा ॥ ७९१ ॥
गरुडो मकरश्चैव गजो हय इतः परम् ।
अथैषां स्थानमाख्यास्ये दशानामपि पार्वति ॥ ७९२ ॥
ततोऽपरान् मनून् वक्ष्ये स्थानं तस्य ततः परम् ।
ब्रह्मरन्ध्रं ललाटं च नेत्रे दक्षिणवामके ॥ ७९३ ॥
कर्णौ तथा कपोलौ च हृदयं शिर एव च ।
षडन्यानपरान् मन्त्रानुद्धराम्यवधारय ॥ ७९४ ॥
प्राक्तन्येव त्रिबीज्यादौ हृन्मन्त्रान् सन्धिसंयुतान् ।
चामुण्डे समनूद्धृत्य मालिन्यपि करङ्कतः ॥ ७९५ ॥
पुनः करङ्कमालानु धारिणि प्रतिकीर्तयेत् ।
ततो भगवति प्रोच्य इच्छानिर्वेदसंविदान् ॥ ७९६ ॥
चण्डकापालिनी शब्दो महातः कालिका तथा ।
उभयं ङेऽन्तमुल्लिख्य शेषे हृन्मन्त्रमुद्धरेत् ॥ ७९७ ॥
मूलाधारे न्यसेदेनं द्वितीयमवधारय ।
पूर्वोदितत्रिबीज्यन्ते गामस्त्रं परिकीर्तयेत् ॥ ७९८ ॥
महाचण्डाद् भैरवि च भ्रामरीमथ दक्षिणाम् ।
अस्त्रं प्रस्वापनास्त्रं च चूडामणिमतः परम् ॥ ७९९ ॥
द्वीपार्णादप्यन(मितं ?) कीलं तदनु मेखला ।
स्कान्दास्त्रात् तत्पुनर्वाच्यं मेखला प्राग्वदीरितम् ॥ ८०० ॥
स्वाधिष्ठाने न्यसेदेनं तृतीयमधुना शृणु ।

अब मैं तुमको 'वक्त्र' के पूर्ववर्त्ती पदों को बतला रहा हूँ—द्वीपी सिंह फेरु कपि ऋक्ष नर गरुड मकर गज और हय । हे पार्वति! इसके बाद अब दशों स्थानों को बतलाऊँगा । इसके बाद अन्य मन्त्रों को और उसके पश्चात् उनके स्थान को कहूँगा । स्थान ब्रह्मरन्ध्र ललाट दाँयाँ बाँयाँ नेत्र दोनों कान दोनों कपोल हृदय और शिर हैं । अब अन्य छह मन्त्रों का उद्धार बतलाता हूँ; ध्यान दो । पहले पूर्वोक्त तीन बीज फिर सन्धियुक्त हृदय मन्त्र के अनन्तर 'चामुण्डे' कहकर 'करङ्कमालिनि' पुनः 'करङ्कमाला-धारिणि' का कथन करना चाहिये । इसके पश्चात् 'भगवति' कहकर इच्छा निर्वेद संविद् बीजों के पश्चात् चण्डकापालिनि तथा महाकाली दोनों का ङेऽन्त उल्लेख कर अन्त में हृदय मन्त्र का उल्लेख करना चाहिये । इस मन्त्र से मूलाधार में न्यास करना चाहिये । दूसरे मन्त्र को समझो । पूर्वोक्त तीन बीजों के अन्त में गौ और अस्त्र का कीर्तन करना चाहिये । 'महाचण्ड' पद के बाद 'भैरवि' फिर भ्रामरी दक्षिणा अस्त्र प्रस्वापन अस्त्र उसके पश्चात् चूडामणि द्वीप वर्ण के बाद अनन्त कील मेखला स्कान्द अस्त्र के बाद मेखला तत्पश्चात् पूर्वोक्त (= चण्डकापालिन्यै महाकाल्यै नमः) इस मन्त्र का स्वाधिष्ठान में न्यास करना चाहिये । अब तीसरे मन्त्र को सुनो ॥ ७९१-८००-॥

तारो माया मौल्यनलविहीना मेखला ततः ॥ ८०१ ॥
दिगधः सानला ऋद्धिः काकिनीकालिकारुषः ।
अस्त्रमन्ते न्यसेदेनं मणिपूरे वरानने ॥ ८०२ ॥
पैशाचास्त्रं कालिका च त्रपा च त्रिशिखा तथा ।
मानसं काकिनी चैव कापालं वज्रमस्त्रयुक् ॥ ८०३ ॥
अनाहते न्यसेदेनं विशुद्धेरधुना शृणु ।
पुरतो रतिनागौ चौदुम्बरं हारमेखले ॥ ८०४ ॥
चत्वार्यधोऽनलीनि स्युस्तदनन्तरमीश्वरि ।
अध्वश्रमाधानजीवसंख्यकं प्रतिलोमतः ॥ ८०५ ॥
कालिकायै नमश्चान्ते आज्ञायाः कलयाधुना ।
हारं यममुखि प्रोच्य यमहस्ते ततः परम् ॥ ८०६ ॥
सानुं जम्भं तथा चूडामणिमस्त्रत्रयं ततः ।
षट्चक्रमन्त्रानेतान् वै विन्यस्य तदनन्तरम् ॥ ८०७ ॥
भारत्या एव सर्वत्र षडङ्गं चाचरेत् पुनः ।
पुनस्तस्यैव मन्त्रस्य सप्तार्णान् परिकीर्त्य वै ॥ ८०८ ॥
वदेद्दक्षिणवक्त्राय हृदन्ते दक्षिणे न्यसेत् ।
तदनु त्र्यर्णमाभाष्य वामवक्त्राय हृत्तथा ॥ ८०९ ॥
वामे प्रविन्यसेद्देवि ततोऽनु च षडक्षरम् ।
प्रोच्य मध्यमवक्त्राय नमोऽन्ते मध्यतो न्यसेत् ॥ ८१० ॥

तार माया मौलि, अनल (= रेफ) से रहित मेखला, नीचे अग्नि सहित दिक्, ऋद्धि काकिनी कालिका क्रोध और अन्त में अस्त्र, हे वरानने! इससे मणिपूर में न्यास करना चाहिए। पैशाचास्त्र कूट काली त्रपा त्रिशिखा मानस काकिनी कपाल वज्र और अस्त्र—इसका अनाहत में न्यास करना चाहिये । अब विशुद्धि का न्यास सुनो । पहले रति नाग औदुम्बर हार मेखला, हे ईश्वरि! उसके बाद नीचे चार अनली (= रेफयुक्त) अध्वा श्रम आधान और जीव को विपरीत क्रम से रखना चाहिये । 'कालिकायै' अन्त में 'नमः' (यह विशुद्धि का न्यास है) अब आज्ञा चक्र का न्यास सुनो । हार 'यममुखि' कहकर उसके बाद 'यमहस्ते' सानु जम्भ चूडामणि तीन अस्त्र—(यह आज्ञाचक्र का न्यास है) । इन छह चक्रमन्त्रों का न्यास कर उसके अनन्तर भारती मन्त्र के ही द्वारा सर्वत्र षडङ्ग न्यास करना चाहिये । पुनः उसी मन्त्र के सात वर्णों का कथन कर 'दक्षिणवक्त्राय' कहना चाहिए । फिर अन्त में 'नमः' कहकर दक्षिण भाग में न्यास करना चाहिए । उसके पश्चात् तीन अक्षरों का कथन कर 'वामवक्त्राय नमः' से हे देवि! वाम भाग में न्यास करना चाहिए । इसके बाद छह अक्षरों का उच्चारण 'मध्यमवक्त्राय' अन्त में 'नमः' कहकर मध्य में न्यास करना चाहिये ॥ ८०१-८१० ॥

पुनर्मूलमनोर्देवि एकैकं वर्णमुच्चरन् ।
रावाभ्यां पुटितं कृत्वा मध्यगं तं यथास्थितम् ॥ ८११ ॥
स्थलेषु वक्ष्यमाणेषु विन्यसेत् षोडशस्वपि ।
तत्तत्स्थानपदं मुक्त्वा नवार्णच्छेषतो वदेत् ॥ ८१२ ॥
तच्च देवेश्वरि स्थानपादुकां पूजयामि हि ।
अधुना तु (स्थानं तत्तत् साधु)[१] ते कथयाम्यहम् ॥ ८१३ ॥
आदौ शिरोऽनु हृदयं नाभिश्च तदनन्तरम् ।
ततो दक्षिणनेत्रं च वामनेत्रमतः परम् ॥ ८१४ ॥
वामनासापुटं नासापुटं दक्षिणतस्तथा ।
वामकर्णो दक्षिणतः कर्णो लिङ्गं तथैव च ॥ ८१५ ॥
गुह्यं भ्रूमध्यमस्यानु ब्रह्मरन्ध्रं शिरस्तथा ।
ततो मस्तकात्पादान्तं पादान्मस्तकान्तं तथा ॥ ८१६ ॥
इति षोडश देवेशि स्थानानि कथितानि (ते?)।
अस्यानु मन्त्रद्वितयं वर्तते साङ्गताकरम् ॥ ८१७ ॥
तदाकलय तारश्रीसंविदो गुह्यकालिकम् ।
अस्त्रमत्रिः क्रोधहृदी शिरसि प्रतिविन्यसेत् ॥ ८१८ ॥
मनुं द्वितीयं सर्वाङ्गव्यापकं कलयाधुना ।
प्रणवो डाकिनी लज्जा चैतन्यं डाकिनी त्रपा ॥ ८१९ ॥
कामलं डाकिनी चापि मेषो नादो नदर्चियुक् ।
अस्त्रं च कूर्चयोर्मध्ये डाकिनी तदनन्तरम् ॥ ८२० ॥
ततः सिद्धिकरात्युक्त्वा ताररावौ प्रकीर्तयेत् ।
नादोनदर्व्वी शिरसं राकां तदनु चोद्धरेत् ॥ ८२१ ॥
ततो महाचण्डयोगेश्वरीपदमुदीरयेत् ।
श्रीपादुकायै हृच्चान्तेऽमुना हि व्यापकं चरेत् ॥ ८२२ ॥
इत्येष कथितो देवि मन्त्रन्यासो महाफलः ।
एनं विधाय सर्वान्ते लघुषोढा समाप्यते ॥ ८२३ ॥

हे देवि! पुनः मूल मन्त्र के एक-एक अक्षर का उच्चारण करते हुए उसे राव बीज से सम्पुटित कर मध्य में स्थापित करे । फिर उनका वक्ष्यमाण सोलह स्थानों में न्यास करे । तत्तत् स्थानवाची पद को छोड़कर अन्त में नव वर्णों का कथन करना चाहिये । हे देवेश्वरि! वे नव वर्ण हैं—'स्थानं पादुकां पूजयामि' । अब मैं उन-उन स्थानों को तुमको भलीभाँति कह रहा हूँ । पहले शिर फिर हृदय तदनन्तर नाभि उसके बाद दक्षिण नेत्र इसके बाद वाम नेत्र फिर वाम नासापुट तत्पश्चात् दक्षिण नासापुट वाम कर्ण दक्षिण कर्ण लिङ्ग गुह्य भ्रूमध्य इसके बाद ब्रह्मरन्ध्र शिर इसके

---

१. स्थान तत्

पश्चात् मस्तक से पैर तक तथा पैर से मस्तक तक हे देवि! ये सोलह स्थान तुमको वतलाये गये । इसके बाद दो मन्त्र साङ्गता को सिद्ध करने के लिये हैं । उनको सुनो—तार श्री संविद् गुह्यकाली (?) अस्त्र अत्रि क्रोध और हृदय से शिर में न्यास करना चाहिये । अब सर्वांग व्यापक दूसरे मन्त्र को समझो । प्रणव डाकिनी लज्जा चैतन्य डाकिनी त्रपा कमला डाकिनी मेष नाद नद अर्चि अस्त्र दो कूर्चों के मध्य डाकिनी तदनन्तर 'सिद्धिकरालि' कहकर तार और राव का कीर्तन करना चाहिए । नादोनदर्वी फिर राका को उद्धृत करना चाहिये । फिर 'महाचण्डयोगेश्वरि श्रीपादुकायै' और हृदय—इससे व्यापक न्यास करना चाहिये । हे देवि! इस प्रकार तुमको यह महाफलदायी न्यास बतलाया गया । सबके अन्त में इसका विधान करने के अनन्तर लघुषोढान्यास समाप्त होता है ॥ ८११-८२३ ॥

[लघुषोढान्यासस्य माहात्म्यकीर्तनम्]

नानया सदृशी विद्या त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
कालीकुलक्रमायाता सिद्धिदा परमेश्वरी ॥ ८२४ ॥
लघुषोढेति विख्याता नाम्नेयं निखिलागमे ।
कर्तव्या भक्तिभावेन गुह्या सन्तोषहेतवे ॥ ८२५ ॥
न्यासानामिह सर्वेषामियं मुख्यतमा मता ।
विन्यस्तव्या प्रयत्नेन बहुमङ्गलमिच्छता ॥ ८२६ ॥

लघुषोढान्यास का माहात्म्य—तीनो लोकों में इसके समान विद्या नहीं है । कालीकुल क्रम से आयी हुई यह परमेश्वरी सिद्धिदा विद्या समस्त आगमों में लघुषोढा के नाम से विख्यात है । गुह्यकाली के सन्तोष के लिये यह गुह्य षोढान्यास भक्तिभाव से युक्त होकर करना चाहिये । यहाँ वर्णित समस्त न्यासों में यह मुख्यतम है । अत्यधिक कल्याण चाहने वालों के द्वारा इसका प्रयत्नपूर्वक न्यास करना चाहिये ॥ ८२४-८२६॥

[लघुषोढान्याससमाप्त्यवसरे बलिद्वयदानविधिः]

लघुषोढां समाप्येत्थं दद्याद्देवि बलिद्वयम् ।
एकेन रुद्रमन्त्रेण भैरवस्यापरेण च ॥ ८२७ ॥
तयोरुद्धारमधुना समाकलय पार्वति ।
त्रपालक्ष्म्यौ सर्वपीठे(महादेवि?) ततः परम् ? ॥ ८२८ ॥
चक्रयोगेश्वरी प्रोच्य चन्द्रपीठे ततो वदेत् ।
व्योमकाली समाभाष्य सिद्धिपीठे ततो वदेत् ॥ ८२९ ॥
मातङ्गिनी समुद्धृत्य योगपीठे ततः परम् ।
भीमकाली कामरूपपीठे तदनु कीर्तयेत् ॥ ८३० ॥
सिद्धिकाली पूर्णगिरिपीठे तस्यानु संवदेत् ।
चण्डकाली ओड्डियानपीठे तस्याप्यनूच्चरेत् ॥ ८३१ ॥

रक्तकाली समाभाष्य रावान्ता चतुरक्षरी ।
प्रेतश्च भैरवी सर्वसमयाल्लाभमीरयेत् ॥ ८३२ ॥
कुरुद्वयं सुसिद्धिं च प्रसरेति द्विरुच्चरेत् ।
प्रसारय द्वयं चैव समाधिद्वितयं ततः ॥ ८३३ ॥
आदित्यद्वितयं चाथ सर्गिद्विः कौरजार्णकम् ।
खाहि द्विः कालिकाबीजद्वितयं ह्रीयुगं तथा ॥ ८३४ ॥
गोद्वयं वाहियुगलं काहि खाहि द्वयं द्वयम् ।
द्रोहः क्रोधस्तथा सत्त्वमिरे सत्त्वमुषस्तथा ॥ ८३५ ॥
क्रोधाध्वाध्यानमायाश्च लक्ष्मीः क्रोधश्च भैरवी।
राका गुडः क्रोधयुगमंशुः क्रोधोऽस्त्रहृच्छिरः ॥ ८३६ ॥
इत्येष कथितो रुद्रमन्त्रः परमशोभनः ।
न्यासं समाप्य मनुनामुना बलिमथाहरेत् ॥ ८३७ ॥

लघु षोढान्यास की समाप्ति पर बलिदान—हे देवि! इस प्रकार लघुषोढा को समाप्त कर दो बलि देनी चाहिये । एक बलि रुद्रमन्त्र से दूसरी भैरव के मन्त्र से । हे पार्वति! अब दोनों मन्त्रों का उद्धार सुनो । त्रपा लक्ष्मी बीजों के बाद 'सर्वपीठे (हे महादेवि!) उसके बाद 'चक्रयोगेश्वरी' कहकर फिर 'चन्द्रपीठे' कहना चाहिये । 'व्योम-काली' का भाषण कर फिर 'सिद्धिपीठे' का उच्चारण करना चाहिये । 'मातङ्गिनी' को उद्धृत कर फिर 'योगपीठे' का उल्लेख करना चाहिये। उसके पश्चात् 'भीमकाली कामरूपपीठे' का कीर्त्तन करना चाहिये । तत्पश्चात् 'सिद्धिकाली पूर्णगिरिपीठे' बोलना चाहिये । उसके पीछे 'चण्डकाली ओड्डियानपीठे' कहना चाहिये । 'रक्तकाली' कहकर इस उक्त चतुरक्षरी (= रक्तकाली) के अन्त में राव कहने के बाद प्रेतभैरवी 'सर्वसमयलाभं' कहना चाहिये । 'कुरु' को दो बार 'सुसिद्धिं' के पश्चात् 'प्रसर' का दो बार उच्चारण करना चाहिये । दो 'प्रसारय' दो समाधि दो आदित्य फिर दो सर्गि (= विसर्ग वाला) कौरजवर्ण, दो 'खाहि' दो कालीबीज दो लज्जा बीज दो गौं दो 'वाहि' 'काहि' 'खाहि' को दो-दो बार फिर द्रोह क्रोध सत्त्वमिरे (?) सत्त्वमुष (?) क्रोध अध्वा ध्यान माया लक्ष्मी क्रोध भैरवी राका गुड दो क्रोध अंशु क्रोध अस्त्र हृदय और शिर । इस प्रकार परमशोभन रुद्रमन्त्र बतलाया गया । इस न्यास की समाप्ति के बाद इस मन्त्र से बलि देनी चाहिये ॥ ८२७-८३७ ॥

अथापरेण मन्त्रेण भैरवाख्येन पार्वति ।
कालिकायै बलिं दद्याद् द्वितीयं भक्तिभावितः॥ ८३८ ॥
द्रव्यं बालेयमीशानि प्रोक्तं स्वं स्वं यथोदितम् ।
प्रणवो वाग्भवं माया कमला काम एव च ॥ ८३९ ॥
योगिनी रोषवध्वश्च शाकिनी डाकिनी तथा ।
फेत्कार्यनाहतं कूटं खेदो मुक्ता तथैव च ॥ ८४० ॥

हारसानुप्रेतशक्तिशृणिकङ्कालवज्रकाः ।
कापालं फट्त्रयस्यान्ते विसन्ध्येह्येहि कीर्तयेत् ॥ ८४१ ॥
ततो भगवति प्रोच्य गुह्यकालि समुद्धरेत् ।
पुनः सकलशब्दानु परापरकुलोच्चरेत् ॥ ८४२ ॥
चक्रमन्त्रपदाद् यन्त्रमयदेहे समीरयेत् ।
समांसरक्तानु बलिं ततः षण्णां युगं वदेत् ॥ ८४३ ॥
गृह्ण गृह्णापय तथा भक्ष भक्षय चेत्यपि ।
खाद खाह्यनु प्रत्यक्षपरोक्षं द्वेषिणो मम ॥ ८४४ ॥
शत्रूनिति समाभाष्य षण्णां युग्मं हि पूर्ववत् ।
प्रवदेदीश्वरि दह तथा मर्दय पातय ॥ ८४५ ॥
मूर्च्छय त्रासय तथा ततोऽन्वपि च शोषय ।
स्वखर्परे स्थापय द्विस्ततो वै दीर्घदंष्ट्रया ॥ ८४६ ॥
भिन्धि छिन्धि युगं युग्ममस्त्रत्रितयमेव च ।

हे पार्वति! इसके बाद भक्तियुक्त होकर भैरव नामक दूसरे मन्त्र से कालिका के लिये दूसरी बलि देनी चाहिये । हे ईशानि! बलि से सम्बद्ध अपने-अपने द्रव्य पूर्वोक्त ही लेने चाहिये ! (मन्त्रोद्धार-) प्रणव वाग्भव माया कमला काम योगिनी रोष वधू शाकिनी डाकिनी फेत्कारी अनाहत कूटखेद मुक्ता हार सानु प्रेत शक्ति शृणि कङ्काल वज्र कापाल तीन 'फट्' के अन्त में सन्धिरहित 'एहि एहि' कहना चाहिये । इसके बाद 'भगवति' कहकर 'गुह्यकालि' को उद्धृत करना चाहिये । पुनः 'सकल' शब्द के बाद 'परापरकुल' का उच्चारण करना चाहिये । 'चक्रमन्त्र' पद के बाद 'यन्त्रमयदेहे' का कथन करना चाहिये । 'समांसरक्तबलि' के पश्चात् निम्नलिखित छह को दो-दो बार कहना चाहिये । वे हैं—गृह्ण गृह्णापय भक्ष भक्षय खाद तथा खाहि । इसके बाद 'प्रत्यक्षपरोक्षं द्वेषिणो मम शत्रून्' कहकर निम्नलिखित छह को पुनः पूर्ववत् कहना चाहिये । वे हैं—दह मर्दय पातय मूर्च्छय त्रासय तथा शोषय' । फिर 'स्वखर्परे' के बाद दो 'स्थापय' फिर 'दीर्घदंष्ट्रया' 'भिन्धि' 'छिन्धि' को दो-दो बार तथा तीन अस्त्र कहना चाहिये ॥ ८३८-८४६ ॥

पाशः कला च सर्वश्च वाग्भवोऽश्वत्थ एव च॥ ८४७ ॥
मम राज्यं देहि युगं दापय द्वितयं तथा ।
पुत्रपौत्रधनैश्वर्यायुः स्त्रीवाजिगजेत्यपि ॥ ८४८ ॥
रत्नसौभाग्यपदतः ससन्ध्यारोग्य कीर्तयेत् ।
समृद्ध्या मां पूरय द्विर्वर्ष वर्षापय द्वयम् ॥ ८४९ ॥
तारो माया योगिनी च रुड्वधूबीजमेव च ।
अस्त्रत्रयं हृद्युगलं सन्ध्याढ्यं शिर एव च ॥ ८५० ॥
एतावता समाप्येत मन्त्रो भैरवनामकः ।

प्रदद्याद् बलिमेतेन तेन न्यासः समाप्यते ॥ ८५१ ॥
षोढान्यासमिमं कृत्वा गुह्यकाल्यास्तु साधकः ।
सर्वत्र जयमाप्नोति सिद्धिं चापि पदे पदे ॥ ८५२ ॥
पूजावसर एवामुं कुर्यान्नान्यक्षणे प्रिये ।
नास्त्येवं नियमः कोऽपि स्वेच्छैवात्र नियामिका ॥ ८५३ ॥
दिवसे वा तथा रात्रौ सन्ध्यायां प्रातरेव वा ।
यदा तदा प्रकर्तव्यो न कालनियमः कृतः ॥ ८५४ ॥
स्मार्तानामथ कौलानां रीतिरेकैव कीर्तिता ।
प्रयोगकरणे देवि उत्तरां तु क्रियां पुनः ॥ ८५५ ॥
कौलिकाः कुर्वते देवि पृथगेव निबोध ताम् ।

पाश कला सर्व वाग्भव अश्वत्थ 'मम राज्यं' के बाद दो 'देहि' दो 'दापय' पुत्रपौत्रधनैश्वर्यायु: स्त्रीवाजिगजरत्नसौभाग्य' पद के बाद सन्धियुक्त 'आरोग्य' कहना चाहिये । 'समृद्ध्या मां' के बाद 'पूरय' 'वर्ष' 'वर्षापय' को दो-दो बार तार माया योगिनी क्रोध वधू तीन अस्त्र सन्धियुक्त दो हृदय और एक शिर—इतने से भैरव नामक मन्त्र समाप्त होता है । साधक गुह्यकाली के षोढान्यास को करके सर्वत्र जय प्राप्त करता है । पग-पग पर उसको सिद्धि मिलती है । हे प्रिये! इसको पूजा के ही अवसर पर करना चाहिये अन्य समय में नहीं—ऐसा कोई नियम नहीं है । यहाँ स्वेच्छा ही नियामिका है । दिन में रात्रि में सन्ध्याकाल प्रात: जिस किसी समय इसको करना चाहिये । इसमें काल का नियम नहीं है । स्मार्तों और कौलमार्गियों की रीति एक ही कही गयी है । हे देवि! प्रयोग करने के समय कौलिक लोग उत्तर क्रिया को करते हैं । हे देवि! उस क्रिया को अलग से जानो ॥ ८४७-८५५ ॥

[तान्त्रिकाणां प्रमुखसम्प्रदायचतुष्टयस्य निर्देश:]

कापालिकाः भाण्डिकेराः मौलेयाश्च दिगम्बराः ॥ ८५६ ॥
शक्तिपूजां प्रकुर्वन्ति न्यासानन्तरमेव हि ।
तद्विधानं मया वाच्यं नैमित्तिकसमर्हणे ॥ ८५७ ॥
धूपदीपादिनैवेद्यदानमामिषसंयुतम् ।
आवश्यकतया देव्यै ददति प्रीतिकारकम् ॥ ८५८ ॥
न्यासं कृत्वा मुहूर्तेऽन्ते तिष्ठन्त्यन्तर्हिता रहः ।
तद्धेतुः सन्निधत्तेऽङ्गे क्षणमेषां हि कालिका ॥ ८५९ ॥
अतो मनुष्यैरालापं सह चैते न कुर्वते ।
प्रत्यक्षं मानसं वापि चरन्त्यात्मप्रपूजनम् ॥ ८६० ॥

तान्त्रिकों के प्रमुख चार सम्प्रदाय—तान्त्रिकों के चार सम्प्रदाय—कापालिक भाण्डिकेर मौलेय और दिगम्बर हैं । ये न्यास के पश्चात् ही शक्तिपूजा करते हैं । नैमित्तिक पूजन के लिये मैं उस विधान को बतला रहा हूँ । मांसरहित धूप दीप नैवेद्य

को ये लोग अनिवार्य रूप से देवी को देते हैं । यह देवी का प्रीतिकारक द्रव्यसमूह है । इस न्यास का सम्पादन कर वे थोड़ी देर तक एकान्त में छिप कर रहते हैं । इसके कारण एक क्षण के लिये कालिका इनके अङ्गों में सन्निहित हो जाती हैं । इसीलिये वे मनुष्यों के साथ संवाद नहीं करते । प्रत्युत वे आत्मदेव का प्रत्यक्ष अर्थात् बाह्य या मानस पूजन करते हैं ॥ ८५६-८६० ॥

[आत्मपूजाविसर्जनमन्त्राभिधानम्]

विसर्जनं विदधति तदनन्तरमीश्वरि ।
तन्मन्त्रस्तारचैतन्यकालीरावाश्च डाकिनी ॥ ८६१ ॥
ततो भगवति प्रोच्य गुह्यकालि समीरयेत् ।
परमात्मनि लीना च भव चैतन्यरूपिणि ॥ ८६२ ॥
कैवल्यं प्रविश प्रोच्य सायुज्यं धेहि कीर्तयेत् ।
स्वस्थानं गच्छ सम्भाष्य फडङ्गुष्ठौ शिरोऽपि च ॥ ८६३ ॥
एवं नानाविधा रीतीर्न्यासान्ते विदधत्यमी ।
तत्तन्मतीनतन्त्रोक्तप्रकारत्वान्न चान्यथा ॥ ८६४ ॥
नैतानि किञ्चदपि हि दक्षिणे वर्त्मनि प्रिये ।
न्यासाचरणमात्रं हि बलिदानं ततः परम् ॥ ८६५ ॥

आत्मपूजा का विसर्जन मन्त्र—हे ईश्वरि! उसके बाद वे तान्त्रिक विसर्जन करते हैं । उसका मन्त्र इस प्रकार है—तार चैतन्य काली राव डाकिनी के पश्चात् 'भगवति' कहकर 'गुह्यकालि' कहना चाहिये । 'परमात्मनि लीना भव चैतन्यरूपिणि कैवल्यं प्रविश' का उच्चारण कर 'सायुज्यं धेहि' कहना चाहिये । 'स्वस्थानं गच्छ' कहकर 'फट्' दो अङ्गुष्ठ एवं एक शिर कहना चाहिये । इस प्रकार न्यास के अन्त में ये लोग अनेक प्रकार की रीतियों को अपनाते हैं । तन्त्रशास्त्रोक्त न होने से वे तत्तत् मति अर्थात् विचारों को अपनाते हैं अन्य किसी कारण से नहीं । हे प्रिये! दक्षिण मार्ग में ये सब कुछ नहीं है । वहाँ केवल न्यास करना एवं उसके बाद बलिदान करना है ॥ ८६१-८६५ ॥

[महाषोढान्यासोपक्रमः]

देव्युवाच—

जगदाधार सर्वज्ञ सृष्टिस्थितिविधायक ।
करुणाम्भोनिधे नाथ महाकाल दयामय ॥ ८६६ ॥
एकं पृच्छामि देवेश संशयं स्वमनोगतम् ।
एकमे(ए?)त्रायमीशान्याः षोढान्यासो महाफलः ॥ ८६७ ॥
आगमादौ गतः ख्यातिमुतान्यः कोऽपि विद्यते ।
इतोऽपि शोभनो दिव्यः सद्यः सिद्धिविधायकः ॥ ८६८ ॥

यद्यस्ति कोऽपि विख्यात: षोढान्यासो वृषध्वज ।
गुह्यकाल्या विशेषेण सन्तोषाधिकताकर: ॥ ८६९ ॥
तदनुगृह्य मां नाथ वद प्राणेश्वर प्रभो ।
जाने यद्यप्यहं सत्यं न किञ्चिद् गोपयिष्यसि ॥ ८७० ॥
मयि गुह्यं यद्यपि स्यात् तथापि जगदीश्वर ।
त (त्रैव) विनियुंक्ते मां शुश्रूषेयं तथापि भो: ॥ ८७१ ॥
तस्मादनुग्रहवशादन्यां षोढां वद प्रभो ।

महाषोढान्यास—देवी ने कहा—हे जगत् के आधार! सर्वज्ञ! सृष्टि और स्थिति के कर्त्ता! करुणासागर! नाथ! महाकाल! दयामय! देवेश! मैं अपने मन में स्थित एक संशय (का उत्तर) पूछ रही हूँ । क्या आगम आदि में ईशानी का एक ही महाफलदायी षोढान्यास प्रसिद्धि को प्राप्त है अथवा दूसरा भी कोई (वैसा न्यास) वर्त्तमान है । हे वृषध्वज! इससे भी अधिक उत्तम दिव्य तथा सद्य: सिद्धि देने वाला एवं गुह्यकाली को विशेष रूप से सन्तुष्ट करने वाला यदि कोई षोढान्यास है तो हे नाथ! हे प्राणेश्वर! हे प्रभो! कृपा कर उसे मुझको बतलाइये । यद्यपि मैं सत्य समझती हूँ कि आप मुझसे कुछ नहीं छिपायेंगे; चाहे वह कितना भी गुह्य हो, तथापि हे जगदीश्वर! मेरी श्रवणेच्छा इसी विषय में मुझे प्रेरित कर रही है । इसलिये हे प्रभो! कृपा कर अन्य षोढा को बतलाइये ॥ ८६६-८७१ ॥

महाकाल उवाच—

त्वयैव ज्ञायते देवि हृदयं मामकं यथा ॥ ८७२ ॥
त्वयि स्निग्धं साभिलाषं त्वदाज्ञावशवर्ति च ।
अकथ्यमथ गोप्यं मे त्वयि किञ्चिन्न विद्यते ॥ ८७३ ॥
तथापि वस्तुमाहात्म्याद् गोप्यं त्वय्यप्यद: प्रिये।
षोढान्यासादमुष्याद्धि वर्ततेऽभ्यधिक: पर: ॥ ८७४ ॥
तत्तेऽहं कथयिष्यामि यदि गोप्यं करिष्यसि ।
एतस्माल्लक्षगुणितस्तथा कोटिगुणोऽपि च ॥ ८७५ ॥
वर्तते देवदेवेशि षोढान्यासोऽम्बिकाप्रिय: ।
कपालडामरे नासौ न चायं यामले तथा ॥ ८७६ ॥
संहितायां न भैरव्यां किमुतान्यत्र पार्वति ।
त्रिपुरघ्न इमं वेद तत्प्रसादादहं तथा ॥ ८७७ ॥
त्वं मत्तो ज्ञास्यसीमं च नान्ये ज्ञास्यन्त्यमुं पुन: ।
मदुक्तां संहितां ये वै धारयिष्यन्ति भाग्यत: ॥ ८७८ ॥
अमुं चाधिगमिष्यन्ति ते नरा नेतरे पुन: ।
तत्ते षोढान्यासमहं प्रवदामि शुचिस्मिते ॥ ८७९ ॥
सावधानतमा भूत्वा निशामय कृताञ्जलि: ।

महाकाल ने कहा—हे देवि! मेरे हृदय को तुम्हीं जानती हो (मेरा मन) तुम्हारे विषय में प्रेमपूर्ण अभिलाषायुक्त तथा तुम्हारी आज्ञा के वश में रहने वाला है । तुम्हारे लिये मेरे पास न तो कुछ अकथ्य है और न गोप्य । तथापि हे प्रिये! वस्तु की महिमा के कारण यह तुम्हारे विषय में भी गोपनीय है । वह इस षोढान्यास से भी बढ़कर उत्कृष्ट है । यदि तुम उसे गोपनीय रखो तो मैं उसको बतलाऊँ । हे देवदेवेशि! इस षोढान्यास से एक लाख गुना अथवा एक करोड़ गुना अधिक एक दूसरा षोढान्यास है जो अम्बिका को प्रिय है । यह न्यास न तो कपालडामर में है और न यामल में । हे पार्वति! यह भैरवीसंहिता में भी नहीं है फिर अन्यत्र होने की क्या बात! इसको केवल त्रिपुरारि जानते हैं और उनकी कृपा से मैं जानता हूँ । मुझसे इसे तुम जानोगी । पुनः दूसरे लोग इसको नहीं जानेंगे । भाग्यवश मेरे द्वारा उक्त इस महाकालसंहिता को जो जानेंगे वे ही मनुष्य इसको जान सकेंगे दूसरे लोग नहीं । हे शुचिस्मिते! उस षोढान्यास को मैं तुमको बतला रहा हूँ, हाथ जोड़कर अत्यन्त सावधान होकर उसको सुनो ॥ ८७२-८७९ ॥

[निर्वाणमहाषोढान्यासावतारः]

नाम्ना निर्वाणषोढेति विख्याता निगमादिषु ॥ ८८० ॥
फलं वा महिमैतस्य देवि वक्तुं न शक्यते ।
चराचरं जगत्सर्वं प्रविष्टमिह कथ्यते ॥ ८८१ ॥
अतिसूक्ष्मतया लीनं द्रुमादौ पुष्पवर्णवत् ।
उद्धारक्रमतो ह्यस्य स्वल्पता परिकीर्तिता ॥ ८८२ ॥
इतिकर्तव्यतारीत्या बाहुल्यं हि निगद्यते ।
तीर्थशैलतटिन्यस्त्रयज्ञकल्पावमानिका(ल्पोपनामिका?) ॥ ८८३ ॥
गुह्यकाल्याः महाषोढा सद्यः सिद्धिविधायिनी ।
इयं हि लघुषोढातो ज्ञेया कोटिगुणा बुधैः ॥ ८८४ ॥
शिवलिङ्गनृसिंहर्षिभैरवोर्वीशसिद्धियुक् ।

महाषोढान्यास का अवतार—यह न्यास वेद तन्त्र आदि में निर्वाणषोढा के नाम से विख्यात है । हे देवि! इस न्यास का फल या महिमा को नहीं कहा जा सकता । कहा जाता है कि इसमें चर-अचर दोनों जगत् प्रविष्ट है । वृक्ष आदि में पुष्प के रङ्ग की भाँति यह सर्वत्र अत्यन्त सूक्ष्मरूप से विलीन है । उद्धार के क्रम से इसकी स्वल्पता कही गयी है । इतिकर्त्तव्यता की रीति से इसकी बहुलता कही जाती है । तीर्थ शैल नदी अस्त्र यज्ञ और कल्प उपनाम वाली गुह्यकाली से सम्बद्ध यह महाषोढा सद्यः सिद्धि देने वाली है । विद्वान् लोग इसे लघुषोढा से करोड़ गुना अधिक (महत्त्वपूर्ण) समझें । यह शिवलिङ्ग नरसिंह ऋषि भैरव उर्वीश (= यज्ञ महाराज) सिद्धि से युक्त है ॥ ८८०-८८४ ॥

[महाषोढान्यासस्य माहात्म्यकीर्तनं कर्तव्यतानिर्देशश्च]

महाषोढेव निर्वाणमहाषोढाभिधीयते ॥ ८८५ ॥
इयं हि साधकैर्ज्ञेया कोटिकोटिगुणा ततः ।
यथा कामकलाकाल्यास्त्रैलोक्यविजयाह्वयः ॥ ८८६ ॥
तथेयं गुह्यकाल्यास्तु महानिर्वाणषोढिका ।
कुर्वन्त्वेतां प्रत्यहं तु त्रैलोक्यमपि कम्पयेत् ॥ ८८७ ॥
विदधत्यर्वलक्ष्यं तु सर्वसिद्धिं नियच्छति ।
यावन्मन्त्रोपदेशेषु विधानं परिकीर्तितम् ॥ ८८८ ॥
तावदस्योपदेशेऽपि कर्तव्यं कमलानने ।

महाषोढान्यास की महिमा और इतिकर्तव्यता—महाषोढा ही निर्वाण महाषोढा कही जाती है । साधक लोग उस (लघुषोढा) की अपेक्षा इसे कोटि कोटि गुना अधिक समझें । जिस प्रकार कामकलाकाली का त्रैलोक्यविजय नामक न्यास है, उसी प्रकार गुह्यकाली का महानिर्वाण षोढान्यास है । इसको प्रतिदिन करने वाला त्रैलोक्य को भी कम्पित कर देता है । यह अर्वलक्ष्य (= इन्द्रपद की प्राप्ति) कराता है तथा समस्त सिद्धियों को पूर्णरूप से देता है । हे कमलानने! मन्त्र के उपदेश में जितना विधान कहा गया इसके उपदेश में भी उतना विधान करना चाहिये ॥ ८८५-८८८- ॥

[महानिर्वाणषोढान्यासस्य गोपनीयतमत्वम्]

न पुस्तकेषु लिखितं दृष्ट्वा कुर्याज्जिजीविषुः ॥ ८८९ ॥
विदधन्मृत्युमाप्नोति सप्ताहाभ्यन्तरे नरः ।
तस्मादादाय हि गुरोरुपदेशं यथाविधि ॥ ८९० ॥
महानिर्वाणषोढा हि कुर्यात् प्रयतमानसः ।
नीरवे रहसि स्थित्वा निराकृत्य मनोऽन्यतः ॥ ८९१ ॥
शनैः शनैः प्रकुर्वीत मन्त्रं निखिलमुच्चरन् ।
एतस्य कलयोद्धारमथातस्त्रिदशेश्वरि ॥ ८९२ ॥
भवित्री प्रकटा तेन महानिर्वाणषोढिका ।
रहितोत्तरषट्केन महाषोढाभिजायते ॥ ८९३ ॥
महानिर्वाणषोढाख्या जायतेऽनेन संयुता ।
शेषमेवाभिधास्यामि नाद्यां नापि पृथक् पृथक् ॥ ८९४ ॥
आद्यां चिकीर्षुः शेषाणां कुर्वीत सुरवन्दिते ।
उद्धारमेकमेवाहमुभयोः प्रब्रवीमि ते ॥ ८९५ ॥
भवेदेकस्य कस्यापि मन्त्रस्योपासको यदि ।
तदाधिकारी भवति कर्तुमेनां विधानवित् ॥ ८९६ ॥

महाषोढान्यास की अत्यन्त गोपनीयता—जीने की इच्छा वाला साधक पुस्तकों में लिखित को देखकर न्यास न करे । ऐसा मनुष्य उक्त प्रकार से न्यास करने पर

एक सप्ताह के अन्दर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है । इसलिये गुरु से विधिवत् उपदेश प्राप्त कर पवित्र मन से महाषोढान्यास को करना चाहिये । शब्दरहित एकान्त स्थान में मन को अन्य विषयों से हटाकर समस्त मन्त्र का धीरे-धीरे उच्चारण करते हुए न्यास करना चाहिये । हे त्रिदशेश्वरि! इसके बाद इसकी एक-एक कला से उद्धार करना चाहिये । इससे (भगवती) महानिर्वाणषोढा प्रकट होती है । उत्तरवर्त्ती छह मन्त्रों से रहित होने पर वह महाषोढा होती है । उन छह से संयुक्त होने पर यह महानिर्वाण षोढा नामवाली हो जाती है । अब मैं शेष का ही वर्णन करूँगा न प्रथम का और न पृथक्-पृथक् वर्णन करूँगा । हे सुरवन्दिते! प्रथम (षोढा) को करने की इच्छा वाला शेष को भी करे । मैं तुमको दोनों का एक ही उद्धार बतलाऊँगा । यदि कोई किसी एक मन्त्र का भी उपासक होता है तो वह विधानवेत्ता इसको करने का अधिकारी हो जाता है ॥ ८८९-८९६ ॥

[महानिर्वाणषोढान्यासस्य ऋष्यादिनिर्देश:]

अस्य श्रीगुह्यकालीत: पूर्वं तारमनुस्मरेत् ।
महानिर्वाणषोढेति पदान्न्यासस्य कीर्तयेत् ॥ ८९७ ॥
ऋषि: पञ्चशिखश्चेति व्यत्ययेन प्रकीर्तयेत् ।
छन्दोऽतिजगती चाति पूर्ववद्वरवर्णिनि ॥ ८९८ ॥
आदौ हैरण्यकशिपवी ब्राह्मी तदनन्तरम् ।
वासिष्ठी तत्परं वामी च्यावनी तदनन्तरम् ॥ ८९९ ॥
हारीती भारती वैष्णुतात्त्वी नारद्यथापि वा ।
आम्बहार्दी च सौपर्णी दाक्षी गार्गी तत: परम् ॥ ९०० ॥
पौनही(पौलही ?)च क्रत-
व्याङ्गीरस्यात्रेयी ततोऽनु च ।
गौतमी चापि जाबाली भारद्वाजी च रावणी ॥ ९०१ ॥
एकवक्त्राद्यनु शतवक्त्रान्ता गुह्यकाल्यपि ।
देवता कथिता रावो बीजं शक्तिश्च डाकिनी ॥ ९०२ ॥
फेत्कारी कीलकं प्रोक्तं प्रलयस्तत्त्वमित्यपि ।
महानिर्वाणषोढान्यासे जपे विनियोगता ॥ ९०३ ॥

महानिर्वाणषोढान्यास के ऋषि आदि—'अस्य श्रीगुह्यकाली' के पहले तार का स्मरण करना चाहिये । पुन: 'महानिर्वाणषोढा' पद के बाद 'न्यासस्य' कहना चाहिये । 'ऋषि: पञ्चशिख:' इसको उल्टे कहना चाहिये । (अर्थात् ॐ अस्य श्रीगुह्यकाली-महानिर्वाणषोढान्यासस्य पञ्चशिखऋषि:) कहना चाहिये । हे वरवर्णिनि! पूर्ववत् 'अति-जगती छन्द:' हैरण्यकशिपवी ब्राह्मी वासिष्ठी वामी च्यावनी हारीती भारती वैष्णुतात्त्वी नारदी आम्बहार्दी सौपर्णी दाक्षी गार्गी पौलही क्रतव्या आङ्गिरसी आत्रेयी गौतमी जाबाली भारद्वाजी रावणी एकवक्त्रादि शतवक्त्रान्ता गुह्यकाली देवता कही गयी है ।

राव बीज, डाकिनी शक्ति, फेत्कारी कीलक और प्रलय तत्त्व कहा गया है । उसका विनियोग महाषोढान्यास में होता है ॥ ८९७-९०३ ॥

[षोढान्यासस्य षडङ्गन्यास:]

इति विन्यस्य कुर्वीत षडङ्गं चास्य पार्वति ।
मायाकामवधूप्रेतभैरव्योऽङ्गुष्ठयोर्हृदि ॥ ९०४ ॥
पाशक्रोधामृतप्राणान् नृसिंहास्तर्जनीकयो: ।
शिखामध्यमयोर्मेधकालीशक्तीष्टिनैमय: ॥ ९०५ ॥
वर्मानामिकयोरंशुहारात्रिबलिसेतव: ।
कनिष्ठात्रिदृशो: सानुकाञ्चीजम्भर्क्षशृङ्खला: ॥ ९०६ ॥
करपृष्ठास्त्रयोस्तुङ्गमन्दपद्मोग्रचामरा: ।
षोढान्यासस्य सर्वस्य ऋष्यादिरयमीरित: ॥ ९०७ ॥

षोढान्यास का षडङ्गन्यास—हे पार्वति! इस प्रकार विनियोग कर षडङ्गन्यास करना चाहिये । दोनों अँगूठों एवं हृदय में माया काम वधू प्रेत भैरवी को, पाश क्रोध अमृत प्राण और नृसिंह को दोनों तर्जनी और शिर में, दोनों मध्यमा और शिखा में मेधा काली शक्ति इष्टि और नेमि, कवच और दोनों अनामिकाओं में अंशु हार अत्रि बलि और सेतु, कनिष्ठा एवं नेत्रत्रय में सानु काञ्ची जम्भ ऋक्ष और शृङ्खला, करतल करपृष्ठ एवं अस्त्र के लिये तुङ्ग मन्द पद्म उग्र और चामर बीजों से न्यास करना चाहिये । इस प्रकार षोढान्यास के ऋषि आदि कहे गये । (उसे इस प्रकार समझना चाहिये—ह्रीं क्लीं स्त्रीं स्हौ: सौ: अङ्गुष्ठाभ्यां नम: हृदयाय नम:। आं हूं ग्लूं क्लैं क्ष्मौं तर्जनीभ्यां नम: शिरसे स्वाहा । ऐं क्रीं ब्लूं रश्रीं फ्रूं मध्यमाभ्यां नम: शिखायै वषट् । ह्रैं ह्क्षम्लैं रफ्रें रछ्रीं ट्रीं अनामिकाभ्यां नम: कवचाय हुम् । रह्रीं रक्ष्रीं रफ्रीं कप्रों रग्रौं कनिष्ठिकाभ्यां नम: नेत्रत्रयाय वौषट् । रज्रों ह्स्फ्रीं रह्छ्रक्षह्रूं ढ्रीं खफ्रक्ष्रूं करतलकरपृष्ठाभ्यां नम: अस्त्राय फट्) ॥ ९०४-९०७ ॥

[षोढान्यासान्तर्गततीर्थशिवलिङ्गन्यासस्योद्देश: ऋष्यादिनिर्देशश्च]

प्रत्येकमथ षण्णां वै भिन्नभिन्नतयोदित: ।
तारात्परं चास्य तीर्थशिवलिङ्गपदादनु ॥ ९०८ ॥
न्यासस्य गौतम ऋषिरनुष्टुप् छन्द एव च ।
तत: परं महातीर्थशिवलिङ्गे च देवते ॥ ९०९ ॥
तारो बीजं त्रपा शक्तिर्वाग्भवं कीलकं तथा ।
पाशस्तत्त्वं समुद्दिष्टं तीर्थन्यासे जपे तथा ॥ ९१० ॥
विनियोग: समुद्दिष्ट: ऋष्यादिं पूर्ववत्स्मरेत् ।
अथ न्यासगणस्यास्य द्विविधोद्धृतिरुच्यते ॥ ९११ ॥
सामान्या च विशेषा च कठिना द्वय्यपि प्रिये ।

तीर्थशिवलिङ्गन्यास और उसके ऋषि आदि—छहों (षोढा न्यासों) में प्रत्येक न्यास भिन्न-भिन्न रूप में कहा गया है । तार के बाद 'अस्य तीर्थशिवलिङ्ग' पद के बाद 'न्यासस्य गौतम ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः' उसके बाद 'महातीर्थशिवलिङ्गे देवते तार (= ओं) बीज त्रपा (= ह्रीं) शक्ति वाग्भव (= ऐं) कीलक पाश (= आं) तत्त्व कहा गया है । इसका विनियोग तीर्थन्यास में होता है । इसके ऋषि आदि पूर्ववत् कहे जाने चाहिये । इसके बाद इस न्याससमूह का उद्धार दो प्रकार से कहा जाता है । हे प्रिये! सामान्य और विशेष; ये दोनों उद्धार अति कठिन हैं ॥ ९०८-९११ ॥

[तीर्थशिवलिङ्गन्यासस्य सामान्योद्धारः]

आद्यामादौ तत्र वच्मि ततो वक्ष्येऽपरामपि ॥ ९१२ ॥
आदौ द्वादश बीजानि सर्वत्रैव स्थिराणि हि ।
ततो नामानि भिन्नान्येकपञ्चाशत्संख्यकानि हि ॥ ९१३ ॥
ततस्तीर्थे इति पदं सर्वत्रैवाचलं मतम् ।
अस्य पूर्वपदस्यापि विग्रहो साहजोऽपि वा ॥ ९१४ ॥
ततोऽपराणि नामानि तावत्संख्यानि सुन्दरि ।
पृथक् पृथक्तयोक्तानि समासं प्रापितानि हि ॥ ९१५ ॥
अग्रिमस्वरसंख्याकवर्णैः सार्द्धं स्थिरात्मकैः ।
पुनस्तावन्ति नामानि चलानि प्रतिमन्वपि ॥ ९१६ ॥
ततः सप्तार्णघटितमेकं पदमिदं पुनः ।
ङेऽन्तं स्थिरं चैतदपि पुनश्च द्वादशाक्षरैः ॥ ९१७ ॥
निर्मितं पदमेकं हि ङेऽन्तं तदपि च स्थिरम् ।
ततोऽपरं तावदेव वर्णनिर्मितमीश्वरि ॥ ९१८ ॥
तादृगाकारमपि च कालव्यापि तथैव च ।
चतुरर्णात्मकं चैकं ततो नाम वरानने ॥ ९१९ ॥
पूर्ववत् सार्विकगुणसम्पन्नं परिकीर्तितम् ।
एको मन्त्रस्ततस्तस्याः निश्चलत्वेन चोदितः ॥ ९२० ॥
ततश्च पञ्च बीजानि कालव्यापीनि पार्वति ।
ततो नु बीजमेकैकं भिन्नभिन्नतया स्मृतम् ॥ ९२१ ॥
सप्ताक्षरी सर्वशेषे कूटत्वेन व्यवस्थिता ।
इति सामान्य उद्धारो मया ते प्रतिपादितः ॥ ९२२ ॥

तीर्थशिवलिङ्गन्यास का सामान्य उद्धार—पहले मैं प्रथम उद्धार को कह रहा हूँ। इसके पश्चात् दूसरी उद्धृति को कहूँगा । सर्वत्र बारह बीज स्थिर होते हैं। इसके अनन्तर भिन्न-भिन्न इक्यावन नाम कहे जाते हैं । तत्पश्चात् 'तीर्थे' यह पद सर्वत्र स्थिर माना गया है । 'अस्य' इस पूर्व पद का भी ग्रहण सहज होता है । हे सुन्दरि! इसके बाद उतनी ही संख्या वाले अन्य नाम होते हैं । वे पृथक्-पृथक् रूप में उक्त होकर

अग्रिम स्वर की संख्या वाले स्थिर वर्णों के साथ संक्षिप्त कर दिये गये होते हैं। पुनः प्रत्येक मन्त्र के साथ उतने ही नाम चल होते हैं । फिर सात वर्णों से सङ्घटित एक पद होता है जो ङेऽन्त और स्थिर होता है । पुनः बारह अक्षरों से निर्मित एक पद होता है । वह भी ङेऽन्त तथा स्थिर होता है । हे ईश्वरि! इसके अनन्तर दूसरा पद उतने ही वर्णों से निर्मित होता है । इसका आकार भी वैसा ही तथा कालव्यापी (= स्थायी) होता है । हे वरानने! इसके पश्चात् चार अक्षरों वाला एक नाम होता है । वह भी पूर्व की भाँति सर्वगुणसम्पन्न कहा गया है । इसके बाद उसका एक मन्त्र स्थिर कहा गया है । हे पार्वति! इसके बाद पाँच बीज कालव्यापी (= स्थायी) होते हैं। इसके अनन्तर भिन्न-भिन्न एक-एक बीज कहे गये हैं । सबके अन्त में सात अक्षरों का समूह स्थिर कहा गया है । इस प्रकार मैंने तुमको सामान्य उद्धार बतलाया ॥ ११२-१२२ ॥

[महानिर्वाणषोढान्यासान्तर्गततीर्थशिवलिङ्गन्यासस्य विशेषमन्त्रोद्धारः]

क्रमेणैवापरं देवि विशेषमवधारय ।
सारस्वतो भौवनेशी कमला काम एव च ॥ १२३ ॥
काली च योगिनी चापि क्रोधोऽपि वनिता तथा ।
शाकिनी डाकिनी चापि प्रलयस्तदनन्तरम् ॥ १२४ ॥
फेत्कारी सर्वशेषे च बीजानि द्वादशैव हि ।
प्रथमं विनियोज्यानि स्थिरत्वेनैव पार्वति ॥ १२५ ॥
मन्त्राणामपि सर्वेषां पञ्चाशत्संख्यताजुषाम् ।
इदानीं कलयामीषां तीर्थान्यनु वरानने ॥ १२६ ॥

तीर्थशिवलिङ्गन्यास का विशेष उद्धार—हे देवि! अब क्रम से विशेष को समझो। सारस्वत भुवनेश्वरी कमला काम काली योगिनी क्रोध स्त्री शाकिनी डाकिनी प्रलय उसके बाद सबके अन्त में फेत्कारी—ये सब बारह बीज हैं । जिन्हें हे पार्वति! पचास मन्त्रों के पहले जोड़ना चाहिये । हे वरानने! अब इनके तीर्थों को जानो ॥ १२३-१२६ ॥

[एकपञ्चाशत् तीर्थनामपरिगणनम्]

प्रयागो नैमिषारण्यं शूकरक्षेत्रमेव च ।
एकाम्बरं बदरिकाश्रमश्च तदनन्तरम् ॥ १२७ ॥
कुरुक्षेत्रं प्रभासश्च तथैवामरकण्टकम् ।
पुष्करं च गया वाराणस्ययोध्या तथैव च ॥ १२८ ॥
मथुरा तदनु ज्ञेया मायापुरमतः परम् ।
शिवकाञ्ची पञ्चदशी तत उज्जयिनी मता ॥ १२९ ॥
तस्या अनु द्वारका च पुरुषोत्तम एव च ।

मरुत्कोटिस्तथा चाट्टहासः कमललोचने ॥ १३० ॥
शङ्कुकर्णो रुद्रकोटिश्छगलाण्डमतः परम् ।
आम्रातकं चारुणाचलश्च वृन्दावनं तथा ॥ १३१ ॥
भद्रकर्णह्रदश्चापि हरिश्चन्द्रस्तथैव च ।
मध्यमेश्वर इत्येवं वस्त्रापथमतः परम् ॥ १३२ ॥
ततः कनखलं चापि देवदारुवनं तथा ।
नेपालः कर्णिकारश्च त्रिसन्ध्या तदनन्तरम् ॥ १३३ ॥
त्रिचत्वारिंशसंख्याकः कुलूतश्च शिवालयः ।
पृथूदकं ततः कायावतारः परमेश्वरि ॥ १३४ ॥
करवीरस्ततश्चापि मण्डलेश्वर ईरितः ।
ततो हर्षपथं ज्ञेयमलकापुरमेव च ॥ १३५ ॥
सर्वशेषे परिज्ञेयं वडवामुखनामकम् ।
एकपञ्चाशदिति हि तीर्थानि कथितानि ते ॥ १३६ ॥
अथास्याग्रिमनामानि क्रमेण कलयेश्वरि ।

इक्यावन तीर्थों के नाम—प्रयाग नैमिषारण्य शूकरक्षेत्र एकाम्बर बदरिकाश्रम कुरुक्षेत्र प्रभास अमरकण्टक पुष्कर गया वाराणसी अयोध्या उसके बाद मथुरा जाननी चाहिये । मायापुरी (= हरद्वार) शिवकाञ्ची पन्द्रहवीं तीर्थ है । फिर उज्जयिनी उसके अनन्तर द्वारिका पुरुषोत्तम पुनः हे कमललोचने! मरुत्कोटि अट्टहास शङ्कुकर्ण रुद्रकोटि छगलाण्ड आम्रातक अरुणाचल वृन्दावन भद्रकर्ण तालाब, हरिश्चन्द्र, मध्यमेश्वर वस्त्रापथ कनखल देवदारुवन, नेपाल कर्णिकार त्रिसन्ध्या यह तैंतालिसवाँ[१] तीर्थ है । कुलूत शिवालय पृथूदक फिर हे परमेश्वरि! कायावतार करवीर मण्डलेश्वर हर्षपथ अलकापुरी और सबके अन्त में वडवामुख नामक तीर्थ जानना चाहिये । ये इक्यावन तीर्थ तुमको बतलाये गये । हे ईश्वरि! अब इनके अग्रिम नामों को सुनो ॥ १२७-१३६- ॥

[एकपञ्चाशच्छम्भुनामानि]

महेश्वरो देवदेवो भारभूतेश्वरस्तथा ॥ १३७ ॥
कृत्तिवासेश्वरश्चापि त्रिलोचन इति स्मृतः ।
स्थाणुश्च सोमनाथश्च ओंकारेश्वर एव च ॥ १३८ ॥
अयोगन्धेश्वरश्चापि पितामह इतीरितः ।
महादेवश्च तदनु चन्द्रशेखर एव च ॥ १३९ ॥
भूतेश्वरो महालिङ्गेश्वरश्च प्ररिकीर्तितः ।
व्योमकेशो महाकालः पिनाकीश्वर एव च ॥ १४० ॥

---

[१] त्रिसन्ध्या तक पैंतीस ही नाम होते हैं । सात तीर्थों के नाम को बतलाने वाला श्लोक अनुपलब्ध प्रतीत होता है ।

बिल्वकेश्वर इत्येवं कमलेश्वर इत्यपि च ।
नीललोहित एकाम्रनाथश्च सुरवन्दिते ॥ ९४१ ॥
जम्बुकेश्वरसंज्ञश्च द्वाविंशतितमो मतः ।
जटीश्वरोऽमरेश्वरश्च महोत्कट इतः परम् ॥ ९४२ ॥
अट्टहासो महातेजा महायोगस्तथैव च ।
कपर्दीश्वरनामा च सूक्ष्मेश्वर इतः परम् ॥ ९४३ ॥
सर्वज्ञेश्वरसंज्ञश्च गोपीश्वर इति स्मृतः ।
शिवो हरस्तथा शर्वो भव उग्रेश्वरस्तथा ॥ ९४४ ॥
दण्डीश्वरः पशुपतिर्गणाध्यक्षस्तथैव च ।
ताम्रकेश्वर इत्येवं मणिमहेश इत्यपि ॥ ९४५ ॥
घुसृणेश्वरो वामदेवो लगुडीश्वर इत्यपि ।
कपिलेश्वरश्च श्रीकण्ठो हर्षितेश्वर एव च ॥ ९४६ ॥
प्रहासेश्वरनामा च तथा चैवानलेश्वरः ।
एकपञ्चाशदित्येवं शम्भुनाम मयोदितम् ॥ ९४७ ॥
शिवलिङ्गपदस्यान्ते सहितेत्यक्षरत्रयम् ।
सप्तवर्णा इमे प्रोक्ता एषां पूर्वपदैः सह ॥ ९४८ ॥
समासश्चाथ पौरस्त्यपदान्याकलयाधुना ।

इक्यावन शम्भुनाम—हे सुरवन्दिते ! महेश्वर देवदेव भारभूतेश्वर कृत्तिवासेश्वर त्रिलोचन स्थाणु सोमनाथ ओंकारेश्वर अयोगन्धेश्वर पितामह महादेव उसके बाद चन्द्रशेखर भूतेश्वर महालिङ्गेश्वर व्योमकेश महाकाल पिनाकीश्वर बिल्वकेश्वर कमलेश्वर नीललोहित एकाम्रनाथ जम्बुकेश्वर यह बाईसवाँ नाम है । जटीश्वर अमरेश्वर महोत्कट अट्टहास महातेजाः महायोग कपर्दीश्वर सूक्ष्मेश्वर सर्वज्ञेश्वर गोपीश्वर शिव हर शर्व भव उग्रेश्वर दण्डीश्वर पशुपति गणाध्यक्ष ताम्रकेश्वर मणिमहेश घुसृणेश्वर वामदेव लगुडीश्वर कपिलेश्वर श्रीकण्ठ हर्षितेश्वर प्रहासेश्वर अनलेश्वर[1] ये इक्यावन नाम मैंने तुमको बतलाये । 'शिवलिङ्ग' पद के अन्त में 'सहित' ये तीन अक्षर जोड़कर इनके पूर्वपदों के साथ उक्त सात वर्ण संयोज्य कहे गये हैं । अब पूर्वपदों को संक्षेप में सुनो ॥ ९३६-९४८ ॥

[यथायथमुक्ततीर्थाधिष्ठात्रीणां शक्तिदेवीनां परिगणनम्]

आद्या तु ललिता ज्ञेया ततो वै लिङ्गधारिणी ॥ ९४९ ॥
पुनर्वेगवती ज्ञेया मातङ्गी तदनन्तरम् ।
पञ्चमी वेदवत्युक्ता भवानी षष्ठ्युदीर्यते ॥ ९५० ॥

---

[1] यहाँ तक पचास ही नाम होते हैं । परिशिष्ट में भी 'श्रीकण्ठ' और 'हर्षितेश्वर' के बीज नामस्थान रिक्त हैं । मेरी दृष्टि में 'कपालीश्वर' अथवा 'भूतेश्वर' सदृश कोई एक नाम जोड़ा जा सकता है । (?)

राजराजेश्वरी चापि ततो निगमबोधिनी ।
पुरुहूता च कथिता तथा चैव हरप्रिया ॥ ९५१ ॥
विशालाक्षी मोहिनी च पार्वती तदनन्तरम् ।
रक्ताम्बरा तथा झङ्कारिणी भोगवती तथा ॥ ९५२ ॥
अश्वारूढा तथा बिल्वपत्रिका कमलापि च ।
ततश्च कुन्ददा कीर्तिमती द्वाविंशतिर्मता ॥ ९५३ ॥
वज्रप्रस्तारिणी भद्रकर्णिका च हसन्त्यपि ।
सरस्वती तथा भद्रावती प्राणप्रदापि च ॥ ९५४ ॥
सिद्धिदायिन्यथो ज्ञेया रुद्राण्योजस्विनी तथा ।
विद्येश्वरी तथा भीमा राधा शान्ता तथैव च ॥ ९५५ ॥
पञ्चत्रिंशत्तमा ज्ञेया ततो वै जयमङ्गला ।
शर्वाणी च शिवा चण्डवती सावित्र्यपि प्रिये ॥ ९५६ ॥
गुह्येश्वरी च कल्याणी पद्मावत्यपि कथ्यते ।
शाकम्भरी तथा सिद्धेश्वरी तेजोवतीत्यपि ॥ ९५७ ॥
ततोऽनु विजया ज्ञेया प्रभावत्युच्यते ततः ।
नारायणी ततः प्रोक्ता प्रमोदिन्यप्युदीर्यते ॥ ९५८ ॥
मायामयी ततः शेषे मेधानाम्नी निगद्यते ।
इत्येवं शक्तयस्तत्तत्तीर्थेषु परिनिष्ठिताः ॥ ९५९ ॥
एकपञ्चाशदुदिताः क्रमेण न्यासकर्मणि ।
ततश्चैकं पदं देवि शक्तिरूपिण्युदीर्यते ॥ ९६० ॥
सप्ताक्षरेण घटिता संज्ञैषा परिकीर्तिता ।
अथ द्वादशभिर्वर्णैर्यान्याख्या विद्यते प्रिये ॥ ९६१ ॥
तां ते वदामि न्यासस्य परिज्ञानाय तत्त्वतः ।
नवकोटिपदस्यान्ते कुलाकुल समुद्धरेत् ॥ ९६२ ॥
चक्रेश्वरी ततश्चापि नामेदं द्वादशाक्षरम् ।
पुनर्द्वादशवर्णाढ्यं नामान्यत् प्रवदामि ते ॥ ९६३ ॥
सकलगुह्यानन्तपदात्तत्त्वधारिण्यनूद्यते ।
चतुर्वर्णात्मकं नाम गुह्यकालीति कथ्यते ॥ ९६४ ॥
मन्त्रस्तु प्रकृतिर्मुख्या भारती षोडशाक्षरी ।
ततोऽनु पञ्चबीजानि सुधा शक्तिस्ततः परम् ॥ ९६५ ॥
धनदा निर्मलं प्रेता मातृकाक्षरमेव च ।
भिन्नं भिन्नमुपान्त्ये तुलमन्यं परिनिर्दिशेत् ॥ ९६६ ॥
अस्त्रत्रयं हृच्छिरसी सर्वशेषे उदाहृते ।
स्थानं तु मातृकान्यासवदुक्तं त्रिपुरारिणा ॥ ९६७ ॥
इति ते कथितस्तीर्थशिवलिङ्गाभिधो महान् ।

उक्त तीर्थों की अधिष्ठातृदेवियों का क्रमिक नाम—प्रथम ललिता फिर लिङ्गधारिणी वेगवती मातङ्गी वेदवती भवानी राजराजेश्वरी निगमबोधिनी पुरुहूता हरप्रिया विशालाक्षी मोहिनी पार्वती रक्ताम्बरा झङ्कारिणी भोगवती अश्वारूढा बिल्वपत्रिका कमला कुन्ददा कीर्त्तिमती यह बाईसवीं[1] शक्तिदेवी कही गयी है। वज्रप्रस्तारिणी भद्रकर्णिका हसन्ती सरस्वती भद्रावती प्राणप्रदा सिद्धिदायिनी रुद्राणी ओजस्विनी विद्येश्वरी भीमा राधा शान्ता को पैंतीसवीं जानना चाहिये । इसके बाद जयमङ्गला शर्वाणी शिवा चण्डवती सावित्री भी है । हे प्रिये! गुह्येश्वरी कल्याणी पद्मावती भी कही जाती है । शाकम्भरी सिद्धेश्वरी तेजोवती विजया प्रभावती फिर नारायणी कही गयी है । प्रमोदिनी मायामयी और अन्त में मेधा नाम वाली कही जाती है । इस प्रकार तत्तत् तीर्थों में ये शक्तियाँ प्रतिष्ठित हैं । न्यासकर्म में ये इक्यावन शक्तियाँ क्रम से कही गयी हैं। इसके बाद हे देवि! 'शक्तिरूपिणि' यह एक पद कहा जाता है । यह संज्ञा सात अक्षरों से बनी है । हे प्रिये! अब बारह अक्षरों के द्वारा जो दूसरा नाम बना है न्यास के तात्त्विक परिज्ञान के लिये मैं उसे तुमको बतला रहा हूँ । 'नवकोटि' पद के अन्त में 'कुलाकुल' पद उद्धृत करना चाहिये, उसके बाद 'चक्रेश्वरी' । इस प्रकार यह नाम बारह अक्षरों वाला हो जाता है । फिर मैं तुमको दूसरा बारह अक्षरों वाला नाम बतला रहा हूँ । 'सकलगुह्यानन्त' पद के बाद 'तत्त्वधारिण्यै गुह्यकाली' कहा जाता है। सोलह अक्षरों वाली भारती (= सकलगुह्यानन्ततत्त्वधारिण्यै गुह्यकाल्यै) यही मुख्य प्रकृति है । इसके बाद पाँच बीज अर्थात् सुधा शक्ति धनदा निर्मल और प्रेत कहे जाते हैं । पुनः उनके अन्त में मातृका के भिन्न-भिन्न अक्षर अनुस्वार के साथ कहे जाने चाहिये । सबके अन्त में हृदय और शिर कहे जाते हैं । त्रिपुरारि ने स्थानों को मातृकान्यास की भाँति बतलाया है । इस प्रकार तुमको शिवलिङ्ग नामक महान्यास बतलाया गया ॥ ९४९-९६७- ॥

[तीर्थशिवलिङ्गन्यासस्य महात्म्यकीर्तनतया सिद्धिपीठकथावतरणम्]

न्यासश्रेष्ठो महेशानि महापातकनाशनः ॥ ९६८ ॥
यदा सती जहौ देहं पितुर्यज्ञेऽभिमानतः ।
तदा तद्देहमाश्लिष्य निधायाङ्के स्वके प्रभुः ॥ ९६९ ॥
निमीलिताक्षो दुःखेन शोकवाष्पभराकुलः ।
उड्डीयमानः पक्षीव गगने प्ररुरोद ह ॥ ९७० ॥
तदश्रुबिन्दुपातेन जगदेतच्चराचरम् ।
व्याकुलं सर्वमभवदादीपितमिवाग्निना ॥ ९७१ ॥

---

[1] 'कीर्त्तिमती' इक्कीसवाँ नाम है । मूलपाठोक्त 'द्वाविंशतिर्मता' की सङ्गति के लिये कोई एक नाम और चाहिये । मेरी दृष्टि में 'राजराजेश्वरी' नाम को यदि आवृत्त कर 'राजेश्वरी' और 'राजराजेश्वरी' कर दिया जाय तो संख्यागत विसङ्गति दूर हो सकती है । (?)

वीक्ष्य देवा जगत्क्षोभं महाप्रलयसन्निभम् ।
नारायणमुखाः सर्वे गृहीतेषुशरासनाः ॥ १७२ ॥
चकर्तुस्तत्सतीदेहं खण्डखण्डमयेषुभिः ।
वायव्यास्त्रस्य वेगेन यत्र यत्रापतत् क्षितौ ॥ १७३ ॥
अङ्गं देव्यास्तत्र तत्र लिङ्गरूपधरो हरः ।
सान्निध्यमकरोत्तस्य रक्षणार्थं वरानने ॥ १७४ ॥
हरस्य प्रेम संवीक्ष्य देव्यपि प्रेमलालसा ।
तां तां मूर्तिं तथा तत्तन्नाम धृत्वाघनाशनम् ॥ १७५ ॥
तस्मिंस्तस्मिन् स्थले देवी स्थिता भर्तुर्मुदे सती।
तानि स्थानानि जातानि तीर्थरूपाणि कानिचित्॥ १७६ ॥
अन्यानि पीठरूपाणि क्षेत्ररूपाणि चैव हि ।
तेषु तेषु च देशेषु ख्यातानि स्वस्वनामतः ॥ १७७ ॥
नामानि तत्तत्स्थानानां देव्याश्चापि शिवस्य च ।
कीर्तितानि वरारोहे साधयन्ति मनोरथान् ॥ १७८ ॥
सिद्धीर्ददति पापौघान् क्षपयन्त्यद्रिसन्निभान् ।
आरोग्यमाशु यच्छन्ति मङ्गलं विदधत्यपि ॥ १७९ ॥
वितरन्ति जयं युद्धे योगसिद्धिं च कुर्वते ।
अत एव विदित्वैषां महिमानमनुत्तमम् ॥ १८० ॥
न्यासानन्यान् पञ्च हित्वा मुनयः शंसितव्रताः ।
कुर्वन्ति भक्तिभावैस्तैरमुं केवलमेव हि ॥ १८१ ॥
जमदग्निर्भरद्वाजो वामदेव ऋतस्त्रवाः ।
कठोऽगस्त्यो दधीचिश्च वीतहव्यः पराशरः ॥ १८२ ॥
कात्यायनो नाचिकेता हारीतोऽद्रिश्च कश्यपः ।
जैगीषव्यो भृगुर्वत्सो वसिष्ठः पिप्पलायनः ॥ १८३ ॥
शिवशक्त्यात्मके रुद्र एते भक्तिपरायणाः ।
कुर्वतेऽमुं महान्यासं विहायान्यान् वरानने ॥ १८४ ॥
नामभिः शिवलिङ्गानां मूलेन प्रतिमन्वपि ।
केवलेनामुना किन्तु महाषोढाभिजायते ॥ १८५ ॥

तीर्थशिवलिङ्गन्यास का माहात्म्य और सिद्धिपीठ की कथा—हे महेशानि! यह श्रेष्ठ न्यास महापातकों का नाशक है । जब सती ने पिता के यज्ञ में (अपने पति के अपमान से जन्य) अभिमान के कारण देहत्याग किया तब दु:ख के कारण बन्द नेत्रों वाले तथा शोक के भार से व्याकुल भगवान् शिव उस देह को गोद में लेकर पक्षी की भँति गगन में उड़ते हुए महारोदन करने लगे । उनके अश्रुपात से यह सम्पूर्ण चराचर जगत् अग्नि से जलते हुए के समान व्याकुल हो गया । महाप्रलय के समान संसार के क्षोभ को देखकर नारायण आदि समस्त देव धनुष-बाण लेकर सती के देह

का खण्ड-खण्ड कर दिये । वायव्य अस्त्र के वेग से देवी के अङ्ग पृथिवी पर जहाँ-जहाँ गिरे हे वरानने! वहाँ-वहाँ उस-उस अङ्ग की रक्षा के लिये भगवान् शिव लिङ्गरूप धारण कर सन्निहित हो गये । हर के प्रेम को देखकर प्रेममयी देवी भी उस-उस मूर्त्ति में पापनाशक तत्तत् नाम धारण कर पति के आनन्द हेतु उस-उस लिङ्ग में स्थित हो गयी । उनमें से कुछ स्थान तीर्थरूप हो गये । दूसरे क्षेत्ररूप तथा पीठरूप हो गये। तत्तत् देशों में तत्तत् स्थानों के नाम देवी और शिव के नाम से प्रसिद्ध हो गये। हे वरारोहे! देवी और शिव तथा तत्तत् स्थानों के नामों का सङ्कीर्तन करने से वे मनोरथों को सिद्ध करते हैं; सिद्धियों को देते हैं; पर्वत के समान विशाल पापसमूहों को नष्ट करते हैं; शीघ्र आरोग्य देते हैं; मङ्गल करते हैं; युद्ध में जय तथा योगसिद्धि प्रदान करते हैं । इसलिये इन न्यासों की उत्कृष्ट महिमा को जानकर महाव्रती मुनिजन अन्य पाँच न्यासों को छोड़कर उन भक्ति-भावनाओं से पूर्ण होकर केवल इसी न्यास को करते हैं । जमदग्नि भारद्वाज वामदेव ऋतस्रवा कठ अगस्त्य दधीचि वीतहव्य पराशर कात्यायन नचिकेता हारीत अद्रि कश्यप जैगीषव्य भृगु वत्स वसिष्ठ पिप्पलायन ये सब ऋषि हे वरानने! शिवशक्तिस्वरूप रुद्र में भक्तियुक्त होकर अन्य न्यासों को छोड़कर इस महान्यास को करते हैं । शिवलिङ्गों के नाम के साथ प्रत्येक मन्त्र में मूलमन्त्र को जोड़कर केवल इसी मन्त्र से महाषोढ़ान्यास हो जाता है ॥ ९६८-९८५ ॥

[महाषोढान्यासान्तर्गत पर्वतन्यासस्तस्य च ऋष्यादिनिर्देश:]

अथावधेहि देवेशि पर्वतन्यासमुत्तमम् ।
नरसिंहयुतं चापि महानिर्वाणनामकम् ॥ ९८६ ॥
ओमस्य पर्वतनरसिंहन्यासस्य कथ्यते ।
ऋषि: शैलूषि पदतो ज्ञेय: कुल्मलवर्हिष: ॥ ९८७ ॥
उष्णिक् छन्द: समाख्यातं विशेषात्तदनूच्चरेत् ।
हैरण्यकशिपुपदान् मन्त्राधिष्ठात्र्युदीरयेत् ॥ ९८८ ॥
गुह्यकाली देवता च सानुर्बीजमुदाहृतम् ।
प्रलय: शक्तिरुदिता डाकिनी कीलकं तथा ॥ ९८९ ॥
कर्णिका तत्त्वमपि च पूर्वोक्तन्यास एव हि ।
जपे च विनियोग: स्यादृष्यादिं पूर्ववत्स्मरेत् ॥ ९९० ॥

महाषोढान्यास के अन्तर्गत पर्वत न्यास के ऋषि आदि—हे देवेशि! अव उत्तम पर्वतन्यास को समझो । साथ ही नरसिंहयुत महानिर्वाण नामक (न्यास को जानो) । इस पर्वत नरसिंह न्यास के ऋषि शैलूषिकुल्मल वर्हिष हैं । छन्द विशेष उष्णिक् कहा गया है । देवता हैरण्यकशिपु मन्त्राधिष्ठात्री गुह्यकाली है। सानु बीज कहा गया है । प्रलय शक्ति, डाकिनी कीलक और कर्णिका तत्त्व है। इसका विनियोग पूर्वोक्त न्यास एवं जप में होता है । ऋषि आदि का स्मरण पूर्ववत् करना चाहिये ॥ ९८६-९९० ॥

[पर्वतन्यासस्य षडङ्गन्यास:]

षडङ्गमधुना वच्मि उभयं ते सुरेश्वरि ।
अनाहतो भोगसृष्टी त्रेता कृत्या तथैव च ॥ ९९१ ॥
अनेन प्रथमं कुर्याद् गायत्री कर्णिका तथा ।
शृङ्खलौपह्वरं चापि नान्दिकं च द्वितीयके ॥ ९९२ ॥
संहारिप्रमुखैर्देवि पञ्चभिश्च तृतीयकम् ।
एवमेव हि तुर्ये स्यात् पञ्चभिर्विरसादिभि: ॥ ९९३ ॥
पञ्चमे पञ्चभिर्ज्ञेयं भद्रिकादिभिरेव च ।
पञ्चभि: षष्ठ उदित: सौरङ्गादिभिरेव हि ॥ ९९४ ॥
अथो पूर्ववदुद्धारमुभयं कथयामि ते ।
सामान्यं च विशेषं च प्रथमं प्रथमं शृणु ॥ ९९५ ॥

पर्वतन्यास का षडङ्गन्यास—हे सुरेश्वरि! अब तुमको दोनों षडङ्गों को बतला रहा हूँ । अनाहत भोग सृष्टि त्रेता कृत्या इससे प्रथम न्यास को करना चाहिये । गायत्री कर्णिका शृङ्खला औपह्वर और नान्दिक से द्वितीय को और हे देवि! संहारी आदि पाँच से तृतीय, इसी प्रकार विरस आदि पाँच से चतुर्थ और पाँचवें न्यास में भद्रिका आदि पाँच से न्यास करना चाहिये । सौरङ्ग आदि पाँच से छठाँ न्यास कहा गया है । इसके बाद पूर्व की भाँति सामान्य और विशेष दोनों उद्धारों को कह रहा हूँ। पहले प्रथम को सुनो ॥ ९९१-९९५ ॥

[पर्वतन्यासस्य सामान्योद्धार:]

बीजान्यादौ पञ्चदश कूटं चैकं तत: परम् ।
स्थिराणि षोडशैतानि प्रतिमन्त्रं सुरेश्वरि ॥ ९९६ ॥
पञ्चाशत्संख्यका एकाधिका: शब्दास्तत: परम् ।
ते चलत्वेन कथितौ (ता:?) ततश्च त्र्यक्षरं पदम्॥ ९९७ ॥
एकं तङ्ङ्यन्तमुदितं पूर्वोक्तै: सह विग्रहे ।
ततोऽपराणि नामानि तावत्संख्यानि पार्वति ॥ ९९८ ॥
प्रतिमन्त्रं विभिन्नानि ततो वर्णानि सप्त हि ।
स्थिरत्वेनोदितान्यत्र पदानि तदनन्तरम् ॥ ९९९ ॥
एकपञ्चाशसंख्यानि विभिन्नानि सुरेश्वरि ।
मध्यस्थितेन सप्तार्णघटितेन पदेन हि ॥ १००० ॥
आगन्तुकैर्वामदक्षस्थितै: शब्दैश्च विग्रह: ।
अथोत्तरपदै: सार्द्धं पृथक्त्वेन व्यवस्थितै: ॥ १००१ ॥
द्व्यर्णात्मि(त्म)कस्य शब्दस्य स्त्रीलिङ्गाकारधारिण: ।
ङेऽन्तस्य विग्रहोऽप्युक्त: सर्वत्र स्थिरताजुष: ॥ १००२ ॥
ततोऽनु पञ्चदशभिर्वर्णैरिकं विनिर्मितम् ।

पदं ततोऽन्यन्नवभिर्घटितं तदनन्तरम् ॥ १००३ ॥
एतावद्भिर्विहीनैस्तु किन्त्वेकेन सुरेश्वरि ।
ततः षडक्षरमिदं पदमेकं ततोऽप्यनु ॥ १००४ ॥
पदद्वयं परिज्ञेयं चतुरर्णात्मकं तथा ।
षडप्येतानि ङेऽन्तानि कर्तव्यानि पदानि हि ॥ १००५ ॥
कालव्यापितया चैव ज्ञातव्यानि मनौ मनौ ।
ततश्चैको महामन्त्रः षोडशार्णविनिर्मितः ॥ १००६ ॥
सोऽपि कूटस्थरूपेण कथितं त्रिपुरारिणा ।
बीजानि पञ्च तदनु मुख्यानि स्थैर्यभाञ्जि च ॥ १००७ ॥
उपबीजानि दश च मन्त्राङ्गत्वेन यानि हि ।
कथितान्यागमे देवि तानि स्युस्तदनन्तरम् ॥ १००८ ॥
अमून्यपि स्थिराकाराण्यपि ज्ञेयानि पण्डितैः ।
इति सामान्य उद्धारो विशेषमधुना शृणु ॥ १००९ ॥

पर्वतन्यास का सामान्य उद्धार—हे सुरेश्वरि! पहले पन्द्रह बीज फिर एक कूट ये सोलह प्रत्येक मन्त्र में स्थायी रूप से रहते हैं। इसके अनन्तर एक अधिक पचास अर्थात् इक्यावन शब्द रहते हैं। वे चल माने गये हैं। इसके बाद तीन अक्षरों वाला पद (= पर्वत) रहता है। पूर्वोक्त इक्यावन के साथ वह एक पद ङयन्त रहता है। हे पार्वति! इसके अनन्तर उतने ही अर्थात् इक्यावन अन्य नाम रहते हैं। इसके पश्चात् प्रत्येक मन्त्र में भिन्न-भिन्न सात वर्ण रहते हैं। ये स्थिर कहे गये हैं। हे सुरेश्वरि! इसके बाद इक्यावन विभिन्न पद रहते हैं। इनके मध्य सात वर्णों से निर्मित एक पद रहता है। इसका सम्बन्ध बायें दाँयें आने वाले शब्दों के साथ होता है। इसे पश्चात् पृथक् स्थित उत्तर पदों के साथ दो वर्णों वाले ङेऽन्त स्त्रीलिङ्ग स्थिर शब्द का सर्वत्र सम्बन्ध कहा गया है। इसके अनन्तर पन्द्रह वर्णों से निर्मित एक पद, फिर नव वर्णों से घटित एक पद, तदनन्तर हे सुरेश्वरि! इनसे रहित किन्तु एक पद से घटित होता है। वह पद छह अक्षरों से घटित होता है। उसके पश्चात् चार वर्णों वाले दो पद होते हैं। ये छहों पद चतुर्थ्यन्त करने चाहिये। ये प्रत्येक मन्त्र में स्थायी समझे जाने चाहिये। इसके बाद सोलह अक्षरों से निर्मित एक महामन्त्र होता है। उसको भी त्रिपुरारि ने कूटस्थ कहा है। तत्पश्चात् पाँच मुख्य एवं स्थिर बीज होते हैं। मन्त्र के अङ्ग के रूप में जो दश उप बीज आगम में कहे गये हैं। हे देवि! उसके बाद वे ही रखे जाते हैं। पण्डित लोग उनको भी स्थायी ही समझें। इस प्रकार सामान्य उद्धार कहा गया है। अब विशेष उद्धार को सुनो ॥ ९९६-१००९ ॥

[पर्वतन्यासस्य विशेषमन्त्रोद्धारः]

तारः कल्पश्च मुक्ता च महाक्रमनृसिंहकाः ।
मानसं चर्म कापालं भारुण्डा सानुरेव च ॥ १०१० ॥

हारश्च मेखला चैव संग्रहो जम्भ एव च ।
एतानि पञ्चदश वै बीजानि कथितानि ते ॥ १०११ ॥
भासाख्यः षोडशतमः कूटश्च तदनन्तरम् ।

पर्वतन्यास का विशेष मन्त्रोद्धार—तार कल्प मुक्ता महाक्रम नृसिंह मानस चर्म कापाल भारुण्डा सानु हार मेखला संग्रह जम्भ ये पन्द्रह बीज तुमको बतलाये गये । उसके अनन्तर भासा नामक कूट होता है ॥ १०१०-१०११ ॥

[अथैकपञ्चाशत् पर्वतनामानि]

शैला अथैकपञ्चाशत् क्रमेणैव निबोध मे ॥ १०१२ ॥
आदौ हिमालयः प्रोक्तः गन्धमादन इत्यपि ।
भद्राश्वः केतुमालश्च सुमेरुर्विन्ध्य एव च ॥ १०१३ ॥
निषधो हेमकूटश्च पारिपा(?या)त्रस्तथा परम् ।
कैलास उदयश्चापि अस्त इत्येव तत्परम् ॥ १०१४ ॥
माल्यवन्तश्च सह्यश्च मलयो दर्दुरस्तथा ।
ऋष्यमूकः शुक्तिमन्तो महेन्द्रोऽर्बुद एव च ॥ १०१५ ॥
द्रोणश्च रैवतश्चाथ क्रौञ्चस्तदनु कीर्त्यते ।
चित्रकूटश्च काश्मीरः कालञ्जर इतः परम् ॥ १०१६ ॥
श्रीशैलश्चाथ मैनाकस्ततो मुञ्जगिरिर्मतः ।
गोमन्थश्च त्रिकूटश्च सुबलः सैन्धवस्तथा ॥ १०१७ ॥
कलिन्दो रविभा लोकालोको मन्दर एव च ।
केदारोऽष्टत्रिंशसंख्या नीलाचल इतः परम् ॥ १०१८ ॥
अञ्जनश्च वराहश्च तथा चैत्ररथो मतः ।
कर्णिकारश्च मन्दारः कोकामुख इतः परम् ॥ १०१९ ॥
कोलागिरिस्तुषारश्च वाटधानस्ततोऽपि च ।
तस्यानु स्यान्नीचगिरिर्गोवर्द्धन इतः परम् ॥ १०२० ॥
हरिश्चन्द्रः सर्वशेषे एकपञ्चाशदीरिताः ।
इदं पर्वत इत्येवं त्र्यक्षरं ङ्यन्तमीश्वरि ॥ १०२१ ॥

इक्यावन पर्वतनाम—अब मुझसे इक्यावन पर्वतों को जानो । पहले हिमालय कहा गया । गन्धमादन भद्राश्व केतुमाल सुमेरु विन्ध्य निषध हेमकूट परिपा(या)त्र, कैलास उदयाचल अस्ताचल माल्यवान् सह्य मलय दर्दुर ऋष्यमूक शुक्तिमन्त महेन्द्र अर्बुद द्रोण रैवत उसके बाद क्रौञ्च कहा जाता है । चित्रकूट काश्मीर कालञ्जर श्रीशैल मैनाक मुञ्जगिरि गोमन्थ त्रिकूट सुबल सैन्धव कलिन्द रविभा लोकालोक मन्दर केदार यह अड़तीसवाँ है । इसके बाद नीलाचल अञ्जन वराह चैत्ररथ कर्णिकार मन्दर कोकामुख कोलागिरि तुषार वाटधान उसके बाद नीच(ल)गिरि गोवर्द्धन और सबके

अन्त में हरिश्चन्द्र ये इक्यावन पर्वत कहे गये । हे ईश्वरि! इस तीन अक्षर का ङ्यन्त अर्थात् 'पर्वते' प्रयोग होता है ॥ १०१२-१०२१ ॥

[एकपञ्चाशन्नरसिंहनामानि]

अथापरांस्तावतो हि शब्दानाकलय क्रमात् ।
ज्वालामाली करालश्च भीमश्चैवापराजित: ॥ १०२२ ॥
क्षोभणश्च तथा सृष्टि: स्थिति: कल्पान्त इत्यपि ।
अनन्तश्च विरूपश्च ततो वज्रायुधो मत: ॥ १०२३ ॥
परापरो द्वादशाख्यस्तत: प्रध्वंसनो मत: ।
विश्वमर्दन इत्येवमुग्रो भद्रस्ततोऽप्यनु ॥ १०२४ ॥
मृत्यु: सप्तद(शो) ज्ञेय: सहस्रभुज एव च ।
विद्युज्जिह्वो घोरदंष्ट्रो महाकालाग्निरेव च ॥ १०२५ ॥
मेघनादश्च विकटस्तथा पिङ्गसटोऽपि च ।
प्रदीप्तो विश्वरूपश्च विद्युद्दशन एव च ॥ १०२६ ॥
विदारो विक्रमश्चापि प्रचण्ड: सर्वतोमुख: ।
वज्रो दिव्यश्च भोगश्च मोक्षो लक्ष्मीरिति क्रमात् ॥ १०२७ ॥
विद्रावण: कालचक्र: कृतान्तस्तप्तहाटक: ।
भ्रामको रौद्र इति च विश्वान्तक इत: परम् ॥ १०२८ ॥
भयङ्कर: प्रतप्तश्च विजयस्तदनन्तरम् ।
तेजोमयस्तथा ज्वालाजटाल: परिकीर्तित: ॥ १०२९ ॥
तत: सुरेश्वरि खरनखरो नाददारुण: ।
निर्वाणनरसिंहश्च सर्वशेष उदीरित: ॥ १०३० ॥
एकपञ्चाशदित्येते शब्दा: क्रमसमुत्थिता: ।
पदं यत् सप्तवर्णाढ्यं तदाकलय भामिनि ॥ १०३१ ॥
नरसिंहपदस्यान्ते सहितेत्यक्षरत्रयम् ।
पूर्वै: पदैरुत्तरैश्च वक्ष्यमाणै: सहेश्वरि ॥ १०३२ ॥
द्वन्द्वाख्यविग्रहयुतं सर्वत्रैव प्रकीर्तितम् ।

इक्यावन नरसिंह नाम—अब उतने ही संख्या वाले दूसरे शब्दों को क्रम से सुनो । ज्वालामाली कराल भीम अपराजित क्षोभण सृष्टि स्थिति कल्पान्त अनन्त विरूप उसके बाद वज्रायुध कहा गया है । परापर बारहवाँ नाम है । इसके बाद प्रध्वंसन कहा गया है । विश्वमर्दन उग्र फिर भद्र तथा मृत्यु को सत्रहवाँ समझना चाहिये । सहस्रभुज विद्युज्जिह्व घोरदंष्ट्र महाकालाग्नि मेघनाद विकट पिङ्गसट प्रदीप्त विश्वरूप विद्युद्दशन विदार विक्रम प्रचण्ड सर्वतोमुख वज्र दिव्य भोग मोक्ष लक्ष्मी विद्रावण कालचक्र कृतान्त तप्तहाटक भ्रामक रौद्र उसके बाद विश्वान्तक भयङ्कर प्रतप्त उसके पश्चात् विजय तेजोमय और ज्वालाजटाल कहा गया है । हे सुरेश्वरि!

उसके अनन्तर खरनखर नाददारुण और सबके अन्त में निर्वाणनरसिंह कहा गया है । ये इक्यावन शब्द क्रम से आते है । हे भामिनि! अब जो सात वर्णों वाला पद है, उसको जानो । 'नरसिंह' पद के अन्त में तीन अक्षरों वाला 'सहित' को पूर्वपदों तथा वक्ष्यमाण उत्तर पदों के साथ सर्वत्र द्वन्द्व समास युक्त कहा गया है ॥ १०२२-१०३२- ॥

[एकपञ्चाशन्नरसिंहशक्तिनामानि]

अथ ब्रवीमि क्रमशस्तदुत्तरपदानि हि ॥ १०३३ ॥
विद्युत्केशी कालरात्रिरुल्कामुख्यथ कथ्यते ।
ततः पिङ्गजटा कुण्डोदरी प्रेतासनापि च ॥ १०३४ ॥
कपालकुण्डला चण्डचामुण्डा तदनन्तरम् ।
धूमावती ततः शुष्कोदरी ज्वालाकुला ततः ॥ १०३५ ॥
ततोऽञ्जनप्रभा वज्रवाराही कालमर्दिनी ।
नागहारिण्यथो घोरनादा चैव करालिनी ॥ १०३६ ॥
अष्टादशतमा मुण्डचर्चिका विनिगद्यते ।
श्मशानचारिणी चापि शववाहिन्यनन्तरम् ॥ १०३७ ॥
रक्तपायिन्यथो चण्डघण्टा चाट्टाट्टहासिनी ।
कङ्कालिनी तथा भूतोन्मादिनी च पिशाचिनी ॥ १०३८ ॥
ततो विकटदंष्ट्रा च मेघमाला तथैव च ।
पूतितुण्डा च भारुण्डरुण्डा फेत्कारिणी ततः ॥ १०३९ ॥
पिचिण्डनासा च हूं हूङ्कारनादिन्यनन्तरम् ।
कोलानना च पञ्चत्रिंशत्तमा च निरञ्जनी ॥ १०४० ॥
ज्ञेया ततोऽनु भ्रमराम्बिका त्रिदशवदिन्ते ।
मूलताटङ्किनी शूलचण्डिकाऽपि कटङ्कटा ॥ १०४१ ॥
कुक्कुटी पुक्कशी विश्वभञ्जिका शङ्खिनीत्यपि ।
नीलाम्बरा ततः कालसङ्कर्षिण्यपि कथ्यते ॥ १०४२ ॥
ततोऽपराणि कुणपभोजिनी परिकीर्तिता ।
सप्तचत्वारिंशसंख्या दैत्यविध्वंसिनी मता ॥ १०४३ ॥
विदारिसृक्किणी क्षेत्रपालिनी कुलकुट्टनी ।
आनन्ददायिनी सर्वशेषे देवेशि पठ्यते ॥ १०४४ ॥

इक्यावन नरसिंह शक्तिनाम—अब क्रमशः उसके उत्तर पदों को कह रहा हूँ। विद्युत्केशी कालरात्रि उल्कामुखी पिङ्गजटा कुण्डोदरी प्रेतासना कपालकुण्डला चण्डचामुण्डा धूमावती शुष्कोदरी ज्वालाकुला उसके बाद अञ्जनप्रभा वज्रवाराही कालमर्दिनी नागहारिणी फिर घोरनादा करालिनी फिर मुण्डचर्चिका अठारहवीं कही जाती है । श्मशानचारिणी तदनन्तर शववाहिनी रक्तपायिनी चण्डघण्टा अट्टाट्टहासिनी कङ्कालिनी भूतोन्मादिनी पिशाचिनी फिर विकटदंष्ट्रा उसी प्रकार मेघमाला पूतितुण्डा

भारुण्डरुण्डा फेत्कारिणी पिचिण्डनासा तदनन्तर हूं हूंकारनादिनी और कोलानना। निरञ्जनी यह पैंतीसवीं शक्ति जाननी चाहिये । हे त्रिदशवन्दिते! इसके पश्चात् भ्रमराम्बिका मूलताटङ्किनी शूलचण्डिका कटङ्कटा कुक्कुटी पुक्कशी विश्वभञ्जिका शङ्किनी नीलाम्बरा कालसङ्कर्षिणी के बाद कुणपभोजिनी भी कही जाती हैं । दैत्यविध्वंसिनी सैंतालिसवीं मानी गयी है । विदारिसृक्किणी क्षेत्रपालिनी कुलकुट्टनी और हे देवेशि! सबके शेष में आनन्ददायिनी पढ़ी जाती हैं ॥ १०३३-१०४४ ॥

इत्येकपञ्चाशमिता नरसिंहस्य शक्तयः ।
क्रमेण कथनीया हि सहितेत्यक्षरत्रयात् ॥ १०४५ ॥
यत्राजाद्याभिधा देवि सन्धानं तत्र निर्दिशेत् ।
द्व्यर्णात्मको हि यः शब्दः स्त्रीलिङ्गाकारधार्यपि ॥ १०४६ ॥
स(स्व?)रूपा इति विज्ञेयो वर्णपञ्चदशात्मकम् ।
पदमाकलयेदानीं सावधाना सुरेश्वरि ॥ १०४७ ॥
आदौ चतुरशीत्युक्त्वा कोटिब्रह्माण्ड तत्परम् ।
सृष्टिकारिण्यपि ततः शब्दः पञ्चदशाक्षरः ॥ १०४८ ॥
एकीकृतो विग्रहेण ङीबन्तः सुरवदिन्ते ।
विभक्तिः पूर्वमुदिता नवार्णाढ्यं पदं शृणु ॥ १०४९ ॥
प्रज्वलज्ज्वलनस्यान्ते लोचना इति कीर्तयेत् ।
अदोऽपि विग्रहि ज्ञेयं विभक्तिः पूर्विकैव हि ॥ १०५० ॥
अष्टाक्षरं पदं वज्रनखदंष्ट्रायुधा इति ।
षडक्षरं दुर्निरीक्ष्याकारा इति पदं प्रिये ॥ १०५१ ॥
चतुर्वर्णात्मकं यच्च पदद्वन्द्वमुदाहृतम् ।
तत्राद्यं भगवत्येवं गुह्यकाली द्वितीयकम् ॥ १०५२ ॥
महामन्त्रस्तु देवेशि षोडशार्णविनिर्मितः ।
हिरण्यकशिपूपास्यस्ततः परमुदीरितः ॥ १०५३ ॥
पञ्च बीजानि यान्यस्य चरमे कथितानि हि ।
तानि रौद्रश्च कालश्च नित्यो यातनया सह ॥ १०५४ ॥
सन्दीपनी चेति दशोपबीजानि शृणुष्व मे ।
कौरजत्रितयं चास्त्रत्रितयं हृदयं शिरः ॥ १०५५ ॥
इति ते कथितो देवि नरसिंहसमन्वितः ।
उत्तमः पर्वतन्यासः कालीप्रीतिप्रदायकः ॥ १०५६ ॥
यस्मिन् यस्मिन् गिरौ यां यां मूर्तिं संज्ञां तथैव च।
धृत्वा स्थिता महाकाली त्रिजगत्पालनाय हि ॥ १०५७ ॥
तस्य तस्य गिरेर्नाम तत्तन्मूर्त्तेस्तथैव च ।
न्यासेऽस्मिन् कथितं देवि ततोऽयमधिको मतः ॥ १०५८ ॥

इस प्रकार नरसिंह की इक्यावन शक्तियों के 'सहित' इन तीन अक्षरों के बाद क्रम से कथन करना चाहिये । हे देवि! जिन नामों के आदि में स्वर वर्ण हैं वहाँ सन्धि कर देनी चाहिये । जो शब्द दो वर्णों का है तथा स्त्रीलिङ्ग आकार वाला है वहाँ 'स्वरूपा' भी जोड़ना चाहिये । हे सुरेश्वरि! अब सावधान होकर पन्द्रह वर्णों वाले पदों को सुनो । पहले 'चतुरशीति' कहकर फिर 'कोटिब्रह्माण्ड' कहना चाहिये । उसके बाद 'सृष्टिकारिणी' पद कहे । (इस प्रकार 'चतुरशीतिकोटिब्रह्माण्डसृष्टिकारिणी' पद पन्द्रह अक्षरों वाला हो जाता है । हे सुरवन्दिते! एक में मिलाने पर यह ङीप् प्रत्ययान्त हो जाता है । (चतुर्थी) विभक्ति पहले ही कह दी गयी है । अब नव वर्णों वाले पद को सुनो । 'प्रज्वलज्ज्वलन' के अन्त में 'लोचना' कहना चाहिये । इसे भी सन्धियुक्त समझना चाहिये । विभक्ति पहली वाली ही रहेगी । 'वज्रनखदंष्ट्रायुधा' यह आठ अक्षरों वाला पद रहता है। हे प्रिये! उसके बाद 'दुर्निरीक्ष्याकारा' यह छह अक्षरों वाला पद कहा जाता है और जो चार अक्षरों वाले दो पद कहे गये उनमें से प्रथम 'भगवत्यै' और द्वितीय पद 'गुह्यकाल्यै' है । हे देवेशि! हिरण्यकशिपु के द्वारा उपास्य सोलह अक्षरों वाला मन्त्र उसके बाद कहा गया है । इसके जो पाँच बीज अन्त में कथित होते हैं वे हैं—रौद्र काल नित्य यातना और सन्दीपनि । इसके बाद दश उपबीजों (= अक्षरों) को सुनो । तीन कौरज (= खं) तीन अस्त्र (= फट्) हृदय और शिर । हे देवि! इस प्रकार तुमको काली को प्रसन्न करने वाला नरसिंहयुक्त उत्तम पर्वतन्यास बतलाया गया । महाकाली जिस-जिस पर्वत पर जिस-जिस शरीर और नाम को धारण कर तीनों लोकों की रक्षा के लिये स्थित हुई, हे देवि! इस न्यास में उस-उस पर्वत का तथा उस-उस मूर्ति का नाम तुमको बतलाया गया । उसकी अपेक्षा यह षोडशार्णमन्त्र अधिक प्रभावशाली माना गया है ॥ १०४५-१०५८ ॥

[नृसिंहेन सह काल्याः सहवासस्याख्यायिका शिवस्य नृसिंहाकारत्वाख्यानकं च]

सहवासो नृसिंहेन कथमित्यत्र संशये ।
समाकलय सिद्धान्तं कथ्यमानं मया प्रिये ॥ १०५९ ॥
उक्तेषु शैलश्रेष्ठेषु मुनयस्तपसि स्थिताः ।
ऋषयश्च महाभागास्तथा ब्रह्मर्षयोऽपरे ॥ १०६० ॥
विज्ञाय घोरं गहनं रहोरूपं तपोहितम् ।
स्वेच्छाविषयभूतानि चक्रुः कर्माणि तेऽखिलाः ॥ १०६१ ॥
तपांसि तेपिरे केचिन् मन्त्रान् जेपुरथापरे ।
योगांश्च साधयामासुः केचित्तत्रोर्ध्वरेतसः ॥ १०६२ ॥
जगुः सामान्यथ परे ब्रह्म दध्युरथापरे ।
तेषामेवं विदधतां स्वस्वकर्माणि पार्वति ॥ १०६३ ॥
राक्षसा दानवाश्चापि दैतेया असुरास्तथा ।
वरदानमदोन्मत्तास्तपोविघ्नं प्रचक्रिरे ॥ १०६४ ॥

जेपु(जिग्यु ?)श्चापि मुनीन्
कांश्चिद् ध्यानमौनपरायणान् ।
अथ ते शरणं जग्मुर्जगदम्बां परापराम् ॥ १०६५ ॥
तेषामृषीणां त्राणाय तपोविघ्नापनुत्तये ।
महोग्रं वपुरास्थाय दुर्न्रिरीक्ष्यं सुरासुरैः ॥ १०६६ ॥
जघान दानवान् दैत्यान् राक्षसानसुरांस्तथा ।
अथर्षिभिः प्रार्थिता सा तादृशाकारधारिणी ॥ १०६७ ॥
तं तं शैलं न तत्याज तास्ताः घोरास्तनूरपि ।
विहरन्ती तत्र तत्र शैले शैले महेश्वरी ॥ १०६८ ॥
स्वतत्तद्विग्रहाध्यासात् स्वमायापरिकल्पितात् ।
निजं पतिं विसस्मार रूपं च स्वं निरञ्जनम् ॥ १०६९ ॥
अथापश्यन् महारुद्रो निजां छायामिव प्रियाम् ।
अन्वियेष शुचोद्विग्नस्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ १०७० ॥

नृसिंह के साथ काली का सहवास तथा शिव का नृसिंहावतार—हे प्रिये! नृसिंह के साथ काली का सहवास क्यों और कैसे हुआ? इस प्रश्न के विषय में मेरे द्वारा कहे जाने वाले सिद्धान्त को सुनो । उक्त श्रेष्ठ पर्वतों पर मुनि लोग तपस्या में लीन थे । बड़े-बड़े ऋषि एवं ब्रह्मर्षि तपस्या के लिये अनुकूल घोर गहन एकान्त रूप स्थानों को जानकर वे सब अपनी इच्छानुसार कर्म करने लगे । कुछ लोग तप करते थे, दूसरे मन्त्रों का जप करते थे । अन्य तपस्वी ऊर्ध्वरिता होकर योगसाधना करते थे। कुछ लोग सामगान करते, अन्य ध्यानीजन ब्रह्म का ध्यान करते । हे पार्वति! इस प्रकार अपने-अपने कर्म करने वाले उन लोगों के तप रूप क्रिया-कलाप में वरदान के मद से उन्मत्त राक्षस दानव दैत्य एवं असुर विघ्न डालने लगे । ध्यान में लगे तथा मौन धारण किये हुए कुछ मुनियों को उन्होंने जीत लिया । इसके पश्चात् वे महर्षि आदि परापरा जगदम्बा की शरण में गये । जगदम्बा ने उन महर्षियों की रक्षा के लिये तथा तपस्या के विघ्नों को दूर करने के लिये देवों दानवों से दुर्निरीक्ष्य महा भयङ्कर शरीर धारण कर दानवों दैत्यों राक्षसों और असुरों का संहार कर दिया । उसके पश्चात् ऋषियों की प्रार्थना पर उस-उस प्रकार का रूप धारण करने वाली उन जगदम्बा ने न उस-उस पर्वत को छोड़ा न उन भयानक शरीरों को । इसके पश्चात् उन-उन पर्वतों पर विहार करती हुई वह महेश्वरी अपनी माया से रचित अपने भिन्न-भिन्न शरीरों के अध्यास[१] के कारण अपने पति को तथा अपने निरञ्जन स्वरूप को भूल गयी । इसके पश्चात् अपनी छाया के समान अपनी प्रिया को न देखकर भगवान् रुद्र शोक से उद्विग्न होकर चराचरात्मक त्रैलोक्य में उनको ढूँढ़ने लगे ॥ १०५९-१०७० ॥

ददर्श नानारूपाणि महाघोराणि बिभ्रतीम् ।

---

[१] अतस्मिन् तदबुद्धिरध्यासः । यथा रज्जौ सर्पबुद्धिः ।

अद्रावद्रौ महामाया तिष्ठन्ती विकरालिनी ॥ १०७१ ॥
दृष्ट्वोपसर्पितुं शम्भुर्नाशकत् सौम्यविग्रही ।
भीतश्च तादृशाकारं वीक्ष्य देव्या भयङ्करम् ॥ १०७२ ॥
बह्वीर्मूर्तीस्तथालोक्य स्वयं चैको वृषध्वजः ।
मानसे चिन्तयामास किं विधेयं मयेति हि ॥ १०७३ ॥
इयं सम्बर्तगृहिणी मम प्राणेश्वरी प्रिये (या?) ।
आयाता मुनिरक्षार्थमसुराणां वधाय च ॥ १०७४ ॥
कार्यं कृत्वापि देवानां न जहाति तनूरिमाः ।
स्वमायया कल्पितेन मनसेव विडम्बिता ॥ १०७५ ॥
न चैवैनां विहायाहं क्षणं स्थातुं समुत्सहे ।
न चोपसर्पितुं देवीं शक्नोम्येतेन वर्ष्मणा ॥ १०७६ ॥
कमुपायं विधास्यामि कां मतिं चोपसर्पितुम् ।
इत्थं विचिन्तयन् रुद्रो निश्चयं नाध्यगच्छत ॥ १०७७ ॥
सर्वज्ञत्वाद् भगवती ज्ञात्वाभिप्रायमैश्वरम् ।
उच्चैरुवाच गिरिशं मेघगम्भीरया गिरा ॥ १०७८ ॥
न भेतव्यं प्राणनाथ त्वया मामुपसर्पितुम् ।
किन्त्वेकं वचनं कुर्या मम प्रीतिकरं प्रभो ॥ १०७९ ॥
नाहमेतादृशीर्घोराँस्तनूंस्त्यक्ष्यामि सर्वथा ।
नाहमेकाकिनी चापि वस्तुमिच्छामि पर्वते ॥ १०८० ॥

(रुद्र ने अपने प्रिया को) महाघोर अनेक प्रकार का रूप धारण की हुई देखा । वह महामाया विकराल होकर पर्वत-पर्वत पर रह रही थी । सौम्यमूर्ति शिव उसको देखकर उसके समीप नहीं जा सके तथा देवी के इस प्रकार के भयङ्कर रूप को देखकर डर गये । वृषध्वज अकेले थे । उन्होंने महामाया को उस प्रकार अनेक शरीर धारण किये हुए देखा तो मन में सोचने लगे कि मुझे क्या करना चाहिये । यह सम्वर्तगृहिणी मेरी प्राणेश्वरी प्रिया मुनियों की रक्षा तथा असुरों के वध के लिये आयी थी । देवों का कार्य करने के बाद भी यह अपने इन शरीरों को नहीं छोड़ रही है । अपनी माया के द्वारा कल्पित मन से ही यह ठगी-सी हो गयी है । मैं इसको छोड़कर एक क्षण भी नहीं रह सकता और (अपने) इस (सौम्य) शरीर से इसके पास जा भी नहीं सकता। इसके पास पहुँचने के लिये मैं क्या उपाय करूँ, कौन सी बुद्धि लगाऊँ । इस प्रकार सोचते हुए रुद्र किसी निश्चय पर नहीं पहुँच सके । सर्वज्ञा होने के कारण भगवती ने शिव का अभिप्राय जान लिया तथा मेघ के गर्जन के समान गम्भीर वाणी में शिव से बोली—हे प्राणनाथ! आप मेरे पास आने में मत डरें किन्तु हे प्रभो! मुझे प्रसन्न करने वाला एक वचन कर दीजिये । मै इस प्रकार के घोर शरीर को सब प्रकार से नहीं छोड़ना चाहती और पर्वत पर अकेली रहना भी नहीं चाहती ॥ १०७१-१०८० ॥

मनोऽभिलषितान् भोगान् भोक्तुमीहे त्वया सह ।
त्वं चामुनाऽतिसौम्येन शरीरेणोपसर्पितुम् ॥ १०८१ ॥
न शक्नोषि ततो वक्ष्ये प्रकारं हितमावयोः ।
अहं यथा महाघोरामाकृतिं धृतवत्यमुम् ॥ १०८२ ॥
तथा त्वमपि देवेश धृयस्वोग्रतमां तनुम् ।
तदावां विहरिष्यावस्तत्र तत्र गिरौ गिरौ ॥ १०८३ ॥
एवमुक्ते महाकाल्या वचसि प्रेमगर्भिते ।
पिनाकी प्राह वचनं किञ्चिद्विगतसाऽध्वसः ॥ १०८४ ॥
त्वमेव मे देवदेवि समाज्ञापय तादृशीम् ।
तनुं यया त्वया सार्द्धं तिष्ठामि गतभीः सदा ॥ १०८५ ॥
यया च त्वं मया साकं भोगान् भोक्ष्यस ईप्सितान्।
निशम्येदृग्वचस्तस्य देवदेवस्य शूलिनः ॥ १०८६ ॥
स्मितं विधाय रुद्राणी पुनरूचे वचः पतिम् ।
एवं चेन्मन्यसे नाथ शरीरं हितमावयोः ॥ १०८७ ॥
नरसिंहाकृतिं धृत्वा तदा मामुपसर्प भोः ।
नरसिंहाकृतेर्नान्या तनुर्घोरा जगत्त्रये ॥ १०८८ ॥
विद्यते मामकस्यास्य तुल्याकारस्य वर्ष्मणः ।
मन्नामानि यथा चक्रुर्मुनयो भक्तिभाविताः ॥ १०८९ ॥
त्वन्नामानि तथाहं वै विधास्यामि मुदान्विता ।
त्वं प्रेयान् प्रेयसी चाहमहं शक्तिर्भवांच्छिवः ॥ १०९० ॥
पुरुषस्त्वं प्रकृतिरहं वाच्याहं वाचको भवान् ।
इत्युक्तमात्रे रुद्राण्या तथेत्युक्त्वा सदाशिवः ॥ १०९१ ॥
नरसिंहाकृतिं घोरां धृतवान् प्रमथाधिपः ।

मैं आपके साथ मनोवाञ्छित भोगों को भोगना चाहती हूँ । आप इस सौम्य शरीर से मेरे पास नहीं आ सकते इसलिये मैं अपने और आप दोनों के हित का उपाय बतलाती हूँ । जिस प्रकार मैंने घोर आकार धारण किया उसी प्रकार हे देवेश! आप भी इसी प्रकार उग्र शरीर धारण कीजिये । तब हम दोनों भिन्न-भिन्न पर्वतों पर विहार करेंगे । महाकाली के द्वारा प्रेमपूरित इस वचन के कहने पर शिव ने कुछ भयरहित होकर यह वचन कहा । हे देवदेवि! तुम्हीं उस प्रकार के शरीर को बतलाओ जिसके द्वारा मैं निर्भय होकर तुम्हारे साथ रह सकूँ तथा जिसके द्वारा तुम मेरे साथ अभीष्ट भोगों को भोग सको । त्रिशूलधारी देवाधिदेव के उस वचन को सुनकर रुद्राणी मुस्कराती हुई पति से पुनः बोली । हे नाथ! यदि आप ऐसा मानते हैं तो नरसिंह शरीर धारण कर मेरे पास निर्भय होकर आइये । तीनों लोक में नरसिंह से बढ़कर कोई घोर शरीर नहीं है । यह शरीर मेरे इस आकार के तुल्य है । भक्तिभावनायुक्त

ऋषियों ने जैसे मेरे नाम दिये प्रसन्नता से पूर्ण मैं आपको भी वे ही नाम दूँगी । तुम मेरे प्रेयान् हो, मैं तुम्हारी प्रेयसी हूँ । मैं शक्ति हूँ आप शिव हैं । आप पुरुष हैं मैं प्रकृति हूँ । मैं वाच्या (अर्थात् अर्थ) हूँ और आप वाचक (अर्थात् शब्द) हैं । रुद्राणी के द्वारा ऐसा कहे जाने पर प्रमथाधिप सदाशिव ने घोर नरसिंह आकार को धारण किया ॥ १०८१-१०९१ ॥

विदारिसृक्ककयुगलां दीर्घदंष्ट्राचतुष्टयाम् ॥ १०९२ ॥
चामराभसटाजालां वज्राधिकनखाङ्कुराम् ।
बहुबाह्वस्त्रकलितां महोग्रतरतामयीम् ॥ १०९३ ॥
वमदुल्काजालमुखां ज्वलत्पावकलोचनाम् ।
रौद्ररौद्रं वपुर्दृष्ट्वा स्वसहार्वास्थितिक्षमम् ॥ १०९४ ॥
देवी तुतोष तेके (चेके?)
च पूर्णत्वाद् वाञ्छितस्य हि ।
ज्वालामाल्यादीनि तथा निर्वाणान्तानि चैव हि ॥ १०९५ ॥
नामानि चक्रे रुद्रस्य नृसिंहाकारधारिणः ।
छाया तनोरिवाभिन्नौ प्रीतियुक्तौ परस्परम् ॥ १०९६ ॥
चेरतुस्तत्र तत्रादौ द्वन्द्वभूतौ तु दम्पती ।
देव्या यथैव पञ्चाशन्मूर्तयः परिनिष्ठिताः ॥ १०९७ ॥
नरसिंहाकृतेः शम्भोर्जातास्तावत्य एव हि ।
ज्ञात्वेदं मुनयः सर्वे समाधिमयचक्षुषा ॥ १०९८ ॥
देव्या देवस्याभिलाषं दृष्ट्वा च वपुषी तयोः ।
विदित्वा नाम च तयोः संयोज्य च परस्परम् ॥ १०९९ ॥
शिवशक्त्यात्मिकां संज्ञामुपासांचक्रिरे तदा ।
तत्तद्गिरौ तदाकाराभिधानधरया तदा ॥ ११०० ॥
युतया देवदेवेन नृसिंहाकारधारिणा ।
महीभृन्नृहरिस्वाख्या एकीकृत्य दधानया ॥ ११०१ ॥
न्यासेऽस्मिन् निखिलं न्यस्तं मुनिभ्यः कथितं तदा ।
तदाप्रभृति ते सर्वे महाकाल्या अनुज्ञया ॥ ११०२ ॥
कुर्वन्त्येनं महान्यासं शिवशक्त्योर्मुदावहम् ।
एतन्न्यासप्रसङ्गेन कथा पौरातनी मया ॥ ११०३ ॥
कथिता सर्वपापघ्नी सर्वसिद्धेश्च दायिनी ।
रुद्रा एतेनैव चान्ये नरसिंहाभिधाधराः ॥ ११०४ ॥
को हि रुद्रमृते काल्याः सन्निधिं गन्तुमीश्वर ।
रुद्रो यत्र बिभेति स्म सन्निधातुं सुरेश्वरि ॥ ११०५ ॥
तदीयामन्त (मन्वगात् ?) शिष्टिं
तत्रान्येषां हि का कथा ।

उस शरीर के दोनों सृक्कें फटी हुई थी । चार लम्बे-लम्बे दाँत थे । जटायें चामर के समान थीं । नख वज्र से भी अधिक बड़े तथा कठोर थे । उसकी अनेक भुजाओं में अस्त्र थे । महा उग्र शरीर था वह । उसके मुख से उल्कायें निकल रही थीं । आँखें जलती हुई अग्नि के समान थीं । देवी ने अपने साथ रहने में सक्षम उस शरीर को देखकर सन्तोष का अनुभव किया तथा ईप्सित के पूर्ण होने के कारण तृप्त हो गयी । नृसिंहाकारधारी रुद्र का 'ज्वालामाली' से लेकर 'निर्वाण' पर्यन्त नामकरण कर दिया । शरीर और उसकी छाया के समान अभिन्न ये दोनों दम्पती परस्पर प्रेममय होकर साथ-साथ तत्तत् पर्वतों पर विचरण करने लगे । जिस प्रकार देवी की पचास मूर्त्तियाँ बनी थीं उसी प्रकार नरसिंह की भी उतनी ही मूर्त्तियाँ हो गयी । समस्त ऋषिगण समाधिमय नेत्रों से इसको जानकर देव और देवी के अभिलाष एवं उनके युगल शरीर को देखकर उनके नामों को जानकर उनको परस्पर संयुक्त कर दिये । इस प्रकार वे शिवशक्त्यात्मक नाम की उपासना करने लगे । मुनियों ने तत्तत् पर्वतों पर तत्तत् आकार एवं नाम से युक्त नृसिंहाकारधारी देवाधिदेव से युक्त पर्वत एवं नरसिंह की अपनी आख्या को मिलाकर नाम धारण कर इस न्यास में रखा । तब से वे समस्त मुनिगण महाकाली की आज्ञा से शिवशक्ति के प्रीतिदायक इस महान्यास को करते रहते हैं । इस न्यास के प्रसङ्ग से मैने यह प्राचीन कथा जो कि समस्त पापों का नाश करने तथा समस्त सिद्धियों को देने वाली है, कही । इसी कारण रुद्र एवं अन्य लोग नरसिंह नाम वाले हैं । रुद्र को छोड़कर कौन काली के पास जाने में समर्थ है । हे सुरेश्वरि! जिसके पास जाने में रुद्र भी डर गये और उसके शिष्टि अर्थात् आदेश का पालन किया वहाँ दूसरे सामान्य लोगों की क्या बात ॥ १०९२-११०५ ॥

[पर्वतन्यासमाहात्म्यकीर्तनम्]

अतो वदामि ते सत्यं न्यासस्यास्य समानताम् ॥ ११०६ ॥
नाप्नुवन्त्यपरे कोटिप्रकारैरपि सर्वशः ।
पावना यत्र ते शैला यत्र चैव सदाशिवाः ॥ ११०७ ॥
नरसिंहाकारधरा यत्राम्नायाश्च मूर्तयः ।
महोग्रास्तत्तदाख्याभिरन्विता शिवशक्तिभिः ॥ ११०८ ॥
महिमानममुष्यातो विज्ञाय परमर्षयः ।
चक्रुरेनं महान्यासं हित्वाऽन्यान् पञ्च पार्वति ॥ ११०९ ॥
राथीतर(राथन्तरा ?) औडुलोमा
वामकक्षायना तथा ।
कौषीतकेया वासिष्ठा आश्मरथ्याश्च केवलाः ॥ १११० ॥
जपन्ति देवजननीमिवामुं न्यासमुत्तमम् ।
सिद्धिं च परां प्राप्ता न्यासस्यास्य प्रसादतः ॥ ११११ ॥
तथा त्वमपि देवेशि कुर्वमुं प्रतिवासरम् ।

नानाविधानां सिद्धीनां भविष्यसि च भाजनम् ॥ १११२ ॥
अतो जानीहि सिद्धान्तं न नृसिंहाकृतिर्हरिः ।
सन्निधानं गतो देव्या भिन्नभावेन सुन्दरि ॥ १११३ ॥
रुद्र एव तमाकारं विधायातिभयङ्करम् ।
शिवशक्तिसमायोगसिद्धयेऽगात्तदाज्ञया ॥ १११४ ॥

पर्वतन्यास का माहात्म्य—इसके बाद मैं तुमसे एक सत्य कह रहा हूँ । जहाँ वे पवित्र पर्वत हैं; जहाँ नरसिंह का आकार धारण किये सदाशिव हैं और जहाँ आम्नाय अर्थात् शास्त्र महाभयङ्कर तथा तत्तत् नामों वाली शिव-शक्तियों की मूर्त्तियाँ स्थित है, वहाँ दूसरे न्यास करोड़ों प्रकारों से भी सब आयामों से इसकी समानता नहीं कर सकते । इस कारण हे पार्वति! इसकी महिमा को जानकर ऋषि लोग अन्य पाँच न्यासों को छोड़कर इस महान्यास को करते थे । राथन्तर औडुलोम वामकक्षायन कौषीतकेय वासिष्ठ एवं आश्मरथ्य इस उत्तम न्यास के जप को देवजननी की भाँति करते हैं । इस न्यास की कृपा से वे परम सिद्धि को प्राप्त किये । हे देवेशि! तुम भी प्रतिदिन इस न्यास को करो । इस प्रकार तुम अनेक सिद्धियों की पात्र बनोगी । इसलिये यह सिद्धान्त जानो कि भगवान् विष्णु नृसिंह आकार वाले नहीं हैं; बल्कि हे सुन्दरि! रुद्र ही उस शक्ति की आज्ञा से उस अतिभयङ्कर रूप को धारण कर भिन्न रूप में शिवशक्तिसमायोग की सिद्धि के लिये देवी के पास गये ॥ ११०६-१११४ ॥

[नद्यृषिन्यासोद्देशस्तस्य ऋष्यादिनिर्देशश्च]

अथ निर्वाणषोढायां तृतीयं न्यासमादरात् ।
नद्यृषिन्यासनामानं सावधाना निशामय ॥ १११५ ॥
अस्य नद्यृषिन्यासस्य पारस्कर ऋषिर्मतः ।
छन्द आकृतिराख्याता ततः प्रकृतिशब्दतः ॥ १११६ ॥
तथा मूर्त्यन्तरपदाद् धारिणीति समुद्धरेत् ।
गुह्यकाली देवता च मेघो बीजमुदाहृतम् ॥ १११७ ॥
धनदा शक्तिरुदिता खेचरी कीलकं तथा ।
दानवस्तत्त्वमित्याहुः मौलेया न श्रुतीश्वराः ॥ १११८ ॥
महानिर्वाणषोढाङ्गन्यासभूतपदादनु ।
नद्यृषिन्यास इत्येवं जपे च विनियोगता ॥ १११९ ॥
एवमृष्यादिकं स्मृत्वा षडङ्गं विदधीत वै ।

नदीऋषिन्यास और उसके ऋषि आदि—अब निर्वाण षोढान्यास के अन्तर्गत सावधान होकर नदीऋषिन्यास नामक तीसरे न्यास को आदर के साथ सुनो । इस नदीऋषिन्यास के ऋषि पारस्कर कहे गये हैं । छन्द आकृति कही गयी है। प्रकृतिमूर्त्यन्तरधारिणी गुह्यकाली देवता है । मेघ को बीज कहा गया है । शक्ति धनदा बीज और कीलक खेचरी बीज है । दानव बीज को तत्त्व कहा गया है । ऐसा मौलेग

सम्प्रदाय वाले कहते हैं; वेदानुयायी नहीं । महानिर्वाण षोढाङ्गन्यासभूत नदी ऋषिन्यास एवं जप में इसका विनियोग होता है । इस प्रकार ऋषि आदि का स्मरण कर षडङ्गन्यास करना चाहिये ॥ १११५-१११९ ॥

[नद्यृषिन्यासाङ्गभूतषडङ्गन्यास:]

किञ्चित् क्रूरं षडङ्गं च तदाकलय सादरा ॥ ११२० ॥
प्रणवो वाग्भवः पाशः प्रासादः कमलापि च ।
कात्यायनी चराचरजगद्
व्यापिनीति पदद्वयम् (?) ॥ ११२१ ॥
ङेऽन्तं कृत्वा त्रपाकामवधूकूर्चास्ततः परम् ।
समुच्चरेत् सर्वसिद्धिदायिन्यै तदनन्तरम् ॥ ११२२ ॥
अङ्गुष्ठयोश्च हृदये न्यसेत्तन्मनुना प्रिये ।
अथ काली सुधातःक्ष्यक्षेत्रपालाश्च योगिनी ॥ ११२३ ॥
भद्रकाली महाघोरतराकारा तथैव च ।
द्वयं ङेऽन्तं समुच्चार्य शाकिनी डाकिनी तथा ॥ ११२४ ॥
प्रेतः परापरापररूपायै इत्युदीर्य हि ।
तर्जन्योश्चापि शिरसि विन्यसेत् परमेश्वरि ॥ ११२५ ॥
मानसं वज्रकापाले काकिनी नृहरिस्तथा ।
महामाया जन्ममृत्युपापनाशिन्यदो द्वयम् ॥ ११२६ ॥
चतुर्थ्येकवचःकृत्वा गौः शक्तिर्भूतकिन्नरौ ।
प्रवदेन्नरमुण्डानु मालायै तदनन्तरम् ॥ ११२७ ॥
मध्यमाशिखयोर्न्यस्येदंशुः सानुश्च दक्षिणा ।
चूडामणिश्च जम्भश्च ततो भगवती पदम् ॥ ११२८ ॥
महाप्रलय शब्दानु विलासिन्यपि कथ्यते ।
एतत् पदद्वयं ङेऽन्तं विधाय तदनन्तरम् ॥ ११२९ ॥
फेत्कारिणी द्वीपबलिप्रलयास्तत्परं मताः ।
स्यात् श्मशानविहारिण्यै पदमेतत्ततः परम् ॥ ११३० ॥
अनामिकायां कवचे तन्मन्त्रेणैव विन्यसेत् ।
वेदी च पारिजातश्च कर्णिकाहारशृङ्खला: ॥ ११३१ ॥
चण्डिका च महोग्राऽनु चण्डकापालिनी तथा ।
विभक्तेरपि तुर्याया आद्येन वचनेन हि ॥ ११३२ ॥
योजयेत् प्राक्पदद्वन्द्वं हाकिनीविधिचञ्चवः ।
कृत्या कुलाचारपदाद् भवेत् समयपालिनी ॥ ११३३ ॥
ङेऽन्तेयमपि देवेशि कनिष्ठायां दृशीरयेत् ।
सारसः पद्मकुशिकौ प्रकरी रञ्जिनी तथा ॥ ११३४ ॥

ततः सिद्धिकराली च पुनर्घोरातिघोर च ।
पदान्महाडामरी च द्वयं ङेऽन्तं समुद्धरेत् ॥ ११३५ ॥
मन्दप्रचण्डाव्यजनविनादास्तदनन्तरम् ।
महाचण्डपदाद् योगेश्वर्यै इत्यभिनिर्दिशेत् ॥ ११३६ ॥
वदेत् करतलपृष्ठाभ्यां तथास्त्रायापि पार्वति ।
इत्येव नद्यृषिन्यासषडङ्गं समुदाहृतम् ॥ ११३७ ॥

नदी ऋषिन्यास का अङ्गभूत षडङ्गन्यास—उसके बाद आदर के साथ कुछ क्रूर अर्थात् कठिन षडङ्गन्यास को सुनो । प्रणव वाग्भव पाश प्रासाद कमला बीजों के बाद 'कात्यायनी' तथा 'चराचरजगद्व्यापिनी' इन दो पदों को चतुर्थ्यन्त कहकर त्रपा काम वधू कूर्च उसके बाद 'सर्वसिद्धिदायिन्यै' कहना चाहिये । हे प्रिये! इस मन्त्र से दोनों अङ्गूठों तथा हृदय में न्यास करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ओं ऐं आं हौं श्रीं कात्यायन्यै चराचरजगद्व्यापिन्यै ह्रीं क्लीं स्त्रीं हूं सर्वसिद्धिदायिन्यै अङ्गुष्ठाभ्यां नम:, हृदयाय नम:) ।

फिर काली सुधा गरुड क्षेत्रपाल योगिनी बीजों के बाद 'भद्रकाली' तथा 'महाघोरतराकारा' इन दो पदों का ङेऽन्त उच्चारण कर शाकिनी डाकिनी प्रेत बीज पुन: 'परापरापररूपायै' कहकर हे परमेश्वरि! दोनों तर्जनी तथा शिर में न्यास करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—क्रीं ग्लूं क्रौं क्षौं छ्रीं भद्रकाल्यै महाघोरतराकारायै फ्रें खफ्रें स्हौ: परापरापररूपायै तर्जनीभ्यां नम:, शिरसे स्वाहा) ।

मानस वज्र कापाल काकिनी नरसिंह के बाद 'महामाया जन्ममृत्युपापनाशिनी' इन दोनों पदों को चतुर्थी एक वचन कहकर गौ शक्ति भूत किन्नर के अनन्तर 'नरमुण्ड' के बाद 'मालायै' कहना चाहिये । इससे दोनों मध्यमा तथा शिखा में न्यास करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—ठ्रीं घ्रीं थ्रीं फ्रीं क्ष्रौं महामायायै जन्ममृत्युपापनाशिन्यै हूं ब्लूं स्फ्रों स्फ्रौं नरमुण्डमालायै मध्यमाभ्यां नम:, शिखायै वषट्) ।

अंशु सानु दक्षिणा चूडामणि जम्भ के बाद 'भगवती' तथा 'महाप्रलयविलासिनी' दन दोनों पदों को ङेऽन्त बनाकर तदनन्तर फेत्कारिणी द्वीप बलि और प्रलय कहे गये हैं। उसके बाद 'श्मशानविहारिण्यै' पद कहना चाहिये । इस मन्त्र से अनामिका और कवच में न्यास करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—हैं रफ्रें रफ्रीं रफ्रीं भगवत्यै महाप्रलयविलासिन्यै ह्स्ख्फ्रें रफ्रां रछ्रीं हसफ्रें श्मशानविहारिण्यै अनामिकाभ्यां नम:, कवचाय हुम्) ।

वेदी पारिजात कर्णिका हार शृङ्खला के पश्चात् 'चण्डिका महोग्रा चण्डकापालिनी को चतुर्थ्यन्त कहना चाहिये । दो 'प्राक्' हाकिनी विधि चञ्चु कृत्या के पश्चात्

'कुलाचारसमयपालिनी' का ङेऽन्त उच्चारण करे । हे देवेशि! कनिष्ठिका तथा तीनों नेत्रों में न्यास करना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—रफ्रीं क्ष्मां (?) क्षह्लीं ह्लक्षम्लैं रग्रौं चण्डिकायै महोग्रायै चण्डकापालिन्यै प्राक् प्राक् रक्षश्रीं रक्षछ्रीं रस्फ्रौं हस्खफ्रें कुलाचारसमयपालिन्यै कनिष्ठिकाभ्यां नमः, नेत्रत्रयाय वौषट्) ।

सारस पद्म कुशिक प्रकरी रञ्जिनी के पश्चात् 'सिद्धिकराली घोरातिघोरमहाडामरी' दोनों पदों को ङेऽन्त उद्धृत करना चाहिये । मन्द प्रचण्डा व्यजन विनाद तदनन्तर 'महाचण्डयोगेश्वर्यै' पद उद्धृत करना चाहिये । हे पार्वति! इससे करतलकरपृष्ठाभ्यां तथा अस्त्राय फट् कहना चाहिये ।

(मन्त्र-स्वरूप—रकक्ष्मौं रह्लछ्रक्षह्लूं रह्लछ्रक्षह्लैं खफ्रक्लैं रक्षफ्रछ्रैं सिद्धिकराल्यै घोरातिघोरमहाडामर्यै हसफ्रीं खफ्रूं खफ्रक्षैं खफ्रह्लूं महाचण्डयोगेश्वर्यै करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः अस्त्राय फट्) ।

इस प्रकार छह अङ्गों वाला नदीऋषि न्यास कहा गया ॥ ११२०-११३७ ॥

[नद्यृषिन्यासस्य सामान्यतो मन्त्रोद्धारनिर्देश:]

न्यासोद्धारमिदानीं ते कथयामि विशेषतः ।
सामान्यश्च विशेषश्च स्यादसावुभयात्मकः ॥ ११३८ ॥
आदौ दशैव बीजानि सर्वत्रैव स्थिराणि हि ।
उपबीजानि षट् चापि कालव्यापीन्यतः परम् ॥ ११३९ ॥
भिन्नभिन्नानि नामानि चलानि तदनन्तरम् ।
एकाधिकानि पञ्चाशत्संख्याकानि सुरेश्वरि ॥ ११४० ॥
द्व्यक्षरद्विपदेनैव षष्ठी विग्रहधारिणी ।
ङ्यन्तेन च स्थिरेणापि सर्वत्रैव मनौ मनौ ॥ ११४१ ॥
ततोऽपराणि नामानि भिन्नभिन्नानि सर्वशः ।
तैरजादिपदैकेन त्र्याकारान्तर्गतेन च ॥ ११४२ ॥
ङेऽन्तेन पूर्वशब्देन साकं सन्धानशालिना ।
ततो देव्या विभिन्नानि नामानि कथितानि हि ॥ ११४३ ॥
तैः पदद्वितयारब्धनाम्नामेकेन विग्रहः ।
चतुर्वर्णात्मकं शब्दद्वन्द्वं तदनु वै पृथक् ॥ ११४४ ॥
नामैकं घटितं पश्चात् पुनरेकादशाक्षरैः ।
तस्याप्यनु सुरेशानि तद्वत् पुनरथाष्टभिः ॥ ११४५ ॥
पूर्ववत् पञ्चदशभिरक्षरैर्निर्मितं तथा ।
नामैकं षडिमानि स्युर्ङेऽन्तानि वरवर्णिनि ॥ ११४६ ॥

योगात्तुर्यविभागस्य वर्णाधिक्यं प्रजायते ।
ततो महामनुश्चैको वर्णसप्तदशात्मकः ॥ ११४७ ॥
सर्वत्रैवाचलः प्रोक्तः सह षड्भिः पदैर्हि तैः ।
अष्टौ बीजानि तदनु तान्यपि स्थैर्यभाञ्जि हि ॥ ११४८ ॥
उपबीजाक्षरश्रेण्यश्चतस्त्रस्तदनु स्मृताः ।
सामान्योद्धृतिरित्येषा तव देवि मयोदिता ॥ ११४९ ॥

नदीऋषिन्यास का सामान्य मन्त्रोद्धार—अब तुमको विशेष रूप से न्यासोद्धार बतलाऊँगा । यह सामान्य और विशेष दोनों प्रकार का होता है । (सामान्य न्यासोद्धार के सन्दर्भ में) पहले सर्वत्र दश बीज स्थायी रहते हैं । छह उपबीज भी कालव्यापी होते हैं । इसके बाद भिन्न-भिन्न नाम होते हैं और वे अस्थायी होते हैं । हे सुरेश्वरि! इनकी संख्या एक अधिक पचास (अर्थात् इक्यावन) होती है । सर्वत्र प्रत्येक मन्त्र में दो अक्षरों वाले दो पद षष्ठीसमासयुक्त होते हैं और वह समस्त पद ङेऽन्त होता है । इसके बाद भिन्न-भिन्न नाम सर्वत्र होते हैं । वे सर्वत्र स्वरादिवर्ण वाले होते हैं तथा एक पद के साथ सन्धियुक्त होते हैं । वह एक पद आकारान्त तथा अन्त में चतुर्थी विभक्ति वाला होता है । इसके बाद देवी के विभिन्न नाम कहे जाते हैं । उनकी दो पदों से आरब्ध एक नाम से सन्धि होती है । उसके बाद चार वर्णों वाले दो पृथक्-पृथक् पद रहते हैं । तत्पश्चात् ग्यारह अक्षरों से घटित एक नाम होता है । हे सुरेशानि! उसके भी पश्चात् उसी प्रकार आठ फिर पन्द्रह अक्षरों वाले नाम होते हैं । हे वरवर्णिनि! ये छह नाम ङेऽन्त होते हैं । चतुर्थ भाग के योग से वर्ण की अधिकता हो जाती है । इसके पश्चात् सत्रह वर्णों वाला एक महामन्त्र होता है । यह उपर्युक्त छह पदों के साथ सर्वत्र अचल कहा गया है । उसके बाद आठ बीज होते हैं । वे भी स्थिरता वाले होते हैं । उसके अनन्तर उप बीजाक्षरों की चार श्रेणियाँ होती हैं । हे देवि! यह मैंने तुमको सामान्य उद्धार बतलाया ॥ ११३८-११४९ ॥

[नद्यृषिन्यासस्य विशेषमन्त्रोद्धारनिर्देशः]

विशेषभूतामधुना प्रवदामि निशामय ।
पाशः कला च शर्वश्च वाग्भवोऽश्वत्थ एव च ॥ ११५० ॥
कामः प्रेतश्च चण्डश्च सृणिः कालस्तथैव च ।
बीजानीमानि दश वै पुरतः कथितानि हि ॥ ११५१ ॥
मन्थानीत्रितयं चास्त्रत्रितयं तदनन्तरम् ।

नदीऋषिन्यास का विशेष मन्त्रोद्धार—अब विशेषभूता निर्वाणषोढा को कह रहा हूँ, सुनो । पाश, कला, शर्व, वाग्भव, अश्वत्थ, काम, प्रेत, चण्ड, सृणि और काल—ये दश बीज पहले कहे गये होते हैं । तीन मन्थानी, तीन अस्त्र उसके बाद कहे जाते हैं ॥ ११५०-११५१ ॥

[एकपञ्चाशन्नदीनामानि]

नामानि भिन्नभिन्नानि समाकलय साम्प्रतम् ॥ ११५२ ॥
सर्वाद्या यमुना प्रोक्ता सरस्वत्यथ कथ्यते ।
विपाशैरावती चापि चन्द्रभागा च पञ्चमी ॥ ११५३ ॥
वितस्ता देविका चैव गोमती नर्मदा तथा ।
शिप्रा च कृष्णवेल्ला च तुङ्गभद्रा ततोऽप्यनु ॥ ११५४ ॥
कावेरी तदनु ज्ञेया ततो गोदावरीति च ।
तापी पयोघ्नी कथिता पश्चाद् भीमरथी मता ॥ ११५५ ॥
बाहुदा करतोया च गण्डकी सरयूस्तथा ।
द्वाविंशतितमा ज्ञेया कौशिकी च शरावती ॥ ११५६ ॥
इरावती चोत्पलिनी सभङ्गा वेत्रवत्यपि ।
अष्टाविंशतिसंख्याका तमसा परिकीर्तिता ॥ ११५७ ॥
चर्मण्वती धूतपापा ततश्चापि वरानने ।
सुवर्णरेखा गदिता विरजा तदनन्तरम् ॥ ११५८ ॥
त्रयस्त्रिंशत्तमा प्रोक्ता निर्विन्ध्या च महानदी ।
मुरला तत्परं ज्योतीरसा पारावती तथा ॥ ११५९ ॥
वाग्मती स्यादनु मलप्रहारिण्यपि कथ्यते ।
वरुणा च ततो मन्दाकिनी भोगवतीति च ॥ ११६० ॥
शोणः शतद्रुरपि च हिरण्याक्ष इतः परम् ।
सिन्धुश्च घर्घरः कोकनदी लौहित्य एव च ॥ ११६१ ॥
ततोऽन्वलकनन्दा च गङ्गा सर्वस्य शेषगा ।
नामानीत्येकपञ्चाशदुदितानि यथाक्रमम् ॥ ११६२ ॥
एतेषामनु ये प्रोक्ते पदे ते वै निशामय ।
आद्यं नदीति कथितं द्वितीयं तीरमित्यपि ॥ ११६३ ॥
अतः परं भिन्नभिन्नान्येतयोरनु यानि हि ।
उदीरितानि नामानि तदाकलय सुन्दरि ॥ ११६४ ॥

नदी के इक्यावन नाम—अब भिन्न-भिन्न नदीनामों को जानो । सबसे पहले यमुना कही गयी । इसके बाद सरस्वती कही जाती है । विपाशा ऐरावती के बाद चन्द्रभागा पाँचवीं है । वितस्ता (= व्यास) देविका गोमती नर्मदा शिप्रा कृष्णवेल्ला (= कृष्णा) तुङ्गभद्रा कावेरी गोदावरी तापी (= ताप्ती) पयोघ्नी भीमरथी बाहुदा करतोया गण्डकी सरयू । कौशिकी यह बाईसवीं मानी गयी है । शरावती इरावती उत्पलिनी सभङ्गा वेत्रवती (= वेतवा) । तमसा अट्ठाईसवीं कही गयी है । हे वरानने! उसके बाद चर्मण्वती धूतपापा और सुवर्णरेखा कही गयी है । तदनन्तर विरजा है । निर्विन्ध्या तैंतीसवीं है । उसके बाद महानदी मुरला ज्योतीरसा पारावती वाग्मती उसके

बाद मलप्रहारिणी कही जाती है । फिर वरुणा मन्दाकिनी भोगवती शोणभद्र शतद्रु इसके बाद हिरण्याक्ष सिन्धु घर्घर (= घाघरा) कोकनदी लौहित्य इसके बाद अलकनन्दा और सबके अन्त में गङ्गा ये इक्यावन नाम क्रम से कहे गये । इनके बाद जो दो पद कहे गये उनको सुनो । पहला 'नदी' पद कहा जाता है, दूसरा 'तीर' । इसके बाद इन दोनों के पीछे जो भिन्न-भिन्न नाम कहे जाते हैं । हे सुन्दरि! उनको सुनो ॥ ११५२-११६४ ॥

[एकपञ्चाशदृषिनामानि]

आदौ मरीचिरत्रिश्च ततश्चैवाङ्गिरा मतः ।
पुलस्त्यः पुलहश्चापि क्रतुः षष्ठ उदाहृतः ॥ ११६५ ॥
वसिष्ठः सप्तमो ज्ञेयो भृगुरष्टम एव च ।
भरद्वाजः कर्दमश्च कपिलस्तत्परेण हि ॥ ११६६ ॥
दुर्वासा द्वादशतमो दत्तात्रेयस्ततः परम् ।
अगस्त्योऽथ परिज्ञेयः पराशर इतः परम् ॥ ११६७ ॥
व्यासो विश्वामित्र इति गर्गो गौतम एव च ।
शाण्डिल्यश्चासितः प्रोक्तो देवलस्तदनन्तरम् ॥ ११६८ ॥
ज्ञेयः शातातपः पश्चात् कात्यायन इतोऽप्यनु ।
आपस्तम्बस्तथा शङ्खलिखितौ ह्येकतां गतः ॥ ११६९ ॥
हारीतो जमदग्निश्च ऋचीकश्च्यवनोऽपि च ।
एकत्रिंशत्तमो ज्ञेयः पैठीनसिरितीश्वरि ॥ ११७० ॥
उद्दालकः श्वेतकेतुर्दधीचिर्जैमिनिस्तथा ।
वैशम्पायन इत्येवं वामदेवश्च गालवः ॥ ११७१ ॥
संवर्तः पर्शुरामश्च जाबालः कथितस्ततः ।
शरभङ्गश्च वाल्मीकिर्नारदः कश्यपोऽपि च ॥ ११७२ ॥
अथर्वा तदनु ज्ञेयो मार्कण्डेयोऽथ लोमशः ।
और्वस्ततोऽप्यनूतङ्को याज्ञवल्क्यश्च शेषगः ॥ ११७३ ॥
ऋषयस्त्वेकपञ्चाशदित्येते परिकीर्तिताः ।
एतेषामग्रतो देवि नाम्नामेकं पदं मतम् ॥ ११७४ ॥
चतुर्वर्णात्मकं तच्चोपासितेत्यङ्गनाकृतिः ।
पुनर्भिन्नानि नामानि सामान्ये यदुदीरितम् ॥ ११७५ ॥
तानीदानीं प्रवक्ष्यामि तत्तत्क्रमगतानि हि ।

इक्यावन ऋषि नाम—पहले मरीचि फिर अत्रि अङ्गिरा पुलस्त्य पुलह क्रतु छठें कहे गये हैं । वसिष्ठ को सप्तम और भृगु को अष्टम जानना चाहिये । भरद्वाज कर्दम कपिल के बाद दुर्वासा बारहवें ऋषि हैं । दत्तात्रेय अगस्त्य पराशर व्यास विश्वामित्र गर्ग गौतम शाण्डिल्य असित देवल शातातप कात्यायन आपस्तम्ब शङ्ख लिखित हारीत

जमदग्नि ऋचीक च्यवन । हे ईश्वरि! पैंठीनसि को इकतीसवाँ जानना चाहिये । उद्दालक श्वेतकेतु दधीचि जैमिनि वैशम्पायन वामदेव गालव संवर्त परशुराम जाबाल शरभङ्ग वाल्मीकि नारद कश्यप अथर्वा मार्कण्डेय लोमश और्व उत्तङ्क और अन्तिम याज्ञवल्क्य । ये इक्यावन ऋषि कहे गये । हे देवि! इनके नामों के बाद चार वर्णों वाला एक पद कहा जाता है । वह है—स्त्रीलिङ्गवाची 'उपासिता' शब्द । पुनः सामान्योद्धार में जो भिन्न नाम कहे गये, अब क्रम से उनको कह रहा हूँ ॥ ११६५-११७५ ॥

[एकपञ्चाशद् देवीनामानि]

कामदा च महाविद्या गौरी तार्तीयकी मता ॥ ११७६ ॥
चतुर्थी चापि कामाख्या ततो माहेश्वरी मता ।
तत्पश्चाद् विश्वरूपा च तपस्विन्यथ कथ्यते ॥ ११७७ ॥
पुण्यप्रदा ततो विन्ध्यवासिनी परिकीर्तिता ।
महामाया च दशमी शिवशक्तिरतः परम् ॥ ११७८ ॥
क्षेमङ्करी चाथ भवहारिणी च त्रयोदशी ।
सूक्ष्मा पद्मावती चापि षोडश्युक्ता कुलेश्वरी ॥ ११७९ ॥
ततः सप्तदशी देवि कौशिकी च महोदया ।
विमला च तथा पद्मासना चापि प्रियङ्करी ॥ ११८० ॥
सर्वाश्रया गुणानन्दा कलातीता तथैव च ।
नादस्वरूपिणी चापि ततो नारायणी मता ॥ ११८१ ॥
तापसी वेदमाता च ज्ञानवेद्या ततः परम् ।
भवतारिण्यथो ज्ञेया मुदिता नन्दिनी तथा ॥ ११८२ ॥
हरप्रिया कुण्डलिनी दयावत्यपि शाङ्करी ।
अद्वैता नैगमी चापि तथैव श्रुतिबोधिता ॥ ११८३ ॥
शाम्भवी चैकचत्वारिंशत्तमा च परापरा ।
ततो भोगवती नित्यानन्दा चैव सुरेश्वरि ॥ ११८४ ॥
तुरीया तत्परं वागगोचरा मोक्षदा तथा ।
योगविद्या च निर्लेपा तथा चैव निरिन्धनी ॥ ११८५ ॥
मानसी सर्वशेषे तु सर्वज्ञा परिकीर्तिता ।

देवी के इक्यावन नाम—कामदा महाविद्या के बाद गौरी तीसरी मानी गयी है । कामाख्या चौथी कही गयी है । फिर माहेश्वरी तत्पश्चात् विश्वरूपा तपस्विनी पुण्यप्रदा और विन्ध्यवासिनी कही गयी है । महामाया दशवीं है । इसके बाद शिवशक्ति क्षेमङ्करी भवहारिणी तेरहवीं है । सूक्ष्मा पद्मावती के बाद कुलेश्वरी सोलहवीं कही गयी है । इसके पश्चात् कौशिकी सत्रहवीं है । महोदया विमला पद्मासना प्रियङ्करी सर्वाश्रया गुणानन्दा कलातीता नादस्वरूपिणी नारायणी तापसी वेदमाता ज्ञानवेद्या उसके अनन्तर भवतारिणी जाननी चाहिये । मुदिता नन्दिनी हरप्रिया कुण्डलिनी दयावती शाङ्करी

अद्वैता नैगमी श्रुतिबोधिता और शाम्भवी के बाद परापरा को इकतालीसवीं जानना चाहिये । इसके बाद भोगवती नित्यानन्दा तुरीया वागगोचरा मोक्षदा योगविद्या निर्लेपा निरिन्धनी मानसी के पश्चात् सबके अन्त में सर्वज्ञा कही गयी है ॥ ११७६-११८५॥

द्विपदारब्धनामैकं पञ्चवर्णात्मकं हि यत् ॥ ११८६ ॥
तत्राद्यो नामशब्दश्च द्वितीयो धारिणीत्यपि ।
चतुर्वर्णात्मकं यच्च पदद्वन्द्वमुदाहृतम् ॥ ११८७ ॥
तत्राद्यं भगवत्येकं द्वितीयं गुह्यकाल्यपि ।
एकादशार्णघटितं यत्पदं समुदाहृतम् ॥ ११८८ ॥
अधुना तदहं वच्मि समाकलय भामिनि ।
लेलिहानपदस्यान्ते रसनाशब्दमुद्धरेत् ॥ ११८९ ॥
भयानका तत्परं च एवमेकादशाक्षरम् ।
विभागविनियोगेन भवेद् द्वादशतास्य हि ॥ ११९० ॥
एतस्यानु पदं देवि यत्तदष्टाक्षरात्मकम् ।
तद्वै विकटदंष्ट्रानु कराला इति कीर्त्तितम् ॥ ११९१ ॥
अदोऽपि हि विभक्त्यामा नववर्णात्मकं भवेत् ।
यदुक्तं पञ्चदशभिर्वर्णैरेकं पदं प्रिये ॥ ११९२ ॥
तद्वै महाचण्डयोगेश्वरी शक्तिपदादनु ।
वदेच्च तत्त्वसहिता इत्येवं परमेश्वरि ॥ ११९३ ॥
इयं विभक्त्या भवति सहिता षोडशाक्षरी ।
षण्णां पदानामेतेषां विभक्तिः पूर्वमीरिता ॥ ११९४ ॥
एषां पदानामन्ते हि महामन्त्रोऽयमीश्वरि ।
स वसिष्ठोपासिता हि ज्ञेयः सप्तदशाक्षरः ॥ ११९५ ॥
एतस्य पश्चाद् बीजानि यान्यष्टौ कथितानि ते ।
तानीदानीं प्रवक्ष्यामि ह्युपबीजान्यतः परम् ॥ ११९६ ॥
जीवः कालोऽवनिश्चापि विकारोऽर्चा दुरी तथा ।
आदित्यज्ये इतीमानि हृच्छीर्षे चोपबीजके ॥ ११९७ ॥
इत्याख्यातो विशेषोयोद्धारस्ते वरवर्णिनि ।
अनेन नद्यृषिन्यासः स्फुटतामाप सर्वतः ॥ ११९८ ॥

दो पदों से आरब्ध पाँच वर्णों वाला जो एक नाम है उसमें पहला पद 'नाम' है और दूसरा 'धारिणी' । और जो चार वर्णों वाले दो पद हैं उनमें पहला पद 'भगवती' और दूसरा 'गुह्यकाली' है । जो ग्यारह वर्णो से रचित पद कहा गया है मैं उसको कह रहा हूँ । हे भामिनि! उसको सुनो । 'लेलिहान' पद के अन्त में 'रसना' पद को उद्धृत करना चाहिये । उसके बाद 'भयानका' पद है । इस प्रकार यह ग्यारह अक्षर वाला होता है । विभाग (= विभक्त्यन्त) करने पर (= लेलिहानरसनाभयानकायै)

इसके वारह अक्षर हो जाते हैं । हे देवि! इसके पश्चात् जो आठ अक्षरों वाला पद है वह 'विकटदंष्ट्रा' के बाद 'कराला' शब्द कहा गया है। यह भी विभक्ति-युक्त होकर नव वर्णों वाला हो जाता है । हे प्रिये! पन्द्रह वर्णों से घटित जो एक पद कहा गया वह 'महाचण्डयोगेश्वरी' के बाद 'शक्ति' पद के बाद हे परमेश्वरि! 'तत्त्वसहिता' कहना चाहिये । चतुर्थी विभक्ति के साथ यह पञ्चदशाक्षरी षोडशाक्षरी हो जाती है । इन छह पदों के साथ जुड़ने वाली विभक्ति (= चतुर्थी) पहले ही कही जा चुकी है । हे ईश्वरि! इन पदों के अन्त में स्थित यह मन्त्र जो कि वसिष्ट के द्वारा उपासित है सत्रह अक्षरों वाला समझना चाहिये । इसके पश्चात् जो आठ बीज तुमको बतलाये गये हैं अव उनको वतलाऊँगा । इसके बाद उपबीजों को कहूँगा । जीव काल अवनि विकार अर्चा दुरी आदित्य और ज्या ये हैं । हृदय और शिर उपबीज हैं। हे वरवर्णिनि! इस प्रकार तुमको विशेषोद्धार बतलाया गया, इससे नदीऋषिन्यास सब प्रकार से स्फुटता को प्राप्त हो गया ॥ ११८६-११९८ ॥

[नदीकृतकालिकोपासनाख्यानकम्]

पुरा नद्यस्तपस्तेपुः कल्पे कुशिकनामनि ।
कालिकायाः प्रसादार्थं जेपुस्ताः षोडशीमनुम् ॥ ११९९ ॥
नानविधवरावाप्त्यै सहस्रं परिवत्सरान् ।
तासां तुष्टा ततः काली प्रत्यक्षं समभाषत ॥ १२०० ॥
वरं वृणीध्वं सरितो मनसा यदभीप्सितम् ।
ततः पञ्च वरान् वव्रुः सर्वाः सम्भूय सुन्दरि ॥ १२०१ ॥
एकं पावनपानीया भवामः क्षितिमण्डले ।
द्वितीयं नाममूर्ती त्वं धृत्वा स्वेच्छाप्रकल्पिते ॥ १२०२ ॥
अस्माकं रोधसोस्तिष्ठ
यावत् स्थास्यति नो जलम् ।
तृतीयमृषयो ब्राह्मास्तीरेऽस्माकं निजोटजम् ॥ १२०३ ॥
कृत्वा तपस्यन्तु तपःपूताः स्याम तथा वयम् ।
चतुर्थं द्वे तनू कालि भूयास्तां त्वत्प्रसादतः ॥ १२०४ ॥
अस्माकमेका हि जलात्मिकाऽन्या दैविकी तथा।
तन्वां जलात्मिकायां तु प्राणिनो हि चतुर्विधाः ॥ १२०५ ॥
आप्यायन्तां च तृप्यन्तां द्रुमौषधिलता अपि ।
अन्यया पतिमम्भोधिं प्राप्नुमस्त्वत्प्रसादतः ॥ १२०६ ॥
कूलानि हव्यकव्यादिफलाधिक्याय सन्तु नः ।
तनुत्यजस्तेषु यान्तु निरयं मा कदाचन ॥ १२०७ ॥
इति तासां वचः श्रुत्वा हसन्ती जगदम्बिका ।
सर्वं तथाऽस्त्विति प्रोच्य क्षणादन्तर्हिताऽभवत् ॥ १२०८ ॥

नानाशिखरिपादेभ्यो निर्गताः सरितांवराः ।
पावयन्त्यो जनपदान् नगरग्रामखर्वटान् ॥ १२०९ ॥
विविशुः पतिमम्भोधिमनावर्तिन्य ईश्वरि ।
प्रतिश्रुताकरणतो लज्जयेवापि कालिका ॥ १२१० ॥
स्वयमेव स्वस्य धृत्वा नाममूर्ती समीहिते ।
रोधस्सु तत्तत्सरितां तस्थौ भूत्वा सदा स्थिरा ॥ १२११ ॥

नदीकृतकाली की उपासना कथा—प्राचीन काल में कुशिक नामक कल्प में नदियों ने तपस्या की । काली को प्रसन्न करने के लिये तथा नाना वर प्राप्त करने के लिये उन्होनें एक हजार वर्षो तक षोडशाक्षर मन्त्र का जप किया । उनके तप से सन्तुष्ट होकर काली ने प्रत्यक्ष कहा—हे नदियों! जो मन से चाहती हो उस वर को माँगो । हे सुन्दरि! इसके बाद उन सब नदियों ने मिलकर पाँच वरों को माँगा—१. हम पृथिवी तल पर पवित्र जल वाली हों । २. जब तक हमारा जल रहे तब तक हमारे किनारों पर आप अपनी इच्छा से कल्पित नाम और रूप धारण कर निवास करें । ३. ब्रह्मवादी ऋषि लोग हमारे किनारों पर अपनी-अपनी पर्णकुटी बनाकर तपस्या करें और उनके तप से हम पवित्र बनें । ४. हे कालि! आपकी कृपा से हमारे दो शरीर हों, एक जलमय और दूसरा दिव्य । हमारे जलात्मक शरीर में चार प्रकार के प्राणी निवास करें तथा वृक्ष औषधि लतायें भी तृप्त हों । दूसरे शरीर से हम आपकी कृपा से अपने पति समुद्र को प्राप्त हों । ५. हमारे किनारे अत्यन्त हव्य कव्य आदि फल के लिये हों तथा उन किनारों पर देहत्याग करने वाले कभी नरक में न जायँ । उनके इस वचन को सुनकर जगदम्बा हँसती हुई बोली—'सब वैसा ही हो ।' ऐसा कहकर एक क्षण में वह अन्तर्हित हो गयो । हे ईश्वरि! इसके बाद अनेक पर्वतों के तल से निकलकर वे श्रेष्ठ नदियाँ जनपदों नगरों ग्रामों पर्वत की तराइयों को पवित्र करती हुई पति अर्थात् समुद्र में प्रवेश कर गयीं और वहाँ से कभी नहीं लौटीं । प्रतिज्ञा के न करने से मानो लज्जित होती हुई कालिका स्वयं अपना नाम एवं रूप धारणकर नदियों के किनारों पर स्थायी रूप से स्थित हो गयी ॥ ११९९-१२११ ॥

विदित्वा देव्यधिष्ठानमृषयश्च तदाज्ञया ।
निजां निजां पर्णशालां कृत्वा ते न्यवसन् प्रिये ॥ १२१२ ॥
यस्य यस्य रुचिर्यस्यां यस्यां(नद्यां?)बभूव ह ।
स तत्तदापगातीरे चकार स्वं स्वमाश्रमम् ॥ १२१३ ॥
तत्तन्नामधरां देवीं तत्तन्मूर्तिधरामपि ।
आराधयन्त ऋषय उपासांचक्रिरेऽम्बिकाम् ॥ १२१४ ॥
श्रौतोक्तेन च विधिना विदधुश्च तपो महत् ।
सिद्धिं च परमां प्राप्ता योगं कैवल्यमेव च ॥ १२१५ ॥
श्रुत्वेममखिलोदन्तं निम्नगानां तपः क्रियाम् ।

वरदानं तथा देव्या ऋषीणामपि च स्थितिम् ॥ १२१६ ॥
अधिष्ठानं तथा देव्यास्तत्तन्मूर्त्त्यभिधाजुषः ।
राजानः स्वपुरं हित्वा तत्र तत्र सरित्तटे ॥ १२१७ ॥
कृत्वा तांस्तान् मुनीन् देवि याजकान् वेदपारगान् ।
ईजिरे विविधैर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥ १२१८ ॥
सेवमाना जगद्धात्रीं रहस्यैर्नामभिः सदा ।
ऋषिवत् प्राप्तवन्तश्च स्वेष्टं राजर्षयोऽपि च ॥ १२१९ ॥
पूजासम्भारमालोक्य मुनिभी राजभिस्तथा ।
क्रियमाणं स्वस्य वीक्ष्य मुमुदेऽतीव कालिका॥ १२२० ॥
अथोवाच प्रियतमं त्रिपुरघ्नं रहोगता ।
कच्छोऽयं सरितां स्वच्छः पावनोऽतीवनिर्मलः ॥ १२२१ ॥
अत्र मां नामभिस्तैस्तैर्मुनयः समुपासते ।
मम तेनातिसन्तोषो जायते परमेश्वर ॥ १२२२ ॥

हे प्रिये! वहाँ देवी के निवास को जानकर ऋषि लोग उनकी आज्ञा से अपनी-अपनी पर्णकुटी बनाकर रहने लगे । जिस-जिस ऋषि की जिस-जिस नदी के विषय में रुचि थी उसने उस-उस नदी के किनारे अपना-अपना आश्रम बनाया । तत्तत् नाम और तत्तत् रूप वाली देवी की आराधना करते हुए वे अम्बा की उपासना करने लगे । वेदोक्त विधि से उन लोगों ने महातप किया । (उसके फलस्वरूप ऋषियों ने) परम सिद्धि योग एवं कैवल्य प्राप्त किये । नदियों के इस समस्त वृतान्त तपश्चर्या, देवी के वरदान, ऋषियों का निवास तथा देवी के अधिष्ठान को सुनकर देवी की तत्तत् मूर्त्ति के नाम से प्रेम (अथवा सेवा) करने वाले राजा लोग अपने नगर को छोड़कर हे देवि! वेदपारङ्गत तत्तत् ऋषियों को याजक के रूप में नियुक्त कर उत्तम दक्षिणा के साथ समाप्त होने वाले विविध यज्ञों से देवी की पूजा किये । रहस्यों एवं नामों के द्वारा जगद्धात्री की सेवा करते हुए वे राजर्षि लोग भी ऋषियों की भाँति अपने अभीष्ट को प्राप्त किये । मुनियों एवं राजाओं के द्वारा क्रियमाण अपने पूजा सत्कार को देखकर कालिका अत्यन्त प्रसन्न हुई । इसके बाद वह एकान्त में जाकर अपने प्रियतम त्रिपुरारि से बोली । नदियों का यह कच्छ अत्यन्त स्वच्छ पवित्र एवं निर्मल है । यहाँ पर मुनि लोग तत्तत् नामों से मेरी उपासना करते रहते हैं । हे परमेश्वर! इससे मुझको महान् सन्तोष होता है ॥ १२१२-१२२२ ॥

[नद्यृषिन्यासस्यान्वर्थकत्वप्रतिपादनम्]

नदीनां च मुनीनां च मम चैवाख्यया विभो ।
विनिर्मितं न्यासमेकं विधेहि मम तुष्टये ॥ १२२३ ॥
निशम्य कालिकाशिष्टिमित्थं स त्रिपुरद्विषः ।
न्यासं नद्यृषिनामानं कृत्वा देव्यै न्यवेदयत् ॥ १२२४ ॥

महान्यासमिमं श्रुत्वा तुतोष परमेश्वरी ।

नदीऋषिन्यास की अन्वर्थता—हे विभो! नदियों मुनियों और मेरे नाम से एक न्यास मेरे सन्तोष के लिये बनाइये । इस प्रकार काली के आदेश को सुनकर त्रिपुरारि ने नदीऋषि नामक न्यास को बनाकर देवी के लिये अर्पित कर दिया । इस महान्यास को सुनकर परमेश्वरी अत्यन्त सन्तुष्ट हुई ॥ १२२३-१२२४ ॥

[नद्यृषिन्यासस्य फलश्रुति:]

उवाच चेमं ये न्यासं करिष्यन्ति सुरा नरा: ॥ १२२५ ॥
तेषामहं भविष्यामि सन्तुष्टा फलदात्र्यपि ।
तदा प्रभृत्ययं न्यासो विख्यातिं परमां गत: ॥ १२२६ ॥
षोढान्यासे निबन्द्धश्च शम्भुना कालिकाऽज्ञया ।
इत्येष कथितो देवि न्यासराजसमुद्भव: ॥ १२२७ ॥
महिमा नास्य संख्यातुं शक्यो वर्षशतैरपि ।
पृथक्त्वेनापि विहित: सर्वा:सिद्धी: प्रयच्छति ॥ १२२८ ॥

नदीऋषिन्यास का फल—देवी ने कहा—जो देवता एवं मनुष्य इस न्यास को करेंगे उनके लिये मैं सन्तुष्ट एवं फलदात्री होऊँगी । उस समय से यह न्यास परम प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ तथा कालिका की आज्ञा से षोढान्यास से जोड़ दिया गया । हे देवि! इस प्रकार तुमको न्यासराज की उत्पत्ति बतलायी गयी । इसकी महिमा को सैकड़ों वर्षों में भी नहीं कहा जा सकता । इस न्यास को पृथक्तया किये जाने पर भी यह समस्त सिद्धियों को देता है ॥ १२२५-१२२८ ॥

[अस्त्रभैरवन्यासोद्देशस्तस्य ऋष्यादिनिर्देशश्च]

अथ तुर्यतमं चास्त्रभैरवाद्यभिधानकम् ।
अस्यास्त्रभैरवादिन्यासस्य प्रोक्त: प्रजापति: ॥ १२२९ ॥
ऋषिश्छन्दोऽप्युत्कृतिश्च शतकोटिपदादनु ।
गुह्यानन्त तथा शक्ति परापरकुलेति च ॥ १२३० ॥
चक्राद् वदेत्सामरस्यकारिणीत्येककं पदम् ।
ततो नु नररुधिरमांसभोजिन्यपीरयेत् ॥ १२३१ ॥
पुनश्च दशवदनधारिणीति पदं भवेत् ।
तस्यानु परमशिवनिवासिन्यपि कीर्तिता ॥ १२३२ ॥
पुनर्भगवती गुह्यकाली वै देवता मता ।
डाकिनी बीजमाख्यातं कर्णिका शक्तिरुच्यते ॥ १२३३ ॥
कीलकं प्रेत इत्येवं हारस्तत्त्वमपीष्यते ।
महापातकोपपातातिपातकादिपदादनु ॥ १२३४ ॥
त्रिविधपापक्षयार्थे पुन: सकलशत्रु च ।

क्षयपूर्वक राज्यानु प्राप्तये परिकीर्तयेत् ॥ १२३५ ॥
महानिर्वाणषोढाङ्गभूतास्त्रपदतोऽप्यनु ।
वदेद् भैरवभैरव्यादिन्यास इति पार्वति ॥ १२३६ ॥
सिद्ध्यर्थे च जपे चैव विनियोग उदाहृतः ।
एवमाभाष्य ऋष्यादिमस्य देवि स्मरेद् बुधः ॥ १२३७ ॥

अस्त्रभैरवन्यास और उसके ऋषि आदि—अब अस्त्रभैरव नामक चतुर्थ न्यास का वर्णन प्रस्तुत है । इस अस्त्र भैरवादि न्यास के ऋषि प्रजापति कहे गये हैं। छन्द उत्कृति है । शतकोटिगुह्यानन्तशक्तिपरापरकुलचक्रसामरस्यकारिणी नररुधिरमांसभोजिनी दशवदनधरिणी परमशिवनिवासिनी भगवती गुह्यकाली देवता है । डाकिनी बीज और कर्णिका शक्ति कही गयी है । प्रेत कीलक एवं हार तत्त्व माना गया है । इसका विनियोग महापातक उपपातक अतिपातक नामक त्रिविध पाप के क्षय के लिये सकल शत्रुक्षयपूर्वक राज्य की प्राप्ति के लिये तथा महानिर्वाण षोढाङ्गभूतास्त्रभैरव-भैरवी आदि न्यास की सिद्धि के लिये तथा जप के लिये कहा गया है । हे देवि! विद्वान् इस प्रकार इसके ऋषि आदि का कथन कर इसका स्मरण करे ॥ १२२९-१२३७ ॥

[अस्त्रभैरवन्यासस्य षडङ्गनिर्देशः]

षडङ्गमधुना वक्ष्ये नातिबाहुल्यकल्पितम् ।
सौरङ्गप्रमुखैः पञ्चबीजैराद्यन्ततारिभिः ॥ १२३८ ॥
सुकृतादिभिरप्येवं मैधाद्यन्तिमशालिभिः ।
तथा पुनर्भद्रिकादिपञ्चभिः परमेश्वरि ॥ १२३९ ॥
मुखपाश्चात्त्यसंस्थायि त्रपाबीजिभिरीदृशैः ।
संहार्यादिभिरप्येवं पुरःशेषे सकामनैः ॥ १२४० ॥
औपादेयादिभिस्तद्वत्पञ्चभिर्मुखशेषगैः ।
प्रासादैः पञ्चमं कुर्यात् षष्ठं मौलिङ्गकादिभिः ॥ १२४१ ॥
प्रेतैराद्यन्तगैर्देवि षडङ्गमुभयं स्मृतम् ।

अस्त्रभैरव न्यास का षडङ्ग निर्देश—अब मैं इसके छह अङ्गों को बतलाऊँगा जिसमें बहुत अधिक कल्पना नहीं है । (न्यास का क्रम इस प्रकार है—) १. सौरङ्ग आदि पाँच बीज जिनके आदि और अन्त में तार होता है । २. सुकृत आदि पाँच बीज जिनके आदि और अन्त में मैध बीज रहता है । हे परमेश्वरि! उसी प्रकार ३. भद्रिका आदि पाँच जिनके अन्त में 'मुख' जुड़ा रहता है तथा आदि और अन्त में त्रपा बीज रहता है । ४. अन्त में पुरः बीज जुड़ा रहता है तथा आदि और अन्त में कामबीज लगा रहता है । ५. अन्त में 'मुख' जुड़ा होता है तथा आदि और अन्त में प्रासाद बीज रहता है । ६. आदि और अन्त में प्रेत बीज रहता है तथा मौलिङ्गक आदि से युक्त हे देवि! छठाँ न्यास है। हे देवि! इस प्रकार दोनों षडङ्ग कह दिये गये। (इसका स्वरूप निम्नलिखित है—)

१. ॐ (सौरङ्गबीज ?)……………ॐ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, हृदयाय नमः ।

२. ऐं रह्लछ्रक्षह्लां रह्लछ्रक्षह्लीं रह्लछ्रक्षह्लूं रह्लछ्रक्षह्लैं रह्लछ्रक्षह्लौं तर्जनीभ्यां नमः, शिरसे स्वाहा ।

३. ह्लीं रक्षफ्रछ्रां रक्षफ्रछ्रीं रक्षफ्रछ्रूं रक्षफ्रछ्रैं रक्षफ्रछ्रीह्लीं मध्यमाभ्यां नमः शिखायै वषट् ।

४. क्लीं खफ्रक्ष्मां खफ्रक्ष्मीं खफ्रक्ष्मूं खफ्रक्ष्मैं खफ्रक्ष्मौं क्ली अनामिकाभ्यां नमः कवचाय हुम् ।

५. हौं खफ्रछ्रां खफ्रछ्रीं खफ्रछ्रूं खफ्रछ्रैं खफ्रछ्रौं हौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः नेत्रत्रयाय वौषट् ।

६. स्हौः खफ्रक्लां खफ्रक्लीं खफ्रक्लूं खफ्रक्लैं खफ्रक्लौं स्हौः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः अस्त्राय फट् ॥ १२३८-१२४२ ॥

[अस्त्रभैरवन्यासस्य मन्त्रोद्धारसङ्कल्पः]

अथोद्धारं ब्रवीम्यस्य द्विविधं त्रिदशार्चिते ॥ १२४२ ॥
सामान्यं च विशेषं च न्यासाभिव्यक्तये स्फुटम् ।

[अस्त्रभैरवन्यासस्य सामान्यतो मन्त्रोद्धारः]

द्वाविंशतिमितैर्बीजैर्घटितोऽयं मनूत्तमः ॥ १२४३ ॥
स आदौ सर्वमन्त्रादौ कालव्यापितयेरितः ।
ततो नामानि भिन्नानि सर्वेषु मनुषु प्रिये ॥ १२४४ ॥
अजादिद्व्यर्णशब्देन टान्तेन प्रथमेरितैः ।
सन्धानं विग्रहश्चामा (?) सर्वत्र स्थैर्यशालिना ॥ १२४५ ॥
पुनस्ततोऽनु नामानि भिन्नभिन्नानि पूर्ववत् ।
एतेषामग्रिमपदद्वन्द्वेन सह विग्रहः ॥ १२४६ ॥
तत्राद्यं तु पदं ज्ञेयमजादि त्र्यक्षरं तथा ।
द्वितीयमपि च त्र्यर्णं ङीबन्तं स्त्रीत्वङेऽन्तवत् ॥ १२४७ ॥
परस्परं त्रिभिः शब्दैः समासः परिकीर्तितः ।
पूर्वश्चलः परौ द्वौ तु कूटत्वेन व्यवस्थितौ ॥ १२४८ ॥
पदानामनु चैतेषां पुनः शब्दाः पृथक् पृथक् ।
एषामग्रे चतुर्भिस्तु पदैर्विग्रहतां गतैः ॥ १२४९ ॥
स्त्रीलिङ्गं च तथाकारान्तं पदं चैकमिष्यते ।
ङेऽन्तं चैतेन पुरत ईरितैरस्थिरैः पदैः ॥ १२५० ॥
समासः किन्तु शेषस्था चतुष्पद्यपि सुस्थिरा ।
एषां पदानां पञ्चानामाद्ये ये तु चलाचले ॥ १२५१ ॥
ते समस्य तु ङीबन्ते कार्ये वै पञ्चवर्णिके ।

आभ्यां त्वक्षरशब्दस्य स्त्र्याकारङेऽन्तशालिन:॥ १२५२ ॥
समास: स्थिरताऽस्थैर्ये विज्ञेये पूर्वशब्दवत् ।
ततो ङेऽन्तं पदं चैकं चतुरर्णविनिर्मितम् ॥ १२५३ ॥
अस्य शेषे महामन्त्रश्चैक: षोडशवर्णिक: ।
स स्थिरत्वेन निर्दिष्टस्ततो वै षड्भिरक्षरै: ॥ १२५४ ॥
घटितं ङेऽन्तङीबन्तं तथाप्यचलमुच्यते ।
ततश्च पञ्चबीजानां युगलं युगलं क्रमात् ॥ १२५५ ॥
चलेतरतया ज्ञेयं तच्च सर्वं वरानने ।
पञ्चाक्षरोपबीजानां त्रितयं त्रितयं तत: ॥ १२५६ ॥
इति सामान्य उद्धारो विशेषस्त्वधुनोच्यते ।

अस्त्रभैरवन्यास और उसका सामान्य उद्धार—हे त्रिदशार्चिते! अब न्यास की स्फुट अभिव्यक्ति के लिये इसका (सामान्य और विशेष) दो प्रकार का उद्धार बतला रहा हूँ। (सामान्य क्रम में) यह उत्तम मन्त्र बाईस बीजों से घटित है । यह मन्त्र सभी मन्त्रों के आदि में स्थायी रूप से रहता है । हे प्रिये! इसके पश्चात् सब मन्त्रों में भिन्न-भिन्न नाम रहते हैं। स्वरादि दो वर्ण टान्त स्थिर शब्द (= 'रसलोलुषा' तथा 'भैरवीरूपा') के पूर्ववर्त्ती वर्णों के साथ इनकी सन्धि और समास रहते हैं। उसके अनन्तर पुन: पूर्ववत् भिन्न-भिन्न नाम रहते हैं । इनका अग्रिम दो पदों के साथ समास होता है । उनमें से पहला पद दो अक्षरों वाला स्वरादि होता है, दूसरा तीन अक्षरों वाला ङीबन्त ङेऽन्त होता है । यहाँ परस्पर तीन शब्दों के साथ समास कहा गया है । उक्त तीनों शब्दों में प्रथम चल होता है, शेष दो कूट अर्थात् स्थिर रूप से रहते हैं । इन पदों के बाद पृथक्-पृथक् शब्द होते हैं । इनके बाद समास को प्राप्त चार पदों के साथ एक आकारान्त स्त्रीलिङ्ग ङेऽन्त पद होता है । इसके साथ पूर्वोक्त अस्थिर पदों का समास होता है किन्तु शेष चार पद स्थिर रहते हैं । इन पाँच पदों में से जो प्रथम दो चल-अचल पद हैं वे समास के पश्चात् पाँच वर्णों वाले ङीबन्त कर दिये जाने चाहिये। इन दोनों के साथ स्त्रीलिङ्ग ङेऽन्त अक्षर शब्द का समास होता है । स्थिरता और अस्थिरता को पूर्ववत् जानना चाहिये । इसके बाद चार अक्षरों से घटित एक ङेऽन्त पद होता है । इसके अन्त में सोलह वर्णों वाला एक महामन्त्र होता है। उसे स्थिर माना गया है । इसके पश्चात् छह अक्षरों से निर्मित ङीबन्त ङेऽन्त पद होता है। वह भी अचल कहा जाता है । इसके बाद हे वरानने! पाँच बीजों को दो-दो बार कहना चाहिये । उन्हें चल और स्थिर रूप में स्थित समझना चाहिये। इसके अनन्तर पाँच अक्षरों वाले तीन-तीन उपबीज होते हैं । यह सामान्य उद्धार है । अब विशेष उद्धार कहा जा रहा है ॥ १२४३-१२५६- ॥

[अस्त्रभैरवन्यासस्य विशेषमन्त्रोद्धार:]

मन्त्रो य उक्त: प्रथमं द्वाविंशतिभिरक्षरै: ॥ १२५७ ॥

आदौ शृणु तदुद्धारं बीजकूटमयं प्रिये ।
भासाकूटं हारबीजं भोगकूटं च कर्णिका ॥ १२५८ ॥
कलाकूटं शाकिनी च कूटं स्वायम्भुवं ततः ।
डाकिनी याम्यकूटं च प्रलयो ब्राह्मकूटकम् ॥ १२५९ ॥
फेत्कारी चापि सौपर्णकूटं तदनु शृङ्खला ।
गौह्यकं कूटमस्यानु बीजं चाकोरमेव च ॥ १२६० ॥
नैर्ऋतं कूटमस्यानु बीजमाघोषणाभिधम् ।
प्रपञ्चकूटं च खटी(?)कूटमैन्द्रं संसृष्टि च ॥ १२६१ ॥
द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्र इत्येष परिकीर्तितः ।
गुह्या महाभैरवीति नाम्ना ख्यातागमादिषु ॥ १२६२ ॥
एतेन मनुनोपास्य भैरवाः कालिकां पुरा ।
सिद्धिं प्राप्ता निजाकाराः शक्तीश्च कमलानने ॥ १२६३ ॥
एकावलीहार इति नाम्ना ख्यातो मनुस्त्वयम् ।

अस्त्रभैरवन्यास का विशेष मन्त्रोद्धार—हे प्रिये! पहले जो बाईस अक्षरों वाला मन्त्र कहा गया पहले उसका बीज कूट मय उद्धार सुनो । भासाकूट हार बीज भोगकूट कर्णिका बीज कलाकूट शाकिनी बीज स्वायम्भुवकूट फिर डाकिनी बीज याम्यकूट प्रलय बीज ब्राह्मकूट फेत्कारी बीज सौपर्णकूट शृङ्खला बीज गौह्यककूट चाकोर बीज नैर्ऋतकूट आघोषणा बीज प्रपञ्चकूट खटीकूट ऐन्द्रबीज संसृष्टिकूट यह बाईस अक्षरों वाला मन्त्र कहा गया । हे कमलानने! आगम आदि में जो गुह्या महाभैरवी नाम से विख्यात है इस मन्त्र से प्राचीन काल में भैरवों ने कालिका की उपासना कर सिद्धि एवं अपने आकार वाली शक्तियों को प्राप्त किया यह मन्त्र एकावलीहार मन्त्र के नाम से विख्यात है ॥ १२५७-१२६३- ॥

[एकपञ्चाशदस्त्रनामानि]

एकपञ्चाशदित्येवं नामान्याकर्णयाधुना ॥ १२६४ ॥
ब्रह्मा(ब्राह्मो)नारायणः प्राजापत्य ऐन्द्रश्च वैष्णवः ।
कम्पनश्चाथ वायव्यो वरुणो
(वारुणो) याम्य एव च ॥ १२६५ ॥
काल आग्नेयभूतौ च कौबेरस्तदनन्तरम् ।
पार्जन्यो वैद्युतश्चाथ पार्वतः परमेश्वरि ॥ १२६६ ॥
पाषाणनागत्वाष्ट्राश्च सौपर्णास्तामसोऽपि च ।
तैमिरश्चाथ गान्धर्वः प्रस्वापन इतः परम् ॥ १२६७ ॥
पैशाचो जृम्भणश्चापि मातङ्गैषीकसंज्ञकौ ।
औदुम्बरो राक्षसश्च भारुण्डोऽप्यपरो मतः ॥ १२६८ ॥
ततो ब्रह्मशिरो देवि गुह्यकः कालकूट(?)च ।

वेतालवैनायकौ च स्कादः(?न्दः)प्रमथ एव च॥ १२६९ ॥
उत्पातश्चाथ कूष्माण्डो भ्रामको गालनोऽपि च।
सम्मोहनो बला चातिबला चाथ निमीलनः ॥ १२७० ॥
अचेतनस्तथोन्मादोऽपस्मारो मारणोऽपि च ।
सर्वशेषे पाशुपत इत्येवं शब्दसंहतिः ॥ १२७१ ॥
अजादिवर्णशब्दस्तु अस्त्रमित्यभिधीयते ।
पुनः शब्दानाकलय परतोऽप्यस्य ये स्थिताः ॥ १२७२ ॥

इक्यावन अस्त्र नाम—अब अस्त्रों के इक्यावन नामों को सुनो । ब्राह्म नारायण प्राजापत्य ऐन्द्र वैष्णव कम्पन वायव्य वारुण याम्य काल आग्नेय भूत उसके वाद कौवेर पार्जन्य वैद्युत इसके बाद हे परमेश्वरि! पार्वत पाषाण नाग त्वाष्ट्र सौपर्ण तामस तैमिर गान्धर्व प्रस्वापन इसके वाद पैशाच जृम्भण मातङ्ग ऐषीक औदुम्बर राक्षस भारुण्ड उसके अनन्तर ब्रह्मशिर गुह्यक कालकूट वेताल वैनायक स्कान्द प्रमथ उत्पात कूष्माण्ड भ्रामक गालन सम्मोहन बला अतिबला निमीलन अचेतन उन्माद अपस्मार मारण सबके अन्त में पाशुपत इस प्रकार का शब्दसमूह है । अजादि वर्ण वाला शब्द 'अस्त्र' कहा जाता है । इसके बाद उन शब्दों को सुनो, जो इसके वाद आते हैं ॥ १२६४-१२७२ ॥

[एकपञ्चाशदसुरनामानि]

विद्युज्जिह्वश्च मुण्डश्च रुरुः खट्वाङ्ग एव च ।
अञ्जनो दुर्ग इत्येवं विप्रचित्ति(त्त)श्च सप्तमः ॥ १२७३ ॥
महिषः कपोतरोमा मतङ्गो दशमोऽपि च ।
हयग्रीवो वैरन्धमश्चण्डमुण्डस्तथैव च ॥ १२७४ ॥
पातालोदरनामा च तथा गगनशिरा इति ।
पतङ्गवेगस्तदनु मकरास्यस्ततः परम् ॥ १२७५ ॥
रक्तबीजो निकुम्भश्च पुञ्जमाली महाहनुः ।
दर्दुरो दुर्जयहिरण्यकेशौ च प्रमाथ्यपि ॥ १२७६ ॥
मेघमाली निशुम्भश्च ततश्चापि प्रकम्पनः ।
वातवेगो वज्रदंष्ट्रः क्राथो वज्राङ्ग एव च ॥ १२७७ ॥
चन्द्रारि नील इत्येवं शैलजङ्घस्तथैव च ।
वज्रमुष्टिस्तथा यज्ञद्रुड् युगं पच एव च ॥ १२७८ ॥
जम्बुकश्च तथा तालध्वजो वै कुम्भमाल्यपि ।
तथा सर्पशिराः पातालकेतुश्चर्चिकोऽपि च ॥ १२७९ ॥
कुण्डकश्चासिलोमाऽपि तपनस्तुण्डरीक(?)च ।
ततोऽन्वशनिपर्वा च यज्ञकोपस्तत परम् ॥ १२८० ॥
शेषे प्रलयरम्भश्च एकपञ्चाशदीरिताः ।

अजादित्र्यक्षरद्वन्द्वकृतमेकं पदं हि यत् ॥ १२८१ ॥
द्विविग्रहि ङीबन्तं भवेदसुरघातिनी ।

इक्यावन असुरनाम—विद्युज्जिह्व मुण्ड रुरु खट्वाङ्ग अञ्जन दुर्ग विप्रचित्त सातवाँ है । महिष कपोतरोमा मतङ्ग दशवाँ है । हयग्रीव वैरन्धम चण्ड मुण्ड पातालोदर गगनशिरा पतङ्गवेग उसके बाद मकरास्य फिर रक्तबीज निकुम्भ पुञ्जमाली महाहनु दर्दुर दुर्जय हिरण्यकेश प्रमाथी मेघमाली निशुम्भ प्रकम्पन वातवेग वज्रदंष्ट्र क्राथ वज्राङ्ग चन्द्रारि नील शैलजङ्घ वज्रमुष्टि यज्ञद्रुट् युगंपच जम्बुक तालध्वज कुम्भमाली सर्पशिरा पातालकेतु चर्चिक कुण्डक असिलोमा तपन तुण्डरीक अशनि-पर्वा यज्ञकोप अन्त में प्रलयरम्भ—इस प्रकार ये इक्यावन नाम कहे गये । जो अजादि त्र्यक्षर द्वन्द्वकृत एक पद (विद्युज्जिह्वासुर आदि) है वह दो समासों वाला है । (= विद्युत् का जिह्वा के साथ और विद्युज्जिह्व का असुर के साथ समास है) उसके अन्त में ङीप्प्रत्ययान्त 'असुरघातिनी' शब्द रहता है ॥ १२७३-१२८१- ॥

[एकपञ्चाशद्भैरवनामानि]*

क्रोधः श्मशानकापाली कालकालान्तको रुरुः ॥ १२८२ ॥
महाघोरो घोरतरः मन्दार(संहार?)श्चण्ड एव च ।
हुङ्कारो नादिरुन्मत्तः आनन्दस्तदनन्तरम् ॥ १२८३ ॥
भूताधिपः कृतान्तः स्यादसिताङ्गस्ततः परम् ।
कालाग्निरुग्रायुधयुग् वज्राङ्गश्च करालयुक् ॥ १२८४ ॥
विकरालो महाकालः कल्पान्तस्तदनु प्रिये ।
विश्वान्तकः प्रचण्डः स्याद् भगमाल्युग्र एव च ॥ १२८५ ॥
भूतनाथः सुभद्रश्च ततः सम्पत्प्रदो मतः ।
मृत्युर्यमान्तकश्चोल्कामुखः स्यादेकपाद च ॥ १२८६ ॥
प्रेतश्च मुण्डमाली च वटुकः क्षेत्रपालयुक् ।
दिगम्बरो वज्रमुष्टिर्घोरनादस्तथैव च ॥ १२८७ ॥
चण्डोग्रसन्तापनौ च क्षोभणः स्यादतः परम् ।
ज्वाला ततोऽनु संवर्तवीरभद्राविति स्मृतौ ॥ १२८८ ॥
त्रिकालाग्निश्च त्रिपुरान्तक इत्येवमीश्वरि ।
एतेषामग्रतस्त्वादौ शब्दो भैरव इत्यपि ॥ १२८९ ॥
द्वितीयः सुरतेत्येवं तार्तीयो रस इत्यपि ।
लोलुपेति तथा तुर्यः पञ्चापि हि समासिनः ॥ १२९० ॥
पञ्चानामादिमेभ्यस्तु शब्देभ्यस्तदनन्तरम् ।
भैरवीति पदं त्र्यर्णं रूपा च द्व्यर्णमेव हि ॥ १२९१ ॥

---

* यहाँ श्लोकों में एक भैरव का नाम नहीं है । उसे शोषण भैरव जानना चाहिये ।

सविग्रहीणि सर्वाणि विभक्तिः पूर्वमीरिता ।
गुह्यकालीत्यपि पदं तदनन्तरमिष्यते ॥ १२९२ ॥
या महाषोडशीत्येवं महाविद्या पुरेरिता ।
सा तत्पश्चात् स्थिरत्वेन कथनीया मनौ मनौ ॥ १२९३ ॥
श्मशानवासिनीत्येवं तस्या अनु निगद्यते ।
त्रपायोगिनिरुन्नारीरावाणां द्वितयं द्वयम् ॥ १२९४ ॥
अस्त्रं हृच्छिरसी चापि त्रिवारं समुदाहरेत् ।
विशेषोद्धार इत्येवं मया ते परिकीर्तितः ॥ १२९५ ॥

इक्यावन भैरवनाम—क्रोध श्मशान कापाली काल कालान्तक रुरु महाघोर घोरतर संहार चण्ड हुङ्कार नादि उन्मत्त उसके पश्चात् आनन्द भूताधिप कृतान्त असिताङ्ग उसके बाद कालाग्नि उग्रायुध वज्राङ्ग कराल विकराल महाकाल । हे प्रिये! उसके पश्चात् कल्पान्त विश्वान्तक प्रचण्ड भगमाली उग्र भूतनाथ सुभद्र सम्पत्प्रद मृत्यु यमान्तक उल्कामुख एकपाद प्रेत मुण्डमाली वटुक क्षेत्रपाल दिगम्बर वज्रमुष्टि घोरनाद चण्ड उग्रसन्तापन इसके बाद क्षोभण ज्वाला संवर्त वीरभद्र त्रिकालाग्नि । हे ईश्वरि! इसी प्रकार त्रिपुरान्तक । इनके पश्चात् 'भैरव' शब्द जोड़ा जाता है । द्वितीय शब्द 'सुरत' तृतीय शब्द 'रस' चौथा शब्द 'लोलुपा' ये पाँचों शब्द समस्त होते हैं । पाँचों के आदिम शब्दों के अनन्तर तीन अक्षरों वाला 'भैरवी' पद तथा दो अक्षरों वाला 'रूपा' पद जुड़ता है । ये सभी पद समासयुक्त होते है । इनकी विभक्ति (चतुर्थी) पहले ही कही जा चुकी है । तदनन्तर 'गुह्यकाली' पद भी होता है । जो पहले महाषोडशी विद्या कही गयी उसे बाद में प्रत्येक मन्त्र के साथ स्थायी रूप से कहना चाहिये । उसके पश्चात् 'श्मशानवासिनी' कहा जाता है । त्रपा योगिनी क्रोध नारी राव को दो-दो बार कहकर अस्त्र हृदय और शिर को तीन-तीन बार कहना चाहिये । इस प्रकार मैंने तुमको विशेषोद्धार बतलाया ॥ १२८२-१२९५ ॥

[काल्याः भैरवीरूपत्वासादनकथा]

काल्याःकथं भैरवीत्वमित्यस्मिन् संशये शृणु ।
आख्यायिकां कथ्यमानां पौराणीं मत्त ईश्वरि ॥ १२९६ ॥
हिरण्याक्षस्तपस्तप्त्वा दिव्यानां शरदां शतम् ।
हरतार्तीयनयनात्मकं लेभे सुतं शिवात् ॥ १२९७ ॥
कल्पकोटिसहस्त्राणि त्रीणि मृत्युविवर्जितम् ।
अजय्यं त्रिदशैः सर्वैः ब्रह्मविष्णुपुरःसरैः ॥ १२९८ ॥
आगःसहस्त्रकर्तारमप्येनं वरदर्पितम् ।
नाशयिष्याम्यहं ना(मुं?)नान्ये शक्ष्यन्ति चामराः ॥ १२९९ ॥
किन्त्वेकमस्यापराधं क्षमिष्ये न कदाचन ।
कामभोगाभिलाषेण पार्वतीहरणोद्यमम् ॥ १३०० ॥

प्राणैर्वियोजयिष्यामि नैव तत्राप्यमुं पशुम् ।
दर्पं संशमयिष्यामि विनेष्यामि शुभे पथि ॥ १३०१ ॥
स हि धूमाकुलाक्षित्वादन्धको नाम दैत्यपः ।
सर्वान् विजित्य त्रिदशान् हन्तुकामो गिरीन्द्रजाम् ॥ १३०२ ॥
मन्दरस्थां समत्या(भ्या)गाद्दैत्यानां पद्मकोटिभिः ।
तत्र युद्धं महद्घोरमभवदल्लोमहर्षणम् ॥ १३०३ ॥
नन्दिना प्रमथैश्चापि सहान्धकबलस्य च ।
प्रमथास्तत्र दैत्येन्द्रैर्जिता युद्धे सनन्दिनः ॥ १३०४ ॥
अथ शूलं समादाय योद्धुकामो महेश्वरः ।
आजगाम तथा देवी मन्दरात् प्रपलायिता ॥ १३०५ ॥

काली का भैरवीरूप धारण—हे ईश्वरि ! काली ने कैसे भैरवी रूप धारण किया ऐसा संशय होने पर मेरे द्वारा कही जा रही पौराणिक अर्थात् प्राचीन कथा को सुनो । हिरण्याक्ष ने दिव्य सौ वर्षों तक तपस्या कर शिव की कृपा से तीन हजार करोड़ वर्ष तक जीवित रहने वाले हरतार्त्तीयनयन नामक पुत्र को प्राप्त किया । वह ब्रह्मा विष्णु आदि समस्त देवताओं से अजेय था । वर-प्राप्ति के कारण दर्पयुक्त अतएव हजारों पाप करने वाले इसको न तो मैं नष्ट कर सकता हूँ और न अन्य देवगण । किन्तु मैं इसका एक भी अपराध कभी भी क्षमा नहीं करूँगा । कामभोग की इच्छा से यदि यह पार्वती के हरण का उद्यम करेगा तो भी इस पशु को मैं प्राणवियुक्त नहीं करूँगा प्रत्युत इसके दर्प को शान्त करूँगा और इसको शुभ मार्ग पर ले आऊँगा । धूम से व्याकुल आँख होने के कारण अन्धक नामक यह दैत्यराज समस्त देवताओं को जीतकर मन्दराचल में स्थित पार्वती को मारने की इच्छा वाला होकर एक करोड़ पद्म दैत्यों के साथ वहाँ गया । वहाँ नदी एवं प्रमथगणों के साथ अन्धकासुर का रोमाञ्चक महायुद्ध हुआ । दैत्येन्द्रों ने नन्दी के साथ प्रमथों को जीत लिया । इसके बाद युद्ध की इच्छा से महेश्वर त्रिशूल लेकर आ गये तथा देवी मन्दराचल से भाग गयी ॥ १२९६-१३०५ ॥

तत्रेश्वरेण दितिजाः प्रायशो विमुखीकृताः ।
रणो महान् बभूवाथ शङ्करस्यान्धकस्य च ॥ १३०६ ॥
यामद्वयं मन्दरस्य शिखरे समभूमये ।
ततः शूलेन निर्भिद्य पृष्ठनिर्गतकोटिना ॥ १३०७ ॥
हरः स्वमूर्ध्नि तं दध्रे हसँश्छत्रमिवासितम् ।
शूलप्रोतोऽपि दैत्येन्द्रो गदया भीमपातया ॥ १३०८ ॥
पातयामास शिरसि गिरिशं वज्रकल्पया ।
मस्तके ताडितस्याथ गिरीशस्य वरानने ॥ १३०९ ॥
शीर्षाच्छुश्राव रुधिरमुत्सादिव गिरेर्जलम् ।

यथा हि रक्तबीजस्य दैत्येन्द्रस्य हि देहतः ॥ १३१० ॥
यावन्तो रक्तपृषताः पतन्ति धरणीतले ।
तावन्तो हि तदाकारा उत्तिष्ठन्ते स्म दैत्यपाः ॥ १३११ ॥
एवं हरस्य यावन्त्यो विप्रुषः पतितास्तनोः ।
तावन्तो भैरवा जातास्तदाकारास्तदाशयाः ॥ १३१२ ॥
उत्तमाङ्गस्याष्टदिक्षु पूर्वादिषु वरानने ।
क्रमेण जातास्ते सर्वे भैरवाः शिवविग्रहाः ॥ १३१३ ॥
एकैकस्यां दिशि पुनरष्टावष्टौ प्रजज्ञिरे ।
क्षणेन ते दैत्यसैन्यं भस्मसाच्चक्रुरञ्जसा ॥ १३१४ ॥
हरो हि यादृशतनुर्भूत्वा युद्धं चकार ह ।
तादृशा एव ते जाता बलरूपाशयक्रमैः ॥ १३१५ ॥

उस युद्ध में ईश्वर ने दैत्यों को प्रायः पराजित कर दिया । इसके पश्चात् मन्दराचल के शिखर पर समभूमि में शङ्कर एवं अन्धकासुर के बीच दो प्रहर तक महान् युद्ध हुआ । इसके बाद भगवान् शङ्कर ने पांछे निर्गत शिरा वाले त्रिशूल के द्वारा हँसते हुए उसको छाता के समान अपने ऊपर उठा लिया । शूल में फँसा हुआ भी वह दैत्येन्द्र वज्र के समान भयङ्कर आघात करने वाली गदा को शिव के शिर पर गिरा दिया । हे वरानने! मस्तक में ताडित शङ्कर के शिर से खून की धारा बह चली जैसे कि पर्वत से जलधारा बह रही हो । जिस प्रकार दैत्येन्द्र रक्तबीज के शरीर से जितने रक्त बिन्दु गिरते थे उतने ही उसी आकार वाले रक्तबीज उसके शरीर से उत्पन्न होते थे उसी प्रकार हर के शरीर के उत्तमाङ्ग अर्थात् शिर से जितने रक्तबिन्दु गिरे उतने ही भैरव उसी आकार वाले तथा उसी वासना वाले उत्पन्न हो उठे । हे वरानने! वे भैरव उनके शिर की पूर्व आदि आठों दिशाओं में शिव के शरीर वाले भैरव क्रम से उत्पन्न हो गये । एक-एक दिशा में पुनः आठ-आठ भैरव उत्पन्न हुए। वे सब भैरव एक क्षण में अञ्जसा अर्थात् शीघ्र ही सम्पूर्ण दैत्यसेना को भस्म कर डाले । जैसा शरीर धारणकर भगवान् शिव युद्ध किये वे भैरव भी वैसे ही बल रूप इच्छा एवं पराक्रम वाले ही उत्पन हुए ॥ १३०६-१३१५ ॥

अथ तं पोषयामास सहस्रं परिवत्सरान् ।
अन्धकं शूलभिन्नाङ्गं छत्रीकृतमिव स्वकम् ॥ १३१६ ॥
वर्षवातार्ककिरणशोषणोत्प्लावनादिभिः ।
याऽसृग्धारा पपातास्य वक्षसः परमेश्वरि ॥ १३१७ ॥
गणाः करालवदनाः जज्ञिरे कोटिशस्तथा ।
अस्थित्वगवशिष्टोऽपि ततः प्राहान्धकः शिवम् ॥ १३१८ ॥
जितं महादेव मया द्राक् तवोपरिवर्तिना ।
अधःस्थितेन भवता लब्धो मत्तः पराजयः ॥ १३१९ ॥

इत्युक्तवति दैत्येन्द्रे जहास प्रीतिमान् हरः ।
वरं वृण्विति तं प्राह यदिष्टं गिरिजामृते ॥ १३२० ॥
पुनः प्राहान्धको रुद्रं यदि तुष्टोऽसि मे विभो ।
शिवाजिहीर्षाजनितं वृजिनं नाशमेतु मे ॥ १३२१ ॥
त्वं पिता सा च जननी तनयो युवयोरहम् ।
यथा नन्दी गणाध्यक्षः प्रियस्तव गुहादपि ॥ १३२२ ॥
तथाप्यहमपि स्वास्त्रजातैः कोटिगुणैर्वृतः ।
गणेश्वराग्रणीर्भूत्वा भवामि तव सेवकः ॥ १३२३ ॥
इत्युक्तवति दैत्येन्द्रे स्मितं कृत्वा महेश्वरः ।
अवतार्य शनैः शूलं विचकर्षासुरोरसः ॥ १३२४ ॥
ददद् व्रणेऽस्य फूत्कारं मृतसञ्जीवनीं पठन् ।
संशोषितव्रणं चक्रे वरान् दत्वाऽखिलानपि ॥ १३२५ ॥
भृङ्गीति नाम विदधे सदृशं नन्दिनस्तथा ।
तत्रागताया देव्यास्तु पादौ जग्राह भृङ्ग्यपि ॥ १३२६ ॥
मातर्मया त्वद्विषये यत् पापं विहितं हृदि ।
भवती क्षमतां तन्मे तव पुत्रोऽस्मि धर्मतः ॥ १३२७ ॥
भृङ्गी भूत्वाऽन्धको दैत्यो गौरीशङ्करयोः सुतः ।
बभूव वरदानेन तस्मिन्नेव हि जन्मनि ॥ १३२८ ॥

इसके पश्चात् भगवान् शिव ने शूल से भिन्न अङ्गों वाले तथा अपने लिये छाता जैसे बनाये गये उस अन्धकासुर का एक हजार वर्षों तक पोषण किया । हे परमेश्वरि! वर्षा वात और सूर्यकिरणों के द्वारा शोषण उत्प्लावन आदि के कारण उसके वक्ष:स्थल से जो रक्त की धारा गिरी उससे करोड़ों करालवदन वाले उसी प्रकार के गण उत्पन्न हो गये । अस्थि एवं चर्ममात्र अवशिष्ट भी अन्धकासुर ने शिव से कहा—हे महादेव! मैंने विजय प्राप्त कर ली । क्योंकि आप थोड़ी देर के लिये नीचे हो गये और मैं आपके ऊपर हो गया । इसलिये आप मुझसे पराजय को प्राप्त किये । दैत्येन्द्र के ऐसा कहने पर प्रसन्न होकर शिव उससे बोले—पार्वती को छोड़कर जो भी तुमको इष्ट हो उस वर को माँगो । पुन: अन्धकासुर ने रुद्र से कहा—हे विभो! यदि आप प्रसन्न हैं तो गिरिजा के अपहरण की इच्छा से जनित मेरा पाप नष्ट हो जाय । आप मेरे पिता हैं और वह मेरी माता है । मैं आप दोनों का तनय हूँ । जिस प्रकार गणाध्यक्ष नन्दी आपको कार्त्तिकेय से भी प्रिय हैं उसी प्रकार मैं भी अपने अस्त्रों से उत्पन्न करोड़ों गणों से परिवृत होकर गणेश्वर बनकर आपका सेवक हो जाऊँ । दैत्येन्द्र के ऐसा कहने पर महेश्वर ने उसको धीरे से नीचे उतारा तथा उसके वक्ष से त्रिशूल खींच लिया । मृतसञ्जीवनी मन्त्र का पाठ करते हुए उसके घाव पर फूँक मारकर उसके घाव को ठीक कर दिया तथा उसे समस्त वरों का दान किया । नन्दी के समान उसका नाम भृङ्गी रखा । भृङ्गी ने वहाँ आयी देवी के पैरों

को पकड़कर कहा---हे माता! मैंने आपके विषय में मन में जो पाप किया आप मेरे उस पाप को क्षमा करें। मैं आपका धर्मपुत्र हूँ। अन्धकासुर उसी जन्म में वरदान के कारण गौरीशङ्कर का पुत्र बन गया ॥ १३१६-१३२८ ॥

अथ रुद्रासृगुद्भूता भैरवास्ते महेश्वरम् ।
अब्रुवन् किं करिष्यामो वयं देव तदादिश ॥ १३२९ ॥
तानाह भैरवान् रुद्रो देव्याः पुरत एव हि ।
यूयं मदस्रसम्भूता मच्छरीराच्च मत्समाः ॥ १३३० ॥
मत्तुल्यबलवीर्याश्च यूयमेवाहमीश्वराः ।
ये यूयं सोऽस्म्यहं रुद्रो यूयं ते योऽस्म्यहं पुनः ॥ १३३१ ॥
नान्तरं मम युष्माकं वाच्यवाचकयोरिव ।
यथाहं मन्दरगिरौ वसामि शिवया सह ॥ १३३२ ॥
यूयं तथा स्वरुचिते गिरौ तिष्ठध्वमीश्वराः ।
व्याचक्षाणाः शिवामन्त्रध्यानार्चनविधिक्रमान् ॥ १३३३ ॥
नानातन्त्रागमग्रन्थान् कुर्वन्तः प्रकटान्नृषु ।
इत्युक्त्वा तान् पुनः प्राह देवीं तत्रैव तस्थुषीम् ॥ १३३४ ॥
एते हि भैरवाः सर्वे यादृशाकारधारिणः ।
तादृशाकारमास्थाय एषामनुचरी भव ॥ १३३५ ॥
न ते भ्रमोऽस्तु गिरिजे भिन्ना हि पुरुषा इमे ।
भैरवो वाऽहमेवैते सत्यं सत्यं न संशय ॥ १३३६ ॥
एकं तान् कारयिष्यामि भैरवान् प्राणवल्लभे ।
तव त्रिलोकीरूपायाः सदा महिमवृद्धये ॥ १३३७ ॥
इत्युक्त्वा पुनरप्याह भैरवान् पुरतः स्थितान् ।
इयं हि जन्मना काली वर्णतश्च गिरीन्द्रजा ॥ १३३८ ॥
(इयं हि वर्णतः काली जन्मना च गिरीन्द्रजा?)।
मया हि गोपिता यस्मात् तस्माद् गुह्या बभूव ह ॥ १३३९ ॥
विहायेमामाकृतिं हि कृत्वाऽन्यां भैरवाकृतिम् ।
युष्माकं शक्तयो ह्येषा भविष्यति गिरा मम ॥ १३४० ॥
यूयमस्या महाविद्यां त्रैलोक्येऽप्यतिदुर्लभाम् ।
गुह्या महाभैरवीति द्वाविंशत्यक्षरात्मिकाम् ॥ १३४१ ॥
एनामाराधयन्तो हि जय(?प)ध्वं षष्टिहायनान् ।
तत एषा सुसन्तुष्टा कृत्वा युष्मत्समाकृतिम् ॥ १३४२ ॥
भवतां प्रीतये सत्यं सन्निधानं गमिष्यति ।

इसके पश्चात् रुद्र के रक्त से उत्पन्न उन भैरवों ने महेश्वर से कहा—'हे देव! हम लोग क्या करें? वह आदेश कीजिये। उन भैरवों से रुद्र ने देवी के सामने ही

कहा—तुम लोग मेरे अस्त्र से मेरे ही शरीर से उत्पन्न हो । मेरे समान हो । मेरे समान बल और पराक्रम वाले हो । हे ईश्वरों! तुम सब मैं ही हूँ । तुम लोग जो हो मैं रुद्र ही वही हूँ । जो मैं हूँ वही तुम लोग हो । हमारे तुम्हारे बीच अर्थ और शब्द के समान कोई अन्तर नहीं है । जिस प्रकार मैं शिवा के साथ मन्दराचल पर रहता हूँ उसी प्रकार हे ईश्वरों! तुम लोग भी शिवामन्त्र का ध्यान उसकी पूजा अर्चन विधि को करते हुए तथा मनुष्यों के बीच नाना तन्त्र आगम के ग्रन्थों का प्रकाशन करते हुए अपने लिये रुचिकर पर्वतों पर निवास करो । उनसे ऐसा कहकर पुनः वहाँ स्थित देवी से शिव ने कहा—ये समस्त भैरव जिस प्रकार का आकार धारण किये हैं वैसी ही आकृति धारण कर तुम इनकी अनुचरी हो जाओ । हे गिरिजे! तुमको यह भ्रम नहीं होना चाहिये कि ये भिन्न पुरुष हैं । ये मेरे स्वरूप भैरव हैं । यह सत्य है । इसमें सन्देह नहीं । हे प्राणवल्लभे! त्रिलोकीरूपा तुम्हारी महिमा की वृद्धि के लिये इनको मैं एक कर दूँगा । ऐसा कहकर पुनः सामने स्थित उन भैरवों से बोले—यह वर्ण से काली हैं, जन्म से पर्वतेन्द्र हिमालय की पुत्री हैं । चूँकि मैंने इसे गोपित किया अतः यह गुह्या हो गयी । मेरे कथनानुसार यह इस आकार के अतिरिक्त अन्य भैरवाकृति धारण कर तुम लोगों की शक्तियाँ बनेगी । तुम लोग इसकी त्रैलोक्यदुर्लभ 'गुह्यामहाभैरवी' रूप के बाईस अक्षरों वाले[1] इस मन्त्र का साठ वर्षों तक जप करो । तब यह सुसन्तुष्ट होकर तुम्हारे सदृश आकार धारणकर तुम्हारी प्रसन्नता के लिये तुम्हारे पास जायेगी ॥ १३२९-१३४२ ॥

सौम्योग्रमूर्तेरेतस्य मन्त्रा गुप्ततरा हि ये ॥ १३४३ ॥
स्तवध्यानार्चनाचारा गुप्ता नानाविधा हि ये ।
भैरवीसंहितां (दिव्यां/गुह्यां ?)
लोकानां हितकाम्यया ॥ १३४४ ॥
प्रकाशयध्वमेतद्वै युष्माकं कार्यमीरितम् ।
इत्युक्ता भैरवाः सर्वे देवदेवेन शम्भुना ॥ १३४५ ॥
क्रोधादीनि स्वनामानि धृत्वा तेऽन्योन्यमीश्वरि ।
जपन्तस्तां महाविद्यां तपस्तेपुः सुदारुणम् ॥ १३४६ ॥
अथ रुद्राज्ञया देवी सन्तुष्टा च जपार्चनैः ।
यस्य यस्य य अकारो मुखवर्णास्त्रबाहुभिः ॥ १३४७ ॥
तं तं विधृत्य पुरतस्तेषामुपजगाम ह ।

---

[1] कालिका का बाईस अक्षरों वाला मन्त्र निम्नलिखित है—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा । इसके अतिरिक्त कोई भी दूसरा मन्त्र बाईस अक्षरों वाला नहीं मिलता । न तो एकाक्षर से लेकर सोलह अक्षरों वाले मन्त्र में 'गुह्यामहाभैरवी' जोड़ने पर बाईस अक्षर बनते हैं । अतः इस द्वाविंशाक्षर मन्त्र को ही 'गुह्यामहाभैरवी' संज्ञा दी गयी (?) ।

भाग्योदयं मन्यमानास्ते सर्वे भैरवाः प्रिये ॥ १३४८ ॥
स्वया स्वया युयुजिरे शक्त्यानङ्गरसाकुलाः ।
देवी च तत्तत्स्थानेषु स्थिता ये ये सुरद्रुहः ॥ १३४९ ॥
असुरा दानवा दैत्या राक्षसा वरगर्विताः ।
विधृत्य भैरवीरूपमेकैकेन वरानने ॥ १३५० ॥
दिव्यास्त्रेण जघानाशु तान् सर्वान् देवकण्टकान् ।
बुभुजे मान्मथान् भोगान् पत्या सह हृदीप्सितान्॥ १३५१ ॥
इत्युक्तं ते सुरेशानि गुप्तं तन्त्रागमादिषु ।
गुह्यकाल्या भैरवीत्वं भैरवाणां च सम्भवः ॥ १३५२ ॥
प्रसङ्गतोऽन्धकवधो भृङ्गित्वं चास्य भाग्यतः ।

इसके सौम्य एवं उग्र मूर्तियों के जो गोपनीयतर मन्त्र हैं और नाना प्रकार के जो स्तुति ध्यान अर्चन और आचार हैं तदात्मक (दिव्य या गुह्य) भैरवी संहिता को लोकों के हित की इच्छा से प्रकाशित करो । यही तुम लोगों का कार्य कहा गया है । देवाधिदेव शम्भु के द्वारा ऐसा कहे गये वे समस्त भैरव, हे ईश्वरि! परस्पर अपने-अपने क्रोध आदि नामों को लेकर (द्वाविंशाक्षरी) महाविद्या का जप करते हुए दारुण तप किये । इसके पश्चात् जप एवं पूजन से सन्तुष्ट देवी रुद्र की आज्ञा के अनुसार मुख वर्ण अस्त्र और बाहु की दृष्टि से जिसका-जिसका जो आकार था, उस-उस आकार को धारणकर वह उनके सामने गयी । हे प्रिये! समस्त भैरव उसे अपना भाग्योदय मानते हुए कामवासना से व्याकुल होते हुए अपनी-अपनी शक्ति (= भैरवी) से जुड़ गये और जो-जो देवद्रोही (= राक्षस) तत्तत् स्थानों में वरगर्वित होकर रह रहे थे, हे वरानने! देवी ने एक-एक के साथ भैरवीरूप धारण कर उन सभी देवकण्टकों को मार डाला तथा अपने पति के साथ मनोवाञ्छित कामभोगों का आनन्द उठाया । हे सुरेशानि! इस प्रकार तन्त्र आगम आदि में गुप्त रूप से चर्चित गुह्यकाली का भैरवी रूप धारण करना तथा भैरवों की उत्पत्ति, प्रसङ्गतः अन्धकासुर-वध तथा सौभाग्य से उसका भृङ्गी होना तुमको बतलाया गया ॥ १३४३-१३५२- ॥

[यज्ञमहाराजन्यासस्तस्य च ऋष्यादिनिर्देशः]

अतः परं शृणु परं पञ्चमं न्यासमीश्वरि ॥ १३५३ ॥
नाम्ना यज्ञमहाराजं महदैश्वर्यकारकम् ।
अस्य यज्ञमहाराजन्यासस्य सुरवन्दिते ॥ १३५४ ॥
शैलूष ऋषिरुद्दिष्टो विकृतिच्छन्द उच्यते ।
परापरेश्वरी नाम्नी गुह्यकाली च देवता ॥ १३५५ ॥
कामो बीजं त्रपा शक्तिः
शाकिनी कीलकं मतम् ।

स्त्रीतत्त्वमायुरारोग्यसुखैश्वर्यार्थपूर्वकम् ॥ १३५६ ॥
निःसपत्नपदाद् राज्यप्राप्तये तदनन्तरम् ।
भवेद् यज्ञमहाराजन्यासे च विनियोगता ॥ १३५७ ॥
ऋष्यादिमस्य संस्मृत्य षडङ्गमपि चाचरेत् ।
कुणपादीन् पञ्च जपेदन्तरे नादपाशयोः ॥ १३५८ ॥
तथैव क्षेत्रकलयोः शीर्षकादीनि पञ्च च ।
उद्धरेत् स्थाणुस(श?)र्वान्तस्ततः
कोलादि पञ्चकम् ॥ १३५९ ॥
दुर्द्धर्षमैधयोर्मध्ये उन्माथादीनि पञ्च च ।
प्रणवाश्वत्थपुटितं छुरिकादिकपञ्चकम् ॥ १३६० ॥
अन्तरा नादनिःश्रेण्योः कुणपादि द्रुमपश्चिमम् ।
अङ्गुष्ठादौ हृदादौ च उभयत्रापि विन्यसेत् ॥ १३६१ ॥
विधायेत्थं षडङ्गे द्वे ततः न्यासं समाचरेत् ।
तस्योद्धारद्वयं वक्ष्ये सामान्यं च विशेषकम् ॥ १३६२ ॥

यज्ञमहाराजन्यास और उसके ऋषि आदि—हे ईश्वरि! इसके पश्चात् अन्य पञ्चम न्यास को सुनो । इसका नाम यज्ञमहाराजन्यास है । यह महा ऐश्वर्यकारक है । हे सुरवन्दिते! इस यज्ञमहाराजन्यास के ऋषि शैलूष कहे गये हैं । छन्द विकृति कहा जाता है । परापरेश्वरी नामवाली गुह्यकाली देवता है । कामबीज त्रपाशक्ति और शाकिनी कीलक कहा गया है । तत्त्व स्त्री है । आयु आरोग्य सुख ऐश्वर्य के पश्चात् शत्रुरहित राज्य प्राप्त करने के लिये इस यज्ञमहाराजन्यास का विनियोग होता है । इसके ऋषि आदि का संस्मरण कर षडङ्गन्यास करना चाहिये । इसका स्वरूप निम्नलिखित है—नाद और पाश के बीच कुणप आदि पाँच का उल्लेख करना चाहिये । इसी प्रकार क्षेत्र और कला के बीज शीर्षक आदि पाँच, स्थाणु और शर्व के मध्य कोल आदि पाँच, दुर्द्धर्ष और मैध के मध्य उन्माथ आदि पाँच और प्रणव एवं अश्वत्थ से सम्पुटित छुरिकादि पाँच तथा नाद और निःश्रेणी के बीज कुणप से लेकर द्रुम तक का न्यास करना चाहिये । अङ्गुष्ठ आदि तथा हृदय आदि दोनों में यह न्यास करना चाहिये ।

(इसका स्पष्ट स्वरूप निम्नलिखित है—

अं कं खं गं घं ङं आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, हृदयाय नमः ।

इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां नमः, शिरसे स्वाहा ।

उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां नमः, शिखायै वषट् ।

एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां नमः, कवचाय हुम् ।

ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठिकाभ्यां नमः, नेत्रत्रयाय वौषट् ।

अं शं षं सं हं क्षं अः (?) करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः, अस्त्राय फट् ।)

इस प्रकार दो न्यास करने के बाद यज्ञमहाराजन्यास करना चाहिये, उसके सामान्य और विशेष उद्धार को बतलाऊँगा ॥ १३५३-१३६२ ॥

[यज्ञमहाराजन्यासस्य सामान्योद्धारः]

पुरोऽष्टादश बीजानि ततो नामानि वै पृथक् ।
आद्यानि तत्र स्थेयांसि पराण्यागन्तुकानि हि ॥ १३६३ ॥
ततो द्विवर्णघटितं ङ्यन्तमेकं पदं स्थिरम् ।
विभिन्नान्यनु नामानि तस्यानु च चलानि हि ॥ १३६४ ॥
द्विपदीघटितं चैकं पदं ङेऽन्तं तदिष्यते ।
पूर्वैरितैः समासोऽस्य स्थैर्यमालम्ब्य तस्थुषः ॥ १३६५ ॥
नामान्यस्यापि चरमे भिन्नभिन्नानि सुन्दरि ।
ततस्त्रिभिः पदैरेकं निर्मितं पदमुच्यते ॥ १३६६ ॥
ङीबन्तं ङेऽन्तमपि च पूर्वशब्दैः सविग्रहि ।
शाश्वतं च वरारोहे न तु पूर्वं कथञ्चन ॥ १३६७ ॥
ततोऽप्यनियतैः शब्दैः नानारूपतया स्थितैः ।
एकद्वित्रिचतुःपञ्चषडादिरचितक्रमैः ॥ १३६८ ॥
जातं समसितं चापि पदमेकं चलं सदा ।
कीर्तनादेव तद्गम्यं त्रिपद्या रचितं पदम् ॥ १३६९ ॥
एकं सप्तार्णिकं चापि शुभं पूर्वोदितैः पदैः ।
सर्वत्राचलमेतद्धि विज्ञेयं सूक्ष्मया तया ॥ १३७०॥
आकारान्तं द्वादशान्तं रचितं पञ्चभिः पदैः ।
एकं पदं विग्रहि च एतदुच्चान्यमेव हि ॥ १३७१ ॥
सर्वरूपं किन्तु वर्णैश्चतुर्दशभिराचितम् ।
चतुर्भिरक्षरैर्जातं पदद्वन्द्वं पृथक् पृथक् ॥ १३७२ ॥
पदपञ्चकमेवापि ङेऽन्तं विज्ञेयमीश्वरि ।
ततो महामनुश्चैको जप्यः सप्तदशाक्षरः ॥ १३७३ ॥
ततोऽनु पञ्च बीजानि सप्तार्णाश्चौपराजिकाः ।
विहायानियतान् कांश्चित् सर्व एवाचलाः प्रिये ॥ १३७४ ॥
द्विसप्ततिमिता वर्णा रूपाद्याः शीर्षपश्चिमाः ।

यज्ञमहाराजन्यास का सामान्य उद्धार—पहले अट्ठारह बीज फिर पृथक्-पृथक् नाम रखना चाहिये । उनमें से प्रथम स्थायी हैं और दूसरे आगन्तुक । उसके बाद दो वर्णों से रचित एक ङ्यन्त पद स्थायी होता है । उसके बाद विभिन्न नाम होते हैं और वे चल होते हैं । तत्पश्चात् दो पदों से घटित एक ङेऽन्त पद होता है । पूर्वोक्त स्थायी पदों के साथ इसका समास होता है । हे सुन्दरि! अन्त में इसके नाम भी

भिन्न-भिन्न होते हैं । इसके बाद तीन पदों से निर्मित एक पद कहा जाता है । यह ङीबन्त होता है तथा ङेऽन्त भी होता है । पूर्व शब्दों के सथ इसका समास होता है । हे वरारोहे! यह शाश्वत होता है न कि पूर्व । इसके पश्चात् अनिश्चित नाना रूप में स्थित तथा एक दो तीन चार पाँच छह आदि के द्वारा रचित क्रम वाले पदों के साथ एक पद का समास होता है और वह पद सदा चल रहता है । तीन पदों से रचित वह कीर्तन अर्थात् कथन से ही समझा जाता है । पूर्वोक्त पदों के साथ एक सात वर्णो वाला पद रहता है । इसे सर्वत्र अचल समझना चाहिये । पाँच पदों से रचित एक आकारान्त द्वादशान्त पद होता है और वह समस्त होता है । एक दूसरा पद होता है जो सर्वरूप होता है किन्तु चौदह वर्णों से रचित होता है । दो पद पृथक्-पृथक् चार-चार वर्णों से रचित होते हैं । हे ईश्वरि! इन पाँचों पदों को ङेऽन्त जानना चाहिये । इसके पश्चात् सत्रह अक्षरों वाले एक महामन्त्र का जप करना होता है । इसके बाद पाँच बीज तथा सात औपराजिक वर्ण होते हैं । हे प्रिये! कुछ अनियतों को छोड़कर सभी वर्ण अचल होते हैं । ये रूप से लेकर शीर्ष तक के वर्ण बहत्तर की संख्या वाले होते हैं ॥ १३६३-१३७४ ॥

[यज्ञमहाराजन्यासस्य विशेषोद्धारः]

अथो अहं विशेषेण वदामि पुनरप्यमुम् ॥ १३७५ ॥
तारो माया योगिनी च प्रणवः कमला वधूः ।
वेदादिः कामकूर्चौ च गायत्रीमुख एव च ॥ १३७६ ॥
शाकिनी डाकनी चैव तथैवागममस्तकः ।
प्रलयश्चापि फेत्कारी ततस्त्रैवर्णिकाङ्कुशौ ॥ १३७७ ॥
कालीबीजं सर्वशेषे बीजान्यष्टादशैव हि ।
अस्मिन्न्यासे तु सर्वत्र विसन्धिः परिकीर्तितः ॥ १३७८ ॥
असमासविभागे तु हित्वा द्वित्रिपदीकृतम् ।
अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोमो वाजपेयश्च षोडशी ॥ १३७९ ॥
पुण्डरीकोऽश्वमेधश्च राजसूयस्ततः परम् ।
तथा बहुसुवर्णश्च गोसवश्च महाव्रतः ॥ १३८० ॥
विश्वजित्तदनु प्राजापत्याश्वक्रान्तसंज्ञितौ ।
रथक्रान्तो विश्व (विष्णु?)क्रान्तः
सूर्यक्रान्त इतः परम् ॥ १३८१ ॥
गजक्रान्तश्च बलभिन्नागयज्ञ इतः परम् ।
सावित्री चार्धसावित्री सर्वतोभद्र एव च ॥ १३८२ ॥
आदित्यामय इत्येवं गवामय इतः परम् ।
सर्पामयः कोण्डपामयाग्निचिद् द्वादशाहयुक् ॥ १३८३ ॥
उपांशुरूनत्रिंशाख्यस्ततश्चाश्वप्रतिग्रहः ।

बर्हिरथोऽभ्युदयश्च तथा सर्वस्वदक्षिणः ॥ १३८४ ॥
दीक्षा सोमस्तथा स्वाहाकारश्चापि तनूनपात् ।
गोदोहनो नरमेधो ज्योतिष्टोमस्तथैव च ॥ १३८५ ॥
ततो भवेद्दर्शपौर्णमासश्चाप्यतिरात्रयुक् ।
सौभरः सौभाग्यकृच्च शान्तिकृत्तदनन्तरम् ॥ १३८६ ॥
सौपर्णश्चापि त्रैलोक्यमोहनः परिकीर्तितः ।
शङ्खचूडस्तथा पूर्वे कन्दर्पबलशातनः ॥ १३८७ ॥
गजच्छायस्ततो विष्णुविक्रमो विनिगद्यते ।
महारो(रौ ?)द्रः सर्वशेषे नामान्येतानि सुन्दरि ॥ १३८८ ॥

यज्ञमहाराजन्यास का विशेषोद्धार—इसके पश्चात् पुनः मैं इसको विशेषरूप से कह रहा हूँ । तार माया योगिनी प्रणव कमला वधू वेदादि काम कूर्च गायत्रीमुख शाकिनी डाकिनी आगमशिर प्रलय फेत्कारी इसके पश्चात् वर्णिक अङ्कुश और सबके अन्त में काली बीज ये अठारह ही बीज रहते हैं । इस न्यास में सर्वत्र सन्धि नहीं होती । समास का विभाग न होने पर दो तीन पदों के द्वारा किये गये पद को छोड़कर (निम्नलिखित कूटों को जोड़ना चाहिये) अग्निष्टोम अत्यग्निष्टोम वाजपेय षोडशी पुण्डरीक अश्वमेध उसके बाद राजसूय बहुसुवर्ण गोसव महाव्रत विश्वजित् उसके अनन्तर प्राजापत्य अश्वक्रान्त रथक्रान्त विष्णुक्रान्त इसके परे सूर्यक्रान्त गजक्रान्त बलभिद् नागयज्ञ सावित्री अर्धसावित्री सर्वतोभद्र आदित्यामय गवामय सर्पामय कोण्डपामय अग्निचित् द्वादशाह के बाद उपांशु यह उन्तीसवाँ कूट है । इसके बाद अश्वप्रतिग्रह बर्हिरथ अभ्युदय सर्वस्वदक्षिण दीक्षा सोम स्वाहाकार तनूनपात् गोदोहन नरमेध ज्योतिष्टोम दर्शपौर्णमास अतिरात्र सौभर सौभाग्यकृत शान्तिकृत सौपर्ण और त्रैलोक्यमोहन कहा गया है । शङ्खचूड कन्दर्पबलशातन गजच्छाया इसके बाद विष्णुविक्रम कहा जाता है । हे सुन्दरि ! सबके अन्त में महारौद्र—इन नामों को कहना चाहिये ॥ १३७५-१३८८ ॥

द्व्यर्णात्मको यज्ञशब्द उक्त एषामनन्तरम् ।
अस्याप्यनु च ये शब्दास्तान्ब्रवीमि प्रिये तव ॥ १३८९ ॥
प्रियव्रतश्च नहुषोऽम्बरीषश्च दिलीपयुक् ।
कार्तवीर्यार्जुनश्चाथ मरुत्तः षष्ठ ईरितः ॥ १३९० ॥
हरिश्चन्द्रो नलश्चापि दिवोदासस्ततः परम् ।
भरतो भद्रश्रेण्यश्च सुहोत्रः शशबिन्दुयुक् ॥ १३९१ ॥
बृहदश्वः पौरवः स्यादिक्ष्वाकुश्च ययातियुक् ।
इन्द्रद्युम्नश्च स(श?)र्यातिः शिविः शत्रुञ्जयस्तथा ॥ १३९२ ॥
ऋतपर्णो रामचन्द्रो विदूरथ इतः परम् ।
मान्धाता तदनु ज्ञेयो भगीरथ इति प्रिये ॥ १३९३ ॥

युवनाश्वो रन्तिदेव आग्नीध्रश्च पुरूरवाः ।
गयोऽलर्कः पृथुरघू प्रतर्दन इतः परम् ॥ १३९४ ॥
ततः सगरहर्यक्षाजमीढपुरुकुत्सवत् ।
कट्वङ्गोरजिरित्येवं (?) बलाकाश्वस्तथैव च ॥ १३९५ ॥
अयुतायुर्मतिनावस्तथा जीमूतवाहनः ।
रम्भो नृगो वीरबाहुस्ततो वसुमना अपि ॥ १३९६ ॥
चित्रायुधः सप्तसप्ततिः(प्तिः?)जनकः सर्वपश्चिमे।
एतेषामनु राजाराधितेति पदं स्मृतम् ॥ १३९७ ॥

इनके अनन्तर दो वर्णों वाला 'यज्ञ' शब्द कहा गया है । इसके भी बाद जो शब्द कहे जायेंगे उनको मैं तुमको बतला रहा हूँ । प्रियव्रत नहुष अम्बरीष दिलीप कार्त्तवीर्य अर्जुन तथा मरुत् छठें कहे गये हैं । हरिश्चन्द्र नल दिवोदास भरत भद्रश्रेणी सुहोत्र शशबिन्दु बृहदश्व पौरव इक्ष्वाकु ययाति इन्द्रद्युम्न शर्याति शिवि शत्रुञ्जय ऋतपर्ण रामचन्द्र इसके बाद विदूरथ फिर मन्धाता कहे जाते हैं । हे प्रिये! इसके बाद भगीरथ जानना चाहिये । युवनाश्व रन्तिदेव आग्नीध्र पुरूरवा गय अलर्क पृथु रघु उसके बाद प्रतर्दन फिर सगर हर्यक्ष अजमीढ पुरु कुत्स कट्वङ्ग उरजि बलाकाश्व अयुतायु मतिनाव जीमूतवाहन रम्भ नृग वीरबाहु उसके पश्चात् वसुमना चित्रायुध सप्तसप्ति और सबके अन्त में जनक पद कहा जाता है । इनके बाद 'राजाराधित' यह पद कहा जाता है ॥ १३८९-१३९७ ॥

पुनर्नामानि भिन्नानि क्रमेणाकलय प्रिये ।
जय ऐश्वर्यसत्त्वे च ज्ञानं धर्मः क्रिया तथा ॥ १३९८ ॥
बुद्धिर्मोक्षश्च योगश्च सिद्धिर्वृद्धिस्तथैव च ।
विद्यासन्तानजीवाश्च भोगो धर्मार्थमित्यपि ॥ १३९९ ॥
उदयश्च विभूतिश्च दया क्रोध इतः परम् ।
राज्यं नयस्तथैवाज्ञा धनं चाभयमेव च ॥ १४०० ॥
वरः प्रतापः शक्तिश्च निर्वाणश्च परापरः ।
अद्वैतमिच्छा चावेश उत्साहोऽमृतमेव च ॥ १४०१ ॥
तत्त्वं मोहो महाकाल उद्धारः कीर्तिरिव च ।
वीर आनन्दसौभाग्ये वश्यं तप इतः परम् ॥ १४०२ ॥
खड्गश्चोदारकान्ती च कैवल्यं सर्वशेषगम् ।
त्रिभिः पदैर्विरचितमेतदग्रपदं हि यत् ॥ १४०३ ॥
एभिः समसितं ज्ञेयं तल्लक्ष्मीनामधारिणी ।
अतो नियतशब्दार्थैर्यद्वाक्यं घटितं प्रिये ॥ १४०४ ॥
तदुच्यते दुरूहं हि बोद्धव्यं सूक्ष्मया धिया ।
सप्तद्वीपवती पृथ्वी पदाद् दिग्विजयः पुरः ॥ १४०५ ॥

ततः सुरपतित्वं च पुनः परमनिर्वृतिः ।
नागलोकविजयश्च चतुर्थः परिकीर्तितः ॥ १४०६ ॥
पञ्चाशीतिसहस्रानु वर्षजीवनमेव च ।
दशदिक्पालपदतो वशीकरणमेव च ॥ १४०७ ॥
ततः सकलदेवताक्रियमाणस्तुतिर्भवेत् ।
पुनः परमसौन्दर्य निःसपत्नानुराज्य च ॥ १४०८ ॥
स्यात् सम्राट् चक्रवर्ति दशमं सुरवन्दिते ।
सप्तपातालविजयस्तदनन्तरमुच्यते ॥ १४०९ ॥

हे प्रिये! पुनः भिन्न-भिन्न नामों को क्रम से सुनो । जय ऐश्वर्य सत्त्व ज्ञान धर्म क्रिया बुद्धि मोक्ष योग सिद्धि वृद्धि विद्या सन्तान जीव भोग धर्मार्थ उदय विभूति दया क्रोध राज्य नय आज्ञा धन अभय वर प्रताप शक्ति निर्वाण परापर अद्वैत इच्छा आवेश उत्साह अमृत तत्त्व मोह महाकाल उद्धार कीर्ति वीर आनन्द सौभाग्य वश्य तप इसके बाद खड्ग उदार कान्ति और सबके अन्त में कैवल्य कहा जाता है । इसके आगे का जो पद है वह तीन पदों से रचित है । उनको इनके साथ 'लक्ष्मीनामधारिणी' को समास किया हुआ जानना चाहिये । हे प्रिये! इसके पश्चात् नियत शब्दार्थों के द्वारा जो वाक्य बनाया गया होता है, उस दुरूह को बतलाया जा रहा है । सूक्ष्म बुद्धि से उसको समझो । 'सप्तद्वीपवती पृथ्वी' पद के बाद दिग्विजय फिर 'सुरपतित्वं' पुनः 'परमनिर्वृतिनागलोकविजय' यह चौथा पद कहा गया है । 'पञ्चाशीतिसहस्र' के पश्चात् 'वर्षजीवन' कहा जाता है । 'दशदिक्पाल' पद के बाद 'वशीकरण' फिर 'सकलदेवताक्रियमाणस्तुति' पद होता है । पुनः 'परमसौन्दर्य-निःसपत्न' के पश्चात् 'राज्यसम्राट्-चक्रवर्ति', हे सुरवन्दिते! यह दशम पद है । इसके अनन्तर 'सप्तपातालविजय' कहा जाता है ॥ १३९८-१४०९ ॥

सरस्वत्यनु दासीत्वं भवेद् द्वादशसंख्यकम् ।
शतसहस्रपत्नी नियुतकन्या कोटिसुतेति च ॥ १४१० ॥
लक्षाधिकाशीतिपदात् सहस्रवर्षजीवनम् ।
प्रवदेदुर्वशी रम्भा मेनकानु तिलोत्तमा ॥ १४११ ॥
द्विषष्ट्यप्सरःसम्भोगसिद्धसप्ततिपदादनु ।
शाखावेदधारणं च ततोऽष्टादशलक्षतः ॥ १४१२ ॥
महर्षिप्रत्यहार्थानु भोजनं परिकीर्तितम् ।
स्यान्महर्लोकपर्यन्तरथगमनमेव च ॥ १४१३ ॥
ततः समरविजयपूर्वकात् कालकेय च ।
दितिजानु तथा कन्याहरणं परिकीर्तितम् ॥ १४१४ ॥
स्वमांसोत्कर्त्तनाद् धर्मो भवेत् गोमुखदैत्य च ।
षट्त्रिंशदक्षौहिणीतो भस्मीकरणमेव च ॥ १४१५ ॥

तथाप्रतिहताज्ञत्वं राजत्वत्वमतः परम् ।
वासुकितो दण्डग्रहणं चतुर्विंशतिसंख्यके ॥ १४१६ ॥
वासवोपकारकरणं सेवकादिपदादनु ।
भवेत् खेचरसिद्धित्वं लक्षमत्तपदादनु ॥ १४१७ ॥
वाच्यं हस्तिबलं चैव सप्तविंशतिसंख्यके ।
चतुर्विधार्थसामग्री स्वेच्छाचारित्वमेव च ॥ १४१८ ॥
अनायासपदस्यान्ते त्रिलोकीरक्षणं तथा ।
स्वेच्छारूपित्वमस्यानु महायोगाच्च सिद्धि च ॥ १४१९ ॥
चिरजीवितेति कथिता चतुर्विधपदात्ततः ।
भूतसङ्घवृत्ति तथा कल्पनेति प्रियम्वदे ॥ १४२० ॥
कुबेरजय इत्येवं स्यात् पुरन्दरसख्य च ।
रिपुविरूपकरणं स्वेच्छानु बलसृष्टि च ॥ १४२१ ॥
प्रसभवासुकिकन्यापदात् परिणयोऽपि च ।

'सरस्वती' के बाद 'दासीत्व' होता है । 'द्वादशसंख्यसहस्रपत्नीनियुतकन्याकोटिसुतलक्षाधिकाशीति' पद के बाद 'सहस्रवर्षजीवनम्' कहना चाहिये । 'उर्दशी रम्भामेनकातिलोत्तमाद्विषष्ठ्यप्सरः 'सम्भोगसिद्धसप्तति' पद के पश्चात् 'शाखावेदधारणरूप' उसके बाद 'अष्टादशलक्षमहर्षिप्रत्यहार्थ' के पश्चात् 'भोजनं' कहा गया है । 'महर्लोकपर्यन्तरथगमन' उसके बाद 'समरविजयपूर्वककालकेयदितिजकन्याहरणं' कहा गया है । 'स्वमांसोत्कर्त्तधर्म' 'गोमुखदैत्यषट्त्रिंशदक्षौहिणी' के अनन्तर 'भस्मीकरण' कहना चाहिये । 'अप्रतिहताज्ञत्वराजत्व' के पश्चात् 'वासुकिदण्डग्रहण' 'चतुर्विंशतिसंख्यकवासवोपकारकरण' 'सेवकादि' पद के पश्चात् 'खेचरसिद्धित्व' होता है । 'लक्षमत्त' पद के बाद 'हस्तिबलं' यह सत्ताईसवाँ शब्द है । 'चतुर्विधार्थसामग्री' 'स्वेच्छाचारित्वं' । 'अनायास' पद के अन्त में 'त्रिलोकीरक्षणं' 'स्वेच्छारूपित्वं' 'महायोगसिद्धि' 'चिरजीवित्व' कहा गया है । हे प्रियम्वदे ! 'चतुर्विध' पद के बाद 'भूतसङ्घवृत्ति-कल्पनाकुबेरजय' होता है । 'पुरन्दरसख्य' 'रिपुविरूपकरण' 'स्वेच्छाबलसृष्टि' 'प्रसभवासुकिकन्या' पद के परे 'परिणय' होता है ॥ १४१०-१४२१- ॥

वरुणनिरुद्धजयो वासवासाध्यशब्दतः ॥ १४२२ ॥
भवेद्दैत्यजय इति स्याद् दिक्पालपदात्ततः ।
निरोधसङ्कट प्रोच्य तरणेति ततः परम् ॥ १४२३ ॥
शच्युद्धारो निकुम्भानु दैत्यगर्वानुभञ्जन ।
अजातशत्रुता चापि त्रिलोकी प्रार्थ्यमान च ॥ १४२४ ॥
भवेद् वस्तुवितरणं जगद्वशीकरणं च ।
महावदान्यं तदनु ततोऽतिरथताऽपि च ॥ १४२५ ॥
स्यात् पूर्वपुरुषोद्धारः सौन्दर्यैकनिधान च ।

सायुज्यमुक्तिः शेषे स्यात् पदान्यनियतेरिता ॥ १४२६ ॥
त्रिपद्या रचितं यत्तत् स्याद्रूपफलदायिनी ।
द्वादशार्णं हि नक्षत्रनरमुण्डपदादनु ॥ १४२७ ॥
भवेन् मालालंकृतेति मन्वर्णाङ्कं पदं शृणु ।
आदौ चतुर्दश वदेत्ततो भुवनसेवित ॥ १४२८ ॥
पादपद्मा तत्परं च ततो भगवती पदम् ।
गुह्यकालीति तस्यान्तं ब्रह्मोपास्यस्ततो मनुः ॥ १४२९ ॥
वर्णसप्तदशाढ्योऽयं पञ्च बीजानि मे शृणु ।
रावो वधूरुड्योगिन्यस्त्रपा च तदनन्तरम् ॥ १४३० ॥
अस्त्रत्रयं हृच्छिरसी शेषा वै प्रकटोद्धृतिः ।
द्विसप्ततिमिता वर्णा विभक्त्या सहिता इमे ॥ १४३१ ॥

‘वरुणनिरुद्धजय’ ‘वासवासाध्य’ शब्द के बाद ‘दैत्यजय’ होता है । ‘दिक्पाल’ पद के पश्चात् ‘निरोधसङ्कट’ कहकर उसके बाद ‘तरण’ कहना चाहिये । ‘शच्युद्धार निकुम्भ’ के बाद ‘दैत्यगर्व’ के अनन्तर ‘भञ्जन’ कहना चाहिये । ‘अजातशत्रुता; के बाद ‘त्रिलोकीप्रार्थ्यमान’ होता है । ‘वस्तुवितरणजगद्वशीकरणमहावदान्य’ के अनन्तर ‘अतिरथता’ भी होता है । ‘पूर्वपुरुषोद्धार’ सौन्दर्यकनिधान’ और अन्त में ‘सायुज्यमुक्ति’ पद होते हैं । इनकी अनिश्चितता कही जाती है । त्रिपदी के द्वारा जो पद रचित होता है । वह है—‘रूपफलदायिनी’ । जो बारह वर्ण कहे गये वे हैं—‘नक्षत्रनरमुण्डमालालंकृता’ । अब मन्त्र के वर्णों की संख्या वाले पदों को सुनो । पहले ‘चतुर्दश’ कहना चाहिये । फिर ‘भुवनसेवितपादपद्मा’ कहे । उसके बाद ‘भगवती’ पद फिर ‘गुह्यकाली’ । उसके अन्त में ‘ब्रह्मोपास्य’ फिर मन्त्र । यह सत्रह वर्णों से सम्पन्न पद हैं । उक्त (बारह वर्णों) के अतिरिक्त शेष पाँच बीजों को मुझसे सुनो । वे राव वधू क्रोध योगिनी त्रपा हैं । उसके बाद तीन अस्त्र हृदय और शिर । शेष उद्धार स्पष्ट हैं । (ङे) विभक्ति के सहित ये बहत्तर वर्ण हैं ॥ १४२२-१४३१ ॥

[यज्ञमहाराजन्यासोद्भवकथा यस्यां देव्या यज्ञाधिष्ठात्रीत्वम्]

नानासन्देहापनुत्त्यै कथ्यमानां पुरातनीम् ।
आख्यायिकां वरारोहे कीर्त्यमानां निबोध मे ॥ १४३२ ॥
कल्पादौ भगवान् ब्रह्मा जगत् सृष्ट्वा चराचरम् ।
सारभूतानि सर्वाणि ब्राह्मणेभ्यः स्वयं ददौ ॥ १४३३ ॥
साङ्गान् वेदानध्वरांश्च तपः सत्यं क्षमां धृतिम् ।
योगं ज्ञानं ब्रह्मचर्यं वैराग्यं ब्रह्मभावनाम् ॥ १४३४ ॥
विवेकं धैर्यमाचारं दयां निष्ठां सहिष्णुताम् ।
अमीषां पात्रतां ज्ञात्वा रत्नपूर्णां वसुन्धराम् ॥ १४३५ ॥
ससमुद्रद्वीपशैलां तेभ्य एवाददत् प्रभुः ।

गृहीत्वा चाथ ते विप्राः विभक्त्याऽन्योन्यमीश्वरि ॥ १४३६ ॥
तपोधना भोगहीनास्तपस्येव मनो दधुः ।
कुर्वाणेषु तपो घोरं विप्रेषु ध्यानशालिषु ॥ १४३७ ॥
अपालनकृताद् दोषाद् विपर्यस्ताऽभवत् क्षितिः ।
दस्युतस्करसंवा(ध)हिंस्रजन्तुसमाकुला ॥ १४३८ ॥
निर्मर्यादा निराधारा कान्दिशीकजनाचिता(न्विता?)।
न कोऽपि मन्यते किञ्चिदपराधभयात् प्रिये ॥ १४३९ ॥
ब्राह्मणांच्छरणं जग्मुः प्रजा भीताश्च विद्रुताः ।
ते न शेकुः द्विजास्त्रातुं प्रजाः श्वापददस्युतः ॥ १४४० ॥
अथ ब्रह्माणमभ्येत्य प्रोचुः प्राञ्जलयो द्विजाः ।
वीतरागा वयं ब्रह्मन् ध्याननिष्ठास्तपोधनाः ॥ १४४१ ॥
न शक्ताः स्मो वयं सर्वे रक्षितुं पृथिवीमिमाम् ।
त्रातुं प्रजाश्च दस्युभ्यस्त्रस्मयो युद्धदर्शनात् ॥ १४४२ ॥
न शक्नुमो वयमिमां रक्षितुं मेदिनी विभो ।

यज्ञमहाराजन्यास की उत्पत्ति-कथा—हे वरारोहे! अब अनेक सन्देहों को दूर करने के लिये मेरे द्वारा कही जाने वाली प्राचीन कथा को सुनो । कल्प के प्रारम्भ में भगवान् ब्रह्मा ने चराचरात्मक जगत् की सृष्टि कर समस्त सार तत्त्व को स्वयं ब्राह्मणों को दिया । अङ्गोंसहित वेद, यज्ञ तपस्या सत्य क्षमा धृति योग ज्ञान ब्रह्मचर्य वैराग्य ब्रह्मभावना विवेक धैर्य आचार दया निष्ठा सहिष्णुता इस सबको पात्रता को जानकर उन्होंने समुद्र द्वीप और पर्वतों वाली वसुन्धरा को भी उन्हीं (= ब्राह्मणों) को दे दिया। हे ईश्वरि! उसको लेकर वे तपस्वी ब्राह्मण परस्पर विभक्त होकर भोगों से विरक्त होते हुए तपस्या में ही मन लगाये । ध्यान करने वाले ब्राह्मणों के घोर तप करने पर अपालनकृत दोष के कारण पृथ्वी अस्त-व्यस्त हो गयी । वह डाकुओं चोरों से बाधित तथा हिंसक जीवों से व्याप्त हो गयी । मर्यादा से रहित आधारहीन लक्ष्यहीन अथवा भयभीत जनों से युक्त हो गयी । हे प्रिये! अपराध के भय से कोई किसी को नहीं मानता था । (अर्थात् किसी के मन में अपराध करने पर दण्ड का भय नहीं था) । भयभीत अतएव भगोड़ी प्रजा ब्राह्मणों की शरण में गयी । वे ब्राह्मण उन प्रजाओं की जङ्गली जानवरों एवं डाकुओं से रक्षा न कर सके । इसके पश्चात् वे ब्राह्मण ब्रह्मा के पास जाकर हाथ जोड़कर बोले—हे ब्रह्मन्! हम लोग रागद्वेष से रहित ध्यानी तथा तपोनिष्ठ हैं । हम सब इस पृथिवी की रक्षा तथा प्रजाओं का डाकुओं से त्राण करने में समर्थ नहीं हैं । हम युद्ध के दर्शन मात्र से डर जाते हैं । हे प्रभो! हम इस धरती की रक्षा नहीं कर सकते ॥ १४३२-१४४२- ॥

अस्मत्तोऽवरजो वर्णः क्षत्र इत्यभिविश्रुतः ॥ १४४३ ॥
जातो बाह्वोर्हरेः साक्षादिमां तस्मै समर्पय ।

इत्युक्तो भगवान् ब्रह्मा सह संमन्त्र्य वाडवैः ॥ १४४४ ॥
क्षत्रेभ्यः प्रददौ पृथ्वीं ब्राह्मणानुमतां प्रिये ।
शस्त्रास्त्राणि बलं बाह्वोर्दण्डनीतिं च शूरताम् ॥ १४४५ ॥
उत्साहभोगकोषांश्च चतुरङ्गं बलं तथा ।
प्रतापं च प्रभावं च शस्त्रक्षतसहिष्णुताम् ॥ १४४६ ॥
इज्यां बलिं प्रजाभ्यश्च यच्च सारतरं भुवः ।
ते प्राप्य निखिलामुर्वीं क्षत्रिया धर्मतत्पराः ॥ १४४७ ॥
पालयामासुरवनिं श्रुतिप्रोक्तेन वर्त्मना ।
पुरीं निवेशयामासुः खेटावसथखर्वटान् ॥ १४४८ ॥
जघुर्दस्यूंच्छ्वापदांश्च कान्तारस्थानपि प्रिये ।
बलीनाहारयामासुर्भोगान् बुभुजिरे तथा ॥ १४४९ ॥
युयुधू राजहेतोश्च परस्परममी तथा ।
आगः कृत्स्नं तथा दण्ड प्रनिन्युर्वधमेव च ॥ १४५० ॥
एवं कृते मुमुदिरे प्रजाः सर्वा निराकुलाः ।
निर्भयाश्चाप्यवर्द्धन्त सुस्थमासीज्जगत्त्रयम् ॥ १४५१ ॥
बलीन् प्रजाभ्यः सङ्गृह्य कृत्वाऽथो कोषसञ्चयम् ।
यियक्षवोऽभवन् सर्वे वेददृष्टेन वर्त्मना ॥ १४५२ ॥
ऋषीनानाय्य वेदज्ञान् यज्ञवाटं विधाय च ।
विधाय मखसम्भारानभूवन् दीक्षिताः क्रतौ ॥ १४५३ ॥

ब्राह्मणों ने कहा—क्षत्रिय हमारी अपेक्षा अवर कोटि के हैं—यह तथ्य प्रसिद्ध है। ये साक्षात् भगवान् विष्णु की बाहु से उत्पन्न हुये हैं। उन्हें धरती का भार सौंप दीजिये। हे प्रिये! ऐसा कहे गये भगवान् ब्रह्मा ने ब्राह्मणों से परामर्श कर ब्राह्मणों से अनुमति लेकर इस पृथ्वी को क्षत्रियों को दे दिया। शस्त्र-अस्त्र भुजाओं में बल दण्ड नीति शूरता उत्साह भोग कोष चतुरङ्गिणी सेना प्रताप प्रभाव शस्त्राघात को सहने की क्षमता यज्ञ प्रजाओं से कर तथा जो कुछ पृथ्वी का सार है वह सब प्राप्त कर वे क्षत्रिय धर्मपरायण होकर सम्पूर्ण पृथ्वी का वेदशास्त्र के अनुसार पालन करने लगे। उन्होंने खट (= छोटा नगर) अवसथ (= घर) और खर्वट (= मण्डी) को पुरी में प्रविष्ट कराया। हे प्रिये! जङ्गलों में स्थित डाकुओं तथा हिंसक पशुओं का संहार कर दिया। बलि अर्थात् कर का आहरण किया तथा भोगों का भोग करने लगे। ये राज्य के लिये परस्पर युद्ध करने लगे। सम्पूर्ण पाप दण्ड तथा वध को दूर कर दिया। ऐसा करने पर समस्त प्रजा निर्भय और निराकुल होकर आनन्द से वृद्धि को प्राप्त होने लगी। प्रजाओं से कर लेकर कोष का सञ्चय करने के बाद वे सब वेदोपनिषद् मार्ग से यज्ञ के अभिलाषी हो गये। वेदज्ञ ऋषियों को लेकर यज्ञमण्डप बनाकर यज्ञार्थ सामग्री का संग्रह कर वे यज्ञ के लिये दीक्षित हो गये ॥ १४४३-१४५३ ॥

यज्ञसम्बन्धिकर्माणि चक्रुरेषां महर्षयः ।
सदस्याः केऽपि तत्रास(न्नुद्‌गा) तारस्तथापरे ॥ १४५४ ॥
अध्वर्यवोऽथ होतारोऽभूवन् वेत्तार एव च ।
प्रवृत्तेष्वध(ध्व ?)रेष्वेवं दीक्षितेषु नृपेष्वथ ॥ १४५५ ॥
दीयमानेषु दानेषु हूयमानेषु वह्निषु ।
देवानावाहयामासुस्तत्तन्मन्त्रैर्महर्षयः ॥ १४५६ ॥
इन्द्रमग्निं यमं वायुं नैर्ऋतं च प्रचेतसम् ।
सोमं वरुणमीशानं ब्रह्माणं विष्णुमेव च ॥ १४५७ ॥
जायमानेषु यज्ञेषु स्थाने स्थानेऽवनीश्वरैः ।
त्रेतासु हूयमानासु हविर्धाराभिरीश्वरि ॥ १४५८ ॥
देवाः कुत्रापि नाजग्मुः साक्षाद् विग्रहधारिणः ।
अथ द्वित्रिचतुर्वारान् जेपुर्मन्त्रान् महर्षयः ॥ १४५९ ॥
तथापि नागता देवा यज्ञभागजिघृक्षया ।
पुनर्मूर्तिधरान् देवानाह्वयामासुरञ्जसा ॥ १४६० ॥
नागतास्तेऽपि देवेशि यत्नेनाकारिता अपि ।
तथैव विद्या आहूताः सर्वास्ता अपि नागताः ॥ १४६१ ॥
ब्रह्मापि तत्र नायातः साक्षी सर्वाध्वरस्य च ।
अथ विस्मयमापन्ना राजानः क्रोधमेव च ॥ १४६२ ॥
मन्दाक्षभयनिर्वेदचिन्तामोहावमानना: ।
महर्षीन् विविशुस्तत्र मृतकल्पाःस्त्रपाभरैः ॥ १४६३ ॥

महर्षियों ने इनके यज्ञ कराये । उसमें कुछ सदस्य हुये । दूसरे उद्‌गाता बने । कुछ अध्वर्यु, कुछ होता और वेत्ता बन गये । इस प्रकार महायज्ञ के प्रारम्भ होने, राजाओं के दीक्षित होने, दान दिये जाने, अग्नि में आहुति छोड़े जाने पर ऋषियों ने तत्तत् मन्त्रों के द्वारा देवताओं का आवाहन किया । इन्द्र अग्नि यम वायु निर्ऋति प्रचेता सोम वरुण ईशान ब्रह्मा और विष्णु का आवाहन किया गया । हे ईश्वरि! राजाओं के द्वारा स्थान-स्थान पर यज्ञों के किये जाने पर घी की धारा से तीनों अग्नियों में आहुति छोड़े जाने पर भी देवता लोग साक्षात् शरीर धारणकर कहीं भी नहीं आये । इसके बाद महर्षियों ने दो-तीन बार मन्त्रों का जप किया तो भी देवता लोग यज्ञभाग को ग्रहण करने की इच्छा से नहीं आये । पुनः उन ब्राह्मणों ने शीघ्र ही मूर्त्तिधारी देवताओं का आवाहन किया । हे देवेशि! यत्नपूर्वक बुलाये जाने पर भी वे देवता नहीं आये । उसी प्रकार समस्त विद्यायें भी आहूत किये जाने पर भी नहीं आयीं । समस्त यज्ञ के साक्षी ब्रह्मा भी नहीं आये । इसके पश्चात् राजा लोग क्रोध और आश्चर्य में पड़ गये । उनकी इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं । भय निर्वेद चिन्ता मोह अपमान महर्षियों के अन्दर आ गये । लज्जा के कारण वे मृतकल्प हो गये ॥ १४५४-१४६३ ॥

अथ ते लज्जिता ध्यानादनागमनकारणम् ।
विज्ञाय प्रेषयामासुर्महादेवीं सुरान्तिकम् ॥ १४६४ ॥
सा गत्वा त्रिदशानाह यूयं किमिति वै मखे ।
विहितावाहनामन्त्रैर्नागच्छध्वं किमित्यहो ॥ १४६५ ॥
सन्निधानं न कुर्वन्ति वेदा ब्रह्महरी अपि ।
त ऊचुरमराः संज्ञां सम्मन्त्र्य मिलिता मिथः ॥ १४६६ ॥
वयं नात्मवशाः सर्वे पराधीनाः स्म सर्वदा ।
परस्य वाहनीभूतास्तथैव परिचारकाः ॥ १४६७ ॥
काल्याः सिंहासनधरास्तदाज्ञावशवर्तिनः ।
कथं सिहासनं त्यक्त्वा यामस्तस्मिन् मखे मखे ॥ १४६८ ॥
वयं यद्वाहनवहाः सा तत्राकारिता न चेत् ।
वयं कथं गमिष्यामस्तत्र संज्ञे(यज्ञे ?)सुरेश्वरि ॥ १४६९ ॥
इत्युक्ता सा ययौ तत्र यज्ञवाटं महीभृताम् ।
देववेदोदितं सर्वं महर्षिभ्यो न्यवेदयन् ॥ १४७० ॥
भूपान् विज्ञापयामासुस्तेऽनागमनकारणम् ।
एतस्मिन्नेव समये यज्ञा मन्त्रैः सहाखिलाः ॥ १४७१ ॥
अन्तर्हिता अभूवंस्ते स्वाहाकारा वषट् तथा ।
अन्तर्हितेषु तेष्वेवं भृशं दुखान्विताः नृपाः ॥ १४७२ ॥
भूत्वा विषण्णाः पप्रच्छुरितिकर्तव्यतां मुनीन् ।
ते ऊचुस्तथ्यममरा अब्रुवन्नात्र संशयः ॥ १४७३ ॥

इसके पश्चात् लज्जित वे ब्राह्मण ध्यान कर (देवताओं के) न आने का कारण जानकर महादेवी को देवताओं के पास भेजा । वह वहाँ जाकर देवताओं से बोली—मन्त्रों के द्वारा आवाहन करने पर भी तुम लोग यज्ञ में क्यों नहीं आये? ब्रह्मा विष्णु और वेद भी यज्ञ में स्थित नहीं रहते । वे परस्पर मिलकर अपना नाम लेकर बोले—हम सब आत्मवश अर्थात् स्वाधीन नहीं हैं । हम सर्वदा पराधीन हैं । हम दूसरे के वाहनस्वरूप तथा परिचारक हैं । हम लोग काली के सिंहासन को ढोने वाले हैं और उसी के वशवर्त्ती हैं । सिंहासन को छोड़कर हम प्रत्येक यज्ञ में कैसे जा सकते हैं? हम लोग जिसके वाहन (= सिंहासन) को ढोने वाले हैं वही यदि स्वयं ही वहाँ नहीं बुलायी गयीं तो हे सुरेश्वरि! भला हम उस यज्ञ में कैसे जा सकते हैं? ऐसा कही गयी वह महादेवी राजाओं के यज्ञमण्डप में गयी तथा देवताओं एवं वेदों के द्वारा उक्त वचन को महर्षियों को बतलाया । वे महर्षि लोग (देवताओं के) अनागमन का कारण राजाओं को बतलाये । इसी समय मन्त्रों के साथ सारे यज्ञ स्वाहाकार एवं वषट्कार सबके सब अन्तर्हित हो गये । उनके अन्तर्हित हो जाने पर राजा लोग बहुत दुःखी हुए। दुःख से उद्विग्न उन्होंने मुनियों से इतिकर्त्तव्यता (= क्या करना

चाहिये) पूछा। उन्होंने कहा कि देवताओं ने उचित बात कही है। इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १४६४-१४७३ ॥

ते सेवका: महाकाल्या: सिंहासनवहास्तथा ।
सर्वे यज्ञा अपि पुन: सप्तमासनतां गता: ॥ १४७४ ॥
देवी नावाहिता चेत्त आगमिष्यन्ति वै कथम् ।
सेश्वरी किङ्कराश्चान्ये देववेदाध्वरादय: ॥ १४७५ ॥
अयोग्या न वयं भूपा न विज्ञो न मनुं तथा ।
यज्ञकर्मानभिज्ञा नो नानूचाना नवा तथा ॥ १४७६ ॥
वयं नैवाभियोक्तव्या सुराऽनागमने नृपा: ।
इत्युक्तास्ते नृपा: प्रोचुर्महर्षीन् सम्भ्रमाकुला: ॥ १४७७ ॥
यस्या इमे दासभूता यज्ञा वेदा: सुरास्तथा ।
सैव देवी महामाया किमित्याकार्यते नहि ॥ १४७८ ॥
आराध्या सैव सर्वेषामस्माभिर्ज्ञातमित्यपि ।
सन्निधापन एतस्या: प्रयत्न: संविधीयताम् ॥ १४७९ ॥
भूपोक्तं वचनं श्रुत्वा पुनरूचुर्महर्षय: ।
धन्या: स्थ यूयं भूपाला: देव्यधिष्ठापने यत: ॥ १४८० ॥
भाग्याद् व्यवसितं चित्तं तस्या आराधनेऽपि च ।
आराधितायां तस्यां वै सर्वेवेदा मखा: सुरा: ॥ १४८१ ॥
स्वयमेवागमिष्यन्ति तया देव्या सहैव हि ।
युष्माकं च धने धान्ये प्रतापे बलकोषयो: ॥ १४८२ ॥
आयुरारोग्यसौभाग्यविजयात्मजशर्मसु ।
बाहुल्यं कोटिगुणितं भविष्यति न संशय: ॥ १४८३ ॥
सम्प्राप्तेऽभ्युदये देवी लक्ष्मीरूपा गृहे भवेत् ।
अलक्ष्मीरूपिणी सैव विनाशे प्रत्युपस्थिते ॥ १४८४ ॥
यद् यदिष्टतमं भूपा युष्माकं मनसि स्थितम् ।
तत्तल्लक्ष्मीस्वरूपेण सैवात्र प्रकटिष्यति ॥ १४८५ ॥

(मुनियों ने कहा—) वे (देवता एवं वेद) महाकाली के सेवक तथा सिंहासन वाहक हैं। सारे यज्ञ भी उसके सातवें आसन हैं। यदि देवी को आवाहित नहीं किया गया तो वे सब कैसे आयेंगे? वह ईश्वरी हैं। अन्य देवता वेद और यज्ञ आदि उसके किङ्कर हैं। हे राजाओं! न तो हम लोग अयोग्य हैं और मन्त्रों को नहीं जानते ऐसा भी नहीं है। हम लोग यज्ञकर्म से अनभिज्ञ भी नहीं है और वेदों के ज्ञाता भी हैं। हे नृप लोग! देवों के अनागमन में हमको दोषी नहीं ठहराया जाना चाहिये। ऐसा कहे गये राजा लोग भय से व्याकुल होकर ऋषियों से कहे। ये यज्ञ वेद और देवता लोग जिसके दास हैं वह महामायादेवी (इन यज्ञों में) क्यों नही बुलायी जाती? वह सबकी

आराध्या है यह भी हम सबको ज्ञात है । इसलिये उसको यहाँ सन्निहित करने के लिये प्रयत्न किया जाना चाहिये । राजाओं के द्वारा उक्त वचन को सुनकर ऋषियों ने पुनः कहा—हे राजा लोग! आप सब धन्य हैं; क्योंकि भाग्य से आप सबका चित्त देवी की अधिष्ठापना तथा उसकी आराधना में लगा हुआ है । उसकी आराधना होने पर सारे वेद यज्ञ और देवता लोग उस देवी के साथ स्वयं ही आ जायेंगे । (इसके फलस्वरूप) तुम्हारे धन-धान्य प्रताप बल कोष आयु आरोग्य सौभाग्य विजय सन्तान एवं कल्याण में करोड़ गुना वृद्धि हो जायगी । इसमें रञ्चमात्र भी सन्देह नहीं है । अभ्युदय प्राप्त होने पर वह घर में लक्ष्मीरूपा हो जाती है तथा विनाश के उपस्थित होने पर वही दरिद्रता बन जाती है । हे राजाओं! तुम्हारे मन में जो-जो इच्छायें हैं उस-उस को लक्ष्मी के रूप में वही यहाँ प्रकट करेगी ॥ १४७४-१४८५ ॥

इत्युक्तास्ते महर्षिभ्यो गृहीत्वा मन्त्रमुत्तमम् ।
तस्मिन्नेव क्रतौ देवीमारराधुस्त्रिवत्सरम् ॥ १४८६ ॥
अथ तत्रागता देवी शुक्लवस्त्रवपुर्धरा ।
कालीरूपं परित्यज्य लक्ष्मीरूपेण पार्वति ॥ १४८७ ॥
विधीशविष्णुप्रमुखा दिक्पाला निगमाध्वरैः ।
सह तत्रागता देव्या वहन्तः शिरसासनम् ॥ १४८८ ॥
प्रावर्तन्त पुनस्तस्यामागतायां महामखाः ।
चक्रे काली सन्निधानं तत्र तत्र क्रतौ स्वयम् ॥ १४८९ ॥
यज्ञभागं च बुभुजे सर्वो (सर्व) देवगणैः सह ।
भूपालेभ्यश्च सर्वेभ्यः स्वस्वाभीष्टं वरं ददौ ॥ १४९० ॥
गन्धैः पुष्पैश्च धूपैश्च दीपैर्नैवेद्यसञ्चयैः ।
स्तोत्रैर्दण्डप्रणामैश्च परितुष्टा महेश्वरी ॥ १४९१ ॥
राजभ्यो भक्तिनम्रेभ्यःप्रायच्छदखिलान् वरान् ।
यो यस्य हृद्याससाद पुरुषार्थतया प्रिये ॥ १४९२ ॥
तं तं स लेभे रुद्राण्याः सान्निध्याच्च प्रसादतः ।
अथ तुष्टा जगद्धात्री महर्षीन् प्राह संसदि ॥ १४९३ ॥
भृगुं वसिष्ठं कपिलमत्रिं दुर्वाससं तथा ।
हारीतं गौतमं कण्वं जैगीषव्यं च नारदम् ॥ १४९४ ॥
भो भो महर्षयः सर्वे योगवन्तस्तपोधनाः ।
श्रृणुध्वमेकामाज्ञां मे कुरुध्वं चापि तत्क्षणात् ॥ १४९५ ॥
येन येनावनीपेन यस्मिन् यस्मिन् क्रतावहम् ।
येन येनाभिधानेन लक्ष्मीपदवताऽन्तिमे ॥ १४९६ ॥
यं यं वरं प्रार्थयताऽराधिता भक्तिशालिना ।
फलं यद्यददात्तेभ्यस्तत् सर्वमखिलेन हि ॥ १४९७ ॥
मन्त्ररूपेण सन्दिश्य न्यासःकार्यो भवादृशैः ।

तेनाहं तोषमेष्यामि न्यासेन ब्रह्मसूनवः ॥ १४९८ ॥
ये करिष्यन्ति तं न्यासं भवद्भिः परिगु(म्फि?)तम् ।
एतेभ्य इव तेभ्योऽपि दास्यामि प्रार्थितान् वरान् ॥ १४९९ ॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्हिता देवी तेऽपि सर्वे मुनीश्वराः ।
चक्रुर्न्यासं हरस्याग्रे भद्रकाल्या यथोदितम् ॥ १५०० ॥
कथितं यज्ञनामादौ तत्तद्भूपाभिधा ततः ।
तत्तन्नामाङ्कलक्ष्म्यन्ता देव्याख्या तदनन्तरम् ॥ १५०१ ॥
तत्तद्वरस्य संज्ञानु फलरूपतयोदिता ।
इति ते कथितो देवि न्यासस्यास्य समुद्भवः ॥ १५०२ ॥

ऐसा कहे गये वे राजा लोग महर्षियों से उत्तम मन्त्र को लेकर उसी यज्ञ में देवी की तीन वर्षों तक आराधना किये । हे देवि! इसके बाद देवी काली रूप को छोड़कर वहाँ शुक्ल वस्त्र से आवेष्टित शरीर धारण कर लक्ष्मी रूप में वहाँ आयीं । हे पार्वति ! ब्रह्मा ईशान विष्णु आदि दिक्पाल वेदों एवं यज्ञों के साथ देवी के आसन को शिर से ढोते हुए वहाँ आये । उसके आने पर वहाँ पुनः यज्ञों का प्रारम्भ होने लगा । भिन्न-भिन्न यज्ञों में काली सन्निहित रही तथा देवताओं के साथ सम्पूर्ण यज्ञभाग का ग्रहण किया एवं समस्त राजाओं को उनके अपने-अपने अभीष्ट वर प्रदान किये । गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्यसमूह स्तुति दण्ड प्रणाम के द्वारा परितुष्ट माहेश्वरी ने भक्तिनम्र राजाओं को समस्त वर दिया । हे प्रिये! जिसने जिस वर की हृदय में पुरुषार्थ के रूप में कामना की उसने उस-उस वर को रुद्राणी के सन्निधान एवं प्रसाद से प्राप्त किया । इसके पश्चात् सन्तुष्ट होकर जगद्धात्री ने उस संसद् में भृगु वसिष्ठ कपिल अत्रि दुर्वासा हारीत गौतम कण्व जैगीषव्य और नारद नामक महर्षियों से कहा—हे योगयोगी तपस्वी महर्षिगण ! मेरी एक आज्ञा सुनो और उसको तत्काल करो । जिस-जिस राजा ने जिस-जिस यज्ञ में अन्त में 'लक्ष्मी' पद वाले जिस-जिस नाम से जिस-जिस वर के लिये भक्तिशाली होकर प्रार्थना करते हुए मेरी आराधना की और जो-जो फल मैंने उनको दिये आप जैसे लोग उस सब को मन्त्र रूप से सन्दिष्ट कर न्यास बनाइये । उस न्यास से मैं सन्तुष्ट होऊँगी । जो ब्राह्मण आप लोगों के द्वारा परिगुम्फित उस न्यास को करेंगे, इन राजाओं की भाँति उनको भी मैं प्रार्थित वरों को दूँगी । ऐसा कहकर देवी अन्तर्हित हो गयी । वे समस्त मुनीश्वर भी भद्रकाली ने जैसा कहा था वैसा न्यास बनाया । पहले यज्ञ का नाम कहा । फिर तत्तद् राजाओं के नाम। फिर अन्त में तत्तत् नामाङ्कित 'लक्ष्मी' कहा । उसके अनन्तर देवी की आख्या की । उसके पश्चात् तत्तद् वर का नाम फल के रूप में कहा गया । हे देवि! इस प्रकार तुमको इस न्यास की उत्पत्ति बतलायी गयी ॥ १४८६-१५०२ ॥

[कल्पसिद्धन्यासस्तस्य च ऋष्यादिनिर्देशः]

कल्पसिद्धन्यासमथो प्रवदाम्यवधारय ।

अस्य श्रीकल्पसिद्धाख्यन्यासस्य परमेश्वरि ॥ १५०३ ॥
ऋषिः शिवेन कथितो हारिद्रुमतगौतमः ।
उष्णिक्छन्दः समाख्यातमेकपञ्चाशदुत्तरम् ॥ १५०४ ॥
वदेच्च कालीसहिता गुह्यकाली च देवता ।
संहारो बीजममृतं शक्तिः स्यात् कौरजत्रयम् ॥ १५०५ ॥
कीलकं चाथ फेत्कारी तत्त्वमभ्युदितं प्रिये ।
महानिर्वाणषोढाङ्गभूतकल्पपदादनु ॥ १५०६ ॥
सिद्धन्यासानु सिद्ध्यर्थे जपे च विनियोगता ।
ऋष्यादिमस्य कृत्वाऽग्रे विदधीत षडङ्गकम् ॥ १५०७ ॥

कल्पसिद्धन्यास और उसके ऋषि आदि—अब कल्पसिद्धन्यास बतला रहा हूँ । समझो । हे परमेश्वरि! शिव ने उस कल्पसिद्धन्यास का ऋषि गौतम हारिद्रुमत् को बतलाया है । छन्द उष्णिक् कहा गया है । एकपञ्चाशत् काली सहित गुह्यकाली इसकी देवता है । संहार बीज और अमृत शक्ति है । तीन कौरज कीलक है । हे प्रिये! फेत्कारी तत्त्व कहा गया है । इसकी विनियोगता महानिर्वाणषोढान्यास के अङ्ग भूत कल्पसिद्धन्यास की सिद्धि के लिये है । ऋषि आदि को पहले कह कर इसका षडङ्ग करना चाहिये ॥ १५०३-१५०७ ॥

[कल्पसिद्धन्यासस्य षडङ्गनिर्देशः]

ब्रह्मोपास्या सप्तदशी वासिष्ठी तावदक्षरा ।
ततो महाषोडशी च षोडशार्णा ततः परम् ॥ १५०८ ॥
हिरण्यकशिपूपास्या रामोपास्या ततः परम् ।
मन्त्रैरमीभिरुभयषडङ्गं विदधीत वै ॥ १५०९ ॥

सत्रह अक्षरों वाली ब्रह्मोपास्या, उतने ही अक्षरों वाली वसिष्ठ के द्वारा उपास्य, इसके बाद महाषोडशी, फिर षोडशवर्णों वाली तत्पश्चात् हिरण्यकशिपु के द्वारा उपास्य और अन्त में राम के द्वारा उपास्या इन्हीं मन्त्रों से दोनों षडङ्ग न्यास करना चाहिये[1] ॥ १५०८-१५०९ ॥

[कल्पसिद्धन्यासस्य सामान्यतो मन्त्रोद्धारः]

अथ वक्ष्ये समुद्धारं द्विधाभूतं वरानने ।
आदावष्टादशेशानि बीजान्यविचलानि हि ॥ १५१० ॥
ततो नामानि भिन्नानि ब्रह्मवासवसंज्ञया ।
द्व्यर्णात्मकं पदं चैकं ङन्तं तदनु पठ्यते ॥ १५११ ॥

---

१. अङ्गुष्ठ आदि छह तथा हृदय आदि छह अङ्गों की चर्चा पहले अनेक बार आ चुकी है । उक्त न्यास के लिये सम्बन्धित परिशिष्ट के क्रमशः २०, २१, १, २, ५ एवं ४ संख्यक मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिये (?) ।

पूर्वैः समास एतस्य चलैरविचलस्य हि ।
पुनर्नामानि भिन्नानि द्विपद्या रचितेन हि ।
पदेनैकेन ङेऽन्तेन स्त्र्याकारपरिधारिणा ॥ १५१२ ॥
सविग्रहीणि देवेशि पूर्ववच्च चलाचलम् ।
पुनरप्यथ भिन्नानि नामान्यस्यानु सर्वशः ॥ १५१३ ॥
शब्दैः पञ्चभिरारब्धं ङीबन्तं पदमेककम् ।
समासः पूर्ववत् पूर्वैः स्थितिश्चापि चलाचला ॥ १५१४ ॥
पुनर्विभिन्ननामानि द्व्यर्णङीबन्तकेन हि ।
पदेनैकेन प्रोतानि स्थितिः पूर्वा चलाचले ॥ १५१५ ॥
पुनश्चैकं पदं ज्ञेयमाबद्धं पञ्चभिः पदैः ।
बोध्यं तदचलं देवि द्विपद्या रचितं ततः ॥ १५१६ ॥
पदं चैकं पुनस्तद्वदन्यदस्यानु कीर्तितम् ।
भिन्नभिन्नं ततो ज्ञेयं पदयुग्मं पृथक् पृथक् ॥ १५१७ ॥
सर्वं विशेषणीभूतं पदषट्कं तथान्तिमम् ।
विशेष्यभूतं सप्तापि ङेऽन्तं गम्यं सुरेश्वरि ॥ १५१८ ॥
महामन्त्रः पुनश्चैको चलः सप्तदशाक्षरः ।
बीजान्येकादश तत उपबीजानि पञ्च च ॥ १५१९ ॥
स्थिराणि सप्त ङेऽन्तानि पदान्यपि वरानने ।

कल्पसिद्धन्यास का सामान्य मन्त्रोद्धार—हे वरानने! अब इसका दो प्रकार का मन्त्रोद्धार बतलाऊँगा । हे ईशानि! पहले अठारह बीज स्थायी होते हैं । उसके बाद ब्रह्मवासव की संज्ञा से भिन्न नाम होते हैं, उसके पश्चात् एक पद दो वर्णों वाला होता है । यह ङ्यन्त पठित होता है । स्थायी इस पद का चल पद के साथ समास होता है । फिर भिन्न नाम होते हैं । ये दो उपपदों से रचित एक ङेऽन्त पद होते हैं । इनका लिङ्ग स्त्रीलिङ्ग होता है । हे देवेशि! ये पूर्ववत् चल एवं अचल पदों से समस्त होते हैं । पुनः भिन्न-भिन्न नाम होते हैं । इसके अनन्तर पाँच शब्दों से आरब्ध एक डीबन्त पद होता है । यहाँ भी पूर्ववत् समास होता है तथा स्थिति चल एवं अचल होती है । फिर दो वर्णों वाले डीबन्त भिन्न-भिन्न नाम होते हैं । वे एक पद से युक्त होते हैं । इनकी भी स्थिति चल-अचल होती है । पुनः पाँच पदों से आबद्ध एक पद जानना चाहिये । हे देवि! उसको दो पदों से रचित अचल समझना चाहिये । पुनः उसी प्रकार एक अन्य पद होता है, जो उसके बाद कहा गया होता है । इसके बाद दो-दो पृथक्-पृथक् भिन्न पद समझना चाहिये । ये छहों पद विशेषण होते हैं और सातवाँ पद विशेष्य होता है । हे सुरेश्वरि! ये सातों पद चतुर्थ्यन्त समझे जाने चाहिये। फिर एक महामन्त्र होता है । यह सत्रह अक्षरों वाला तथा चल होता है । इसके बाद ग्यारह बीज तथा पाँच उपबीज होते हैं । हे वरानने! पूर्वोक्त सातों ङेऽन्त पद स्थिर होते हैं ॥ १५१०-१५१९ ॥

[कल्पसिद्धन्यासस्य विशेषमन्त्रोद्धार:]

विशेषभूतामधुना वक्ष्याम्युद्धृतिमस्य हि ॥ १५२० ॥
तारादेकान्तरा: सर्वे मेधह्रीयोगिनीस्त्रिय: ।
चतुद्रा(तूरा?)वान्तिमीकूर्चान्नामान्याकलयाधुना ॥ १५२१ ॥
तपो भव्यश्च रन्त(त्न?)श्च हव्यवाहक्रतो: पर: ।
सावित्रस्रुवकुशिका गान्धार ऋषभस्तथा ॥ १५२२ ॥
मार्जालीयो मध्यमश्च वैराजश्च निषादयुक् ।
मेघवाहन इत्येवं पञ्चमश्चिन्तकोऽपि च ॥ १५२३ ॥
तथैवाकृतिविज्ञानौ बृहच्चापि रथन्तरम् ।
रक्तश्च पीतवासाश्च विश्वरूपस्तत: परम् ॥ १५२४ ॥
ऋष्यन्तर: श्वेतनीललोहितौ वामदेवयुक् ।
रौरवप्राणसद्योजाततत्पुरुषसंज्ञका: ॥ १५२५ ॥
अघोरेशानज्ञानानि सारस्वतमुदानयुक् ।
तथा गारुडकूर्मौ च नारसिंहश्च वामन: ॥ १५२६ ॥
आग्नेयसोमौ(तत्पश्चान्)मानवो लक्ष्म्यभिख्यया।
वैकुण्ठो गौर्यपि ततो माहेश्वर इति स्मृत: ॥ १५२७ ॥
पितृपद्मौ तथा श्वेतवाराह: सर्वशेषग: ।

कल्पसिद्धन्यास का विशेष मन्त्रोद्धार—अब इसका विशेष उद्धार बतलाऊँगा। एक-एक तार के अन्तर से मेधा ह्रीं योगिनी स्त्री फिर (उसी अन्तर से) चार राव और अन्त में कूर्च होना चाहिये । अब नामों को सुनो । तप भव्य रत्न हव्यवाह क्रतु सावित्र स्रुव कुशिक गान्धार ऋषभ मार्जालीय मध्यम वैराज निषाद मेघवाहन पञ्चम चिन्तक आकृति विज्ञान बृहत् रथन्तर रक्त पीतवास उसके बाद विश्वरूप ऋष्यन्तर श्वेत नीललोहित वामदेव रौरव प्राण सद्योजात तत्पुरुष अघोर ईशान ज्ञान सारस्वत उदान गारुड कूर्म नारसिंह वामन आग्नेय सोम मानव लक्ष्मी वैकुण्ठ गौरी इसके बाद माहेश्वर कहा गया है । पितृ पद्म और सबके अन्त में श्वेतवाराह कहे जाते हैं ॥ १५२०-१५२७- ॥

द्व्यर्णात्मकं परं कल्प: पुनर्नामानि वै शृणु ॥ १५२८ ॥
ज्वालादौ घोरनादोग्रौ वेतालस्तदनन्तरम् ।
संहाररौद्रौ तदनु कृतान्तो भीम एव च ॥ १५२९ ॥
चण्डो धनं च भद्रश्च श्मशानं कामकलापि च ।
सिद्धिदक्षिणघोराश्च सन्त्रास: प्रेत एव च ॥ १५३० ॥
प्रलयश्च विभूतिश्च जयो भोगस्तत: परम् ।
कल्पान्तमन्थानसंज्ञौ दुर्जय: कालवज्रयुक् ॥ १५३१ ॥

विद्याशक्तिर्विश्वरूपा माया चैव महाकुलम् ।
नादो मुण्डं तथा धूमानन्दतिग्मास्ततः परम् ॥ १५३२ ॥
महारात्रिश्च संग्रामशवनग्ना इतोऽप्यनु ।
रुधिरं चापि कङ्कालं फेरोः पूर्वं भयङ्करः ॥ १५३३ ॥
विकटश्च करालश्च विकरालस्ततो मतः ।
घोरघोरतरः शेषो गुह्य इत्यभिधीयते ॥ १५३४ ॥
द्विपद्या रचितः शब्दः कालीमूर्तिरिति स्मृतः ।

'कल्प' शब्द दो वर्णात्मक है तथा उक्त नामों के बाद में जुड़ता है । पुनः नामों को सुनो । ज्वाला घोरनाद उग्र वेताल तदनन्तर संहार रौद्र उसके बाद कृतान्त भीम चण्ड धन भद्र श्मशान कामकला सिद्धि दक्षिण घोर सन्त्रास प्रेत प्रलय विभूति जय भोग उसके बाद कल्पान्त मन्थान दुर्जय कालवज्र विद्याशक्ति विश्वरूप माया महाकुल नाद मुण्ड धूम आनन्द तिग्म उसके बाद महारात्रि संग्राम शव नग्न इसके भी बाद रुधिर कङ्काल फेरु के पूर्व भयङ्कर विकट कराल उसके बाद विकराल कहा गया है । घोरघोरतर और अन्त में गुह्य कहा जाता है । दो पदों से रचित शब्द 'कालीमूर्त्ति' माना गया है ॥ १५२८-१५३४- ॥

यानि भिन्नान्यदः शेषे नामानि शृणु तानि हि ॥ १५३५ ॥
धर्मो ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यममृतं तथा ।
विवेकपूर्णौ च क्रिया प्रचण्डो भैरवोऽपि च ॥ १५३६ ॥
क्रोधः परमतत्त्वं च कैवल्यं विजयादिमम् ।
खेचरश्चापि निर्वाणं मोक्षः
सिद्धिश्च भूकरोऽपि (?) च ॥ १५३७ ॥
भूचरश्चापि पातालं सुन्दरो मोहनोऽपि च ।
निरञ्जनारुणौ चापि भास्करः पञ्चविंशकः ॥ १५३८ ॥
जगन्मित्रप्रतापौ च पौरुषः कमलापि च ।
प्रमोदविक्रमौ हर्ष उग्रश्चापि विचित्रयुक् ॥ १५३९ ॥
उदयोत्साहकरुणाभीमभावास्ततः परम् ।
परमाव्यययोगाश्च ततः शब्दो प्रमेययुक् ॥ १५४० ॥
मङ्गलेश्वर कपिल माधवरौद्रौ दयापि च ।
सर्वशेषे प्रसन्नश्च पदं पञ्चपदीयुतम् ॥ १५४१ ॥
आनन्दो नाथ इत्येवं सिद्धः सिद्धिर्विधायिनी ।
एभिः समसितैरेकं पदं पूर्वैरमापि च ॥ १५४२ ॥

इसके अन्त में जो भिन्न नाम हैं उनको सुनो । धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य अमृत विवेक पूर्ण क्रिया प्रचण्डभैरव क्रोधभैरव परमतत्त्व कैवल्य उसके पहले विजय खेचर निर्वाण मोक्ष सिद्धि भूकर (कर?) भूचर पाताल सुन्दर मोहन निरञ्जन अरुण

भास्कर। यह पचीसवाँ नाम है । जगन्मित्र प्रताप पौरुष कमल प्रमोद विक्रम हर्ष उग्र विचित्र उदय उत्साह करुणा भीम भाव उसके बाद परम अव्यय योग फिर शब्द प्रमेय मङ्गलेश्वर कपिल माधव रौद्र दया सबके अन्त में प्रसन्न पद कहा गया है । यह सब नाम पाँच पदों से युक्त होता है । (वे पाँच पद हैं—आनन्द नाथ सिद्ध सिद्धि और विधायिनी)। समासयुक्त इन पदों के पूर्व में अमा पद भी होता है (?) ॥ १५३५-१५४२ ॥

अथ नामानि भिन्नानि कथयाम्यस्य पश्चिमे ।
महारात्रिः कालरात्रिर्विरूपा च कपालिनी ॥ १५४३ ॥
महोत्सवा गुह्यनिद्रा ततो दोर्दण्डखण्डिनी ।
वज्रिणी शूलिनी चैव विमला च महोदरी ॥ १५४४ ॥
कुरुकुल्ला कौमुदी च कौलिनी कालसुन्दरी ।
बलाकिनी फैरवी च डमरुका घटोदरी ॥ १५४५ ॥
भीमद्रंष्ट्रा चापि भगमालिनी मेनया सह ।
तारावती भानुमती एकानङ्गा तथैव च ॥ १५४६ ॥
केकराक्षी संहारिणी ऐन्द्राक्षी च प्रभञ्जना ।
भ्रामरी च प्रचण्डाक्षी तथा चैवापराजिता ॥ १५४७ ॥
विद्युत्केशी महामारी शोषिणी वज्रनख्यपि ।
शूची तुण्डी जृम्भकाच तीव्रा प्रस्वापनी तथा ॥ १५४८ ॥
ज्वालिनी चण्डघण्टा च लम्बोदर्यग्निमर्दिनी ।
एकदन्तोल्कामुखी च सूर्पजिह्वा च घोणकी ॥ १५४९ ॥
पूतना वेगमाला च गुह्यकाली च शेषगा ।
द्व्यर्णपदं हि ङीबन्तं नाम्नीति परिपठ्यते ॥ १५५० ॥
पदं पञ्चपदारब्धं यत्तत् सम्प्रति कथ्यते ।
भैरवीति भवेदाद्यं चामुण्डेति द्वितीयकम् ॥ १५५१ ॥
शतं तृतीयकोटिश्च तुर्यं परिवृता ततः ।
श्मशाननिलयास्यानु महाशब्दाद् दिगम्बरा ॥ १५५२ ॥
ततो भगवतीत्येवं गुह्यकाली ततः परम् ।
रामोपास्यस्ततः सप्तदशवर्णात्मको मनुः ॥ १५५३ ॥
अमाशक्ती च धनदां कुलस्त्रीयोगिनीरुषः ।
वधूश्च शाकिनीस्तिस्रो मन्थन्यः फट्त्रयं ततः ॥ १५५४ ॥
नमः स्वाहा सर्वशेषे विशेषोद्धृतिरीदृशी ।

अब इसके बाद वाले भिन्न नामों को बतला रहा हूँ । महारात्रि कालरात्रि विरूपा कपालिनी महोत्सवा गुह्यनिद्रा उसके बाद दोर्दण्डखण्डिनी वज्रिणी शूलिनी विमला महोदरी कुरुकुल्ला कौमुदी कौलिनी कालसुन्दरी बलाकिनी फैरवी डमरुका घटोदरी

भीमदंष्ट्रा भगमालिनी मेना तारावती भानुमती उसी तरह एकानङ्गा केकराक्षी संहारिणी ऐन्द्राक्षी प्रभञ्जना भ्रामरी प्रचण्डाक्षी अपराजिता विद्युत्केशी महामारी शोषिणी वज्रनखी शूची तुण्डी जृम्भका तीव्रा प्रस्वापिनी ज्वालिनी चण्डघण्टा लम्बोदरी अग्निमर्दिनी एकदन्ता उल्कामुखी सूर्पजिह्वा घोणकी पूतना वेगमाला और अन्तिम गुह्यकाली । (इनके अन्त में) दो वर्णों वाला ङीबन्त पद 'नाम्नी' पढ़ा जाता है । अब पाँच उपपदों से आरब्ध पद कहे जा रहे हैं । पहला भैरवी दूसरा चामुण्डा तीसरा शतकोटि चौथा परिवृता उसके बाद श्मशाननिलया उसके पश्चात् 'महा' शब्द के बाद दिगम्बरा तत्पश्चात् भगवती फिर गुह्यकाली, इसके अनन्तर रामोपास्य सत्रह वर्णों वाला मन्त्र उसके बाद अमा शक्ति धनदा कुलस्त्री योगिनी क्रोध वधू शाकिनी तीन मन्थनी तीन फट् फिर नम: और सबके अन्त में स्वाहा । इस प्रकार विशेष उद्धार होता है ॥ १५४३-१५५४- ॥

[कल्पसिद्धन्यासमाहात्म्यकथा तदुद्भवकथा वा]

कल्पाह्वया निगदिता ब्रह्मणो दिवसा इमे ॥ १५५५ ॥
श्वेतवाराहकल्पेऽस्मिन् प्रवृत्ते ब्रह्मणो दिने ।
गुह्यकाली यथा मुख्या कालीषु निखिलासु हिं ॥ १५५६ ॥
तेषु तेषु तु कल्पेषु सा सा काली वरानने ।
प्रसिद्धिमगमत्स्वैः स्वैः मन्त्रध्यानार्चनक्रमैः ॥ १५५७ ॥
य इमे कथिता देवि सिद्धा न्यासान्तरे तथा ।
आसन् मनुष्या एवैते प्राकृता इव साम्प्रतम् ॥ १५५८ ॥
जन्ममृत्युसधर्माणो रोगशोकसमाकुलाः ।
केचिद् विप्राः केऽपि भूपाः
वैश्याः केचन पार्वति ॥ १५५९ ॥
केचिच्चावरजा वर्णाश्चातुराश्रम्यशालिनः ।
कालीमाराधयामासुस्तां तां तत्तन्मनूच्चरैः ॥ १५६० ॥
मानवौघास्तु सञ्जाता दिव्यौघास्तत्प्रसादतः ।
काली तेषां प्रसन्नाऽभूदाराधनजपार्चनैः ॥ १५६१ ॥
अभिधानं तत्तदेषां निराकृत्य महेश्वरी ।
युयोज स्वेच्छया नामाथ द्वित्रिचतुरक्षरैः ॥ १५६२ ॥
आनन्दनाथ इत्यन्ते प्रासिद्ध्यमुपपादितम् ।
सिद्धा भूत्वा तेऽपि देवि स्वस्वोत्कर्षविवृद्धये ॥ १५६३ ॥
सङ्गोप्य तत्तन्नामासां चक्रुरन्यं निजेच्छया ।
मन्त्रान् प्रकटयामासुर्ये तन्त्रे भैरवे स्थिताः ॥ १५६४ ॥

कल्पसिद्धन्यास का माहात्म्य और उसकी उत्पत्ति—ब्रह्मा के ये दिन कल्प कहे जाते हैं । जब ब्रह्मा के श्वेतवाराहकल्प नामक दिन का प्रारम्भ हुआ तब समस्त

कालियों में गुह्यकाली मुख्य हो गयी । हे वरानने! उन-उन कल्पों में वह-वह काली अपने-अपने मन्त्र-ध्यान-पूजन के क्रम से प्रसिद्धि को प्राप्त हो गयी । हे देवि! दूसरे न्यास में जो ये सिद्ध कहे गये ये उस समय आज के सामान्य लोगों की भाँति मनुष्य थे । ये जन्म-मृत्यु स्वभाव वाले रोग-शोक से व्याकुल थे । हे पार्वति! उनमें से कुछ ब्राह्मण थे, कुछ क्षत्रिय, कोई वैश्य थे और कुछ शूद्र । सारे वर्ण चार आश्रमों वाले थे । उन सबों ने तत्तत् मन्त्रों के उच्चारणों के द्वारा काली की आराधना की । उसकी कृपा से वे मानवौघ[1] और दिव्यौघ[2] हो गये । आराधना जप एवं पूजा के द्वारा काली उन पर प्रसन्न हो गयी । उस महेश्वरी ने उनके तत्तत् नामों को हटाकर अपनी इच्छानुसार दो तीन चार अक्षरों वाले नाम से उनको युक्त कर दिया । अन्तिम नाम आनन्दनाथ के रूप में प्रसिद्ध हुआ । हे देवि! वे भी सिद्ध होकर अपने-अपने उत्कर्ष की वृद्धि के लिये तत्तत् नामांशों को छिपाकर अपनी इच्छानुसार अन्य नाम रख लिये और जो भैरवागमों में स्थित थे उन मन्त्रों को प्रकट किया ॥ १५५५-१५६४ ॥

श्वेतवाराहकल्पादौ गुह्यकाली यदा स्वकम् ।
रूपं प्रकटयामास महाभीषणमुल्बणम् ॥ १५६५ ॥
तदा लुप्ततरा जातास्ताः काल्यो मन्त्रविग्रहैः ।
मूर्तीरन्तर्हिता दृष्ट्वा ताः स्वीया जगदम्बिका ॥ १५६६ ॥
दुःखितेवाब्रवीत् किञ्चित् त्रिपुरघ्नमिदं वचः ।
प्राणनाथ पुराराते प्राक्तन्यो मम मूर्तयः ॥ १५६७ ॥
ज्वालाकालीप्रभृतयः पूर्वमाराधिता हि याः ।
धर्मानन्दप्रभृतिभिरमीषां वरदाश्च याः ॥ १५६८ ॥
अनुपासक्तादोषादन्तर्धानमुपागताः ।
स्वैः स्वैर्मन्त्रैर्विग्रहैश्च सहिता नामभिस्तथा ॥ १५६९ ॥
स्वमूर्तिलोपदुःखेन दुःखितां मां समुद्धर ।
तेषां तेषां हि कल्पानां नामभिः परिबृंहितः ॥ १५७० ॥
तासां तासां च कालीनां सिद्धानामपि हे विभो ।
अभिधानैस्तथा सिद्धविहितैरन्वितस्तथा ॥ १५७१ ॥
न्यासः कोऽपि निबद्धव्यो येन नासां विलोपनम् ।
कल्पसिद्धन्यास इति प्रसिद्धिं च करिष्यसि ॥ १५७२ ॥
इत्थं विज्ञापितः काल्या देवदेवो महेश्वरः ।
सर्वं बबन्ध न्यासेऽस्मिन् देवी तेन तुतोष च ॥ १५७३ ॥
ये करिष्यन्त्यमुं न्यासं देवीदुःखापहारकम् ।
तेषां दुःखापहरणं गुह्यकाली करिष्यति ॥ १५७४ ॥

१-२. गुरुओं की तीन श्रेणी आगमों में बतलायी गयी है। मानवौघ, सिद्धौघ और दिव्यौघ।

श्वेतवाराहकल्प के प्रारम्भ में गुह्यकाली ने जब अपना महाभयङ्कर उल्बण अर्थात् विशाल रूप प्रकट किया तो मन्त्रविग्रहों के साथ-साथ वे कालियाँ लुप्त हो गयीं। जगदम्बिका ने अपनी उन मूर्तियों को अन्तर्हित देखकर दु:खी होती हुई त्रिपुरारि से वह वचन कहा। हे पुराराते! हे प्राणनाथ! ज्वालाकाली आदि मेरी प्राक्तन मूर्तियाँ, जिनकी धर्मानन्द आदि ने आराधना की थी और जो वर देने वाली थीं, अनुपासकता दोष के कारण वे अपने मन्त्रों विग्रहों और नामों के साथ लुप्त हो गयीं। अत: अपनी मूर्तियों के लोप के दु:ख से मेरा उद्धार कीजिये। हे विभो! उन-उन कल्पों के नामों से युक्त उन-उन कालियों और सिद्धों के नामों तथा 'सिद्धविहित' शब्दों से अन्वित कोई न्यास बनाइये जिससे इनका लोप न हो और कल्पसिद्धन्यास की सिद्धि हो जाय। इस प्रकार काली के द्वारा कहे गये भगवान् शिव ने उपर्युक्त सब को इस न्यास में उपनिबद्ध किया और इससे काली सन्तुष्ट हो गयी। जो लोग देवी के दु:ख का अपहरण करने वाले इस न्यास को करेंगे गुह्यकाली उनके दु:खों का नाश करेगी ॥ १५६५-१५७४ ॥

अचां विसन्धिताऽस्मिन्निति मृत्युञ्जयोऽब्रवीत्।
न्यासस्थानं च सर्वत्र मातृकावदुदीरितम् ॥ १५७५ ॥
अत एव हि कालीनां तासां मन्त्रान् महेश्वरः।
मृत्युञ्जयप्राणमध्ये बीजमालामयेऽपि च ॥ १५७६ ॥
बबन्ध भगवान् रुद्रःकालीनां विविधान् मनून्।
संहितायां च भैरव्यां बबन्धुर्भैरवास्तथा ॥ १५७७ ॥
यैः ख्यातिमगमत् काली नामभिः सिद्धकल्पितैः।
तैस्तैर्नामभिरन्ये च विख्यातिं मनवोऽगमन् ॥ १५७८ ॥
कपालडामरे प्रोक्ताः मन्त्रास्ते त्रिपुरारिणा।
कल्पसिद्धन्यास इति तेनायं प्रथितः प्रिये ॥ १५७९ ॥
महासिद्धिविधातेदृङ् नान्यो न्यासो भविष्यति।
एतस्य महिमानं द्वौ जानतः कालिकाशिवौ ॥ १५८० ॥
जानाम्यहं त्वत्प्रसादान्नान्ये विज्ञातुमीशते।
इत्येष कथितो न्यासो महाषोढाह्वयस्तव ॥ १५८१ ॥
तत्तल्लिङ्गादियुक् चायमन्यत्रान्यैश्च संयुतः।
महोपपदतामेति द्वैविध्यं तेन वर्णितम् ॥ १५८२ ॥
अकामतः कृतश्चायं निर्वाणाख्यां प्रपद्यते।

इस न्यास में स्वरों की सन्धि नहीं है—ऐसा मृत्युञ्जय ने कहा है। न्यास स्थान सर्वत्र मातृका न्यास स्थान के समान कहा गया है। इसीलिये महेश्वर ने उन कालियों के मन्त्रों को मृत्युञ्जय प्राण के मध्य में उपनिबद्ध किया तथा भगवान् रुद्र ने कालियों के विविध मन्त्रों का बीजमालामन्त्र में उपनिबन्धन किया। भैरवों ने भैरवीसंहिता में

निबद्ध किया। सिद्धों के द्वारा रचित जिन नामों से काली ख्याति को प्राप्त हुई उन-उन नामों से अन्य मन्त्र भी प्रसिद्ध हुये । त्रिपुरारि ने उन मन्त्रों का कपालडामर तन्त्र में वर्णन किया । हे प्रिये! इस कारण यह कल्पसिद्धन्यास के नाम से विख्यात हुआ । इसके समान महासिद्धि देने वाला कोई दूसरा न्यास नहीं है । इसकी महिमा को काली और शिव दो ही लोग जानते हैं और तुम्हारी कृपा से मैं इसको जानता हूँ। अन्य लोग इसको नहीं जान सकते । इस प्रकार मैंने तुमको महाषोढान्यास बतलाया। यह तत्तत् लिङ्ग आदि से युक्त तथा अन्यत्र अन्य से युक्त है । अत: महोपपद होता है । इस कारण इसके दो प्रकार बतलाये गये हैं । यह न्यास बिना किसी कामना के किया गया होता है अत: निर्वाण नाम को प्राप्त करता है (अर्थात् इसका नाम निर्वाण है) ॥ १५७५-१५८२- ॥

समाप्य सकलं न्यासं बलिं देव्यै निवेदयेत् ॥ १५८३ ॥
नैवेद्यं शक्तये चापि सिद्ध्याकांक्ष्युभयं चरेत् ।
पारत्रिकं चेहमानः पूर्वमाचरते प्रिये ॥ १५८४ ॥
बलिदानमनुं वक्ष्ये सम्प्रत्युद्धृतिपूर्वकम् ।
उच्चार्य यं बलिं दद्यान् न्यासानन्तरमीश्वरि ॥ १५८५ ॥
प्रणवो वाग्भवपाशाङ्कुशान्येतानि वै पुनः ।
एकपञ्चाशदित्येवं मन्त्रेऽमुष्मिन् पदं प्रिये ॥ १५८६ ॥
वारान् द्वादश सङ्कीर्त्य स्वस्वोपपदबृंहितम् ।
तसन्ततया वाच्यमादौ तीर्थमुपन्यसेत् ॥ १५८७ ॥
कमला भौवनेशी च रोषः प्रासाद एव च ।
पौरस्त्यं पदमुच्चार्य शिवलिङ्गं च पूर्ववत् ॥ १५८८ ॥
प्रेतः काली खेचरी दिक् शैलश्च प्राक्तनात् पदात् ।
शूची च वैश्वदेवश्च तापिनी मन एव च ॥ १५८९ ॥
प्रागुक्तपदतश्चापि नरसिंहोऽपि सन्धियुक् ।
कल्पो मुक्ता महा चैव नृसिंहस्तदनन्तरम् ॥ १५९० ॥
प्राचीनात् पदतः सन्धियुतो नद्यपि कीर्तयेत् ।
कामो मुञ्जवलार्णं हि द्वादश्या मात्रयान्वितम् ॥ १५९१ ॥
आसुरं चापि निर्वाणं पूर्वस्मात् पदतस्तथा ।
सन्धियुक्त ऋषिश्चापि वधूर्वाजिगलोऽपि च ॥ १५९२ ॥
दानवः स्थपतिश्चापि प्रागुक्तात् पदतोऽपि च ।
अस्त्रं च योगिनी पश्चात् समाधिश्चाध्वना सह ॥ १५९३ ॥

सम्पूर्ण न्यास का समापन कर देवी के लिये बलि देनी चाहिये । शक्ति के लिये नैवेद्य देना चाहिये । सिद्धि चाहने वाला दोनों विधान करे । हे प्रिये! स्वर्ग चाहने वाला साधक पूर्व विधान को करे । हे ईश्वरि ! न्यास के बाद जिसका उच्चारण कर

बलि देनी चाहिये अब मैं उद्धार के साथ उस बलिदान मन्त्र को बतलाऊँगा । हे प्रिये! इस मन्त्र में प्रणव वाग्भव पाश और अङ्कुश ये बीज पुन: इक्यावन पद अपने-अपने उपपदों से युक्त कर तसिल् प्रत्ययान्त कहे जाने चाहिये । उसके पहले तीर्थ कहना चाहिये । कमला भौवनेशी रोष प्रासाद के बाद पहले का पद और शिवलिङ्ग का उच्चारण करना चाहिये। प्रेत काली खेचरी दिक् और शैल को पूर्व पद के बाद कहना चाहिये । शूची वैश्वदेव तापिनी मन पूर्वोक्त पद के बाद सन्धियुक्त नरसिंह कहना चाहिये । कल्प मुक्ता महा उसके बाद नृसिंह पूर्वोक्त पद के पश्चात् सन्धियुक्त नदी का कथन करना चाहिये । काम मुञ्जबल वर्ण बारह मात्राओं से युक्त कहना चाहिये । पूर्व पद के पश्चात् आसुर और निर्वाण कहना चाहिये । सन्धियुक्त ऋषि भी कहना चाहिये । वधू तथा वाजिगल पूर्वोक्त पद के बाद दानव और स्थपति उसके अनन्तर अस्त्र और योगिनी फिर समाधि और अध्वा कहना चाहिये ॥ १५८३-१५९३ ॥

प्राक्तनादेव पदतो भैरव: समुदाहृत: ।
राव: सानु: केतुनित्ये (त्यौ) पूर्वशब्दादपि प्रिये ॥ १५९४ ॥
यज्ञश्च मानसं वज्रं मेखला च विभूतियुक् ।
प्रायु(गु ?)क्त पदतो राजा भारुण्डा योगिनी तथा ॥ १५९५ ॥
लज्जारती पूर्वपदात् कल्प: परिनिगद्यते ।
डाकिन्यनु स्यात् प्रासादोऽमृतं शक्तिस्तथैव च ॥ १५९६ ॥
पूर्वस्मादेव पदत: सिद्ध इत्यपि कीर्तित: ।
ततस्तारो भौवनेशी योगिनीरोषयोषित: ॥ १५९७ ॥
शाकिनी डाकिनी चैव फेत्कारी तदनन्तरम् ।
भासाकूटात् तथैह्येति भगवत्यनु कीर्त्यते ॥ १५९८ ॥
गुह्यकालि समाभाष्य ततोऽर्णं नाङ्कुरं वदेत् ।
योगिनी डाकिनी चैव शाकिनी भैरवी तथा ॥ १५९९ ॥
चामुण्डादिस्वशक्त्युक्त्वा तत: परिवृते वदेत् ।
कामलं मान्मथं मैधं प्रासादं कालिकाह्वयम् ॥ १६०० ॥
बीजं सदाशिवप्रेताधिरूढे परमेत्यपि ।
तत: शिवे सामरस्यरसप्रमुदिते स्मरेत् ॥ १६०१ ॥
श्मशाननिलये प्रोच्य नरमुण्डपदादथ ।
मालारचितहारेव (च) विसन्धीमं बलिं तत: ॥ १६०२ ॥
गृह्ण गृह्णापय द्विर्द्विस्तथा भक्ष च भक्षय ।
मम शत्रूनथोत्कीर्त्य हनयुग्मं मथ द्वयम् ॥ १६०३ ॥
खाद द्वयं त्रपाकूर्चौ वधू रावश्च योगिनी ।
सत्वेरे युगलं चापि व्युत्क्रमाद् विरिमे पुन:(?) ॥ १६०४ ॥

डाकिनी प्रलयश्चापि फेत्कारी तदनूदिता ।
अस्त्रत्रयं हृच्छिरसी सर्वशेषे प्रकीर्तिते ॥ १६०५ ॥

पूर्वोक्त पद के ही बाद भैरव कहा गया । हे प्रिये! पूर्वोक्त शब्द के पश्चात् राव सानु केतु और नित्य कहना चाहिये । यज्ञ मानस वज्र मेखला और विभूति पूर्वोक्त पद के बाद कहे । राजा भारुण्डा योगिनी और योगिनी को पूर्वपद के बाद कहना चाहिये । पूर्वपद के बाद लज्जा रति और कल्प कहा जाता है । पूर्वपद से परे डाकिनी प्रासाद अमृत और शक्ति कहकर सिद्ध भी कहा गया है। इसके बाद तार भौवनेशी योगिनी रोष योषित शाकिनी डाकिनी फेत्कारी के बाद भासाकूट कहना चाहिये । तदनन्तर 'एह्येहि भगवति' कहा जाता है । 'गुह्यकाली' कहकर उसके बाद नाङ्कुर वर्ण कहना चाहिये । 'योगिनी-डाकिनी-शाकिनी-भैरवी-चामुण्डादिस्वशक्ति' कहकर फिर 'परिवृते' कहना चाहिये । कमला मन्मथ मेधा प्रासाद कालिका बीज के बाद 'सदाशिवप्रेतारूढे परम' फिर 'शिवे सामरस्यरसप्रमुदिते' का कथन कहना चाहिये। 'श्मशाननिलये' कहकर 'नरमुण्ड' पद के बाद 'मालारचितहारे' के पश्चात् सन्धि रहित 'इमं बलिं' कहकर 'गृह्णगृह्णापय' को दो-दो बार उसी प्रकार 'भक्ष भक्षय' को दो-दो बार कहकर 'मम शत्रून्' कहकर दो 'हन' दो 'मथ' दो 'खाद' त्रपा कूर्च वधू राव योगिनी दो 'सत्त्वेरे' पुनः व्युत्क्रम से 'विग्मिे' कहना चाहिये (?) । उसके अनन्तर डाकिनी प्रलय और फेत्कारी उक्त होती है । सबके अन्त में तीन अस्त्र हृदय और शिर कहे गये होते हैं । (इस बलि मन्त्र का स्वरूप निम्नलिखित है—)

(१) ओं ऐं आं क्रों प्रयागतीर्थतः महेश्वरशिवलिङ्गसहितायै.........(अवशिष्ट ४९) श्रीं ह्रीं हूं आं वडवामुखतीर्थतः अनलेश्वरशिवलिङ्गसहितायै फट् फट् फट् नमः स्वाहा। इस प्रकार इक्यावन तीर्थों के नाम का बारह बार उच्चारण करना चाहिये । यही प्रक्रिया शेष पर्वत आदि न्यासों के सन्दर्भ में अपनानी चाहिये ।

(२) स्हौः क्रीं खीं यीं हिमालयपर्वततः ज्वालामालीनरसिंहसहितायै........(४९) श्रैं गं म्रां क्ष्णौं हरिश्चन्द्रपर्वततः निर्वाणनरसिंहसहितायै.............।

(३) क्ष्मां क्ष्मीं क्ष्मूं क्ष्मौं यमुनानदीतीरतः मरीच्युपासितायै कामदानामधारिण्यै........ (अव० ४९) क्लीं क्लैं ग्रीं क्षह्म्लव्य्रऊं गङ्गानदीतीरतः याज्ञवल्क्योपासितायै सर्वज्ञानामधारिण्यै...........।

(४) स्त्रीं (वाजिगल ?) श्रीं (स्थपति ?) ब्राह्मास्त्रतः विद्युज्जिह्वासुरघातिन्यै क्रोधभैरवसुरतरसलोलुपायै (अव ४९) फट् छ्रीं हैं हां पाशुपतास्त्रतः प्रलयरम्भासुरघातिन्यै त्रिपुरान्तकभैरवसुरतरसलोलुपायै..............।

(५) फ्रें रह्रीं फ्रस्त्रूं श्लीं अग्निष्टोमयज्ञतः प्रियव्रतराजाधिराधितायै जयलक्ष्मीनामधारिण्यै...............(अव० ४९) प्रीं छ्रीं ह्रीं क्लूं (क्लीं ?) गजच्छाययज्ञतः सप्तसप्ततिराजाराधितायै कैवल्यलक्ष्मीनामधारिण्यै...............।

(६) द्रौं (?) ट्रीं ध्रीं रक्षीं तपः कल्पतः ज्वालाकालीमूर्त्यै धर्मानन्दनाथासिद्धसिद्धिदायिन्यै महारात्रिनाम्न्यै भैरवीचामुण्डाशतकोटिपरिवृतायै महाश्मशाननिलयदिगम्बरायै......(अव० ४९) खफ्रें आं बं ब्लूं श्वेतवाराहकल्पतः गुह्यकालीमूर्त्यै प्रसन्नानन्दनाथसिद्धसिद्धिदायिन्यै गुह्यकालीनाम्न्यै भैरवीचामुण्डाशतकोटिपरिवृतायै महाश्मशाननिलयदिगम्बरायै.........[1] ॥ १५९४-१६०५ ॥

न्यासान्ते बलिदानाय कथितोऽयं महामनुः ।
बलिं दददनेनैव शिवायै मनुना प्रिये ॥ १६०६ ॥
सफलं कुरुते न्यासमसम्पूर्णं तथाऽददत् ।
आद्यं न्यासं मातृकाढ्यं ब्रवीति त्रिपुरद्विषः ॥ १६०७ ॥
कापालिकास्तु पञ्चान्यांस्तदाढ्यन् ब्रुवते तथा ।
तत्स्थानं शेषहृच्छीर्षचरमं वर्णयन्ति ते ॥ १६०८ ॥
सर्वादावपि मौलेया न कुत्रापीति निःपठाः ।
भाण्डिकेरास्तथा सर्वे मन्मतस्यानुसारिणः ॥ १६०९ ॥
स्थानानि षण्णां न्यासानां मातृकान्यासवत् प्रिये ।
मतमेतद्धि सर्वेषां मम च त्रिपुरद्विषः ॥ १६१० ॥
सन्ध्यसन्धी तु विज्ञेयौ वचनादुपदेशतः ।
परम्परायातरीत्या न चतुर्थात् प्रकारतः ॥ १६११ ॥
शक्तिप्रधानपूजाकृत् कुलमार्गरतोऽखिलः ।
देवीबलिप्रदानान्ते शक्तये बलिमृच्छति ॥ १६१२ ॥
कोऽपि नैवेद्यमपि वा मनुरेको द्वयोरपि ।
तारो मैधं त्रपा कामः शाकिनी डाकिनी तथा ॥ १६१३ ॥
भासापुष्करसत्त्वाख्यकूटानि तदनन्तरम् ।
इमं बलिं गृह्ण युगं गृह्णापय युगं तथा ॥ १६१४ ॥
भक्ष भक्षय च द्वन्द्वं खाद खादय चेत्यपि ।
एह्येहि शक्तिरूपे च भगवत्यस्य पश्चिमे ॥ १६१५ ॥
गुह्यकालि ततः प्रोच्य स्वपदं दर्शय द्वयम् ।
निजरूपं प्रकटय द्विवारं समुदीरयेत् ॥ १६१६ ॥
प्रविश द्विः सामरस्यभावमादौ निगद्य हि ।
शृङ्खलाकर्णिकाहारकुटिलारञ्जिनीघटीः ॥ १६१७ ॥
सपद्मव्ययमारण्डाबीजानि परिकीर्तयेत् ।
चित्कलाभोगकूटानि तदनन्तरमीरयेत् ॥ १६१८ ॥

---

[1] इस न्यासमन्त्र की सङ्घटना में स्खलन सम्भव है । सुधीपाठक संशोधन करने में प्रमाण हैं ।

सप्रासादपरा प्रेतं फट्त्रयं हृच्छिरोऽन्तिमे ।
नैवेद्यं वा बलिं वापि दद्युरेतेन शक्तये ॥ १६१९ ॥

यह मन्त्र न्यास के अन्त में बलिदान के लिये कहा गया । हे प्रिये! इस मन्त्र से शिवा अर्थात् गुह्यकाली को बलि देना न्यास को सफल बनाता है । न देने से न्यास अपूर्ण रह जाता है । त्रिपुरद्वेषी अर्थात् शैव प्रथम न्यास को मातृकायुक्त कहते हैं । कापालिक लोग पाँच अन्य न्यासों को मातृकायुक्त कहते हैं । उस स्थान के अन्त में हृदय और शिर का कथन करते हैं । मौलेयों का कथन है कि सब न्यासों के आदि में मातृका का योग होता है । निःपठ मतानुयायी लोगों का विचार है कि मातृका का योग कहीं नहीं होता । भाण्डिकेर एवं अन्य सब लोग मेरे मत अर्थात् महाकालसंहितोक्त शाक्तमत के अनुयायी हैं । हे प्रिये! छहों न्यासों के स्थान मातृका-न्यास के समान होते हैं । यह सबको अभीष्ट है । इसे मैं और शैव लोग भी मानते हैं । न्यास में सन्धियाँ और असन्धियाँ वचन, उपदेश और परम्परा से प्राप्त रीति के अनुसार समझी जानी चाहिये । इसमें चौथा कोई प्रकार नहीं है । शक्ति को प्रधान देवता मानकर पूजा करने वाला तथा कौलमार्गी सबके सब देवी को बलि देने के अन्त में शक्ति के लिये वलि देते हैं । नैवेद्य कोई भी हो (बलि एवं नैवेद्य) दोनों में मन्त्र एक ही रहता है । तार मेधा त्रपा काम शाकिनी डाकिनी बीज भासा-कूट पुष्पककूट सत्त्वकूट उसके बाद 'इमं बलिं', 'गृह्ण' को दो बार 'गृह्णापय' दो बार फिर 'भक्ष भक्षय' को दो-दो बार तथा 'खाद खादय' को दो-दो बार 'एह्येहि शक्तिरूपे भगवति' के पश्चात् 'गुह्यकालि' कहकर 'स्वपदं' कहना चाहिये । फिर 'दर्शय' को दो बार 'निजरूपं' के अनन्तर 'प्रकटय' को दो बार कहना चाहिये । पहले 'सामरस्य भावम्' कहकर फिर दो बार 'प्रविश' कहना चाहिये । शृङ्खला कर्णिका हार कुटिला रञ्जिनी घटी पद्म व्यय भारण्डा बीजों को कहना चाहिये । उसके बाद चित्कूट कलाकूट भोगकूट कहने चाहिये । प्रासाद परा प्रेत तीन 'फट्' और मे हृदय और शिर कहना चाहिये। शक्ति के लिये नैवेद्य अथवा बलि इसी मन्त्र से देने चाहिये ॥ १६०६-१६१९ ॥

कौलिकाः कुर्वते चापि तदनन्तरमर्हणम् ।
रतिं च वाममार्गीया न तु श्रुत्यध्वनि स्थिताः ॥ १६२० ॥
षोढान्यासोऽयमुक्तस्ते समुद्धरणपूर्वकः ।
महोपपदविख्यातो निर्वाणोपपदेन च ॥ १६२१ ॥
किं कृतैर्बहुभिर्न्यासैरयं न्यासः कृतो न चेत् ।
कृतेऽपि न्यासराजे तु किमन्यैर्न्यासविस्तरैः ॥ १६२२ ॥
यस्य स्यान्महती भक्तिर्गुह्यकालीमुपासितुम् ।
तेनायं संग्रहीतव्यः कर्तव्यश्च विशेषतः ॥ १६२३ ॥
सप्तकोटिमहामन्त्रास्तव डामरयामलात् ।

उद्धृत्य चैकतः कृत्वेदं चापि तुलया धृतम् ॥ १६२४ ॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यमिदं तेभ्योऽत्यरिच्यते ।
ततः प्रभृति देवेशि मया भक्तिपरेण हि ॥ १६२५ ॥
न्यासं रुद्राक्षमालायां विलिख्य परमादरात् ।
कण्ठे संस्थाप्य सा देवी ध्यायते निश्चितात्मना ॥ १६२६ ॥
धारयिष्यन्ति येऽन्येऽपि गुह्या तेषां वरप्रदा ।
नातः परतरः कोऽपि न्यासो(भुवि?)शुचिप्रदः ॥ १६२७ ॥
जगत्त्रयेऽपि न्यासोऽन्यो नास्ति सोऽत्र सुरेश्वरि ।
यो गच्छेदस्य समतां फलाधिक्यप्रदानतः ॥ १६२८ ॥

बलि के पश्चात् कौलिक लोग शक्ति की पूजा करते हैं । वाममार्गी रति करते हैं किन्तु वेदमार्गानुयायी कुछ नहीं करते । इस प्रकार यह षोढान्यास तुमको उद्धारपूर्वक बतलाया गया । षोढान्यास के पहले महा एवं निर्वाण पद भी जुड़ा हुआ है । यदि इस न्यास को नहीं किया तो अन्य न्यासों को करने से क्या लाभ? और यदि इस न्यासराज को किया गया तो अन्य न्यासों का विस्तार करने से क्या लाभ? जिसके अन्दर गुह्यकाली की उपासना करने के लिये मन में महाभक्ति है उसे विशेषरूप से इस न्यास का संग्रह एवं अनुष्ठान करना चाहिये । तुम्हारे डामर एवं यामल ग्रन्थों के सात करोड़ मन्त्रों को उद्धृत कर एकत्र रखा जाय और इस न्यास को अन्यत्र तो यह सत्य सत्य और सत्य है कि यह न्यास उन मन्त्रों की अपेक्षा बढ़कर रहेगा । हे देवेशि! उसके बाद भक्तिभाव से पूर्ण मैं इस न्यास को रुद्राक्ष की माला पर लिखकर परम आदर के साथ कण्ठ में स्थापित कर स्थिर चित्त से देवी का ध्यान करता रहता हूँ और जो लोग इसका धारण करेंगे उनके ऊपर गुह्यकाली प्रसन्न होकर वरदायिनी होगी । इस पृथ्वी पर इस न्यास से बढ़कर पावनता देने वाला कोई अन्य न्यास नहीं है । हे सुरेश्वरि! तीनों लोकों में ऐसा कोई न्यास नहीं है जो फलाधिक्य प्रदान करने में इसके बराबर हो सके ॥ १६२०-१६२८ ॥

[न्यासस्योपदेशग्रहणमनुष्ठानविधिश्च]

शुभेऽहनि गुरोर्वक्त्रादुपदेशं प्रगृह्य हि ।
यत्नात् सन्तोष्य च गुरुं हेमरत्नाम्बरादिभिः ॥ १६२९ ॥
चतुर्दश्यामथाष्टम्यामारभेतास्य धारणम् ।
विनोपदेशं यो धत्ते तस्य गुह्या पराङ्मुखी ॥ १६३० ॥
विधानाद् ध्रियमाणस्तु सर्वसिद्धिं प्रयच्छति ।
अविधानाद् धृतो देवि तमेवात्ति न संशयः ॥ १६३१ ॥
यदि कर्तुं न शक्नोति न्यासमेनं दिने दिने ।
पर्व लक्ष्यीकृत्य कुर्याच्चतुर्दश्यष्टमीमुखम् ॥ १६३२ ॥
तत्राप्यशक्तः कुर्वीत शारदीयार्हणादिने ।

कर्तुमेतदशक्तोऽपि भूर्जपत्रे विलिख्य हि ॥ १६३३ ॥
भुजे बध्नीत वा यन्त्रपीठवत् परिपूजयेत् ।

न्यास का उपदेशग्रहण एवं अनुष्ठान विधि-साधक शुभ दिन में गुरु के मुख से इस न्यास का उपदेश ग्रहण कर और प्रयत्नपूर्वक गुरु को स्वर्ण रत्न वस्त्र आदि से सन्तुष्ट कर इसको चतुर्दशी अथवा अष्टमी तिथि को धारण करे । गुरु के उपदेश के बिना जो इसको धारण करता है परमेश्वरी गुह्यकाली उससे पराङ्मुख हो जाती है । विधिपूर्वक धारण किया जाने वाला यह न्यास समस्त सिद्धियों को देता है । हे देवि! बिना विधान के धारण किया गया यह न्यास उसी (धारण करने वाले को ही) खा जाता है । इसमें सन्देह नहीं । साधक यदि इस न्यास को प्रतिदिन नहीं कर सकता तो चतुर्दशी अष्टमी और पर्वों के दिन इसको करे यदि इस प्रकार भी करने में समर्थ न हो तो शारदीय नवरात्र में इसे करे । यदि यह भी करने में अशक्त हो तो भोजपत्र पर इसे लिखकर भुजा में धारण करे तथा यन्त्रपीठ की भाँति इसकी पूजा करे ॥ १६२९-१६३३- ॥

[महाषोढान्यासस्य माहात्म्यम्]

यत्रैष लिखितस्तिष्ठेन्न्यासोऽयं परमेश्वरि ॥ १६३४ ॥
न तत्र मारी दुर्भिक्षं रोगशोकौ तथा न च ।
न चापि ग्रहजा पीडा काश्चिदप्यापदो न च ॥ १६३५ ॥
भूतप्रेतावेशजन्या नैवोपद्रवराशयः ।
त्रिविधोत्पातशान्तिश्च वह्न्यवग्रहनाशनम् ॥ १६३६ ॥
आधिक्यं मङ्गलानां हि तस्य गेहे प्रजायते ।
नित्यमैश्वर्यवृद्धिः स्यात् पुत्राणामायुषस्तथा ॥ १६३७ ॥
भूपतिर्वश्यतामेति जायन्ते सुखसम्पदः ।
किं किं न साधयत्येष लिखितः स्थापितो गृहे ॥ १६३८ ॥
तस्माद् देवि प्रयत्नेन कर्तव्योऽयं दिने दिने ।
महानिर्वाणषोढाख्यो न्यासः परमशोभनः ॥ १६३९ ॥
न्यासानामेष सर्वेषां चूडामणिरिति स्मृतः ।
कुर्वन्नमुं सुरेशानि सर्वचूडामणिर्भवेत् ॥ १६४० ॥
त्रिसत्यपूर्वं ते वच्मि न्यासोऽन्योऽस्य समो नहि ।
इति षोढात्रयं प्रोक्तं विविच्य तव पार्वति ॥ १६४१ ॥
उत्तरोत्तरतः श्रेष्ठं शम्भुना स्वयमीरितम् ।
महानिर्वाणषोढाख्या सर्वशेषे त्वयेरिता ॥ १६४२ ॥
न तत्तुल्ये स्मृते आख्यास्यातो यद्यप्यनुत्तमे ॥ १६४३ ॥
पापतृणारणिरियं सिद्धिरत्नमहाखनिः ।
भोगेच्छाकल्पलतिका दुःखशोकौघकर्तनी ॥ १६४४ ॥

यदीच्छसे(सि?)गुह्यकालीं सम्मुखीकर्तुमञ्जसा ।
तदा निर्वाणषोढां त्वं कुर्वीथा भक्तिभाविता ॥ १६४५ ॥

॥ इत्यादिनाथविरचितायां पञ्चाशत्साहस्र्यां श्रीमहाकालसंहितायां
न्यासोद्धारप्रस्तावे षोढान्यासोद्धारो नाम
नवमः पटलः ॥ ९ ॥

◆

महाषोढ़ान्यास का माहात्म्य—हे परमेश्वरि! जहाँ यह न्यास लिखकर रखा होता है वहाँ महामारी दुर्भिक्ष रोग और शोक नहीं होते । ग्रहों से उत्पन्न पीड़ा और अन्य आपत्तियाँ भी यहाँ नहीं आतीं । भूतप्रेत के आवेश से जन्य उपद्रव भी नहीं होते । इस यन्त्र से तीनों प्रकार के (= आधिदैविक आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक) उत्पातों की शान्ति तथा अग्नि-अवग्रह (= बाधा) का नाश होता है । उसके घर में शुभ कार्यों मङ्गलों की अधिकता होती है । वहाँ प्रतिदिन ऐश्वर्य पुत्रों और आयुष्य की वृद्धि होती है । राजा वश में हो जाता है । सुख-सम्पत्तियाँ आती है। यह न्यास लिखित एवं घर में स्थापित होने पर क्या-क्या सिद्ध नहीं करता । इसलिये हे देवि! इसको प्रतिदिन करना चाहिये । महानिर्वाण षोढा नामक यह न्यास परमशोभन है । यह समस्त न्यासों का चूडामणि कहा गया है । हे सुरेशानि! इसको करने वाला सबका चूडामणि हो जाता हैं । मैं तीन बार सत्य कह रहा हूँ इसके समान कोई दूसरा न्यास नहीं है। हे पार्वति! इस प्रकार विवेचनापूर्वक तुमको तीन षोढान्यास बतलाया गया । शिव ने स्वयं (इनमे से) उत्तरोत्तर न्यास को श्रेष्ठ कहा है। सबके अन्त में तुमको महाषोढान्यास बतलाया । यद्यपि शेष दो भी उत्तम न्यास हैं तथापि इसके तुल्य नहीं हैं । यह न्यास पापरूपी तृण के लिये अरणि है । सिद्धिरूपी रत्न की खान है । भोग और इच्छा की कल्पलता है । दुःख एवं शोक के समूह को काटने वाला है । यदि तुम गुह्यकाली को शीघ्र प्रत्यक्ष करना चाहती हो तो भक्तिभावपूर्वक इस निर्वाण-षोढान्यास को करो ॥ १६३४-१६४५ ॥

॥ इस प्रकार आदिनाथविरचित पचास सहस्र श्लोकों वाली महाकालसंहिता के 'षोढान्यासोद्धार' नामक नवम पटल की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ९ ॥

◆

परिशिष्टम् (१)

उपमन्त्राः

१. **दन्तधावनमन्त्रः (६।७-८)**
आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च ।
ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च तन्नो धेहि वनस्पते ॥ क्लीं फट् ।

२. **मुखप्रक्षालनार्थं जलादानमन्त्रः (६।१०)**
ओं जूं सः ।

३. **आचमनमन्त्रः (६।११)**
ऐं अमृताय हूं फट् ।

४. **शिरोमार्जनार्थं गृहीतजलाभिमन्त्रणमन्त्रः (६।१४)**
ग्लूं वरुणाय वषट् ।

५. **शिरोमार्जनमन्त्रः (६।१५)**
ओं चित्कलायै नमः, ह्रीं अमृतायै नमः, फ्रें गुह्यकाल्यै नमः ।

६. **गुरुध्यानम् (६।१७-१८) अनन्तरं वक्ष्यमाणस्य गुरुमनोः निर्देशः (६।१९)**
ओं परम गुरवे नमः ।

७. **गुरोर्नमस्कारमन्त्रः (६।२०)**
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

८. **देव्या आज्ञाग्रहणमन्त्रः (६।२४)**
देवि श्रीगुह्यकालि त्वं देह्यनुज्ञां महेश्वरि ।
प्रयतिष्ये निदेशात्ते योगक्षेमार्थसिद्धये ॥

९. **मन्त्रस्नानप्रयोगः (६।३१-३४)**
(क) ओं अस्य गुह्यकालीपूजाङ्गस्नानस्य कात्यायनऋषिः प्रतिष्ठाच्छन्दः वारुणी गुह्यकाली देवता मन्त्रस्नाने विनियोगः ।
(ख) गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥
(ग) गुह्यकालीं देवीं तर्पयामि नमोऽस्तु ।

१०. तान्त्रिकतिलकधारणमन्त्रस्य (ऋष्यादिनिर्देशः) विनियोगः (६।४८-५०)

तिलकधारणमन्त्रस्य कालाग्निरुद्रसंवर्तनाचिकेतस ऋषयः पंक्तिश्छन्दः पञ्चमहाभूतानि देवता फली बीजं हूं शक्तिः क्रों कीलकं महापातकसम्भूतपापनाशे विनियोगः ।

११. विभूत्यभिमन्त्रणमनुः (६।५२-५६)

ओं ऐं यं रं लं वं अग्नितत्त्वाय हूं फट् वायुतत्त्वाय हूं फट् आपतत्त्वाय हूं फट् पृथिवीतत्त्वाय हूं फट् शं षं सं हं क्षं पञ्च महाभूतान्येकादशेन्द्रियाणि पावय पावय अशेषदुरितं शमय शमय भस्म तुभ्यं ह्रीं फट् स्वाहा ।

१२. विभूत्या शिरोमार्जनमन्त्रः (६।५८-६०)

हौं सदाशिवाय नमः, ह्रीं ह्लैं नन्दिन्यै नमः, श्रीं चेतनायै नमः, हूं हूं नादबिन्दुरूपिण्यै नमः, ख्फ्रें गुह्यकाल्यै नमः ।

१३. (क) भस्मधारणमन्त्रः (६।६१-६३)

ऐं आं हौं रुद्र एवाहं भूयासम्, वज्रकवचमेवेदं भूयात् तत् सत् फट् नमः स्वाहा ।

(ख) भस्मालोडनमन्त्रः (६।६५-६६)

ओं ह्रीं फ्रें प्रचण्डकरालिनि स्वाहा ।

(ग) भस्मनि जलमिश्रणमन्त्रः (६।६८-७१)

ओं ऐं ह्रीं श्रीं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें ख्फ्रें एह्येहि भगवति गुह्यकालि सान्निध्यमत्रावेशय त्वामहं दधे तेनाहमामुक्तो वज्रतनुर्विरजाश्च भूयासं आं जूं स्हौः फट् फट् फट् स्वाहा ।

(घ) भस्मधारणमन्त्रः (६।७३-७९)

फ्रें गुह्यकाल्यै नमः इति ललाटे तिलकधारणम् । हूं कराल्यै नमः इति वक्षसि । ह्रीं घोरनादायैः नमः इति नाभौ । स्फ्रों विकटदंष्ट्रायै नमः इति बाहुमूले । क्लीं अनङ्गाकूलायै नमः इति कफोणौ । छ्रीं कपालिन्यै नमः इति मणिबन्धे । क्रों ज्वालामालिन्यै नमः इति गले । स्त्रीं चामुण्डायै नमः इति पार्श्वे । स्हौः भैरव्यै नमः इति कटौ । ख्फ्रें सिद्धिविकराल्यै नमः इति व्यापके ।

१४. चन्दनस्य भूमिप्रक्षेपमन्त्रः (६।८४-८५)

ओं ईं ज्ञानाय नमः, ओं ईं इच्छायै नमः, ओं ईं क्रियायै नमः, ओं ईं शक्त्यै नमः, ओं ईं कामाय नमः ।

१५. चन्दनेन तिलकधारणमन्त्रः (६।८७-८८)

ह्रीं क्लीं हूं सर्वजनमोहिनि सर्ववशङ्करि मां रक्ष रक्ष फट् स्वाहा ।

१६. तान्त्रिकसन्ध्यावन्दनविधिः (६।८९-१३१)

(इह शूद्रस्याप्यधिकार इति वैदिकसन्ध्यावन्दनतो विशेषः) ।

(क) प्रथमं प्राणायामत्रयं तन्त्रोक्तरीत्या कर्तव्यम् ।

(ख) पुनः अष्टादश वारं मूलमन्त्रं (जप्यमन्त्रं) जपन् शिरो मार्जनं कुर्यात् ।

(ग) पुनः आचमनं समन्त्रं वारत्रयं कुर्यात्—ऐं विद्यातत्त्वाय स्वधा, ऐं शिवतत्त्वाय स्वधा, ऐं शक्तितत्त्वाय स्वधा इत्येतैः मन्त्रै : ।

(घ) पुनः नासापुटादि स्पर्शः ।

(ङ) आत्मशुद्धिमन्त्राः—ओं विजयायै नमः, ओं अपापायै नमः, ओं महालक्ष्म्यै नमः, ओं कालकर्ण्यै नमः, ओं सर्वसिद्धिदायै नमः, ओं भूतावेशिन्यै नमः, ओं आनन्ददायै नमः, ओं कालरात्र्यै नमः ।

(च) पुनः अघमर्षणमन्त्रः—क्ष्रौं चण्डघण्टायै फट् । पुनः चन्दनाक्षतपुष्पादिसमन्वितं सलिलाञ्जलिमादाय मूलमन्त्रमुच्चार्यार्घो देयः ।
अर्घदानमन्त्रः—ऐं खफ्रें हस्फ्रें हस्खफ्रें श्रीगुह्यकालि एष तेऽर्घः स्वाहा ।

(छ) पुनः सप्तधा मूलमन्त्रस्य जपः कार्यः ।

(ज) पुनः उपस्थापनमनेन मन्त्रेण—ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें खफ्रें हस्फ्रें हस्खफ्रें हस्खफ्रैं क्षह्लम्ल्व्र्यऊं गुह्यकालीं भगवतीमुपतिष्ठे । क्रौं क्ष्रौं फ्रौं स्फ्रौं क्रों स्हौः ग्लौं क्ष्रह्लीं ज्रक्रीं क्ष्रह्लूं सह्लौं क्षसह्लम्ल्व्र्यऊं फट् नमः स्वाहा ।

(झ) देव्या द्वादशाञ्जलिदानमन्त्राः—ओं चण्डायै नमः, ओं कराल्यै नमः, ओं भ्रामर्यै नमः, ओं ललितायै नमः, ओं ज्वालिन्यै नमः, ओं अघोरायै नमः, ओं शूलिन्यै नमः, ओं जयमङ्गलायै नमः, ओं कुरुकुल्लायै नमः, ओं फेत्कारिण्यै नमः, ओं कालसङ्कर्षिण्यै नमः, ओं गुह्यकाल्यै नमः ।

(ञ) पुनः अङ्गन्यासः कार्यः । तद्यथा—ओं ऐं हृदयाय नमः, ओं ह्लीं शिरसे स्वाहा, ओं श्रीं शिखायै वषट्, ओं हूं कवचाय हूं, ओं स्त्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्, ओं फ्रें अस्त्राय फट् ।

(ट) क्षणं देव्याः ध्यानं विधाय दशधा तत्तन्मन्त्राधिष्ठात्र्याः गायत्रिमन्त्रजपः कार्यः । एतस्य पञ्चाशद्वारं शतवारं वा जपं कर्तुमर्हति कश्चित् । जपं समर्प्य स्तुत्वा नत्वा विसर्जयेत् ।

(ठ) पुष्पाक्षतचन्दनानि आदाय सूर्यायार्घं दद्यात् । अर्घदानमन्त्रस्तु—ह्लां ह्लीं सः सूर्यभट्टारकाय एष ते अर्घः स्वाहा ।

(ड) पुनः मूलमन्त्रस्य ऋष्यादिकं षडङ्गकं च विधायाष्टोत्तरशतवारं मूलमन्त्रस्य जपं कुर्यात् ।

(ढ) जले यन्त्रं विलिख्य देवीं ध्यात्वा आवाह्य जलमयैरुपचारैः सम्पूज्य मार्तण्डमण्डले तां विचिन्तयन् मूलमन्त्रमुच्चारयेत्, पुनः गुह्यकालीमहं तर्पयामि नमः इति मन्त्रेण पञ्चविंशतिवारं तर्पणं कुर्यात् पुनः

मूलमन्त्रमुच्चार्य सूर्यं पश्यन् पुष्पादिसमन्वितं सलिलाञ्जलिमादाय—ऐं ऐं ऐं ह्रीं फ्रें हूं स्त्रीं ख्फ्रें स्हौः ह्स्ख्फ्रीं ह्स्ख्फ्रूं क्ष्र्स्त्रैं उद्यदादित्यवर्तिन्यै शिवचैतन्यमय्यै प्रकाशशक्तिसहितमार्तण्डभैरवाधिष्ठात्र्यै श्रीगुह्यकालीदेव्यै नमः स्वाहा इति मन्त्रेण तं प्रक्षिप्य विसर्जनं कुर्यात् इति सन्ध्याविधिः ।

सन्ध्याविधिं समाप्य पूजार्थं करणीये विधौ समागतोपमन्त्राणां निर्देशः

१७. पादप्रक्षालनजलाभिमन्त्रणमन्त्रः (६।१३४)

ओं गन्धोदके हूं फट् ।

१८. पादप्रक्षालनमनुः (६।१३५)

ऐं ह्रीं क्लीं स्वाहा ।

१९. आचमनमन्त्रः (६।१३८-१३९)

ओं ह्रीं फ्रें क्लीं हूं क्रों स्त्रीं त्रितत्त्वज्ञानरूपिणि मानसिकवाचिककायिकवृजिनानि संशमयाशेषविकल्पान्यपनय ऐं श्रीं आं क्ष्रूं क्रों स्वाहा ।

२०. शिखाबन्धनमन्त्रः (६।१४०-१४२)

ऐं ग्लूं ब्लूं चण्डातिचण्डमहाचण्डचण्डचण्डोग्रकापालिनि मां रक्ष रक्ष सर्वप्रमादेभ्यो हूं हूं फट् फट् स्वाहा ।

२१. द्वारदेवतापूजा (६।१४३)

ओं द्वारदेवताभ्यो नमः (?) ।

२२. पूजासाक्ष्याय मन्त्रः (६।१४५-४७)

ओं देवि मे प्राकृतं चित्तं पापाक्रान्तमभूत्सदा ।
तन्निःसारय चित्तात् त्वं पापं फट् फट् च ते नमः ॥
सूर्यः सोमो यमः कालो महाभूतानि पञ्च च ।
एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नव साक्षिणः ॥ हूं फट् ।

२३. देव्यधिष्ठानविनियोगः (६।१५२-१५४)

ओं अस्य श्री देव्यधिष्ठानमन्त्रस्य आत्रेय ऋषिः जगतीछन्दः सर्वे देवाश्च देवताः ऐं बीजं ह्रीं शक्तिः क्रों कीलकं देव्यधिष्टाने विनियोगः ।

२४. देव्यधिष्ठापनमन्त्रः (६।१५५-१५९)

ओं ऐं आं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं फ्रें ख्फ्रें ह्स्ख्फ्रें ह्स्फ्रें ह्स्फ्रें एह्येहि भगवति गुह्यकालि पूजालयं प्रविश दृष्टिमर्चोपकरणे सन्निवेशय सर्वोपद्रवेभ्यः मां रक्ष रक्ष त्वय्यधिष्ठितायामहं पूजामारभे फ्रें क्रों क्रौं फट् स्वाहा ।

पुनः बद्धाञ्जलिः अधोलिखितान् पञ्च श्लोकान् पठेत् (६।१६१-१६५)

गुह्यकालि परेशानि सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि ।
अत्राधिष्ठानमाधेहि परिवारगणैः सह ॥

यथाशक्ति यथालाभं त्वदर्थमुपकल्पिते ।
दृष्टिं निवेशयेशानि पूजोपकरणेऽखिले ॥
जलेऽनुलेपने पुष्पे धूपे दीपे बलौ तथा ।
नैवेद्येऽपि च ताम्बूले पूजोपकरणेऽखिले ॥
अधिष्ठितायां त्वय्यम्ब विघ्नाः नक्ष्यन्ति सर्वशः ।
भूतानि विद्रविष्यन्ति मम रक्षा भविष्यति ॥
मनोरथाश्च मे सर्वे सेत्स्यन्ति त्वत्प्रसादतः ।
पूजा च सफला देवि भवित्री त्वत्कृपावशात् ॥

२५. गुह्यकाल्याः पूजासम्भारवस्तूनामुपचाराणां विनियोगः (६।१८१-१८३)

ओं अस्य श्रीगुह्यकालीसम्भारवस्तुनः जमदग्निऋषिः प्रतिष्ठाच्छन्दः उत्तानाङ्गिरा देवता रं बीजं हूं शक्तिः ह्रीं कीलकं पूजासम्भारसामग्रीशोधने विनियोगः ।

२६. भूमिशुद्धिमन्त्रः (६।१८४)

ह्रीं श्रीं छ्रीं फ्रें ऐं रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा ।

२७. भूम्यभिमन्त्रणमन्त्रः (६।१८५-१८६)

ओं क्लीं श्रीं वाराहि पवित्रा भव भूमे हूं फट् स्वाहा ।

२८. स्वासनशुद्धिमन्त्रः (६।१८७-१८८)

ओं ऐं ह्रीं फ्रें श्रीं स्त्रीं कामपीठाय कामसम्भवाय कामार्हते हूं फट् नमः ।

२९. पूजायाः सर्वोपकरणानां शुद्धिमन्त्रः (६।१८९-१९०)

आं ऐं ओं क्लीं ह्रीं श्रीं हूं फ्रें ग्लूं क्ष्रौं पवित्रोदकाय फट् फट् नमः ।

३०. कायवाक्चित्तशोधनमन्त्रः (६।१९२-१९४)

ओं ऐं आ ई ह्रीं ग्लूं श्रीं हूं सौः क्षौं स्हौः फ्रें ख्फ्रें कायं वाचं चित्तं मे शोधयाशेषवृजिनान्यपनय स्वाहा ।

३१. सकलसाधारणासनशुद्धिमन्त्रः (६।१९८)

ओं हौं फ्रें ख्फ्रें फ्रों ब्लौं अशेषमासनं पावय फट् स्वाहा ।

पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयानां शुद्धिः जलशुद्धिप्रयुक्ता (६।१९९)

३२. जलशुद्धिमन्त्रः (६।२००-२०१)

ओं वरुणदेवताय जलाय हूं फट् ।

३३. अर्घदानमन्त्रः (६।२०४)

एषोऽर्घः ओं गुह्यकाल्यै स्वाहा ।

३४. आचमनीयदानमन्त्रः (६।२०६)

इदमाचमनीयं ओं गुह्यकाल्यै स्वधा ।

३५. मधुपर्कशोधनमन्त्रः (६।२०६-२०७)

ऐं आं ह्रीं फ्रें फ्रीं फ्रूं क्षौं स्हौः सौः हूं क्रें ह्स्ख्फ्रें पावय पावय हूं फट् स्वाहा ।

३६. मधुपर्कदानमन्त्रः (६।२०९)

एष मधुपर्कः ओं गुह्यकाल्यै स्वधा ।

३७. वस्त्रशुद्धिमन्त्रः (६।२२१-२२३)

ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें क्लूं ब्लूं ब्लौं र्क्ष्रीं क्ष्र्ह्रीं ज्र्क्रीं मोहिनि वशिनि वस्त्रं पवित्रय फट् नमः स्वाहा ।

३८. भूषणशुद्धिमन्त्रः (६।२२६-२२७)

आं क्रों क्षौं क्रौं ग्लूं ब्लूं ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल फट् स्वाहा ।

३९. चन्दनशुद्धिमन्त्रः (६।२३१-२३२)

ह्रीं गन्धर्वदैवताय चन्दनानुलेपनाय हूं फट् ।

४०. पुष्पशुद्धिमन्त्रः (६।२४३-२४६)

ओं ह्रीं श्रीं हौं फ्रें लक्ष्मीदैवताय पुष्पाय पुष्पस्रजे पत्राय पत्रस्रजे जलजाय स्थलजाय सगन्धाय निर्गन्धाय नानारूपाय हूं फट् ।

४१. धूपशुद्धिमन्त्रः (६।२५६-२५८)

ऐं क्लीं श्रीं ब्लैं ब्लौं वनस्पतिदैवताय दारुनिर्यासाय अप्सरोदैवताय सत्त्वाङ्गसम्भवाय हूं फट् ।

४२. दीपशुद्धिमन्त्रः (६।२६७-२६८)

ओं ऐं क्षौं रं वह्निदैवताय दीपाय घृताक्ताय (तैलाक्ताय वा) हूं फट् ।

४३. अञ्जनशुद्धिमन्त्रः (६।२७५-२७६)

ऐं ओं ह्रीं ब्रीं क्लीं श्रीं स्त्रीं फ्रें क्ष्रौं कह कह धक धक हूं फट् नमः स्वाहा ।

४४. नैवेद्यशुद्धिमन्त्रः (६।२९८-२९९)

ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं फ्रें हूं ग्लूं क्रौं नैवेद्यानि शोधय शोधय हूं फट् नमः स्वाहा ।

४५. पुनराचमनीयशुद्धिस्तु (६।३००)

उक्ताचमनीयशुद्धिमन्त्रेणैव कार्या ।
‘नैवेद्यानन्तरं देयमित्येतस्य विनिश्चयः ।’ ३०१ ।

४६. सिन्दूरशोधनमन्त्रः (६।३२४-३२५)

ऐं क्लीं श्रीं स्त्रीं फ्रें ओं शचीदैवताय सिन्दूराय हूं फट् स्वाहा ।

४७. अलक्तकशुद्धिमन्त्रः (६।३२६)

अं अलक्तकाय फट् ।

४८. ताम्बूलशुद्धिमन्त्रः (६।३३५-३३७)

ओं ऐं ह्रीं श्रीं स्त्रीं क्लीं ग्लूं हौं विद्याधरदैवताय रागहेतुकाय ताम्बूलाय हूं फट् ।

४९. पादुकाशुद्धिमन्त्रः (६।३३८-३३९)

ओं ग्लौं पादुकाभ्यां सोमदैवताभ्यां हूं फट् स्वाहा ।

५०. छत्रशुद्धिमन्त्रः (६।३४२-३४४)

ओं ऐं आं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं फ्रों फ्रौं फ्रें ब्लूं ख्फ्रें स्हौं छत्राय इन्द्रदैवताय वरुणाधिदैवताय शोधय शोधय पावय पावय हूं फट् स्वाहा ।

५१. चामरशुद्धिमन्त्रः (६।३४९-३५०)

ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें ख्फ्रें क्रों क्ष्खूं ख्फ्रक्षूं सुरभिदैवताय चामराय हूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

५२. व्यजनशुद्धिमन्त्रः (६।३५३-३५४)

ओं श्रीं क्लीं ईं क्रीं क्षूं ख्फ्रक्षैं ह्रौं ह्रां वायुदैवताय व्यजनाय हूं फट् स्वाहा ।

५३. मालाशुद्धिमन्त्रः (६।३६९-३७०)

ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें क्लूं फ्रें स्हौः सौः क्ष्रों स्रजं पावय पावय हूं फट् स्वाहा ।

५४. मद्यस्य तदनुकल्पस्य च शुद्धिमन्त्रः (६।४४४-४४९)

ओं ऐं आं ह्रीं क्लीं श्रीं हूं क्रों फ्रें फ्रैं छ्रीं स्हौः सौः (अमा) ब्लूं क्ष्रौं ख्फ्रें ह्स्फ्रें (व्यय) ह्स्ख्फ्रें क्ष्र्ह्रीं ज्र्क्रीं क्ष्र्ह्रूं क्षह्म्लव्र्यऊं डाकिनीदैवताय सुराबलये निर्ऋतिदैवताय मांसबलये शुद्धिं देहि देहि दोषं नुद नुद ओं ओं हूं हूं फट् फट् स्वाहा ।

५५. नैवेद्याङ्गसकलवस्तूनां शुद्धये मन्त्रः (६।४५४-४५६)

ओं ऐं ऐं ऐं ह्रीं क्लीं हूं स्त्रीं श्रीं फ्रें क्रों क्रौं क्रीं ग्लूं ग्लौं (रुचि) भ्रीं क्ष्रौं र्क्ष्रीं क्ह्लश्रीं ख्फ्रें ज्र्क्रीं क्ष्र्ह्रीं (फ्म्रग्लऊं ब्लहतह्स चर्मके ?)

अथवा ऋक्षम्लसह्छ्रूं स्हक्ष्लमह्ज्रूं (इति निर्णेयम्) रम्लव्रीं कम्लव्रीं हूं फट् फट् फट् स्वाहा ।

५६. (क) कामपीठासनविधिः—तत्र ऋष्यादिनिर्देशः (६।४५८-४६०)

ओं अस्य कामपीठोपवेशनस्य नारायणऋषिः प्रतिष्ठाच्छन्दः कूर्मरूपी विष्णुः देवता पूजार्थं कामपीठोपवेशने विनियोगः ।

(ख) विघ्नापसारणविधिः (६।४६२-४६२)

ओं क्षूं दारय दारय विघ्नं हूं फट् इति मन्त्रेण सिद्धार्थाक्षतान् विकिरेत् । पार्ष्णिघातत्रयेण भौमान् विघ्नान् तालत्रयेण अन्तरिक्षगान् विघ्नान् दिव्येक्षणेक्षणैः दिव्यान् विघ्नानपसारयेत् ।

(ग) आसनशुद्धिमन्त्रस्तत्र (६।४६३-४६४)

१. पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता ।
त्वं च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम् ॥

२. (६।४६५-४७१) ओं ऐं लं मां धारय धारय आसनं पावय पावय पवित्रे वैष्णवि हूं फट् स्वाहा इति पठित्वा ।

पुनः—ओं आधारशक्तिकमलासनाय नमः ओं ऐं कागपीठाय नमः अं फट् इति मन्त्रं पठन् तत्रोदङ्मुख उपविशेत् ।

पुनः—वामभागे गुरुभ्यो नमः, दक्षभागे गणेशाय नमः, सम्मुखे गुह्यकाल्यै नमः इति पठित्वा पुष्पं गृह्णीयात् तच्च कराभ्यां मर्दयित्वा उपनासं समाघ्राय वामभागे वक्ष्यमाणं मन्त्रं पठन् तत्पुष्पं दूरेऽनवललोकयन् प्रक्षिपेत् मन्त्रस्तु 'ओं ह्रीं हूं फट् फट् फट् स्वाहा ।'

५७. (क) भूतशुद्धिरत्र (६।४७२-४८८)

हृदयकमलः ज्वलद्दीपशिखाकृतिमात्मानं सुषुम्णा नाडीमार्गेण ठौं इत्युच्चरन् शिरःस्थिते सहस्रदलमध्यस्थे परमात्मनि संयोजयेत् । पुनः लिङ्गशरीरप्रकृतीनि पञ्चभूतानि तत्र तत्र विलीनानि तत्तद्रूपैर्विचिन्त्य देहभूमिं लिङ्गपीठभुवि वारिणि, देहजलं हृत्तेजसि, तत्तेजः मुखसंस्थे समीरणे तं वायुं भालगगने च विचिन्तयेत् । पुनः जीवात्मानं परमात्मनि संयोजयेत् । बुद्ध्यहङ्कारप्रभृतीन् सर्वान् तत्र लीनान् विभाव्य वामनासापुटेन समीरणं पूजयित्वा 'यं' इति धूम्र वर्णं विभावयेत् पुनः 'यं' बीजं पञ्चाशद्वारमुच्चरेत् तदुत्पन्नेन वायुना शुष्कं देहं विचिन्तयेत् पुनः दक्षनासापुटेन तं वायुं रेचयेत् ।

सुषुम्णानाडीमार्गेण सर्वशः वायुमुत्तोल्य 'रं' बीजं रक्तवर्णं विभाव्य पञ्चाशद्वारमुच्चरेत् देहं तेन दग्धं विचिन्तयेत् पुनः पापात्मकं शरीरं भस्मरूपं विभाव्य वामनासापुटेन वायुं रेचयेत् ।

पुनः वामनासापुटेन वायुमुत्तोल्य सहस्रदलमध्यगं चन्द्ररूपमर्थात् शुभ्रं निष्कलुषं परमात्मानं विचिन्त्य 'वं' इति बीजं पञ्चाशद्वारमुच्चरेत् तच्चन्द्रतश्च सुधायाः वृष्टिर्भवतीति परिकल्प्य तया देहमाप्लावयेत् । ततः 'लं' बीजमुच्चरन् शरीरशुद्धिं कुर्यात् ।

पुनः पुरा लीनीकृतानि पञ्चभूतानि यथास्थानं स्थापयित्वा ब्रह्मबीजं 'ठौं' इत्युच्चरन् अहङ्कारादितत्त्वैः सह परमात्मनः जीवात्मानं समाकृष्य हृदम्बुजे स्थापयेत् । पुनः देवीरूपमात्मानं चिन्तयेत् इयं भूतशुद्धिः महापापवृन्दं नाशयति ।

(ख) भूतापसारणमन्त्रः (६।४८९-४९३)

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः ।
ये भूताः विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥

वेतालाश्च पिशाचाश्च राक्षसाश्च सरीसृपाः ।
अपसर्पन्तु ते सर्वे कालीपूजां करोम्यहम् ॥
(इति पौराणिकमन्त्रः)

ऐं ह्रीं क्षूं स्हौः हूं ढ्रीं सौः क्ष्रौं ख्फ्रें ह्स्ख्फ्रें पिशाचभूतवेतालराक्षसान् उत्सारय उत्सारय यावत् पूजां करोम्यहम् हूं फट् स्वाहा ।

इत्थं भूतशुद्धिं विधाय तत्तन्मन्त्रषडङ्गन्यासं कुर्यात् (६।४९४)

५८. पुनरत्र प्राणायामविधिः (६।४९५-४९८)

मूलमन्त्रं षोडशवारं जपित्वा वामनासापुटेन वायुं बलेन पूरयेत् पुनस्तन्मन्त्रस्य चतुष्षष्ट्यावृत्त्या व्वायुं विकुम्भयेत् पुनस्तन्मन्त्रस्य द्वात्रिंशदावृत्त्या दक्षनासापुटेन सकलं वायुं रेचयेत् । एवं प्राणायामः सम्पद्यते । अयं च प्राणायामः वारत्रयं करणीयः । ततोऽधिकं क्रियते चेत् फलाधिक्यं स्यात्—इत्यपि स्फुटमिह निर्देशः ।

५९. मातृकान्यासः (६।४९९-५०२)

एतस्य करणे सति फलाधिक्यं जायते अकरणे तु प्रत्यवायो न भवति—इति निर्देशः । यद्यप्यस्य बहवो भेदास्तथापि प्रकृतिरूपः शुद्धः मातृकान्यासः प्रथमं निर्दिश्यते पश्चात् सकलाः विकृतिरूपास्ते निर्दिष्टाः भवेयुः ।

(क) तत्रैतन्न्यासविनियोगः (६।५०२-५०५)

अस्य मातृकाख्यन्यासस्य ब्रह्मा ऋषिः गायत्रीच्छन्दः सरस्वती मातृका देवता हलो बीजानि स्वराः शक्तयः अमुकदेवतामन्त्राङ्गत्वेन मातृकान्यासे विनियोगः ।

(ख) मातृकान्यासस्य षडङ्गन्यासः (६।५०५-५१०)

१. ब्रह्मणे ऋषये नमः इति शिरसि ।
२. गायत्र्यै छन्दसे नमः इति मुखे ।
३. हल्भ्यो बीजेभ्यो नमः इति गुह्ये ।
४. श्रीमातृकासरस्वत्यै नमः इति हृदि ।
५. स्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः इति पदयोः ।
६. ओं ब्रह्मणे ऋषये नमः, ओं गायत्र्यै छन्दसे नमः, ओं मातृकासरस्वत्यै देवतायै नमः, ओं हल्भ्लो नमः, ओं स्वरेभ्यः शक्तिभ्यौ नमः इति सकलशरीरे न्यासः ।

मम श्रीगुह्यकालीमन्त्राङ्गत्वेन वर्णन्यासे विनियोगाय नमः—इति करसम्पुटयोर्न्यस्येत् ।

(ग) अस्याःषडङ्गन्यासः (६।५१०-५१७)

१. अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः ।
२. इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसे स्वाहा ।

३. उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट् ।

४. एं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हूं ।

५. ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रत्रयाय वौषट् ।

६. अं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं अः अस्त्राय फट् इति करं भ्रामयित्वा सर्वाङ्गे न्यस्येत् ।

(घ) मातृकाध्यानम् (६।५१९-५२१)

मातृका श्वेतदेहाभा त्रिनेत्रा शशिशेखरा ।
पञ्चाशद्वर्णरचितमुखबाहुशिरःपदा ॥
चतुर्भुजा वामदोर्भ्यां सुधाकुम्भं च पुस्तकम् ।
दधती दक्षहस्ताभ्यां मुद्रामक्षस्रजं तथा ॥
तुङ्गपीनस्तनी स्मेरमुखी श्वेताम्बुजासना ।
ध्यात्वेत्थं मानसैरेवोपचारैः परिपूज्य च ॥

एतस्याः मानसोपचारपूजा (६।५२१-५२२)

(क) अकारादिक्षकारान्तान् वर्णान् बिन्दुसमन्वितान् ।

(ख) अङ्गेषु वक्ष्यमाणेषु विन्यसेदक्षरान् क्रमात् ॥

पुनर्न्यासोऽङ्गेषु निम्ननिर्दिष्टमन्त्रैः (६।५२२-५२९)

१. ललाटम्, २. मुखवृत्तम्, ३. दक्षनेत्रम्, ४. वामनेत्रम्, ५. दक्षकर्णम्, ६. वामकर्णम्, ७. दक्षनासापुटम्, ८. वामनासापुटम्, ९. दक्षगण्डः, १०. वामगण्डः, ११. ओष्ठः, १२. अधरम्, १३. ऊर्ध्वदन्ताः, १४. अधोदन्ताः, १५. मूर्द्धा, १६. जिह्वा, १७. दक्षिणभुजमूलम्, १८. कूर्परः, १९. मणिबन्धः, २०. अङ्गुलीमूलम्, २१. अङ्गुल्यग्रम्, २२. वामभुजमूलम्, २३. वामकूर्परम्, २४. वाममणिबन्धः, २५. वामाङ्गुलीमूलम्, २६. वामाङ्गुल्यग्रम्, २७. दक्षिणपन्मूलम्, २८. दक्षिणजानुमध्यम्, २९. दक्षिणगुल्फकं, ३०. दक्षपादाङ्गुलीमूलम्, ३१. दक्षपादाङ्गुल्यग्रम्, ३२. वामपन्मूलम्, ३३. वामजानुमध्यम्, ३४. वामगुल्फकम्, ३५. वामपादाङ्गुलीमूलम्, ३६. वामपादाङ्गुल्यग्रम्, ३७. दक्षपार्श्वम्, ३८. वामपार्श्वम्, ३९. पृष्ठः, ४०. नाभिः, ४१. जठरः, ४२. हृदयम्, ४३. दक्षांसः, ४४. दक्षककुत्, ४५. वामांसः, ४६. वामककुत्, ४७. दक्षकरः, ४८. (हृदादि ?) वामकरः, ४९. दक्षकरमूलम्, ५०. वामकरमूलम्, ५१. पादयोः, ५२. सर्वाङ्गव्यापकम्—एतानि निर्दिष्टाङ्गानि ।

अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं त्रं ज्ञं ।

एतासां मातृकाणां यथायथमुच्चारणेन यथाक्रममङ्गानां स्पर्शः कार्य इति मातृकान्यासः ।

सामान्यतोमातृकान्यासानां द्वादशभेदाः (६।५३०-५३५)

(१) केवला प्रणवरहिता मातृका
(२) शुद्धा प्रणवयुक्ता
(३) कालातीता आदावन्ते च प्रणवयुक्ता
(४) बिन्दुरहिता नित्या
(५) बिन्दुरहिता प्रणवेनादौ युक्ता ज्ञानदा
(६) बिन्दुरहिता आदावन्ते च प्रणवयुक्ता मोक्षदा
(७) विपरीतक्रमेण क्षकारपुरस्सरा यथोर्ध्वमुक्ता भवति यदि तदा अन्या षडधो निर्दिष्टा जायन्ते मातृकास्तासु प्रथमा स्थूला ।
(८) सूक्ष्मा
(९) स्वप्रकाशा
(१०) अविग्रहा
(११) निर्गुणा
(१२) अमृता चैतासामूर्ध्वदर्शितेष्वङ्गेषु न्यासो भवति । मातृकापदं वर्णावलीं सङ्केतयत्यकारादि क्षकारान्ताम् ।

गुह्यकाल्याः षट् विशेषमातृकाः (६।५४०-५४३)

(१) आदौ ह्रीं मन्त्रं योजयित्वा सिद्धिदा सा जायते ।
(२) अन्ते ह्रीं मन्त्रं योजयित्वा कौलिकी भवति ।
(३) आदौ छ्रीं मन्त्रं योजयित्वा करालिनी भवति ।
(४) अन्ते छ्रीं मन्त्रं योजयित्वा विरजा भवति ।
(५) आदौ फ्रें मन्त्रं योजयित्वा भोगदा जायते ।
(६) अन्ते फ्रें मन्त्रं योजयित्वा विजया जायते न्यासस्तु पूर्ववत् । मातृकाऽत्रापि वर्णावली ।

विराट्न्यासः

विराट्न्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः (६।५४५-५७९)

विराट्न्यासस्य कालाग्नीरुद्रऋषिः अनुष्टुप्छन्दः निर्वाणमातृका देवता ओं बीजं फ्रें शक्तिः नमः कीलकं मुक्तये विनियोगः इति संस्मृत्य हस्ताभ्यामेतदृष्यादिमाचरेत् ।

१. ओं फ्रें अं ज्वालामालिनरसिंहधूमकालीविग्रहाभ्यां नमः इति ललाटे । एवं सर्वत्र आदौ ओं फ्रें इति बीजद्वयं मध्ये अं आं आदि यथाक्रमं निर्दिष्टं मातृकाबीजं पुनः निम्ननिर्दिष्टपञ्चाशन्नरसिंहपञ्चाशत्कालीनामाभ्यां सह नमः इति योजयित्वा तेषु तेषु अङ्गेषु न्यसेत् इति दिङ्निर्देशः ।

पञ्चाशन्नरसिंहास्तु

१. ज्वालामाली
२. कराल
३. भीम
४. अपराजित
५. क्षोभण
६. सृष्टि
७. स्थिति
८. कल्पान्त
९. अनन्त
१०. विरूप
११. वज्रायुध
१२. पराक्रम
१३. प्रध्वंसन
१४. विश्वमर्दन
१५. उग्र
१६. भद्र
१७. मृत्यु
१८. सहस्रभुज
१९. विद्युज्जिह्व
२०. घोरदंष्ट्र
२१. महाकालाग्नि
२२. मेघनाद
२३. मेघनाद
२४. विकट
२५. पिङ्गसट
२६. प्रदीप्त
२७. विश्वरूप
२८. विद्युद्दशन
२९. विदार
३०. विक्रम
३१. प्रचण्ड
३२. सर्वतोमुख
३३. वज्र
३४. दिव्य
३५. भोग
३६. मोक्ष
३७. लक्ष्मी
३८. विद्रावण
३९. कालचक्र
४०. कृतान्त
४१. तप्तहाटक
४२. भ्रामक
४३. महारौद्र
४४. विश्वान्तक
४५. भयङ्कर
४६. प्रतप्त
४७. विजय
४८. सर्वतेजोमय
४९. ज्वालाजटाल
५०. खरनखर
५१. निर्वाण

पञ्चाशत्काल्यस्तु

१. धूमकाली
२. जय
३. उग्र
४. ज्वाला
५. घोर
६. नाद
७. धन
८. कल्पान्त
९. वेताल
१०. कङ्काल
११. नग्न
१२. घोर
१३. घोरतर
१४. दुर्जय
१५. मन्थान
१६. संहार
१७. आज्ञा
१८. रौद्र
१९. तिग्म
२०. कृतान्त
२१. महारात्रि
२२. संग्राम
२३. भीम
२४. शव
२५. चण्ड
२६. रुधिर
२७. घोर
२८. भयङ्कर
२९. सन्त्रास
३०. कराल
३१. विकराल
३२. विभूति
३३. भोग
३४. काल
३५. वज्र
३६. विकट
३७. विद्या
३८. कामकला
३९. दक्षिण
४०. माया
४१. भद्र
४२. श्मशान
४३. कुल
४४. नाद
४५. मुण्ड
४६. सिद्धि
४७. उदार
४८. उन्मत्त
४९. सन्ताप
५०. कपाल
५१. निर्वाण

६१. साधारणपीठन्यासः (६।५८४-६०६)

अस्य पीठन्यासस्य माण्डूकायन ऋषिः प्रतिष्ठाछन्दः कूर्मो देवता क्लीं बीजं ग्रीं शक्तिः पीठन्यासे विनियोगः ।

पीठन्यासस्य षडङ्गन्यासः—

(क) ओं ऐं ह्रीं हृदयाय नमः । ओं ऐं श्रीं शिरसे स्वाहा ।
ओं ऐं क्लीं शिखायै वषट् । ओं ऐं ह्रों कवचाय हूं ।
ओं ऐं क्रों नेत्रत्रयाय वौषट् । ओं ऐं क्रौं अस्त्राय फट् ॥

(ख) हृदयन्यासः—ओं आधारशक्त्यै नमः । ओं मूलप्रकृत्यै नमः । ओं कूर्माय नमः । ओं अनन्ताय नमः । ओं पृथिव्यै नमः । ओं क्षीरसमुद्राय नमः । ओं श्वेतदीपाय नमः । ओं कल्पवृक्षाय नमः । ओं रत्नवेदिकायै नमः । ओं रत्नसिंहासनाय नमः इति हृदि न्यसेत् ।

(ग) ओं धर्माय नमः इति दक्षिणांसे ओं ज्ञानाय नमः इति वामांसे ओं वैराग्याय नमः इति वामोरौ ओं ऐश्वर्याय नमः इति दक्षसक्थिनि ओं अधर्माय नमः इति वदने ओं अज्ञानाय नमः इति वामपार्श्वे ओं अवैराग्याय नमः इति नाभौ ओं अनैश्वर्याय नमः इति दक्षिणपार्श्वे न्यासं कृत्वा पुनः ।

(घ) ओं अं अनन्ताय नमः । ओं उं पद्माय नमः । ओं मं शेषाय नमः । ओं सूर्यमण्डलायानन्तसीम्ने नमः । ओं सोममण्डलाय धर्माय नमः । ओं वह्निमण्डलाय ज्ञानाय नमः । ओं सं वैराग्याय नमः । ओं रं ऐश्वर्याय नमः । ओं तं अधर्माय नमः । ओं लां अज्ञानाय नमः । ओं लौं अवैराग्याय नमः । ओं लीं अनैश्वर्याय नमः । ओं आं आत्मने नमः । औं अं अन्तरात्मने नमः । ओं पं परमात्मने नमः । ओं ह्रीं ज्ञानात्मने नमः, इति हृदये न्यासः कर्तव्यः ।

हृदयकमलस्याष्टकेशरेषु न्यासः
आं प्रभायै नमः इति पूर्वस्यां दिशि
ईं मायायै नमः इति पूर्वदक्षिणयोः कोणे
ऊं जयायै नमः इति दक्षिणयां दिशि
एं सूक्ष्मायै नमः इति दक्षिणपश्चिमकोणे
ऐं विशुद्धायै नमः इति पश्चिमायां दिशि
ओं नन्दिन्यै नमः इति पश्चिमोत्तरकोणे
औं सुप्रभायै नमः इति उत्तरस्यां दिशि
अं विजयायै नमः इति उत्तरपूर्वकोणे
अः क्ष्रौं सर्वसिद्धिप्रदायै वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट् फट् इति कर्णिकासु न्यासो विधेयः ।
हौं सदाशिवमहाप्रेतासनाय नमः
फ्रें श्रीं गुह्यकाल्यासनाय नमः इति ।

६२. गुह्यकाल्याः योगरत्नाख्यो विशेषपीठन्यासः (६।६११-६६३)

(क) अस्य योगरत्नाख्यपीठन्यासस्य विरूपाक्षऋषिरतिजगती छन्दः सदाशिवो देवता फ्रें बीजं ख्फ्रं शक्तिः हसखफ्रें कीलकं पीठन्यासे विनियोगः ।

(ख) ऋष्यादिन्यासो विधेयः ।

(ग) ततोऽस्य षडङ्गन्यासः ।

१. रह्लां रह्लीं रह्लूं रह्लैं रह्लौं हृदयाय नमः ।
२. रफ्रां रफ्रीं रफ्रूं रफ्रैं रफ्रौं शिरसे स्वाहा ।

३. रछ्रां रछ्रीं रछ्रूं रछ्रैं रछ्रौं शिखायै वषट् ।
४. रस्त्रां रस्त्रीं रस्त्रूं रस्त्रैं रस्त्रौं कवचाय हूं ।
५. रप्रां रप्रीं रप्रूं रप्रैं रप्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् ।
६. रक्ष्रां रक्ष्रीं रक्ष्रूं रक्ष्रैं रक्ष्रौं अस्त्राय फट् इति ।

(घ) हृदयन्यासः—

ओं फ्रें महामण्डूकाय नमः । ओं फ्रें कूर्माय नमः । ओं फ्रें अनन्ताय नमः । ओं फ्रें पृथिव्यै नमः । ओं फ्रें रक्तसमुद्राय नमः । ओं फ्रें मांसद्वीपाय नमः । ओं फ्रें रक्तमांसद्वीपाय नमः । ओं फ्रें रक्तबालुकायै नमः । ओं फ्रें चामुण्डामण्डलाय नमः । ओं फ्रें भैरवीप्राकाराय नमः । ओं फ्रें महाश्मशानाय नमः । ओं फ्रें वह्निज्वालायै नमः । ओं फ्रें नारान्त्रतोरणाय नमः । ओं फ्रें मुण्डमालायै नमः । ओं फ्रें कल्पवृक्षाय नमः । ओं फ्रें वेदिकायै नमः । ओं फ्रें रत्नसिंहासनाय नमः इति ।

ओं फ्रें कृतयुगाय नमः इति दक्षिणांसे, ओं फ्रें त्रेतायुगाय नमः इति वामांसे, ओं फ्रें द्वापरयुगाय नमः इति वामोरौ, ओं फ्रें कलियुगाय नमः इति दक्षोरौ, ओं फ्रें ऋग्वेदाय नमः इति वदने, ओं फ्रें यजुर्वेदाय नमः इति वामपार्श्वे, ओं फ्रें सामवेदाय नमः इति नाभौ, ओं फ्रें अथर्ववेदाय नमः इति दक्षपार्श्वे, ओं फ्रें आयुर्वेदाय नमः इति दक्षभुजे, ओं फ्रें धनुर्वेदाय नमः इति वामभुजे, ओं फ्रें गान्धर्ववेदाय नमः इति दक्षपादे, ओं फ्रें अर्थववेदाय नमः इति वामपादे न्यासः कार्यः ।

पुनः ओं फ्रें इन्द्राय नमः इति दक्षेऽसे, ओं फ्रें यमाय नमः इति वामांसे, ओं फ्रें वरुणाय नमः इति वामोरौ, ओं फ्रें कुबेराय नमः इति दक्षोरौ, ओं फ्रें अग्नये नमः इति वदने, ओं फ्रें निर्ऋतये नमः इति वामपार्श्वे, ओं फ्रें वायवे नमः इति नाभौ, ओं फ्रें ईशानाय नमः इति दक्षपार्श्वे न्यासो विधेयः ।

पुनः ओं फ्रें रक्षफ्रछ्रां ब्रह्मणे फ्रें नमः इति दक्षनेत्रे
ओं फ्रें रक्षफ्रछ्रीं विष्णवे फ्रें नमः इति वामनेत्रे
ओं फ्रें रक्षफ्रछ्रूं रुद्राय फ्रें नमः इति दक्षकर्णे
ओं फ्रें रक्षफ्रछ्रैं ईश्वराय फ्रें नमः इति वामकर्णे
ओं फ्रें रक्षफ्रछ्रौं सदाशिवाय फ्रें नमः इति ललाटे न्यासः ।

ओं हूं खफ्रक्लूं असिताङ्गभैरवाय नमः । ओं हूं ह्गलूं रुरुभैरवाय नमः । ओं हूं खफ्रक्लैं क्रोधभैरवाय नमः । ओं हूं ह्गलौं उग्रभैरवाय नमः । ओं हूं खफ्रछ्रीं उन्मत्तभैरवाय नमः । ओं हूं खफ्रह्लीं चण्डभैरवाय नमः । ओं हूं खफ्रछ्रां कपालिभैरवाय नमः । ओं हूं छ्ररक्षह्लैं संहारभैरवाय नमः इति हृदयकमलाष्टदलन्यासो विधेयः ।

पुनः हृदयकमलस्थषोडशदलन्यासः

ओं गक्षटहलक्षचफलक्ष्रूं ज्योतिष्टोमाय क्रतवे स्वाहा । ओं तलठलहक्षथलहक्ष

दललक्ष क्षरहम्लव्रईंऊं अग्निष्टोमाय क्रतवे स्वाहा । ओं दलडक्षवलहसखों वाजपेयाय क्रतवे स्वाहा । ओं मक्षक्रस्हखफ्रछ्रूं षौडश्यै क्रतवे स्वाहा । ओं डलहक्षम्लां चयनाय क्रतवे स्वाहा । ओं फलक्षह्लस्हव्म्र ऊं पुण्डरीकाय क्रतवे स्वाहा । ओं पलहक्षक्षमझ्रहच्रूं राजसूयाय क्रतवे स्वाहा । ओं ह्लसलहसकह्लीं अश्वमेधाय क्रतवे स्वाहा । ओं......(वार्हस्पत्यम्) वार्हस्पत्याय क्रतवे स्वाहा । ओं क्षक्षम्लफ्रचक्षक्षौं विश्वजिते क्रतवे स्वाहा । ओं रलहक्षल्कसहफ्रआं गोमेधाय क्रतवे स्वाहा । ओं रलहक्षक्लस्हफ्रईं नरमेधाय क्रतवे स्वाहा । ओं ग्लरक्षफ्रथरक्लीं सौत्रामणये क्रतवे स्वाहा । ओं रलहक्षकहलह्लस्त्रें छ्रीं अर्धसावित्र्यै क्रतवे स्वाहा । ओं..........(सूर्यक्रान्तकूटम्) सूर्यक्रान्ताय क्रतवे स्वाहा । ओं स्हफ्रसल्कह्लओं वलम्भिदाय क्रतवे स्वाहा । इति

ओं हौं शिवाय नमः स्वाहा । ओं हौं परशिवाय नमः स्वाहा । ओं हौं परमशिवाय नमः स्वाहा । ओं हौं परापरशिवाय नमः स्वाहा । ओं हौं परमेष्ठिशिवाय नमः स्वाहा । ओं हौं परमपरापरशिवाय नमः स्वाहा । ओं हौं परापरपरमेष्ठिशिवाय नमः स्वाहा । ओं हौं सदाशिवाय नमः स्वाहा । इति शिवन्यासो विधेयः ।

ऐं क्रैं धर्माय नमः इति पूर्वस्यां दिशि, ऐं क्लीं ज्ञानाय नमः इति पूर्वदक्षिणकोणे, ऐं दूं वैराग्याय नमः इति दक्षिणस्यां दिशि, ऐं × (ऐश्वर्य) ऐश्वर्याय नमः इति दक्षिणपश्चिमकोणे, ऐं ल्रां यशसे नमः इति पश्चिमायां दिशि, ऐं कें विवेकाय नमः इति पश्चिमोत्तरकोणे, ऐं क्लीं कामाय नमः इति उत्तरस्यां दिशि, ऐं क्लैं मोक्षाय नमः इति पूर्वोत्तरकोणे न्यासः कर्त्तव्यः ।

सर्वस्मादन्ते द्वात्रिंशच्छदपद्मं प्रकल्प्य द्वात्रिंशत्केशरेषु प्रादक्षिण्येनैवं न्यासो विधेयः—

ह्रीं फ्रें हूं इत्यादौ नम इत्यन्ते च योजयित्वा मध्येऽधो निर्दिष्ट देवीनां चतुर्थ्येक वचोरूपं देयम्—कराली, विकराली, महाकाली, अपराजिता, चामुण्डा, भ्रामरी, भीमा, कुरुकुल्ला, कपालिनी, घोरनादा, चण्डघण्टा, भैरवी, मुण्डमालिनी, उल्कामुखी, फेरुवक्त्रा, चर्चिका, सिंहवाहिनी, वज्रकापालिनी, चण्डयोगेश्वरी, मातङ्गी, कुब्जिका, सिद्धिलक्ष्मी, चण्डेश्वरी, ब्रह्माणी, कालिका, दुर्गा, महामाया, महोदरी, कौमारी, वाराही, जयन्ती, गुह्यकालिका ।

पुनरेतस्य हृत्पद्मस्य कर्णिकायां ओं हसखफ्रें क्ष्रौं खफ्रें कृतान्तकालभीषणाय महाभैरवाय हूं फट् इति न्यासः कार्यः ।

शिरःस्थितपद्मस्य कर्णिकायां तु—'हौं शुद्धस्फटिकविशदप्रभाय परमसदाशिवाय हूं फट् नमः स्वाहा' इति न्यासः कार्यः । इति ।

* * *

परिशिष्टम् (२)

न्यासः

१. वक्त्रन्यासः (७।१३-४७)

(क) ओं ह्रीं फ्रें हूं छ्रीं स्हौः क्रीं रक्ष्रों खफ्रें महाचण्डयोगेश्वरीमूर्तये ऊर्ध्ववक्त्राय प्रज्वलद्दीपकारिणे ह्स्ख्फ्रें क्ष्रौं सौः क्रों क्लीं फट् नमः स्वाहा—इति ब्रह्मरन्ध्रे न्यासः ।

(ख) ऐं श्रीं क्लीं हौं क्षौं ग्लूं ग्लौं ब्लूं रखध्रैं महावज्रदंष्ट्रायुधमूर्तये सिंहवक्त्राय उग्राय मृत्युमृत्यवे ह्रीं ह्रूं क्ष्रीं क्ष्रूं ज्क्रीं फट् नमः स्वाहा—इति मुखे हृदये च न्यासः ।

(ग) आं प्रीं ह्स्फ्रें रक्ष्रैं ख्फ्रें ज्रीं फ्रीं श्रीं स्फ्ल्क्ष्रूं वमदुल्काघोरमूर्तये फेरुवक्त्राय फेरुरवभीषणाय छ्रीं ह्स्ख्फ्रीं र्क्ष्छ्रीं र्झ्रौं ख्फ्रें फट् नमः स्वाहा—इति दक्षिणलोचने न्यासः ।

(घ) क्रीं (ईं) ज्रौं फ्रूं फ्रौं ह्रैं ह्रौं क्ष्रूं क्ष्रूं ह्स्खफ्रैं नखरदशनायुधमूर्तये कपिवक्त्राय महापिङ्गलसटाय थ्रीं थ्रीं फ्रैं प्रीं सौः फट् नमः स्वाहा—इति वामलोचने न्यासः ।

(ङ) लं र्स्त्रीं ज्रौं च्रूं र्ख्रैं र्ख्रौं ख्फ्रीं ख्फ्रूं ख्फ्रैं लावण्यनिधानदिव्यमूर्तये नरवक्त्राय सर्वभोगवैभवाय छ्रर्क्ष्ह्रैं र्छ्रां रह्रछ्ररक्षह्रैं रह्रछ्ररक्षह्रौं र्क्ष्रीं (?) फट् नमः स्वाहा—इति दक्षनासापुटे न्यासः ।

(च) हफ्रीं हफ्रूं ख्फ्रह्रीं ख्फ्रह्रीं ख्फ्रक्ष्रीं ख्फ्रक्ष्रीं ख्फ्रक्ष्रीं रजझ्रक्ष्रैं विकरालनखदन्तमूर्तये ऋक्षवक्त्राय मेचकसटाभारिणे ब्लैं हस्फ्रीं हस्फ्रूं क्ष्रफ्लह्रीं ख्फ्रौं फट् नमः स्वाहा—इति वामनासापुटे न्यासः ।

(छ) क्रौं ख्रौं ब्रीं खफछ्रीं खफछ्रूं क्षरस्त्रीं क्षरस्त्रूं खफछ्रौं क्षरस्त्रौं घोरतरचञ्चुपक्षमूर्तये तार्क्ष्यवक्त्राय खरनखरतुण्डाय रक्षक्रछ्रीं रक्षफ्रछ्रूं छ्रखफ्रीं ह्रखफ्रीं स्त्रखफ्रीं फट् नमः स्वाहा—इति दक्षकपोले न्यासः ।

(ज) हलक्षीं हलक्ष्रूं पौं फहलक्ष्रूं सफहलक्षीं सफहलक्ष्रूं रक्षफ्रछ्रैं रक्षफ्रछ्रौं रजझ्रक्ष्रूं दीर्घशितदंष्ट्रायुधमूर्तये ग्राहवक्त्राय महाभोगभासुराय रध्रूं रक्षफ्रछ्रीं क्षखफ्रैं खफ्रह्रैं खफ्रह्रैं फट् नमः स्वाहा—इति वामकपोले न्यासः ।

(झ) रथ्रीं रथ्रीं रठ्रीं रठ्रीं श्रैं श्रैं रजझ्रक्ष्रूं रजझ्रक्ष्रूं रकक्ष्रैं वज्रिक्रूरदन्तायुधमूर्तये पञ्चगजवक्त्राय नागराजाय शुण्डाय ह्रक्षम्लैं ह्रक्षम्लौं ह्रग्लौं ह्रग्लैं क्ष्रक्लूं फट् नमः स्वाहा—इति दक्षकर्णे न्यासः ।

(ञ) ह्लखफ्रैं स्त्रखफ्रौं क्लखफ्रौं क्लखफ्रैं ह्भ्रां क्षस्फ्रौं ग्लब्लौं क्षख्रौं क्ष्रफ्रहौं हेषादन्तशंफायुधमूर्तये हयवक्त्राय निगालकेशरोद्ध्र्वाय ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें नमः फट् स्वाहा—इति वामकर्णे न्यासः ।

इति वक्त्रन्यासः ।

२. **अस्त्रन्यासः (७।६७-११५)**

(क) ह्लक्ष्म्लैं रग्रें ज्रैं रत्नमालायै नमः फट् स्वाहा इति दक्षशङ्खे न्यासः ।

(ख) ऐं रजझ्रक्षूं रजझ्रक्षूं रत्नमालायै नमः फट् स्वाहा इति वामशङ्खे न्यासः ।

(ग) ह्लीं हसखफ्रौं हूं रभ्रीं दक्षभ्रुवे नमः फट् स्वाहा इति दक्षभ्रुवि न्यासः ।

(घ) श्रीं रख्रूं थ्रीं थ्रीं वामभ्रुवे नमः फट् स्वाहा इति वामभ्रुवि न्यासः ।

(ङ) क्लीं रख्रौं ज्रां ज्रां दक्षिणलोचनाय फट् नमः स्वाहा इति दक्षिणलोचने न्यासः ।

(च) खफ्रां क्रौं चैं चैं वामलोचनाय नमः फट् स्वाहा इति वामलोचने न्यासः ।

(छ) ह्फ्रीं क्षौं हस्ख्फ्रें हस्ख्फ्रें दक्षनासापुटाय नमः फट् स्वाहा इति दक्षनासापुटे न्यासः ।

(ज) ख्फ्रीं क्रूं आं आं वामनासापुटाय नमः फट् स्वाहा इति वामनासापुटे न्यासः ।

(झ) ह्फ्रूं क्षूं क्रों क्रों दक्षिणगण्डाय नमः फट् स्वाहा इति दक्षिणगण्डे न्यासः ।

(ञ) हफ्रौं ख्फ्रूं ब्लूं ब्लूं वामगण्डाय नमः फट् स्वाहा इति वामगण्डे न्यासः ।

(ट) ख्फ्रौं ख्फ्रें ह्लां ह्लां दक्षिणकपोलाय नमः फट् स्वाहा इति दक्षकपोले न्यासः ।

(ठ) क्रैं क्रौं ख्रैं ख्रैं वामकपोलाय नमः फट् स्वाहा इति वामकपोले न्यासः ।
भ्रूं क्ष्रूं ग्लीं...............(रत्नकुम्भ) दक्षिणश्रवणाय नमः फट् स्वाहा ।
रह्लीं प्लूं ह्लों ह्लों वामश्रवणाय नमः फट् स्वाहा ।

(ड) क्ष्रस्त्रैं क्ष्रस्त्रौं ख्फ्छ्रूं ख्फ्छ्रूं दक्षिणहनवे नमः फट् स्वाहा इति दक्षिणहनौ न्यासः ।

(ढ) भ्रीं हफ्रौं क्ष्स्त्रूं क्षस्त्रूं वामहनवे नमः फट् स्वाहा इति वामहनौ न्यासः ।

(ण) ख्फ्रक्लीं ख्फ्रक्लीं ख्फ्छ्रीं ख्फ्छ्रीं दक्षिणांसाय नमः फट् स्वाहा—इति दक्षिणांसे न्यासः ।

(त) र्ध्रूं प्रूं क्ष्ज्रूं ल्क्षां ल्क्षां वामांसाय नमः फट् स्वाहा इति वामांसे न्यासः ।

(थ) श्रख्फ्रूं श्रख्फ्रीं क्हल्श्रौं क्हल्श्रौं दक्षिणजत्रुणे नमः फट् स्वाहा इति दक्षिणजत्रुणि न्यासः ।

(द) सहलक्रूं स्हल्क्रीं भ्रीं भ्रीं वामजत्रुणे नमः फट् स्वाहा इति वामजत्रुणि न्यासः ।

(ध) ग्लख्रीं हस्रौं रप्रीं रप्रीं दक्षिणकक्षायै नमः फट् स्वाहा इति दक्षिणकक्षायां न्यासः ।

(न) जूं क्ष्रौं रफ्लीं रफ्लीं वामकक्षायै नमः फट् स्वाहा इति वामकक्षायां न्यासः ।

(प) ट्रीं य्लैं पं पं दक्षिणपार्श्वाय नमः फट् स्वाहा इति दक्षिणपार्श्वे न्यासः ।

(फ) म्रीं हीं स्हौः (बालप्रेतम्) वामपार्श्वाय नमः फट् स्वाहा इति वामपार्श्वे न्यासः ।

(ब) श्लीं हां क्ष्स्रौं क्ष्स्रौं दक्षिणचूचुकाय नमः फट् स्वाहा इति दक्षिणचूचुके न्यासः ।

(भ) क्वीं ह्लीं फ्रम्रग्लऐं फ्रम्रग्लऐं वामचूचुकाय नमः फट् स्वाहा इति वामचूचुके न्यासः ।

(म) फ्रें म्रां ज्लीं (पुष्पगाला) दक्षिणकफोणये नमः फट् स्वाहा इति दक्षिणकफोणौ न्यासः ।

(य) श्रौं द्रौं ट्रीं ट्रीं वामकफोणये नमः फट् स्वाहा इति वामकफोणौ न्यासः ।

(र) ज्रूं ज्रीं खफछ्रां खफछ्रां दक्षिणप्रगण्डाय नमः फट् स्वाहा इतिं दक्षिणप्रगण्डे न्यासः ।

(ल) ज्रां रफ्लूं त्रीं त्री वामप्रगण्डाय नमः फट् स्वाहा इति वामप्रगण्डे न्यासः ।

(व) श्रूं व्रूं फ्लीं (फ्लीं ?) दक्षिणमणिबन्धाय नमः फट् स्वाहा इति दक्षमणिबन्धे न्यासः ।

(श) रफ्रैं क्रहां रश्रें × (सर्पम्) वाममणिबन्धाय नमः फट् स्वाहा इति वाम मणिबन्धे न्यासः ।

(ष) ख्फ्रछ्रैं क्रप्रीं स्फ्हल्क्षौं × (कमण्डलु ?) दक्षिणाङ्गुलिमूलाय नमः फट् स्वाहा इति दक्षिणाङ्गुलिमूले न्यासः ।

(स) ख्रीं रभ्रीं × × (वंश उन्मादवंशी) वामाङ्गुलिमूलाय नमः फट् स्वाहा इति वामाङ्गुलिमूले न्यासः ।

(ह) ख्फ्रभ्रूं रश्रौं स्हौं × (मांसखण्डम्) दक्षाङ्गुल्यग्राय नमः फट् स्वाहा इति दक्षाङ्गुल्यग्रे न्यासः ।

(क्ष) र्क्रैं र्ख्रैं क्हल्श्रः क्हल्श्रः वामाङ्गुल्यग्राय नमः फट् स्वाहा इति वामाङ्गुल्यग्रे न्यासः ।

(त्र) ओं खस्त्रैं सों सों दक्षकुक्षये नमः फट् स्वाहा इति दक्षकुक्षौ न्यासः ।

(ज्ञ) र्क्ष्श्रीं र्स्फ्रौं रक्ष्रूं × (अग्निकुण्डम्) वामकुक्षये नमः फट् स्वाहा इति वामकुक्षौ न्यासः ।

(अ) र्त्रैं र्त्रौं रं × (बीजपूरं) दक्षिणस्फिचे नमः फट् स्वाहा इति दक्षिणस्फिचि न्यासः ।

(आ) रझ्रीं रट्रूं ख्फ्छ्रां ख्फ्छ्रां वामस्फिचे नमः फट् स्वाहा इति वामस्फिचि न्यासः ।

(इ) हस्फ्रूं हस्फ्रैं श्रैं श्रैं दक्षकट्यै नमः फट् स्वाहा इति दक्षकटौ न्यासः ।

(ई) रस्त्रैं रस्त्रौं क्ष्स्त्रैं क्ष्स्त्रैं वामकट्यै नमः फट् स्वाहा इति वामकटौ न्यासः ।

(उ) स्फ्ह्ल्क्षीं स्फ्ह्ल्क्ष्रूं क्ह्ल्श्रं क्ह्ल्श्रं दक्षिणवंक्षणाय नमः फट् स्वाहा इति दक्षिणवंक्षणे न्यासः ।

(ऊ) फ्ह्ल्क्षैं फ्ह्ल्क्षां क्ह्ल्श्रां क्ह्ल्श्रां वामवंक्षणाय नमः फट् स्वाहा इति वामवंक्षणे न्यासः ।

(ऋ) × (व्ययं) रक्ष्रौं क्ष्स्त्रैं क्ष्स्त्रैं दक्षिणजानवे नमः फट् स्वाहा इति दक्षिणजानौ न्यासः ।

(ॠ) फ्रम्रग्लईं फ्रम्रग्लईं क्ह्ल्श्रैं क्ह्ल्त्रैं वामजानवे नमः फट् स्वाहा इति वामजानौ न्यासः ।

(ऌ) × (मोदकं) क्ष्लक्ष्रूं (यष्टिं यष्टिम्) दक्षिणगुल्फाय नमः फट् स्वाहा इति दक्षिणगुल्फे न्यासः ।

(ॡ) म्लैं म्लैं क्ष्स्त्रं क्षस्त्रं वामगुल्फाय नमः फट् स्वाहा इति दक्षिणगुल्फे न्यासः ।

(ए) म्लीं म्लूं धं धं दक्षिणपार्ष्णये नमः फट् स्वाहा इति दक्षिणपार्ष्णौ न्यासः ।

(ऐ) स्त्रीं स्त्रूं क्ष्स्त्रौं क्ष्स्त्रौं वामपार्ष्णये नमः फट् स्वाहा इति वामपार्ष्णौ न्यासः ।

(ओ) स्त्रैं स्त्रौं ज्रौं ज्रौं दक्षपादाङ्गुलिमूलाय नमः फट् स्वाहा इति दक्षपादाङ्गुलिमूले न्यासः ।

(औ) क्ष्लक्ष्रैं क्ष्लक्ष्रैं ङं ङं वामपादाङ्गुलिमूलाय नमः फट् स्वाहा इति वामपादाङ्गुलिमूले न्यासः ।

(अं) क्ष्स्त्रैं रस्त्रां छ्रौं छ्रौं दक्षिणप्रपदाय नमः फट् स्वाहा इति दक्षिणप्रपदे न्यासः ।

(अः) फ्रख्भ्रैं हसखफ्रक्ष्रीं क्षरस्त्रखफ्रूं स्त्रैं वामप्रपदाय नमः फट् स्वाहा ।

इत्यस्त्रन्यासः ।

३. अन्यप्रकारेण अस्त्रन्यासस्याभिधानम् (७।१२१-१३३)

ओं फ्रें क्ष्लफ्लओं रत्नमालायै स्वाहा इति दक्षशङ्खे न्यासः ।
ओं फ्रें ओंश्रेक्लीं रत्नमालायै स्वाहा इति वामशङ्खे न्यासः ।
ओं फ्रें स्हक्ष्लक्षें हस्फ्रें दक्षभ्रुवे स्वाहा इति दक्षभ्रुवि न्यासः ।
ओं फ्रें ह्लक्ष्मली वामभ्रुवे स्वाहा इति वामभ्रुवि न्यासः ।
ओं फ्रें सम्ल्व्रीं दक्षिणलोचनाय स्वाहा इति दक्षिणलोचने न्यासः ।
ओं फ्रें ह्लफ्रकह्लीं वामलोचनाय स्वाहा इति वामलोचने न्यासः ।
ओं फ्रें कम्ल्व्रीं दक्षनासापुटाय स्वाहा इति दक्षनासापुटे न्यासः ।
ओं फ्रें ड्म्ल्व्रीं वामनासापुटाय स्वाहा इति वामनासापुटे न्यासः ।
ओं फ्रें लम्ल्व्रीं दक्षिणगण्डाय स्वाहा इति दक्षिणगण्डे न्यासः ।
ओं फ्रें वम्ल्व्रीं वामगण्डाय स्वाहा इति वामगण्डे न्यासः ।
ओं फ्रें रम्ल्ब्रीं दक्षकपोलाय स्वाहा इति दक्षकपोले न्यासः ।
ओं फ्रें हम्ल्व्रीं वामकपोलाय स्वाहा इति वामकपोले न्यासः ।
ओं फ्रें ह्लक्षम्लब्रयूं दक्षिणहनवे स्वाहा इति दक्षहनौ न्यासः ।
ओं फ्रें ह्लक्षम्लह्लयूं वामहनवे स्वाहा इति वामहनौ न्यासः ।
ओं फ्रें यम्ल्व्रीं दक्षिणांसाय स्वाहा इति दक्षांसे न्यासः ।
ओं फ्रें रलहक्षफ्रूं वामांसाय स्वाहा इति वामांसे न्यासः ।
ओं फ्रें ह्लक्षम्लस्रयूं दक्षिणजत्रुणे स्वाहा इति दक्षिणजत्रुणि न्यासः ।
ओं फ्रें ह्लक्षम्लफ्रयूं वामजत्रुणे स्वाहा इति वामजत्रुणि न्यासः ।
ओं फ्रें क्ष्लहक्षझ्रूं दक्षिणकक्षायै स्वाहा इति दक्षकक्षायां न्यासः ।
ओं फ्रें ह्लक्षम्लझ्रयूं वामकक्षायै स्वाहा इति वामकक्षायां न्यासः ।
ओं फ्रें ह्लक्षम्लग्रयूं (तैमिरास्त्रम् ?) गलाय स्वाहा? इति गले न्यासः ।
ओं फ्रें सलहक्षह्लूं दक्षिणपार्श्वाय स्वाहा इति दक्षपार्श्वे न्यासः ।
ओं फ्रें ह्लक्षम्लक्रयूं वामपार्श्वाय स्वाहा इति वामपार्श्वे न्यासः ।
ओं फ्रें रक्षफ्रभ्रग्रम्लऊं दक्षिणचूचुकाय स्वाहा इति दक्षिणचूचुके न्यासः ।
ओं फ्रें रक्षझ्रभ्रग्रम्लऊं वामचूचुकाय स्वाहा इति वामचूचुके न्यासः ।
ओं फ्रें खमह्लीं दक्षिणकफोणये स्वाहा इति दक्षकफोणौ न्यासः ।
ओं फ्रें रलक्षग्रम्लऊं वामकफोणये स्वाहा इति वामकफोणौ न्यासः ।
ओं फ्रें रक्षभ्रघ्रग्रम्लऊं दक्षिणप्रगण्डाय स्वाहा इति दक्षिणप्रगण्डे न्यासः ।
ओं फ्रें रक्षक्रभ्रध्रम्लऊं वामप्रगण्डाय स्वाहा इति वामप्रगण्डे न्यासः ।
ओं फ्रें रलक्षग्रम्लऊं दक्षिणमणिबन्धाय स्वाहा इति दक्षिणमणिबन्धे न्यासः ।
ओं फ्रें रसखग्रमूं वाममणिबन्धाय स्वाहा इति वाममणिबन्धे न्यासः ।
ओं फ्रें क्षम्लूं दक्षिणाङ्गुलिमूलाय स्वाहा इति दक्षाङ्गुलिमूले न्यासः ।
ओं फ्रें क्षक्लूं वामाङ्गुलिमूलाय स्वाहा इति वामाङ्गुलिमूले न्यासः ।

ओं फ्रें क्षक्लीं दक्षाङ्गुल्यग्राय स्वाहा इति दक्षाङ्गुल्यग्रे न्यासः ।
ओं फ्रें (गणास्त्रं) वामाङ्गुल्यग्राय स्वाहा इति वामाङ्गुल्यग्रे न्यासः ।
ओं फ्रें क्षह्रीं दक्षकुक्षये स्वाहा इति दक्षकुक्षौ न्यासः ।
ओं फ्रें क्षह्लीं वामकुक्षये स्वाहा इति वामकुक्षौ न्यासः ।
ओं फ्रें क्षब्लूं दक्षिणस्फिचे स्वाहा इति दक्षिणस्फिचि न्यासः ।
ओं फ्रें क्षम्लीं वामस्फिचे स्वाहा इति वामस्फिचि न्यासः ।
ओं फ्रें क्षफ्लीं दक्षकट्यै स्वाहा इति दक्षकटौ न्यासः ।
ओं फ्रें क्षग्लूं वामकट्यै स्वाहा इति वामकटौ न्यासः ।
ओं फ्रें (प्रमथास्त्रं ?) दक्षिणवंक्षणाय स्वाहा इति दक्षिणवंक्षणे न्यासः ।
ओं फ्रें क्षह्लूं वामवंक्षणाय स्वाहा इति वामवंक्षणे न्यासः ।
ओं फ्रें सखह्लक्ष्मग्लीं दक्षिणजानवे स्वाहा इति दक्षिणजानौ न्यासः ।
ओं फ्रें सखह्लक्ष्मश्रीं वामजानवे स्वाहा इति वामजानौ न्यासः ।
ओं फ्रें सखह्लक्ष्मह्रीं दक्षिणगुल्फाय स्वाहा इति दक्षिणगुल्फे न्यासः ।
ओं फ्रें सखह्लक्ष्मस्त्रीं वामगुल्फाय स्वाहा इति वामगुल्फे न्यासः ।
ओं फ्रें सखह्लक्ष्मस्क्रों दक्षिणपार्ष्णये स्वाहा इति दक्षिणपार्ष्णौ न्यासः ।
ओं फ्रें सखह्लक्ष्मजूं वामपार्ष्णये स्वाहा इति वामपार्ष्णौ न्यासः ।
ओं फ्रें सखह्लक्ष्मफों दक्षपादाङ्गुलिमूलाय स्वाहा इति दक्षपादाङ्गुलिमूले न्यासः ।
ओं फ्रें सखह्लक्ष्मध्रीं वामपादाङ्गुलिमूलाय स्वाहा इति वामपादाङ्गुलिमूले न्यासः ।
ओं फ्रें सखह्लक्ष्महौं दक्षिणप्रपदाय स्वाहा इति दक्षिणप्रपदे न्यासः ।
ओं फ्रें सखह्लक्ष्मथ्रीं वामप्रपदाय स्वाहा इति वामप्रपदे न्यासः ।
ओं फ्रें सखह्लक्ष्मह्रीं पादाभ्यां स्वाहा इति पादयोः न्यासः ।

इति ।

३. दूतीन्यासः (७।१३८-२६३)

(१) आं आं आं प्रकटविकटरूपिणि ह्रीं क्लीं क्रीं अट्टाट्टहासिनि श्रीं क्रों हूं नरमुण्डमालिनि चराचरं जगत् स्तम्भय स्तम्भय क्षूं क्रौं हौं चण्डशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि ललाटाय नमः ।

(२) आं आं आं महाश्मशानवासिनि फ्रें छ्रीं स्त्रीं नरकङ्कालधारिणि कलङ्किनि फेरुमुखि ख्फ्रें हस्फ्रें हस्ख्फ्रें प्रलम्बोदरि ऋक्षकर्णि फेरुशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि चिबुकाय नमः ।

(३) आं आं आं दंष्ट्राकराले लोलजिह्वे क्ष्रौं स्हौः सौः रुधिरवसापिशितभोजिनि क्रीं क्रूं खौं घोररावे महाचण्डकापालि ब्लूं व्लफ्रस्त्रूं ब्लौं रक्तशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि दक्षिणकर्णाय नमः ।

(४) आं ईं ईं ईं ईं महापिङ्गलजटाभारभासुरे ज्क्रीं श्रीं फ्रीं श्मशानधावनविमुक्तकेशि हाहाराविणि जरक्रीं रश्रीं रफ्रूं खरमुखि पिशाचिनि कुल-

मतभूय:प्रवर्तिनि ह्लूं ह्लूं ह्लूं क्रोध शिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि वामकर्णाय नम: ।

(५) आं ईं ईं ईं ईं महाभैरवि खट्वाङ्गधारिणि महामांसबलिप्रिये क्ष्रीं रक्ष्रीं क्षरह्लीं रह्लछ्ररक्षह्लीं महामारीत्रैलोक्यडामरि निशाचरि कहलश्रीं कहलश्रूं क्ष्ह्लूं रहछ्ररक्षह्लूं घोरशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि कूर्चाय नम: ।

(६) आं ईं ईं ईं ईं विकटतुङ्गकोकामुखि जालन्धरि म्रीं रक्ष्रैं छ्रर्क्ष्ह्लैं रह्लछ्ररक्षह्लैं सदाशिवप्रेतारूढ़े पातालतुलितोदरि क्ष्रौं रक्ष्रौं छ्ररक्षह्लौं रह्लछ्ररक्षह्लौं कृतान्तशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि ओष्ठाय नम: ।

(७) आं ईं ईं ईं ईं भुजङ्गराजकटिसूत्रिणि वह्निस्फुलिङ्गपिङ्गलाक्षि ख्फ्रछ्रीं क्षस्त्रीं हस्फ्रीं रजझ्रक्ष्रीं द्वीपिचर्मावृताङ्गि शिववाहिनि चण्डकापालेश्वरि ख्फ्छ्रूं क्ष्स्त्रूं हस्फ्रूं रजझ्रक्ष्रूं कापालशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि दक्षिणनेत्राय नम: ।

(८) ऊं ऊं ऊं ऊं ऊं प्रलयकालानलज्वालाजटालचितिमध्यसंस्थे र्क्षछ्रीं खफ्रें ख्फ्रैं हस्फ्रैं कल्पान्तरङ्गनृत्यमहानाटकिनि ख्फ्रह्लीं खफ्र्छ्रीं ख्फ्रक्ष्रीं खफ्रक्लीं चर्चरीकरतालिकावादिनि वज्रशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि वामनेत्राय नम: ।

(९) ऊं ऊं ऊं ऊं ऊं परापररहस्यसमयचारिणि ज्वालामालिनि ह्लक्षफ्लीं छ्ररक्षह्लां झमरयऊं ह्स्ख्फ्रौं प्रलयसमयकोट्यर्कदुर्निरीक्ष्ये मृत्युवदनि रस्फ्रौं छ्रक्षह्लौं रकक्ष्रौं रक्षफ्रछ्रौं जयझङ्कारिणि उल्काशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि दक्षिणगण्डाय नम: ।

(१०) ऊं ऊं ऊं ऊं ऊं कोटिचामुण्डामध्यचारिणि प्रेतकङ्कालधारिणि हसखफ्रुं हसखफ्रिं स्फ्ह्ल्क्ष्रूं कहलश्रूं रक्षफ्रछ्रूं दिगम्बरि कपिलचञ्चलक्रूरतारे भ्रमरि भ्रामरि फ्रस्त्रूं स्फ्ह्ल्क्ष्रूं ह्लक्षम्लौं क्ह्ल्श्रौं भगवति श्मशानशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि वामगण्डाय नम: ।

(११) ऊं ऊं ऊं ऊं ऊं आकर्षिणि आवेशिनि सन्तोषिणि सम्मोहिनि फ्रौं ब्रच्रौं ह्स्फ्रौं ह्स्ख्फ्रौं चण्डिनि चाण्डालिनि चण्डि चण्डिके क्लूं ग्लूं ब्लूं ज्लैं मदोन्मत्ते उग्रशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि दक्षिणांसाय नम: ।

(१२) ऊं ऊं ऊं ऊं ऊं कालि महाकालवञ्चनि विच्चे घोरे परापरसम्भेदिनि सन्तर्जिनि बलाहकिनि ट्रीं ठ्रीं ड्रीं ढ्रीं प्रीं त्रीं थ्रीं द्रीं धीं न्रीं खण्डिनि मुण्डिनि रौद्रशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि वामांसाय नम: ।

(१३) ओं ओं ओं ओं ओं ब्रह्मकपालबद्धपद्मासने चर्चितमहाविष्णुकपाले क्ष्रूं क्ष्लौं श्लौं ज्लौं ह्लौं सार्द्रनारान्त्रकृतयोगपट्टिनि शेषयज्ञोपवीतिनि छ्रौं थ्रौं फ्रौं श्रौं स्त्रौं विकरालिनि उन्मत्तशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि वामवंक्षणाय नम: ।

(१४) ओं ओं ओं ओं ओं खरकर्णि महापिशाचिनि खद्योतपिङ्गले ज्वलदक्षि फें फां हीं हैं हौं यमजिह्वे वडवामुखि अवर्णेश्वरि वज्रव्योमकेशि छ्रैं थ्रैं फ्रैं श्रैं स्त्रैं रहस्यरक्षिणि कालशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि दक्षिणपौरस्त्यवंक्षणाय नम: ।

(१५) ओं ओं ओं ओं ओं जय जय जीव जीव कामाङ्कुशे कामद्राविणि सर्वमदभञ्जिनि ख्फ्रछ्रीं ख्फ्रछ्रूं खफ्रह्रीं खफ्रह्रूं ब्रूं अनाख्येयस्वरूपिणि चर्पटिनि नगदन्तब्रह्माण्डे क्लफ्रीं क्लफ्रूं क्लरह्रैं क्लह्रौं क्लक्ष्रौं क्षपणिके मुण्डशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि गलाय नम: ।

(१६) ओं ओं ओं ओं ओं सकलदैत्यबलमर्दिनि निपीतरुधिरछर्दिनि क्लखफ्रां क्लखफ्रीं क्लखफ्रूं क्लखफ्रैं क्लखफ्रौं शवाङ्गुलीपुञ्जकृतकाञ्चिते हूं हूं कारनादभीषणे ह्रखफ्रां ह्रक्लां ह्रखफ्रीं ह्रखफ्रूं ह्रफ्रौं शूलिनि महाराक्षसि शिवदूति(?) श्रीपादुकां पूजयामि वामपार्श्वाय नम: ।

(१७) ओं ओं ओं ओं ओं वातवेगजयिनि वेतण्डतुण्डि परमप्रचण्डि रह्रछ्ररक्षह्रां रखफ्रछ्रां खफ्रक्ष्रां खफ्रछ्रां खफह्रां महाशङ्खमालिनि त्रिलोकीपालिनि संवर्तककालानलज्वालिनि कर्कशभुजभीमे क्ष्रफ्रह्रां क्ष्लौ: क्रप्रैं क्ष्रफ्रह्रें क्ष्रफ्रह्रैं × × (घोरतासीमे) बलशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि वस्तये नम: ।

(१८) ओं ओं ओं ओं ओं अणिमादिप्रभावप्रकाशिनि चण्डातिचण्डतरचण्डयोगेश्वरि फ्रथ्रां फ्रथ्रीं फ्रथ्रूं फ्रथ्रें फ्रथ्रैं सकलजनमनोरञ्जनि दुष्टदुरभिप्रायभञ्जिनि प्रणतवाञ्छितप्रदे फ्रम्रग्लऔं क्ष्लक्ष्रौं × (उरङ्कम् ?) फ्रख्भ्रैं फ्रख्भ्रौं सौम्यमूर्ते भगवति सिद्धिशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि दक्षिणपार्श्वाय नम: ।

(१९) ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं कालि कालि महाकालि मांसशोणितभोजिनि ह्रीं ह्रीं ह्रूं रक्तकृष्णमुखि देवि मा मां शत्रव: नश्यन्तु हृयदशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि हृदयाय नम: ।

(२०) ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं नमो भगवति दुष्टचण्डालिनि रुधिरमांसभक्षिणि कपालखट्वाङ्गधारिणि हन हन दह दह पच पच मम शत्रून् ग्रस ग्रस मारय मारय हूं हूं हूं फट् शिर: शिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि ह्रूं शिरसे स्वाहा ।

(२१) ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं ह्स्फ्रां ह्स्फ्रीं ह्स्फ्रूं महापिङ्गजलटाभारे विकटरसनाकराले सर्वसिद्धिं देहि देहि दापय दापय शिखाशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि ह्रूं शिखायै वषट् ।

(२२) ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं महाश्मशानवासिनि घोराट्टहासिनि विकटतुङ्गकोकामुखि ह्रीं क्लीं श्रीं महापातालतुलितोदरि भूतवेतालसहचारिणि कवचशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि कवचाय हूं ।

(२३) ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं लेलिहानरसनास्याभयानके वितस्तचिकुरभारभासुरे चामुण्डाभैरवीडाकिनीगणपरिवृते फ्रें ख्फ्रें हूं आगच्छ आगच्छ सान्निध्यं कल्पय कल्पय त्रैलोक्यडामरि महापिशाचिनि नेत्र शिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि नेत्रत्रयाय वौषट् ।

(२४) ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं गुह्यातिगुह्यकुब्जिके हूं हूं हूं फट् मम सर्वोपद्रवान् मन्त्रतन्त्रयन्त्रचूर्णप्रयोगादिकान् परकृतान् कारितान् करिष्यन्ति तान् सर्वान् हन हन मथ मथ मर्दय मर्दय दंष्ट्राकरालि फ्रें ह्रीं हूं फट् गुह्यातिगुह्यकुब्जिके अस्त्रशिवदूनि श्रीपादुकां पूजयामि अस्त्राय फट् ।

(२५) ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं हूं हूं हूं हूं हूं कार घोरनादवित्रासितजगत्त्रये ह्रीं ह्रीं ह्रीं प्रसारितायुतभुजे महावेगप्रधाविते क्लीं क्लीं क्लीं पदविन्यासत्रासिते सकलपाताले श्रीं श्रीं श्रीं व्यापकशिवदूति परमशिवपर्यंकशायिनि छ्रीं छ्रीं छ्रीं गलद्रुधिरमुण्डमालाधारिणि घोरघोरतररूपिणि फ्रें फ्रें फ्रें ज्वालामालि पिङ्गजटाजूटे अचिन्त्यमहिमबलप्रभावे स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं दैत्यदानवनिकृन्तनि सकलसुरकार्यसाधिके ओं ओं ओं फट् नमः स्वाहा ।

४. डाकिनीन्यासः (७।२७४-३२८)

ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं हूं फट् फ्रें हसफ्रें स्हौं स्हौः सौः डां डीं डूं टम्लव्र्यईं कोलागिरिस्थाने चित्रघण्टे डाकिनि मां रक्ष रक्ष मम त्वग्धातून् रक्ष रक्ष पाहि पाहि हौं क्रों क्रौं क्षौं छ्रीं मह्रक्ष्ल्व्र्यऊं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं सर्वसत्त्ववशङ्करि हूं हूं हूं फट् फट् नमः स्वाहा इति ग्रीवान्यासः ।

ओं ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं ग्लां ग्लीं ग्लूं ग्लैं ग्लौं ब्लौं क्ष्रौं ख्रौं हसफ्रें हसखफ्रां तम्लव्र्यईं मुञ्जगिरिस्थाने उल्कामुखि राकिनि रां रीं रूं मां रक्ष रक्ष मम रक्तधातून् रक्ष रक्ष फ्रों फ्रौं स्फ्रौं ब्लीं ब्लूं सखक्लक्ष्मध्रयब्लीं ज्रां ज्रीं ज्रूं ज्रैं ज्रौं सर्वदेववशङ्करि फ्रें फ्रें फ्रें फट् फट् नमः स्वाहा इति हृदयन्यासः ।

ओं ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं स्त्रीं स्त्रूं प्रीं प्रूं ह्रैं ह्रैं रज्रीं जरक्रीं हसखफ्रैं कम्लव्र्यईं विन्ध्यगिरिस्थाने घोरनादे डाकिनि लां लीं लूं मां रक्ष रक्ष मम मांसधातून रक्ष रक्ष सर्वसिद्धिवशङ्करि स्त्रैं स्त्रौं रह्रैं रह्रौं क्षरह्रीं रह्रक्षम्लव्र्य अखफ छ्रस्त्रह्रीं ह्रक्षफ्लीं ह्रक्षफ्लूं ह्रक्षफ्लैं ह्रग्लैं ह्रग्लैं छ्रीं छ्रीं छ्रीं फट् फट् नमः स्वाहा इति नाभिन्यासः ।

ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं फ्रें फ्रें फ्रें खफ्रें खफ्रें फ्रीं खफ्रह्रौं खफ्रह्रौं खफ्रछ्री प्रव्र्यवऊं नीलगिरिस्थाने पिङ्गजटे काकिनि मां रक्ष रक्ष मम मेदो धातून् रक्ष रक्ष सर्वदैत्यवशङ्करि झमरयऊं रक्षछ्रीं हसखफ्रौं रस्फ्रौं स्हवलरक्ष मजह्रखफरयूं क्लं क्लं रछ्रीं रछ्रीं रप्रीं रप्रीं रफ्रीं रफ्रीं फट् फट् नमः स्वाहा इति लिङ्गन्यासः ।

ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं रक्षफ्रछ्रैं रकक्ष्रैं रह्लछ्ररक्षह्लैं छ्ररक्षह्लैं छ्ररक्षह्लैं हफ्रीं हफ्रूं हफ्रैं हफ्रौं म्लव्य्रहऊं श्वेतगिरिस्थाने वेगाकुले शाकिनि मां रक्ष रक्ष ममास्थिधातून् रक्ष रक्ष सर्वग्रहवशङ्करि रक्रीं रक्रूं रखैं रखौं रखं फ्रक्लां हसखफ्रें खफ्रछ्रें व्रह्लक्ष्मत्रटरयीं.........(त्र्यस्त्रबीजयुगलम्) खफछ्रैं खफछ्रैं हलैं हलैं फ्लीं फट् फट् नमः स्वाहा इत्यपानन्यासः ।

ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं क्रूं क्रैं क्रों क्रौं फीं फां क्षी क्षैं क्षौं शम्लव्य्रईं सह्यगिरिस्थाने एकपादे हाकिनि मां रक्ष रक्ष रक्ष मम मज्जाधातून् रक्ष रक्ष सर्वपशुवशङ्करि रह्लैं रह्लैं रक्ष्रैं रक्ष्रैं क्रैं क्रौं स्हौः सौः ठः ठः ठः ....(गह्वरकूटम्) रजझ्रक्ष्रीं रजझ्रक्ष्रूं रजझ्रक्ष्रैं रजझ्रक्ष्रौं खफ्रक्लैं खफ्रक्लौं ह्लक्षम्लैं फट् फट् नमः श्रीं (स्वाहा ?) इति भ्रूमध्यन्यासः ।

ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं हूं हूं हूं ह्लीं ह्लीं ह्लीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं खफ्रक्ष्रैं खफ्रक्ष्रौं क्षखफ्रें क्षखफ्रैं यम्लव्य्रईं दर्दुरगिरिस्थानो त्रिशीर्षे डाकिनि मां रक्ष रक्ष मम वसागोर्दान्त्रधातून् रक्ष रक्ष सर्वनागवशङ्करि स्त्रखफ्रीं स्त्रखफ्रूं स्त्रखफ्रैं स्त्रखफ्रौं ह्लफ्रैं ह्लफ्रैं क्षज्रैं क्षज्रैं हसखफ्रम्लक्षव्य्रऊं क्षरस्त्रीं क्षरस्त्रूं खफछ्रीं खफछ्रूं हसखफ्रौं फट् फट् हूं इति गले न्यासः ।

ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं फ्रें फ्रें हूं रठ्रीं रठ्रीं रठ्रीं फ्रों रह्लूं क्षरह्लीं क्षरह्लूं म्लव्य्रवईं महेन्द्रगिरिस्थाने घटोदरि शाकिनि मां रक्ष रक्ष मम क्लोमयकृत्स्नायुपुरीततिं रक्ष रक्ष सर्वरक्षोवशङ्करि जूं श्रीं क्ष्रौं क्ष्रौः ब्रीं फ्लक्रूं क्रौं क्रौं (जघन्यस्थायिनि) हसखफ्रैं क्षस्हम्लव्य्रईऊं कहलश्रौं कहलश्रूं हसफ्रौं रकक्ष्रौं रह्लछ्ररक्षह्लौं फट् फट् नमः स्वाहा इति तालुन्यासः ।

ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं श्रीं श्रीं श्रीं क्लीं क्लीं ह्लीं फ्रम्रग्लऐं फ्रम्रग्लऊं फ्रम्रग्लऔं क्ष्लक्ष्रों × (उरङ्कितम्) क्षब्लकस्त्रीं मलयगिरिस्थाने सूचीमुखि याकिनि मां रक्ष रक्ष मम शुक्रधातून् रक्ष रक्ष सर्वजगद्वशङ्करि फ्रखभ्रीं हसखफ्रक्ष्रीं खफ्रीं × (मोदकम्) क्षरस्त्रखफ्रूं क्ष्लक्ष्रूं फ्रखभ्रूं हसखफ्रः फ्रखभ्रौं क्ष्लक्ष्रैं क्ष्लक्ष्रौं फ्रखभ्रैं फ्रम्रग्लईं धम्रब्लक्ष फ्रखछ्रीं खफ्रह्लीं खफ्रक्ष्रूं खफ्रक्ष्रैं रजझ्रक्ष्रौं रह्लछ्र रक्षह्लौ रक्षफ्रछ्रौं रक्ष्रौं छ्ररक्षह्लौं रकक्ष्रौं हसफ्रौं खफ्रौं फट् फट् नमः स्वाहा इति सहस्त्रदलकमलन्यासः ।

इति डाकिनीन्यासः ।

५. योगिनीन्यासः (७।३३६-३५०)

(१) ओं फ्रें छ्रीं क्लीं ह्रीं श्रीं चर्चिकायै हूं फट् स्वाहा इति ब्रह्मरन्ध्रे न्यासः।

(२) ओं फ्रें छ्रीं क्षौं क्रौं क्रीं डामर्यै हूं फट् स्वाहा इति ललाटे न्यासः ।

(३) ओं फ्रें छ्रीं क्रैं खौं आं सूर्यकर्ण्यै हूं फट् स्वाहा इति कूर्चयोः न्यासः ।

(४) ओं फ्रें छ्रीं क्ष्रौं स्हौः ब्लूं तापिन्यै हूं फट् स्वाहा इति दक्षिणलोचने न्यासः ।

(५) ओं फ्रें छ्रीं थ्रीं फ्रीं फ्रौं कुम्भोदर्यै हूं फट् स्वाहा इति वामलोचने न्यासः ।

(६) ओं फ्रें छ्रीं फें फीं म्रूं फेरुमुख्यै हूं फट् स्वाहा इति दक्षगण्डे न्यासः ।

(७) ओं फ्रें छ्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं मर्दिन्यै हूं फट् स्वाहा इति वामगण्डे न्यासः ।

(८) ओं फ्रें छ्रीं क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्रौं जातहारिण्यै हूं फट् स्वाहा इति दक्षकर्णे न्यासः ।

(९) ओं फ्रें छ्रीं कहलश्रीं कहलश्रूं कहलश्रैं विडालाक्ष्यै हूं फट् स्वाहा इति वामकर्णे न्यासः ।

(१०) ओं फ्रें छ्रीं क्षरह्रीं जरक्रीं क्षरह्रूं दीर्घनखायै हूं फट् स्वाहा इति तालुके न्यासः ।

(११) ओं फ्रें छ्रीं हसखफ्रें खफ्रें हसखफ्रौं सूचीतुण्ड्यै हूं फट् स्वाहा इति हृदये न्यासः ।

(१२) ओं फ्रें छ्रीं क्षरह्रीं रह्रछ्ररक्षह्रूं क्षरह्रूं शोषिण्यै हूं फट् स्वाहा इति जठरे न्यासः ।

(१३) ओं फ्रें छ्रीं रक्षफ्रछ्रीं रकक्ष्रूं रजझ्रक्ष्रैं कपालिन्यै हूं फट् स्वाहा इति नाभौ न्यासः ।

(१४) ओं फ्रें छ्रीं खफ्रह्रौं खफ्रह्रैं खफ्रछ्रौं चण्डघण्टायै हूं फट् स्वाहा इति लिङ्गे न्यासः ।

(१५) ओं फ्रें छ्रीं खफ्रह्रों (?) हसफ्रौं प्रीं कुरुकुल्लायै हूं फट् स्वाहा इति गुदे न्यासः ।

(१६) ओं फ्रें छ्रीं छ्रखफ्रीं खफ्रक्ष्रैं क्ष्लौः वलाकिन्यै हूं फट् स्वाहा इति सर्वव्यापकन्यासः । (?)

इह स्थानानि पञ्चदश एव निर्दिष्टानि अत ऊहत अन्तिम न्यासस्थानं कल्पितम् ।

इति ।

६. कुलतत्त्वन्यासः (७।३५८-४१५)

(१) ओं ह्रीं क्षौं हूं ह्रीः ह्रैं र्क्रूं रक्रीं लगमक्षखफ्रसह्रूं इडानाड्यधिष्ठात्री काली देवता आनन्दकुलतत्त्वक्रमसिद्धा मायाकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति प्रपदे न्यासः ।

(२) ऐं हौं श्रीं फ्रें ह्रों र्छ्रूं र्क्षछ्रीं र्छ्रैं ग्रमहलक्षखफ्रग्लैं ह्लक्षम्लस्त्रयूं पिङ्गलानाड्यधिष्ठात्री काली देवता नियमकुलतत्त्वक्रमसिद्धा शक्तिकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति गुल्फे न्यासः ।

(३) आं क्रीं क्लीं क्रौं रछ्रौं रस्फ्रों र्स्फ्रौं रक्षश्रीं सखक्लक्ष्मध्रयब्लीं सुषुम्णानाड्यधिष्ठात्री काली देवता प्रमाणकुलतत्त्वक्रमसिद्धा सिद्धिकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति जङ्घायां न्यासः ।

(४) क्रूं ईं श्रीं फ्रों ग्लैं र्ज्रौं र्क्ष्रौं ज्रैं च्लक्ष्मस्हव्य्रखीं गान्धारीनाड्यधिष्ठात्री कालीदेवता प्रकृतिकुलतत्त्वक्रमसिद्धा पराकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति जानुन्यासः ।

(५) फ्रौं स्क्रों क्लौं क्लूं र्फ्रैं रफ्रौं र्स्त्रौं र्स्त्रैं भक्ष्लरमह्स्ख्फ्रूं हस्तिजिह्वानाड्यधिष्ठात्री काली देवता निवृत्तिकुलतत्त्वक्रमसिद्धा नित्याकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इत्युर्वोर्न्यासः ।

(६) ब्जैं थ्रीं नौं नौं जूं ज्रैं स्हौः सौः क्ष्मलरसहव्य्रहूं अलम्बुषानाड्यधिष्ठात्री काली देवता वैराग्यकुलतत्त्वक्रमसिद्धा सूक्ष्माकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति वंक्षणे न्यासः ।

(७) ज्रौं रह्लछ्ररक्षह्लीं र्क्लीं र्क्लूं ख्फ्रूं ख्फ्रीं ख्फ्रैं ख्फ्रौं ब्लकक्षहमस्त्रछ्रूं विश्वोदरानाड्यधिष्ठात्री काली देवता अविद्याकुलतत्त्वक्रमसिद्धा भद्राकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति कटौ न्यासः ।

(८) ह्स्फ्रीं ह्स्फ्रूं क्ष्रूं त्रीं ब्लों ब्लूं ख्रौं ज्रीं सहक्लर्क्षमजह्लखफरयूं सरस्वतीनाड्यधिष्ठात्री काली देवता ऐश्वर्यकुलतत्त्वक्रमसिद्धा जयाकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति पार्श्वे न्यासः ।

(९) ट्रीं ब्लैं ह्स्फ्रैं र्छ्रां ह्स्फ्रौं छ्ररक्ष्ह्लैं ज्रैं स्हौः खफछ्रेंव्रह्लक्ष्मत्रटरयईं कुहूनाड्यधिष्ठात्री काली देवता प्रतिष्ठाकुलतत्त्वक्रमसिद्धा रौद्रीकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति कक्षायां न्यासः ।

(१०) सौः रस्त्रूं रह्ल छ्ररक्षह्लीं रह्लछ्ररक्षह्लूं रह्लछ्ररक्षह्लौं रह्लछ्ररक्षह्लैं र्क्ष्रीं रक्ष्रूं रहक्षम्लव्य्रअ खफछ्रस्त्रह्लीं वारणानाड्यधिष्ठात्री काली देवता उपाधिकुलतत्त्वक्रमसिद्धा प्रभाकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति स्कन्धे न्यासः ।

(११) र्क्ष्रैं र्क्ष्रौं क्ष्रौं छ्रीं क्रैं स्हौं रक्षफ्रछ्रैं रक्षफ्रछ्रूं (गह्लरकूटम् ?) रण्डानाड्यधिष्ठात्री काली देवता अद्वैतकुलतत्त्वक्रमसिद्धा विद्याकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति जत्रुणि न्यासः ।

(१२) श्र्ख्फ्रौं स्फ्रें क्ष्लौं रक्षफ्रछ्रौं प्रीं ब्रूं रजझ्रक्ष्रूं रजझ्रक्ष्रीं शम्लह्लव्यख्फ्रें मार्तण्डानाड्यधिष्ठात्री काली देवता आशयकुलतत्त्वक्रमसिद्धा ज्येष्ठा कौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति हनौ न्यासः ।

(१३) रजझ्रक्ष्रौं रजझ्रक्ष्रैं फ्रीं ब्रीं फ्रूं थ्रौं थ्रां कप्रां ह्स्ख्फ्रम्लक्षव्य्रऊं शङ्खिनीनाड्यधिष्ठात्री काली देवता वासनाकुलतत्त्वक्रमसिद्धा क्रियाकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति सृक्किणि न्यासः ।

(१४) ख्फ्रछ्रीं ह्लक्ष्फ्लीं खफ्रह्लीं ख्फ्रह्लूं प्रौं ह्स्ख्फ्रां ख्फ्रह्लां खफ्रह्लौं स्हछ्रक्ष्लम्रव्य्रईं मनुनाड्यधिष्ठात्री काली देवता सङ्कल्पकुलतत्त्वक्रम-

सिद्धा दीप्ताकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति कपोले न्यासः ।

(१५) दां दां दां ख्फ्रह्लीं ह्स्ख्फ्रीं ह्लूं ह्लैं ह्लां तफल्क्षकमश्रव्रीं पयस्विनीनाड्यधिष्ठात्री काली देवता विकल्पकुलतत्त्वक्रमसिद्धा शान्तिकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति गण्डे न्यासः ।

(१६) ल्रौं ह्लौं हस्ख्फ्रौं क्ष्रां खफ्रह्लूं खफ्रह्लैं खफ्रह्लौं खफ्रक्ष्रां मफ्रलहलहखफ्रूं मधुमतीनाड्यधिष्ठात्री काली देवता विशुद्धिकुलतत्त्वक्रमसिद्धा सृष्टिकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति कर्णे न्यासः ।

(१७) हसखफ्रैं क्ष्रीं खफ्रक्ष्रीं खफ्रक्ष्रूं खफ्रक्ष्रैं खफ्रक्ष्रौं क्ष्र्ह्लूं पूंसकह्लमक्षखब्रूं चेतनानाड्यधिष्ठात्री निमित्तकुलतत्त्वक्रमसिद्धा स्थितिकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति नासापुटे न्यासः ।

(१८) खफ्रक्ल्रूं खफ्रक्लां खफ्रक्लीं खफ्रक्लैं छ्र्र्क्षह्लीं भ्रीं जरक्रीं रह्लां × (ध्वजकूटम्?) गालिनीनाड्यधिष्ठात्री काली देवता आभास कुलतत्त्वक्रमसिद्धा काली कौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति नेत्रे न्यासः ।

(१९) खफ्रछ्रां खफ्रछ्रीं खफ्रछ्रूं खफ्रक्लौं रह्लूं हस्फ्रें हस्ख्फ्रें रह्लीं स्हक्लव्य्रक्ष्रीं धमनीनाड्यधिष्ठात्री काली देवता चैतन्यकुलतत्त्वक्रमसिद्धा मेधाकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति भ्रुवौ न्यासः ।

(२०) खफ्रछ्रैं खफ्रें रह्लौं फ्रम्रग्लऊं ध्रीं खफ्रछ्रौं रह्लें फ्रम्रग्लईं कम्लक्षसहब्लूं कपिलानाड्यधिष्ठात्री काली देवता प्रत्ययकुलतत्त्वक्रमसिद्धा पुष्टिकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति मणिबन्धे न्यासः ।

(२१) फ्रम्रग्लऐं फ्रम्रग्लऔं रक्ष्रीं रक्ष्रीं रफ्रीं फ्रखभ्रां जरक्रीं रक्ष्रैं × (सेतुकूटम् ?) विश्वदूता नाड्यधिष्ठात्री काली देवता प्रबोधकुलतत्त्वक्रमसिद्धा श्रद्धाकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति शङ्खे न्यासः ।

(२२) फ्रखभ्रूं फ्रखभ्रीं रछ्रीं रक्ष्रूं रझ्रीं छ्रखफ्रीं × × (वक्त्रकवचे) ज्रम्लक्षह्लछ्रीं धारिणीनाड्यधिष्ठात्री काली देवता आवेशकुलतत्त्वक्रमसिद्धा पूर्णाकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति ब्रह्मरन्ध्रे न्यासः ।

(२३) × × × (पारिजात इष्टि सेतु बीजानि) फ्रख्भ्रैं रक्ष्रौं फ्रख्भ्रों × × (जगतावृत्तिकं ब्रह्मकपालं) म्ररयक्षक्षस्हफ्रीं धोरिणी नाड्यधिष्ठात्री काली देवता निर्वाणकुलतत्त्वक्रमसिद्धा चन्द्राकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति शिखान्यासः ।

(२४) रज्रीं च्रीं रफ्रें खफ्रछ्रीं फ्रख्भ्रौं हसखफ्रक्ष्रीं हस्ख्फ्रौं ख्फ्रौं छ्रस्हक्षब्लश्रीं लम्बिकानाड्यधिष्ठात्री समयकुलतत्त्वक्रमसिद्धा नन्दाकौलिकी देव्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः इति कन्धरे न्यासः ।

(२५) हस्ख्फ्रें ख्फ्छ्रूं खफछ्रैं क्षरस्त्रीं खफ्छ्रों क्षरस्त्रखफ्रूं ब्लूं हल्क्षें मह्लक्ष्लव्य्रऊं कैवल्या नाड्यधिष्ठात्री जीवात्मकुलतत्त्वक्रमसिद्धा कल्पाकौलिकी देव्यम्बा श्रींपादुकां पूजयामि नमः इति व्यापके सर्वशारीरे न्यासः ।

शतद्वयमावश्यकमपेक्षितं च बीजानां किन्तु इह ततोऽधिकानि दश बीजानि अधोलिखितानि तेषां प्रसङ्गे विचार आवश्यकः । ह्फ्रीं ह्फ्रूं क्ष्रस्त्रैं क्ष्रस्त्रं छ्रक्षह्लां इफ्रौं हफ्रें । हसखफ्रें × (महाकल्पस्थायी) ।

इति कुलतत्त्वन्यासः ।

७. **सिद्धिचक्रन्यासः**

(१) ओं क्लीं श्रीं ह्लीं फ्रें कामरूपगह्वरे महानुभावायै योगिनीदेवतायै स्तम्भनसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति ब्रह्मरन्ध्रे न्यासः ।

(२) ओं क्रीं क्लूं स्त्रीं फ्रें पूर्णगिरौ महानुभावायै अप्सरदेवतायै मोहनसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति हृदये न्यासः ।

(३) ओं स्क्रों हूं मां फ्रें आनर्तविषये महानुभावायै डाकिनीदेवतायै वशीकरणसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति जठरे न्यासः ।

(४) ओं क्षौं ग्लौं ग्लूं फ्रें सौराष्ट्रदेशे महानुभाजायै चामुण्डादेवतायै मारणसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति कफोणिद्वये न्यासः ।

(५) ओं जूं ह्लों ह्लें फ्रें कश्मीरमण्डले महानुभावायै भैरवीदेवतायै आकर्षणसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति पार्श्वद्वये न्यासः ।

(६) ओं स्हौः क्ल × (वटी) फ्रें कोलापुरे महानुभावायै राक्षसीदेवतायै उच्चाटनसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति अंसयोर्न्यासः ।

(७) ओं रक्षश्रीं झमरयऊं ज्रौं फ्रें कोशलपत्तने महानुभावायै भूतिनीदेवतायै द्वेषसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति कपोलयोर्न्यासः ।

(८) ओं प्रैं र्प्रौं फ्रें काञ्चीनगरे महानुभावायै गुह्यकीदेवतायै द्रावणसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति नेत्रयोर्न्यासः ।

(९) ओं रह्लैं रफ्रैं रक्ष्रें फ्रें काश्यूषरे महानुभावायै जम्भकीदेवतायै शोषणसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति कर्णयोर्न्यासः ।

(१०) ओं क्ष्रौं क्लैं रफ्रौं फ्रें वराहक्षेत्रे महानुभावायै गन्धर्वीदेवतायै मूर्च्छनसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति नासापुटयोर्न्यासः ।

(११) ओं रक्ष्रों रस्त्रैं रस्त्रौं फ्रें जालन्धरतटे महानुभावायै किन्नरीदेवतायै क्षोभणसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति सृक्कद्वये न्यासः ।

(१२) ओं खफ्रीं ब्रीं ब्लौं फ्रें काम्पिल्यप्रदेशे महानुभावायै कूष्माण्डीदेवतायै सन्त्राससिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति भ्रुवोर्न्यासः ।

(१३) ओं प्रीं छ्रीं फ्रैं फ्रें मथुरापुर्यां महानुभावायै विद्याधरीदेवतायै उन्मादसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति ललाटे न्यासः ।

(१४) ओं प्रूं ह्रूं फ्रूं फ्रें नैमिषारण्ये महानुभावायै यक्षिणीदेवतायै व्यजनसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति चिबुके न्यासः ।

(१५) ओं श्रीं सौः स्त्रों फ्रें लङ्कापर्वते महानुभावायै वैष्णवीदेवतायै खड्गसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति जानुद्वये न्यासः ।

(१६) ओं रक्ष्रीं प्रौं भ्रीं अवन्तीनगर्यां महानुभावायै सिद्धादेवतायै खेचरीसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति गुदे न्यासः ।

(१७) ओं खफ्रूं हस्फ्रीं हस्फ्रूं फ्रें कोंकणजनपदे महानुभावायै महेश्वरीदेवतायै कामरूपत्वसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति लिङ्गे न्यासः ।

(१८) ओं खफ्रें ह्क्षम्लैं छ्ररक्षह्लीं फ्रें पाञ्चालग्रामे महानुभावायै घोणकीदेवतायै वेतालसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति नाभौ न्यासः ।

(१९) ओं खफ्रौं रश्रीं रप्रीं फ्रें उड्डियानपृष्ठे महानुभावायै ब्राह्मणीदेवतायै हूं फट् नमः स्वाहा इति बिन्दौ न्यासः ।

(२०) ओं हस्फ्रों छ्ररक्षह्लैं रह्लछ्ररक्षह्लौं फ्रें गोमन्थशिखरे महानुभावायै कौमारीदेवतायै यक्षिणीसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति मूलाधारे न्यासः ।

(२१) ओं हस्फ्रौं रक्षफ्रछ्रीं रक्षफ्रछ्रूं फ्रें पौण्ड्रककानने महानुभावायै वाराहीदेवतायै गुटिकासिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति वदने न्यासः ।

(२२) ओं रजझ्रक्ष्रैं रजझ्रक्ष्रौं रछ्रीं फ्रें करवीरराजधान्यां महानुभावायै नारसिंहीदेवतायै धातुवादसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति कराग्रयोर्न्यासः ।

(२३) ओं रजझ्रक्ष्रूं हस्खफ्रीं हस्खफ्रौं फ्रें कलिङ्गभूभागे महानुभावायै ऐन्द्रीदेवतायै अन्तर्धानसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति पादाग्रयोर्न्यासः ।

(२४) ओं हस्खफ्रैं रजझ्रक्ष्रीं क्षरह्लूं फ्रें मेदिनीतले महानुभावायै गुह्यकालीदेवतायै अणिमाद्यष्टसिद्धये हूं फट् नमः स्वाहा इति सर्वशरीरव्यापके न्यासः ।

इति सिद्धिचक्रन्यासः ।

८. कैवल्यन्यासः

(१) ओं ऐं क्लीं श्रीं छ्रीं क्रों क्रीं हौं हूं रक्षक्रींऊं कुण्डलिनीचक्रे योगमार्गेण कैवल्यदायिनी गुह्यातिगुह्यतरशक्तिरूपा ब्रह्मवस्तुप्रत्ययाम्बा

प्रसीदताम् ओं स्वाहा इति गुदे न्यासः ।

(२) आं क्षौं क्रौं स्त्रीं ह्लीं फ्रें जूं स्हौः सौः सहक्षम्लव्य्रईऊं स्वाधिष्ठानचक्रे योगमार्गेण कैवल्यदायिनी गुह्यातिगुह्यतरशक्तिरूपा विष्णुवस्तुप्रत्ययाम्बा प्रसीदताम् ओं स्वाहा इति लिङ्गे न्यासः ।

(३) ईं रक्षछ्रीं रक्षछ्रीं क्लां क्लां रछ्रीं रछ्रीं नौं नौं क्षस्हम्लव्य्रईऊं मणिपूरकचक्रे योगमार्गेण कैवल्यदायिनी गुह्यातिगुह्यतरशक्तिरूपा रुद्रवस्तुप्रत्ययाम्बा प्रसीदताम् ओं स्वाहा इति नाभौ न्यासः ।

(४) फ्रों रफ्रों फ्रौं रफ्रौं फ्रीं फ्रूं ब्लौं स्हौं क्ष्रौं क्षरहम्लव्य्रईऊं अनाहतचक्रे योगमार्गेण कैवल्यदायिनी गुह्यातिगुह्यतरशक्तिरूपा कुमारवस्तुप्रत्ययाम्बा प्रसीदताम् ओं स्वाहा इति जठरे न्यासः ।

(५) ह्लूं ह्लैं ह्लौं रश्रीं रश्रूं रश्रें रश्रों रफ्रीं ख्रीं क्षस्हम्लव्य्रईऊं क्षह्लम्लव्य्रईऊं विशुद्धचक्रे योगमार्गेण कैवल्यदायिनी गुह्यातिगुह्यतरशक्तिरूपा ईश्वरवस्तुप्रत्ययाम्बा प्रसीदताम् ओं स्वाहा इति हृदये न्यासः ।

(६) रथ्रीं रघ्रीं खफ्रें जरक्रीं × (एकावली) क्षरह्लीं क्षरह्लूं रज्रीं रझ्रीं क्षरहम्लव्य्रईऊं रक्षस्हम्लव्य्रईऊं आज्ञाचक्रे योगमार्गेण कैवल्यदायिनी गुह्यातिगुह्यतरशक्तिरूपा कुलवस्तुप्रत्ययाम्बा प्रसीदताम् ओं स्वाहा इति घण्टिकायां न्यासः ।

(७) क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्रैं हसखफ्रीं हसखफ्रूं रह्लीं रह्लूं रह्लैं डां लक्षमह्लजरक्रंव्य्रऊं पराचक्रे योगमार्गेण कैवल्यदायिनी गुह्यातिगुह्यतरशक्तिरूपा शक्तिवस्तुप्रत्ययाम्बा प्रसीदताम् ओं स्वाहा इति कण्ठे न्यासः ।

(८) रस्त्रैं रस्त्रौं रक्ष्रीं रक्ष्रीं रस्त्रीं रस्त्रूं हसखफ्रें ह्स्ख्फ्रैं ह्स्ख्फ्रौं ब्रकम्लब्लक्लऊ पश्यन्तीचक्रे योगमार्गेण कैवल्यदायिनी गुह्यातिगुह्यतरशक्तिरूपा शिवावस्तुप्रत्ययाम्बा प्रसीदताम् ओं स्वाहा इति वदने न्यासः ।

(९) छ्ररक्ष्ह्लैं छ्ररक्षह्लौं रह्लछ्ररक्षह्लीं रह्लछ्ररक्षह्लूं खफ्रीं खफ्रूं खफ्रैं खफ्रां ह्स्फ्रौं हस्लक्षकमह्लव्रूं मध्यमाचक्रे योगमार्गेण कैवल्यदायिनी गुह्यातिगुह्यतरशक्तिरूपा सिद्धिवस्तुप्रत्ययाम्बा प्रसीदताम् ओं स्वाहा इति कूर्चे न्यासः ।

(१०) ह्स्फ्रीं ह्स्फ्रूं ह्स्फ्रैं रह्लछ्ररक्षह्लैं रह्लछ्ररक्षह्लौं र्क्ष्रीं र्क्ष्रूं र्क्ष्रैं र्क्ष्रौं स्हजहलक्षम्लवनऊं वैखरीचक्रे योगमार्गेण कैवल्यदायिनी गुह्यातिगुह्यतरशक्तिरूपा ज्ञानवस्तुप्रत्ययाम्बा प्रसीदताम् ओं स्वाहा इति इत्यलिके न्यासः ।

(११) खफ्रक्ष्रीं खफ्रक्ष्रूं खफ्रक्ष्रैं खफ्रक्ष्रौं खफ्छ्रीं खफ्छरूं खफ्छ्रैं क्प्रीं खफ्रीं सग्लक्षमहरह्लूं ब्रह्मरन्ध्रचक्रे योगमार्गेण कैवल्यदायिनी गुह्याति-

गुह्यतरशक्तिरूपा मोक्षवस्तुप्रत्ययाम्बा प्रसीदताम् ओं स्वाहा इति ब्रह्मरन्ध्रे न्यासः ।

इति कैवल्यन्यासः ।

९. अमृतन्यासः

इह पञ्चविंशतिस्थानेषु न्यासनिर्देशः । तत्रादौ चत्वारिंशन्मिताः वीजकूटाः सर्वस्थानन्यासेषु निवेश्याः । अत एवादिन्यासमन्त्रे एव केवलं तन्निर्देशोऽत्र विधीयते । एवमन्ते ‘इदममृतीकृत्य परमात्मनि हुत्वा स्वयं जुषस्व स्वाहा’ इत्यपि सर्वस्मिन् मन्त्रे योज्यम् । परिवर्तनीयमन्त्राः उभयोरुक्तयोर्मध्ये निवेश्यास्ते चाधो निर्दिश्यन्त स्थानानि चात्रोल्लिखितानि यथाक्रमं न्यसनीयानि ।

(१) ओं ऐं ह्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं आं क्रों क्षूं स्क्रों हौं ब्लौं स्हक्लह्रीं फ्रों ग्लूं स्हौः ह्स्ख्फ्रें फ्रें क्लूं क्षमब्लहकयह्रीं रजहलक्षमऊं हक्लह्रवडकखऐं कसवहलक्षमऔं ब्रकम्लब्लक्लऊं क्रैं सौः ज्रं रम्लब्रीं स्फ्ल्ह्क्षूं प्रीं ज्रौं ह्म्रीं ठ्रीं ध्रीं ल्क्ष्मह्र ज्रक्रंव्रऊं थ्रीं द्रैं भ्रूं क्रौं ज्ञाननामात्मने शिवाय इदममृतीकृत्य परमात्मनि हुत्वा स्वयं जुषस्व स्वाहा इति शिरसि न्यासः ।

(२) ....इच्छानामात्मने ईश्वराय..........स्वाहा इति ललाटे न्यासः ।

(३) ....कृतिनामात्मने शुद्धये.........स्वाहा इत्यास्ये न्यासः ।

(४) ....धर्मनामात्मने विद्यायै..........स्वाहा इति कण्ठे न्यासः ।

(५) ....वैराग्यनामात्मने लिङ्गाय..........स्वाहा इति दक्षस्कन्धे न्यासः ।

(६) ....ऐश्वर्यनामात्मने जीवाय..........स्वाहा इति वामस्कन्धे न्यासः ।

(७) ....शक्तिनामात्मने आत्मने........स्वाहा इति दक्षकफोणौ न्यासः ।

(८) ....कैवल्यनामात्मने सूक्ष्माय........स्वाहा इति वामकफोणौ न्यासः ।

(९) ......उत्साहनामात्मने अविद्यायै......स्वाहा इति दक्षमणिबन्धे न्यासः ।

(१०) ....धैर्यनामात्मने नियत्यै.......स्वाहा इति वाममणिबन्धे न्यासः ।

(११) ....गुह्यनामात्मने कालाय.......स्वाहा इति दक्षकराङ्गुलिमूले न्यासः ।

(१२) ....विवेकनामात्मने कलायै......स्वाहा इति वामकराङ्गुलिमूले न्यासः ।

(१३) ....विकारनामात्मने रागाय..........स्वाहा इति दक्षकराग्रे न्यासः ।

(१४) ....सुखनामात्मने कुलाय..........स्वाहा इति वामकराग्रे न्यासः ।

(१५) ....आनन्दनामात्मने अमृताय......स्वाहा इति दक्षवंक्षणे न्यासः ।

(१६) ....संज्ञानामात्मने बुद्धये..........स्वाहा इति वामवंक्षणे न्यासः ।

(१७) ....पुण्यनामात्मने मायायै..........स्वाहा इति दक्षजानौ न्यासः ।

(१८) ....क्रियानामात्मने मनसे..........स्वाहा इति वामजानौ न्यासः ।

(१९) ....विकृतिनामात्मने कामाय..........स्वाहा इति दक्षगुल्फे न्यासः ।

(२०) ....प्रकृतिनामात्मने रजसे..........स्वाहा इति वामगुल्फे न्यास: ।
(२१) ....अहङ्कारनामात्मने सत्त्वाय..........स्वाहा इति दक्षपादे न्यास: ।
(२२) ....महन्नानामात्मने तमसे..........स्वाहा इति वामपादे न्यास: ।
(२३) ....तन्मात्रनामात्मने युक्तये........स्वाहा इति दक्षचरणाग्रे न्यास: ।
(२४) ....लिङ्गनामात्मने सिद्धये........स्वाहा इति वामचरणाग्रे न्यास: ।
(२५) ....परमात्मनामात्मने सामरस्य.......स्वाहा इति व्यापके न्यास: ।

इत्यमृतन्यास: ।

अमृतन्यासानुकल्प:

इहामृतन्यासानुकल्पे चत्वारिंशन्मन्त्रस्थाने नवैवाधो निर्दिष्टा: मन्त्रा: प्रत्येकस्मिन् मन्त्रे भविष्यन्ति अन्यत्सर्वं यथापूर्वं स्यात् ।

ते चादिस्था: मन्त्रा:—'ओं ऐं ह्लीं छ्रीं क्ष्रौं ख्फ्रें फ्रें हूं हौं' इति ।

१०. जयविजयन्यास:

(१) ओं ह्लीं क्लीं हौं श्रीं हूं क्रौं क्रों क्षीं शिवलोके सदाशिवाराधितायै एकवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां स्ह्रज्ह्ल्क्ष म्लवनऊं तस्यै जयानुविजयप्रदायै जयायै विजयायै नम: स्वाहा इति ललाटे न्यास: ।

(२) ऐं स्त्रीं ईं फ्रें फ्रों ग्लूं ग्लैं क्रीं छ्रीं वरुणलोके वरुणाराधितायै त्रिवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां ब्लक्षसमकह्लझव्य्रऊं तस्यै जयानुविजयप्रदायै जयायै विजयायै नम: स्वाहा इति मुखवृत्ते न्यास: ।

(३) आं फ्रौं स्फ्रों ग्लीं ग्लौं क्ष्लौं क्ष्लौं क्लौं ह्ली: अदितिलोके अदित्याराधितायै पञ्चवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां म्लकह्लक्षरस्त्रीं तस्यै जयानुविजयप्रदायै जयायै विजयायै नम: स्वाहा इति कूर्चे न्यास: ।

(४) क्रौं ह्ल: नैं नौं क्रीं क्रूं जूं स: सौ: शचीलोके शच्याराधितायै षट्वक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां ह्लक्षकमह्लमव्य्रऊं तस्यै जयानुविजयप्रदायै जयायै विजयायै नम: स्वाहा इति चिबुके न्यास: ।

(५) स्हौ: क्ष्रौं ब्लैं ब्लौं ग्रैं ग्रौं क्रैं स्हौं खफ्रीं सप्तर्पिलोके सप्तर्ष्याराधितायै सप्तवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां खहलक्षक्वक्षलह्क्ष तस्यै जयानुविजयप्रदायै जयायै विजयायै नम: स्वाहा इति ग्रीवायां न्यास: ।

(६) रक्ष्छ्रीं क्ष्रूं क्लं औं (फीं ?) ज्रूं ठ्रीं ध्रीं थ्रीं वसुलोके वस्वाराधितायै अष्टवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां नद्क्षट्क्षव्य्रऊं छ्लह्क्ष्ल्क्ष फ्रग्लऊं तस्यै जयानुविजयप्रदायै जयायै विजयायै नम: स्वाहा इति कण्ठे न्यास: ।

(७) र्क्ष्श्रीं र्स्फ्रौं प्रीं फ्रीं ट्रीं त्रीं द्रीं फ्रीं श्रीं यमलोके मृत्युकालाराधितायै नववक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां ह्लक्षकमब्रूं तस्यै जयानुविजयप्रदायै जयायै विजयायै नम: स्वाहा इति हृदये न्यास: ।

(८) तूः झमरयऊं स्त्रैं स्त्रौं फीं फां क्ष्लौं व्रूं म्रां भूलोके मुनिभूपराधितायै दशवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां ट्क्षसन्रम्लें तस्यै जयानुविजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति जठरे न्यासः ।

(९) छ्रैं छ्रौं रक्रां रक्रीं रक्रूं ड्रीं ढ्रीं फ्रां थ्रूं रुद्रलोके रुद्राराधितायै एकादशवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां सहठ्लक्षह्लभक्रीं तस्यै जयानुविजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति नाभौ न्यासः ।

(१०) फ्रूं फ्रैं प्रूं प्रैं प्रौं थ्रैं थ्रौं क्लैं ख्रैं सूर्यलोके द्वादशादित्याराधितायै द्वादशवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां लह्लकक्ष्मस्ह्व्य्रऐं तस्यै जयानुविजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति गुदे न्यासः ।

(११) क्ष्रौं क्ष्रूं ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं क्लां क्लां विश्वेदेवलोके विश्वेदेवाराधितायै त्रयोदशवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां रजक्षमब्लह्लूं तस्यै जयानुविजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति दक्षकटौ न्यासः ।

(१२) रश्रीं रफ्रें ख्फ्छ्रीं ख्फ्छ्रूं ह्स्ख्फ्रें ख्फ्छ्रें रह्लां रह्लीं रह्लूं इन्द्रलोके इन्द्राराधितायै चतुर्दशवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां रक्षलह्लमस्ह्कव्रूं तस्यै जयानुविजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति वामकटौ न्यासः ।

(१३) रह्लैं रह्लौं रक्ष्रां रक्ष्रीं रक्ष्रूं रक्ष्रैं रक्ष्रौं क्ष्रां क्ष्रीं अग्निलोके अग्न्याराधितायै पञ्चदशवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां रक्षम्लह्ल सछव्य्रऊं तस्यै जयानुविजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति वंक्षणे न्यासः ।

(१४) क्ष्रूं ह्स्ख्फ्रां ह्स्ख्फ्रीं ह्स्ख्फ्रूं ह्स्ख्फ्रैं ह्स्ख्फ्रौं ह्स्ख्फ्रिं ह्स्ख्फ्रुं ह्स्ख्फ्रौं सिद्धलोके सिद्धाराधितायै षोडशवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां ख्ल्ह्लब्नग्क्षरछ्रीं तस्यै जयानुविजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति दक्षोरौ न्यासः ।

(१५) ह्स्ख्फ्रौं ह्स्ख्फ्रः रझ्रीं स्हेः ल्यूं फ्लीं रप्रां रप्रूं रप्रें साध्यलोके साध्याराधितायै सप्तदशवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां ख्क्षमब्लईं तस्यै जयानुविजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति वामारौ न्यासः ।

(१६) रप्रैं रप्रों रप्रौं ख्फ्रां ख्फ्रीं ख्फ्रूं ख्फ्रैं ख्फ्रों ख्फ्रौं यक्षलोके कुबेराराधितायै अष्टादशवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां लक्षह्लमकस्ह्व्य्रऊं तस्यै जयानुविजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति दक्षजङ्घे न्यासः ।

(१७) ख्फ्छ्रौं रक्लीं रक्लूं रक्लैं रछ्रीं रछ्रूं रछ्रैं रछ्रौं रस्त्रैं निर्ऋतिलोके राक्षसाराधितायै ऊनविंशतिवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां कमहलचहलक्ष्रूज्रीं तस्यै जयानुविजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति वामजङ्घे न्यासः ।

(१८) रस्त्रौं क्ष्रस्त्रीं क्ष्रस्त्रूं क्ष्रस्त्रैं रज्रूं ज्रैं ह्स्ख्फ्रौं रक्लैं रक्लौं किन्नरलोके किन्नराराधितायै विंशतिवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां ट्ह्ल्क्षद्रड्लरफ्रीं

तस्यै जयानुविजयप्रदायै जयायै विजयायै नम: स्वाहा इति दक्षपार्ष्णौ न्यास: ।

(१९) ब्रच्रां रझ्रौं क्ष्रस्त्रौं × (परिघ:) रफ्रां रफ्रीं रफ्रूं रफ्रैं रफ्रौं अक्षरलोके अप्सरनिवहाराधितायै एकविंशतिवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां खफ्लक्षह्लमद्दकव्रूं तस्यै जयानुविजयप्रदायै जयायै विजयायै नम: स्वाहा इति वामपार्ष्णौ न्यास: ।

(२०) हस्फीं हस्फ्रूं हस्फ्रैं हस्फ्रौं ख्रीं ख्रीं ख्रूं ख्रों रभ्रीं भासुरलोके भासुराराधितायै द्वाविंशतिवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां ग्लक्षकमह्लव्य्रऊं तस्यै जयानुविजयप्रदायै जयायै विजयायै नम: स्वाहा इति दक्षप्रपदे न्यास: ।

(२१) रभ्रूं खफ्रभ्रूं रभ्रौं क्ष्लौ: रम्रीं रम्रूं रम्रैं रम्रौं स्हें गन्धर्वलोके गन्धर्वाराधितायै चतुर्विंशतिवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां च्लक्ष्मस्हव्य्रख्रीं तस्यै जयानुविजयप्रदायै जयायै विजयायै नम: स्वाहा इति वामप्रपदे न्यास: ।

(२२) ल्यूं प्लूं प्लीं फ्लीं छ्ररक्ष्ह्लां क्ष्रह्लीं क्ष्रह्लूं छ्ररक्ष्ह्लैं रछ्रां विद्याधरलोके विद्याधराराधितायै त्रिंशत्वक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां भक्ष्लरम् हस्ख्फ्रूं तस्यै जयानुविजयप्रदायै जयायै विजयायै नम: स्वाहा इति दक्षांसे न्यास: ।

(२३) ह्फ्रीं ह्फ्रूं ह्फ्रैं ह्फ्रौं रह्लछ्ररक्षह्लां रह्लछ्ररक्षह्लीं रह्लछ्ररक्षह्लूं रह्लछ्ररक्षह्लैं रह्लछ्ररक्षह्लौं प्रजापतिलोके प्रजापत्याराधितायै षट्त्रिंशत्वक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां प्क्षलव्रभ्रफ्रूं तस्यै जयानुविजयप्रदायै जयायै विजयायै नम: स्वाहा इति वामांसे न्यास: ।

(२४) हलक्षीं ह्ल्क्षूं ह्ल्क्षैं ह्ल्क्षौं रक्ष्रीं रक्ष्रूं रक्ष्रैं रक्ष्रौं रम्रैं तुषितलोके तुषिताराधितायै षष्टिवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां रक्षक्रीं तस्यै जयानु विजयप्रदायै जयायै विजयायै नम: स्वाहा इति पार्श्वे न्यास: ।

(२५) फहलक्षूं फहलक्षैं फहलक्षौं क्षरस्त्रौं रक्षफ्रछ्रां रक्षफ्रछ्रीं रक्षफ्रछ्रूं रक्षफ्रछ्रैं रक्षफ्रछ्रौं वायुलोके वाय्वाराधितायै अशीतिवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां क्षम्लकस्हरयव्रूं तस्यै जयानु विजयप्रदायै जयायै विजयायै नम: स्वाहा इति पृष्ठे न्यास: ।

(२६) (रजझ्रक्ष्रीं रजझ्रक्ष्रूं रजझ्रक्ष्रैं रजझ्रक्ष्रौं ?) ख्फ्रक्ष्रां खफ्रक्ष्रीं खफ्रक्ष्रूं खफ्रक्ष्रैं खफ्रक्ष्रौं फ्रखभ्रीं फ्रखभ्रूं खफ्रह्लीं खफ्रह्लूं दानवलोके दानवाराधितायै शतवक्त्रायै गुह्यकाली प्रीयतां ह्लमक्षव्रलखफ्रऊं तस्यै जयानु विजयप्रदायै जयायै विजयायै नम: स्वाहा इति ब्रह्मरन्ध्रे न्यास: ।

(२७) खफ्रछ्रीं खफ्रछ्रूं फ्रखभ्रैं खफ्रह्लौं फ्रखभ्रौं हस्खफ्रक्ष्रीं हस्खफ्रक्ष्रूं खफ्रीं क्षरस्त्रखफ्रूं प्रलयलोके महाभैरवाराधितायै सहस्रवक्त्रायै गुह्यकाली

प्रीयतां क्षमक्लह्रहसव्य्रऊं तस्यै जयानु विजयप्रदायै जयायै विजयायै नमः स्वाहा इति सार्वशरीरव्यापके न्यासः ।

इति जयविजयन्यासः ।

११. भावनान्यासः (८।६-१२८)

(१) ओं ह्रीं श्रीं क्लीं हौं क्षौं हूं क्षूं स्हजह्ल्क्ष्भ्लवनऊं धूमकाली रलहक्षम्लखफछ्रूं दक्षपादाङ्गुल्यग्रं भावयामि तेनाहं नागलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि क्लफ्रीं फट् नमः स्वाहा ।

(२) क्रां क्रीं क्रूं क्रें क्रैं क्रों क्रौं क्रः हक्लह्रवडकखऐं जयकाली क्ष्लसहमव्रयूं वामपादाङ्गुल्यग्रं भावयामि तेनाहं भूलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि क्लफ्रूं फट् नमः स्वाहा ।

(३) ऐं रक्रां रक्रीं रक्रूं रक्रें रक्रैं रक्रों रक्रौं क्षमब्लहकयह्रीं उग्रकाली समहलक्षरक्ष्रमस्त्रूं दक्षपादाङ्गुलीमूलं भावयामि तेनाहं भुवर्लोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि क्लफ्रैं फट् नमः स्वाहा ।

(४) आं फ्रां फ्रीं फ्रूं फ्रें फ्रैं फ्रों फ्रौं कसवहलक्षमऔं ज्वालाकाली क्षग्लफ्रस्हरफ्रीं वामपादाङ्गुलीमूलं भावयामि तेनाहं स्वर्लोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि क्लफ्रों फट् नमः स्वाहा ।

(५) ईं रच्रां रच्रीं रच्रूं रच्रें रच्रैं रच्रों रच्रौं लक्षमह्रजरक्रव्य्रऊं धनकाली क्लह्र क्षलहक्षमव्य्रईं दक्षगुल्फं भावयामि तेनाहं सूर्यलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्रफ्रीं फट् नमः स्वाहा ।

(६) ऊं ग्लां ग्लीं ग्लूं ग्लैं ग्लौं स्फ्रों स्फ्रौं रजहलक्षमऊं घोरनादकाली हक्षम्लब्रसहरक्लीं वामगुल्फं भावयामि तेनाहं चन्द्रलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्रफ्रूं फट् नमः स्वाहा ।

(७) ओं रट्रां रट्रीं रट्रूं रट्रें रट्रैं रट्रों रट्रौं सग्लक्षमहरह्रूं कल्पान्तकाली ह्रसग्लक्षव्य्रऊं दक्षजङ्घां भावयामि तेनाहं भूतलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्रफ्रौं फट् नमः स्वाहा ।

(८) नौं ब्लूं क्लूं क्लैं क्लौं ब्लां श्रह्रैं ब्लौं ब्रकम्लब्लक्लऊं वेतालकाली सह्रब्रह्रखफ्रयीं वामजङ्घां भावयामि तेनाहं प्रेतलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्रफ्रैं फट् नमः स्वाहा ।

(९) रत्रां रत्रीं रत्रूं रत्रें रत्रैं रत्रों रत्रौं क्लां क्वलह्रझकह्रनसक्लईं कङ्कालकाली क्ष्मक्लरक्षलहक्षव्य्रऊं दक्षजानु भावयामि तेनाहं पैशाचलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्रखफ्रां फट् नमः स्वाहा ।

(१०) ह्रीं स्त्रीं जूं सः स्हौः सौः स्हें स्हौं ब्लक्षमकह्रव्य्रईं नग्नकाली छ्रम्लक्षफ्लह्रहम्रीं वामजानु भावयामि तेनाहं पितृलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्रखफ्रीं फट् नमः स्वाहा ।

(११) श्रीं रप्रां रप्रीं रप्रूं रप्रें रप्रैं रप्रों रप्रौः क्लक्षसहमव्य्रऊं घोरघोरतराकाली ज्रलह्लफ्रव्य्रऊं दक्षोरुं भावयामि तेनाहमप्सरोलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्लखफ्रूं फट् नमः स्वाहा ।

(१२) ज्रां ज्रीं ज्रूं ज्रैं ज्रौं क्षूं क्षूः क्षौः ह्लसहकमक्षव्रऐं दुर्जयकाली हम्लक्षव्रसह्लीं वामोरुं भावयामि तेनाहं गन्धर्वलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्लखफ्रैं फट् नमः स्वाहा ।

(१३) रख्रां रख्रीं रख्रूं रख्रें रख्रैं रख्रों रख्रौं ज्रं सहठ्लक्षह्लमक्रीं मन्थानकाली म्लक्षफ्लछ्रीं दक्षवंक्षणं भावयामि तेनाहं कैन्नरलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि स्त्रखफ्रीं फट् नमः स्वाहा ।

(१४) क्षां क्षीं क्षैं प्रां प्रीं प्रूं प्रैं प्रौं स्हलकह्लक्षूं संहारकाली थहरखफ्रह्लमब्लूं वामवंक्षणं भावयामि तेनाहं वैद्याधरलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि स्त्रखफ्रूं फट् नमः स्वाहा ।

(१५) रछ्रां रछ्रीं रछ्रूं रछ्रें रछ्रैं रछ्रों रछ्रौं म्रीं हस्लक्षकमह्लव्रूं आज्ञाकाली रहहक्लव्य्रऊं दक्षकटिं भावयामि तेनाहं यक्षलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि स्त्रखफ्रैं फट् नमः स्वाहा ।

(१६) ट्रीं ठ्रीं ड्रीं ढ्रीं ण्रीं भ्रूं ध्रीं म्रैं महव्य्रएं रौद्रकाली सफक्ष्लमहप्रक्लीं वामकटिं भावयामि तेनाहं वासवलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि स्त्रखफ्रौं फट् नमः स्वाहा ।

(१७) रग्रां रग्रीं रग्रूं रग्रें रग्रैं रग्रों रग्रौं फ्ह्ल्क्षां लक्षह्लमकसहव्य्रऊं तिग्मकाली ब्रहठ्रम्लह्लूं दक्षककुन्दरं भावयामि तेनाहं वैश्वलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि श्रखफ्रूं फट् नमः स्वाहा ।

(१८) म्लैं म्लूं म्लौं थ्रां थ्रीं थ्रूं थ्रैं थ्रौं सक्षलहमयत्रूं कृतान्तकाली रक्षलहव्य्रईं वामककुन्दरं भावयामि तेनाहं सिद्धलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि श्रखफ्रैं फट् नमः स्वाहा ।

(१९) ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं ब्जीं ब्जूं ब्जैं सकह्लम्क्षखव्रूं महारात्रिकाली चमट्क्षव्य्रछ्रीं दक्षिणस्फिचं भावयामि तेनाहं साध्यलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि श्रखफ्रौं फट् नमः स्वाहा ।

(२०) र्ज्रां र्ज्रीं र्ज्रूं र्ज्रे र्ज्रैं र्ज्रों र्ज्रौं फ्यूं सहक्ष्लमह्लज्रूं संग्रामकाली कहफ्लमह्लव्य्रऊं वामस्फिचं भावयामि तेनाहं बुधलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि क्लखफ्रीं फट् नमः स्वाहा ।

(२१) ज्लां ज्लीं ज्लूं ज्लैं ज्लौं ज्लूः ब्रूं प्लूं रक्षखरऊं भीमकाली सनह्ललक्ष्मब्लूं गुदं भावयामि तेनाहं शुक्रलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि क्लख्फ्रूं फट् नमः स्वाहा ।

(२२) क्ष्लौं ब्नैं म्रां र्झ्रां र्झ्रीं र्झ्रूं र्झ्रें र्झ्रैं रक्षक्रूं शवकाली सरम्लक्षह्स्ख्फ्रीं लिङ्गं भावयामि तेनाहं भौमलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि

क्लख्फ्रैं फट् नमः स्वाहा ।

(२३) र्झ्रों र्झ्रौं श्लां श्लीं श्लूं श्लैं श्लौं छ्रह्लूं स्हक्षम्लव्य्रऊं चण्डकाली ब्लक्षफहमछ्रव्रीं वस्ति भावयामि तेनाहं वृहस्पतिलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि क्लख्फ्रौं फट् नमः स्वाहा ।

(२४) स्का: फ्लीं र्श्रां र्श्रीं र्श्रूं र्श्रें र्श्रैं रश्रौं क्षस्हम्लव्य्रऊं रुधिरकाली छ्रम्लक्षव्रकह्लीं नाभिं भावयामि तेनाहं शनिलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि फ्लक्रूं फट् नमः स्वाहा ।

(२५) र्श्रौं ह्लीं स्त्रूं स्त्रें स्त्रैं स्त्रों स्त्रौं स्त्रं क्षह्लम्लव्य्रऊं घोरकाली क्लक्ष्मग्लव्य्रह्लूं जठरं भावयामि तेनाहं तपोलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि फ्लक्रैं फट् नमः स्वाहा ।

(२६) र्ह्लां र्ह्लीं र्ह्लूं र्ह्लें र्ह्लैं र्ह्लों र्ह्लौं स्त्र: भक्ष्लरमह्स्ख्फ्रूं भयङ्करकाली मथहलक्षप्रह्लूं हृदयं भावयामि तेनाहं सप्तर्षिलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि फ्लक्रों फट् नमः स्वाहा ।

(२७) हीं हभ्रीं हैं क्लौं रक्षं यं प्लीं ठ: क्लक्ष्मसहख्व्रीं सन्त्रासकाली हम्लक्ष्मप्लव्रूं दक्षपार्श्वं भावयामि तेनाहं वैराजलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि फ्रक्लों फट् नमः स्वाहा ।

(२८) × (पराको) र्स्त्रां र्स्त्रीं र्स्त्रूं र्स्त्रें र्स्त्रैं रस्त्रों क्ष्मलरसहव्य्रह्लूं प्रेतकाली मक्लक्षकसखफ्रूं वामपार्श्वं भावयामि तेनाहं ध्रुवलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि × (स्वातिः) फट् नमः स्वाहा ।

(२९) च्रां च्रीं च्रूं च्रैं च्रौं भ्रां भ्रैं भ्रौं लगम्क्षखफ्रसह्लूं करालकाली तमहलक्षक्लफ्रग्लूं दक्षचूचुकं भावयामि तेनाहं चन्द्रलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि × (यमलम्) फट् नमः स्वाहा ।

(३०) क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं भ्लां भ्लीं भ्लूं फग्लसहमक्षब्लूं विकरालकाली खहक्षमह्लब्रह्लीं वामचूचुकं भावयामि तेनाहं अग्निलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि × (यमलम्) फट् नमः स्वाहा ।

(३१) रक्ष्रां रक्ष्रीं रक्ष्रूं रक्ष्रैं रक्ष्रौं रम्रां रम्रीं रम्रैं सखक्लक्ष्मध्रयब्लीं प्रलयकाली समतरक्षफछ्रक्लीं दक्षस्कन्धं भावयामि तेनाहं यमलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ज्रैं फट् नमः स्वाहा ।

(३२) ल्क्षां ल्क्षीं ल्क्षूं लक्षें लक्षैं लक्षों लक्षौं ज्रक्रां म्ररयक्ष्क्षसहफ्रीं विभूतिकाली चफ्रक्लह्लमक्ष्रूं वामस्कन्धं भावयामि तेनाहं निर्ऋतिलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि क्ष्रफ्रह्लौं फट् नमः स्वाहा ।

(३३) ह्ग्लां ह्ग्लीं ह्ग्लूं ह्ग्लैं ह्ग्लौं ज्रक्रीं ज्रक्रूं.........(अर्गलं) स्हक्ष्क्षकमफ्रब्रूं भोगकाली दमनडत्क्षसहव्य्रईं दक्षजत्रु भावयामि तेनाहं वरुणलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि क्रख्रीं फट् नमः स्वाहा ।

(३४) ह्ल्क्षां ह्ल्क्षीं ह्ल्क्षूं ह्ल्क्षें ह्ल्क्षैं ह्ल्क्षों ह्ल्क्षौं ज्रक्रें रसमस्त्रह्लव्य्रऊं कालकाली महलक्षलखफ्रव्य्रह्लीं वामजत्रु भावयामि तेनाहं वायुलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि क्रखूं फट् नम: स्वाहा ।

(३५) र्क्लां र्क्लीं र्क्लूं र्क्लें र्क्लैं र्क्लौं ज्रक्रों ज्रम्लक्षह्लछ्रीं वज्रकाली नरक्षलहक्षमव्य्रईं दक्षकक्षं भावयामि तेनाहं कौबेरलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि क्रखैं फट् नम: स्वाहा ।

(३६) फ्ह्ल्क्षां फ्ह्ल्क्षीं फ्ह्ल्क्षूं फ्ह्ल्क्षें फ्ह्ल्क्षैं फ्ह्ल्क्षों फ्ह्ल्क्षौं ज्रक्रौं ब्लक्क्षहमस्त्रछ्रूं विकटकाली ग्लक्षकमह्लस्हव्य्रऊं वामकक्षं भावयामि तेनाहं ईशानलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि क्रखौं फट् नम: स्वाहा ।

(३७) खफ्रां खफ्रीं खफ्रूं खफ्रें खफ्रैं खफ्रों झ्रहब्रक्ष्मसह्लीं विद्याकाली रलहक्षड्म्लव्रखफ्रीं दक्षहनुं भावयामि तेनाहं डाकिनीलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि खफ्रभ्रीं फट् नम: स्वाहा ।

(३८) छ्ररक्ष्ह्लां छ्ररक्ष्ह्लीं छ्ररक्ष्ह्लीं छ्ररक्ष्ह्लूं छ्ररक्ष्ह्लैं सफहलक्षें सफहलक्षीं सफहलक्षूं रहक्षम्लव्य्रअखफछ्रस्त्रह्लीं शक्तिकाली मनटत्क्षफ्लव्य्रऊं वामहनुं भावयामि तेनाहं योगिनीलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि खफ्रम्रूं फट् नम: स्वाहा ।

(३९) सफहलक्षैं ह्स्फ्रां ह्स्फ्रीं ह्स्फ्रूं ह्स्फ्रें ह्स्फ्रैं ह्स्फ्रों ह्स्फ्रौं शम्लह्लव्य्रखफ्रैं कामकलाकाली सनटमत्क्षब्लभ्रीं दक्षसृक्कं भावयामि तेनाहं भैरवीलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि खफ्रभ्रैं फट् नम: स्वाहा ।

(४०) क्षखफ्रें रह्लछ्ररक्षह्लां रह्लछ्ररक्षह्लीं रह्लछ्ररक्षह्लूं रह्लछ्ररक्षह्लैं रह्लछ्ररक्षह्लैं क्षखफ्रैं ढ्रीं हसखफ्रम्लक्षव्य्रऊं दक्षिणकाली जरझ्रह्लमक्षक्लव्य्रऊं वामसृक्कं भावयामि तेनाहं चामुण्डालोकें ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि खफ्रभ्रौं फट् नम: स्वाहा ।

(४१) स्फह्ल्क्षौं ह्सखफ्रां ह्सखफ्रीं ह्सखफ्रूं ह्सखफ्रें ह्सखफ्रैं ह्सखफ्रों ह्सखफ्रौं स्हक्लरक्षमजह्ल खफ्रयूं मायाकाली चखफ्लक्षकस्हखफ्रईंऊं दक्षगण्डं भावयामि तेनाहं लक्ष्मीलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि छ्रह्लीं फट् नम: स्वाहा ।

(४२) क्षब्लीं रक्ष्रीं रक्ष्रूं रक्ष्रैं रक्ष्रौं क्षब्लौं हसखफ्रं हसखफ्र: खफ्रछ्रएव्रह्लक्ष्मत्रह्ररयीं भद्रकाली सहम्क्षलखभ्रक्लीं वामगण्डं भावयामि तेनाहं ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि छ्रह्लूं फट् नम: स्वाहा ।

(४३) रक्षफ्रछ्रां रक्षफ्रछ्रीं रक्षफ्रछ्रूं रक्षफ्रछ्रैं रक्षफ्रछ्रौं क्रह्लां क्रह्लीं क्रह्लूं च्लक्ष्मस्हव्य्रखीं महाकाली खफ्रमसलहक्षग्लऊं दक्षकर्णं भावयामि

तेनाहं वैशाखलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि छ्रह्वैं फट् नमः स्वाहा ।

(४४) रजझ्रक्ष्रीं रजझ्रक्ष्रूं रजझ्रक्ष्रैं रजझ्रक्ष्रौं क्रह्लीं क्रह्लैं खलफ्रूं स्हछ्रक्स्लमरव्य्रईं श्मशानकाली व्य्रक्लक्ष्मछ्रीं वामकर्णं भावयामि तेनाहं ब्रह्मलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि छ्रह्लौं फट् नमः स्वाहा ।

(४५) क्रह्लैं क्रह्लों क्रह्लौं क्रह्लैं क्रह्लौं ह्लक्षफ्लीं खफ्रह्लीं खफ्रह्लूं रक्षफ्रसमहह्लव्य्रऊं कुलकाली खरसफ्रम्लक्षछ्रयूं दक्षनासापुटं भावयामि तेनाहं प्रमथलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्लछ्रीं फट् नमः स्वाहा ।

(४६) खस्त्रूं खस्त्रैं खस्त्रौं खफ्रक्ष्रां खफ्रक्ष्रीं खफ्रक्ष्रूं खफ्रह्लं खफ्रक्ष्रैं व्य्रक्षस्हम्लस्त्रीं नादकाली क्ललरसहमश्रीं वामनासापुटं भावयामि तेनाहं मातृलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्लछ्रूं फट् नमः स्वाहा ।

(४७) खफ्रक्ष्रौं छ्रखफ्रां खफ्रछ्रां × (विवासः) खफ्रह्लीं × (सामुद्रः) म्रैं खफ्रह्लौं खफ्रक्लक्ष्मसभ्रीं मुण्डकाली पत्क्षयह्लक्लखफ्रीं दक्षलोचनं भावयामि तेनाहं उमालोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्लछ्रैं फट् नमः स्वाहा ।

(४८) खफ्रछ्रां खफ्रछ्रीं खफ्रछ्रूं खफ्रछ्रैं खफ्रछ्रौं ग्लब्लीं ग्लब्लूं ग्लब्लैं फलंयक्षकयब्लूं सिद्धिकाली पतक्षयह्लक्लखफ्रीं वामलोचनं भावयामि तेनाहं शिवलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्लछ्रौं फट् नमः स्वाहा ।

(४९) खफ्रक्लां खफ्रक्लीं खफ्रक्लूं खफ्रक्लैं खफ्रक्लौं क्ष्रस्फ्रों क्ष्रम्लौं क्ष्रस्फ्रौं...........(सेतुकूटम् ?) उदारकाली समहक्षव्य्रऊं दक्षकपोलं भावयामि तेनाहं महर्लोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्लक्लीं फट् नमः स्वाहा ।

(५०) क्षख्रीं क्षख्रूं क्षख्रैं क्षख्रौं ज्रब्रैं × (वाहः) सहलक्रीं सहलक्रूं.......... (गह्वरकूटम्) उन्मत्तकाली जरक्षलहक्षम्लव्य्रईं वामकपोलं भावयामि तेनाहं जनोलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्लक्लूं फट् नमः स्वाहा ।

(५१) सहलक्रैं सहलक्रौं क्ष्रज्लीं क्ष्रज्लूं क्ष्रज्लैं फ्रक्लां रस्त्रें रस्त्रैं ट्लव्य्रसम्क्षहछ्रीं सन्तापकाली जरक्षलहक्षम्लव्य्रऊं दक्षभ्रुवं भावयामि तेनाहं तपोलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्लक्लैं फट् नमः स्वाहा ।

(५२) क्रह्लूं रखघ्रूं फ्रथ्रां फ्रथ्रीं फ्रथ्रूं फ्रथ्रैं ब्लछ्रैं ब्लछ्रौं सक्लह्लहसखफ्रक्ष्रीं कापालकाली जररलहक्षम्लव्य्रईं वामभ्रुवं भावयामि तेनाहं सत्यलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ह्लक्लौं फट् नमः स्वाहा ।

(५३) फ्रस्त्रीं फ्रस्त्रूं फ्रस्त्रैं फ्रस्त्रौं क्ष्ब्रीं क्ष्ब्रूं चफलकैं चफलकौं सफ्रकह्लरक्षमश्रीं आनन्दकाली लकछ्रजरक्रीं दक्षशङ्खं भावयामि तेनाहं· रुद्रलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि ब्लछ्रूं फट् नमः स्वाहा ।

(५४) फ्रम्रग्लीं फ्रम्रग्लूं फ्रम्रग्लैं फ्रम्रग्लौं × (मोदकं) क्ष्रक्ष्लूं क्ष्लक्ष्रैं क्ष्लक्ष्रौं तलमक्षफलहक्षत्रीं भैरव काली ब्रक्षम्लसह्लछ्रूं वामशङ्खं भावयामि तेनाहं गोलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि फट् नमः स्वाहा ।

(५५) फ्रखभ्रीं फ्रखभ्रूं फ्रखभ्रैं फ्रखभ्रौं हसखफ्रक्ष्रीं हसखफ्रक्ष्रूं खफ्रीं क्षरस्त्रखफ्रूं गलहक्षम्लजक्रूं निवार्णकाली यसम्लक्षसकह्लव्य्रईं ब्रह्मरन्ध्रं भावयामि तेनाहं सदाशिवलोके ओं विरजस्तमाभामि ब्रह्मभूयाय यामि व्लछ्रौं फट् नमः स्वाहा ।

इति भावनान्यासः ।

१२. समयन्यासः (८।१४०-१९०)

(१) ओं ऐं आं ईं ऊं ऋग्वेदमूर्त्या होतृसमयपालिनी ज्वालिन्यम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति ब्रह्मरन्ध्रे न्यासः ।

(२) क्रीं हूं फ्रें हौं क्रौं यजुर्वेदमूर्त्या आध्वर्यवसमयपालिनी विमलाम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति मुखे न्यासः ।

(३) ह्लीं श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं सामवेदमूर्त्या औद्गात्रसमयपालिनी प्रचण्डाम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति दक्षकर्णे न्यासः ।

(४) क्ष्रौं सौः स्हौः ब्लीं ब्लूं अथर्ववेदमूर्त्या कृत्याशान्तिसमयपालिनी विकटाम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति वामकर्णे न्यासः ।

(५) फ्रां फ्रीं फ्रूं फ्रैं फ्रौं सत्ययुगमूर्त्या तपस्समयपालिनी पिङ्गलाम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति दक्षकपोले न्यासः ।

(६) ख्फ्रीं ख्फ्रूं ख्फ्रैं ख्फ्रौं त्रेतामूर्त्या ज्ञानसमयपालिनी मोक्षदाम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति वामकपोले न्यासः ।

(७) हस्ख्फ्रीं हस्ख्फ्रूं हस्ख्फ्रें हस्ख्फ्रैं हस्ख्फ्रौं द्वापरमूर्त्या यज्ञसमयपालिनी स्वाहाम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति दक्षनयने न्यासः ।

(८) हस्फ्रां हस्फ्रीं हस्फ्रूं हस्फ्रैं हस्फ्रौं कलियुगमूर्त्या दानसमयपालिनी श्रद्धाम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति वामनयने न्यासः ।

(९) र्ह्लां र्ह्लीं र्ह्लूं र्ह्लौं गायत्रीमूर्त्या ब्राह्मण्यसमयपालिनी मोदिन्यम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति दक्षभ्रुवि न्यासः ।

(१०) छ्रक्षह्लां छ्रक्षह्लीं छ्रक्षह्लूं छ्रक्षह्लैं छ्रक्षह्लौं त्रय्यध्ययनमूर्त्या ब्रह्मचर्यसमयपालिनी विजयाम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति वामभ्रुवि न्यासः ।

(११) रज्ञ्रां रज्ञ्रीं रज्ञ्रूं रज्ञ्रैं रज्ञ्रौं षट्कर्ममूर्त्या गार्हस्थ्यसमयपालिनी

कापालिन्यम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति दक्षनासापुटे न्यासः ।

(१२) रक्ष्रां रक्ष्रीं रक्ष्रूं रक्ष्रैं रक्ष्रौं वैखानसमूर्त्या वानप्रस्थसमयपालिनी चण्डिकाम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति वामनासापुटे न्यासः ।

(१३) रफ्रां रफ्रीं रफ्रूं रफ्रैं रफ्रौं वैराग्यमूर्त्या संन्याससमयपालिनी सुभगाम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति चिबुके न्यासः ।

(१४) खफ्रछ्रां खफ्रछ्रीं खफ्रछ्रूं खफ्रछ्रैं खफ्रछ्रौं परमात्ममूर्त्या उपनिषत्समयपालिनी भ्रामर्यम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति दक्षहनौ न्यासः ।

(१५) रह्लछ्ररक्षह्लां रह्लछ्ररक्षह्लीं रह्लछ्ररक्षह्लैं रह्लछ्ररक्षह्लौं कौलिकीमूर्त्या कुलसमयपालिनी मोहिन्यम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति वामहनौ न्यासः ।

(१६) क्षरस्त्रां क्षरस्त्रीं क्षरस्त्रूं क्षरस्त्रैं क्षरस्त्रौं चण्डेश्वरीमूर्त्या पूर्वाम्नायसमयपालिनी महाकाल्यम्बा प्रसीदतां स्वाह। इति गले न्यासः ।

(१७) रज्रां रज्रीं रज्रूं रज्रैं रज्रौं कुब्जिकामूर्त्या पश्चिमाम्नायसमयपालिनी कालरात्र्यम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति दक्षस्कन्धे न्यासः ।

(१८) रप्रां रप्रीं रप्रूं रप्रैं रप्रौं कालीमूर्त्या उत्तराम्नायसमयपालिनी चण्डघण्टाम्बिका प्रसीदतां स्वाहा इति वामस्कन्धे न्यासः ।

(१९) रक्ष्रीं रक्ष्रूं रक्ष्रैं रक्ष्रौं प्रीं बाभ्रवीमूर्त्या दक्षिणाम्नायसमयपालिनी कुरुकुल्लाम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति दक्षकरे न्यासः ।

(२०) खफ्रक्ष्रां खफ्रक्ष्रीं खफ्रक्ष्रूं खफ्रक्ष्रैं खफ्रक्ष्रौं त्रिपुरसुन्दरीमूर्त्या ऊर्ध्वाम्नायसमयपालिनी भीषणाम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति वामकरे न्यासः ।

(२१) रक्षफ्रछ्रां रक्षफ्रछ्रीं रक्षफ्रछ्रूं रक्षफ्रछ्रैं रक्षफ्रछ्रौं राजराजेश्वरीमूर्त्या अधआम्नायसमयपालिनी तेजोवत्यम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति वक्षसि न्यासः ।

(२२) खफ्रह्लीं खफ्रह्लूं खफ्रह्लैं खफ्रह्लौं खफ्रह्लूं सदाशिवमूर्त्या षडाम्नायसमयपालिनी भगमालिन्यम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति दक्षपार्श्वे न्यासः ।

(२३) रश्रां रश्रीं रश्रें रश्रैं रश्रौं हिरण्यगर्भमूर्त्या चतुर्वेदसमयपालिनी चर्चिकाम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति वामपार्श्वे न्यासः ।

(२४) खफ्रछ्रां खफ्रछ्रीं खफ्रछ्रूं खफ्रछ्रैं खफ्रछ्रौं मन्त्रमूर्त्या सिद्धिसमयपालिनी महोदर्यम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति दक्षचरणे न्यासः ।

(२५) खफ्रह्लां खफ्रह्लीं खफ्रह्लूं खफ्रह्लैं खफ्रह्लौं धर्ममूर्त्या स्वर्गसमयपालिनी संहारिण्यम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति वामचरणे न्यासः ।

(२६) खफ्रक्लां खफ्रक्लीं खफ्रक्लूं खफ्रक्लैं खफ्रक्लौं पापमूर्त्या नरकसमयपालिनी दिगम्बराम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति लिङ्गे न्यासः ।

(२७) ह्लक्षफ्लीं छ्रखफ्रां छ्रखफ्रीं फ्रखभ्रीं फ्रखभ्रूं अदृष्टमूर्त्या कर्मसमयपालिनी महामार्यम्बा प्रसीदतां स्वाहा इति व्यापके न्यासः ।

इति समयन्यासः ।

१३. सृष्टिन्यासः (८।१९१-२५५)

(१) आं क्लीं श्रीं ह्लीं क्रीं क्रों क्रौं प्रजापतिरूपा प्रजासृष्टिकर्त्री अदिति देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा—दक्षपादे न्यासः ।

(२) ओं फ्रें फ्रौं हूं स्त्रीं फ्रों छ्रीं वेदरूपा यागसृष्टिकर्त्री वेदवती देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा—वामपादे न्यासः ।

(३) रक्रीं रक्रूं रक्रैं रक्रौं रक्षश्रीं झमरयऊं रक्षछ्रीं प्रकृतिरूपा पुरुषसृष्टिकर्त्री चैतन्यभैरवी देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति दक्षजङ्घे न्यासः ।

(४) रत्रीं रत्रूं रत्रैं रत्रौं रस्फ्रों रस्फ्रौं ज्रौं मायारूपा भोगसृष्टिकर्त्री भोगवती देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति वामजङ्घे न्यासः ।

(५) ऐं ह्लीं क्षौं स्फ्रौं ग्लूं ग्लैं ग्लौं विवेकरूपा मोक्षसृष्टिकर्त्री पूर्णेश्वरी देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति दक्षजानौ न्यासः ।

(६) ब्लीं ब्लूं ब्लैं ब्लौं स्हौं स्हौः सौः वासनारूपा जन्मसृष्टिकर्त्री महामोहिनी देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति वामजानौ न्यासः ।

(७) प्रीं फ्रीं फ्रूं फ्रैं जूं ङें ज्रूं सत्त्वरूपा विष्णुसृष्टिकर्त्री विष्णुमाया देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति दक्षोरौ न्यासः ।

(८) थ्रीं थ्रूं थ्रैं थ्रौं प्रूं प्रैं प्रौं रजोरूपा ब्रह्मसृष्टिकर्त्री दुर्गा देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति वामोरौ न्यासः ।

(९) रप्रां रप्रीं रप्रूं रप्रैं रप्रौं क्लं औं तमोरूपा रुद्रसृष्टिकर्त्री चण्डवारुणी देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति दक्षवंक्षणे न्यासः ।

(१०) ह्लां ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लीः ह्लों ह्लः धर्मरूपा सदाचारसृष्टिकर्त्री नित्यक्लिन्ना देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति वामवंक्षणे न्यासः ।

(११) रथ्रीं रथ्रूं रथ्रैं रथ्रौं हं लः क्षः गन्धरूपा पृथिवीसृष्टिकर्त्री महिषमर्दिनी देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति गुदे न्यासः ।

(१२) क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्रैं क्ष्रौं स्त्रैं स्त्रौं रसनारूपा जलसृष्टिकर्त्री त्वरिता देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति लिङ्गे न्यासः ।

(१३) रफ्रां रफ्रीं रफ्रूं रफ्रें रफ्रैं रफ्रों रूपरूपा तेजस्सृष्टिकर्त्री वाग्वादिनी देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति नाभौ न्यासः ।

(१४) रह्लां रह्लीं रह्लूं रह्लैं रह्लौं हलक्षीं हल्क्ष्रूं स्पर्शरूपा वायुसृष्टिकर्त्री उग्रचण्डा देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति जठरे न्यासः ।

(१५) रछ्रां रछ्रीं रछ्रूं रछ्रें रछ्रैं रछ्रों रछ्रौं शब्दरूपा आकाशसृष्टिकर्त्री कुब्जिका देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति दक्षकरे न्यासः ।

(१६) रक्ष्रां रक्ष्रीं रक्ष्रूं रक्ष्रैं रफ्लैं रफ्लौं मृत्युरूपा मारीसृष्टिकर्त्री राजराजेश्वरी देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति वामकरे न्यासः ।

(१७) रज्रां रज्रीं रज्रूं रज्रें रज्रैं रज्रों रज्रौं कुण्डलिनीरूपा नादबिन्दुसृष्टिकर्त्री कात्यायनी देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति मणिबन्धे न्यासः ।

(१८) रझ्रां रझ्रीं रझ्रूं रझ्रें रझ्रैं रझ्रों रझ्रौं आत्मरूपा ज्ञानसृष्टिकर्त्री चण्डयोगेश्वरी देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति वाममणिबन्धे न्यासः ।

(१९) खफ्रां खफ्रीं खफ्रूं खफ्रें खफ्रैं खफ्रों खफ्रौं पुण्यरूपा स्वर्गसृष्टिकर्त्री चण्डयोगेश्वरी देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति दक्षकफोणौ न्यासः ।

(२०) ग्लब्लां ग्लब्लीं ग्लब्लूं ग्लब्लैं ग्लब्लौं क्षखफ्रें क्षखफ्रैं पापरूपा नरकसृष्टिकर्त्री फेत्कारी देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति वामकफोणौ न्यासः ।

(२१) हसफ्रां हसफ्रीं हसफ्रूं हसफ्रें हसफ्रैं हसफ्रों हसफ्रौं शरीररूपा सुखःदुःखसृष्टिकर्त्री सरस्वती देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति दक्षस्कन्धे न्यासः ।

(२२) हसखफ्रां हसखफ्रीं हसखफ्रूं हसखफ्रें हसखफ्रैं हसखफ्रों हसखफ्रौं आदिसर्गरूपा मानससृष्टिकर्त्री सिद्धिलक्ष्मी देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति वामस्कन्धे न्यासः ।

(२३) रश्रां रश्रीं रश्रूं रश्रें रश्रैं रश्रों रश्रौं स्वेदजरूपा दंशमशकादिसृष्टिकर्त्री तुम्बुरेश्वरी देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति ग्रीवायां न्यासः ।

(२४) छ्ररक्षह्लां छ्ररक्षह्लीं छ्ररक्षह्लूं छ्ररक्षह्लैं छ्ररक्षह्लौं हसखफ्रं हसखफ्रः जरायुजरूपा नरपशुसृष्टिकर्त्री जयलक्ष्मी देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति कण्ठे न्यासः ।

(२५) खफ्रह्लां खफ्रह्लीं खफ्रह्लूं खफ्रह्लैं खफ्रह्लौं छ्रखफ्रां छ्रखफ्रीं अण्डजरूपा खगसृष्टिकर्त्री धनदा देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति चिबुके न्यासः ।

(२६) रक्षफ्रछ्हां रक्षफ्रछ्रीं रक्षफ्रछ्रूं रक्षफ्रछ्रैं रक्षफ्रछ्रौं × (सङ्कुलग्) पौं उद्भिज्जरूपा अङ्कुरसृष्टिकर्त्री चण्डेश्वरी देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति मुखे न्यासः ।

(२७) रह्लछ्ररक्षह्लां रह्लछ्ररक्षह्लीं रह्लछ्ररक्षह्लूं रह्लछ्ररक्षह्लैं रह्लछ्ररक्षह्लौं ह्लक्षफ्लीं फहलक्षैं अयनरूपा षड्र्तुसृष्टिकर्त्री छिन्नमस्ता देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति नासायां न्यासः ।

(२८) खफ्रक्ष्रां खफ्रक्ष्रीं खफ्रक्ष्रूं खफ्रक्ष्रैं खफ्रक्ष्रौं सफहलक्षीं सफहलक्षूं त्रुट्यादिकालरूपा कल्पसृष्टिकर्त्री दिगम्बरी देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति कूर्चे न्यासः ।

(२९) रक्ष्रीं रक्ष्रूं रक्ष्रैं रक्ष्रौं सफहलक्ष्रैं सफहलक्ष्रों सफहलक्ष्रौं नानादर्शनरूपा नानामतसृष्टिकर्त्री मातङ्गी देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति ललाटे न्यासः ।

(३०) खफ्रक्लां खफ्रक्लीं खफ्रक्लूं खफ्रक्लैं खफ्रक्लौं रजझ्रक्ष्रों रजझ्रक्ष्रूं उपनिषद्रूपा आत्मप्रकाशसृष्टिकर्त्री डामरी देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा ।

(३१) खफ्रह्लीं खफ्रह्लूं खफ्रह्लैं खफ्रह्लौं खफ्रह्लं रजझ्रक्ष्रैं रजझ्रक्ष्रौं ब्रह्मविद्यारूपा कैवल्यसृष्टिकर्त्री धूमावती देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति ब्रह्मरन्ध्रे न्यासः ।

(३२) खफ्रछ्रां खफ्रछ्रीं खफ्रछ्रूं खफ्रछ्रैं खफ्रछ्रौं हलक्षौं फहलक्षौं गुह्यकालीरूपा कोटिब्रह्माण्डसृष्टिकर्त्री विश्वरूपा देवी सिद्धिं प्रयच्छतु ओं स्वाहा इति व्यापके न्यासः ।

इति सृष्टिन्यासः ।

१४. स्थितिन्यासः (८।२६५-३५१)

(१) ओं लगम्क्षखफ्रसह्लूं ऐं आं ह्लीं श्रीं क्लीं यम्हप्लम्क्षह्लूं ओं भूकल्पे वलाकासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री कपिलनरसिंहसहिता आनन्दकाली ग्लीं ग्लूं ग्लैं चिरं मामवतु स्वाहा—ब्रह्मरन्ध्रे ।

(२) ओं फग्लसहमक्षब्लूं ओं छ्रीं हूं फ्रें हौं ट्लत्लक्षफ्रखफ्छ्रीं ओं भुवः कल्पे गगनमूर्धासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री पुष्करनरसिंहसहिता समयकाली क्रीं क्रूं क्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—ललाटे ।

(३) ओं सखक्लक्ष्मध्रयब्लीं क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं ट्लत्लक्षफ्रखफ्छ्रीं ओं कल्प कल्पे वेहण्डासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री तीव्रनखरनरसिंहसहिता भद्रकाली ज्रीं ज्रूं ज्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—कूर्चे ।

(४) ओं रक्षफ्रससहह्लव्य्रऊं क्षौं श्रूं फ्रों फ्रौं स्फ्रौं गमहलयक्ष्लम्रीं ओं तपःकल्पे उल्मुकासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री पाण्डरनरसिंहसहिता नियमकाली छ्रूं छ्रौं छ्रूं चिरं मामवतु स्वाहा—नासिकायाम् ।

(५) ओं स्हछ्रक्ष्लमरव्य्रईं क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लौं ख्लभक्ष्मलव्य्रईं ओं क्रतुकल्पे मेघनादासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री जम्बालनरसिंहसहिता त्रिदशकाली क्ष्रूं क्ष्रौं क्ष्रूः चिरं मामवतु स्वाहा—कपोलयोः ।

(६) ओं ग्रमहलक्षखफ्रग्लैं ज्रां ज्रीं ज्रूं ज्रैं ज्रौं भलनएदक्ष्रीं ओं वह्निकल्पे धूम्रासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री सम्मोहनरसिंहसहिता हिरण्यकाली ख्स्त्रीं ख्स्त्रूं ख्स्त्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—नयनयोः ।

(७) ओं भक्ष्लरमह्सख फ्रूं थ्रां थ्रीं थ्रूं थ्रैं थ्रौं क्लसमयग्लह्लफ्रूं ओं षट्क्रमकल्पे त्रिशिरासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री भूतादिनरसिंहसहिता

विकृतकाली क्रश्रीं क्रश्रूं क्रश्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—कर्णयो: ।

(८) ओं ख्फ्रध्रव्य्रओं छ्रध्रीं ख्फ्छ्रां ख्फ्छ्रीं ख्फ्छ्रूं ख्फ्छ्रैं ख्फ्छ्रौं छतक्षठनह्ब्लीं ओं दर्शकल्पे अरुणासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री हेतुकनरसिंहसहिता क्रोधकाली क्रफ्रीं क्रफ्रूं क्रफ्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—हनौ।

(९) ओं व्य्रक्षस्हम्लस्त्रीं झमरयऊं रक्षश्रीं रस्फ्रों रक्षछ्रीं रस्फ्रौं रगहलक्षम्लयछ्रूं ओं कृष्णकल्पे दाण्डिकासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री लोहिताक्षनरसिंहसहिता उल्काकाली सहलक्रीं सहलक्रूं सहलक्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—चिबुके ।

(१०) ओं मफ्रलहलहखफ्रूं रफ्रीं रफ्रूं रफ्रें रफ्रैं गसधमरयब्लूं ओं चित्रकल्पे वायुध्वजासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री दुर्द्धर्षनरसिंहसहिता फेरुकाली ह्लस्त्रीं ह्लस्त्रूं ह्लस्त्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—गले ।

(११) ओं च्लक्ष्मस्हव्य्रखीं खीं खैं स्हौः स्हीं सौः खतक्लक्ष्मव्य्रह्लूं ओं रक्तोदकल्पे जंभलासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री बभ्रुनरसिंहसहिता जीमूतकाली ह्लछ्रीं ह्लछ्रूं ह्लछ्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—ग्रीवायाम् ।

(१२) ओं तफरक्षम्लह्लौं रक्ष्रां रक्ष्रीं रक्ष्रूं रक्ष्रैं रक्ष्रौं रसमयक्षक्लह्लीं ओं हरिकेशकल्पे किरीटासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री सर्वेश्वरनरसिंहसहिता विग्रहकाली क्लरह्लैं क्लफ्रीं क्लफ्रूं चिरं मामवतु स्वाहा—हृदये ।

(१३) ओं रहक्षम्लव्य्रअखफछ्रस्त्रह्लीं हसखफ्रीं हसखफ्रूं हसखफ्रें हसखफ्रैं हसखफ्रौं टरक्षप्लमह्लूं ओं लोहितकल्पे रक्ततुण्डासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री विश्वबाहुनरसिंहसहिता गुप्तकाली ह्लफ्रीं ह्लफ्रूं ह्लफ्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—जठरे ।

(१४) ओं शम्लह्लव्य्रखफ्रैं रह्लां रह्लीं रह्लूं रह्लैं रह्लौं जसदनस्हक्षग्लूं ओं शिपिविष्टकल्पे किर्मीरासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री अनन्तनरसिंहसहिता चैतन्यकाली ह्लखफ्रां ह्लखफ्रीं ह्लखफ्रूं चिरं मामवतु स्वाहा—नाभौ ।

(१५) ओं हसखफ्रम्लव्य्रऊं खफ्रीं खफ्रूं खफ्रें खफ्रैं खफ्रौं चमरग्क्षफ्रस्त्रीं ओं वृहद्रथकल्पे वाष्कलासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री जटालनरसिंहसहिता विश्वकाली क्रह्लीं क्रह्लूं क्रह्लैं चिरं मामवतु स्वाहा—करे ।

(१६) ओं प्रस्हम्लक्षक्लीं क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्रैं क्ष्रौं ह्लमक्षकमह्लीं ओं औपलकल्पे खर्जूररोमासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री तपननरसिंहसहिता कुलकाली सफहलक्षीं सफहलक्षूं सफहलक्षैं चिरं मामवतु स्वाहा—लिङ्गे ।

(१७) ओं म्ररयक्ष्क्षसह्लफ्रीं रस्त्रां रस्त्रीं रस्त्रूं रस्त्रैं रस्त्रौं क्लपट्क्षमव्य्रईं ओं खार्जूरीयकल्पे नादान्तकासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री सिन्धुनादनरसिंहसहिता प्रतप्तकाली हलक्षीं हलक्षूं हलक्षैं चिरं मामवतु स्वाहा—गुदे ।

(१८) ओं रसमस्त्रह्लव्य्रऊं छ्ररक्षह्लां छ्ररक्षह्लीं छ्ररक्षह्लूं छ्ररक्षह्लैं छ्ररक्षह्लौं × (धूतपापा) ओं संभ्रमकल्पे काकवर्णासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री मृत्यु-

मुखनरसिंहसहिता ज्योतीरूपकाली रजझ्रक्ष्रीं रजझ्रक्ष्रूं रजझ्रक्ष्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—ऊरौ ।

(१९) ओं फ्रखरक्षक्लह्रीं हसफ्रां हसफ्रीं हसफ्रूं हसफ्रैं हसफ्रौं डपतसगम्क्षब्लूं ओं नैयग्रोधकल्पे अन्धकासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री हेमाम्भनरसिंहसहिता मेधाकाली क्ष्लक्ष्रीं क्ष्लक्ष्रूं क्ष्लक्ष्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—जानौ ।

(२०) ओं व्लक्क्षहमस्त्रछ्रूं रक्षफ्रछ्रां रक्षफ्रछ्रीं रक्षफ्रछ्रूं रक्षफ्रछ्रैं रक्षफ्रछ्रौं रसमयरक्ष्क्षग्लीं ओं सिंहकल्पे सरभासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री रौरवनरसिंहसहिता उत्तरकाली फ्रम्रग्लईं फ्रम्रग्लऊं फ्रम्रग्लऐं चिरं मामवतु स्वाहा—जङ्घायाम् ।

(२१) ओं ट्लव्म्रसम्क्षहछ्रीं क्षखफ्रां क्षखफ्रीं क्षखफ्रूं क्षखफ्रें क्षखफ्रैं ईक्षक्षएएक्लह्रीं ओं स्थूलाकल्पे शङ्कुकर्णासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री हव्यवाहनरसिंहसहिता व्यालकाली क्ष्लक्ष्रीं क्ष्लक्ष्रूं क्ष्लक्ष्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—पादे ।

(२२) ओं कह्लक्लक्षखफ्रीं खफ्रक्ष्रां खफ्रक्ष्रीं खफ्रक्ष्रूं खफ्रक्ष्रैं खफ्रक्ष्रौं कब्लयसमक्षख्रछरूं ओं चित्याकल्पे वज्रचर्मासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री पूर्णभद्रनरसिंहसहिता आवर्तकाली क्ष्रस्त्रीं (क्ष्रस्त्रूं) खस्त्रैं क्ष्रस्त्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—कटे ।

(२३) ओं रलहक्षसमहफ्रछ्रीं क्रह्लां क्रह्लीं क्रह्लूं क्रह्लैं क्रह्लौं छ्रडक्षसहफ्रक्लीं ओं औलूककल्पे प्रतर्दनासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री मणितारनरसिंहसहिता सिंहनादकाली फ्रखभ्रीं फ्रखभ्रूं फ्रखभ्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—पृष्ठे ।

(२४) ओं...............(मैनाककूटम्) खफ्रछ्रां खफ्रछ्रीं खफ्रछ्रूं खफ्रछ्रैं खफ्रछ्रौं क्ष्लमरझ्रथ्रीं ओं वैमानकल्पे जालन्धरासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री दैत्यान्तकनरसिंहसहिता मन्त्रकाली हसखफ्रक्ष्रीं हसखफ्रक्ष्रूं हसखफ्रक्ष्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—असे ।

(२५) ओं लयक्षकहस्त्रव्रह्रीं क्ष्रक्लां क्ष्रक्लीं क्ष्रक्लूं क्षब्लीं क्षब्लूं ब्लयक्ष्मझ्रग्लथ्रूं ओं कीलालकल्पे शकुन्तकासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री उद्योतनरसिंहसहिता कल्पकाली खफ्रीं क्षरस्त्रखफ्रूं × (जगदावृत्तिः) चिरं मामवतु स्वाहा—जत्रुणि ।

(२६) ओं जनहमरक्षयह्लीं खफ्रक्लां खफ्रक्लीं खफ्रक्लूं खफ्रक्लैं खफ्रक्लौं कपयनप्लक्षफ्रीं औं तपनकल्पे पूतिकञ्जासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री विभूतिनरसिंहसहिता उत्पातकाली खफछ्रीं खफछ्रूं खफछ्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—शिखायाम् ।

(२७) ओं धशड्लझ्ह्लीं क्षज्रां क्षज्रीं क्षज्रूं क्षज्रैं क्षज्रौं परमक्षलहक्षऐं छ्री ओं सङ्घातकल्पे विराधासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री शबलनरसिंहसहिता सम्मोहकाली क्षरस्त्रीं क्षरस्त्रूं क्षरस्त्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—करव्यापके ।

(२८) ओं छ्रक्लव्भ्रमक्षयूं खफ्रह्लां खफ्रह्लीं खफ्रह्लूं खफ्रह्लैं खफ्रह्लौं गपटतयजक्लूं ओं वटकल्पे विश्वमर्दनासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री धनञ्जयनरसिंहसहिता चक्रकाली हसखफ्रीं हसखफ्रूं हसखफ्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—पादव्यापके ।

(२९) ओं दलव्भ्रक्षक्रभ्रीं ह्लस्त्रां ह्लस्त्री ह्लस्त्रूं ह्लस्त्रै ह्लस्त्रौं कहलक्षश्रक्षम्लव्रईं ओं रुद्रकल्पे कोलतुण्डासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री शोणाक्षनरसिंहसहिता आधारकाली कहलश्रौं कहलश्रूं कहलश्रैं चिरं मामवतु स्वाहा—सर्वाङ्गव्यापके ।

(३०) ओं श्लव्भ्रछ्रखीं क्लह्लीं क्लह्लूं क्लह्लैं क्लह्लों क्लह्लौं फ्रदमटयनह्लं ओं मन्दारकल्पे जम्बुजालासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री चित्राङ्गनरसिंहसहिता समरकाली हसखफ्रों हसखफ्रं हसखफ्र: चिरं मामवतु स्वाहा— × ।

(३१) ओं सक्लह्ल हसखफ्रक्ष्रीं ह्लफ्रां ह्लफ्री ह्लफ्रूं ह्लफ्रैं ह्लफ्रौं व्भ्रधरमक्षच्ली ओं अजिरकल्पे चञ्चुमुखासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री उत्साहनरसिंहसहिता विनाशकाली फ्रम्रग्लऔं क्ष्लक्ष्रौं × (उरङ्क) चिरं मामवतु स्वाहा— × ।

(३२) ओं एसकहलक्षांव्भ्रम्रूं स्त्रखफ्रां स्त्रखफ्रीं स्त्रखफ्रूं स्त्रखफ्रैं स्त्रखफ्रौं धमसरव्लयक्ष्रूं ओं श्रुतिकल्पे पिटकासुरवधेन जगत्स्थितिकर्त्री रक्तरेखनरसिंहसहिता रक्षाकाली स्त्रखफ्रौं क्लखफ्रौं ह्लथ्रैं चिरं मामवतु स्वाहा— × ।[1]

इति स्थितिन्यास: ।

१५. संहारन्यास: ।

(१) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें प्रकाशरूपेण तम:संहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्लम्लव्भ्रईं स्ह क्षम्लव्भ्रऊं ओं क्रों सौ: मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नम: स्वाहा—इति प्रपदन्यास: ।

(२) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें महाप्रलयरूपेण ब्रह्माण्डसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्लम्लव्भ्रईं स्हक्षम्लव्भ्रऊं श्रीं क्रौं क्लीं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नम: स्वाहा—इति गुल्फन्यास: ।

(३) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें वाडवरूपेण सप्ताब्धिसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्लम्लव्भ्रईं स्हक्षम्लव्भ्रऊं फ्रों फ्रौं ज्रौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नम: स्वाहा—इति पार्ष्णिन्यास: ।

---

[1] तत्वार्णव: महाकल्पस्थायी ब्रह्मकपालं चेति बीजत्रयमिहाधिकं निर्दिष्टं तत्कथं सङ्गमनीयमिति साधकैश्चिन्तनीयम् ।

(४) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें षट्चक्रभेदरूपेण भवबन्धसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्म्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं रछ्रीं रछ्रूं रछ्रैं छ्रीं ह्लीं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं नमः स्वाहा ।

(५) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें प्रमारूपेण भ्रमसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्म्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं छ्रह्लूं छ्रह्लैं छ्रह्लौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रौं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति जानुन्यासः ।

(६) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रों फ्रें तपोरूपेण दुरितसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्म्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं क्लरह्लों क्लरह्लैं क्लरह्लौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति वंक्षणन्यासः ।

(७) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें विद्यारूपेण अज्ञानसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा सह्म्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं स्त्रखफ्रूं स्त्रखफ्रें स्त्रखफ्रौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति कटिन्यासः ।

(८) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें दहनारूपेण तृणतरुसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्म्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं ग्लब्लूं ग्लब्लैं ग्लब्लौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति स्फिग् न्यासः ।

(९) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें गायत्रीजपरूपेण सकलपातसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्म्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं क्षस्फ्रों क्षस्फ्रौं रक्षश्रीं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति कुक्षिन्यासः ।

(१०) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें लक्ष्मीरूपेण दैन्यसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्म्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं स्हौं स्हौः ख्रौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति पार्श्वन्यासः ।

(११) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें परमात्मविचाररूपेण मायासंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्म्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं प्रीं क्ष्लौं फ्रीं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं ख्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति चूचुकन्यासः ।

(१२) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें भेषजरूपेणाधिव्याधिसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्वा क्षह्म्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं क्ष्रूं क्ष्रैं क्ष्रौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति अंसन्यासः ।

(१३) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें तत्त्वजिज्ञासारूपेणाधिसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्म्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं रझ्रूं रझ्रैं रझ्रौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति जत्रुन्यासः ।

(१४) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें शान्तिरूपेण त्रिविधोत्पातसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्म्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं रप्रीं रप्रूं रप्रैं मम शत्रून् संहरतु फ्रैं स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति कक्षन्यासः ।

(१५) ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें होमरूपेण ग्रहदोषसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्रम्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं रह्रूं रह्रैं रह्रौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्रीं नमः स्वाहा—इति कफोणि न्यासः ।

(१६) ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें सत्यरूपेण मिथ्यासंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्रम्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं रफ्रीं रफ्रूं रफ्रैं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्रीं नमः स्वाहा—इति मणिबन्धन्यासः ।

(१७) ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें सदाचाररूपेणाधर्मसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्रम्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं ख्फ्रीं ख्फ्रूं ख्फ्रैं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्रीं नमः स्वाहा—इति कराङ्गुलीन्यासः ।

(१८) ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें निगमरूपेण संशयसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्रम्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं रक्ष्रीं रक्ष्रें रक्ष्रौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्रीं नमः स्वाहा—इति कराङ्गुल्यग्रन्यासः ।

(१९) ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें कालरूपेण सर्वसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्रम्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं क्ष्रह्रीं क्ष्रह्रूं क्ष्रह्रौं (हारबीजं किम्) मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्रीं नमः स्वाहा—इति प्रगण्डन्यासः ।

(२०) ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें प्रणवरूपेण जन्ममृत्युसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्रम्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं हस्ख्फ्रूं हस्ख्फ्रैं हस्ख्फ्रौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्रीं नमः स्वाहा—इति नासान्यासः ।

(२१) ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें आवर्तनरूपेण अग्न्याहारसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्रम्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं क्ष्रस्त्रूं क्ष्रस्त्रैं क्ष्रस्त्रौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्रीं नमः स्वाहा—इति ओष्ठाधरन्यासः ।

(२२) ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें प्राणायामरूपेण आहारसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्रम्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं हस्फ्रीं हस्फ्रूं हस्फ्रौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्रीं नमः स्वाहा—इति दन्तन्यासः ।

(२३) ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें जलरूपेण अग्निसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्रम्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं खत्रूं ख्स्त्रैं (?) खस्त्रौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्रीं नमः स्वाहा—इति कपोलन्यासः ।

(२४) ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें जाठरपावकरूपेणाहारसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्रम्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं ख्फछ्रीं खफ्छ्रूं ? खफ्छ्रौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्रीं नमः स्वाहा—इति गण्डन्यासः ।

(२५) ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें सन्तोषरूपेण लोभसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्रम्लव्र्यईं स्हक्षम्लव्र्यऊं छ्ररक्षह्रां छ्ररक्षह्रैं छ्ररक्षह्रौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्रीं नमः स्वाहा—इति हनुन्यासः ।

(२६) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें त्रिवेदरूपेण पाषण्डसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्लम्लव्य्रईं स्हक्षम्लव्य्रऊं रक्षफ्रछ्री रक्षफ्रछ्रूं रक्षफ्रछ्रैं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति सृक्कन्यासः ।

(२७) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें तितिक्षारूपेण भूतसर्गसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्लम्लव्य्रईं स्हक्षम्लव्य्रऊं रजझ्रक्षूं रजझ्रक्ष्रैं रजझ्रक्ष्रौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति कर्णन्यासः ।

(२८) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें निदाघरूपेण षडूर्मिसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्लम्लव्य्रईं स्हक्षम्लव्य्रऊं रह्लछ्ररक्षह्लैं रह्लछ्ररक्षह्लौं रजझ्रक्ष्रीं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति भ्रून्यासः ।

(२९) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें क्रूररूपेण मृदुसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्लम्लव्य्रईं स्हक्षम्लव्य्रऊं खफ्रछ्रौं खफ्रछ्रैं रह्लछ्र रक्षह्लों मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति शङ्खन्यासः ।

(३०) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें मोहरूपेण संवित्तिसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्लम्लव्य्रईं स्हक्षम्लव्य्रऊं ख्फ्रक्ष्रां ख्फ्रक्ष्रैं ख्फ्रक्ष्रौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति शिरः न्यासः ।

(३१) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें अध्यात्मचिन्तनरूपेण वासनासंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्लम्लव्य्रईं स्हक्षम्लव्य्रऊं ख्फ्रक्लूं ख्फ्रक्खैं ख्फ्रक्लौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति ब्रह्मरन्ध्रन्यासः ।

(३२) ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें उग्रचण्डारूपेण सकलासुरसंहारकर्त्री गुह्यकाली देव्यम्बा क्षह्लम्लव्य्रईं स्हक्षम्लव्य्रऊं ख्फ्रह्लूं ख्फ्रहैं ख्फ्रह्लौं मम शत्रून् संहरतु फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्लीं नमः स्वाहा—इति व्यापकन्यासः ।

इति संहारन्यासः ।

१६. अनाख्यान्यासः ।

(१) ऐं ह्लीं श्रीं क्लीं स्त्रीं परमाणवेऽवयवानाख्यारूपा ह्लग्लूं ह्लग्लैं ह्लग्लौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता स्हज्ह्ल्क्षम्लवनऊं ब्रकम्लव्लक्लऊं मह्व्य्रऐं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति शिरसि न्यासः ।

(२) आं हूं क्षौं क्रूं क्षूं अग्नये शैत्यानाख्यारूपा कह्लां कह्लीं कह्लूं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता ह्लक्षक मह्लसव्य्रऊ क्षम्लकस्हरयत्रूं स्हक्ष्ल मह्लज्रूं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति तालौ न्यासः ।

(३) झमरयऊं र्क्ष्श्रीं र्स्फ्रों र्स्फ्रौं र्क्ष्छ्रीं चक्षुषे दर्शनानाख्यारूपा क्ष्रक्लां क्ष्रक्लीं क्ष्रक्लूं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता स्हछ्रक्ष्लमर्व्य्रईं ग्रम्ह्ल्क्षख्फ्रग्लैं र्क्षफ्रसमइ ह्लव्य्रऊं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा............इति कण्ठे न्यासः ।

(४) ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लं ह्लः लिङ्गशरीराय भोगानाख्यारूपा (क्ष्ब्लीं क्ष्ब्लूं क्ष्ब्लैं ?) क्ष्ब्लीं क्ष्ब्लैं क्ष्ब्लौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता तफल्क्ष कमश्रब्रीं लगम्क्षखफ्रसह्लूं च्लक्ष्म स्हव्र्खीं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति शङ्खे न्यासः ।

(५) र्ध्रां र्ध्रीं र्ध्रूं र्ध्रैं र्ध्रौं परमाःत्मने चैतन्यानाख्यारूपा क्रह्लूं क्रह्लैं क्रह्लौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता सग्ल क्षमह्रह्लूं क्वलह्लझकह्लनसक्लई क्षमब्लहकयह्लीं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति कूर्चे न्यासः ।

(६) ख्रां ख्रीं × × (घाटी भावः) ख्रूं ख्रैं ? ख्रौं विष्वक्प्रपञ्चाय ज्ञेयानाख्यारूपा छ्रह्लूं छ्रह्लैं छ्रह्लौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता ब्लक्षमकह्लब्र्ई लक्षमह्लजर्क्रब्र्ऊं ह्लक्षमहम्लूं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति नासिकायां न्यासः ।

(७) ग्लीं ग्लूं ग्लैं ग्लौं स्फ्रौं अज्ञानाया अतीन्द्रियानाख्यारूपा क्लर्ह्लीं क्लर्ह्लैं क्लर्ह्लौं (क्लर्ह्लूं क्लर्ह्लैं क्लर्ह्लौं ?) चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता रजहलक्षमऊं कसवह्लक्षमऔं हक्लह्लवडकखऐं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति गण्डे न्यासः ।

(८) ज्रैं ज्रौं स्हौं स्हौः सौः इन्द्रजालाय अध्यासानाख्यारूपा क्रह्लीं क्रह्लूं क्रह्लौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता र्क्षम्लह्लकसछब्र्ऊं क्षम्लब्रसहस्हक्षक्लस्त्रीं म्लक्षकहह्लूं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति जत्रुणि न्यासः ।

(९) द्रैं भ्रूं ब्रीं घीं फ्रीं निराकाराय प्रतीत्यनाख्यारूपा ह्लफ्रूं ह्लफ्रैं ह्लफ्रौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता ग्लक्षकमह्लब्र्ऊं ह्लक्षकमब्रूं खफसहक्ष्लब्रूं क्रौं सहकक्ष्क्षह्लमब्र्ऊं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति हनौ न्यासः ।

(१०) ब्लां ब्लीं ब्लूं ब्लैं ब्लौं अभ्यासाय असम्भावनानाख्यारूपा श्रख्फ्रीं श्रख्फ्रूं श्रखफ्रैं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता सहठ्लक्षह्लमक्रीं ह्लसहकमक्षब्रऐं क्लक्षसहमब्र्ऊं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति स्कन्धे न्यासः ।

(११) र्म्रीं र्म्रूं र्म्रैं × सह्लौं हलः क्रिया समीराय आनन्दमयानाख्यारूपा ह्लखफ्रीं ह्लखफ्रूं ह्लखफ्रैं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता र्ल्ह्क्षह्क्षक्षसक्लह्लीं मत्रटत्क्षसहह्लीं क्लप्क्षह्लमब्रूं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति कक्षे न्यासः ।

(१२) र्श्रों र्श्रीं र्श्रें र्श्रों र्श्रौं व्यक्तये धारणानाख्यारूपा क्लह्लीं क्लह्लूं क्लह्लौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता प्रस्हम्लक्षक्लीं ग्लक्लमझ्रस्त्रीं ख्फ्रक्लक्ष्मसभ्रीं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति हृदि न्यासः ।

(१३) ट्रीं ट्रीं ड्रीं ढ्रीं ण्रीं आम्नायाय जात्यनाख्यारूपा क्लक्ष्रीं क्लक्ष्रूं क्लक्ष्रौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता.........(मन्दकूटं ?) सम्लव्लकक्षव्य्रऊं फ्रत्तभ्रआं क्लमझ्रऊं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति जठरे न्यासः ।

(१४) फ्रूं फ्रों फ्रौं स्त्रौं स्त्रैं (स्त्रैं स्त्रौं ?) अध्वराय प्रामाण्यानाख्यारूपा क्लख्फ्रीं क्लख्फ्रूं क्लख्फ्रैं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता ख्लह्व्नग्क्षर्छ्रीं झसखग्रमऊ कमह्लच्ह्ल्क्षर्ज्रीं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति नाभौ न्यासः ।

(१५) हस्ख्फ्रीं हस्ख्फ्रूं हस्ख्फ्रें हस्ख्फ्रैं हस्ख्फ्रौं बीजाङ्कुराय अपूर्वानाख्यारूपा छ्रक्रीं छ्रक्रूं छ्रक्रैं ? छ्रक्रौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता र्क्ष्ख्रूं र्क्ष्क्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति वस्तौ न्यासः ।

(१६) र्ह्लीं र्ह्लूं र्ह्लैं र्ह्लौं क्षैं कलिलाय रसाद्यनाख्यारूपा क्रफ्रीं क्रफ्रूं क्रफ्रें चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं नद्क्षट्क्षव्य्रऊं छ्ल्ह्क्षलक्षफ्रग्लऊं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति गुदे न्यासः ।

(१७) र्स्त्रां र्स्त्रों र्स्त्रूं र्स्त्रैं र्स्त्रौं क्षीराय विश्वोत्पत्तिहर्यनाख्यारूपा क्रख्रीं क्रख्रूं क्रख्रैं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता क्षह्लम्लव्य्रईं क्षस्हम्लव्य्रईं क्षह्लम्लव्य्रईं क्षह्लम्लव्य्रईं क्षस्हम्लव्य्रईं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति मेहने न्यासः ।

(१८) ह्ल्क्षीं ह्ल्क्षूं ह्ल्क्षें ह्ल्क्षैं ह्ल्क्षौं आहाराय बलादिपरिपाकानाख्यारूपा ग्लख्रूं ग्लख्रें ग्लख्रैं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता म्ररयक्ष्सह्फ्री प्रस्हम्लक्षक्लीं स्हक्ष्क्षकमफ्रत्रूं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति वंक्षणे न्यासः ।

(१९) ख्फ्रीं ख्फ्रूं ख्फ्रें ख्फ्रैं ख्फ्रौं तेजसे उष्णतानाख्यारूपा भ्लूं भ्लैं भ्लौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता रसमस्त्रह्लव्य्रऊं ग्रम्लक्षह्लछ्रीं फलयक्षकयब्लूं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति इत्यूरौ न्यासः ।

(२०) र्क्ष्रीं र्क्ष्रूं र्क्ष्रैं र्क्ष्रौं ह्ल्क्षौं द्रवद्रव्याय क्लिन्नतानाख्यारूपा भ्लीं भ्लूं भ्लैं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता हस्ख्फ्रम्लक्षव्य्रऊं र्हक्षम्लव्य्रअख्फ्छ्रस्त्रह्लीं शम्लह्लव्य्रखफ्रैं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति जानौ न्यासः ।

(२१) क्रह्लां क्रह्लीं क्रह्लूं क्रह्लैं क्रह्लौं होमाय विश्वोत्पत्यनाख्यारूपा च्रीं च्रूं च्रौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता (सेतुकूटम्) × स्हक्लर्क्षमजह्लखफरयूं ब्लक्क्षहमस्त्रछ्रूं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति जङ्घायां न्यासः ।

(२२) छ्रर्क्ष्ह्लां छ्रर्क्ष्ह्लीं छ्रर्क्ष्ह्लूं छ्रर्क्ष्ह्लौं प्रपञ्चाय आविर्भावानाख्यारूपा र्फ्लूं र्फ्लैं र्फ्लौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता र्क्षखरईऊं स्हक्षम्लव्य्रईं क्षस्हम्लव्य्रईं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति प्रपदे न्यासः ।

(२३) रक्षफ्रछ्रां रक्षफ्रछ्रीं रक्षफ्रछ्रूं रक्षफ्रछ्रैं रक्षफ्रछ्रौं मेघादये तिरोभावानाख्यारूपा र्ख्रूं र्ख्रैं र्ख्रौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता क्षस्हम्लव्य्रईऊं क्षह्लम्लव्य्रईऊं क्षर्हम्लव्य्रईऊं क्षस्हम्लव्य्रईऊं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति पार्ष्णौ न्यासः ।

(२४) रह्लछ्ररक्षह्लां रह्लछ्ररक्षह्लीं रह्लछ्ररक्षह्लूं रह्लछ्ररक्षह्लैं रह्लछ्ररक्षह्लौं मादकादये आवरकानाख्यारूपा र्ठ्रूं र्ठ्रें र्ठ्रौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता स्हक्षम्लव्य्रईऊं र्क्षक्रींऊं क्षस्हम्लव्य्रईऊं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति गुल्फे न्यासः ।

(२५) ख्फ्रक्ष्रां ख्फ्रक्ष्रीं ख्फ्रक्ष्रूं ख्फ्रक्ष्रैं ख्फ्रक्ष्रौं मयूखाय विक्षेपनाख्यारूपा र्द्रूं र्द्रें र्द्रैं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता प्क्षलत्रझ्फ्रूं खमस्हक्षवल्रीं स्हकह्ललह्लीं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति पादाङ्गुल्यग्रे न्यासः ।

(२६) ख्फ्रछ्रां ख्फ्रछ्रीं ख्फ्रछ्रूं ख्फ्रछ्रैं ख्फ्रछ्रौं क्रियादये उन्नमनानाख्यारूपा र्ध्रीं र्ध्रूं र्ध्रें चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता ख्लक्ष्क्षव्य्र ख्फ्छ्रें ग्लक्क्षह्लैं ठ्लव्रख्फ्छ्रीं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति पृष्ठे न्यासः ।

(२७) ख्फ्रक्लां ख्फ्रक्लीं ख्फ्रक्लूं ख्फ्रक्लैं ख्फ्रक्लौं सत्त्वगुणाय विभागानाख्यारूपा र्भ्रीं र्भ्रूं ? र्भ्रैं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता फ्रखर्क्षक्लह्लीं ट्फ्रकम्क्षज्स्त्रीं धशड्लझ्ह्लीं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति ग्रीवायां न्यासः ।

(२८) ख्फ्रह्लां ख्फ्रह्लीं ख्फ्रह्लूं ख्फ्रह्लैं ख्फ्रह्लौं रजोगुणाय पालनानाख्यारूपा फ्रक्लें फ्रक्लों फ्रक्लौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता ज्लक्ह्लक्षत्रमथ्रीं × (विद्याकूटम्) ह्लख्फ्रूं र्च्रांव्यक्रीं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति वामहस्तव्यापके न्यासः ।

(२९) रजझ्क्ष्रीं रजझ्क्ष्रूं रजझ्क्ष्रैं रजझ्क्ष्रौं ख्फ्रछ्रीं तमोगुणाय सृष्ट्यानाख्यारूपा ब्लछ्रूं ब्लछ्रैं ब्लछ्रौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता मघस्त्रक्क्षलक्रीं व्रमक्ल यस्क्षक्ली सफ्रक्षक्लमखछ्रीं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति दक्षिणहस्तव्यापके न्यासः ।

(३०) फ्रम्रग्लआं फ्रम्रग्लईं फ्रम्रग्लऊं फ्रम्रग्लऐं फ्रम्रग्लऔं जन्यपदार्थाय संहारानाख्यारूपा ह्लस्रूं ह्लस्रैं ह्लस्रौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता

खह्लक्षमर्ब्लईं म्लव्य्स्हईं ज्लह्क्षस्त्रौं छप्ग्रह्स्फ्रीं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति वामपादव्यापके न्यासः ।

(३१) क्ष्लक्ष्रां क्ष्लक्ष्री क्ष्लक्ष्रूं क्ष्लक्ष्रैं क्ष्लक्ष्रौं आकाशाय ध्वंसानाख्यारूपा ब्रफ्रथ्रीं ब्रफ्रथ्रैं ब्रफ्रथ्रौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता फ्रत्क्षम्ल्ह्क्षहथ्ल्ह्क्षह्रूं ड्ल्ह्क्षच्ल्द्रक्ष्मऐं ब्ल्ह्क्षब्लऊं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति दक्षिणपादव्यापके न्यासः ।

(३२) हस्ख्फ्रीं हस्ख्फ्रूं खफ्रीं क्षरस्त्रखफ्रूं × (सायुज्यम्) सर्वत्र शून्यतानाख्यारूपा ख्लफ्रीं ख्ल्फ्रूं ख्लफ्रौं चराचरे जगति स्वशक्तिसहिता एसकह्ल्क्षांब्र्भ्रूं म्लछ्लह्ख ख्फ्रक्रीं सवलह्ल हस्ख्फ्रक्ष्रीं परमात्मनि विलीये ओं नमः स्वाहा इति सर्वशरीरव्यापके न्यासः ।[1]

इत्यनाख्यान्यासः ।

१७. भासान्यासः (८।४८८-५६२)

(१) ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं हसफ्रें स्त्रीं हसखफ्रें ओं ज्ञानशक्तौ भ्रमभासाकारायां निराभासा ओं ऐं आं ईं ऊं ज्ञानविज्ञानरूपा रक्ष्रीं रक्ष्रूं रक्ष्रैं भगवती गुह्यकाली धशड्लझ्रह्लीं मयि लीयतां स्वाहा इति शिरसि न्यासः ।

(२) ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं हसफ्रें स्त्रीं हसखफ्रें ओं इच्छाशक्तौ संयमभासाकारायां निराभासा श्रीं ह्लीं क्लीं क्रों क्रौं ज्ञानविज्ञानरूपा हसफ्रीं हसफ्रूं हसफ्रौं भगवती गुह्यकाली ई सकहमरक्षक्रीं मयि लीयतां स्वाहा इति तालुनि न्यासः ।

(३) ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं हसफ्रें स्त्रीं हसखफ्रें ओं क्रियाशक्तौ वितर्कभासाकारायां निराभासा फ्रें फ्रैं फ्रों फ्रौं फ्रं ज्ञानविज्ञानरूपा फहलक्षीं फहलक्षूं फहलक्षैं भगवती गुह्यकाली क्षम्लजरस्त्रीं मयि लीयतां स्वाहा इति कण्ठे न्यासः ।

(४) ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं हसफ्रें स्त्रीं हसखफ्रें ओं श्रद्धाशक्तौ जुगुप्साभासाकारायां निराभासा क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं ज्ञानविज्ञानरूपा लक्षीं लक्षूं लक्षैं भगवती गुह्यकाली जनहमरक्षयह्लीं मयि लीयतां स्वाहा इति शङ्खे न्यासः ।

---

[1] त्रिबीजनिर्देशस्थले षट्बीजानि अधिकानि निर्दिष्टानि सन्ति तानि कथं सङ्गमनीयानि? तानि चाधो लिख्यन्ते—

(क) १. एकवली, २. वज्रक्वचम्, ३. ब्रह्मकपालम्, ४. सन्तापनम्. ५. जगदावृत्तिः, ६. महाकल्प स्थायि चेति ।

(ख) इह चतुर्थ्यन्तवचनस्थाने सप्तम्यैकवचनान्तपाठ उचितः प्रतीयते ।

(५) ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं हसफ्रें स्त्रीं हसखफ्रें ओं धृतिशक्तौ पतनभासाकारायां निराभासा क्रीं क्रूं क्रैं क्रं क्रः ज्ञानविज्ञानरूपा सकहलक्षीं सफहलक्षूं सफहलक्षैं भगवती गुह्यकाली ईसमक्लक्षह्लूं मयि लीयतां स्वाहा इति कूर्चे न्यासः ।

(६) ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं हसफ्रें स्त्रीं हसखफ्रें ओं मेधाशक्तौ जाड्यभासाकारायां निराभासा ह्ग्लां ह्ग्लीं ह्ग्लूं ह्ग्लैं ह्ग्लौं ज्ञानविज्ञानरूपा रक्षफ्रछ्रीं रक्षफ्रछ्रूं रक्षफ्रछ्रैं भगवती गुह्यकाली ड्लखलहक्षखम........मयि लीयतां स्वाहा इति नासिकायां न्यासः ।

(७) ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं हसफ्रें स्त्रीं हसखफ्रें ओं अणिमाशक्तौ महद्बन्धनभासाकारायां निराभासा क्रह्लां क्रह्लीं क्रह्लूं क्रह्लैं क्रह्लौं ज्ञानविज्ञानरूपा रकक्ष्रीं रकक्ष्रूं रकक्ष्रैं भगवती गुह्यकाली मधस्त्रकक्षलक्रीं मयि लीयतां स्वाहा इति गण्डे न्यासः ।

(८) ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं हसफ्रें स्त्रीं हसखफ्रें ओं मायाशक्तौ तिमिरभासाकारायां निराभासा हफ्रां हफ्रीं हफ्रूं हफ्रैं हफ्रौं ज्ञानविज्ञानरूपा रस्त्रीं रस्त्रूं रस्त्रैं भगवती गुह्यकाली व्रमक्लयसखक्लीं मयि लीयतां स्वाहा इति जत्रुणि न्यासः ।

(९) ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं हस्फ्रें स्त्रीं हस्ख्फ्रें ओं प्रभाशक्तौ अध्वरभासाकारायां निराभासा ज्रां ज्रीं ज्रूं ज्रैं ज्रौं ज्ञानविज्ञानरूपा छ्रर्क्ष्ह्लूं छ्रर्क्ष्ह्लीं छ्रर्क्ष्ह्लैं भगवती गुह्यकाली सफ्रक्षक्लमखछ्रीं मयि लीयतां स्वाहा इति हनौ न्यासः ।

(१०) ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं हस्फ्रें स्त्रीं हस्ख्फ्रें ओं विशुद्धिशक्तौ अकिञ्चनभासाकारायां निराभासा छ्रैं छ्रों छ्रौं छ्रं छ्रः ज्ञानविज्ञानरूपा रह्लछ्र रक्षह्लीं रह्लछ्ररक्षह्लूं रह्लछ्ररक्षह्लैं भगवती गुह्यकाली पख्रसमृक्षस्त्रक्रीं मयि लीयतां स्वाहा इति स्कन्धे न्यासः ।

(११) ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं हस्फ्रें स्त्रीं हस्ख्फ्रें ओं ऋद्धिशक्तौ नश्वरभासाकारायां निराभासा ज्रां ज्रीं ज्रूं ज्रैं ज्रौं ज्ञानविज्ञानरूपा ख्फ्रह्लीं ख्फ्रह्लूं ख्फ्रह्लैं भगवती गुह्यकाली झमस्त्रयग्लह्लीं मयि लीयतां स्वाहा इति कक्षे न्यासः ।

(१२) ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं हस्फ्रें स्त्रीं हस्ख्फ्रें ओं नित्याशक्तौ विस्मरणभासाकारायां निराभासा हस्ख्फ्रां हस्ख्फ्रीं हस्ख्फ्रूं हस्ख्फ्रैं ज्ञानविज्ञानरूपा रजझ्रक्ष्रीं रजझ्रक्ष्रूं रजझ्रक्ष्रैं भगवती गुह्यकाली लयक्षकहस्त्रव्रह्लीं मयि लीयतां स्वाहा इति हृदि न्यासः ।

(१३) ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं हस्फ्रें स्त्रीं हस्ख्फ्रें ओं स्मृतिशक्तौ अबोधभासाकारायां निराभासा हस्ख्फ्रें हस्ख्फ्रौं हस्ख्फ्रां हस्ख्फ्रं

ह्स्ख्फ्र: ज्ञानविज्ञानरूपा भगवती गुह्यकाली ख्फ्रक्ष्रीं ख्फ्रक्ष्रूं ख्फ्रक्ष्रैं कस्हलह्लख्रक्ष्रीं मयि लीयतां स्वाहा इति जठरे न्यास: ।

(१४) ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं हस्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं प्रज्ञाशक्तौ द्वेषभासाकारायां निराभासा क्ष्रीं ह्भ्रीं भ्रूं ख्रौं क्ष्रौ: ज्ञानविज्ञानरूपा छ्रखफ्रीं ह्लक्षफ्लीं ख्फ्रह्लं भगवती गुह्यकाली सफ्रकह्लर्क्षमश्रीं मयि लीयतां स्वाहा इति नाभौ न्यास: ।

(१५) ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं हस्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं प्रीतिशक्तौ हर्षभासाकारायां निराभासा क्ष्रां पूं भ्रीं क्ष्रूं क्ष्रू: ज्ञानविज्ञानरूपा ख्फ्रछ्रीं ख्फ्रछ्रूं ख्फ्रछ्रैं छज्रमक्रव्भ्रऊं भगवती गुह्यकाली मयि लीयतां स्वाहा इति वस्तौ न्यास: ।

(१६) ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं हस्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं नीतिशक्तौ जन्यभासाकारायां निराभासा र्ह्लां र्ह्लीं र्ह्लूं र्ह्लें र्ह्लौं ज्ञानविज्ञानरूपा ख्फ्रक्लीं ख्फ्रक्लूं ख्फ्रक्लें ट्लसकम्लक्षट्र्रीं भगवती गुह्यकाली मयि लीयतां स्वाहा इति गुदे न्यास: ।

(१७) ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं हस्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं कूटस्थशक्तौ मोहभासाकारायां निराभासा रफ्लां रफ्लीं रफ्लूं रफ्लूं रफ्लैं रफ्लौं ज्ञानविज्ञानरूपा ख्फ्रह्लीं ख्फ्रह्लूं ख्फ्रह्लैं भगवती गुह्यकाली फ्रर्क्षस्त्रमक्रूं मयि लीयतां स्वाहा इति मेहने न्यास: ।

(१८) ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं हस्फ्रे स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं चेतनाशक्तौ अलीकभासाकारायां निराभासा प्रां प्रीं प्रूं प्रैं प्रौं ज्ञानविज्ञानरूपा श्लीं श्लूं श्लैं भगवती गुह्यकाली छ्रक्लव्भ्रम्क्षयूं मयि लीयतां स्वाहा इति वंक्षणे न्यास: ।

(१९) ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं हस्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं धृतिशक्तौ (?) लोभभासाकारायां निराभासा म्लां म्लीं म्लूं म्लैं ज्ञानविज्ञानरूपा क्रीं क्रूं क्रैं भगवती गुह्यकाली थ्लव्भ्रप्रछ्ख्रीं मयि लीयतां स्वाहा इति इत्यूरौ न्यास: ।

(२०) ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं हस्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं सत्यशक्तौ अनध्यवसायभासाकारायां निराभासा खफछ्रां खफ्छ्रीं खफ्छ्रूं खफ्छ्रैं खफ्छ्रौं ज्ञानविज्ञानरूपा ज्लीं जलूं ज्लैं भगवती गुह्यकाली ग्लां ग्लह्लथ्रयीं मयि लीयतां स्वाहा इति जानौ न्यास: ।

(२१) ओं फ्रें ह्लीं ख्फ्रें छ्रीं हस्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं शान्तिशक्तौ रूक्षभासाकारायां निराभासा रस्फ्रों रस्फ्रौं रक्षछ्रीं झमरयऊ रक्षश्रीं ज्ञानविज्ञानरूपा ह्लीं ह्लूं ह्लैं भगवती गुह्यकाली द्लव्भ्रक्षक्रभ्रीं मयि लीयतां स्वाहा इति जङ्घायां न्यास: ।

(२२) ओं फ्रें ह्रीं ख्फ्रें छ्रीं ह्स्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं उत्साहशक्तौ अमूर्तभासाकारायां निराभासा रग्रीं रग्रूं रग्रें रग्रैं रग्रौं ज्ञानविज्ञानरूपा ल्रीं ल्रूं ल्रैं भगवती गुह्यकाली थ्लहक्षकह्लमत्रयीं मयि लीयतां स्वाहा इति प्रपदे न्यासः ।

(२३) ओं फ्रें ह्रीं ख्फ्रें छ्रीं ह्स्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं स्नेहशक्तौ वियोगभासाकारायां निराभासा स्त्रीं स्त्रूं स्त्रैं स्त्रों स्त्रौं ज्ञानविज्ञानरूपा च्रीं च्रूं च्रैं भगवती गुह्यकाली ज्ल्ह्क्षट्लझ्रव्रीं मयि लीयतां स्वाहा इति पार्ष्णौ न्यासः ।

(२४) ओं फ्रें ह्रीं ख्फ्रें छ्रीं ह्स्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं परिमितशक्तौ अनुपलब्धिभासाकारायां निराभासा ह्ल्छ्रां ह्ल्छ्रीं ह्ल्छ्रूं ह्ल्छ्रैं ह्ल्छ्रौं ज्ञानविज्ञानरूपा फ्रीं फ्रूं फ्रैं भगवती गुह्यकाली ग्ल्ह्क्षम्लजक्रूं मयि लीयतां स्वाहा इति गुल्फे न्यासः ।

(२५) ओं फ्रें ह्रीं ख्फ्रें छ्रीं ह्स्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं संयोगशक्तौ अहङ्कारभासाकारायां निराभासा छ्रक्रां छ्रक्रीं छ्रक्रूं छ्रक्रैं छ्रक्रौं ज्ञानविज्ञानरूपा प्रीं प्रूं प्रैं भगवती गुह्यकाली ब्ल ट्ल्ह्क्षस्त्रमव्रयीं मयि लीयतां स्वाहा इति पादाङ्गुल्यग्रे न्यासः ।

(२६) ओं फ्रें ह्रीं ख्फ्रें छ्रीं ह्स्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं संस्कारशक्तौ आशयभासाकारायां निराभासा सहलक्रीं सहलक्रूं सहलक्रें सहलक्रैं सहलक्रौं ज्ञानविज्ञानरूपा थ्रीं थ्रूं थ्रैं भगवती गुह्यकाली प्लड्लह्क्षमव्रयीं मयि लीयतां स्वाहा इति पृष्ठे न्यासः ।

(२७) ओं फ्रें ह्रीं ख्फ्रें छ्रीं ह्स्फ्रें स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें ओं विवेकशक्तौ च्युतिभासाकारायां निराभासा ख्फ्रभ्रां ख्फ्रभ्रीं ख्फ्रभ्रूं ख्फ्रभ्रैं ख्फ्रभ्रौं ज्ञानविज्ञानरूपा क्षीं क्षूं क्षैं भगवती गुह्यकाली तत्त्वमसि रत्रों ओं मयि लीयतां स्वाहा इति ग्रीवायां न्यासः ।

(२८) ओं फ्रें ह्रीं ख्फ्रें छ्रीं हसफ्रें स्त्रीं हसखफ्रें ओं प्रमितिशक्तौ धर्मभासाकारायां निराभासा हलक्रीं हलक्रूं हलक्रैं हलक्रों हलक्रौं ज्ञानविज्ञानरूपा स्त्रीं स्त्रूं स्त्रैं भगवती गुह्यकाली सक्लह्लहसखफ्रक्ष्रीं मयि लीयतां स्वाहा इति दक्षिणहस्तव्यापके न्यासः ।

(२९) ओं फ्रें ह्रीं ख्फ्रें छ्रीं हसफ्रें स्त्रीं हसखफ्रें ओं योगशक्तौ अधर्मभासाकारायां निराभासा फ्रथ्रां फ्रथ्रीं फ्रथ्रूं फ्रथ्रैं फ्रथ्रौं ज्ञानविज्ञानरूपा कहलश्रूं कहलश्रैं कहलश्रौं भगवती गुह्यकाली रहफ्रसमक्षक्रीं मयि लीयतां स्वाहा इति वामहस्तव्यापके न्यासः ।

(३०) ओं फ्रें ह्रीं ख्फ्रें छ्रीं हसफ्रें स्त्रीं हसखफ्रें ओं सुखशक्तौ असम्भावितभासाकारायां निराभासा क्ष्रब्रीं क्ष्रब्रूं क्ष्रब्रैं क्ष्रब्रों क्ष्रब्रौं

ज्ञानविज्ञानरूपा रश्रीं रश्रूं रश्रैं भगवती गुह्यकाली हससक्लह्रीं मयि लीयतां स्वाहा इति दक्षपादव्यापके न्यासः ।

(३१) ओं फ्रें ह्रीं ख्फ्रें छ्रीं हस्फ्रें स्त्रीं हसखफ्रें ओं दुःखशक्तौ अदृष्टभासाकारायां निराभासा खलफ्रीं खलफ्रूं खलफ्रैं खलफ्रों खलफ्रौं ज्ञानविज्ञानरूपा रथ्रीं रथ्रूं रथ्रैं भगवती गुह्यकाली स्हव्रखक्ष्मक्रूं मयि लीयतां स्वाहा इति वामपादव्यापके न्यासः ।

(३२) ओं फ्रें ह्रीं ख्फ्रें छ्रीं हस्फ्रें स्त्रीं हसखफ्रें ओं प्रलयशक्तौ कैवल्यभासाकारायां निराभासा क्ष्रस्त्रीं क्ष्रस्त्रूं क्ष्रस्त्रें क्ष्रस्त्रैं क्ष्रस्त्रौं ज्ञानविज्ञानरूपा ख्रीं ख्रूं ख्रैं भगवती गुह्यकाली सफक्षयक्लमस्त्रश्रीं मयि लीयतां स्वाहा इति सर्वशरीरव्यापके न्यासः ।

इति भासान्यासः ।

१८. मन्त्रन्यासः (८।५६८-६०४)

१. विध्युपास्यैकाक्षरमन्त्रेण चरणयोरङ्गुलीमूलयोर्न्यासः ।
२. कामोपास्यत्र्यक्षरमन्त्रेण द्वयोः प्रपदयोर्न्यासः ।
३. वरुणोपास्यत्र्यक्षरमन्त्रेण गुल्फयोर्न्यासः ।
४. पावकोपास्यपञ्चाक्षरमन्त्रेण पार्ष्णिद्वयोर्न्यासः ।
५. अदित्युपास्यपञ्चाक्षरमन्त्रेण जान्वोर्न्यासः ।
६. शच्युपास्यपञ्चाक्षरमन्त्रेण वंक्षणयोर्न्यासः ।
७. दानवोपास्यनवाक्षरमन्त्राभ्यां श्रोणियुगलयोः पिण्डद्वयोश्च न्यासः ।
८. मृत्युकालोपास्यनवाक्षरमन्त्रेण स्फिग्युगलयोर्न्यासः ।
९. भरतोपास्यषोडशाक्षरमन्त्रेण कुक्षियुगलयोर्न्यासः ।?
१०. च्यवनोपास्यषोडशार्णमन्त्रेण पार्ष्णियुगलयोर्न्यासः ।?
११. हारीतोपास्यषोडशाक्षरमन्त्रेण चूचुकयोर्न्यासः ।
१२. जाबालोपास्यषोडशाक्षरमन्त्रेण अंसयोर्न्यासः ।
१३. दक्षोपास्यषोडशाक्षरमन्त्रेण जत्रुणोर्न्यासः ।
१४. रामोपास्यसप्तदशाक्षरमन्त्रेण कक्षयोर्न्यासः ।
१५. हिरण्यकशिपूपास्यषोडशाक्षरमन्त्रेण कफोणिद्वयोर्न्यासः ।
१६. ब्रह्माराध्यमहासप्तदशीमन्त्रेण मणिबन्धयोर्न्यासः ।
१७. वसिष्ठाराध्यसप्तदशाक्षरमन्त्रेण कराङ्गुलीमूलयोर्न्यासः ।
१८. विष्णुतत्त्वाख्यपञ्चाक्षरमन्त्रेण कराङ्गुल्यग्रयोर्न्यासः ।
१९. अम्बाहृदयाख्याष्टाक्षरमन्त्रेण गण्डयोर्न्यासः ।
२०. रुद्रोपास्यषोडशाक्षरमन्त्रेण नासापुटयोर्न्यासः ।
२१. विश्वेदेवोपास्यषट्त्रिंशदक्षरमन्त्रेण अधरोष्ठयोर्न्यासः ।
२२. रावणोपास्यसप्तदशाक्षरमन्त्रेण दन्तपंक्तियुगलयोर्न्यासः ।

२३. रावणोपास्यषट्त्रिंशदक्षरमन्त्रेण गण्डयोर्न्यासः ? ।
२४. अग्न्युपास्याष्टपञ्चाशदक्षरमन्त्रेण कपोलयोर्न्यासः ।
२५. द्विशताधिकसप्तशीत्यक्षरमन्त्रेण हन्वोर्न्यासः ।
२६. किन्नरोपास्यशताक्षरमन्त्रेण कर्णयोर्न्यासः ।
२७. शाम्भवमन्त्रेण लोचनयोर्न्यासः ।
२८. महाशाम्भवमन्त्रेण कूर्चन्यासः ।
२९. तुरीयामन्त्रेण ललाटन्यासः ।
३०. महातुरीयामन्त्रेण शिरसि न्यासः ।
३१. निर्वाणमन्त्रेण ब्रह्मरन्ध्रे न्यासः ।
३२. महानिर्वाणमन्त्रेण सर्वशरीरव्यापके न्यासः ।

इति मन्त्रन्यासः ।

१९. सिद्धिन्यासः (८।६१७-६७४)

(१) ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं एकवक्त्रा गुह्यकाली देवता विधात्रे सृष्टिकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी प्क्ष्ल्व्रझ्फ्रूं फां फीं फूं डम्लव्रीं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति ब्रह्मरन्ध्रे न्यासः ।

(२) ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं त्रिवक्त्रा गुह्यकाली देवता अनङ्गाय त्रैलोक्यमोहनकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी सखह्लक्ष्मस्फ्रों क्लीं ह्रीं लम्लव्रीं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति भ्रुवोर्न्यासः ।

(३) ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं त्रिवक्त्रा गुह्यकाली देवता वरुणाय जगत् स्निग्धकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी कम्लव्रीं फ्रें फ्रैं फ्रौं सम्लव्रीं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति दक्षकपोले न्यासः ।

(४) ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं पञ्चवक्त्रा गुह्यकाली देवता पावकाय दाहकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी रम्लब्रीं ग्लूं ग्लैं ग्लौं हम्लव्रीं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति वामकपोले न्यासः ।

(५) ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं पञ्चवक्त्रा गुह्यकाली देवता अदितये अखिलदेहोद्भवकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी सखह्लक्ष्मस्त्रीं ब्लूं ब्लैं ब्लौं यम्लव्रीं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति नेत्रयोर्न्यासः ।

(६) ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं षट्वक्त्रा गुह्यकाली देवता शच्यै इन्द्रसाम्राज्यकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी सखह्लक्ष्मजूं स्हौं स्हौः सौः

रलह्रक्षफ्रूं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति नासापुटयोर्न्यास: ।

(७) ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं अष्टवक्त्रा गुह्यकाली देवता दानवेभ्य: देवपराभवकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी वम्लत्रां ज्रू ज्रैं ज्रौं रक्षफ्रभ्रध्रम्लूं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति कर्णयोर्न्यास: ।

(८) ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं नववक्त्रा गुह्यकाली देवता मृत्युकालभ्यां भूतान्त:करणकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी सखह्रक्ष्मथ्रीं क्षूं क्षैं क्षौं रक्षह्रभ्रध्रम्लूं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति गण्डयोर्न्यास: ।

(९) ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं दशवक्त्रा गुह्यकाली देवता भरताय सप्तद्वीपसाम्राज्यकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी सखह्रक्ष्मस्ह्रौं ह्रूं ह्रैं ह्रौं रक्षझ्रभ्रध्रम्लूं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति सृक्कयोर्न्यास: ।

(१०) ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं दशवक्त्रा गुह्यकाली देवता च्यवनाय अभिचारकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी सखह्रक्ष्मक्रीं हस्ख्फ्रें हस्ख्फ्रैं हस्ख्फ्रौं रक्षभ्रम्लूं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति हन्वोर्न्यास: ।

(११) ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं दशवक्त्रा गुह्यकाली देवता हारीताय योगवश्यकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी सखह्रक्ष्मध्रीं रह्रूं रह्रैं रह्रौं क्ष्क्लीं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति कक्षयोर्न्यास: ।

(१२) ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं दशवक्त्रा गुह्यकाली देवता जाबालाय ब्रह्मविद्याप्रकाशकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी ह्रक्ष्मलीं रक्ष्रूं रक्ष्रैं रक्ष्रौं क्षभ्लीं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति जत्रुन्यास: ।

(१३) ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं दशवक्त्रा गुह्यकाली देवता दक्षाय प्रजासर्गकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी सलह्रक्षह्रूं रछ्रीं रज्रीं रक्रीं क्ष्ब्लीं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मभ सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति स्कन्धयोर्न्यास: ।

(१४) ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं दशवक्त्रा गुह्यकाली देवता रामाय रावणवधकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी ह्रक्षम्लक्रयूं खफछ्रूं खफछ्रैं खफछ्रौं क्ष्ग्लीं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति चूचुकयोर्न्यास: ।

(१५) ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं शतवक्त्रा गुह्यकाली देवता हिरण्यकशिपवे त्रैलोक्यैश्वर्यकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी रक्षभ्रध्रग्रम्लूं रफ्लूं रफ्लैं रफ्लौं क्ष्फ्लीं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति पार्श्वयोर्न्यासः ।

(१६) ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं रावक्त्रा गुह्यकाली देवता ब्रह्मणे ब्रह्माण्डोत्पत्तिकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी क्ष्लफ्लओं क्षरस्त्रूं क्षरस्त्रैं क्षरस्त्रौं क्ष्क्लूं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति हृदये न्यासः ।

(१७) ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं रावक्त्रा गुह्यकाली देवता वसिष्ठाय कामक्रोधवशीकरणकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी सखह्रक्ष्मफ्रों क्षरह्रीं क्षरह्रूं क्षरह्रैं क्षग्लूं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति जठरे न्यासः ।

(१८) ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं दशवक्त्रा गुह्यकाली देवता विष्णवे चतुर्दशभुवनपालनकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी ओं श्रें क्लीं रक्ष्श्रीं रक्ष्छ्रीं रस्फ्रौं क्ष्ह्लूं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति नाभौ न्यासः ।

(१९) ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं द्वादशवक्त्रा गुह्यकाली देवता स्वस्मै शिवमोहनकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी सखह्रक्ष्मह्रीं ख्फ्रीं रस्फ्रों झ्रभ्रयूं ख्म्ह्रीं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति वस्तौ न्यासः ।

(२०) ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं एकादशवक्त्रा गुह्यकाली देवता रुद्राय संहारकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी सहक्षलक्षख्फ्रीं क्लूं स्त्रीं फ्रं क्षफ्लूं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति लिङ्गे न्यासः ।

(२१) ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं त्रयोदशवक्त्रा गुह्यकाली देवता विश्वे देवेभ्यः श्राद्धाधिष्ठानकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी सखह्रक्ष्मठ्रीं रछ्रूं रछ्रैं रछ्रौं क्ष्ह्रीं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति गुदे न्यासः ।

(२२) ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं दशवक्त्रा गुह्यकाली देवता रावणाय शिवदास्यकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी ह्रक्षम्लग्रयूं रज्रूं रज्रैं रज्रौं स्हक्ष्लक्षहस्फ्रें ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति कटौ न्यासः ।

(२३) ओं ह्रीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं दशवक्त्रा गुह्यकाली देवता रावणाय जगज्जयकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी क्षग्लीं रझ्रूं रझ्रैं रझ्रौं सखह्रक्ष्मक्लां ऐं छ्रीं स्त्रीं हृं फ्रें क्लीं श्रीं ह्रीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु

स्वाहा इति वंक्षणयोर्न्यासः.।

(२४) ओं ह्लीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं षोडशवक्त्रा गुह्यकाली देवता सिद्धेभ्यः कामगतिकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी रक्षव्रभ्रध्रम्लूं रप्रूं रप्रैं रप्रौं सखह्लक्ष्मग्लीं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्लीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति इत्यूर्वोर्न्यासः ।

(२५) ओं ह्लीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं एकाशीतिवक्त्रा गुह्यकाली देवता सप्तर्षिभ्यः कल्पावधिस्थितिकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी क्ष्म्लूं रफ्रूं रफ्रैं रफ्रौं सखह्लक्ष्मक्लीं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्लीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति जान्वोर्न्यासः ।

(२६) ओं ह्लीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं विंशतिवक्त्रा गुह्यकाली देवता किन्नरेभ्यः सङ्गीतकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी सखह्लक्ष्मश्रीं रस्त्रूं रस्त्रैं रस्त्रौं सखह्लक्ष्महूं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्लीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति जङ्घयोर्न्यासः ।

(२७) ओं ह्लीं श्रीं क्लीं फ्रें हूं स्त्रीं छ्रीं ऐं अयुतवक्त्रा गुह्यकाली देवता कालाग्निरुद्रेभ्यः महाप्रलयकर्तृत्वरूपसिद्धिदायिनी रलक्षध्रम्लूं खफ्रूं खफ्रें खफ्रौं सखह्लक्ष्मक्रैं ऐं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्लीं श्रीं ह्लीं ओं मम सिद्धिं प्रयच्छतु स्वाहा इति व्यापके न्यासः ।

इति सिद्धिन्यासः ।

२०. विराट्न्यासः (८।६८०-८५१)

(१) ओं रहक्षम्लव्य्रअख्फ्छ्रस्त्रह्लीं ह्लीं क्ष्लफ्लओं हस्ख्फ्रां क्ष्मसकह्लीं रक्रां क्लश्रम्क्षह्लम्लूं रध्रां शम्लक्लयक्षह्लूं ख्फ्रां ट्लत्लट्लक्षफ्रख्फ्छ्रीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः जटाजूटाय ब्रह्माण्डाय रक्ष्खूं रक्ष्क्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं ह्ग्लीं ह्ग्लूं ह्ग्लैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(२) ऐं शम्लह्लव्य्रख्फ्रैं हलूं ह्लक्ष्मलीं हस्ख्फ्रीं रलहक्षम्लख्फ्रछ्रूं रक्रीं फ्रलक्ष्मकह्लूं रध्रीं शम्लक्लयक्षह्लूं ख्फ्रीं टरक्षप्लमह्लूं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः मस्तकाय ऊर्ध्वकपालाय रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं क्ष्ब्लीं क्ष्ब्लैं क्ष्ब्लैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(३) आं रक्षफ्रसमहह्लव्यऊं ह्लैं स्हक्ष्लक्षख्फ्रीं हस्ख्फ्रूं रसक्षस्त्रकहलह्लीं रक्रूं स्त्रहलक्षह्लमत्रीं रध्रूं रक्षरजक्ष्मक्ष्मरह्लम्लव्य्रछ्रीं ख्फ्रूं जसदनस्हक्षग्लूं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः ललाटाय देवीलोकाय रक्ष्खूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं क्रह्लीं क्रह्लूं क्रह्लैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(४) ईं लगम्क्षख्फ्रसह्लूं ह्लौं डम्लव्रीं ह्स्ख्फ्रें जरक्षलहक्षम्लव्य्रऊं रक्रें हम्लक्क्षव्य्रलछ्रौं रध्रें शम्लक्लयक्षह्लूं ख्फ्रें ह्लमक्षकमह्लीं विराट्रूपाया: गुह्यकाल्या: सीमन्तदण्डाय मेरुशैलाय रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं क्रह्लीं क्रह्लूं क्रह्लैं फट् फट् फट् नम: स्वाहा ।

(५) ह्लीं फग्लसहमक्षव्लूं म्रूं सम्लव्रीं ह्स्ख्फ्रैं सरहखफ्रम्लव्रीं रक्रैं स्हलकह्लक्षूं रध्रैं कम्क्षव्य्रकछ्रूं खफ्रैं ठ्लतृलक्षफ्रख्फ्छ्रीं विराट्रूपाया: गुह्यकाल्या: दक्षिणभ्रुवे अजवीथ्यै रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं ह्लक्षम्लीं ह्लक्षम्लूं ह्लक्षम्लौं फट् फट् फट् नम: स्वाहा ।

(६) श्रीं ह्स्ख्फ्रम्लक्षव्य्रऊं श्लीं कम्लव्रीं ह्स्ख्फ्रों लह्लक्षकमव्य्रह्लीं रक्रों नजरमकह्लक्ष्लीश्रीं रध्रों ह्लक्लक्षम्लश्रूं ख्फ्रों मक्क्षह्लग्लव्लीं विराट्रूपाया: गुह्यकाल्या: वामभ्रुवे नागवीथ्यै रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं क्ष्रक्लीं क्ष्ख्फ्रें क्षखफ्रैं फट् फट् फट् नम: स्वाहा ।

(७) क्लीं य्रमह्लक्षफ्रग्लैं श्लूं वम्लव्रीं ह्स्ख्फ्रौं क्षकभ्रह्लह्लमव्य्रईं रक्रौं × (तौषितं सूक्तं) रध्रौं लमकक्षह्लीं ख्फ्रौं गपटतयजक्लूं विराट्रूपाया: गुह्यकाल्या: दक्षिणकर्णाय शिवलोकाय रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं क्ष्ज्रीं क्ष्ज्रूं क्ष्ज्रैं फट् फट् फट् नम: स्वाहा ।

(८) क्रीं ख्फ्रध्रव्य्रओं छ्ध्रीं श्लैं लम्लव्रीं ह्स्ख्फ्रं रहह्लव्य्रक्लीं रख्रां रमयपक्षव्रूं रप्रां लमकक्षह्लीं ह्स्फ्रां ह्लमक्षकमह्लीं विराट्रूपाया: गुह्यकाल्या: वामकर्णाय वैकुण्ठलोकाय रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं ह्लस्त्रीं ह्लस्त्रूं ह्लस्त्रैं फट् फट् फट् नम: स्वाहा ।

(९) क्रूं क्ष्मलरसहव्य्रह्लूं श्लौं यम्लव्रीं ह्स्ख्फ्र: सक्ष्मह्लख्फ्रह्लीं रख्रीं ख्लह्लवनगक्षरछ्रीं रप्रीं गसनहक्षव्रीं ह्स्फ्रीं चमरगृक्षफ्रस्त्रीं विराट्रूपाया: गुह्यकाल्या: तिलकाय रोहिताय रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं ह्लछ्रीं ह्लछ्रूं ह्लछ्रैं फट् फट् फट् नम: स्वाहा ।

(१०) क्रों भक्ष्लरमह्स्ख्फ्रूं फ्लीं र्लह्क्षफ्रूं ह्स्ख्फ्रिं हक्षम्लव्रस्हरक्लीं र्ख्रूं क्षलहक्षमलम्लूं र्प्रूं शम्लक्लयक्षह्लूं ह्स्फ्रूं फ्रदमहयनह्लूं विराट्रूपाया: गुह्यकाल्या: नासिकायै मन्दाकिन्यै रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं छ्रह्लीं छ्रह्लूं छ्रह्लैं फट् फट् फट् नम: स्वाहा ।

(११) क्रौं स्हछ्रक्ष्लमर् व्रीं फ्यूं सलहक्षहूं हसखफ्रुं क्लहक्षलहक्षमव्रीं र्ख्रें रसमयक्षह्लस्त्रीं र्प्रें गसनहक्षत्रीं हस्फ्रें छ्रडतलजूं विराट्रूपाया: गुह्यकाल्या: दक्षिणचक्षुषे सूर्याय रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं ह्लक्लीं ह्लक्लूं ह्लक्लैं फट् फट् फट् नम: स्वाहा ।

(१२) स्त्रीं तफलक्षकमश्रत्रीं छ्रू क्षलहक्षझ्रूं म्लीं हम्लक्षत्रसह्लीं रख्रैं........... (भौमसूक्तं?) र्प्रैं म्लगक्षश्रफ्रीं हसफ्रैं भलनएदक्ष्रीं विराट्रूपाया: गुह्यकाल्या: वामचक्षुषे चन्द्राय रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं क्लह्लीं क्लह्लूं फट् फट् फट् क्लह्लैं नम: स्वाहा ।

(१३) फ्रें.....................(ध्वजकूटम्) छ्रैं ह्लक्षम्लफ्रयूं म्लूं रहहक्लव्य्रऊं रख्रौं ह्लक्षमकह्लछ्रीं र्प्रो गसनहक्षत्रीं हसफ्रों रगह्लक्षम्लयछ्रूं विराट्रूपाया: गुह्यकाल्या: पक्ष्मभ्य: किरणेभ्य: रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं क्लक्ष्रीं क्लक्ष्रूं क्लक्ष्रैं फट् फट् फट् नम: स्वाहा ।

(१४) फ्रों प्रस्हम्लक्षक्लीं छ्रौं × (?) हसफ्रौं म्लैं सफक्ष्लमहप्रक्लीं रख्रौं मब्लयटत्क्षईं र्प्रौं कप्रम्लक्षयक्लीं छत्क्षठ्नह्लब्लीं विराट्रूपाया: दक्षिणगण्डाय तपोलोकाय रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षग्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं क्लरह्लीं क्लरह्लूं क्लरह्लैं फट् फट् फट् नम: स्वाहा ।

(१५) फ्रौं समब्लकक्षव्य्रऊं स्त्रूं रक्षफ्रभ्रग्रम्लऊं म्लौं थहरखफ्रह्लमब्लूं र्ग्रां पटक्षम्लस्हखफ्रूं रफ्रां करह्लरखफछ्रभ्रीं ह्लक्षीं क्लसमयग्लह्लफ्रूं विराट्रूपाया: गुह्यकाल्या: वामगण्डाय सत्यलोकाय रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं ह्लफ्रीं ह्लफ्रूं ह्लफ्रैं फट् फट् फट् नम: स्वाहा ।

(१६) हौं भ्ररयक्ष्क्षसहफ्रीं स्त्रैं रक्षक्रम्रध्रम्लूं खफ्रछ्रीं क्ष्मक्लरक्षव्य्रऊं रग्रीं ह्लक्षफ्रकम्लीं रफ्रीं झ्रकस्त्रक्षथ्रीं ह्ल्क्षीं ख्लभक्ष्मलव्य्रीं विराट्रूपाया: गुह्यकाल्या: दक्षिणकपोलाय जनलोकाय रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं ह्लखफ्रां ह्लखफ्रीं ह्लखफ्रूं फट् फट् फट् नम: स्वाहा ।

(१७) हूं ब्लक्क्षहमस्त्रछ्रूं स्त्रौं क्ष्क्लीं ख्फ्छ्रूं म्लक्षफ्लछ्रीं रग्रूं...............(शारीरसूक्तं) रफ्रूं टरयलह्लब्लछ्रीं हलक्ष्रूं गमह्लयक्ष्लम्रीं विराट्रूपाया: गुह्यकाल्या: महर्लोकाय रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं स्त्रखफ्रां स्त्रखफ्रीं स्त्रखफ्रूं फट् फट् फट् नम: स्वाहा ।

(१८) स्फ्रों रसमस्त्रहव्य्रऊं थ्रां क्षफ्लीं खफछ्रें ज्रलह्लफ्रव्य्रऊं रग्रें पप्क्षम्लस्हखफ्रां रफ्रें डखछ्रक्षहममफ्रीं हलक्षें खतक्लक्ष्मव्य्रहूं

विराट्रूपाया: गुह्यकाल्या: दक्षिणकुण्डलाय हिमाद्रये रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं श्रखफ्रीं श्रखफ्रूं श्रखफ्रैं फट् फट् फट् नम: स्वाहा ।

(१९) स्क्रौं धशड्लझ्ह्लीं थ्रीं क्षम्लूं खफछ्रैं सह्लव्रह्लख्फ्रयीं रग्रैं समलक्षग्लस्त्रीं रफ्रैं चफक्षलकमयह्लीं हलक्षैं ठक्ष्मलखछ्रीं विराट्रूपाया: गुह्यकाल्या: वामकुण्डलाय कैलासाय रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं क्लखफ्रीं क्लखफ्रूं क्लखफ्रैं फट् फट् फट् नम: स्वाहा ।

(२०) क्षौं टफ्रकम्क्षजस्त्रीं थ्रूं क्षक्लूं खफछ्रों छ्रम्लक्षफ्लह्लहम्रीं र्ग्रों.........
...(नक्षत्रसूक्तम्) रफ्रों स्त्रह्लफ्रम्रीं हलक्षों ब्लयक्ष्मझ्ग्लथ्रूं विराट्रूपाया: गुह्यकाल्या: ओष्ठाय स्वर्लोकाय रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं ह्लथ्रीं ह्लथ्रूं ह्लथैं फट् फट् फट् नम: स्वाहा ।

(२१) ग्लीं ट्लव्य्रसम्क्षहछ्रीं थ्रैं रक्षभ्रम्लऊं खफछ्रौं र्क्षलहव्य्रईं रग्रौं नमह्क्षव्य्रहूं रफ्रौं व्रतरयह्लक्षम्लूं ह्ल्क्षौं मसफ्लभरक्षव्य्रहूं विराट्रूपाया: गुह्यकाल्या: अधराय भुवर्लोकाय रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं ह्लभ्लीं ह्लभ्लूं ह्लभ्लैं फट् फट् फट् नम: स्वाहा ।

(२२) ग्लूं ज्लकहलक्षत्रमथ्रीं थ्रौं रक्षस्त्रभ्रध्रम्लऊं खफछ्रं व्रहठ्रम्लहूं रच्रां यरक्षम्लब्लीं ख्रां छ्रलक्षकम्लह्लीं द्रैं करयनप्लक्षफ्रीं विराट्रूपाया: गुह्यकाल्या: अधोदन्तपंक्तये दिक्पालग्रहलोकाय रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं श्रब्लूं श्रब्लैं श्रब्लौं फट् फट् फट् नम: स्वाहा ।

(२३) क्लूं क्षम्लजरस्त्रीं च्रीं क्षह्लीं क्षरस्त्रां क्ष्लसहमव्रयूं रच्रीं खरसफ्रम्लछ्रयूं रव्रीं फलयक्षकयब्लूं फहलक्षीं ? रसमयक्षक्लह्लीं विराट्रूपाया: गुह्यकाल्या: ऊर्ध्वदन्तपंक्तये सप्तर्षिध्रुवलोकाय रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं ग्लब्लीं ग्लब्लूं ग्लब्लैं फट् फट् फट् नम: स्वाहा ।

(२४) ग्लौं जनहमर्क्षयह्लीं च्रूं सखह्लक्ष्मक्रीं क्षरस्त्रीं चफक्लह्लमक्षूं रच्रूं (पितृसूक्तम्) ख्रूं ह्लक्लक्षम्लश्रूं फहलक्षूं समग्क्षलयब्लूं विराट्रूपाया: गुह्यकाल्या: मुखमण्डलाय रोदस्यै रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं क्षख्रीं क्षख्रूं क्षख्रैं फट् फट् फट् नम: स्वाहा ।

(२५) ब्रच्रां लयक्षकहस्त्रव्रह्लीं च्रैं सखह्लक्ष्मजूं क्षरस्त्रूं क्लक्ष्मग्लव्य्रहूं रच्रें खफसहलक्षूं ख्रें मक्षब्लह्लकमव्य्रईं फहलक्षें खरगवक्ष्मलयव्य्रईं

विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः चिबुकाय द्यौर्लोकाय रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं क्रथ्रीं क्रथ्रूं क्रथ्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(२६) क्लौं पखसमक्षस्त्रक्रीं च्रौं सखह्लक्ष्मश्रीं क्षरस्त्रूं तमहलहक्षक्लफ्रग्लूं रच्रैं क्षलहक्षक्लस्त्रूं ग्लमक्षसक्लह्लीं ख्रैं टसमनहक्षमखरयूं फहलक्षैं समरगक्षहसखफ्रीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः गलाय ब्रह्मलोकाय रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं ग्लठ्रां ग्लठ्रीं ग्लठ्रूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(२७) क्लैं कह्लक्लक्ष्खफ्रीं ह्लां हम्लत्रीं क्षरस्त्रैं मथहलक्षप्रह्लूं रच्रौं डम्लक्षव्रखफस्त्रीं ख्रां.......................(सितकर्वुरः) फहलक्षों मकक्षह्लग्लब्लीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः वक्षःस्थलाय नभसे रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं ज्रत्रां ज्रत्रीं ज्रत्रूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(२८) ब्लीं खरसफ्रम्लक्षच्छ्रयूं हूं ओं श्रें क्लीं क्षरस्त्रां सरम्लक्षहसखफ्रीं रच्रौं च्लक्ष्मस्हव्य्रखीं ख्रौं (रक्तनीलः) फहलक्षौं व्य्रधरमक्षच्लीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः हाराय नक्षत्रमालायै रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं सहलक्रां सहलक्रीं सहलक्रूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(२९) ब्लूं रलहक्षसमहफ्रछ्रीं ह्लैं हलफ्रकह्लीं क्षरस्त्रौं छ्रस्त्रौं छ्रम्लक्षव्रकह्लीं रछ्रां डम्लक्षव्रखफस्त्रीं हूं रभ्रां ब्लयनहक्षकश्रूं क्ष्लौं धमसरब्लयक्षूं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः बाहुभ्यःदिक् विदिक्चयेभ्यः रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं फ्लक्रीं फ्लक्रूं फ्लक्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(३०) ब्लैं झथक्षमफ्रश्रौं ह्लौ ह्लक्षम्लक्रयूं क्षरस्त्रौं सक्लएईह्लीं रछ्रीं....... × (तत्त्वसूक्तं) रभ्रीं नपटजक्षफ्रसफहलक्षीं रजमक्षकम्लीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः पृष्ठाय स्वर्गाय रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं फ्लक्रैं फ्लक्रों फ्लक्रौं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(३१) ब्लौं ईसकहमरक्षक्रीं रफ्लीं ह्लक्षम्लग्रयूं झमरयऊं खहक्षमह्लव्रह्लीं रछ्रूं स्हएंक्लरक्ष्रीं रभ्रूं गसनहक्षत्रई सफहलक्षूं समहहलक्षखफ्रस्त्रीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः उदराय अन्तरिक्षाय रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं फ्रखभ्रां फ्रखभ्रीं फ्रखभ्रूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(३२) क्रीं झक्ररहक्ष्मव्य्रऊं रफ्लूं ह्लक्षम्लझ्रयूं × (कौणपी) महलक्षलखफ्रव्य्रह्लीं रछ्रें लसरक्षकमव्य्रह्लीं रभ्रें क्षब्लकस्त्रीं सफलक्षैं कब्लयसमक्षखछ्रूं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः अन्त्रेभ्यः पर्वतेभ्यः रक्षखूं रक्षक्रूं

स्हक्षम्लव्र्यऊं क्षस्हम्लव्र्यऊं क्षह्लम्लव्र्यऊं फ्रथ्रीं फ्रथ्रूं फ्रथ्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(३३) क्रूं झक्ररहक्ष्मव्र्यऊं रफ्लैं ह्लक्षम्लव्रयूं रस्फ्रों चफवलह्लमक्षूं रछ्रैं......... ....(नर्भसूक्तम्) रभ्रैं क्षब्लकस्त्रीं सफहलक्षैं रसमयरक्षक्षग्लीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः जठराय सिन्धुभ्यः रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्र्यऊं क्षस्हम्लव्र्यऊं क्षह्लम्लव्र्यऊं ग्लख्रीं ग्लख्रूं ग्लख्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(३४) क्रैं गरमश्रब्लक्षश्रीं रफ्लौं क्षह्लूं रक्षश्रीं समतरक्षखफछ्रक्लीं रछ्रों ... .(कैवल्यसूक्तम्) रभ्रों वसरझ्रमक्षव्रक्लीं ढ्रीं क्लपट्क्षमव्र्यईं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः प्राणेभ्यः वायुभ्यः रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्र्यऊं क्षस्हम्लव्र्यऊं क्षह्लम्लव्र्यऊं क्ष्रव्रीं क्ष्रव्रूं क्ष्रव्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(३५) क्रौं फ्रखस्हहभव्रयूं क्ष्रां ह्लक्षम्लह्लयूं रक्षछ्रीं दमनडत्क्ष सहव्र्यईं रछ्रौं.. ......(अमृतसूक्तम्) रभ्रौं कह्लब्लजूं सफहलक्षौं.........विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः रोमभ्यः वनस्पत्योषधीभ्यः रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्र्यऊं क्षस्हम्लव्र्यऊं क्षह्लम्लव्र्यऊं ख्फ्रह्लीं खफ्रह्लूं खफ्रह्लैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(३६) ख्रौं क्लमयक्षलहक्षब्रीं क्ष्रीं ह्लक्षम्लस्त्रयूं रस्फ्रौं..............(उत्तरानाडी) रज्रां क्लम्लक्षस्हश्रीं रम्रां ह्लक्लक्षम्लश्रूं रजझ्रक्ष्रीं नमब्लह्लक्षम्रग्लूं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः दृष्ट्यै विद्युते रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्र्यऊं क्षस्हम्लव्र्यऊं क्षह्लम्लव्र्यऊं ख्फ्रह्लीं खफ्रह्लूं खफ्रह्लैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(३७) घ्रीं क्लमयक्षलहक्षब्रीं क्ष्रूं रक्षस्त्रभ्रध्रम्लऊं × (रम्भा) नरक्षलहक्षकम्लव्र्यह्लीं रज्रीं दरजभ्रम्लकक्ष्रीं रम्रीं स्त्रह्लफ्रम्रीं रजझ्रक्ष्रूं डपतसगम्क्षब्लूं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः निमेषोन्मेषाय अहोरात्राय रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्र्यऊं क्षस्हम्लव्र्यऊं क्षह्लम्लव्र्यऊं..........खफ्रक्ष्रीं खफ्रक्षैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(३८) ज्रीं फनमयसक्षछ्रीं क्ष्रैं रक्षह्लभ्रग्रम्लऊं × (वटी) ग्लक्षकमह्लस्हव्र्यऊं रज्रूं तफरक्षम्लह्लौं रम्रूं म्रलक्षकह्लखफ्रछ्रीं रजझ्रक्ष्रैं क्षीं क्षें क्लें ह्लीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः हृदयाय चतुर्दशभुवनाय रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्र्यऊं क्षस्हम्लव्र्यऊं क्षह्लम्लव्र्यऊं खफ्रक्लीं खफ्रक्लूं खफ्रक्लैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(३९) ज्रूं फनमयसक्षछ्रीं क्ष्रौं रक्षझ्रभ्रध्रम्लऊं स्हौं मनटत्क्षफ्लव्र्यऊं रज्रें ह्लकझ्रक्षश्रीं रम्रें म्रलक्षकह्लखफ्रछ्रीं रजझ्रक्ष्रौं कहलजमक्षरव्र्यऊं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः चरणाभ्यां पृथिव्यै रक्षख्रूं रक्षक्ष्रूं

स्हक्षम्लव्र्यऊं क्षस्हम्लव्र्यऊं क्षह्म्लव्र्यऊं खफ्रछ्रीं खफ्रछ्रूं खफ्रछ्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(४०) ज्रैं कस्हलह्लख्रक्ष्रीं ज्रीं रक्षव्रभ्रग्रम्लऊं प्लैं रलहक्षडम्लत्रख्फ्रीं रज्रैं जमरब्लह्लयूं रम्रैं जलयकक्षग्लफ्रूं छ्ररक्षह्लां छ्रडक्षअहफ्रक्लीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः पादाङ्गुलीभ्यः सप्तपातालेभ्यः रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्र्यऊं क्षस्हम्लव्र्यऊं क्षह्म्लव्र्यऊं रखध्रीं रखध्रूं रखध्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(४१) ज्रौं ड्लखलहक्षखम.........................? ज्रूं रक्षभ्रध्रग्रम्लऊं प्लीं सहम्क्षलखभ्रक्लीं रज्रों.......................(नादबैन्दवम्) रम्रों ख्फ्र छ्रम्लग्रक्लीं छ्ररक्षह्लीं क्ष्लमरझ्ररथ्रीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः वाचे वेदेभ्यः रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्र्यऊं क्षस्हम्लव्र्यऊं क्षह्म्लव्र्यऊं खलफ्रीं खलफ्रूं खलफ्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(४२) छ्रीं मधस्त्रकक्षलक्रीं ज्रैं क्षम्लीं ट्रीं सनटमत्क्षब्भ्रीं रज्रौं द्रैं जमरब्लह्लूं रम्रौं ठक्लक्ष्मव्र्यह्लूं क्षरह्लूं कहलक्षश्रक्षम्लव्रईं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः नाड्यै नदीभ्यः रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्र्यऊं क्षस्हम्लव्र्यऊं क्षह्म्लव्र्यऊं व्रफ्लीं व्रफ्लैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(४३) स्हौः व्रमक्लयसक्षक्लीं ज्रौं रसखग्रमूं ठ्रीं चखफ्लक्षकस्हख्फ्र (?)........... (रझ्रां) ठफक्षथलमकस्त्रूं रश्रां............(शोणपीतम्) छ्ररक्षह्लैं नमयव्लक्षरश्रूं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः कफोणिभ्यां कलाभ्यः रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्र्यऊं क्षस्हम्लव्र्यऊं क्षह्म्लव्र्यऊं ख्रस्त्रीं ख्रस्त्रूं ख्रस्त्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(४४) × (परा) सफ्रक्षक्लमखछ्रीं रह्लीं क्ष्ब्लीं ड्रीं स सहलक्षह्लकमर..................... (?) रझ्रीं खफ्रक्ष्लब्लयह्लम्रीं रश्रीं ठक्लक्ष्मलव्र्यह्लूं छ्ररक्षह्लौं मब्लक्षफ्रध्रीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः मणिबन्धाभ्यां काष्ठाभ्यः रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्र्यऊं क्षस्हम्लव्र्यऊं क्षह्म्लव्र्यऊं फ्रम्लग्लीं फ्रम्लग्लूं फ्रम्लग्लैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(४५) क्ष्रूं छज्रमकव्र्यऊं रह्लूं क्षग्लीं ढ्रीं टनतम्क्षब्लयछ्रूं रझ्रूं................. (महाप्रस्थानसूक्तम्) रश्रूं ग्लकमलहक्षक्रीं रक्षफ्रछां परमक्षलहक्षऐं छ्रीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः जङ्घाभ्यां मुहूर्तेभ्यः रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्र्यऊं क्षस्हम्लव्र्यऊं क्षह्म्लव्र्यऊं क्ष्लक्ष्रीं क्ष्लक्ष्रूं क्ष्लक्ष्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(४६) प्रीं फ्ररक्षस्त्रमक्रूं रह्लैं क्षब्लूं प्रीं ग्रमहलक्षखफ्रग्लैं रझ्रैं भ्रमलक्षव्र्यकरह्लीं रश्रों डखछ्रक्षहममफ्रीं रक्षफ्रछ्रीं फ्रपक्षग्लम्रीं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः उरूभ्यां मृतुभ्यः रक्षख्रूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्र्यऊं क्षस्हम्लव्र्यऊं क्षह्म्लव्र्यऊं क्ष्रस्त्रीं क्ष्रस्त्रूं क्ष्रस्त्रैं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(४७) फ्रीं रब्लकमम्क्षग्लीं रह्लौं क्षग्लूं त्रीं नक्ष्मजल्हक्षख्फ्रव्य्रऊं रझ्रैं ब्लहतह्लसचैं (?) रश्रैं फ्लमधह्क्ष क्षव्य्रऊं रक्षफ्रछ्रूं जपतरक्ष्मलयकनईं विराट्रूपाया: गुह्यकाल्या: कट्यै पक्षाभ्यां रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं क्षह्लम्ल व्य्रऊं फ्रखभ्रीं फ्रखभ्रूं फ्रखभ्रैं फट् फट् फट् नम: स्वाहा ।

(४८) ब्रीं ट्लसकम्लक्षटब्रीं स्त्रीं कम्लत्रीं द्रीं चफसलहक्षमव्य्रऊं रझ्रों व्य्रक्लक्षह्लम्लूं रश्रौं ब्लमक्षमफखव्रछ्रीं रक्षफ्रछ्रैं शक्ष्मब्लयक्लऊं विराट्रूपाया: गुह्यकाल्या: वंक्षणाभ्यामयनाभ्यां रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं हसखफ्रक्ष्रीं हसखफ्रक्ष्रूं हसखफ्रक्ष्रैं फट् फट् फट् नम: स्वाहा ।

(४९) भ्रीं थलहक्षकह्लमत्रयीं स्त्रूं × (प्रामथम्) ध्रीं वरकजझ्रमक्षलऊं रझ्रौं साहमेवास्मि श्रौं झ्रकस्त्रक्षथ्रीं रक्षफ्रछ्रौं व्रतह्लक्षह्लीं विराट्रूपाया: गुह्यकाल्या: प्रपदाभ्यां मासेभ्य: रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं क्षरस्त्रखफ्रीं क्षरस्त्रखफ्रूं क्षरस्त्रखफ्रैं फट् फट् फट् नम: स्वाहा ।

(५०) म्रीं ओं तत्त्वमसि स्त्रैं खमह्लीं त्रीं ब्लक्षफ्लव्य्रछ्रीं रथ्रां चम्लहक्षसकह्लूं रस्त्रां हक्षहब्लकमह्लश्रीं रकक्ष्रीं ज्लह्लक्षगमछ्रखफ्रीं विराट्रूपाया: गुह्यकाल्या: स्फिग्भ्यामब्दाय रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं ह्फ्रीं ह्फ्रूं हफ्रैं फट् फट् फट् नम: स्वाहा ।

(५१) द्रैं द्लव्य्रक्षक्रभ्रीं स्त्रौं क्षफ्लूं ग्रीं ग्लमकक्षह्लछ्ब्रीं रथ्रीं धग्लक्षकमह्लव्य्रऊं रस्त्रीं ब्लक्क्षग्रमवरहस्त्रूं रकक्ष्रूं ब्लयरठह्लमक्ष्रूं विराट्रूपाया: गुह्यकाल्या: सर्वाङ्गाय चतुर्युगाय रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं क्ष्रस्त्रीं क्ष्रस्त्रूं क्षस्त्रैं फट् फट् फट् नम: स्वाहा ।

(५२) भ्रूं छ्रक्लव्य्रम्क्षयूं रक्ष्रीं सखह्लक्ष्मग्लीं म्रैं (?) पतक्षयह्लक्लखफ्रीं रथ्रूं रक्षगम्लरह्लीं रस्त्रूं फ्रक्षब्लूं रकक्ष्रैं क्षफ्रगकह्लनमह्लूं विराट्रूपाया: गुह्यकाल्या: जिह्वात्रयेभ्य: वैश्वानरकालमृत्युभ्य: रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं क्षफ्लह्लीं खफ्रह्लं छ्रखफ्रां फट् फट् फट् नम: स्वाहा ।

(५३) क्ष्लौं सक्लह्ल हसखफ्रक्ष्रीं कहलश्रीं सखह्लक्ष्मह्लीं ह्भ्रीं पतक्षयह्लक्लखफ्रीं रथ्रें थफखक्षलव्य्रईं रस्त्रें क्वफ्ररसम्क्षक्लछ्रूं रकक्ष्रौं गसधमरयब्लूं विराट्रूपाया: गुह्यकाल्या: अन्नाय आब्रह्मस्तम्बाय रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं ह्लग्लौं क्षब्लौं क्रङ्गौं फट् फट् फट् नम: स्वाहा ।

(५४) ब्रूं त्लमक्षफलहक्षव्रीं सखह्लक्ष्महूं ब्जूं समहक्षव्य्रऊं रथ्रैं क्लटव्य्रक्षम्लीं रस्त्रैं छ्रक्षग्लमस्त्रव्य्रऊं रह्लछ्ररक्षह्लां यरब्लमक्षहरूं ? विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः भोजनसमयाय प्रलयाय रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं ह्लग्लैं क्षब्लैं क्रह्लौं (?) फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(५५) म्रां गलहक्षम्लजक्रूं प्रैं सखह्लक्ष्मस्त्रीं स्कीं जररलहक्षम्लव्य्रऊं रथ्रों…… ……रस्त्रों शम्लक्लयक्षह्लूं रह्लछ्ररक्षह्लूं यरब्लमक्षह्लूं ? विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः पार्श्वपरीवर्ताय महाकल्पाय रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं क्रह्लौं क्षज्रौं ह्लस्त्रौं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(५६) प्लूं हससक्लह्लीं प्रौं सखह्लक्ष्मठ्रीं द्रौं जरक्षलहक्षम्लव्य्रऊं रथ्रों हरसकक्षम्लस्त्रीं रस्त्रौं जनथक्षकम्लव्रईं रह्लछ्ररक्षह्लैं यस्हल्मक्षह्लूं विराट्रूपायाः गुह्यकाल्याः……?…….? रक्षखूं रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्लम्लव्य्रऊं क्लह्लौं ह्लखफ्रैं स्त्रखफ्रौं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

इति विराट्न्यासः ।

२१. बीजन्यासः (९।४-४५)

(१) ओं ह्लीं श्रीं चिद्बीजाय ब्रह्माण्डाय रछ्रूं रछ्रैं रछ्रौं अनन्तशक्तिमूर्तये गुह्यकाल्यै हूं फट् स्वाहा इति ललाटे न्यासः ।

(२) ऐं श्रीं क्लीं आत्मबीजाय आकाशाय रज्रूं रज्रैं रज्रौं अनन्तशक्तिमूर्तये गुह्यकाल्यै हूं फट् स्वाहा इति मुखवृत्ते न्यासः ।

(३) आं क्रों क्रौं आवापोद्वापबीजाय वायवे रझ्रूं रझ्रैं रझ्रौं अनन्तशक्तिमूर्तये गुह्यकाल्यै हूं फट् स्वाहा इति ग्रीवायां न्यासः ।

(४) हूं क्रीं स्त्रीं ज्योतिर्बीजाय तेजसे रथ्रूं रथ्रैं रथ्रौं अनन्तशक्तिमूर्तये गुह्यकाल्यै हूं फट् स्वाहा इति गले न्यासः ।

(५) हौं क्षूं क्षौं पातालबीजाय जलाय रप्रूं रप्रैं रप्रौं अनन्तशक्तिमूर्तये गुह्यकाल्यै हूं फट् स्वाहा इति उरसि न्यासः ।

(६) ग्लूं ग्लैं ग्लौं उदधिबीजायै पृथिव्यै रफ्रूं रफ्रैं रफ्रौं अनन्तशक्तिमूर्तये गुह्यकाल्यै हूं फट् स्वाहा इति जठरे न्यासः ।

(७) क्लूं क्लैं क्लौं सङ्कल्पविकल्पबीजाय मनसे रश्रीं रश्रें रश्रौं अनन्तशक्तिमूर्तये गुह्यकाल्यै हूं फट् स्वाहा इति नाभौ न्यासः ।

(८) ब्लीं ब्लूं ब्लौं कालबीजाय ओषध्यै रह्रूं रह्रैं रह्रौं अनन्तशक्तिमूर्तये गुह्यकाल्यै हूं फट् स्वाहा इति वस्तौ न्यासः ।

(९) फ्रौं स्फ्रों स्फ्रौ रूपबीजाय चक्षुषे रक्ष्रूं रक्ष्रैं रक्ष्रौं अनन्तशक्तिमूर्तये गुह्यकाल्यै हूं फट् स्वाहा इति मेढ्रे न्यासः ।

(१०) स्हौं स्हौः सौः शब्दबीजाय श्रोत्राय रस्त्रूं रस्त्रैं रस्त्रौं अनन्तशक्तिमूर्तये गुह्यकाल्यै हूं फट् स्वाहा इति वंक्षणयोर्न्यासः ।

(११) छ्रीं फ्रें रछ्रौं (ओं?) गन्धबीजाय घ्राणाय ख्फ्रूं ख्फ्रैं ख्फ्रौं अनन्तशक्तिमूर्तये गुह्यकाल्यै हूं फट् स्वाहा इत्यूर्वोर्न्यासः ।

(१२) ज्रूं ज्रैं ज्रौं रसबीजाय रसनायै हस्फ्रूं हस्फ्रैं हस्फ्रौं अनन्तशक्तिमूर्तये गुह्यकाल्यै हूं फट् स्वाहा इति जान्वोर्न्यासः ।

(१३) त्रीं त्रूं त्रैं स्पर्शबीजाय त्वचे छ्ररक्षह्रूं छ्ररक्षह्रैं छ्ररक्षह्रौं अनन्तशक्तिमूर्तये गुह्यकाल्यै हूं फट् स्वाहा इति जङ्घायां न्यासः ।

(१४) क्रूं क्रैं क्रौं मैथुनबीजाय प्रजासर्गाय रह्रछ्ररक्षह्रूं रह्रछ्ररक्षह्रैं रह्रछ्ररक्षह्रौं अनन्तशक्तिमूर्तये गुह्यकाल्यै हूं फट् स्वाहा इति गुल्फयोर्न्यासः ।

(१५) प्रीं प्रूं प्रैं अन्नबीजाय प्राणाय रकक्ष्रूं रकक्ष्रैं रकक्ष्रौं अनन्तशक्तिमूर्तये गुह्यकाल्यै हूं फट् स्वाहा इति पार्ष्ण्योर्न्यासः ।

(१६) फीं फूं फैं अग्निबीजाय सुवर्णाय रक्षफ्रछ्रूं रक्षफ्रछ्रैं रक्षफ्रछ्रौं अनन्तशक्तिमूर्तये गुह्यकाल्यै हूं फट् स्वाहा इति प्रपदयोर्न्यासः ।

(१७) क्रीं क्रूं क्रैं पापबीजाय नरकाय रजझ्रक्ष्रूं रजझ्रक्ष्रैं रजझ्रक्ष्रौं अनन्तशक्तिमूर्तये गुह्यकाल्यै हूं फट् स्वाहा इति पार्श्वयोर्न्यासः ।

(१८) जूं सः क्ष्रूं पुण्यबीजाय स्वर्गाय ख्फ्रह्रूं ख्फ्रह्रैं ख्फ्रह्रौं अनन्तशक्तिमूर्तये गुह्यकाल्यै हूं फट् स्वाहा इति बाहुमूलयोर्न्यासः ।

(१९) ब्रीं ब्रूं ब्रैं अज्ञानबीजायै मायायै ख्फ्रक्ष्रूं ख्फ्रक्ष्रैं ख्फ्रक्ष्रौं अनन्तशक्तिमूर्तये गुह्यकाल्यै हूं फट् स्वाहा इत्यंसयोर्न्यासः ।

(२०) म्रां म्रीं म्रूं ज्ञानबीजाय मोक्षाय ख्फ्रछ्रूं ख्फ्रछ्रैं ख्फ्रछ्रौं अनन्तशक्तिमूर्तये गुह्यकाल्यै हूं फट् स्वाहा इति हन्वोर्न्यासः ।

(२१) छ्रूं छ्रैं छ्रौं वासनाबीजाय जन्मने ख्फ्रक्लूं ख्फ्रक्लैं ख्फ्रक्लौं अनन्तशक्तिमूर्तये गुह्यकाल्यै हूं फट् स्वाहा इति सृक्कयोर्न्यासः ।

(२२) श्रूं श्रैं श्रौं कर्मबीजाय मरणाय ख्फ्रह्रूं ख्फ्रह्रैं ख्फ्रह्रौं अनन्तशक्तिमूर्तये गुह्यकाल्यै हूं फट् स्वाहा इति गण्डयोर्न्यासः ।

(२३) च्रूं च्रैं च्रौं ध्यानबीजाय लयाय ह्रग्लूं ह्रग्लैं ह्रग्लौं अनन्तशक्तिमूर्तये गुह्यकाल्यै हूं फट् स्वाहा इति चक्षुयोर्न्यासः ।

(२४) स्त्रूं स्त्रैं स्त्रौं सत्वबीजाय विष्णवे फ्रम्रग्लूं फ्रम्रग्लैं फ्रम्रग्लौं अनन्तशक्तिमूर्तये गुह्यकाल्यै हूं फट् स्वाहा इति श्रवणयोर्न्यासः ।

(२५) थ्रूं थ्रैं थ्रीं रजोबीजाय ब्रह्मणे फ्रख्भ्रूं फ्रख्भ्रैं फ्रख्भ्रौं अनन्तशक्तिमूर्तये गुह्यकाल्यै हूं फट् स्वाहा इति कूर्चे न्यासः ।

(२६) श्लूं श्लैं श्लौं तमोबीजाय रुद्राय हस्ख्फ्रूं हस्ख्फ्रैं हस्ख्फ्रौं अनन्तशक्तिमूर्तये गुह्यकाल्यै हूं फट् स्वाहा इति ब्रह्मरन्ध्रे न्यासः ।

(२७) ज्लीं ज्लैं ज्लौं गुह्यकालीबीजाय चराचराय क्षरस्त्रख्फ्रूं क्षरस्त्रख्फ्रैं क्षरस्त्रखफ्रौं अनन्तशक्तिमूर्तये गुह्यकाल्यै हूं फट् स्वाहा इति व्यापके न्यासः ।

इति बीजन्यासः ।

२२. कूटन्यासः (९।४६-७७)

(१) ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं स्हज्ह्ल्क्ष्म्लवनऊं रजहलक्षमऊं क्वलह्लझकह्लनसक्लईं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति पादयोः न्यासः ।

(२) ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं हक्लह्लवडकखऐं क्षमब्लहकयह्लीं कसवह्लक्षम औं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति जङ्घायुगले न्यासः ।

(३) ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं क्लक्षसहमव्य्रऊं ह्लसहकमक्षव्रऐं सहट्लक्षह्लमक्रीं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति जानुयुगले न्यासः ।

(४) ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं सखक्लक्ष्मध्रयब्लीं र्क्षफ्रसमहह्लव्य्रऊं ख्फ्रध्रव्य्रओंछ्रध्रीं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इत्यूरुयुगले न्यासः ।

(५) ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं म्लकह्लक्षरस्त्रीं (नद्क्षट्क्षव्य्रईऊं ?) टक्षसन्रम्लैं म्लकह्लक्षरस्त्रीं (चहलक्षट्लहसखफ्रूं) फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति लिङ्गे न्यासः ।

(६) ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं लगम्क्षखफ्रसहूं फग्लसहमक्षब्लूं ख्फ्रध्रव्य्रओं छ्रध्रीं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति जठरे न्यासः ।

(७) ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं रक्षखरऊ रक्ष्क्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति वक्षसि न्यासः ।

(८) ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं क्लक्ष्मसहखव्रीं क्ष्मलरसहव्य्रहूं भ्रक्ष्लरमह्स्ख्फ्रूं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति अंसयुगले न्यासः ।

(९) ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं क्षस्हम्लव्य्रऊं च्लक्रथ्ल्ह्क्षह्लीं क्षह्लम्लव्य्रऊं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति हनुयुगले न्यासः ।

(१०) ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं स्हक्षम्लव्य्रईं रल्ह्क्षह्क्षक्षसक्लह्लीं क्लप्क्षह्लमव्रूं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति कपोलद्वये न्यासः ।

(११) ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं क्षह्लम्लव्य्रईं क्षस्हम्लव्य्रईं क्षह्लम्लव्य्रईं क्षह्लम्लव्य्रईं क्षह्लम्लव्य्रईं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति दन्तेषु न्यासः ।

(१२) ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं स्हछ्रक्ष्लम्रव्य्रईं..........(ध्वजकूटम्) झ्रहव्रक्ष्मसह्लीं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति नेत्रयुगले न्यासः ।

(१३) ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं स्त्रीं रक्षक्रींऊं स्हक्षम्लव्य्रईऊं स्हक्षम्लव्य्रईऊं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति कर्णयुगले न्यासः ।

(१४) ओं फ्रें ह्रीं छ्रों स्त्रीं ख्फ्रक्लक्ष्मसभ्रीं..................(वक्त्रकूटम् ?) ग्लक्लमझ्स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति नासापुटयोर्न्यासः ।

(१५) ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं स्त्रीं ख्लक्ष्क्षय्म्रख्फ्छ्रें ग्लकक्षह्लैं ठ्लव्रखफ्छ्रीं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति भ्रुवोर्न्यासः ।

(१६) ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं स्त्रीं रहक्षम्लव्य्रअख्फ्छ्रस्त्रह्रीं.......(गह्वरकूटम् ?) शम्ग्हव्य्रख्फ्रैं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति शङ्खयोर्न्यासः ।

(१७) ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं स्त्रीं सक्लहकह्रीं सक्लह्रीं छ्क्षक्ह्ल्क्षप्रौं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति शिरसि न्यासः ।

(१८) ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं स्त्रीं ख्फ्छ्एंव्रहक्ष्मत्रट्रयीं स्हक्लरक्षमजहखफरयूं व्लक्क्षहमस्त्रछ्रूं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति शिखायां न्यासः ।

(१९) ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं स्त्रीं फ्रत्क्षम्ल्ह्क्षहथ्ल्ह्क्षह्लूं ज्रैं स्ल्ह्क्षच्ल्ह्क्षज्ल्ह्क्ष ज्क्षड्ल्ह्क्षच्लद्रक्ष्मऐं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति मणिबन्धयोर्न्यासः ।

(२०) ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं स्त्रीं धशड्लझ्ह्रीं टफ्रकम्क्षजस्त्रीं रल्ह्क्षसमहफ्रछ्रीं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति कक्षयोर्न्यासः ।

(२१) ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं स्त्रीं (क्ष्रां क्रीं ?) गरमश्रव्लक्षश्रीं झक्ररहक्ष्मव्य्रऊं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति पृष्ठे न्यासः ।

(२२) ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं स्त्रीं द्लड्क्षवल्रू हस्ख्फ्रौं म्क्षक्रस्हख्फ्छ्रूं फ्लक्षह्लस्हव्य्रऊं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति कटौ न्यासः ।

(२३) ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं स्त्रीं व्रमक्लयस्क्षक्लीं ड्लख्ल्ह्क्षखम............? मधस्त्रक्क्षलक्रीं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति दक्षकरेषु न्यासः ।

(२४) ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं स्त्रीं प्ल्ह्क्षक्ष्मझ्रहच्रूं हस्लह्सकह्रीं क्ष्क्षक्ल्फ्रच्क्षक्षौं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति वामकरेषु न्यासः ।

(२५) ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं स्त्रीं जनहमरक्षयह्रीं लयक्षकहस्त्रव्रह्रीं पखसम्क्षस्त्रक्रीं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति दक्षपादादौ न्यासः ।

(२६) ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं स्त्रीं थ्ल्ह्क्षकहमव्रयीं तत्त्वमसि स्त्रौं ओं जनहमरक्षयह्रीं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति वामपादादौ न्यासः ।

(२७) ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं स्त्रीं हससक्लह्रीं क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षहम्लव्य्रऊं क्षहम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रऊं फ्रें ख्फ्रें हूं फट् नमः स्वाहा इति व्यापके सर्वशारीरे न्यासः ।

इति कूटन्यासः ।

२३. क्रमन्यासः (९।८०-४४८)

१. ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं छ्रीं स्हौः सौः फ्रें ख्फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें हूं फट् स्वाहा ।

(१) ओं ऐं श्रीं क्लीं स्त्रीं ह्रीं क्रों इ स्फ्रौं चण्डेश्वरि छ्रीं फ्रें हूं फट् स्वाहा ।

(२) ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रों क्रीं स्त्रीं क्लीं स्हज्ह्ल्क्षम्लवनऊं क्षमक्लह्रहसव्य्रऊं क्वलह्रझकह्रनसक्लईं हस्लक्षकमह्रब्रूं क्ष्लह्रमव्य्रऊं चण्डेश्वरि ख्रौं छ्रीं फ्रें फ्रें क्रौं क्रौं हूं फट् स्वाहा ।

(३) ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं क्रीं आं क्रों फ्रों हूं क्ष्रूं ह्स्ख्फ्रें फ्रें हरसिद्धे सर्वसिद्धिं कुरु कुरु देहि देहि दापय दापय हूं हूं फट् फट् फट् स्वाहा ।

(४) ऐं ह्रों श्रीं क्लीं ह्स्ख्फ्रें हूं कुक्कुटि क्रीं आं क्रों फ्रें फ्रों फट् स्वाहा ।

(५) ओं क्रों क्रौं ह्स्ख्फ्रें हूं छ्रीं फेत्कारि दद दद देहि दापय स्वाहा ।

(६) ऐं स्हौः खफ्रें ह्स्फ्रों........(वाडवकूटम् ?) एह्येहि भगवति बाभ्रवि महाप्रलयताण्डवकारिणि गगनग्रासिनि ह्रीं हूं छ्रीं स्त्रीं फ्रें शत्रून् हन हन सर्वैश्वर्यं दद दद महोत्पातान् विध्वंसय विध्वंसय सर्वरोगान् नाशय नाशय ओं श्रीं क्लीं हौं आं महाकृत्याभिचारग्रहदोषान् निवारय निवारय मथ मथ क्रों जूं ग्लूं ह्स्फ्रें ह्स्खफ्रें स्वाहा ।

(७) ओं श्रीं ह्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें हूं फट् ब्रह्मवेतालराक्षसि क्रीं क्ष्रूं फ्रों विष्णुशरावतंसिके योगिनि स्हौः...........(अमा) महारुद्रकुणपारूढे ऐं ओं हौं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(८) ओं ह्रीं हूं ऐं श्रीं क्लीं आं क्रों हौं भगवति महाघोरकरालिनि तामसि महाप्रलयताण्डविनि चर्चरीकरतालिके जय जय जननि जम्भ जम्भ महाकालि कालनाशिनि भ्रमरि भ्रामरि डमरुभ्रामिणि ऐं क्लीं स्फ्रों छ्रीं स्त्रीं फ्रें खफ्रें ह्स्फ्रें ह्स्खफ्रें फट् नमः स्वाहा ।

(९) क्रीं ओं हूं फ्रें स्त्रीं फ्रों चण्डखेचरि ज्वल ज्वल प्रज्वल निर्मांसदेहे नमः स्वाहा ।

(१०) ओं ह्रीं क्लीं हूं भगवति महाडामरि डमरुहस्ते नीलपीतमुखि जीवब्रह्मगल निष्पेषिणि छ्रीं स्त्रीं फ्रें खफ्रें महाश्मशानरङ्गचर्चरीगायिके तुरु तुरु मर्द मर्द मर्दय मर्दय ह्स्खफ्रें स्वाहा ।

(११) ओं ह्रीं आं शबरेश्वर्ये नमः ह्रीं पद्मावति स्वाहा ।

(१२) ओं श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्म्यै नमः ।

(१३) ओं ह्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां मुखं वाचं स्तम्भय जिह्वां कीलय कीलय बुद्धिं नाशय ह्लीं ओं स्वाहा ।

(१४) ओं नमः श्वेतपुण्डरीकासनायै प्रतिपदसमरविजयप्रदायै भगवत्यै अपराजितायै ह्रीं श्रीं क्लीं फट् स्वाहा ओं ।

(१५) ओं ऐं आं क्रीं श्रीं क्लीं हूं फ्रें खफ्रें ह्स्ख्फ्रें पिङ्गले पिङ्गले महापिङ्गले.........(अस्थिमेदिन्यम्बिके) हूं हूं फट् फट् स्वाहा ।

(१६) ओं ह्रीं क्षौं क्रों हं हं हं हयग्रीवेश्वरि चतुर्वेदमायि फ्रें छ्रीं स्त्रीं हूं सर्वविद्यानां मय्यधिष्ठानं कुरु कुरु स्वाहा ओं ।

ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं हूं छ्रीं स्हौः सौः फ्रें खफ्रें हस्फ्रें हस्ख्फ्रें हूं फट् स्वाहा इति दक्षपार्श्वे न्यासः ।

२. ओं श्रीं क्लीं ह्रीं छ्रीं फ्रें हूं स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर सान्निध्यं कुरु कुरु हूं फट् स्वाहा ।

(१) ऐं ह्रीं श्रीं ओं नमो भगवति मातङ्गेश्वरि सर्वजनमनोहरि सर्वमुखरञ्जनि सर्वराजवशङ्करि सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि सर्वदुष्टमृगवशङ्करि सर्वग्रहवशङ्करि सर्वसत्त्ववशङ्करि सर्वलोकममुं मे वशमानय स्वाहा ।

(२) ह्रीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा ।

(३) आं ह्रीं क्रों ओं ह्रीं श्रीं हूं क्लीं आं अश्वारूढायै फट् फट् स्वाहा ।

(४) ज्वल ज्वल शूलिनि दुष्टग्रहं ग्रस ग्रस स्वाहा ।

(५) श्रीं ह्रीं क्लीं ओं ह्रीं ऐं ह्रीं ओं सरस्वत्यै नमः ।

(६) ओं ह्रीं श्रीं क्लीं हौं क्रों वज्रप्रस्तारिणि स्वाहा ।

(७) ओं ह्रीं हूं आं क्रों स्त्रीं हूं क्षौं ह्रीं फट् ।

(८) ओं ऐं ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे ऐं ह्रीं स्वाहा ।

(९) हूं खें (क्रीं) × क्षः ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं मुण्डमधुमत्यै शक्तिभूतिन्यै ह्रीं ह्रीं ह्रीं फट् ।

(१०) ओं ऐं समरविजयदायिनि मत्तमातङ्गयायिनि श्रीं आं ह्रीं भगवति जयन्ति समरे जयं देहि देहि मम शत्रून् विध्वंसय विध्वंसय विद्रावय विद्रावय भञ्ज भञ्ज मर्दय मर्दय तुरु तुरु श्रीं क्लीं स्त्रीं नमः स्वाहा।

(११) ओं ऐं रक्ताम्बरे रक्तस्रगनुलेपने महामांसरक्तप्रिये महाकान्तारे मां त्राहि त्राहि श्रीं क्लीं ह्रीं हूं फ्रें फट् स्वाहा ।

(१२) ह्रीं सां सीं सूं सङ्कटादेवि सङ्कटेभ्यो मां तारय तारय श्रीं क्लीं हौं हूं आं फट् स्वाहा ।

(१३) वद वद वाग्वादिनि स्हौं क्लिन्नक्लेदिनि महाक्षोभं कुरु क्ष्रां ओं मोक्षं कुरु स्हौः ।

(१४) ओं ऐं क्रीं हूं ह्रीं क्लीं रक्ष्रीं रह्रैं रक्ष्रूं रक्ष्रैं रक्ष्रौं रक्षफ्रछ्रां दृष्टिं निवेशय निवेशय हूं फट् स्वाहा ।

ओं श्रीं क्लीं ह्रीं छ्रीं फ्रें हूं स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर सान्निध्यं कुरु कुरु हूं फट् स्वाहा इति दक्षपार्श्वे न्यासः । (?)

३. (१) ओं ऐं आं ह्रीं छ्रीं.............(अमा ?) हूं रजझ्रक्ष्रैं रजझ्रक्ष्रौं खफ्रक्ष्रीं खफ्रक्ष्रूं खफ्रहूं भगवति आगच्छ आगच्छ सन्निहिता भव भव फ्रें खफ्रें हसखफ्रौं खफ्रछ्रीं खफ्रक्लैं हूं फट् स्वाहा ।

(२) ओं ऐं ह्रीं क्लीं श्रीं फ्रें हस्फ्रें हस्खफ्रैं क्षह्लम्लव्र्यई भगवति विच्चे घोरे श्रीकुब्जिके हस्खफ्रैं रह्लीं रह्लूं स्हौं ङमणनम अघोरामुखि छां छीं छूं किणि किणि विच्चे स्त्रीं हूं स्हौः पादुकां पूजयामि नमः स्वाहा ।

(३) ह्रीं श्रीं क्रों क्लीं स्त्रीं ऐं क्रौं छ्रीं फ्रें क्रीं हस्खफ्रें हूं अघोरे सिद्धिं मे देहि दापय स्वाहा ।

(४) ओं श्रीं आं क्रों क्लीं हूं क्ष्रूं हैं एकानंशे डमरुडामरि नीलाम्वरे नीलविभूषणे नीलनागासने सकलसुरासुरान् वशे कुरु कुरु जल्पिके कल्पिके सिद्धिदे वृद्धिदे छ्रीं स्त्रीं हूं क्लीं फ्रें हौं फट् स्वाहा ।

(५) ओं नमश्चामुण्डे करङ्किणि करङ्कमालाधारिणि किं किं विलम्बसे भगवति शुष्काननि ख ख अन्त्रकरावनद्धे भो भो स्कीः स्कीः कृष्णभुजङ्गवेष्टिततनो लम्बकपाले हुड्ड हुड्ड हट्ट हट्ट पट पट पताकाहस्ते ज्वल ज्वल ज्वालामुखि..........(निष्कं ?) हस्खफ्रं हस्खफ्रं हस्खफ्रं खट्वाङ्गधारिणि हा हा चट्ट चट्ट हूं हूं अट्टाट्टहासिनि उड्ड उड्ड वेतालमुखि सिकि सिकि स्फुलिङ्ग पिङ्गलाक्षि चल चल चालय चालय करङ्कमालिनि नमोऽस्तु ते स्वाहा ।

(६) ऐं ह्रीं श्रीं आं ग्लूं ईं आं म्लव्य्रवऊं नमो भगवति वार्तालि वार्तालि वाराहि वाराहि वराहमुखि वराहमुखि ऐं ग्लूं अन्धे अन्धिनि नमः रुन्धे रुन्धिनि नमः जम्भे जम्भिनि नमः मोहे मोहिनि नमः स्तम्भे स्तम्भिनि नमः सर्वदुष्टप्रदुष्टानां सर्वेषां सर्ववाक्चित्तचक्षुश्रोत्रमुखगति- जिह्वास्तम्भं कुरु कुरु शीघ्रं वशं कुरु कुरु ऐं क्रीं श्रीं ठः ठः ठः ठः ठः ओं ओं ओं ओं ओं × (अमा) हूं फट् स्वाहा ।

(७) ह्रीं फ्रें खफ्रें क्लीं पूर्णेश्वरि सर्वान् कामान् पूरय ओं फट् स्वाहा खहल्क्ष्मरव्लईं खमस्हक्षवल्रीं सखह्लक्ष्मक्लीं.......(कालिकं कूटम्) ।

(८) ओं ह्रीं फ्रें हूं महादिगम्बरि ऐं श्रीं क्लीं आं मुक्तकेशि चण्डाट्टहासिनि छ्रीं स्त्रीं क्रीं ग्लूं मुण्डमालिनि ओं स्वाहा ।
ह्रीं श्रीं क्रों क्लीं स्त्रीं ऐं क्रौं छ्रीं फ्रें क्रीं हस्खफ्रें हूं अघोरे सिद्धिं मे देहि दापय स्वाहा ।

(९) क्रीं क्रीं हूं हूं हूं हूं क्रों क्रो क्रों श्रीं श्रीं ह्रीं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं चण्डघण्टे शत्रून् जम्भय जम्भय मारय मारय हूं फट् स्वाहा ।

(१०) ओं ऐं आं श्रीं हूं क्रों क्षूं क्रीं क्रौं फ्रें अनङ्गमाले स्त्रियम् आकर्षय आकर्षय त्रुट त्रुट छेदय छेदय हूं हूं फट् फट् स्वाहा ।

(११) ओं ऐं आं ईं ऊं एह्येहि भगवति किरातेश्वरि विपिनकुसुमावर्तसितकर्णे पादभुजगनिर्मोककञ्चुकिनि ह्रीं ह्रीं ह्रीः ह्रीः कह कह ज्वल ज्वल प्रजवल प्रज्वल सर्वसिद्धिं दद दद देहि देहि दापय दापय सर्वशत्रून् दह दह बन्ध बन्ध पच पच मथ मथ विध्वंसय विध्वंसय हूं हूं हूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(१२) ओं ह्रीं हं हां महाविद्ये विश्वं मोहय मोहय ऐं श्रीं क्लीं त्रैलोक्यमावेशय हूं फट् फट् स्वाहा ।

(१३) आं ईं ऊं ऐं औं क्षेमङ्कर्यै स्वाहा ।

(१४) ओं ह्रीं श्रीं क्लीं छ्रीं स्त्रीं क्रां ख्फ्रें हूं फट् करालिनि मायूरि शिखिपिच्छिकाहस्ते ख्रौं क्लौं ब्लौं ऋक्षकर्णि जालन्धरि मां मां द्विषन्तु शत्रवों न तुदन्तु भूपतयो भयं मोचय हूं फट् स्वाहा ।

(१५) ओं क्रीं फ्रें वेतालमुखि चर्चिके हूं छ्रीं स्त्रीं ज्वालामालिनि विस्फुलिङ्गवमनि महाकापालिनि कात्यायनि श्रीं क्लीं ख्फ्रें कह कह धम धम ग्रस ग्रस आं क्रों हौं नरमांसरुधिरपरिपूरितकपाले……… (अमा) क्लौं ब्लूं हूं हूं हूं फट् फट् स्वाहा ।

ह्रीं क्लीं ऐं ओं ह्स्ख्फ्रीं च्रां रह्रछररक्षह्रीं रह्रख्ररक्षह्रूं र्क्ष्रीं र्क्ष्रूं रक्षफ्रछ्रीं रक्षफ्रछ्रूं रजझ्रक्ष्रीं रजझ्रक्ष्रूं खफ्रक्ष्रीं ख्फ्रक्ष्रूं भगवति महाबलपराक्रमे एह्येहि सान्निध्यं कुरु कुरु हूं हूं फट् फट् मम सर्वमनोरथान् पूरय पूरय पालय पालय सर्वोपद्रवेभ्यो मां रक्ष रक्ष स्वाहा इत्युदरे न्यासः ।

४. ऐं फ्रें ओं ह्रीं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रीः हः क्ष्ख्फ्रैं र्क्ष्रैं ह्रखफ्रां ह्रखफ्रीं ब्लक्ष्हमस्त्रछ्रूं ख्फ्छ्रेंव्रह्रक्ष्मत्रह्रयीं क्लक्ष्मफहसौः………(गह्वरकूटम् ?) स्हक्लरक्षमजह्रखफरयूं (झैं ?) (महाकल्पस्थायिबीजं) ख्फ्रीं हसखफ्रक्ष्रैं × (जगदावृत्तिः) × (ब्रह्मकपालम्) जय जय जीव जीव ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल महाभैरवशिवा सनसंविष्टे विकरालरूपधारिणि र्क्ष्रीं र्क्ष्रूं र्क्ष्रैं र्क्ष्रौं हूं फट् फट् स्वाहा ।

(१) श्रीं ह्रीं ह्ह्रीं ह्स्ख्फ्रीं क्षरहम्लव्य्रईऊं ख्फ्रें ज्र्क्रीं झमरयऊं र्क्ष्रीं स्त्रीं छ्रीं सिद्धिकरालि फट् ।

(२) ह्रीं हूं फ्रें छ्रीं स्हौः क्रीं क्रौं फ्रें स्त्रीं श्रीं फ्रों जूं ब्लौं ब्रीं स्वाहा ।

(३) ख्फ्रें ह्स्खफ्रें ज्र्क्रीं ओं ह्रीं फ्रें चण्डयोगेश्वरि क्रीं फ्रें नमः ।

(४) श्रीं ह्रीं ऐं ब्लूं सः अं इं आं ईं राजदेवीषु राजलक्ष्मीषु भैरवीषु मारीषु ऐं ह्रीं श्रीं ओं ह्रीं श्रीं ह्स्फ्रें स्हौः ओं ह्रीं हूं फ्रें राज्यप्रदे ख्फ्रें ह्स्खफ्रें उग्रचण्डे रणमर्दिनि हूं फ्रें छ्रीं स्त्रीं सदा रक्ष रक्ष त्वं मां जूं सः मृत्युहरे नमः स्वाहा ।

(५) ओं ह्रीं नमः परमभीषणे हूं हूं करङ्ककङ्कालमालिनि फ्रें फ्रें कात्यायनि व्याघ्रचर्मावृतकटि कालि कालि श्मशानचारिणि नृत्य नृत्य गाय गाय हस हस हूं हूं कारनादिनि क्रों क्रों शववाहिनि मां रक्ष रक्ष फट् फट् हूं हूं नमः स्वाहा ।

(६) ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं क्लीं हूं श्रीं क्ष्रीं महिषमर्दिनि श्लीं ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं ओं क्षीं पीं थीं भगवति (झूं?) (मर्यादाकूटम्) स्हक्षम्लव्र्यऊं क्षस्हम्लव्र्यऊं चण्डहुङ्कारकापालिनि जय रङ्केश्वरि नमः स्वाहा ।

(७) ऐं ह्लीं श्रीं ह्स्फ्रें स्हौं वीं ड्रौं चूं ह्लां ह्लीं हूं स्हक्षम्लव्र्यऊं क्षस्हम्लव्र्यऊं क्षस्हम्लव्र्यऊं शिवशक्तिसमरसे चण्डकापालेश्वरि हूं नमः ।

(८) ऐं ह्लीं श्रीं म्लकह्लक्षरस्त्रीं ॠं ॠं महासुवर्णकूटेश्वरि म्लकह्लक्षरस्त्रीं म्लह्लक्षस्त्रूं म्लकह्लक्षरस्त्रैं म्लकह्लक्षस्त्रौं श्रीं ह्लीं ऐं नमः स्वाहा ।

(९) ओं ऐं श्रीं ह्लीं फ्रे स्हौः क्रीं चफक्लह्लमक्ष्रूं क्षब्लकस्त्रीं ब्लहतह्लसचैं जयवागीश्वरि ज्ञानं प्रकटय प्रकटय बुद्धिं मे देहि देहि ह्लमक्षकमह्लीं क्लक्ष्मस्हख्रवीं फ्रखरक्षक्लह्लीं ऐं छ्रीं फ्रें क्लीं हूं फट् फट् स्वाहा ।

(१०) ओं क्रीं क्रों फ्रें फ्रों छ्रीं ख्रौं हूं ह्स्ख्फ्रें ब्लौं खफ्रौं ह्लीं ह्लीं ब्रीं क्ष्रूं क्रौं चामुण्डे ज्वल ज्वल हिलि हिलि किलि किलि मम शत्रून् त्रासय त्रासय मारय मारय हन हन पच पच भक्षय भक्षय क्रीं क्रीं ह्लीं ह्लीं हूं हूं फट् फट् स्वाहा ह्लीं क्रों हूं फट् ।

(११) ओं श्रीं ह्रीं ऐं ध्रीं × (वैराचनबीजम्) हूं हूं फट् स्वाहा ।

(१२) ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं हूं हूं हूं हूं हूं कारघोरनादवित्रासितजगत्त्रये ह्लीं ह्लीं ह्लीं प्रसारितायुतभुजे महावेगप्रधाविते क्लीं क्लीं क्लीं पदविन्यासत्रासितसकलपाताले श्रीं श्रीं श्रीं व्यापकशिवदूति परमशिवपर्यंकशायिनि छ्रीं छ्रीं छ्रीं गलद्रुधिरमुण्डमालाधारिणि घोरघोरतररूपिणि फ्रें फ्रें फ्रें ज्वालामालि पिङ्गजटाजूटे अचिन्त्यमहिमबलप्रभावे स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं दैत्यदानवनिकृन्तनि सकलसुरकार्यसाधिके ओं ओं ओं फट् नमः स्वाहा ।

(१३) ओं ह्लीं श्रीं क्लीं ऐं क्रो क्रीं आं हूं क्ष्रूं हौं (अमा) क्रौं ह्स्ख्फ्रें क्ष्रूं फ्रीं छ्रीं फ्रें क्लौं ब्लौं क्लूं स्हौः स्फ्रों ख्रौं जूं ब्रीं कालसङ्कर्षिणि हूं हूं स्वाहा ।

(१४) ऐं ह्लीं श्रीं क्लीं छ्रीं फ्रें र्फ्रें र्फ्रीं र्प्रीं र्क्रीं र्ज्रों ह्स्त्रीं ह्लछ्रौं क्लफ्रीं क्लफ्रूं क्लफ्रैं क्लफ्रौं ह्लफ्रीं ह्लफ्रूं ह्लफ्रैं ह्लफ्रौं फ्रम्रग्लईं फ्रम्रग्लऊं क्ष्लक्ष्रीं क्ष्लक्ष्रूं आगच्छ आगच्छ हस हस बला बला महाकुणपभोजिनि दृष्टिं निवेशय निवेशय ह्लीं हौं क्रों क्रौं स्हौः सौः श्रीं फ्रें हूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा इति हृदये न्यासः ।

५. (१) ओं ओं ओं ऐं ऐं ऐं श्रीं क्लीं ब्लैं ब्लौं ह्रीं र्क्ष्रैं र्क्ष्रौं छ्रीं जय जय जीव जीव मम सर्वमनोरथान् पूरय पूरय वर्द्धय वर्द्धय अधिष्ठानं कुरु कुरु रजझ्रक्ष्रीं रजझ्रक्ष्रूं रजझ्रक्ष्रैं रजझ्रक्ष्रौं क्लीं स्त्रीं र्छ्रूं र्छ्रैं नमः फट् स्वाहा ।

(२) स्हक्ल्ह्रीं सफ्रक्षक्लमखछ्रीं सक्लह्रीं ऐं क्लीं स्हौः ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं भगवति महामोहिनि ब्रह्माविष्णुशिवादिसकलसुरासुरमोहिनि सकलं जनं मोहय मोहय वशीकुरु वशीकुरु कामाङ्गद्राविणि कामाङ्कुशे स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं ओं ऐं क्रीं क्लैं ख्फ्रें क्लैं फ्रें ऐं ह्रीं श्रीं त्रैलोक्यविजयायै नमः स्वाहा ।

(३) झसखग्रमऊं........(चूडाकूटम्) ह्स्ख्फ्रें सहक्षलक्षें.......क्ष्लह्रमव्र्यऊं ख्फ्रक्ष्रीं ख्फ्रक्ष्रूं ख्फ्रक्ष्रैं ख्फ्रक्ष्रौं ख्फ्रह्रीं ख्फ्रह्रूं नित्यानित्यभोगप्रिये नित्योदितवैभवे आं ह्रीं श्रीं क्लीं स्हौं सौः हूं नमः स्वाहा ।

(४) ओं नमः कामेश्वरि कामाङ्कुशे कामप्रदायिके भगवति नीलपताके भगान्तिके क्लूं नमः परमगुह्ये हूं हूं हूं मदने मदनान्तकदेहे त्रैलोक्यमावेशय हूं फट् स्वाहा ।

(५) ओं ऐं आं हीं परमब्रह्महसेश्वरि कैवल्यं साधय स्व.हा ।

(६) ओं नमः प्रचण्डघोरदावानलवासिन्यै ह्रीं हूं समयविद्याकुलतत्त्वधारिण्यै महामांसरुधिरबलिप्रियायै छ्रीं स्त्रीं क्लीं धूमावत्यै सर्वज्ञतासिद्धिदायै फ्रें फट् स्वाहा ।

(७) ओं आं ऐं ह्रीं श्रीं शक्तिसौपर्णि कमलासने उच्चाटय उच्चाटय विद्वेषय विद्वेषय हूं फट् स्वाहा ।

(८) ओं क्लीं ग्लूं ह्रीं स्त्रीं हूं फ्रें छ्रीं फ्रों कामाख्यायै फट् स्वाहा ।

(९) ऐं आं हौं स्हौः क्रों जूं चतुरशीतिकोटिमूर्तये विश्वरूपायै ब्रह्माण्डजठरायै ओं स्वाहा ।

(१०) ऐं ह्रीं क्लैं ख्फ्रें क्लैं फ्रें ऐं ह्रीं श्रीं त्रैलोक्यविजयायै नमः स्वाहा ।

(११) ओं ह्रीं नमः चित्राम्बरे चिन्तामणिं प्रकटय परमर्द्धिं दद दद जलहक्षछपग्रहसखफ्रीं क्ष्मलरसहव्य्रह्रं क्लक्ष्मसहखव्रीं छ्रीं क्लूं ख्फ्रें हूं फट् स्वाहा ।

(१२) ओं क्लीं ह्रां क्लीं ब्रह्मविद्ये जगद्ग्रसनशीले महाविद्ये ह्रीं हूं ह्लीं विष्णुमाये क्षोभय क्षोभय क्लीं क्रों आं ह्लीं सर्वास्त्राणि ग्रस ग्रस हूं फट् ।

(१३) ओं ह्लीं बगलामुखि सर्वशत्रून् स्तम्भय स्तम्भय ब्रह्मशिरसे ब्रह्मास्त्राय हूं क्लीं ह्लीं ओं नमः स्वाहा ।

(१४) ओं ह्रीं श्रीं श्रीं श्रीं क्लीं क्लीं निर्विकारस्थचिदानन्दघनरूपायै मोक्षलक्ष्म्यै अमितानन्तशक्तितत्त्वायै क्लीं क्लीं श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं ह्रीं ओं ।

(१५) ऐं श्रीं ह्रीं स्हौः सौः ख्फ्रह्लूं ख्फ्रह्लीं रक्रक्ष्रैं रक्षफ्रछ्रां रह्लछरक्षह्लैं रह्लछ्रक्षह्लौं रहक्षम्लव्य्रअख्फ्छ्रस्त्रह्लीं ह्स्ख्फ्रम्लक्षव्य्रऊं शम्लहव्य्रखफ्रैं खेचरीमुद्रां प्रकटय प्रकटय सान्निध्यमावेशय छ्रीं ख्फ्रें हूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा इति ब्रह्मरन्ध्रे न्यासः ।

६. (१) ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं ओं ओं ओं ओं ओं आं आं आं आं आं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें ख्फ्रें ह्स्फ्रें ह्स्ख्फ्रें ह्स्ख्फ्रौं स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर जय जय जीव जीव एह्येहि भगवति कापालिनि करालि खफ्रक्लीं ख्फ्रक्लूं (खफ्रहैं ?) ख्फ्रह्लौं ख्फ्रछ्रें ख्फ्रछ्रौं ह्लछ्रीं ह्लछ्रूं ज्रम्लक्षह्लछ्रीं झह्लव्रक्ष्मसह्लीं खफछ्रएव्रह्लक्ष्मत्रत्ररयीं रहक्षम्लव्य्रअखफछ्रस्त्रह्लीं फ्रस्त्री (केतुबीजम्) क्रह्लूं रखव्रध्रूं हूं हूं हूं फट् फट् फट् स्वाहा ।

(२) ऐं ह्रीं श्रीं हूं क्लीं फ्रें छ्रीं स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें भीमादेवि भीमनादे भीमकरालि महाप्रलयचण्डलक्ष्मि सिद्धेश्वरि सक्लह्रीं स्हक्ह्लह्रीं सक्लह्लकह्रीं महाघोरघोरतरे भगवति भयहारिणि द्विषतो निर्मूलय निर्मूलय विद्रावय विद्रावय उत्सादय उत्सादय महाराज्यलक्ष्मीं वितर वितर देहि देहि दापय दापय ख्फ्रें ह्स्फ्रें......(अमा ?) स्हौः आं क्रीं क्षौं ब्लूं हौं जय जय राक्षसक्षयकारिणि ओं ह्रीं हूं ठः ठः ठः फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(३) ऐं ह्रीं आं क्रों सौः क्लीं महाभोगिराजभूषणे सृष्टिस्थितिप्रलयकारिणि हूंहूङ्कारनादभूरिदारुणि भगवति हाटकेश्वरि ग्लूं ब्लूं भ्रूं द्रैं श्रीं ऐं फ्रों फ्रें ख्फ्रें मम शत्रून् मारय मारय बन्धय बन्धय मर्दय मर्दय पातय पातय धनधान्यायुरारोग्यैश्वर्यं देहि देहि दापय दापय ट्रीं ध्रीं थ्रीं प्रीं हौं आं क्रों ऐं ओं नमः स्वाहा ।

(४) ओं ऐं श्रीं ह्रीं हूं फ्रें ख्फ्रें ह्स्फ्रें हसखफ्रें स्फ्रें प्रविश संसारं महामाये स्फ्रें फट् ब्रह्मशिरोनिकृन्तनि विष्णुतनुनिर्दलिनि...........(जें ?) जम्भिके (क्रां?) स्तम्भिके छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि दह दह मथ मथ (पच पच) पञ्चशवारूढे पञ्चागमप्रिये (भं भं?) ग्लूं ब्लूं ख्रौं श्रीं क्लीं स्फ्रें पञ्चपाशुपतास्त्रधारिणि हूं हूं हूं फट् फट् स्वाहा ।

(५) ऐं आं ओं नमः परमशिवविपरीताचारकारिणि ह्रीं श्रीं क्लीं छ्रीं स्त्रीं महाघोरविकरालिनि खण्डार्धशिरोधारिणि भगवत्युग्रे फ्रें ख्फ्रें ह्स्फ्रें ह्स्ख्फ्रें स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्लव्य्रईं हूं ह्रीं स्वाहा हूं फट् ।

(६) आं ह्रीं हूं क्लीं श्रीं ऐं ओं जूं सः फ्रें ख्फ्रें क्षज्रीं क्षज्रूं क्षज्रैं क्षज्रौं (ख्फ्रहैं खफ्रहैं ?) ख्फ्रक्ष्रैं ख्फ्रक्ष्रैं खफ्रछ्रैं खफ्रछ्रैं ह्लग्लैं ह्लग्लैं..... ....(सान्तम्) वज्रचण्डि महाकापालिनि कपालमालिनि

कापालिकाचारप्रवर्तिनि तुरु तुरु धम धम गगनग्रासिनि महामाये महामायाप्रवर्तिनि सर्वैश्वर्यं देहि देहि दापय दापय सर्वापदं निर्मूलय निर्मूलय क्रों क्रौं जूं सः स्हौः स्हौं हूं फट् स्वाहा ।

(७) ऐं ओं ह्रीं क्लीं श्रीं हूं छ्रह्रीं छ्रह्रूं छ्रह्रैं छ्रह्रौं ह्रथ्रूं ह्रथ्रैं ह्रथ्रौं स्ह्ल्क्रीं स्ह्ल्क्रूं स्ह्ल्क्रैं स्ह्ल्क्रौं ज्वालेश्वरि ज्वलज्ज्वलनवासिनि चिताङ्गारहारिणि मृतचेलावृतशरीरे ब्रह्मास्त्रं प्रकटय शत्रून् स्तम्भय स्तम्भय मारय मारय सर्वान् कामान् पूरय पूरय हूं ह्रीं फट् स्वाहा ।

(८) आं ह्रीं क्रों स्हौः फ्रों ग्लूं ब्लौं हूं कुलेश्वरि कौलिकानां सर्वसमयलाभं कुरु द्विषदो जहि जहि नमः स्वाहा ।

(९) ओं ऐं ह्रीं क्ली श्रीं कालेश्वरि सर्वमुखस्तम्भिनि सर्वजनमनोहरि सर्वजनवशङ्करि सर्वदुष्टनिर्दलिनि सर्वस्त्रीपुरुषाकर्षिणि बन्दिशृङ्खलां त्रोटय त्रोटय सर्वशत्रून् जम्भय जम्भय द्विषान् निर्दलय निर्दलय मोहनास्त्रेण सर्वान् स्तम्भय स्तम्भय द्वेषिणः उच्चाटय उच्चाटय सर्ववश्यं कुरु कुरु शीर्ष देहि देहि कालरात्र्यै कामिन्यै गणेश्वर्यै नमः ।

(१०) ओं ओं ओं ऐं ऐं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं हूं फ्रें ख्फ्रें ह्स्फ्रें ह्स्ख्फ्रें भ्रामरि भ्रमराकारधारिणि जय जय जीव जीव स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल भीषणाकारधारिणि भगवति प्रचण्डतरदावानलज्वलितवक्त्रे हूंहूङ्कारनादिनि देवेशि खेचरीचक्रवासिनि ख्फ्रीं ख्फ्रूं ह्स्फ्रीं ह्स्फ्रूं क्ष्रक्लीं क्ष्रक्लूं क्लख्फ्रीं क्लख्फ्रूं ह्रक्लीं ह्रक्लूं क्लक्ष्रीं क्लक्ष्रूं फ्रख्भ्रैं फ्रख्भ्रैं मम शत्रून् ग्रस ग्रस भक्षय भक्षय साम्राज्यं देहि देहि दापय दापय हूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

(११) ऐं ओं ह्रीं हूं क्लीं स्त्रीं ग्लूं श्रीं फ्रें ख्फ्रें छ्रीं ख्रौं श्मशानकापालिनि खेचरीसिद्धिदायिनि परापरकुलचक्रनायिके क्रों क्रौं क्षें फ्रौं स्फ्रौं त्रिशूलझङ्कारिणि डामरमुखि वज्रशरीरे रफ्रें रफ्रैं नमः स्वाहा ।

(१२) ओं ऐं छ्रीं स्त्रीं ह्रीं फ्रें श्रीं क्लीं ख्फ्रें हूं क्लफ्रीं ह्स्ख्फ्रें ख्फ्रक्ष्रौं ख्फ्रछ्रौं खफ्रह्रौं खफ्रह्रौं भगवति रक्तदन्तिके लेलिहानरसनाभयानके घोरतरदशनचर्चिते ब्रह्माण्डे चण्डयोगेश्वरीशक्तितत्त्वमहिते रह्रछ्ररक्षह्रैं रह्रछ्रक्षह्रौं छ्ररक्षह्रौं छ्ररक्षह्रौं रक्षफ्रछ्रौं प्रचण्डचण्डिनि महामारीसहायिनि चामुण्डायोगिनीडाकिनीशाकिनीभैरवीमातृगणमध्यगे जय जय कह कह हस हस प्रहस प्रहस जृम्भ जृम्भ तुरु तुरु धाव धाव श्मशानवासिनि शववाहिनि नरमांसभोजिनि कङ्कालमालिनि रक्षफ्रछ्रां रक्षफ्रछ्रूं रजझ्रक्ष्रीं रजझ्रक्ष्रूं ह्रक्षफ्लीं नमो नमः स्वाहा ओं हूं हूं हूं फट् फट् फट् स्वाहा ।

(१३) ओं सहठ्लक्षह्रमक्रीं नमश्चण्डातिचण्डे शाम्बरि कालवञ्चनि महाङ्कुशे

रक्षम्लह्लकसछ्व्रऊं पातालनागवाहिनि गगनग्रासिनि ब्रह्माण्डनिष्पेषिणि ल्क्षें ल्क्षें ल्क्षें स्वाहा हीं हीं हीं हूं हूं हूं फट् फट् फट् नमः स्वाहा।

(१४) ओं ऐं ह्लीं श्रीं क्लीं हूं छ्रीं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें रक्ष्रीं जर्क्रीं र्ह्लीं भगवति महामारि जगदुन्मूलिनि कल्पान्तकारिणि शिरोनिविष्टवामचरणे दिगम्बरि समयकुलचक्रचूडालये मां रक्ष रक्ष त्राहि त्राहि पालय पालय प्रज्वलद्दावानलज्वालाजटालजटिले (ओं ?) नमः स्वाहा ।

(१५) ओं ऐं ह्लीं श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं फ्रें क्लफ्रीं हसखफ्रें हूं हौं क्षौं फ्रौं ग्लूं ब्लौं क्ष्रौं स्हौः स्हौं सौः फ्रीं र्क्ष्रीं र्ज्रीं हस्फ्रैं हस्फ्रौं क्लख्फ्रीं ह्लख्फ्रां फ्रम्रग्लऊं क्ष्लक्ष्रीं फ्रख्भ्रीं हस्ख्फ्रक्ष्रीं ख्फ्रीं हस्ख्फ्रूं हस्ख्फ्रक्ष्रैं....... ......(ब्रह्मकपालम्)...........(महाकल्पस्थायिबीजम्) रक्तमुण्डेश्वरि ओं फ्रें सर्वाभयप्रदे सर्वसम्पत्प्रदे सर्वसिद्धिं दद दद मृत्युं हर हर मृत्युञ्जयगृहिणि नमः स्वाहा ।

(१६) ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं आं क्रों स्हौः (अं ?) ख्रौं ब्लौं ह्लैं महाडाकिन्यै निपीतबालनररुधिरायै त्वगस्थिचर्मा(वशिष्टायै) महाश्मशानधावनप्रचलितपिङ्गजटाभारायै क्ष्रौं श्रौं च्रौं फ्रौं ख्रौं ममाभीष्टसिद्धिं देहि देहि वितर वितर हूं फ्रें डाकिनि काकिनि शाकिनि राकिनि लाकिनि हाकिनि नररुधिरं पिब पिब महामांसं खाद खाद ओं श्रीं ह्लीं क्लीं हूं फ्रें छ्रीं स्त्रीं फट् फट् स्वाहा ।

ओं आं ऐं ह्लीं श्रीं क्लीं स्त्रीं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें हस्खफ्रैं हस्ख्फ्रीं र्क्ष्रां र्क्ष्रीं भगवति महाभोगभासुरे भीमविकरालिनि कालि कापालिनि गुह्यकालि घोररावे विकटदंष्ट्रे सम्मोहिनि शोषिणि करालवदने मदनोन्मादिनि ज्वालामालिनि शिवासने इमं बलिं प्रयच्छामि गृह्ण गृह्ण खाद खाद मम सिद्धिं कुरु कुरु मम शत्रून् नाशय नाशय क्लेदय क्लेदय मारय मारय ग्लापय ग्लापय स्तम्भय स्तम्भय उच्चाटय उच्चाटय हन हन विध्वंसय विध्वंसय पिब पिब विद्रावय विद्रावय पच पच छिन्धि छिन्धि शोषय शोषय त्रासय त्रासय त्रुट त्रुट मोहय मोहय उन्मूलय उन्मूलय भस्मीकुरु भस्मीकुरु जृम्भय जृम्भय स्फोटय स्फोटय भक्ष भक्ष विभ्रामय विभ्रामय हर हर विक्षोभय विक्षोभय तुरु तुरु दम दम मर्दय मर्दय पातय पातय सर्वभूतवशङ्करि सर्वजनमनोहारिणि सर्वशत्रुक्षयङ्करि ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ब्रह्मरूपिणि कालि कापालि महाकापालि खफ्रक्ष्रूं खफ्रक्ष्रैं ख्फ्रह्लीं रख्फ्रह्लीं रजझ्रक्ष्रैं राज्यं मे देहि देहि किलि किलि क्रैं यमघण्टे हिलि हिलि मम सर्वाभीष्टं साधय साधय संहारिणि सम्मोहिनि कुरुकुल्ले किरि किरि हूं हूं फट् फट् स्वाहा इति पदयोर्न्यासः ।

इति क्रमन्यासः ।

२४. धातुन्यासः (९।४६८-५४१)

ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें मन्त्रमयविग्रहाया विभूतिगुह्यकाल्याः ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं दक्षिणपादाङ्गुल्यग्राय खफ्रें डाकिन्यै ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें नमः स्वाहा ।

ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें मन्त्रमयविग्रहाया विभूतिगुह्यकाल्याः ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं वामपादाङ्गुल्यग्राय.............केंकराक्ष्यै ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें नमः स्वाहा ।

एवंरीत्या सप्तबीजानि मन्त्रविग्रहाया विभूतिगुह्यकाल्याः ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं इत्यादि सर्वत्रैव प्रदाय पुनः ङेविभक्तियुतं शरीराङ्गवाचकपदं यथानिर्दिष्टं देयम् । अथ चैकैकं बीजं तद्बोधकपदस्य च चतुर्थ्येकवचोरूपं दत्त्वा एकादशाक्षरमन्त्रनिवेशः कर्तव्यः षष्ट्यधिकशतसंख्याकान्यङ्गानि शरीरस्य तावन्ति मन्त्रनिर्माणानि कार्याणि दिक्प्रदर्शनार्थं मन्त्रद्वयमूर्ध्वं प्रदर्शितम् ।

इति धातुन्यासः ।

२५. तत्त्वन्यासः (९।५४५-५९६)

(१) ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं पृथिवीतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं क्लीं श्रीं हौं खफ्रें हस्फ्रें गुह्यकालि प्रसीद क्षह्म्ल्व्य्रऊं फट् स्वाहा इति गुल्फयोर्न्यासः ।

(२) ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं आपस्तत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं आं फ्रों फ्रौं ग्लूं ग्लौं.......गुह्यकालि प्रसीद स्हक्षम्ल्व्य्रऊं फट् स्वाहा इति जङ्घयोर्न्यासः ।

(३) ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं तेजस्तत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं ईं ब्लीं ब्लूं ब्लैं ब्लौं............गुह्यकालि प्रसीद क्षस्हम्ल्व्य्रऊं फट् स्वाहा इति जान्वोर्न्यासः ।

(४) ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं वायुतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं ख्रौं स्हौः सौः जूं स. गुह्यकालि प्रसीद खह्म्ल्व्य्रईं फट् स्वाहा इति ऊर्वोर्न्यासः ।

(५) ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं आकाशतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं प्रीं प्रूं फ्रीं फ्रूं क्षूं गुह्यकालि प्रसीद क्षस्हम्ल्व्य्रईं फट् स्वाहा इति वंक्षणयोर्न्यासः ।

(६) ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं गन्धतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं स्हौं झम्रयूं रस्फ्रौं रक्ष्श्रीं रक्ष्छ्रीं गुह्यकालि प्रसीद क्षह्म्ल्व्य्रईं क्षस्हम्ल्व्य्रईं फट् स्वाहा इति गुह्ये न्यासः ।

(७) ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं रसतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं ख्फ्रीं ख्फ्रूं ख्फ्रैं ख्फ्रौं गुह्यकालि प्रसीद स्हक्षम्ल्व्य्रईं फट्

स्वाहा इति वस्तौ न्यासः ।

(८) ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं (रूप) चक्षुस्तत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं थ्रां थ्रीं थ्रूं थ्रौं गुह्यकालि प्रसीद क्षस्हम्लव्य्रईं फट् स्वाहा इति नाभौ न्यासः ।

(९) ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं स्पर्शतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं ह्स्ख्फ्रां ह्स्ख्फ्रीं ह्स्ख्फ्रूं ह्स्ख्फ्रें ह्स्ख्फ्रैं गुह्यकालि प्रसीद खफसहक्ष्लव्य्रूं क्रौं सहकक्ष्क्षह्लमव्य्रऊं फट् स्वाहा इति जठरे न्यासः ।

(१०) ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं शब्दतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं ह्स्फ्रीं ह्स्फ्रूं ह्स्फ्रैं ह्स्फ्रों ह्स्फ्रौं गुह्यकालि प्रसीद सकह्लम्क्षखब्रूं फट् स्वाहा इति पार्श्वयोर्न्यासः ।

(११) ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं आत्मतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं रप्रीं रप्रूं रप्रैं रप्रों रप्रौं गुह्यकालि प्रसीद स्हक्लह्रीं फट् स्वाहा इति हृदये न्यासः ।

(१२) ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं जीवात्मतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्रैं क्ष्रौं गुह्यकालि प्रसीद सक्ष्लहमयब्रूं फट् स्वाहा इति स्कन्धौ न्यासः ।

(१३) ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं परमात्मतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं रफ्रीं रफ्रूं रफ्रैं रफ्रों रफ्रौं गुह्यकालि प्रसीद लगमक्षखफ्रसह्रूं फट् स्वाहा इति जत्रुणोर्न्यासः ।

(१४) ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं सत्तातत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं रह्रां रह्रीं रह्रूं रह्रैं रह्रौं गुह्यकालि प्रसीद फग्लसहमक्षब्लूं फट् स्वाहा इति शिरायां न्यासः ।

(१५) ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं विद्यातत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं रस्त्रीं रस्त्रूं रस्त्रैं रस्त्रों रस्त्रौं गुह्यकालि प्रसीद खफ्रध्रव्य्रओं छ्रध्रीं फट् स्वाहा इति हन्वोर्न्यासः ।

(१६) ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं निवृत्तितत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं रक्ष्रां रक्ष्रीं रक्ष्रूं रक्ष्रैं रक्ष्रौं गुह्यकालि प्रसीद मफ्रलह्लह्ख्फ्रूं फट् स्वाहा इति कपोलयोर्न्यासः ।

(१७) ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं प्रकृतितत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं स्फ्ह्ल्क्षीं स्फ्ह्ल्क्षूं स्फ्ह्ल्क्षैं स्फ्ह्ल्क्षों स्फ्ह्ल्क्षौं गुह्यकालि प्रसीद भक्ष्लरमह्स्ख्फ्रूं फट् स्वाहा इति सृक्कण्योर्न्यासः ।

(१८) ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं महत्तत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं छ्रर्क्ष्ह्रां छ्रर्क्ष्ह्रीं छ्रर्क्ष्ह्रूं छ्रर्क्ष्ह्रैं छ्रर्क्ष्ह्रौं गुह्यकालि प्रसीद क्ष्मलरसहव्य्रह्रूं फट् स्वाहा इति ओष्ठे न्यासः ।

(१९) ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं अहङ्कारतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं क्षफ्लह्रीं खफ्रह्रीं खफ्रह्रूं खफ्रह्रैं खफ्रह्रौं गुह्यकालि प्रसीद म्ररयक्ष्क्षसहफ्रीं फट् स्वाहा इति अधरे न्यासः ।

(२०) ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं पञ्चतन्मात्राःतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं रह्रछ्ररक्षह्रां रह्रछ्ररक्षह्रीं रह्रछ्ररक्षह्रूं रह्रछ्ररक्षह्रैं रह्रछ्ररक्षह्रौं गुह्यकालि प्रसीद............फट् स्वाहा इति ऊर्ध्वदन्तेषु न्यासः ।

(२१) ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं भावप्रपञ्चतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं खफ्रक्ष्रां खफ्रक्ष्रीं खफ्रक्ष्रूं खफ्रक्ष्रैं खफ्रक्ष्रौं गुह्यकालि प्रसीद ब्लक्क्षहमस्त्रछ्रूं फट् स्वाहा इति अधोदन्तेषु न्यासः ।

(२२) ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं अभावप्रपञ्चतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं रक्ष्रां रक्ष्रीं रक्ष्रूं रक्ष्रैं रक्ष्रौं गुह्यकालि प्रसीद ख्फ्छ्रएव्रह्रक्ष्मऋरयीं फट् स्वाहा इति गण्डयोर्न्यासः ।

(२३) ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं अद्वैततत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं खफ्रछ्रां खफ्रछ्रीं खफ्रछ्रूं खफ्रछ्रैं खफ्रछ्रौं गुह्यकालि प्रसीद स्हक्लरक्षमजह्रखफरयूं फट् स्वाहा इति नासापुटयोर्न्यासः ।

(२४) ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं वासनातत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं रक्ष्फ्रछ्रां रक्ष्फ्रछ्रीं रक्ष्फ्रछ्रूं रक्ष्फ्रछ्रैं रक्ष्फ्रछ्रौं गुह्यकालि प्रसीद शम्लह्रव्य्रखफ्रैं फट् स्वाहा इति नेत्रयोर्न्यासः ।

(२५) ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं प्रज्ञातत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं खफ्रक्लां खफ्रक्लीं खफ्रक्लूं खफ्रक्लैं खफ्रक्लौं गुह्यकालि प्रसीद रहक्षम्लव्य्रअखफ्छ्रस्त्रह्रीं फट् स्वाहा इति कर्णयोर्न्यासः ।

(२६) ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं प्रमाणतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं रजझ्रक्ष्रां रजझ्रक्ष्रीं रजझ्रक्ष्रूं रजझ्रक्ष्रैं रजझ्रक्ष्रौं गुह्यकालि प्रसीद धशड्लझ्रह्रीं फट् स्वाहा इति भ्रुवोर्न्यासः ।

(२७) ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं परमार्थतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं खफ्रह्रां खफ्रह्रीं खफ्रह्रूं खफ्रह्रैं खफ्रह्रौं गुह्यकालि प्रसीद ट्फ्रकम्क्षजस्त्रीं फट् स्वाहा इति मणिबन्धयोर्न्यासः ।

(२८) ओं ऐं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं आभासतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं ह्रग्लां ह्रग्लीं ह्रग्लूं ह्रग्लैं ह्रग्लौं गुह्यकालि प्रसीद क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्रम्लव्य्रऊं फट् स्वाहा इति कूर्चयोर्न्यासः ।

(२९) ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं प्रतिबिम्बतत्त्वे अशेषकर्माणि संशययाम्यपनयामि भवबन्धं क्ष्त्रां क्ष्त्रीं क्ष्त्रूं क्ष्त्रैं क्ष्त्रौं गुह्यकालि प्रसीद क्षह्म्ल्व्य्रऊं क्षस्ह्म्ल्व्य्रऊं फट् स्वाहा इति न्यासः ।

(३०) ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं सूक्ष्मतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं ह्स्त्रां ह्स्त्रीं ह्स्त्रूं ह्स्त्रैं ह्स्त्रौं गुह्यकालि प्रसीद ईसकहमरक्षक्रीं फट् स्वाहा इति शिरसि न्यासः ।

(३१) ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं कैवल्यतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं ह्छ्रां ह्छ्रीं ह्छ्रूं ह्छ्रैं ह्छ्रौं गुह्यकालि प्रसीद झक्ररहक्ष्मव्य्रऊं फट् स्वाहा इति शिखायां न्यासः ।

(३२) ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं चैतन्यतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं ह्खफ्रां ह्खफ्रीं ह्खफ्रूं ह्खफ्रैं ह्खफ्रौं गुह्यकालि प्रसीद लयक्षकहस्त्रव्रह्लीं फट् स्वाहा इति बाह्वोर्न्यासः ।

(३३) ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं प्रबोधतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं फ्म्रग्लीं फ्म्रग्लूं फ्म्रग्लैं फ्म्रग्लों फ्म्रग्लौं गुह्यकालि प्रसीद जनहम्रक्षयह्लीं फट् स्वाहा इति पादयोर्न्यासः ।

(३४) ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं आशयतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं फ्खभ्रां फ्खभ्रीं फ्खभ्रूं फ्खभ्रैं फ्खभ्रौं गुह्यकालि प्रसीद थ्ल्ह्क्षक्ह्लमव्रयीं फट् स्वाहा इति सर्वशारीरन्यासः ।

(३५) ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं आनन्दतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं ह्स्खफ्रक्ष्रां ह्स्खफ्रक्ष्रीं ह्स्खफ्रक्ष्रूं ह्स्खफ्रक्ष्रैं ह्स्खफ्रक्ष्रौं गुह्यकालि प्रसीद तत्त्वमसि रत्रों ओं फट् स्वाहा इति व्यापके न्यासः ।

(३६) ओं ऐं ह्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं हूं ब्रह्ममयतत्त्वे अशेषकर्माणि संशमयाम्यपनयामि भवबन्धं खफ्रां खफ्रीं खफ्रूं खफ्रैं खफ्रौं गुह्यकालि प्रसीद सफलक्षयक्लमस्त्रश्रीं फट् स्वाहा इति व्यापके न्यासः ।

इति तत्त्वन्यासः ।

* * *

परिशिष्टम् (३)

लघुषोढान्यासः

उग्रमातृक्रमन्यासः (९।६१६-६५९)

(१) ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें अं आं महाचण्डयोगेश्वरि (आं अं) अङ्गुष्ठाय नमः ।

(२) ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें इं ईं परमप्रचण्डयोगेश्वरि (ईं इं) तर्जन्यै स्वाहा ।

(३) ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें उं ऊं नरमुण्डमहामारी योगेश्वरि (ऊं उं) मध्यमायै वषट् ।

(४) ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें एं ऐं महामाया योगेश्वरि (ऐं एं) अनामिकायै हूं ।

(५) ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें ओं औं उन्मत्तचण्डोग्रयोगेश्वरि (औं ओं) कनिष्ठायै वौषट् ।

(६) ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें कालरात्रियोगेश्वरि (अः अं) करपृष्ठाय फट् ।

इति करषडङ्गन्यासः ।

(१) ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औं अं अः नमः परमशिवतमविपरीताचारमहाभैरवकालनिसूदन कालमुख खाहि ग्वाहि भुंक्ष्व भुंक्ष्व कालि कालि महाकालि महाकालि हां हां हां हासिनिं रह्लीं हं हां ह्लीं हृदयाय नमः ।

(२) ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें कं खं गं घं ङं ओं नमः सदाशिवाय भगवते हां एह्येहि परमात्मने सर्वशत्रुनिसूदनाय (तद्ब्रह्म शिरसे स्वाहा) परमव्योमवासिनि खं खं खं व्योमरूपे सत्ये ध्रुवे गुह्ये (बं बं बं ?) (वाविधानी ?) क्षौं क्षूं ह्लीं ब्रह्मशिरसे स्वाहा ।

(३) ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें चं छं जं झं ञं चण्डकापालिनी हूं हूं हूं ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल हित्ति हित्ति छित्ति छित्ति भित्ति भित्ति योजय योजय ग्रन्थाग्रं गृह्ण गृह्ण नमः जम्भिते स्तम्भिते मोहिते चर्चिते जम्भय जम्भय परमचण्डे शीघ्रमानय ओं ह्लीं पूं ह्लां..........(लागुडम्) भगवच्छक्त्यै हूं शिखायै वषट् ।

(४) ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं क्लीं खफ्रें टं ठं डं ढं णं ओं ओं ओं र्भामरावे भगवति एह्येहि मातर्देवि तर तर (?) तुरु तुरु प्रस्फुर प्रस्फुर. ....(व्योष) ह्रीं मेघमाले महामारीश्वरि विद्युत्कटाक्षे क्षपितदुरिते अरूपे बहुरूपे विरूपे ज्वलितमुखि चण्डेश्वरि हट्ट हट्ट वज्रायुधधारिणि हन हन हूं डामरमुखि हसफ्रां हसफ्रीं वज्रशरीरे कवचाय हुं ।

(५) ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें तं थं दं धं नं वज्रमध्ये फट् फट् ओं हूं हूं फट् महाकिरातचाण्डाले अवतर अवतर आवाहनमुखि. .....(मौञ्जबलं) ब्लूं म्लूं वज्रसारमुखे ह्रीं जहि जहि कालि कालि कालविध्वंसिनि हूं...........(स्तोकम्) रध्रों फट् नेत्रत्रयाय वौषट् ।

(६) ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें पं फं बं भं मं आगच्छ आगच्छ हूं हूं हूं महाचक्रराजेश्वरि तर तर रों लक्षें ज्रैं ज्वल ज्वल महारौद्रे रौषिकानलं पत पत तापय तापय कट्ट कट्ट हट्ट हट्ट घोराचारे महाघोरे वाडवाग्नि ग्रस ग्रस ज्वालय ज्वालय रफ्रैं × (कुलधरम्) × (प्रमीतम्) अस्त्राय फट् ।

(७) ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं ओं महबलाय नमो रुद्राय हसखफ्रें रह्लीं हीं हूं फट् महाचण्डयोगेश्वरि श्रीपादुकां पूजयामि इति गलाधोनाभिपर्यन्तव्यापकन्यासः ।

(८) ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं इति आब्रह्मरन्ध्रपादान्तव्यापकन्यासः ।

इत्युग्रमातृक्रमन्यासः ।

कालीकुलक्रमन्यासः (९।६६३-६८२)

(१) ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें ह्रीं (अं ?) क्ष्रूं फां क्ष्रूं फीं काली श्रीपादुकायै नमः ।

अत्र त्रयोदशतमेन वर्णेन हल्युतस्य स्वरस्यैकस्य सर्वत्र यथायथं ग्रहणमचला मातृकास्थानानि चात्रानुसन्धाय न्यसनीयानि ।

(२) सर्वशेषे तु चतुर्दशमबीजतः पूर्वं 'ओं फ्रें खफ्रें' इति बीजत्रयमधिकमभिधेयम् ।

(३) सर्वाङ्गव्यापकस्य न्यासे विशेषोऽस्ति योऽत्र निर्दिश्यते ओं फ्रें ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं खफ्रें ओं फ्रें खफ्रें फां फीं क्ष्रूं अं इत्यारभ्य षोडशस्वराः कं इत्यारभ्य सर्वाणि हल्वर्णानि सानुस्वाराणि निवेशनीयानि पुनश्च 'महागुह्यकाल्यै मात्रे प्रपञ्चरूपायै 'महायोगिनि डाकिनि शबरि श्रीपादुकायै नमः' एतेन वारत्रयं सर्वाङ्गव्यापकं न्यसनीयम् ।

(४) अथ ६७१ तम श्लोकादारम्य ६७७ तम श्लोकानामर्थः नेव परिज्ञातः अत एव सुधीभिरत्र विचारणीयम् ।

इति कालीकुलक्रमन्यासः ।

पीठन्यासः (९।६८६-७२०)

(१) ओं खफ्रें ह्लीं फ्रें श्रीं हूं छ्रीं स्त्रीं अं आं इं सिद्धियोनि महाराविणीपीठे सिद्धिकालि महाचर्चिके परातिपरगुह्यमङ्गले शक्ति श्रीपादुकायै नमः इति भ्रूमध्ये न्यासः ।

(२) ओं खफ्रें ह्लीं फ्रें श्रीं हूं छ्रीं स्त्रीं ईं उं ऊं ओड्डिनयानमहापीठे महाचण्डयोगेश्वरि कालकालि छिप्पिणि शङ्खिनि मोहिनिं गुह्यातिगुह्यपरापरशक्ति श्रीपादुकायै नमः इति वक्त्रमध्ये न्यासः ।

(३) ओं खफ्रें ह्लीं फ्रें श्रीं हूं छ्रीं स्त्रीं ऋं ॠं ऌं जालन्धरमहापीठे महाचण्डकापालिनि कालान्तककालि धीवरि गुह्यान्तरान्तराशक्ति श्रीपादुकायै नमः इति ललाटे न्यासः ।

(४) ओं खफ्रें ह्लीं फ्रें श्रीं हूं छ्रीं ॡ एं ऐं कामरूपमहापीठे महाचण्डराविणि यमान्तककालि फेत्कारिणि असन्धानातिगुह्याचिन्त्याशक्ति श्रीपादुकायै नमः इति मुखे न्यासः ।

(५) ओं खफ्रें ह्लीं फ्रें श्रीं हूं छ्रीं स्त्रीं ओं औं पूर्णागिरिमहापीठे पुलिन्दि महाचण्डरोषिणि कालि कालवञ्चनीपरापरगुह्यातिगुह्यशक्ति श्रीपादुकायै नमः इति विशुद्धौ न्यासः ।

(६) ओं खफ्रें ह्लीं फ्रें श्रीं हूं छ्रीं अं अः प्रयागमहापीठे वेश्याब्रह्मवति महाचण्डदण्डिनि अतिगुह्यरहस्यशक्ति श्रीपादुकायै नमः इति इत्यनाहतचक्रे न्यासः ।

(७) ओं खफ्रें ह्लीं फ्रें श्रीं हूं छ्रीं स्त्रीं कं खं गं घं ङं वाराणसीमहापीठे रुद्रवति महाचण्डशूलिनि शौण्डिनि गुह्यातिगुह्ययोगिनि शक्ति श्रीपादुकायै नमः इति मणिपूरचक्रे न्यासः ।

(८) ओं खफ्रें ह्लीं फ्रें श्रीं हूं छ्रीं स्त्रीं चं छं जं झं ञं कोलापुरमहापीठे कैवर्ति गुहेशि महाचण्डातिवेगिनि शक्ति श्रीपादुकायै नमः इति स्वाधिष्ठानचक्रे न्यासः ।

(९) ओं खफ्रें ह्लीं फ्रें श्रीं हूं छ्रीं स्त्रीं टं ठं डं ढं णं अट्टहासमहापीठे खड्गकि नारायणि चक्रिणि गुह्यकालि शक्ति श्रीपादुकायै नमः इति मूलाधारे न्यासः ।

(१०) ओं खफ्रें ह्लीं फ्रें श्रीं हूं छ्रीं स्त्रीं तं थं दं धं नं जयन्तीमहापीठे बन्धकि घोणवति महाचण्डाङ्कुशवति गुह्यातिगुह्यपातालचारिणि शक्ति श्रीपादुकायै नमः इति कुण्डलिनीचक्रे न्यासः ।

(११) ओं खफ्रें ह्लीं फ्रें श्रीं हूं छ्रीं स्त्रीं पं फं बं भं मं हस्तिनापुरमहापीठे रजकि शक्रवति महाचण्डवज्रिणि अतिगुह्याशक्ति श्रीपादुकायै नमः इति उरसि न्यासः ।

(१२) ओं खफ्रें ह्लीं फ्रें श्रीं हूं छ्रीं स्त्रीं यं रं लं वं एकाम्रनाथमहापीठे चामुण्डाशिवदूति महाचण्डकर्तरि कुलार्णवचारिणि शक्ति श्रीपादुकायै नमः इति जानुद्वितये न्यासः ।

(१३) ओं खफ्रें ह्लीं फ्रें श्रीं हूं छ्रीं स्त्रीं शं षं सं हं क्षं देवीकोटमहापीठे कोटवि चण्डिके महाचण्डखड्गिनि अति गुह्ययोगेश्वरि शक्ति श्रीपादुकायै नमः इति जङ्घयोर्न्यासः ।

(१४) ऐं खफ्रें ह्लीं फ्रें श्रीं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं करवीरमहापीठे चण्डचण्डेश्वरि महागुह्या शक्ति श्रीपादुकायै नमः इति लिङ्गे न्यासः ।

(१५) ऐं खफ्रें ह्लीं फ्रें श्रीं कं इत्यारभ्य क्षं यावत् सानुस्वरं पञ्चत्रिंशद्दलं पठित्वा राजगृहमहापीठे सृष्टिस्थितिसंहारानाख्याभासा कालीकुला महाचण्डयोगेश्वरी परापरपरमरहस्यकालीक्रमशक्ति श्रीपादुकायै नमः इति व्यापके न्यासः ।

इति पीठन्यासः ।

योगिनीन्यासः (९।७२५-७४७)

(१) ओं खफ्रें ह्लीं डां डीं डूं डम्लव्रीं महाचण्डकालि डाकिनि योगिनि मम त्वग्धातून् रक्ष रक्ष ह्लीं हूं महाकालि कपालिनि विशुद्धपीठे षोडशशक्त्यै नमः इति विशुद्धचक्रे न्यासः ।

(२) ओं खफ्रें ह्लीं रां रीं रूं रम्लव्रीं महाचण्डकालि राकिनि योगिनि ममासृग्धातून् रक्ष रक्ष ह्लीं हूं महाकालि कापालिनि अनाहतपीठे द्वादशशक्त्यै नमः इत्यनाहतचक्रे न्यासः ।

(३) ओं खफ्रें ह्लीं लां लीं लूं लम्लव्रीं महाचण्डकालि लाकिनि (योगिनि) मम मांसधातून् रक्ष रक्ष ह्लीं हूं महाकालि कापालिनि मणिपूरकपीठे दशशक्त्यै नमः इति नाभौ न्यासः ।

(४) ओं खफ्रें ह्लीं कां कीं कूं कम्लव्रीं महाचण्डकालि काकिनि (योगिनि) मम मेदो धातून् रक्ष रक्ष ह्लीं हूं महाकालि कापालिनि स्वाधिष्ठानपीठे षट्शक्त्यै नमः इति स्वाधिष्ठाने न्यासः ।

(५) ओं खफ्रें ह्लीं सां सीं सूं सम्लव्रीं महाचण्डकालि शाकिनि (योगिनि) ममास्थिधातून् रक्ष रक्ष ह्लीं हूं महाकालि कापालिनि मूलाधारपीठे चतुःशक्त्यै नमः इति मूलाधारे न्यासः ।

(६) ओं खफ्रें ह्रीं हां हीं हूं हम्लव्रीं महाचण्डकालि हाकिनि (योगिनि) मम मज्जाधातून् रक्ष रक्ष ह्रीं हूं महाकालि कापालिनि आज्ञापीठे द्विशक्त्यै नमः इत्याज्ञाचक्रे न्यासः ।

(७) ओं खफ्रें ह्रीं यां यीं यूं यम्लव्रीं महाचण्डकालि याकिनि (योगिनि) मम शुक्रधातून् रक्ष रक्ष ह्रीं हूं महाकालि कापालिनि व्योमपीठे सर्वशक्त्यै नमः इति ब्रह्मरन्ध्रे न्यासः ।

(८) ओं खफ्रें ह्रीं ऐं क्रीं छ्रीं स्त्रीं हूं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अनन्तकोटिकालिकामहासिद्धिचक्रे योगिनीशक्तियुक्तायै गुह्यकाल्यै नमः इति सर्वाङ्गव्यापके न्यासः ।

इति योगिनीन्यासः ।

दैवतन्यासः (९।७५०-७७५)

(१) ओं खफ्रें ह्रीं भगवते रुद्राय जूं सः परमात्मने नमः इति ललाटे ।

(२) ओं खफ्रें ह्रीं औं क्ष्रौं हूं क्षपिततमा.......नरसिंहाय जूं सः ज्ञानात्मने नमः इति दृशोः ।

(३) ओं खफ्रें ह्रीं ओं ह्रौं वीर्यनिर्जितदिक्चक्राय जूं सः धर्माय नमः इति गण्डयोः ।

(४) ओं खफ्रें ह्रीं ठ्रीं क्ष्रौं चण्डतेजसे जूं सः वैराग्याय नमः इति कर्णयोः ।

(५) ओं खफ्रें ह्रीं क्ष्रूं स्त्रौं सः अमृतात्मने जूं सः ऐश्वर्याय नमः इति स्कन्धयोः ।

(६) ओं खफ्रें ह्रीं ओं छ्रीं ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल गीर्वाणमुखाय जूं सः अधर्माय नमः इति बाह्वोः ।

(७) ओं खफ्रें ह्रीं ह्रां फ्रम्लग्लैं ज्वालामालिने वज्रमहाबलाय जूं सः अज्ञानाय नमः इति कराङ्गुलिषु ।

(८) ओं लां ब्रह्मणे जूं सः इति वक्षसि ।

(९) ओं वां अं विष्णवे जूं सः इति जङ्घायाम् ।

(१०) ओं हां रां रुद्राय जूं सः इति पादयोः ।

(११) ओं यां ईश्वराय जूं सः इति पादाङ्गुलीषु ।

(१२) ओं फां सदाशिवाय जूं सः इति इत्यनाहतचक्रे ।

(१३) ओं शां आत्मज्ञानाय जूं सः इति तालुनि ।

(१४) ओं क्षां परज्ञानाय जूं सः इति बिन्दौ ।

(१५) ओं ह्रां अघोराय जूं सः इति अर्धचन्द्रे ।

(१६) ओं चैं घोराय जूं सः इति नादे ।

(१७) ओं ह्रों घोररूपाय जूं सः इति निरोधिकायाम् ।
(१८) ओं हूं भैरवाय जूं सः इति व्यापिन्याम् ।
(१९) ओं ह्लौं वीरभद्राय जूं सः इति रसनायाम् ।
(२०) ओं स्हौः शरभवनाय जूं सः इति कुलकूले ।
(२१) ओं स्हौः वलप्रमथनाय जूं सः इति मनोन्मन्याम् ।
(२२) ओं स्हौः प्रचण्डदण्डाय जूं सः इति उन्मन्याम् ।
(२३) ओं स्हौः परमात्मने जूं सः इति शाम्भवान्तिमे ।
(२४) ओं स्हौः वाक्पतये जूं सः इति षोडशान्ते ।
(२५) ओं स्हौः भूतलपातालवासिभ्यः जूं सः इति सूक्ष्मान्ते ।
(२६) ओं स्हौः प्रचण्डभैरवाय जूं सः इति परान्ते ।
(२७) ओं स्हौः सर्वात्मने नमो रुद्राय जूं सः इति कूले ।
(२८) ओं खफ्रें ह्लीं ओं प्रचण्डचण्डाय महाघोराय भैरवाय मर्दय मर्दय ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल खफ्रें क्षह्लम्लव्य्रऊं श्लौं हूं फें कालनाशक मां रक्ष रक्ष नमो महाप्रचण्डाय भैरवाय इति सर्वव्यापकन्यासः ।

इति दैवतन्यासः ।

मन्त्रक्रमन्यासः (९।७७९-८२३)

(१) ओं खफ्रें ह्लीं स्त्रीं महाचण्डयोगेश्वरि ठ्रीं ध्रीं थ्रीं द्वीपिवक्त्राय नमः इति ब्रह्मरन्ध्रे न्यासः ।
(२) ओं खफ्रें ह्लीं (स्त्रीं महाचण्डयोगेश्वरि) ओं छ्रीं हूं स्त्रीं × (मर्मरि) फ्रें सिंहवक्त्राय नमः इति ललाटे न्यासः ।
(३) ओं खफ्रें ह्लीं (स्त्रीं महाचण्डयोगेश्वरि) रह्लीं फट् फट् फट् फेरुवक्त्राय नमः इति दक्षनेत्रे न्यासः ।
(४) ओं खफ्रें ह्लीं (स्त्रीं महाचण्डयोगेश्वरि) ओं हूं × (बान्धवः) रह्लीं ह्लथ्रां हूं फें फट् कपिवक्त्राय नमः इति वामनेत्रे न्यासः ।
(५) ओं खफ्रें ह्लीं स्त्रीं (महाचण्डयोगेश्वरि) × (बान्धवः) × (माण्डिल्यबीजम्) क्षीं सैं हूं × (दिव्यभालः) फें फट् हूं हूं हूं फट् फट् फट् ऋक्षवक्त्राय नमः इति दक्षकर्णे न्यासः ।
(६) ओं खफ्रें ह्लीं (स्त्रीं महाचण्डयोगेश्वरि) ज्रैं जरक्रीं (?) श्लौं खफ्रक्षूं भ्रीं हूं हूं हूं फट् फट् फट् नरवक्त्राय नमः इति वामकर्णे न्यासः ।
(७) ओं खफ्रें ह्लीं (स्त्रीं महाचण्डयोगेश्वरि) छ्रीं ब्लौं ग्लूं रक्ष्रीं जरक्रीं स्फौं फें हूं हूं हूं फट् फट् फट् गरुडवक्त्राय नमः इति दक्षकपोले न्यासः ।
(८) ओं खफ्रें ह्लीं (स्त्रीं महाचण्डयोगेश्वरि) फ्रें हसखफ्रीं क्षरहूं हसफ्रें ह्लैं खफ्रीं फें फट् हूं हूं हूं फट् फट् फट् मकरवक्त्राय नमः इति वामकपोले न्यासः ।

(९) ओं खफ्रें ह्रीं (स्त्रीं महाचण्डयोगेश्वरि) स्हौः क्ष्म्लीं ह्रां क्रीं श्लीं ग्लां गजवक्त्राय नमः इति हृदये न्यासः ।

(१०) ओं खफ्रें ह्रीं (स्त्रीं महाचण्डयोगेश्वरि) श्लीं क्लीं ह्लीं रग्रें ग्लीं × (फलकम् ?) × (दिव्यभालः) ज्रैं फें हूं हूं हूं फट् फट् फट् हयवक्त्राय नमः इति शिरसि न्यासः ।

(११) ओं खफ्रें ह्रीं नमश्चामुण्डे करङ्कमालिनि करङ्कमालाधारिणि भगवति फां फीं फूं चण्डकापालिन्यै महाकालिकायै नमः इति मूलाधारे न्यासः ।

(१२) ओं खफ्रें ह्रीं हूं फट् महाचण्डभैरवि खफ्रीं रफ्रें फट् रसखग्रमूं रझ्रीं रफ्रां (खैं ?) टं रक्ष्रीं खमह्रीं रक्ष्रीं (चण्डकापालिन्यै महाकालिकायै नमः) इति स्वाधिष्ठाने न्यासः ।

(१३) ओं खफ्रें ह्रीं ओं ह्रीं क्ष्रीं ग्रीं ल्रीं फ्रीं क्रीं हूं फट् (चण्डकापालिन्यै महाकालिकायै नमः) इति मणिपूरे न्यासः ।

(१४) ओं खफ्रें ह्रीं रक्षभ्रम्लऊं क्रीं ह्रौं क्रीं ठ्रीं फ्रीं थ्रीं ध्रीं फट् (चण्डकापालिन्यै महाकालिकायै नमः) इति अनाहते न्यासः ।

(१५) ओं खफ्रें ह्रीं क्लूं व्रीं म्रीं जरक्रीं रक्ष्रीं ग्रां ब्रां स्त्रां ह्रां कालिकायै नमः इति विशुद्धिचक्रे न्यासः ।

(१६) ओं खफ्रें ह्रीं जरक्रीं यममुखि यमहस्ते रह्रीं रफ्रीं रक्रीं फट् फट् फट् इति आज्ञाचक्रे न्यासः ।

(१७) पुनर्भारतीमन्त्रस्य विहितेन षडङ्गेनात्रापि षडङ्गं सम्पादनीयम् ।

(१८) ओं फ्रें सिद्धिकरालि दक्षिणवक्त्राय नमः इति दक्षिणभागे न्यासः ।

(१९) ह्रीं हूं छ्रीं वामवक्त्राय नमः इति वामभागे न्यासः ।

(२०) स्त्रीं फ्रें नमः स्वाहा मध्यमवक्त्राय नमः इति मध्यभागे न्यासः ।

मूलमन्त्रस्यैकैकमक्षरमादाय फ्रेंबीजेन सम्पुटितं कृत्वा अङ्गानामधोनिर्दिष्टानां 'स्थानपादुकां पूजयामि' इत्यनेनान्वितं विधाय न्यासः करणीयः—

शिरः, हृदयं, नाभिः, दक्षिणनेत्रं, वामनेत्रं, वामनासापुटं, दक्षनासापुटं, वामकर्णः, दक्षकर्णः, लिङ्गं, गुह्यं, भ्रूमध्यम्, ब्रह्मरन्ध्रम्, शिरः, मस्तकात्पादान्तम्, पादान्मस्तकान्तम् ।

ओं श्रीं फें क्षग्लीं (फट्) रफ्रैं हूं नमः स्वाहा इति शिरसि न्यासः ।

ओं खफ्रें ह्रीं ऐं खफ्रें ह्रीं श्रीं खफ्रें ह्रः अं रछ्रैं रत्रां फट् हूं खफ्रें हूं सिद्धिकरालि ओं फ्रें सः स्वाहा ह्रीः महाचण्डयोगेश्वरि श्रीपादुकायै नमः इति सर्वाङ्गव्यापकन्यासः ।

॥ इति मन्त्रक्रमन्यासः ॥

लघुषोढासमाप्तौ बलिद्वयदानमन्त्रौ (९।८२७-८५१)

ह्रीं श्रीं सर्वपीठे चक्रयोगेश्वरि चन्द्रपीठे व्योमकाली सिद्धिपीठे मातङ्गिनी योगपीठे भीमकाली कामरूपीठे सिद्धिकाली पूर्णगिरिपीठे चण्डकाली ओड्डियानपीठे रक्तकाली फ्रें स्हौः सौः सर्वसमयलाभं कुरु कुरु सुसिद्धिं प्रसर प्रसर प्रसारय प्रसारय हैं हैं सः सः खः खः खाहि खाहि क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं वाहि वाहि काहि काहि खाहि खाहि थूं हूं लां खां लां छां हूं हां रस्क्रों ह्रीं श्रीं हूं सौः ह्रीः हं हूं हूं हैं हूं फट् नमः स्वाहा इति प्रथम बलिदानमन्त्रः ।

ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें खफ्रें हसखफ्रें क्षरहम्लव्य्रईऊं रूं क्ष्रीं जरक्रीं रह्रीं स्हौः ब्लूं क्रों ट्रीं ध्रीं थ्रीं फट् फट् फट् एहि एहि भगवति गुह्यकालि सकलपरापरकुलचक्रमन्त्रयन्त्रमयदेहे समांसरक्तबलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय भक्ष भक्ष भक्षय भक्षय खाद खाद खाहि खाहि प्रत्यक्षं परोक्षं द्वेषिणो मम शत्रून् दह दह मर्दय मर्दय पातय पातय मूर्च्छय मूर्च्छय त्रासय त्रासय शोषय शोषय स्वखर्परे स्थापय स्थापय दीर्घदंष्ट्रया भिन्धि भिन्धि छिन्धि छिन्धि फट् फट् फट् आं ईं ऊं ऐं औं मम राज्यं देहि देहि दापय दापय पुत्रपौत्रधनैश्वर्यायुःस्त्रीबाजिजरत्नसौभाग्यारोग्यसमृद्धया मां पूरय पूरय वर्ष वर्ष वर्षापय वर्षापय ओं ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं फट् फट् फट् नमो नमः स्वाहा ।

इति द्वितीयबलिदानमन्त्रः ।

महाषोढान्यासः

१. तीर्थशिवलिङ्गन्यासः (९।९०८-९६८)

ओमस्य तीर्थशिवलिङ्गन्यासस्य गौतमऋषिरनुष्टुप्छन्दः महातीर्थशिवलिङ्गे देवते ओं बीजं ह्रीं शक्तिः ऐं कीलकम् आं तत्त्वम् तीर्थन्यासे जपे विनियोगः ।

(१) ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं क्रों छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें प्रयागतीर्थे महेश्वरशिवलिङ्गसहितायै ललितादेवि शक्तिरूपिण्यै नवकोटिकुलाकुलक्रेश्वर्यै सकलगुह्यानन्ततत्त्वधारिण्यै गुह्यकाल्यै ग्लूं ब्लूं क्ष्रूं ज्लूं स्हौः अं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

अपरत्र परिवर्तनीयांशमात्रं निर्दिश्यते शेषं पूर्ववज्ज्ञेयमथ च न्यासस्थानं मातृकान्यासवद्बोध्यम् फट् इत्यतः पूर्वं यथाक्रमं मातृकाया एकस्याः सानुस्वरायाः निवेशः कार्यः ।

(२) नैमिषारण्यतीर्थे देवदेवशिवलिङ्गसहितायै लिङ्गधारिणी देविशक्तिरूपिण्यै ।

(३) शूकरक्षेत्रतीर्थे भारभूतेश्वरशिवलिङ्गसहितायै वेगवति देविशक्तिरूपिण्यै ।

(४) एकाम्बरतीर्थे कृत्तिवासेश्वरशिवलिङ्गसहितायै मातङ्गि देविशक्तिरूपिण्यै ।
(५) बदरिकाश्रमतीर्थे त्रिलोचनशिवलिङ्गसहितायै वेदवतीदेवि शक्तिरूपिण्यै ।
(६) कुरुक्षेत्रतीर्थे स्थाणुशिवलिङ्गसहितायै भवानीदेवि शक्तिरूपिण्यै ।
(७) प्रभासतीर्थे सोमनाथशिवलिङ्गसहितायै राजराजेश्वरि देविशक्तिरूपिण्यै ।
(८) अमरकण्टकतीर्थे ओंकारेश्वरशिवलिङ्गसहितायै निगमबोधिनि देविशक्तिरूपिण्यै ।
(९) पुष्करतीर्थे अयोगन्धेश्वरशिवलिङ्गसहितायै पुरुहूतादेवि शक्तिरूपिण्यै ।
(१०) गयातीर्थे पितामहशिवलिङ्गसहितायै हरप्रियादेवि शक्तिरूपिण्यै ।
(११) वाराणसीतीर्थे महादेवशिवलिङ्गसहितायै विशालाक्षीदेवि शक्तिरूपिण्यै ।
(१२) अयोध्यातीर्थे चन्द्रशेखरशिवलिङ्गसहितायै मोहिनीदेवि शक्तिरूपिण्यै ।
(१३) मथुरातीर्थे भूतेश्वरशिवलिङ्गसहितायै पार्वतीदेवि शक्तिरूपिण्यै ।
(१४) मायापुरतीर्थे महालिङ्गेश्वरशिवलिङ्गसहितायै रक्ताम्बरादेवि शक्तिरूपिण्यै ।
(१५) शिवकाञ्चीतीर्थे व्योमकेशशिवलिङ्गसहितायै झङ्कारिणीदेवि शक्तिरूपिण्यै ।
(१६) उज्जयिनीतीर्थे महाकालशिवलिङ्गसहितायै भोगवतीदेवि शक्तिरूपिण्यै ।
(१७) द्वारकातीर्थे पिनाकीश्वरशिवलिङ्गसहितायै अश्वारूढादेवि शक्तिरूपिण्यै ।
(१८) पुरुषोत्तमतीर्थे बिल्वकेश्वरशिवलिङ्गसहितायै बिल्वपत्रिकादेवि शक्तिरूपिण्यै ।
(१९) मरुत्कोटितीर्थे कमलेश्वरशिवलिङ्गसहितायै कमलादेवि शक्तिरूपिण्यै ।
(२०) अट्टहासतीर्थे नीललोहितशिवलिङ्गसहितायै कुन्ददादेवि शक्तिरूपिण्यै ।
(२१) शङ्कुकर्णतीर्थे एकाम्रनाथशिवलिङ्गसहितायै कीर्तिमतीदेवि शक्तिरूपिण्यै ।
(२२) रुद्रकोटितीर्थे जम्बुकेश्वरशिवलिङ्गसहितायै............देविशक्तिरूपिण्यै ।
(२३) छगलाण्डतीर्थे जटीश्वरशिवलिङ्गसहितायै वज्रप्रस्तारिणीदेविशक्तिरूपिण्यै ।
(२४) आम्रातकतीर्थे अमरेश्वरशिवलिङ्गसहितायै भद्रकर्णिकादेवि शक्तिरूपिण्यै ।
(२५) अरुणाचलतीर्थे महोत्कटशिवलिङ्गसहितायै हसन्तीदेवि शक्तिरूपिण्यै ।
(२६) वृन्दावनतीर्थे अट्टहासशिवलिङ्गसहितायै सरस्वतीदेवि शक्तिरूपिण्यै ।
(२७) भद्रकर्णह्रदतीर्थे महातेजाशिवलिङ्गसहितायै भद्रावतीदेवि शक्तिरूपिण्यै ।
(२८) हरिश्चन्द्रतीर्थे महायोगशिवलिङ्गसहितायै प्राणप्रदादेवि शक्तिरूपिण्यै ।

(२९) मध्यमेश्वरतीर्थे कपर्दीश्वरशिवलिङ्गसहितायै सिद्धिदायिनीदेवि शक्तिरूपिण्यै ।

(३०) वस्त्रापथतीर्थे सूक्ष्मेश्वरशिवलिङ्गसहितायै रुद्राणीदेवि शक्तिरूपिण्यै ।

(३१) कनखलतीर्थे सर्वज्ञेश्वरशिवलिङ्गसहितायै ओजस्विनीदेवि शक्तिरूपिण्यै ।

(३२) देवदारुवनतीर्थे गोपीश्वरशिवलिङ्गसहितायै विद्येश्वरीदेवि शक्तिरूपिण्यै ।

(३३) नेपालतीर्थे शिवशिवलिङ्गसहितायै भीमादेवि शक्तिरूपिण्यै ।

(३४) कर्णिकारतीर्थे हरिशिवलिङ्गसहितायै राधादेवि शक्तिरूपिण्यै ।

(३५) त्रिसन्ध्यातीर्थे शर्वशिवलिङ्गसहितायै शान्तादेवि शक्तिरूपिण्यै ।

(३६) ....तीर्थे भवशिवलिङ्गसहितायै जयमङ्गलादेवि शक्तिरूपिण्यै ।

(३७) ....तीर्थे उग्रेश्वरशिवलिङ्गसहितायै शर्वाणीदेवि शक्तिरूपिण्यै ।

(३८) ....तीर्थे दण्डीश्वरशिवलिङ्गसहितायै शिवादेवि शक्तिरूपिण्यै ।

(३९) ....तीर्थे पशुपतिशिवलिङ्गसहितायै चण्डवतीदेवि शक्तिरूपिण्यै ।

(४०) ....तीर्थे गणाध्यक्षशिवलिङ्गसहितायै सावित्रीदेवि शक्तिरूपिण्यै ।

(४१) ....तीर्थे ताम्रकेश्वरशिवलिङ्गसहितायै गुह्येश्वरीदेवि शक्तिरूपिण्यै ।

(४२) ....तीर्थे मणिमहेशशिवलिङ्गसहितायै कल्याणीदेवि शक्तिरूपिण्यै ।

(४३) कुलूततीर्थे घुसृणेश्वरशिवलिङ्गसहितायै पद्मावतीदेवि शक्तिरूपिण्यै ।

(४४) शिवालयतीर्थे वामदेवशिवलिङ्गसहितायै शाकम्भरीदेवि शक्तिरूपिण्यै ।

(४५) पृथूदकतीर्थे लगुडीश्वरशिवलिङ्गसहितायै सिद्धेश्वरीदेवि शक्तिरूपिण्यै ।

(४६) कायावतारतीर्थे कपिलेश्वरशिवलिङ्गसहितायै तेजोवतीदेवि शक्तिरूपिण्यै ।

(४७) करवीरतीर्थे श्रीकण्ठशिवलिङ्गसहितायै विजयादेवि शक्तिरूपिण्यै ।

(४८) मण्डलेश्वरतीर्थे...........शिवलिङ्गसहितायै प्रभावतीदेवि शक्तिरूपिण्यै ।

(४९) हर्षपथतीर्थे हर्षितेश्वरशिवलिङ्गसहितायै नारायणी(प्रमोदनी)देवि शक्तिरूपिण्यै ।

(५०) अलकापुरतीर्थे प्रहासेश्वरशिवलिङ्गसहितायै मायामर्यादेवि शक्तिरूपिण्यै ।

(५१) बड़वामुखतीर्थे अनलेश्वरशिवलिङ्गसहितायै मेधादेवि शक्तिरूपिण्यै ।

२. पर्वतनरसिंहन्यास: (९।९८७-१०५६)

(१) औं क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्रौं ठ्रीं चैं श्रीं प्रीं रह्लीं जरक्रीं रक्ष्रीं रव्रीं रफ्रीं (?) क्षह्म्ल्व्य्रऊं हिमालयपर्वते ज्वालामालीनरसिंहसहितायै विद्युत्केशी शक्तिस्वरूपायै चतुरशीतिकोटिब्रह्माण्डसृष्टिकारिण्यै प्रज्वलज्ज्वलनलोचनायै वज्रनखदंष्ट्रायुधायै दुर्निरीक्ष्याकारायै भगवत्यै गुह्यकाल्यै खफ्रें हसखफ्रीं ओं फ्रें ह्लीं छ्रीं हूं स्त्रीं श्रीं ह्लीं रहक्षमलवरयईऊं श्रीं ओं ह्लीं हसखफ्रें खफ्रें द्रैं जूं श्लीं क्म्रूं (?) × (सन्दीपनीबीजम्) खं खं खं फट् फट् फट् नम: स्वाहा ।

अन्यत्राग्रे सर्वत्र सर्वं पूर्ववत् बोध्यम्, केवलं पर्वतइत्यतः पूर्वं नरसिंह इत्यतः पूर्वं शक्तिपदतश्च पूर्वं परिवर्तनमपेक्षितं तन्मात्रस्यात्र निर्देशो विधीयते ।

(२) ....गन्धमादनपर्वते करालनरसिंह........कालरात्रिशक्ति........
(३) ....भद्राश्वपर्वते भीमनरसिंह.............उल्कामुखशक्ति........
(४) ....केतुमालपर्वते अपराजितनरसिंह........पिङ्गजटाशक्ति........
(५) ....सुमेरुपर्वते क्षोभणनरसिंह.............कुण्डोदरीशक्ति........
(६) ....विन्ध्यपर्वते सृष्टिनरसिंह...............प्रेतासनाशक्ति........
(७) ....निषधपर्वते स्थितिनरसिंह............कपालकुण्डलाशक्ति........
(८) ....हेमकूटपर्वते कल्पान्तनरसिंह........चण्डचामुण्डाशक्ति........
(९) ....पारिपात्रपर्वते अनन्तनरसिंह.............धूमावतीशक्ति........
(१०) ....कैलासपर्वते विरूपनरसिंह.............शुष्कोदरीशक्ति........
(११) ....उदयपर्वते वज्रायुधनरसिंह.........ज्वालाकुलाशक्ति........
(१२) ....अस्तपर्वते परापरनरसिंह..........अञ्जनप्रभाशक्ति........
(१३) ....माल्यवन्तपर्वते प्रध्वंसननरसिंह........वज्रवाराहीशक्ति........
(१४) ....सह्यपर्वते विश्वमर्दननरसिंह........कालमर्दिनीशक्ति........
(१५) ....मलयपर्वते उग्रनरसिंह...............नागहारिणीशक्ति........
(१६) ....दर्दुरपर्वते भद्रनरसिंह..................घोरनादाशक्ति........
(१७) ....ऋष्यमूकपर्वते मृत्युनरसिंह.........करालिनीशक्ति........
(१८) ....शुक्तिमन्तपर्वते सहस्रभुजनरसिंह........मुण्डचर्चिकाशक्ति......
(१९) ....महेन्द्रपर्वते विद्युज्जिह्वनरसिंह......श्मशानचारिणीशक्ति......
(२०) ....अर्बुदपर्वते घोरदंष्ट्रनरसिंह...........शववाहिनीशक्ति........
(२१) ....द्रोणपर्वते महाकालाग्निनरसिंह........रक्तपायिनीशक्ति........
(२२) ....रैवतपर्वते मेघनादनरसिंह............चण्टघण्टाशक्ति........
(२३) ....क्रौञ्चपर्वते विकटनरसिंह......अट्टाट्टहासिनीशक्ति.......
(२४) ....चित्रकूटपर्वते पिङ्गसटनरसिंह..........कङ्कालिनीशक्ति........
(२५) ....काश्मीरपर्वते प्रदीप्तनरसिंह..........भूतोन्मादिनीशक्ति........
(२६) ....कालञ्जरपर्वते विश्वरूपनरसिंह........पिशाचिनीशक्ति........
(२७) ....श्रीशैलपर्वते विद्युद्दशननरसिंह........विकटदंष्ट्राशक्ति........
(२८) ....मैनाकपर्वते विदारनरसिंह................मेघमालाशक्ति........
(२९) ....मुञ्जगिरिपर्वते विक्रमनरसिंह..........पूतितुण्डाशक्ति........
(३०) ....गोमन्थपर्वते प्रवणनरसिंह............भारुण्डरुण्डाशक्ति........
(३१) ....त्रिकूटपर्वते सर्वतोमुखनरसिंह.........फेत्कारिणीशक्ति........
(३२) ....सुबलपर्वते वज्रनरसिंह.............पिचिण्डनासाशक्ति........
(३३) ....सैन्धवपर्वते दिव्यनरसिंह.........हूं हूंकारनादिनीशक्ति........

(३४) ....कलिन्दपर्वते भोगनरसिंह..................कोलाननाशक्ति........
(३५) ....रविभापर्वते मोक्षनरसिंह..................निरञ्जनाशक्ति........
(३६) ....लोकालोकपर्वते लक्ष्मीनरसिंह.........भ्रमराम्बिकाशक्ति........
(३७) ....मन्दरपर्वते विद्रावणनरसिंह...........मूलताटङ्किनीशक्ति........
(३८) ....केदारपर्वते कालचक्रनरसिंह..........शूलचण्डिकाशक्ति........
(३९) ....नीलाचलपर्वते कृतान्तनरसिंह............कटङ्कटाशक्ति........
(४०) ....अञ्जनपर्वते तप्तहाटकनरसिंह..........कुक्कुटीशक्ति........
(४१) ....वराहपर्वते भ्रामकनरसिंह...................पुक्कसीशक्ति........
(४२) ....चैत्ररथपर्वते रौद्रनरसिंह.............विश्वभञ्जिकाशक्ति........
(४३) ....कर्णिकारपर्वते विश्वान्तकनरसिंह..........शङ्खिनीशक्ति........
(४४) ....मन्दारपर्वते भयङ्करनरसिंह................नीलाम्बराशक्ति........
(४५) ....कोकामुखपर्वते प्रतप्तनरसिंह........कालसङ्कर्षिणीशक्ति........
(४६) ....कोलागिरिपर्वते विजयनरसिंह........कुणपभोजिनीशक्ति........
(४७) ....तुषारपर्वते तेजोमयनरसिंह...........दैत्यविध्वंसिनीशक्ति........
(४८) ....बाटधानपर्वते ज्वालाजटालनरसिंह....विदारिसृक्किणीशक्ति....
(४९) ....नीचगिरिपर्वते खरनखरनरसिंह.........क्षेत्रपालिनीशक्ति........
(५०) ....गोवर्धनपर्वते नाददारुणनरसिंह........कुलकुट्टनीशक्ति........
(५१) ....हरिश्चन्द्रपर्वते निर्वाणनरसिंह........आनन्ददायिनीशक्ति.......

न्यासस्थलानि मातृकान्यासवदूह्यानि

इति पर्वतनरसिंहन्यासः ।

३. षोढान्यासान्तर्गतः नद्यृषिन्यासः ।

(१) आं ईं ऊं ऐं औं क्लीं स्हौः फ्रों क्रों जूं ञों ञों ञों फट् फट् फट् यमुनानदीतीरे मरीच्युपासितायै कामदानामधारिण्यै भगवत्यै गुह्यकाल्यै लेलिहानरसनाभयानकायै विकटदंष्ट्राकराल्यै महाचण्डयोगेश्वर्यै शक्तितत्त्वसहितायै श्रीं ह्लीं रह्लीं हसखफ्रीं क्षरहम्लव्य्रईऊं खफ्रें जरक्रीं झमरयूं रक्ष्रीं स्त्रीं छ्रीं छ्रीं गुह्यकालि फट् यां जूं लं वैं शौं षं सः हलक्ष्रूं नमः स्वाहा ।

अन्यत्राग्रे सर्वत्र सर्वं पूर्ववत् केवलं नदीपदतः उपासितापदतः नाम पदतश्च पूर्वं परिवर्तनीयमस्ति तन्मात्रस्याधस्तात् विधीयते निर्देशः—

(२) ....सरस्वतीनदीतीरे अत्र्युपासितायै महाविद्यानामधारिण्यै.........
(३) ....विपाशानदीतीरे अङ्गिरसोपासितायै गौरीनामधारिण्यै...........
(४) ....ऐरावतीनदीतीरे पुलस्त्योपासितायै कामाख्यानामधारिण्यै.......

(५) ....चन्द्रभागानदीतीरे पुलहोपासितायै माहेश्वरीनामधारिण्यै.......
(६) ....वितस्तानदीतीरे क्रतूपासितायै विश्वरूपानामधारिण्यै.........
(७) ....देविकानदीतीरे वसिष्ठोपासितायै तपस्विनीनामधारिण्यै.........
(८) ....गोमतीनदीतीरे भृगूपासितायै पुण्यप्रदानामधारिण्यै.........
(९) ....नर्मदानदीतीरे भारद्वाजोपासितायै विन्ध्यवासिनीनाम.........
(१०) ....सिप्रानदीतीरे कर्दमोपासितायै महामायानाम.........
(११) ....कृष्णवेणीनदीतीरे कपिलोपासितायै शिवशक्तिनाम.........
(१२) ....तुङ्गभद्रानदीतीरे दुर्वासः उपासितायै क्षेमङ्करीनाम.........
(१३) ....कावेरीनदीतीरे दत्तात्रेयोपासितायै भवहारिणीनाम.........
(१४) ....गोदावरीनदीतीरे अगस्त्योपासितायै सूक्ष्मानाम.........
(१५) ....तापीनदीतीरे पराशरोपासितायै पद्मावतीनाम.........
(१६) ....पयोष्णीनदीतीरे व्यासोपासितायै कुलेश्वरीनाम.........
(१७) ....भीमरथीनदीतीरे विश्वामित्रोपासितायै कौशिकीनाम.........
(१८) ....बाहुदानदीतीरे गर्गोपासितायै महोदयानाम.........
(१९) ....करतोयानदीतीरे गौमतोपासितायै विमलानाम.........
(२०) ....गण्डकीनदीतीरे शाण्डिल्योपासितायै पद्मासनानाम.........
(२१) ....सरयूनदीतीरे असितोपासितायै प्रियङ्करीनाम.........
(२२) ....कौशिकीनदीतीरे देवलोपासितायै सर्वाश्रयनाम.........
(२३) ....शरावतीनदीतीरे शातातपोपासितायै गुणानन्दानाम.........
(२४) ....इरावतीनदीतीरे कात्यायनोपासितायै कलातीतानाम.........
(२५) ....उत्पलिनीनदीतीरे आपस्तम्बोपासितायै नादरूपिणीनाम.......
(२६) ....सभङ्गानदीतीरे शङ्खलिखितोपासितायै नारायणीनाम.........
(२७) ....वेत्रवतीनदीतीरे हारीतोपासितायै तापसीनाम.........
(२८) ....तमसानदीतीरे जमदग्न्युपासितायै वेदमातानाम.........
(२९) ....चर्मण्वतीनदीतीरे ऋचीकोपासितायै ज्ञानवेद्यानाम.........
(३०) ....धूतपापानदीतीरे च्यवनोपासितायै भवतारिणीनाम.........
(३१) ....सुवर्णरिखानदीतीरे पैठीनस्युपासितायै मुदितानाम.........
(३२) ....विरजानदीतीरे उद्दालकोपासितायै नन्दिनीनाम.........
(३३) ....निर्विन्ध्यानदीतीरे श्वेतकेतूपासितायै हरप्रियानाम.........
(३४) ....महानदीनदीतीरे दधीच्युपासितायै कुण्डलिनीनाम.........
(३५) ....मुरलानदीतीरे जैमिन्युपासितायै दयावतीनाम.........
(३६) ....ज्योतीरसानदीतीरे वैशम्पायनोपासितायै शाङ्करीनाम.........
(३७) ....पारावतीनदीतीरे वामदेवोपासितायै अद्वैतानाम.........
(३८) ....वाग्मतीनदीतीरे गालवोपासितायै नैगमीनाम.........
(३९) ....मलप्रहारिणीनदीतीरे संवर्तोपासितायै श्रुतिबोधितानाम.......

(४०) ....वरुणानदीतीरे पर्शुरामोपासितायै शाम्भवीनाम.........
(४१) ....मन्दाकिनीनदीतीरे जाबालोपासितायै परापरानाम.........
(४२) ....भोगवतीनदीतीरे शरभङ्गोपासितायै भोगवतीनाम.........
(४३) ....शोणनदीतीरे वाल्मीक्युपासितायै नित्यानन्दानाम.........
(४४) ....शतद्रुनदीतीरे नारदोपासितायै तुरीयानाम.........
(४५) ....हिरण्याक्षनदीतीरे कश्यपोसितायै वागगोचरानाम.........
(४६) ....सिन्धुनदीतीरे अथर्वोपासितायै मोक्षदानाम.........
(४७) ....घर्घरनदीतीरे मार्कण्डेयोपासितायै भोगविद्यानाम.........
(४८) ....कोकनदीतीरे लोमशोपासितायै निर्लेपानाम.........
(४९) ....लौहित्यनदीतीरे और्वोपासितायै निरिन्धनीनाम.........
(५०) ....अलकनन्दानदीतीरे उत्तङ्कोपासितायै मानसीनाम.........
(५१) ....गङ्गानदीतीरे याज्ञवल्क्योपासितायै सर्वज्ञानाम.........

इति नद्यृषिन्यासः ।

४. षोढान्यासान्तर्गतः अस्त्रभैरवन्यासः ।

(१) क्षह्म्लव्य्रऊं जरक्रीं चरक्ष्लहमह्रूं क्षरह्रीं मक्ष्लहमयब्रूं फ्रें क्ष्लह्रसक्रूईं खफ्रें ह्लक्षकमब्रूं हसफ्रें क्लक्षह्रब्रमयऊं हसखफ्रें तफरक्षम्लह्रौं क्षरह्रूं जलहक्षछपग्रहसखफ्रीं × (चाकोरबीजं ?) ह्मक्षब्रलखफ्रऊं × (अघोषणाबीजम् ?) खफलक्षह्महकब्रूं × (खटीबीजम् ?) रक्षलह्मसहकब्रूं हसखफ्रूं ब्राह्मास्त्रेण विद्युज्जिह्वासुरघातिन्यै क्रोधभैरवसुरतरसलोलुपायै भैरवीरूपायै गुह्यकाल्यै ह्रीं श्रीं ओं खफ्रें हसखफ्रें रहक्षमलवरयूं रक्ष्रीं जरक्रीं स्त्रीं छ्रीं हूं खफ्रें ठ्रीं भ्रीं नमः श्मशानवासिन्यै ह्रीं ह्रीं छ्रीं छ्रीं हूं हूं स्त्रीं स्त्रीं फ्रें फ्रें फट् फट् फट् नमः नमः नमः स्वाहा स्वाहा स्वाहा ।

अग्रे सर्वत्र समानम्, केवलमस्त्रविशेषणम्, असुरनाम भैरवनाम च परिवर्तनीयं वर्तते । अतएव तन्मात्रस्य निर्देशोऽधस्ताद् विधीयते—

(२) नारायणास्त्रेण मुण्डासुर..............श्मशानभैरव............
(३) प्राजापत्यास्त्रेण रुर्वसुर................कापालीभैरव............
(४) ऐन्द्रास्त्रेण खट्वाङ्गासुर.............कालभैरव............
(५) वैष्णवास्त्रेण अञ्जनासुर.............कालान्तकभैरव............
(६) कम्पनास्त्रेण दुर्गासुर.............रुरुभैरव............
(७) वायव्यास्त्रेण विप्रचित्तासुर.............महाघोरभैरव............
(८) वारुणास्त्रेण महिषासुर.............घोरतरभैरव............
(९) याम्यास्त्रेण कपोतरोमासुर.............संहारभैरव............

(१०) कालास्त्रेण मतङ्गासुर..............चण्डभैरव............
(११) आग्नेयास्त्रेण हयग्रीवासुर..............हुङ्कारभैरव............
(१२) भौतास्त्रेण वैरन्धमासुर..............नादिभैरव............
(१३) कौबेरास्त्रेण चण्डमुण्डासुर..............उन्मत्तभैरव............
(१४) पार्जन्यास्त्रेण पातालोदरासुर..............आनन्दभैरव............
(१५) वैद्युतास्त्रेण गगनशिरासुर..............भूताधिपभैरव............
(१६) पार्वतास्त्रेण पतङ्गवेत्रासुर..............कृतान्तभैरव............
(१७) पाषाणास्त्रेण मकरास्यासुर..............असिताङ्गभैरव............
(१८) नागास्त्रेण रक्तबीजासुर..............कालाग्निभैरव............
(१९) त्वाष्ट्रास्त्रेण निकुम्भासुर..............उग्रायुधभैरव............
(२०) सौपर्णास्त्रेण पुञ्जमाल्यसुर..............वज्राङ्गभैरव............
(२१) तामसास्त्रेण महाऽहन्वसुर..............करालभैरव............
(२२) तैमिरास्त्रेण दर्दुरासुर..............विकरालभैरव............
(२३) गान्धर्वास्त्रेण दुर्जयासुर..............महाकालभैरव............
(२४) प्रस्वापनास्त्रेण हिरण्यकेशासुर.........कल्पान्तभैरव............
(२५) पैशाचास्त्रेण प्रमाथ्यसुर..............विश्वान्तकभैरव............
(२६) जृम्भणास्त्रेण मेघमाल्यसुर..............प्रचण्डभैरव............
(२७) मातङ्गास्त्रेण निशुम्भासुर..............भगमालीभैरव............
(२८) ऐषीकास्त्रेण प्रकम्पनासुर..............उग्रभैरव............
(२९) औदुम्बरास्त्रेण वातवेगासुर..............भूतनाथभैरव............
(३०) राक्षसास्त्रेण वज्रदंष्ट्रासुर..............सुभद्रभैरव............
(३१) भारुण्डास्त्रेण क्राथासुर..............सम्पत्प्रदभैरव............
(३२) ब्रह्मशिरोऽस्त्रेण वज्राङ्गासुर..............मृत्युभैरव............
(३३) गुह्यकास्त्रेण चन्द्रार्यसुर..............यमान्तकभैरव............
(३४) कालकूटास्त्रेण नीलासुर..............उल्कामुखभैरव............
(३५) वेतालास्त्रेण शैलजङ्घासुर..............एकपादभैरव............
(३६) वैनायकास्त्रेण वज्रमुष्ट्यासुर..............प्रेतभैरव............
(३७) स्कान्दास्त्रेण यज्ञद्रुडसुर..............मुण्डमालीभैरव............
(३८) प्रामथास्त्रेण युगंपचासुर..............वटुकभैरव............
(३९) उत्पातास्त्रेण जम्बुकासुर..............क्षेत्रपालभैरव............
(४०) कूष्माण्डास्त्रेण तालध्वजासुर..............दिगम्बरभैरव............
(४१) भ्रामकास्त्रेण कुम्भमाल्यासुर..............वज्रमुष्टिभैरव............
(४२) गालनास्त्रेण सर्पशिरासुर..............घोरनादभैरव............
(४३) सम्मोहनास्त्रेण पातालकेत्वसुर..............चण्डोग्रभैरव............
(४४) बलास्त्रेण चर्चिकासुर..............सन्तापनभैरव............

(४५) अतिबलास्त्रेण कुण्डकासुर..............क्षोभणभैरव............
(४६) निमीलनास्त्रेण असिलोमासुर..............ज्वालाभैरव............
(४७) अचेतनास्त्रेण तपनासुर..............संवर्तभैरव............
(४८) उन्मादास्त्रेण तुण्डरीकासुर..............वीरभद्रभैरव............
(४९) अपस्मारास्त्रेण अशनिपर्वासुर..............त्रिकालाग्निभैरव............
(५०) मारणास्त्रेण यज्ञकोपासुर..............शोषणभैरव............
(५१) पाशुपतास्त्रेण प्रलयरम्भासुर..............त्रिपुरान्तकभैरव............

इत्यस्त्रभैरवन्यासः ।

५. **यज्ञमहाराजन्यासः**

(१) ओं ह्रीं छ्रीं ओं श्रीं स्त्रीं ओं क्लीं हूं ओं फ्रें ख्फ्रें ओं हसफ्रें हसखफ्रें ओं क्रों क्रीं अग्निष्टोमयज्ञे प्रियव्रतराजाराधितायै जयलक्ष्मीनामधारिण्यै सप्तद्वीपवतीपृथ्वीदिग्विजयरूपफलदायिन्यै नक्षत्रनरमुण्डमालालङ्कृतायै चतुर्दशभुवनसेवितपादपद्मायै भगवत्यै गुह्यकाल्यै रह्रीं हसखफ्रें ख्फ्रें ओं ह्रीं श्रीं फ्रें सिद्धिकरालि छ्रीं क्लीं फ्रें नमः फ्रें स्त्रीं हूं छ्रीं ह्रीं फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

एवं सर्वत्रादौ उक्ताष्टादश बीजानि देयानि, अन्ते च फलदायिन्यै इत्यारभ्य स्वाहान्तं देयम् । मध्ये परिवर्तनं अपेक्षितं तन्मात्रमुद्धृयते—

(२) ....अत्यग्निष्टोमयज्ञे नहुषराजाराधितायै ऐश्वर्यलक्ष्मीनामधारिण्यै सुरपतित्वरूप.............

(३) ....वाजपेययज्ञे अम्बरीषराजाराधितायै सत्त्वलक्ष्मीनामधारिण्यै परमनिर्वृतिरूप.............

(४) ....षोडशीयज्ञे दिलीपराजाराधितायै ज्ञानलक्ष्मीनामधारिण्यै नागलोकविजयरूप.............

(५) ....पुण्डरीकयज्ञे कार्तवीर्यार्जुनराजाराधितायै धर्मलक्ष्मीनामधारिण्यै पञ्चाशीतिसहस्रवर्षजीवनरूप.............

(६) ....अश्वमेधयज्ञे मरुत्तराजाराधितायै क्रियालक्ष्मीनामधारिण्यै दशदिक्पालवशीकरणरूप.............

(७) ....राजसूययज्ञे हरिश्चन्द्रराजाराधितायै बुद्धिलक्ष्मीनामधारिण्यै सकलदेवताक्रियमाणस्तुतिरूप.............

(८) ....बहुसुवर्णयज्ञे नलराजाराधितायै मोक्षलक्ष्मीनामधारिण्यै परमसौन्दर्यरूप.............

(९) ....गोसवयज्ञे दिवोदासराजाराधितायै योगलक्ष्मीनामधारिण्यै निःसपत्निराज्यसम्राट्रूप.............

(१०) ....महाव्रतयज्ञे भरतराजाराधितायै सिद्धिलक्ष्मीनामधारिण्यै चक्रवर्तिरूप..............

(११) ....विश्वजितयज्ञे भद्रश्रेण्यराजाराधितायै वृद्धिलक्ष्मीनामधारिण्यै सप्तपातालविजयरूप..............

(१२) ....प्राजापत्ययज्ञे सुहोत्रराजाराधितायै विद्यालक्ष्मीनामधारिण्यै सरस्वतीदासीत्वरूप..............

(१३) ....अश्वक्रान्तयज्ञे शशबिन्दुराजाराधितायै सन्तानलक्ष्मीनामधारिण्यै शतसहस्रपत्नीनियुतकन्याकोटिसुतरूप..............

(१४) ....रथक्रान्तयज्ञे बृहदश्वराजाराधितायै जीवलक्ष्मीनामधारिण्यै लक्षाधिकाशीतिसहस्रवर्षजीवनरूप..............

(१५) ....विश्वक्रान्तयज्ञे पौरवराजाराधितायै भोगलक्ष्मीनामधारिण्यै उर्वशीरम्भामेनकातिलोत्तमाद्विषष्ट्यप्सर:सम्भोगरूप..............

(१६) ....सूर्यक्रान्तयज्ञे इक्ष्वाकुराजाराधितायै धर्मलक्ष्मीनामधारिण्यै द्विसप्ततिशाखावेदधारणरूप..............

(१७) ....गजाक्रान्तयज्ञे ययातिराजाराधितायै अर्थलक्ष्मीनामधारिण्यै अष्टादशलक्षमहर्षिप्रत्यहार्थभोजनरूप..............

(१८) ....बलभिद्यज्ञे इन्द्रद्युम्नराजाराधितायै उदयलक्ष्मीनामधारिण्यै महर्लोकपर्यन्तरथगमनरूप..............

(१९) ....नागयज्ञयज्ञे सर्यातिराजाराधितायै विभूतिलक्ष्मीनामधारिण्यै समरविजयपूर्वककालकेयदितिजकन्याहरणरूप..............

(२०) ....सावित्रीयज्ञे शिविराजाराधितायै दयालक्ष्मीनामधारिण्यै स्वमांसोत्कर्तनधर्मरूप..............

(२१) ....अर्धसावित्रीयज्ञे शत्रुञ्जयराजाराधितायै क्रोधलक्ष्मीनामधारिण्यै गोमुखदैत्यषट्त्रिंशदक्षौहिणीभस्मीकरणरूप..............

(२२) ....सर्वतोभद्रयज्ञे ऋतपर्णराजाराधितायै राज्यलक्ष्मीनामधारिण्यै अप्रतिहताज्ञत्वरूप..............

(२३) ....आदित्यामययज्ञे रामचन्द्रराजाराधितायै नयलक्ष्मीनामधारिण्यै राजत्वरूप..............

(२४) ....गवामययज्ञे विदूरथराजाराधितायै आज्ञालक्ष्मीनामधारिण्यै वासुकितो दण्डग्रहणरूप..............

(२५) ....सर्पामययज्ञे मान्धाताराजाराधितायै धनलक्ष्मीनामधारिण्यै वासवोपकारणकरणरूप..............

(२६) ....कोण्डपामययज्ञे भगीरथराजाराधितायै अभयलक्ष्मीनामधारिण्यै सेवकादिखेचरसिद्धित्वरूप..............

(२७) ....अग्निचिद्यज्ञे युवनाश्वराजाराधितायै वरलक्ष्मीनामधारिण्यै लक्षमत्तहस्तिबलरूप..............

(२८) ....द्वादशाहयज्ञे रन्तिदेवराजाराधितायै प्रतापलक्ष्मीनामधारिण्यै चतुर्विधार्थसामग्रीरूप..............

(२९) ....उपांशुयज्ञे आग्नीध्रराजाराधितायै शक्तिलक्ष्मीनामधारिण्यै स्वेच्छाचारित्वरूप..............

(३०) ....अश्वप्रतिग्रहयज्ञे पुरूरवाराजाराधितायै निर्वाणलक्ष्मीनामधारिण्यै अनायासत्रिलोकीरक्षणरूप..............

(३१) ....बर्हिरथयज्ञे गयराजाराधितायै परापरलक्ष्मीनामधारिण्यै स्वेच्छारूपित्वरूप..............

(३२) ....अभ्युदययज्ञे अलर्कराजाराधितायै अद्वैतलक्ष्मीनामधारिण्यै महायोगसिद्धिरूप..............

(३३) ....सर्वस्वदक्षिणयज्ञे पृथुराजाराधितायै इच्छालक्ष्मीनामधारिण्यै चिरजीवित्वरूप..............

(३४) ....दीक्षायज्ञे रघुराजाराधितायै आवेशलक्ष्मीनामधारिण्यै चतुर्विधभूतसङ्घवृत्तिकल्पनाकुवेरजयरूप..............

(३५) ....सोमयज्ञे प्रतर्दनराजाराधितायै उत्साहलक्ष्मीनामधारिण्यै पुरन्दरसख्यरूप..............

(३६) ....स्वाहाकारयज्ञे सगरराजाराधितायै अमृतलक्ष्मीनामधारिण्यै रिपुविरूपकरणरूप..............

(३७) ....तनूनपात्यज्ञे हर्यराजाराधितायै तत्त्वलक्ष्मीनामधारिण्यै स्वेच्छाबलसृष्टिरूप..............

(३८) ....गोदोहनयज्ञे अजमीढराजाराधितायै मोहलक्ष्मीनामधारिण्यै प्रसभवासुकिकन्यापरिणयरूप..............

(३९) ....नरमेधयज्ञे पुरुकुत्सराजाराधितायै महालक्ष्मीनामधारिण्यै वरुणनिरुद्धजयरूप..............

(४०) ....ज्योतिष्टोमयज्ञे कटुराजाराधितायै काललक्ष्मीनामधारिण्यै वासववासाध्यदैत्यजयरूप..............

(४१) ....दर्शयज्ञे अङ्गराजराजाराधितायै उद्धारलक्ष्मीनामधारिण्यै दिक्पालनिरोधसङ्कटतरणरूप..............

(४२) ....पौर्णमासयज्ञे बलाकाश्वराजाराधितायै कीर्तिलक्ष्मीनामधारिण्यै शच्युद्धाररूप..............

(४३) ....अतिरात्रयज्ञे अयुतायुराजाराधितायै वीरलक्ष्मीनामधारिण्यै निकुम्भदैत्यगर्वभञ्जनरूप..............

(४४) ....सौभरयज्ञे मतिनावराजाराधितायै आनन्दलक्ष्मीनामधारिण्यै अजातशत्रुतारूप..............

(४५) ....सौभाग्यकृद्यज्ञे जीमूतवाहनराजाराधितायै सौभाग्यलक्ष्मीनामधारिण्यै त्रिलोकीप्रार्थ्यमानवस्तुवितरणरूप..............

(४६) ....शान्तिकृद्यज्ञे रम्भराजाराधितायै वश्यलक्ष्मीनामधारिण्यै जगद्वशीकरणरूप..............

(४७) ....सौपर्णयज्ञे नृगराजाराधितायै तपःलक्ष्मीनामधारिण्यै महावदान्यरूप..............

(४८) ....त्रैलोक्यमोहनयज्ञे वीरबाहुराजाराधितायै खड्गलक्ष्मीनामधारिण्यै अतिरथतारूप..............

(४९) ....शङ्खचूडयज्ञे वसुमनाराजाराधितायै उदारलक्ष्मीनामधारिण्यै पूर्वपुरुषोद्धाररूप..............

(५०) ....कन्दर्पबलशातनयज्ञे चित्रायुधराजाराधितायै कान्तिलक्ष्मीनामधारिण्यै सौन्दर्यैकनिधानरूप..............

(५१) ....गजच्छाययज्ञे सप्तसप्तिराजाराधितायै कैवल्यलक्ष्मीनामधारिण्यै सायुज्यमुक्तिरूप..............

इति यज्ञमहाराजन्यासः ।

६. **षोढान्यासान्तर्गतः कल्पसिद्धिन्यासः**

(१) ओं ऐं ओं ह्रीं ओं छ्रीं ओं स्त्रीं ओं फ्रें ओं फ्रें ओं फ्रें ओं हूं तपः-कल्पे ज्वालाकालीमूर्त्यै धर्मानन्दनाथसिद्धसिद्धिदायिन्यै महारात्रिनाम्न्यै भैरवीचामुण्डाशतकोटिपरिवृतायै महाश्मशाननिलयदिगम्बरायै भगवत्यै गुह्यकाल्यै ओं फ्रें सिद्धि हसखफ्रें हसफ्रें ख्फ्रें करालि ख्फ्रें हसखफ्रें ख्फ्रें फ्रें ओं स्वाहा × (अमा ?) ब्लूं क्षूं ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें ञों ञों ञों (?) फट् फट् फट् नमः स्वाहा ।

अधोनिर्दिष्टेषु विशेषमात्रस्योद्धारः क्रियते शेषं पूर्वं पश्चाच्च पूर्ववज्ज्ञेयः।

(२) भव्यकल्पे घोरनादकालीमूर्त्यै ज्ञानानन्दनाथसिद्धसिद्धिदायिन्यै कालरात्रिनाम्न्यै ।

(३) रन्त(न्त)कल्पे उग्रकालीमूर्त्यै वैराग्यानन्दनाथ.........विरूपानाम्न्यै ।

(४) हव्यवाहकल्पे वेतालकालीमूर्त्यै ऐश्वर्यानन्दनाथ......कपालिनीनाम्न्यै ।

(५) क्रतुकल्पे संहारकालीमूर्त्यै अमृतानन्दनाथ.........महोत्सवानाम्न्यै ।

(६) सावित्रकल्पे रौद्रकालीमूर्त्यै विवेकानन्दनाथ.........गुह्यनिद्रानाम्न्यै ।

(७) स्रुवकल्पे कृतान्तकालीमूर्त्यै पूर्णानन्दनाथ.......दोर्दण्डखण्डिनीनाम्न्यै।

(८) कुशिककल्पे भीमकालीमूर्त्यै क्रियानन्दनाथ.........वज्रिणीनाम्न्यै ।

(९) गान्धारकल्पे चण्डकालीमूर्त्यै प्रचण्डानन्दनाथ.........शूलिनीनाम्न्यै ।

(१०) ऋषभकल्पे धनकालीमूर्त्यै भैरवानन्दनाथ.........विमलानाम्न्यै ।
(११) मार्जालीयकल्पे भद्रकालीमूर्त्यै क्रोधानन्दनाथ.........महोदरीनाम्न्यै ।
(१२) मध्यमकल्पे श्मशानकालीमूर्त्यै परमतत्त्वानन्दनाथ..कुरुकुल्लानाम्न्यै ।
(१३) वैराजकल्पे कामकलाकालीमूर्त्यै विजयानन्दनाथ.........कौमुदीनाम्न्यै ।
(१४) निषादकल्पे सिद्धिकालीमूर्त्यै कैवल्यानन्दनाथ.........कौलिनीनाम्न्यै ।
(१५) मेघवाहनकल्पे दक्षिणकालीमूर्त्यै खेचरानन्दनाथ.....कालसुन्दरीनाम्न्यै ।
(१६) पञ्चमकल्पे घोरकालीमूर्त्यै निर्वाणानन्दनाथ.........बलाकिनीनाम्न्यै ।
(१७) चिन्तककल्पे सन्त्रासकालीमूर्त्यै मोक्षानन्दनाथ.........फैरवीनाम्न्यै ।
(१८) आकृतिकल्पे प्रेतकालीमूर्त्यै सिद्धा(द्धया)नन्दनाथ......डमरुकानाम्न्यै ।
(१९) विज्ञानकल्पे प्रलयकालीमूर्त्यै मूकर मू(भू)चरानन्दनाथ..........
घटोदरीनाम्न्यै ।
(२०) बृहत्कल्पे विभूतिकालीमूर्त्यै पातालानन्दनाथ.........भीमदंष्ट्रानाम्न्यै ।
(२१) रथन्तरकल्पे जयकालीमूर्त्यै सुन्दरानन्दनाथ.........भगमालिनीनाम्न्यै ।
(२२) रक्तकल्पे भोगकालीमूर्त्यै मोहनानन्दनाथ.........मेनानाम्न्यै ।
(२३) पीतवासःकल्पे कल्पान्तकालीमूर्त्यै निरञ्जनानन्दनाथ................
तारावतीनाम्न्यै ।
(२४) विश्वरूपकल्पे मन्थानकालीमूर्त्यै अरुणानन्दनाथ.......भानुमतीनाम्न्यै ।
(२५) ऋष्यन्तरकल्पे दुर्जयकालीमूर्त्यै भास्करानन्दनाथ.......एकानङ्गानाम्न्यै ।
(२६) श्वेतकल्पे कालकालीमूर्त्यै जगन्मित्रानन्दनाथ.........केकराक्षीनाम्न्यै ।
(२७) नीललोहितकल्पे वज्रकालीगूर्त्यै प्रतापानन्दनाथ........संहारिणीनाम्न्यै ।
(२८) वामदेवकल्पे विद्याकालीमूर्त्यै पौरुषानन्दनाथ.........ऐन्द्राक्षीनाम्न्यै ।
(२९) रौरवकल्पे शक्तिकालीमूर्त्यै कमलानन्दनाथ.........प्रभञ्जनानाम्न्यै ।
(३०) प्राणकल्पे विश्वरूपकालीमूर्त्यै प्रमोदानन्दनाथ.........भ्रामरीनाम्न्यै ।
(३१) सद्योजातकल्पे मायाकालीमूर्त्यै विक्रमानन्दनाथ.......प्रचण्डाक्षीनाम्न्यै ।
(३२) तत्पुरुषकल्पे महाकालीमूर्त्यै हर्षानन्दनाथ.........अपराजितानाम्न्यै ।
(३३) अघोरकल्पे कुलकालीमूर्त्यै उग्रानन्दनाथ.........विद्युत्केशीनाम्न्यै ।
(३४) ईशानकल्पे नादकालीमूर्त्यै विचित्रानन्दनाथ.........महामारीनाम्न्यै ।
(३५) ज्ञानकल्पे मुण्डकालीमूर्त्यै उदयानन्दनाथ.........शोषिणीनाम्न्यै ।
(३६) सारस्वतकल्पे धूमकालीमूर्त्यै उत्साहानन्दनाथ.........वज्रनखीनाम्न्यै ।
(३७) उदानकल्पे आनन्दकालीमूर्त्यै करुणानन्दनाथ.......सूचीतुण्डीनाम्न्यै ।
(३८) गारुडकल्पे तिग्मकालीमूर्त्यै भीमानन्दनाथ.........जृम्भकानाम्न्यै ।
(३९) कूर्मकल्पे महारात्रिकालीमूर्त्यै भावानन्दनाथ.........तीव्रानाम्न्यै ।
(४०) नारसिंहकल्पे संग्रामकालीमूर्त्यै परमानन्दनाथ.........प्रस्वापनीनाम्न्यै ।
(४१) वामनकल्पे शवकालीमूर्त्यै अव्ययानन्दनाथ.........ज्वालिनीनाम्न्यै ।
(४२) आग्नेयकल्पे नग्नकालीमूर्त्यै योगानन्दनाथ.........चण्डघण्टानाम्न्यै ।

(४३) सोमकल्पे रुधिरकालीमूर्त्यै शब्दानन्दनाथ.........लम्बोदरीनाम्न्यै ।

(४४) मानवकल्पे कङ्कालकालीमूर्त्यै प्रमेयानन्दनाथ......अग्निमर्दिनीनाम्न्यै ।

(४५) लक्ष्मीकल्पे भयङ्करकालीमूर्त्यै मङ्गलानन्दनाथ.........एकदन्तानाम्न्यै ।

(४६) वैकुण्ठकल्पे फेरुकालीमूर्त्यै ईश्वरानन्दनाथ.........उल्कामुखीनाम्न्यै ।

(४७) गौरीकल्पे विकटकालीमूर्त्यै कपिलानन्दनाथ.........सूर्यजिह्वानाम्न्यै ।

(४८) माहेश्वरकल्पे करालकालीमूर्त्यै माधवानन्दनाथ.........घोणकीनाम्न्यै ।

(४९) पितृकल्पे विकरालकालीमूर्त्यै रौद्रानन्दनाथ.........पूतनानाम्न्यै ।

(५०) पद्मकल्पे घोरघोरतरकालीमूर्त्यै दयानन्दनाथ.........वेगमालानाम्न्यै ।

(५१) श्वेतवाराहकल्पे गुह्यकालीमूर्त्यै प्रसन्नानन्दनाथ....गुह्यकालीनाम्न्यै ।

इति कल्पसिद्धिन्यासः ।

* * *

परिशिष्टम् (४)

बीजकोषः

महाकालसंहितायां व्यवहृतबीजानां सूची

अङ्कुरः—क्रह्रां
अङ्कुशः—क्रों
अंशुः—ह्रैं
अंहः—ह्भ्रें
अक्षः—रह्रूं
अक्षरः—रख्रैं
अखण्डः—रज्रूं
अग्र—सफहलक्षों
अघः—ह्ब्रूं
अजः—रग्रों
अजिरः—क्ष्लक्ष्रें
अण्डः—रड्रें
अतीतः—ख्रौं
अत्रिः—रफ्रें
अद्वयः—रत्रों
अद्वैतः—स्त्रों
अध्वरः—द्रौं
अध्वा—हां
अनधः—ख्रस्त्रूं
अनन्तः—ख्रैं
अनपायः—फ्लक्रीं
अनाहतः—हसखफ्रां
अनुकृतिः—ह्थ्रीं
अनुदात्तः—रग्रीं
अन्तः—क्रख्रैं
अन्तकः—क्ष्लौः
अन्नकम्—क्रख्रें
अपराजिता—स्त्रं
अपरान्तकः—खफ्रक्लूं
अपायः—सहलक्रैं
अमरः—य्लैं
अमा—ब्लूं
अमृतम्—ग्लूं
अयः—रक्ष्रां
अरिष्टः—ज्रूं
अरुणः—छ्रं
अर्घः—ह्थ्रीं
अर्चा—रत्रैं
अर्चिः—रत्रां
अर्थः—रठ्रों
अर्धचन्द्रकः—खफछ्रैं
अलक्ष्यः—रख्रूं
अवधः—स्फ्रें
अवस्था—क्ष्रज्लों
अवारः—छ्रक्रूं
अविद्या—रढ्रैं
असिः—ज्रां
अस्त्रम्—फट्
आक्रोशः—ज्रब्रूं
आख्यातः—रझ्रें
आगमः—ओं
आङ्गिरसः—भ्यौं
आज्ञा—भ्लूं
आतङ्कः—क्लख्फ्रीं
आत्मा—रथ्रां
आदित्यः—सः
आधारः—म्रैं
आनन्दः—भ्रूं
आपः—फ्रथ्रूं
आमोदकः—क्ष्लक्ष्रीं
आम्नायातीतम्—फ्रखभ्रैं
आयुधम्—रस्त्रें
आराधनम्—सहलक्रां
आर्तः—रद्रों
आर्या—ब्रच्रें
आलम्बः—ब्रच्रैं
आवेशः—ब्रच्रां
आवेशः—ग्लैं
आषाढः—हफ्रौं
आसुरम्—ध्रीं
इध्मः—क्ष्रस्त्रां
इन्दिरा—श्रखफ्रां
इलां—ह्भ्रूं
इलिकः—ब्रप्लां
इष्टिः—रश्रीं
ईरिणी—रख्रध्रें
ईशः—छ्रक्रां
ईश्वरः—रप्रौं
ईर्ष्या—ह्भ्रीं
ईहा—म्लां
उक्षा—रढ्रें

उग्रः—ढ्रीं
उड्डियानम्—क्ष्रफ्रह्लां
उड्डीशः—क्ष्रज्लूं
उत्कोचिनी—रजझ्रक्ष्रौं
उत्क्रामः—फ्लक्रूं
उत्तमः—रध्रें
उत्तरः—रघ्रीं
उत्तंसः—रश्रैं
उत्तानम्—स्त्रखफ्रौं
उत्सर्गः—क्ष्रफ्रह्लौं
उदात्त—रग्रैं
उदारः—भ्लैं
उद्धारः—भ्लां
उद्भिद्—फ्रथ्रीं
उन्माथः—रड्रीं
उन्मादः—रव्रौं
उपलः—ह्लभ्रां
उपसर्गः—छ्रहभ्रूं
उरसिकः—ख्रस्त्रां
उलूकः—ह्लक्रैं
उल्का—रक्रां
उल्मुकः—रण्रैं
उल्लोप्यम्—ह्लग्लूं
उल्लोलः—रव्रैं
उषरः—ख्लफ्रौं
ऊच्चशिखरः—ह्लभ्लां
ऋक्षं—क्रप्रों
ऋणम्—क्रप्रैं
ऋतङ्क—ग्रक्रूं
ऋद्धिः—ल्रीं
ऋषभः—स्त्रैं
ऋष्टिः—कहलश्रैं
एषणा—क्रख्रीं
ऐन्द्रः—फहलक्षों
ओजः—स्त्रं
ओजस्वी—क्ष्लक्ष्रैं
ओषधी—प्लीं
औदुम्बरः—म्रीं
औपदेयः—खफ्रछ्रां
औपह्वरः—छ्ररक्षह्लैं
ककुत्—रफ्रैं
कङ्कालः—रह्लीं
कटङ्कटा—हसखफ्रः
कणः—क्ष्लप्रौं
कणा—व्लछ्रां
कण्ठीरवः—ख्रस्त्रौं
करः—हलक्रूं
करणम्—ख्लफ्रैं
करभिः—प्लैं
कराटी—ग्लव्लूं
कराली—हसखफ्रौं
करुणः—रप्रों
कर्णिका—क्ष्र्ह्लीं
कर्णिका—छ्ररक्षह्लीं
कर्तृ—रम्रीं
कर्त्रिकम्—रम्रीं
कलः—रध्रैं
कलङ्कः—स्हैः
कलहः—क्रह्लौं
कला—-ई
कलावती—ह्लछ्रां
कल्कः—रट्रां
कल्पः—क्ष्रां
कल्याणम्—रथ्रैं
कबन्धः—ज्रां
कवलम्—क्रप्रें
काकः—रच्रैं
काकिनी—फ्रीं
काकीमुखः—रध्रौं
कापिलः—रण्रों
कापालम्—थ्रीं
कामः—क्लीं
कामकला—क्ष्रस्त्रैं
कारकः—हलक्रें
कार्पटः—ख्ब्रें
कालः—जूं
कालरात्रिः—ख्फ्रौं
काली—क्रीं
काष्ठा—ण्रम्लों
किञ्जल्कः—क्ष्र ब्रों
किणः—व्लछ्रीं
(?)किमाविनी—हफ्रां
(विभावनी)
किंपुरुषः—स्फ्रौं
कीर्तिः—ल्रां
कीलः—रठ्रैं
कीलालः—रप्रें
कुक्कुटः—रक्रौं
कुञ्चिका—ख्रस्त्रैं
कुटिला—रक्षफ्रछ्रूं
कुठारः—रम्रां
कुडुक्कः—ग्लब्लीं
कुण्डम्—रक्ष्रूं
कुण्डः—कहलश्रीं
कुन्तः—कहलश्रौं
कुब्जकः—रज्रौं
कुब्जिका—ख्रस्त्रैं
कुमारः—ह्लूः
कुमारी—स्त्रौं
कुम्भः—ग्लीं
कुम्भकः—क्षीं
कुलम्—ज्लैं
कुलमुद्रा—क्रह्लैं
कुलाङ्गना—ह्लीं
कुलिकः—स्ह्लौः

कुशः—ह्लक्षम्लीं
कुशिकः—रह्लछ्ररक्षह्लैं
कुहकः—स्त्रें
कुहिका—क्रश्रूं
कूटः—ण्रम्लैं
कूर्चः—हूं
कूर्चिका—क्ष्रस्त्रूं
कूर्मः—घ्रीं
कूर्मः—व्रीं
कूष्माण्डी—क्रौं
कृकरः—तूं
कृतिः—खफ्रभ्रां
कृत्या—हस्खफ्रैं
कृष्टिः—क्षस्फ्रौं
केकराक्षी—खफ्रैं
केतुः—फ्रस्त्रूं
केशः—क्रां
केशर—फ्रां
केशव—क्लीं
कैकरम्—श्रूं
कैतकः(व)—क्लखफ्रां
कोटिः—रफलां
कोदण्डः—लक्षां
कोरकः—भ्रां
कोरङ्गी—क्ष्रस्त्रौं
कोशः—हसखफ्रीं
कोष्ठः—ह्लस्त्रों
कौमुदी—श्लौं
कौलः—रीं
कौलबीजम्—फ्रखभ्रें
कौलशिलम्—क्रह्लां
कौलिकः—रद्रैं
कौलुञ्चः—छ्रखफ्रीं
क्रकचः—ज्रीं
क्रमः—भ्रीं
क्रिया—सहलौं
क्रूरः—रट्रैं
क्षान्तिः—ज्रूं
क्षुद्रः—ग्लखैं
क्षुधा—म्लीं
क्षुरप्रः—खफछ्रौं
क्षेत्रपालः—क्षौं
क्ष्वेडः—चफलकों
क्षोभणः—रस्त्रों
खट्वाङ्गः—रभ्रैं
खड्गः—ज्रां
खड्गः—रम्रैं
खण्डकः—फ्रस्त्रीं
खरः—ख्लफ्रें
खर्वः—रभ्रों
खलः—रक्रैं
खेचरी--ख्रौं
खेटः—ल्यूं
खोटः—क्ष्रस्त्रैं
(?) गः—चफलकां
गजा—ब्रप्लें
गणः—ब्लछ्रें
गणेशः—गं
गदा—क्ष्रस्त्रैं
गन्धर्वः—ब्जैं
गर्भः—रक्ष्रैं
गर्हा—ब्रच्रूं
गायत्री—ओं
गारुडः—क्रौं
गालः—जक्रैं
गुणः—ब्लछ्रूं
गुप्ताचारः—ह्लश्रूं
गुरुः—हलक्रौं
गुलः—क्ष्रफ्रह्लें
गुह्यः—ब्रच्रीं
गुह्यकपाटः—क्ष्रक्लां
गुह्यखेचरी—ह्लश्रौं
गुह्या—क्ष्लप्रैं
गूढः—क्लक्ष्रैं
गूढः—रठ्रें
गोकर्णम्—थ्रूं
गोत्रः—रख्रो
गोष्ठम्—चफलकूं
गोष्ठी—ह्लस्त्रें
गोस्तनः—खफछ्रं
गौः—ह्लूं
गौरी—क्रः
ग्रहः—खफ्रभ्रूं
ग्रहः—श्रह्लौं
ग्रावा—फ्रम्रग्लैं
ग्राहः—खफ्रभ्रीं
ग्लहः—रभ्रैं
घटी—रक्षफ्रछ्रौं
घण्टा—रफ्लीं
घण्टिका—फ्रम्रग्लऔं
घोणकी—डूं
घोषः—स्त्रां
घ्राणम्—चूं
चक्रम्—भ्रीं
चक्रतुम्बी—क्रह्लौं
चञ्चलम्—क्रखूं
चञ्चला—ह्लभ्रों
चञ्चुः—रस्फ्रों
चण्डः—फ्रों
चण्डिनः—ह्लभ्लीं
चण्डी—रक्रें
चतुरस्रकम्—खफ्रह्लूं
चतुष्पथः—ख्लफ्रों
चन्द्रः—श्रह्लूं
चयनम्—छ्रहभ्रों

चरमः—रठ्रूं
चर्चा—रघ्रें
चर्पटम्—रजझ्रक्ष्रीं
चर्म—चैं
चाक्रिकम्—क्लह्लीं
चामरः—खफ्रक्षूं
चामुण्डा—क्रैं
चारुः—ज्रैं
चिता—रफ्लैं
चितिः—क्रख्रां
चित्रम्—ज्लौं
चुलिकः—ह्लश्रां
चूडामणिः—रझ्रीं
चूडामणि—रक्रीं
चैतन्यम्—ऐं
छटा—रझ्रौं
छत्रम्—रें
छद्मः—रख्रध्रां
छन्दः—क्रफ्रैं
छन्दः—फ्रैं
छिप्पिः—फ्रथ्रें
जगती—च्रां
जङ्गमः—रभ्रूं
जटा—च्रूं
जठरः—ग्लठ्रीं
जन्या—ग्लख्रां
जम्बुकः—रच्रूं
जम्भः—रफ्रीं
जम्भः—स्त्रखफ्रैं
जयन्ती—छ्रों
जया—क्रं
जरा—रक्रूं
जालम्—ब्रफ्रथ्रौं
जीवनी—फहलक्षौं
(?) जूरः—क्रफ्रीं

जैमनः—ह्लफ्रीं
ज्या—हलक्षूं
ज्येष्ठः—द्रूं
ज्योतिः—रच्रें
ज्योत्स्ना—त्रख्रौं
ज्वाला—रट्री
झङ्कारः—क्ष्रफ्रह्लूं
झंझा—क्रां
टङ्कः—स्त्रीं
डमरुः—खफछ्रां
डाकिनी—खफ्रें
डामरम्—ण्रीं
तत्त्वम्—स्ह्लें
तत्त्वार्णवः—फ्रखम्रौं
तन्तुः—ह्लक्षम्लूं
तन्त्रः—प्रूं
तन्त्रा—रक्षफ्रछ्रीं
तन्द्रा—क्लखफ्रां
तपः—क्ष्रूः
तपनः—खफ्रभ्रैं
तरलः—रद्रां
तर्जनः—रत्रीं
तर्जनी—हसखफ्रें
तर्पणम्—ग्लठ्रां
तलः—रझ्रों
ताटङ्कः—रस्त्रीं
ताण्डवम्—क्रौं
तापः—खफ्रभ्रें
तापिनी—म्रां
तारः—ओं
तारकः—रछ्रौं
तारावर्तः—श्रह्लैं
तिथिः—क्ष्रव्रौं
तीक्ष्णा—घ्रें
तीर्थम्—फ्रथ्रैं

तुङ्गः—रज्रीं
तुण्डा—खस्त्रें
तुरीया—फ्रम्रग्लूं
तुला—रग्रां
तुला—कहलश्रों
तूणः—सफहलक्षूं
तृप्तिः—ग्लख्रों
तेजनम्—ब्रप्लूं
तैजसम्—द्रीं
तोमरः—क्षरस्त्रों
तोरणः—रण्रीं
त्रपा—ह्लीं
त्रयीमयम्—क्रह्लैं
त्रासः—फ्लक्रीं
त्रिकुटा—ल्यूं
त्रिदैवः—क्रह्लौं
त्रिदैवतम्—क्रह्लूं
त्रिदैवी—ह्लम्लां
त्रिपुटा—प्लूं
त्रिपुरा—हलक्षौं
त्रिवृत्—थ्रां
त्रिशक्तिः—क्रूं
त्रिशिखा—क्रीं
त्रिस्थानम्—रथ्रें
त्रेता—हसखफ्रैं
त्र्यस्रम्—खफ्रह्लैं
त्वष्टा—व्लां
त्वष्टा—क्रथ्रौं
दक्षिणः—रघ्रों
दक्षिणा—रफ्रें
दण्डः—ह्लां
दस्रः—ब्लीं
दाक्षिकः—खफ्रह्लीं
दानवः—श्रीं
दाहः—ज्रब्रों

दिक्षु—ह्लस्रैं
दिगम्बरः—क्षज्रूं
दीपः—रक्ष्रों
दीप्ता—ऌ्रैं
दुर्घटः—ज्रक्रें
दुर्गा—ब्रफ्रथ्रें
दुष्कृतम्—रह्लछ्ररक्षह्लीं
दुष्टः—क्ष्लप्रें
देवः—रध्रूं
देशः—रझ्रैं
दैवम्—क्ष्रब्रां
द्रवः—फ्रथ्रों
द्रावः—ग्लख्रौं
द्रावणः—ह्भ्रीं
द्वीपः—रफ्रां
धनदा—क्ष्रूं
धन्यः—ह्लग्लीं
धम्मिल्लः—ह्लफ्रौं
धर्मः—क्रैं
धाटी—रब्रूं
धातुः—ण्रम्लीं
धाना—रख्रीं
धारणा—ड्रौं
धूः—ण्रम्लौं
धूमः—छ्रैं
धृतिः—क्ष्रौंः
धेनुः—रस्रैं
ध्यानम्—रस्फ्रों
ध्वजः—रफ्लौं
नक्षत्रम्—ब्लैं
नदः—रछ्रैं
नदी—क्लां
नन्दा—च्रीं
नन्दिनी—ह्लौं
नयः—खस्रूं
नर्म—ह्लभ्लौं
नाकुलम्—त्रीं
नागः—ब्रीं
नादान्तकः—खफ्रक्ष्रीं
नान्दिकः—छ्ररक्षह्लौं
नान्दी—रछ्रां
नाभसः—रत्रीं
नायकः—रत्रों
नारदः—रच्रों
नाराचः—खफछ्रीं
नालीकः—क्षस्रीं
निकारः—सहलक्रौं
नित्यः—श्लीं
निद्रा—छ्रां
निधिः—हः
निन्दा—क्ष्लप्रों
निगुक्तिः—ह्लफ्रां
निरञ्जनम्—स्हीं
निर्मलम्—ज्लूं
निर्माणम्—म्लौं
निराकारः—ओं (डों ?)
निर्मोकः—रश्रें
निर्वेशः—फ्लक्रां
निवृत्तिः—छ्रः
निःश्रेणिः—अं
निष्ठा—चफलकैं
निसर्गः—छ्रहभ्रैं
निस्तनः—फ्रम्रग्लां
निस्तारः—क्रफ्रों
निहलः—रम्रौं
नीराजनम्—फ्लक्रैं
नील—रस्रूं
नीला—ज्रौं
नृसिंहः—क्ष्रौं
नेमिः—फ्रूं
नैगमः—रठ्रौं
नैमेयः—हलक्षैं
नैयत्यम्—क्षख्रां अथवा
क्षक्लां
न्यासः—स्रूं
पक्षः—सफहलक्षां
पंक्तिः—रघ्रीं
पट्टः—रढ्रां
पट्टिशः—क्षरस्रं
पणः—ख्लफ्रूं
पतङ्गः—ज्रक्रों
पतनम्—हसफ्रैं
पथ्यम्—फ्रम्रग्लौं
पद्मम्—रह्लछ्ररक्षह्लूं
परन्तपः—भ्लीं
परमा—रद्रौं
परशुः—कहलश्रं
परापरम्—हसखफ्रक्ष्रूं
परिघः—क्षरस्रें
परेष्टि—रश्रां
पवर्गः—क्ष्लप्रां
पविः—घ्रीं
पशुः—हलक्रां
पश्चिमम्—रघ्रौं
पाटलः—स्रखफ्रां
पाठः—क्ष्रफ्रह्लां
पाणिगीतिका—ह्लग्लौं
पातालः—रक्रों
पारः—छ्रक्रीं
पारावारः—छ्रक्रीं
पारीन्द्रः—क्लफ्रैं
पारीन्द्रः—क्लरह्लैं
पाशः—आं
पाषाणम्—ह्लथ्रैं
पिङ्गला—रफ्लूं

पिण्डः—हसखफ्रुं
पिध्वौनः—ह्लखफ्रां
पिनाकः—भ्लौं
पिप्पलम्—स्त्रखफ्रीं
पिशाचिनीः—ठः
पुटः—ग्लख्रों
पुटकः—सफहलक्षौं
पुण्यम्—रज्रें
पुन्नागः—हलक्षों
पुराणः—रठ्रां
पुरुः—रझ्रां
पुरुगः—छ्रक्रूं
पुष्कला—रच्रौं
पुष्टिः—श्लैं
पूतना—फ्यूं
पूत्यण्डः—क्ष्रस्त्रीं
पूर्णा—छ्रूं
पूर्तकः—रश्रूं
पूर्वः—रघ्रां
पृथुः—रछ्रूं
पृश्निः—ग्लख्रें
पोषः—ग्लख्रीं
पौष्पम्—ज्लीं
प्रकरी—खफ्रक्लैं
प्रकारः—क्ष्रज्लें
प्रक्षेपः—फ्रक्रौं
प्रचण्डः—श्रों
प्रचण्डा—खफ्रूं
प्रणवः—ओं
प्रतानः—खफ्रह्लैं
प्रतापः—भ्रैं
प्रतिमानम्—ब्लछ्रों
प्रतिष्ठा—श्रां
प्रतीच्छा (क्षा)—क्रख्रों
प्रत्यङ्—ह्लफ्रें
प्रत्ययः—क्रह्लूं
प्रदेशः—फ्रक्रैं
प्रभञ्जना—खफ्रां
प्रभा--ह्लीं
प्रमादः—वौं
प्रमितिः—क्रफ्रौं
प्रयत्नः—ब्रफ्रथ्रों
प्रलयः—हसफ्रें
प्रलयः—क्लफ्रां
प्रवहः—ज्रक्रौं
प्रवाहः—क्ष्रज्लैं
प्रश्नः—सहलक्रें
प्रहारी—ग्लव्लां
प्राकारः—क्रथ्रीं
प्राग्भवः—रथ्रूं
प्राग्वेशः—रक्ष्रैं
प्राणः—क्लैं
प्रादेशः—फ्लक्रैं
प्रापञ्चः—चफलकीं
प्राशः—क्षरस्त्रौं
प्रासादः—हौं
प्रियः—रच्रां
प्रीतिः—ग्लठ्रैं
प्रेतः—स्हौः
प्रौढः—रट्रूं
फुल्लः—व्रप्लौं
फेत्कारी—हसखफ्रें
फैरवः—स्त्रैं
बला—स्कीः
बलिः—रछ्रीं
(?) बलिका—हस्त्रूं
बाला—क्ष्रस्त्रीं
बिन्दुकः—खफ्रक्लौं
बेधिनी—रम्रों
ब्रह्मकपाल—ह्स्ख्फ्रक्ष्रौं
ब्रह्माण्डम्—रढ्रौं
भगमालिनी—ह्स्ख्फ्रक्ष्रां
भद्रिका—रक्षफ्रछ्रां
भल्लः—खफ्रछ्रें
भव्यः—रख्रें
भस्म—क्षब्लैं
भाजनम्—सहलक्रूं
भानम्—क्ष्रफ्रह्लैं
भानुः—फ्रखभ्रां
भारः—ख्रैं
भारुण्डा—प्रीं
भालः—रढ्रैं
भावः—ह्लखफ्रूं
भावः—रद्रूं
भाषा—ब्रफ्रथ्रूं
भिन्दिपालः—कहलश्रां
भुशुण्डी—क्षरस्त्रूं
भूः—ब्लफ्रस्त्रूं
भूतः—स्फ्रों
भूतिनी—खफ्रीं
भृङ्गारः—रण्रूं
भेदः—ग्लठ्रीं
भैरवी—सौः
भोगः—हसखफ्रीं
भोगमालिनी—हसखफ्रक्ष्रां
भौमः—रण्रां
भौवः—सफहलक्षैं
भौवनेशी—ह्लीं
भ्रमरम्—श्रें
भ्रान्तिः—श्रब्लूं
भ्रामरी—ख्फ्री
भ्रूः—रच्रीं
भ्रूणः—लक्ष्रूं
भ्रूणः—रण्रें
मङ्गलम्—व्जूं

मज्जनम्—फहलक्षें
मञ्जरी—छ्रह्रौं
मञ्जीरः—छ्रह्रां
मणिः—श्लां
मणिमाला—रजझ्रक्ष्रूं
मण्डलम्—ज्लूं
मतिः—ज्रीं
मत्सरः—रट्रौं
मधु—क्रैं
मधुपर्कः—क्रह्रीं
मध्यः—रभ्रौं
मनोजवः—क्ष्लक्ष्रां
मन्त्रावली—प्रां
मन्थानः—क्वीं
मन्दः—हसफ्रीं
मन्दा—फ्रस्रौं
मन्दारः—रप्रीं
मन्दारः—प्रीं
मयुः—ब्रच्रों
मरुः—हूः
मस्करः—रह्रें
महा—क्ष्रूं
महाक्रमः—क्ष्रूं
महाक्रोधः—क्ष्रूं
महाङ्कुशः—रक्लां
महाडाकिनी—ड्रूं
महाद्रावः—रक्लैं
महान्—पूं
महानङ्गः—रक्लीं
महामाया—रक्लौं
महामारी—रक्लूं
महामोहः—रक्लों
महारात्रिः—खफ्रों
महाविषम्—रक्लें
महाशङ्खः—ज्रक्रीं
महिमा—ब्रफ्रथ्रीं
महेन्द्रः—प्रैं
महोदयः—रख्रौं
मानवम्—ग्ल्नी
मानसम्—ठ्रीं
माया—ह्रीं
मायाहारः—ह्रक्लूं
मारण्डः—खफ्रछ्रीं
मारिषः—रस्रौं
मार्णनम्—छरहभ्रीं
माला—ज्रैं
मित्रम्—ब्नैं
मुकुलः—रध्रौं
मुक्ता—क्ष्रीं
मुखम्—ओं
मुखरः—क्ष्रम्लौं
मुख्यः—रड्रैं
मुण्डा—ह्रों
मुद्गरः—कहलश्रः
मुसलम्—कहलश्रें
मूर्तिः—प्रम्लूं
मूर्वला—लक्षीं
मूलम्—ब्लछ्रैं
मृगाङ्कः—खलफ्रां
मेखला—रक्ष्रीं
मेधी—क्षस्फ्रों
मेषः—ह्रः
मेहनी—व्रप्लैं
मैधः—ऐं
मैत्रम्—रड्रूं
मोक्षः—म्लैं
मोदकः—क्ष्लक्ष्रीं
मोदिनी—ह्रफ्रां
मौञ्जी—रह्रैं
मौनकः—ह्रस्रां
मौनी—क्षब्लूं
मौलः—छ्रम्लीं
मौलिः—चफलकौं
मौलिञ्जः—खफ्रक्लां
यक्षः—क्ष्लौं
यत्नः—ब्रफ्रथ्रैं
यमलः—फ्लक्रैं
याच्ञा—ज्रब्रीं
यातना—क्रप्रूं
याम्यम्—फहलक्षैं
युक्तिः—रढ्रूं
युगम्—क्ष्लप्रूं
युगन्धरः—रढ्रौं
युगान्तः—हसफ्रों
यूपः—छ्रक्रैं
योगः—रध्रूं
योगतन्द्रा—क्षज्रीं
योगिनी—छ्रीं
योनिः—रक्ष्रूं
यौक्तिकम्—छरह्रैं
रङ्कः—रस्रां
रङ्ककः—क्षस्रौं
रचना—ज्रब्रौं
रञ्जिनी—रक्षफ्रछ्रैं
रतिः—क्लूं
रत्नम्—रग्रें
रथन्तरः—म्रूं
रन्ध्रः—रह्रक्षम्लूं
रमणी—रखध्रों
रम्भा—क्लं
रयः—ह्रस्रां
रयिः—फ्रथ्रां
रसपुटः—क्षज्रैं
राका—ह्रीः
रागः—रक्ष्रैं

राजसावित्री—स्त्रूं
राजा—हलक्रीं
रावः—फ्रें
रासः—खस्त्रीं
राहुः—क्ष्रस्त्रूं
रिष्टः—ग्रम्लैं
रीतिः—ग्रम्लां
रोगः—क्ष्रस्त्रां
रौद्रः—फहलक्षां
रौद्रः—द्रैं
रौरवम्—थ्रौं
लक्ष्म—क्रह्लां
लक्ष्मीः—श्रीं
लक्ष्यम्—रख्रूं
लघुः—रत्रूं
लज्जा—ह्लीं
लम्बिका—हलक्रों
लयः—क्लफ्रीं
लयः—क्लरह्लां
ललाटकः—ज्रक्रां
ललितम्—छ्रौं
लाङ्गलम्—श्रौं
लाङ्गूलम्—हफ्रीं
लिङ्गम्—हलक्षें
लीला—रस्त्रूं
लोकः—छरहभ्रें
वक्त्रम्—भ्रीं
वज्रम्—ध्रीं
वज्रकवचम्—हसखफ्रक्ष्रैं
वज्रमलम्—क्ष्रफ्रह्लीं
वज्झ्रा—र्झ्रूं
वत्सः—रद्रीं
वत्सदन्तः—खफ्छ्रों
वधूः—स्त्रीं
वनस्पतिः—क्रह्लीं
वन्दा—क्ष्रत्रें
वरटः—ग्लठूं
वर्ग—ब्रफ्रथ्रां
वर्णः—क्रप्रां
वर्णः—प्रैं
वर्णकः—क्लक्ष्रा
वर्तकः—रड्रीं
वर्द्धनी—खफ्रभ्रौं
वर्धमानः—ह्फ्रूं
वर्हः—रख्रध्रूं
वला—रत्रें
वलाहकः—क्लौं
वल्कलः—क्ष्रस्त्रों
वश—श्रत्रैं
वर्ष्मा—क्ष्रब्रूं
वस्तु—ब्लफ्रस्त्रौं
वागुरः—रम्रें
वाग्भवः—ऐं
वाटी—फ्रथ्रौं
वाडवः—स्फ्ह्ल्क्षें
वात्या—ग्लब्लैं
वाथ्य (वीथी)—खलफ्रीं
वादः—च्फ्ल्कें
वारः—रख्रध्रों
वारणा—क्रफ्रां
वारी—ग्लब्लौं
वारुणी—ब्लछ्रौं
वालरण्डा—क्ष्रस्त्रें
वाष्पं—क्ष्लक्ष्रों
वासना—रथ्रों
वासिता—क्ष्लक्ष्रूं
विकटः—श्रम्लूं
विकराली—ह्लस्त्रां
विकलः—स्त्रखफ्रूं
विकल्पः—क्ष्फ्रब्लीं
विकारः—वैं
विकोशकः—क्ष्रक्लूं
विक्रमः—क्रह्लीं
विक्रियः—क्लह्लूं
विक्षतम्—श्रब्लीं
विखलः—ह्लस्त्रैं
विघटी—क्लखफ्रैं
विघसः—रह्लों
विघ्नः—पलक्रों
विचित्रः—ह्लग्लां
विजयः—ह्स्फ्रां
विजया—ह्लक्षफ्ली
विजानी—क्रथ्रैं
विटङ्कः—क्षज्रां
वितन्द्रा—श्रखफ्रौं
वितानः—क्षख्रूं
वितानकम्—क्ष्रत्रैं
विदिक्—खफ्रह्लौं
विद्या—श्रः
विद्यातत्त्वम्—फ्रखभ्रों
विद्याबलम्—क्लह्लां
विद्युत्—ब्लौं
विधानकः—क्रह्लूं
विधिः—रक्षछ्रीं
विधृतिः—खफ्रक्ष्रौं
विनर्म—ह्लभ्लौं
विनादः—खफ्रछ्रूं
विनिमयः—श्रखफ्रीं
विपत्रः—श्रखफ्रैं
विपाशः—ह्लभ्लूं
विपृथुः—क्लह्लैं
विप्रत्ययः—छ्रह्लूं
विप्रियः—ह्लछ्रूं
विभा—स्त्रां
विभूतिः—लूं

विभ्रान्ति:—श्रब्लैं
विमर्द:—खफ्रछ्रैं
वियुक्ति:—क्लह्लौं
वियोग:—ह्लखफ्रौं
विरति:—खफ्रह्लौं
विरस:—खफ्रह्लां
विराग:—श्रखफ्रौं
विराट्—स्त्रूं
विराध:—फ्रम्रग्लींईं
विरिञ्चि:—ब्रूं
विरूप:—ख्फ्रक्लीं
विलास:—रत्रां
विवत्स:—ह्लखफ्रीं
विवर:—क्षखैं
विवर्तक:—क्लरह्लीं
विवर्त्तक:—क्लफ्रूं
विकृति:—क्लश्रीं
विशिखा—ह्लश्रम्लां
विशुद्धि:—ह्लैं
विश्व:—फ्रौं
विषम्—ज्रं
विसंज्ञा—ह्लहूं
विसम्भ्रान्ति:—श्रब्लौं
विसंवर्ण:—श्रब्लीं
विसर्ग:—क्ष्लप्रीं
विसार:—ह्लस्त्रौं
विसृष्टि:—ह्लक्षभ्लौं
विस्तार:—रत्रों
विस्तार:—क्ष्रज्लां
विस्मृति:—ह्लग्लैं
विस्वरित:—ह्लक्लैं
विहङ्गम:—फ्लीं
विहार:—ह्लक्षम्लैं
वीथी—ख्लफ्रीं
वीर:—स्फहल्क्षीं

वुद्वुद:—रड्रों
वृत्त:—रज्रां
वृद्धि:—क्ष्रज्लीं
वृष:—श्लूं
वृहत्—ब्जीं
हति:—क्षख्रौं (क्षक्लौं)
वृहती—ब्रच्रौं
वेग:—ह्ल्क्षां
वेणु:—रह्लां
वेणु:—हों
वेतण्ड:—रश्रों
वेताल:—सफ्हलक्ष्रूं
वेताल:—सफलक्ष्रूं
वेत्र:—ह्फ्रैं
वेदादि:—ओं
वेदि:—क्लीं
वेदी—रक्रीं
वेध्य:—श्रब्रां
वेहण्ड:—व्रप्लों
वैकक्षक:—ह्लग्रौं
वैकारिक:—रप्रां
वैटप:—खफ्रछ्रां
वैधस:—लक्षों
वैधानम्—क्लक्ष्रौं
वैमलम्—च्रौं
वैराज:—श्रौं
वैरुध:—त्रक्षश्रीं
वैश्वदेव:—गं
व्यजनं--खफ्रक्ष्रैं
व्यय:—रह्लछ्ररक्षह्लौं
व्याड:—ह्लस्त्रौं
व्यान:—टैं
व्याल:—क्रम्लैं
व्युत्तर:—ह्लक्लौं
व्योम:—लक्षें

व्य:—रट्रें
व्रज्या—रझ्रूं
व्रतम्—रश्रीं
व्रध्न:—क्ष:
व्रीडा—ह्लीं
शक्ति:—ब्लूं
शक्तिविद्या—फ्रखभ्रां
शक्तिसर्वस्वम्—हसखफ्रक्ष्रीं
शङ्कु:—कहलक्ष्रूं
शङ्कु:—फलक्ष्रूं
शङ्ख:—ग्लां
शंखिनी—ब्लूं
शपथ:—क्रफ्रें
शफ:—क्ष्लक्ष्लौं
शरणम्—फ्रस्त्रां
शव:—ज्रौं
शाकिनी—फ्रें
शान्ति:—ड्रीं
शान्तिध्य: (?)—रट्रों
शान्ध: (?)—ह्लभ्रैं
शाप:—क्रफ्रूं
शाम्भवम्—क्षरस्त्रां
ख्फ्रीं
शारङ्ग:—रघ्रूं
शालङ्क:—क्लह्लौं
शिक्षा—क्रीं
शिखा—रथ्रीं
शिञ्जिनी—हलक्ष्रूं
शिर:—ओं
शिल्पम्—क्षखफ्रैं
शुक्लम्—ह्लौं
शुचि:—रङें
शुद्ध निद्रा—ह्लक्लीं
शुभंयुक:—क्लफ्रैं
शुभयुक:—क्लह्लौं

शूची—श्रैं
शूलम्—खफछरूं
शृङ्खला—रग्रौं
शृङ्खला—क्षरह्लूं
शेख्रर:—क्रप्रीं
शेखर:—खफ्रछ्रौं
शैशुक:—रफ्रौं
शौण्ड:—भ्रौं
शौण्डिल:—रद्रें
श्मशानम्—ज्रैं
श्रीकण्ठ:—खफ्रह्लं
श्रीवत्स:—त्रक्षज्रूं
श्रुति:—फ्रस्त्रैं
श्रेष्ठम्—ज्लां
श्लेष:—सहलक्रों
षट्चक्रम्—फ्रखभ्री
षडङ्गम्—रफ्रूं
सङ्कल्प:—क्षब्लौं
संक्रान्ति:—क्रह्लूं
संक्षतम्—श्रव्लां
संख्या—लूः
सङ्गति:—रख्रध्रीं
सङ्गूढ:—क्लक्ष्रैं
संग्रह:—रत्रीं
सङ्घात:—रफ्रों
सञ्जीवनी—श्रखफ्रूं
संज्ञा—ख्रीं
सन्तति:—रखध्रव्लूः
संतल:—क्लक्ष्रूं
सन्तानम्—रज्रों
सन्तानम्—म्लूं
सन्ताप:—खफ्रम्रों
संतार:—ह्लछ्रैं
सन्तार:—क्षख्रीं
संदंशक:—क्षरस्त्रां
संदर्शनम्—छरह्लूं
सन्धानम्—हलक्षीं
सन्धानी—रभ्रां
संन्यास:—क्षज्रौं
सन्ध्या—श्रं
सन्ध्या (?)—क्ष्रब्रीं
सम्पुट:—प्रौं
सम्पूर्णा—क्षब्लीं
सम्प्रत्यय:—क्लह्लूं
सम्प्रदाय:—सहलक्रीं
सम्भार:—ह्लखफ्रूं
सम्भावना—ह्लक्लां
सम्भूति:—खफ्रह्लीं
सम्भ्रान्ति:—श्रब्लूं
सम्मोह:—ह्लभ्लैं
सम्मोह:—हसफ्रूं
संयम:—ख्रों
संयोग:—ह्लखफ्रैं
संवर्तक:—क्लरह्लूं
संवर्तक:—क्लरह्लां (?)
संवर्तक:—क्लफ्रीं
संवित्—फ्रें
संवित्ति:—ज्रब्रें
संविधानम्—क्रह्लैं
संविप्रत्यय:—स्त्रहूं
संवृत्ति:—सहलक्रां
संवेत:—रण्रौं
संव्यानम्—ह्लफ्रूं
संसृष्टि:—क्ष्रक्लीं
संहार:—हसफ्रौं
संहारी—खफ्रक्ष्रां
संहारिणी—क्लग्ख्रफ्रूं
संहिता—झमरयऊं
सटा—ह्लें
सती—क्रूं
सद्ध्रय:—क्ष्रज्लीं
सपिण्ड:—क्रथ्रां
समक्षम्—क्रह्लौं
समर:—रकक्ष्रूं
समाधानम्—छरह्लीं
सम्बल:—ह्लफ्रैं
सर्ग:—छरहभ्रां
सर्वस्वम्—ह्लछरीं
सर्वागम:—फ्रखभ्रूं
सर्वार्थ:—लक्षौं
सवनम्—ग्लख्रूं
सह्यम्—क्ष्लक्ष्रौं
साकलम्—रत्रूं
साक्षी—रध्रां
सात्त्वतम्—रछरों
साधक:—रथ्रों
साध्यम्—क्रें
सानु:—रह्लीं
साम—रखध्रैं
साम्या—रख्रध्रैं
सार:—रख्रां
सारस:—रकक्ष्रौं
सारस्वतम्—ऐं
सारिघ:—कहलश्रूं
सावित्री—फहलक्षीं
सावित्री—स्त्रें
सिंहक:—णूं
सिद्धान्त:—फ्रस्त्रें
सिद्धि:—क्रां
सिद्धिफलम्—क्षखफ्रें
सिन्धु:—रप्रूं
सिफा—रघ्रें
सुकृतम्—रह्लछ्ररक्षह्लां
सुदर्शनम्—छरह्लूं
सुदर्शन:—स्कीं

सुनादः—अं
सुप्रभा—ह्लूं
सुरभिः—थ्रैं
सुरसः—रक्ष्रीं
सूक्ष्मा—ह्लां
सूत्रम्—रह्लौं
सूर्यावर्तः—श्रह्लीं
सृष्टिः—ल्रौं
सृष्टिः—हसखफ्रूं
सेतुः—ठ्रीं
सेतुः—रठ्रीं
सैन्धवः—लक्ष्रैं
सैन्धुर—लक्ष्रैं
सोमः—ग्लौं
सोकलः—स्त्रां
सौमतम्—खफ्रह्लूं
स्तनकालः—ब्रप्लों
स्त्रीः—स्त्रीं
स्थानी—फ्रम्रग्लएं
स्थावरः—रभ्रीं
स्पर्शः—कैं
स्वरितम्—रघ्रूं
स्वस्तिकम्—श्रह्लां
स्वाती—फ्रक्लौं
स्वापः—स्त्रों
स्मृतिः—हलूः
हयत्रीवः—क्रूं
हर्षः—हें
हाकिनी—रक्षश्रीं
हारः—ह्लक्षम्लैं
हारकः—जरक्रीं
हारिणी—रजझ्रक्ष्रैं
हेतुः—छरक्रौं
हेमम्—च्रैं
हैमन—क्षम्लीं
ह्रस्वः—रछरें

* * *

उपबीजानां सूची

अक्षम्—डें
अक्षय (क्षयः)—णां
अङ्गम्—सैं
अङ्घ्रिः—पिं
अञ्जनम्—जां
अथर्वः—मैं
अध्वकः—हां
अध्वर्युः—डों
अध्वानं—ह्लखफ्रां
अनार्यः—भौं
अनुतापः—थुं
अनुयाजः—घौं
अन्तर्द्धिः—मुं
अन्वेता—जों
अपराधः—छूं
अपराधः—ञें
अपानः—टौं
अप्सरसः—गां
अरणिः—यों
अर्चा—शौं
अर्तिः—शूं
अर्थः—षीं
अर्हः—भां
अवज्ञा—क्षिं
अवभृथः—क्षों
अव्ययः—लैं
अशोकः—हें
अश्रु—फें
अश्वत्थः—औं
असूया—णीं
अस्थि—नां
अस्थिभेदी—ठं
अस्त्रम्—दां
अस्त्रुक्—हों
अहङ्कृतिः—पैं
आकारः—षुं
आग्नीध्रः—तों
आज्यम्—ढौं
आधानम्—वां
आयुः—ठां
आरतिः—लूं
आरम्भः—ठूं
आरोहः—भीं
आजवम्—ढें
आर्तिः—शूं
आलम्भः—ठें
आलस्यम्—डीं
आवेगः—फुं
आशा—तुं
आश्विनः—लौं
आहवनीयकः—बों
इच्छा—फां
इरयोगः—छ्रुं
इरा—खां

इली—भं
ईष्यां—वीं
ईर्ष्या—षां
उग्रः—लुं
उदानः—टूं
उद्गाता—झों
उग्दीथः—ठैं
उद्धर्षः—एं
उद्धर्षः—एकएव
उदुखलम्—वों
उन्माथः—तं
उपस्थम्—मिं
उर्मिः—मिं
उषः—छां
ऋक्—फैं
ऋतम्भरा—सूं
ऋतुः—यै
ऋषभः—गैं
ऐष्टिः—षें
औत्सुकम्—युं
कक्षा—में
कटङ्कटः—ढं
कषटः—ठुं
कला—ईं
कषायः—बीं
कर्तरी (?)—घं
कल्पः—षैं
कालः—जू
कीलः—टं
कुणपः—कं
कुण्डम्—धों
कुम्भकः—क्षीं
कुणी—यं
कूर्मः—तीं
कृकरः—तूं
कृपा—टें
कृपा—बूं
कोलः—रीं
कौटिल्यम्—यें
कौरजः—खं
क्रमः—क्षं
क्रूरः—सिं
क्रोधः—हूं
क्षतम्—यूं
क्षान्तिः—ठिं
क्षेत्रम्—इं
क्षेत्रपालः—क्षौं
खेदः—रूं
गणेशः—गं
गन्धः—कूं
गमनम्—ञिं
गर्वः—षिं
गान्धारः—त्वक् (?)
गाम्भीर्यम्—ढूं
ग्रावः—घों
गार्हपत्यम्—पों
गुडः—हं
गुणः—लां
गुप्तिः—डीं
ग्लानिः—शां
घृणा—झीं
घोणकी—ङूं
घ्राणम्—चूं
घ्राणम्—थिं
चक्षुः—चां
चमसः—फौं
चरुः—लों
चर्चिकारः—षूं
चापलम्—णुं
चिन्ता—ढिं
छावाकः—गों
छुरिका—पं
जडता—भुं
जिह्विका—चीं
जीवः—यां
जुगुप्सा—बूं
जुगुप्सा—पें
जुहूः—शों
ज्ञप्तिः—डिं
ज्ञानम्—फिं
तमः—लीं
तन्मात्रम्—पौं
तर्जनी—लं
तर्मा (?)—मों
तारकम्—रां
तुष्टिः—झें
तृष्णा—छीं
त्रेता—भों
दक्षिणाग्निः—फों
दधि—चुं
दम्भः—रुं
दया—बें
दर्वी—सं
दर्शनन्—चिं
दानम्—झिं
दाभ्यः (?)—धौं
दिक्—यीं
दिग्धः—फं
दिष्टिः—शें
दुःखम्—ञां
दुरी—षं
दुर्मदः—ञूं
देवदत्तकः—तैं
दैन्यम्—ञीं
द्वेषः—घां

द्रुमः—क्षं
द्रोहः—खें
द्रोहः—थ्रूं
धनञ्जयः—तौं
धर्मः—ङिं
धारणः—मीं
धारा—खूं
धीरः—चुं
ध्रुवः—यौं
ध्रुवा—षों
धूमला—वं
धैवतम्—ञैं
नता—पुं
नागः—तां
नादः—अं
नाराशंसः—नैं
नाशः—शिं
निर्भयः—क्षें
निर्वेदः—फीं
निशढः—झं
निषादकः—छैं
निष्ठुरः—रें
नीतिः—भें
नेष्टा—छों
पञ्चमः—झैं
परमः—गुं
परिक्रमः—धूं
परितापकः—ञूं
पाकः—डौं
पाणिः—बिं
पालिः—मं
पाशः—आं
पुरुषः—पां
पूरकः (?)—क्षां
प्रकाशः—बुं
प्रकृतिः—पीं
प्रगाढः—बें
प्रणवः—ओं
प्रतिष्ठातृकः—चों
प्रतिहर्ता—टों
प्रभावः—सें
प्रमादः—खुं
प्रमोदः—वौं
प्रयाजः—गौं
प्रवाहः—घूं
प्रवेशः—ढुं
प्रश्रयः—नीं
प्रस्तोता—ञीं
प्रासादः—हौं
फली—रं
बुद्बुदः—नें
बोधः—शूं
ब्रह्म—ठौं
ब्रह्मा—डों
ब्राह्मणः—ढों
भयम्—भिं
भावना—छिं
भीमा—धैं
भूरुहः—शीं
भेरः—धैं
भ्रान्तिः—डुं
मज्जनम्—गिं
मदः—लिं
मध्यमः—जैं
मन्थिनः (?)—ञौं
मर्यादा—झूं
महत्तत्त्वम्—पूं
महाक्रोधः—क्षूं
महाप्राणः—टां
मांसम्—धां
मा—धिं
मातृका—पौं
मात्सर्यम्—गीं
मानम्—रिं
मानसम्—ह़ीं
मुष्टिकः—धं
मूर्छा—हिं
मृतिः—मूं
मेदः—खिं
मेरुः—डं
मैत्रावरुणः—खों
मोहः—खीं
मौनम्—गैं
यजुः—बैं
याजः—खौं
रचना—जिं
रजः—लौं
रज्जु—णं
रतिः—लूं
रया—लः
रश्मिः—दौं
रसः—कीं
रसना—निं
रुट्—मां
रूपम्—कां
रूरू (?)—लों
रेचकः—क्षैं
रेतः—किं
रोगः—थीं
रोमाञ्चः—धें
लयः—ढां
लोचनम्—चां
लोभः—यिं
लौल्यम्—ङां
वषट—सौं

वाक्—जौं
वाक्—तिं
वाग्भव—ऐं
वात्सल्यम्—झुं
विकल्पः—क्षुं
विकारः—बैं
विखेदः—ङें
वितर्कः—टुं
वियाजकः—ङौं
विवेकः—कें
विश्वास—धीं
विषम्—ङें
विषादः—कुं
विष्वक्—थां
विसंमदः—फूं
विसर्गः—टिं
विसर्गः—णिं
विष्वक्—थां
वृत्तिः—नों
वृत्तिः—लें
वेधी—शं
वैतस्तिकः—डं
वैराग्यम्—दूं
वैराग्यम्—तें
वैश्वदेवः—गूं
व्यतिक्रमः—छें
व्याधिः—वुं
व्यानन्दः—-टैं
व्यानम्—ङुं
शङ्का—जीं
शङ्कुः—जं
शंसिकः—णों

शतध्नी—ङं
शब्दः—क्रौं
शल्यम्—छं
शिक्षा—शैं
शिवः—रों
शीर्षकः—चं
शुक्—घें
शुक्रम्—झौं
श्रद्धा—जें
शर्वरी—यें
श्रमः—सां
श्रुक्—घें
श्रुवः—सों
श्रोत्रम्—चौं
श्वासः—ठीं
षडजः—खैं
षोता—थों
सन्तोषः—डूं
सम्भोगः—जुं
संभ्रमः—हुं
सम्माथः—थं
सम्मानम्—छौं
संवरकः—रैं
संवर्गः—बं
संवेदिः—दों
संहर्षः—दुं
सत्वम्—लां
समता—नुं
समाधिः—हैं
समानम्—टीं
समीहा—धुं
समूह्यकः—मौं

सहजः—घुं
सहायकः—नूं
सागरः—डां
साभ—भैं
सामिधेनी—रों
सिंहकः—णूं
सुखम्—झां
सर्वः—ऊं
सुब्रह्मण्यम्—ठों
सुषुप्तिः—ढीं
सोमसंस्था—णौं
स्वधा—षौं
स्थालिसंस्था—थौं
स्फ्याः ?—बौं
स्तोभः—थैं
स्थाणुः—उं
स्थैर्यम्—णें
स्नुक्—धिं
स्नेहः—मुं
स्पर्शः—दिं
सृष्टिः—भूं
स्वप्नः—घीं
हास्यम्—दें
हायि—डैं
हिङ्कारः—पैं
हिङ्कारः—दैं
हूवा—ढैं
हेतिः—ञं
होता—कों
? ढैं
? सों
? दों

* * *

कूटानां सूची

अक्षरम्—कस्हलह्लख्क्ष्रीं
अङ्कुरम्—हक्ष्मह्लस्हखफछरवरयीं
अग्निचित्—रलहक्षहलब्रीं
अग्निष्टोमः—तलठलहक्षथलहक्षदलह्लक्षक्षरहम्लव्य्रईऊं
अघोरः—कसवहलक्षमऔं
अचलः—ग्रमहलक्षखफ्रग्लैं
अत्यग्निष्टोमः—पलहक्षशहसखफ्रें
अथर्वकूटम्—छक्षकहलक्षप्रौं
अद्वैतम्—जनहमरक्षयह्लीं
अनन्तः—रक्षक्रीं
अनाख्या—क्षस्हम्लव्य्रऊं
अनाहतम्—क्षरहम्लव्य्रईऊं
अपराजितः—व्य्रक्षस्हम्लस्त्रीं
अपुनरावृत्तिः—रहफ्रसमक्षफ्रीं
अभ्युदयः—सलहक्षक्लक्लीं
अर्द्धसावित्री—रलहक्षकहलह्लस्त्रैंछसीं
अवभृथः—म्लरलहक्षब्लौं
अविद्या—ईसकहमरक्षक्रीं
अश्वः—मश्रां
अश्वप्रतिग्रहः—रलहक्षहलक्लीं
अश्वमेधः—ह्लसलहसकह्लीं
अष्टाकपालः—क्षलक्षलहक्षक्लौं
अहङ्कारः—व्रमक्लयसक्षक्लीं
आग्नेयम्—रक्षम्लह्लकसछव्य्रऊं
आङ्गिरसम्—वलहक्षबॢऊं
आज्ञा—क्षरहम्लव्य्रईऊं क्षसहम्लव्य्रईऊं
आदित्यः—म्लकह्लक्षरस्त्रीं
आदित्यम्—नदक्षटक्षव्य्रईऊं
आनन्दम्—स्हलकह्लक्ष्रूं
आनन्दमयम्—सफक्षयक्लमस्त्रश्रीं

आभासः—दलव्यरक्षक्रभ्रीं
आशयः—म्लछ्लहक्षखफ्रक्रीं
इच्छा—कह्लक्लक्षखफ्रीं
इन्द्रियम्—झमस्त्रयग्लह्लीं
इषुः—रलहक्षक्लस्हफ्रऔं
ईडा—शम्लव्य्रई
ईशानः—ब्रकम्लव्लक्लऊं
उग्रम्—खमसहक्षवॣीं
उपशमः—स्हफ्रमव्रयक्षीं
उपाधिः—क्षम्लजरस्त्रीं
उपांशुः—सलहक्षक्लब्रीं
ऊर्व्यम्—लमक्षकव्य्रस्त्रीं
ऋक्—खलक्षक्षय्त्रखफछ्रें
ऋद्धिः—मसक्षग्लयह्लीं
? एकम्—हससक्लह्लीं
(ऐकात्म्यम्)
एडः—रलहक्षकलसहफ्रऊं
ऐन्द्रम्—रक्षलह्लमसहकव्रूं
ऐश्वर्यम्—टफ्रकमक्षजस्त्रीं
कन्दर्पबलशातनम्—सलहक्षब्रठक्षऊं
कला—सक्षलहमयब्रूं
कल्पः—खरसफ्रम्लक्षछरयूं
कापालीं—म्लव्य्रहईं
कामदः—कंहलंह्लंख्रौं
कावेरी—क्ष्मम्लीं
किञ्जल्कः—रसमस्त्रह्लव्य्रऊं
कुण्डलिनी—रक्षक्रींऊं
कुलम्—ज्रम्लक्षह्लछरीं
कृतिः—डलहक्षजलमफ्रत्रीं
केशरः—टलव्य्रममक्षहछरीं
कोण्डपः—म्लकह्लक्षस्त्रौं

क्रमः—मव्रटतक्षसहह्रीं
खेचरी—सखक्लक्ष्मध्रयब्लीं
गजः—लश्रौं
गजच्छायः—सहलक्षब्रठक्षईं
गन्धर्वः—च्लक्ष्मस्हव्य्रख्रीं
गारुडम्—तफरक्षम्लह्रौं
गुह्यकः—-खफसहक्ष्लब्रूंक्रौं
सहकक्षक्षह्रमव्य्रऊं
गुह्या—जलहक्ष छपग्रहसखफ्रीं
गोदोहः—रलहक्षक्लसहफ्रओं
गोमेधः—रलहक्षक्लसहफ्रआं
गोशवः—स्हक्ष्मह्रक्षग्लूं
गौः—म्लह्रक्षस्त्रूं
घनः—क्रक्षस्हम्लख्रीं
चंक्रः—मफ्रलहलहखफ्रूं
चण्डः—खफ्रध्रव्य्रओंछ्रध्रीं
चन्द्रः—सकह्रलमक्षखव्रूं
चयनम्—ड्लहक्षम्लां
चित्तम्—सफ्रक्षक्लमखछरीं
चित्र—ह्रक्लक्षम्लश्रूं
चिद्घनः—पलडलहक्षमव्रयीं
चिन्तामणिः—लक्षह्रमकसहव्य्रऊं
चैतन्यम्—सक्लह्रसखफ्रक्ष्रीं
जटा—क्लपक्षह्रमव्रूं
जीवात्मा—थलहक्षकह्रमव्रयीं
ज्येष्ठम्—सक्लह्रीं
ज्योतिर्मयम्—डलहक्षच्लद्रक्ष्मऐं
ज्योतिष्टोमः—गक्षटहलक्षचक्षफलक्षूं
ज्ञानम्—फ्रखरक्षक्लह्रीं
डाकिनीं—मह्रक्ष्लव्य्रऊं
डाकिनी—खफ्रक्लक्ष्मसभ्रीं
तत्पुरुषः—क्षमब्लहकयह्रीं
तनूनपात्—रलहक्षक्लसहफ्रऐं
तन्मात्रम्—ईसमक्लक्षह्रूं

तमः—क्षह्रम्लव्य्रईं-क्षस्हम्लव्य्रईं
ताण्डवम्—म्लव्य्रमईं
तामिस्त्रम्—फ्रखस्हहमव्रयूं
तारम्—ओं ह्रक्षम्लछव्य्रऊं
तार्तीयकम्—रजक्षमव्लह्रूं
त्रिजटा—स्हक्षक्षकमफ्रब्रूं
त्रैकाल्यम्—क्लस्हत्रमक्षछरयीं
त्रैपुरम्—ब्लक्षमकह्रव्य्रईं
त्रैलोक्यमोहनः—मंह्रंफ्लझ्रब्लूं
त्रैविक्रमम्—कहलक्षछलक्रक्ष्मऐं
त्वाष्ट्रम्—भ्रमलक्षव्य्रकरह्रीं
दर्शः—क्षलहक्षक्षमह्रक्ष्लईं
दीक्षा—मलहक्षग्लव्रीं
दीर्घसत्रम्—स्हम्लक्षह्रभ्लौं
दृष्टिः—ग्लक्लमझ्रस्त्रीं
देवी—छरमह्रक्षस्त्रूं
द्वादशाहः—क्षलहक्षम्लब्रीं
द्वेषः—गरमश्रब्लक्षश्रीं
धरा—ग्लक्षकमह्रव्य्रऊं
धर्मः—रलहक्ष समह्फ्रछरीं
धातुः—धम्रब्लक्षफ्रखछरीं
धौमावत्यम्—फ्रतक्षमलहक्षहथलह्क्षह्रूं
नदः—रक्षक्लमसहह्रीं
नद्यावर्तः—क्षलहक्षक्ष्मह्रक्ष्लएं
नरमेधः—रलहक्षक्लस्हफ्रईं
नागयज्ञः—रलफलहक्षखफछरौं
नादः—टहलक्षद्रडलरफ्रीं
नाभसम्—टक्षसनरम्लैं
नारसिंहः—क्षम्लब्रसहस्हक्षक्लस्त्रीं
नित्यम्—गलहक्षम्लजक्रूं
निमित्तम्—ग्लांम्लह्रथ्रयीं
निरञ्जनम्—ब्लटकक्षम्रीं
निर्वाणम्—क्षस्हम्लव्य्रऊं क्षह्रम्लव्य्रऊं
निवृत्तिः—झथक्षमफ्रश्रौं

नैगमम्—तम्लव्य्रईं
नैर्ऋतम्—ह्मक्षब्रलखफ्रऊं
पद्म—रलहक्षहक्षक्षसक्लह्मीं
पद्मम्—म्लव्य्रवऊं
परमात्मा—तत्त्वमसि रत्रों ओं
परमार्थः—सफ्रकह्मरश्रमक्षीं
परा—सहक्लह्मीं
परापरम्—हस्लक्षकमह्मब्रूं
पाशुपतम्—सग्लक्षमहरह्मूं
पिङ्गला—गहलक्षक्षकटलक्षरप्रीं
पिण्डः—फनमयसक्षछरीं
पुण्डरीकः—फ्लक्षह्मस्ह्व्य्रऊं
पुष्करः—सहक्षम्लव्य्रईं
पूर्णकामः—फ्रखभ्रआंक्लमझ्रयूं
पैशाचम्—कमहलचहलक्षरज्रीं
पौरुषम्—रक्षखरईं
पौर्णमासः—क्षलहक्षक्ष्मह्मक्षलऊं
प्रकृतिः—फ्ररक्षस्त्रमक्रूं
प्रज्ञा—रब्लकममक्षग्लीं
प्रतिबिम्बः—छरक्लव्य्रमक्षयूं
प्रत्ययः—टलसकम्लक्षटस्त्री
प्रपञ्चः—खफलक्षह्ममहकव्रूं
प्रबोधः—एसकहलक्षाव्य्रम्रूं
प्रभा—सलहक्षचलहक्षजलहक्षजक्षज्रैं
प्रमाणम्—छज्रमकव्य्रऊं
प्राजापत्यम्—पक्षलत्रझ्रफ्रूं
प्राणः—कम्लव्य्रईं
प्रासादः—सहछरक्ष्लमरव्य्रऊं
फैरवम्—टम्लव्य्रईं
बन्धः—जलहक्षटलझ्रब्रीं
बलभिद्—स्हफ्रसक्लह्मओं
बल्ली—म्लमक्षग्रह्मछरीं
बुद्धिः—मधस्त्रकक्षलक्रीं
ब्रह्ममयम्—ब्रह्माहमस्मि
ब्रह्मयज्ञः—कह्मवक्षक्रीं
ब्रह्मसवः—मंह्मंक्ष्लझ्रब्रूं
ब्राह्मम्—क्लक्षह्मब्रमयऊं
भार्गवः—खफसहलक्षूं
भाषा—क्षह्मम्लव्य्रऊं
भैरवः—क्लक्ष्मफहसौः
भैरवी—क्षमक्लह्महसव्य्रऊं
भोगः—चरक्ष्लहमह्मूं
भौमम्—म्लव्य्रहऊं
मणिः—भक्ष्लरमहसखफ्रूं
मणिपूरकम्—क्षस्हम्लव्य्रईऊं
मनः—ड्लखलहक्षखम......
मन्त्रः—सहक्लरक्षमजह्मखफरयूं
महत्—च्लक्रथलहक्षह्मीं
महानिर्वाणम्—क्षह्मम्लव्य्रऊं
क्षस्हम्लव्य्रऊं
महाव्रतम्—स्हक्ष्मह्मक्षग्लीं
महोदय—ह्मखफ्रूंरघ्रांव्य्रक्रीं
माध्वीकम्—ठफक्षथलमकस्त्रूं
मानवम्—तलहक्षक्वतलक्लींधयां
बलहक्षरफ्लौं चहलक्षटलॢौं
माया—जरव्य्रसहक्षभ्रीं
मार्तण्डः—लह्मकक्ष्मस्हव्य्रएं
माला—प्रस्हम्लक्षक्लीं
माला—झ्रहव्रक्ष्मसह्मीं
माहेश्वरम्—क्वलह्मझकह्मनसक्लईं
मूलाधारः—रक्षखरईऊं
मृत्युञ्जयः—ह्मलसहकमक्षब्रऐं
मेध्यम्—खगजरह्मसह्मूं
यजुः—ग्लकक्षहलैं
याम्यम्—ह्मलक्षकमबूं
योगः—खहलक्षक्वक्षलहक्ष
योगभूमिः—पख्रसमक्षस्त्रक्रीं
योनिः—क्लमयक्षलहक्षब्रीं

रजः—क्षस्हम्लव्य्रईं क्षह्लम्लव्य्रईं
रत्नम्—क्ष्मलरसहव्य्रह्लूं
रत्नहलः—स्हफ्रकफ्लह्लस्त्रीं
रथः—ह्लश्रीं
रथन्तरम्—सक्लह्लकह्लीं
राजसूयम्—पलहक्षक्ष्मझ्रइच्रूं
रेखा—समब्लकक्षव्य्रऊं
रोदसी—ह्लक्षमहम्लूं
रोमकूपः—लव्य्रमस्त्रक्ष्रब्रूं
रौद्रः—जमरब्लह्लयूं
रौद्रः—सहठ्लक्षह्लमक्रीं
लक्ष्मीः—क्लम्लक्षस्हश्रीं
लयः—साहमेवास्मि
लिङ्गम्—महव्य्रऐं
वज्रम्—छरस्हक्षब्लश्रीं
वज्रकङ्कः—क्षलहक्षक्ष्मह्लक्ष्लआं
वर्णः—खफछरएव्रह्लक्ष्मत्रृरयीं
वर्हिरथः—क्षलहक्षम्लक्लीं
वसिष्ठः—खहलक्षमरब्लइं
वाजपेयम्—दलडक्षवॢहसखफ्रौं
वामदेवः—रजहलक्षमऊं
वायवीयम्—क्षम्लकस्हरयव्रूं
वाराहः—म्लक्षकसहह्लूं
वारुणम्—ह्लहलव्य्रकऊं
वासना—लयक्षकहस्त्रव्रह्लीं
वासवम्—नदक्षटक्षव्य्रऊं
छलहक्षलक्षफ्रग्लऊं
विज्ञानमयम्—स्हव्य्रख्रक्ष्मक्रूं
विद्धम्—क्षस्हम्लव्य्रईऊं क्षह्लम्लव्य्रईऊं
विपाकः—झक्ररहक्ष्मव्य्रऊं
विश्वजित्—क्षक्षक्ष्लफ्रचक्षक्षौं
विष्णुः—क्षक्षश्रूं
विष्णुविक्रमः—कंहलंह्लंक्षूं
वीरः—म्लव्य्रवईं

वृद्धिः—स्हक्लव्य्रक्ष्रीं
वृहत्—स्हकह्ललह्लीं
वैकारिकम्—खक्षमब्लईं
वैनतेयः—क्षक्षमह्लकहलश्रीं
वैराग्यम्—धशडलझ्रह्लीं
वैष्णवम्—ग्लफक्षफ्रक्ष्रीं
वैहायसम्—हलक्षकमह्लसव्य्रऊं
व्यूहः—कम्लक्षसहब्लूं
व्योम—क्ष्लह्लमज्य्रऊं
शक्तिः—झसखग्रमऊं
शङ्खचूडा—सलहक्षव्रठक्षआं
शाङ्करम्—लक्षमह्लजरक्रव्य्रऊं
शाम्भवम्—स्हजहलक्षम्लवनऊं
शुद्धः—ज्लकहलक्षव्रमथ्रीं
श्येनः—रलहक्षक्लस्हफ्रअः
श्रीकण्ठः—क्लक्षसहमव्य्रऊं
षडूर्मिः—ख्रफ्रह्लमक्षश्रीं
षोडशी—मक्षक्रस्हखफछरूं
सम्मुखम्—सलहक्षव्रठक्ष……
संहारः—स्हक्षम्लव्य्रऊं
सत्ता—थ्लब्य्रम्रछरख्रीं
सत्त्वम्—क्षह्लम्लव्य्रईं
सदसत्—तलमक्षफलहक्षब्रीं
सद्योजातः—हक्लह्लवडकखऐं
समयः—ब्लकक्षहमस्त्रछरूं
समित्—रलहक्षक्लस्हफअं
सर्पः—म्लकह्लक्षरस्त्रैं
सर्पसत्रम्—सहम्लक्षह्लभ्लीं
सर्वतोभद्रः—ग्लक्ष्मह्लचहलक्षक्षरस्त्रां
सर्वस्वदक्षिणः—महलक्षग्लक्लीं
साक्षी—टलहक्षस्त्रमव्रयीं
साम—ठ्लब्रखफछरीं
सिद्धम्—खलह्लवनगक्षरछ्रीं
सुचिद्—रलहक्षफलस्हध्रीं

सुवर्णम्—क्लीं भ्रीं ध्रीं
सुषुम्णा—यम्लव्य्रईं
सूक्ष्मम्—मफ्रठक्षत्रीं
सूर्यः—स्हश्रैं
सृष्टिः—रक्षखरऊं
सेतुः—........(?)
सौत्रामणिः—ग्लरक्षफ्रथरक्लीं
सौभरः—क्षलहक्षक्ष्मह्लक्ष्लऐं
सौभाग्यकृत्—क्षलहक्षक्ष्मह्लक्ष्लओं
स्थितिः—रक्षक्रूं
स्मृतिः—कहख्व्य्ररक्ष्रीं
स्वप्नावती—खक्षहलक्षव्रलईं
स्वस्तिकम्—तफलक्षकमश्रत्रीं
स्वाधिष्ठानम्—स्हक्षम्लव्य्रईऊं
स्वायम्भुवम्—क्ष्लह्लसक्रूंईं
स्वाहकारः—रलहक्षक्लस्हफ्रएं
स्विष्टकृत्—क्षक्षकह्लस्हझ्रयूं
हंसः—ब्लहतह्लसचैं
हंसक—स्हक्ष्लमह्लज्रूं
हेमा—क्लक्ष्मसहख्रवीं
हैरण्यकेशीयम्—व्य्रक्लक्षह्लम्लूं
हैरण्यगर्भः—क्षस्हम्लव्य्रईं

* * *

वैदिकसूक्तनाम्ना प्रसिद्धाः कूटाः

अग्निषोमीयम्—समलक्षग्लस्त्रीं
अनन्तसूक्तम्—थमक्ष्लकब्रह्लस्त्रूं
अस्यवामीयम्—ह्लक्षफ्रकम्लईं
आथर्वणाव्—क्षलब्लदलखफ्रें
आर्यम्णम्—सहएंक्लरक्ष्रीं
ऐन्द्रवारुणम्—धग्लक्षकमह्लव्य्रऊं
ऐन्द्राग्नम्—पपक्षम्लस्हखफ्रां
औदुम्बरम्—क्ष्लब्लद्लह्लखफ्रें
औशनसम्—थफखक्षलव्य्रईं
गारुडम्—तफरक्षम्लह्लौं
गृत्समदीयम्—नजरमकह्लक्ष्लश्रीं
देवी—द्रैंजमरब्लह्लयूं
नतमहः—मब्लयटतक्षईं
नाचिकेतसम्—क्लटव्य्रक्षम्लीं
नाराशंसीयम्—क्षलहक्षभलम्लूं
नीललोहितम्—हरसकक्षम्लस्त्रीं
नैर्ऋतम्—डम्लक्षब्रखफस्त्रींह्लूं
पर्यायः—चम्लहक्षसकह्लूं
पावमानी—रसमयक्षह्लस्त्रीं
पौरुषम्—क्लश्रमक्षह्लम्लऊं
भारुण्डा—यरक्षम्लब्लीं
मानस्तोकम्—दरजभ्रम्लकक्ष्रीं
माहित्रम्—फ्रलक्ष्मकह्लूं
मैत्रावरुणम्—नमहक्षव्य्रह्लूं
लक्ष्मीः—क्लम्लक्षस्हश्रीं
वायव्यम्—डम्लक्षब्रखफस्त्रीं
वार्हस्पत्यम्—रक्षगम्लरह्लौं
विनायकः—
क्षलहक्षक्लस्त्रूं ग्लमक्षसक्लह्लीं
विराट्—धग्लक्षकमह्लव्य्रऊं
वैभ्राजः—लसरक्षकमव्य्रद्रीं
वैश्वदेवः—पटक्षम्लस्हखफ्रूं
शिवसङ्कल्पः—हम्लकक्षव्य्रलछ्रौं
शुद्धवती—स्त्रहलक्षह्लमब्रीं
श्रोः—ह्लकझ्रक्षश्रीं
सौमारौद्रम्—रमयपक्षब्रूं
हविष्यान्तम्—हक्षमकह्लछरीं
हैरण्यकेशीयम्—व्य्रक्लक्षह्लभ्लूं

* * *

पर्वतनाम्ना प्रसिद्धकूटाः

अस्तः—फग्लसहमक्षब्लूं

उदयः—लगमक्षखफ्रसह्लूं

उच्चखण्डः—रफ्रसकम्लक्ष्रज्रीं

कैलासः—शम्लह्लव्य्रखफैं

त्रिकूटः—हसखफ्रम्लक्षव्य्रऊं

मन्थानः—म्ररयक्षक्षसहफ्रीं

मन्दारः—रक्षफ्रसमहह्लव्य्रऊं

मेरुः—रहक्षम्लव्य्रअखफछरस्त्रह्लीं

…

नाडीनाम्ना प्रसिद्धकूटाः

अग्निज्वाला—जररलक्षम्लव्य्रईं

अचला—मक्षक्लक्षव्य्रछ्रूं

अपुनर्भवा—यसम्लक्षसकह्लव्य्रईं

अलम्बुषा—व्रहठ्रम्लह्लूं

अव्यक्ता—चमट्क्षव्य्रछ्रीं

आप्यायनी—नरक्ष्ल्ह्क्षकम्लव्य्रह्लीं

आलस्या—सक्ष्मह्लखफ्रह्लीं

आवेशिनी—क्लह्लक्ष्ल्ह्क्षमव्य्रईं

कपर्दिनी—र्ल्ह्क्षडम्लब्रखफ्रीं

कपिला—म्ह्ल्क्षलखफ्रव्य्रह्लीं

कर्षिणी—क्लस्म्क्षरखफ्रव्य्रऊं

कुहूः—सहब्रह्लखफ्रयीं

कृन्तनी—जरक्षलहक्षम्लव्य्रऊं

कैवल्या—रमयछ्रक्षक्लह्लीं

कोटरा—चफसलहक्षमव्य्रऊं

क्लिन्ना—सहक्लक्ष्मह्लग्लूं

क्षिप्ता—कब्रम्लक्षस्हक्लूं

क्षेपणी—क्षग्लफ्रस्हर्फ्रीं

गान्धारी—हम्लक्षब्रसह्लीं

गालिनी—क्लक्ष्मग्लव्य्रह्लूं

घण्टिका—ग्लमक्क्षह्लछ्ख्रीं

घर्घरा—ह्क्षम्लब्रसहरक्लीं

चण्डा—चफक्लह्लमक्ष्रूं

चण्डी—र्क्ष्रस्त्रम्लव्य्रईं

चन्द्रा—मनटत्क्षफ्लव्य्रऊं

चन्द्रावती—सनटमस्क्षब्लभ्रीं

चित्रा—कहफ्लमह्लव्य्रऊं

चेतना—सक्लएईह्लीं

ज्वालिनी—रमरयछ्रखफ्रीं

तपिनी—ण्क्षव्य्रह्लूं

तन्द्रावती—ब्लक्षफ्लव्य्रछ्रीं

तापिनी—लक्ष्ल्ह्क्षमकह्लीं

तुरीया—ब्रक्षम्लसह्लछ्रूं

तेजस्विनी—सनह्ललक्ष्मब्लूं

दीप्ता—क्लक्षहमह्लह्स्ख्फ्रूं

द्राविणी—छ्रम्लक्षव्रकह्लीं

धमनी—म्लक्षह्लसहरव्य्रऊं

धीरा—समह्क्षव्य्रऊं

धूम्रा—डमत्क्षह्लब्रीं

धोरिणी—पत्क्षयह्लक्लख्फ्रीं

नन्दा—सहम्क्षलखभ्रक्लीं

निम्ना—सरहखफ्रम्लव्रीं

निर्वाणा—हंसम्लक्षप्रक्लीं

पयस्विनी—छ्रम्लक्षफ्लह्लहम्रीं

पूतना—व्य्रक्लक्ष्मछ्रीं

पूर्णा—रसकमह्लक्षछ्रीं

पूषा—थहर्खफ्रह्लमब्लूं

प्रकाशिनी—क्षकभ्रह्लह्लमव्य्रईं

प्रबुद्धा—लह्लक्षकमव्य्रह्लीं

प्रशान्ता—नकब्लम्क्षफ्रह्लीं

बन्धनी—रस्क्षस्त्रकह्लह्लीं
भासुरा—क्ष्मसकह्लीं
भ्रामिणी—मक्लक्षकसखफ्रूं
मधुमती—सरम्लक्षह्स्ख्फ्रीं
मन्दा—मथह्ल्क्षप्रह्लूं
मरीचि:—कस्हक्ष्क्षमश्रूं
माण्डवी—द्रमटत्क्षसहक्लीं
मुदिता—हम्लक्ष्मप्लत्रूं
मूला—वरकजझ्रमक्ष्लऊं
मैत्री—चखफ्लक्षकस्हख्फ्रऊं
यशस्विनी—म्लक्षफ्लछ्रीं
योगनि:श्रेणी—सह्लक्षक्लमव्य्रस्त्रीं
रञ्जिनी—समतरक्षखफछ्रक्लीं
रसवहा—ब्लक्षफहमछ्रब्रीं
रुचिरा—लकछ्रजरक्रीं
रण्डा—चफक्लह्लमक्षूं
रूक्षा—छ्रमकश्रहयह्लूं
रेवती—दमनडतक्षसहव्य्रईं
लम्बिका—टनतम्क्षब्लयछ्रूं
लोहिनी—ख्फ्रमसलहक्षग्लऊं
वारणा—ज्रलह्लफ्रव्य्रऊ
विकम्पिनी—सह्लक्षकह्लह्लूं
विकल्पा—सस्ह्ल्क्षह्लकमर......?
विग्रहा (अविग्रहा)—रहक्षमवलह्लीं
विचित्रा—क्लसहमह्लक्षश्रीं

विभ्रान्ति:—ब्रक्षम्लसह्लछरीं
विलम्बिनी—रहह्लव्य्रक्लीं
विवर्णा—जरक्षलहक्षम्लव्य्रईं
विशाला—रम्क्षब्लस्हरह्लीं
विश्वदूता—ग्लक्षकमह्लस्हव्य्रऊं
विश्वोदरा—र्क्षलहव्य्रईं
विसर्गा—र्ल्ह्क्षम्लख्फ्रछ्रूं
विस्मृता—समरक्क्षब्लरह्लूं
वेगवती—क्ललरसहमश्रीं
शङ्खिनी—रहहक्लव्य्रऊं
सङ्कोचिनी—समह्लक्ष्रक्ष्रमस्त्रूं
सम्मोहा—नक्ष्मज्लह्क्षखफ्रव्य्रऊं
सती—तम्ह्ल्क्षक्लफ्रग्लूं
सरस्वती—क्ष्मक्लरक्ष्ल्हक्षव्य्रऊं
सर्गा—रलहक्षंम्लखफ्रछ्रीं
सुकन्या—रहसहम्लक्षस्त्रीं
सुमुखी—यम्लरक्षसह्लक्लूं
सुरभि:—जररलहक्षम्लव्य्रऊं
सौवीरी—ख्रहक्षमह्लव्रह्लीं
स्निग्धा—ह्लसग्लक्षज्य्रऊं
स्वप्नवहा—धलसहक्रफ्क्षब्रल म्रीं
हस्तिजिह्वा—सफक्ष्लमहप्रक्लीं
हिता—क्ष्लसहमब्रयूं
हेमा—जरझ्रह्लमक्षक्लव्य्रऊं
(?)...........छ्रस्हक्ष्मक्लब्रूं

* * *

नदीनाम्ना प्रसिद्धकूटा:

अलकनन्दा—ब्लयरठह्लमक्षूं
उत्पलिनी—खरगवक्ष्मलयव्य्रईं
ऊर्मिला—एक्लयक्षम्रट्रीं
ऐरावती—मक्क्षह्लग्लब्लईं

करतोया—ब्लयक्ष्मझ्रग्लथ्रूं
कावेरी—छत्क्षठ्नह्लब्लीं
किरणा—ररटकरक्ष्रम्रीं
कृतमाला—रजम्क्षकम्लीं

कृष्णबेल्ला—ख्लभक्ष्मलव्य्रईं
कोकनदः—क्लह्क्षमव्य्रफ्रीं
कौक्षिकः—सहफ्रलक्षह्लमब्रीं
कौशिकी—रसमयक्षक्लह्लीं
गङ्गा—यस्हप्लम्क्षह्लूं
गण्डकी—क्लसमयग्लह्लफ्रूं
गोदावरी—गमह्लयक्ष्लम्रीं
गोमती—गपटयजक्लूं
घर्घरः—व्य्रतह्लक्षह्लीं
चन्द्रभागा—जसदनस्हक्षग्लूं
चम्पावती—ह्लमलक्षग्रस्त्रीं
चर्मण्वती—क्लपट्क्षमव्य्रईं
ज्योतीरसा—कहल्क्षश्रक्षम्लत्रईं
तमसा—कब्लयसम्क्षख्रछ्रूं
तयापका (?)—मयरसह्लक्षछ्रफ्रीं
तापी—मसफ्लभर्क्षव्य्रह्लूं
ताम्रपर्णी—धमसरब्लयक्ष्रूं
तिमिरा—छपतयक्ष्लम्रीं
तुङ्गभद्रा—खतक्लक्ष्मव्य्रह्लूं
तुरावती—तगफ्रक्ष्मकह्लूं
दृषद्वती—फसधमश्रयब्लूं
देविका—ह्लमक्षकमह्लीं
नर्मदा—भलनएदक्ष्रीं
निर्विन्ध्या—कहलजम्क्षरव्य्रऊं
पयोघ्नी—करयनप्लक्षफ्रीं
पर्णाशा—व्य्रधरम्क्षच्लीं
पालिता—मयभनसलक्ष्रूं
पारावती—परमक्ष्ल्ह्क्षऐंछ्रीं
प्रवाहिनी—नहर्क्षस्त्रम्लह्लीं
फल्गुः—सहकर्क्षमह्लक्लूं
फेनिला—वरनयक्ष्मग्लह्लीं
बन्धुरा—र्क्षमख्रछ्रस्त्रफ्रीं
भीमरथी—ठक्ष्मलख्रछ्रीं
भोगवती—यरब्लम्झहरूं (?)
मलप्रहारिणी—झ्रक्षग्लमव्य्रईं
मन्दाकिनी—फ्रप्क्षग्लम्रीं
महानदी—क्ष्लमरझ्ररथ्रीं
मालिनी—समहह्लक्षखफ्रस्त्रीं
मुरला—डपतसगम्क्षब्लूं
मेखला—चरफयम्लक्ष्मह्लूं
यमुना—ट्लत्लक्षफ्रखफ्छ्रीं
लोहित्यः—ज्लह्लक्षगमछ्रखफ्रीं
(ब्रह्मपुत्रम्)
वंक्षु—क्षफ्रगकह्लनमह्लूं
वरुणा—नमयब्लक्षरश्रूं
वाग्मती—छ्रड्क्षसहफ्रक्लीं
बाहुदा—रगहलक्षम्लयछ्रूं
वितस्ता—चमरग्क्षफ्रस्त्रीं
विपाशा—टर्क्षप्लमह्लूं
विरजा—नमब्लह्लक्षम्रग्लूं
वेत्रवती—रसमयरक्ष्क्षग्लीं
शतद्रुः—जपतरक्ष्मलयकनईं
शरावती—समरग्क्षह्स्खफ्रीं
शीःता—गसधमरयब्लूं
(शिप्रा)
शोणः—मब्लक्षफ्रध्रीं
सरयूः—फ्रदमहयनह्लूं
सरस्वती—ट्लत्लट्लक्षफ्रख्फ्छ्रीं
ससभङ्गा—समग्क्षलयब्लूं
सिन्धुकः—त्क्षक्लब्रख्रछ्रूं
सिप्रा—छ्रडतजलूं
सुवर्णरिखा—ईक्ष्क्षएएक्लह्लीं
सोमस्रवा—प्रहरक्षमहह्लक्लीं
हिरण्याक्षः—शक्ष्मब्लयक्लऊं

⁂

वर्णनाम्ना प्रसिद्धाः कूटाः

अरुणम्—र्क्षरजक्ष्मक्ष्मरह्लम्लव्य्रछ्रीं
उल्वणः—ऐक्षकसखफ्रव्य्रऊं
ऐन्द्रगोपः—ब्लम्क्षमफख्रच्छ्रीं
कपिलः—क्षब्लकस्त्रीं
कपिशः—डखछ्र्क्षहममफ्रीं
कर्बुरः—ह्लक्लक्षम्लश्रूं
कल्माषः—चफ्क्षलकमयह्लीं
कृष्णः—गसनह्क्षब्रईं
काद्रवः—क्ललफ्ररसम्क्षक्लछ्रूं
कौसुभम्—म्रलक्षकह्लख्फ्रछ्रीं
गौरः—कप्रम्लक्षयक्लीं
तैत्तिरः—छ्रक्षग्लमस्त्रव्य्रऊं
धवलः—म्लग्क्ष (श्र ?) एफ्रीं
धूमः—कह्लब्लजूं
धूसरः—बसरझ्रम्क्षत्रक्लीं
नीलम्—फलंयक्षकयब्लूं
पाटलम्—ठक्लक्ष्मलव्य्रह्लूं
पाण्डुरः—व्रतरयह्लक्षम्लूं
पाण्डुः—ब्लयनह्क्षकहश्रूं
पिङ्गला—स्त्रह्लफ्रम्रीं
पीतः—ग्लकम्ल्ह्क्षक्रीं

बभ्रुः—फ्लमधह्क्षक्षव्य्रऊं
मायूरम्—ख्फ्छ्रम्लग्रक्लीं
रक्तम्—करह्लर्खफछ्स्म्रीं
राजसम्—फ्रक्षब्लूं
रोहितम्—लमकक्षह्लईं
लोहितम्—टसमनह्क्षमखरऊं
विचित्रम्—र्ल्ह्क्षलमह्लूं
शङ्करः—जनथ्क्षकम्लब्रईं
शवलः—टरयलह्लब्लछ्रीं
शुक्लः—शम्लक्लयक्षह्लूं
शुचिः—कम्क्षव्य्रकछ्रूं
शोणः—खक्ष्मरक्षहलक्षब्लह्लीं
शौकः—छ्रलक्षक्रम्लह्लीं
श्यामः—न पटजक्षफ्रं जममक्ष
कह्लव्लजूं ??
श्वेतः—हलमक्क्षह्लफ्रछ्रीं
हरिः—हक्षहब्लकमह्लश्रीं
हरिणः—ब्लक्क्षग्रमवरहस्त्रूं
हरितम्—झ्रकस्त्रक्षथ्रीं
हारीतः—म्क्षब्लह्लकमव्य्रईं
हारिद्रम्—जलयक्क्षग्लफ्रूं

…◆…

उपकूटाः

अचेतनम्—सखह्लक्ष्महौं
अतिबला—सखह्लक्ष्मस्हौं
अन्तर्द्धिः—सखह्लक्ष्मध्रीं
अपस्मारः—सखह्लक्ष्मठौं
आग्नेयः—रम्लव्रीं
आर्क्षः—क्ष्फ्लूं
उत्पातः—सखह्लक्ष्मक्रीं

उन्मादः—सखह्लक्ष्मब्लौं
उलूकः—सखह्लक्ष्मसौः
ऐन्द्रम्—लम्लव्रीं
ऐषीकम्—र्क्षह्लभ्रग्रम्लऊं
औदुम्बरम्—रक्षझ्रभ्रध्रम्लऊं
कम्पनः—वम्लव्रीं
कालः—यम्लव्रीं

कालकूटम्—क्ष्म्लूं
कूष्माण्ड:—सखह्लक्ष्मग्लीं
कौवेरम्—ड्म्लव्रीं
गान्धर्व:—र्क्षभ्रध्रग्रम्लऊं
गालन:—सखह्लक्ष्मस्त्री
गुह्यम्—क्ष्ग्लीं
चक्रम्—र्क्षब्रभ्रध्रम्लऊं
जम्भ:—र्क्षस्त्रभ्रध्रम्लऊं
जृम्भन:—र्ल्क्षध्रम्लऊं
ज्वर:—सखह्लक्ष्मक्लां
तामस:—ह्लक्षम्लक्रयूं
तैमिरम्—ह्लक्षम्लग्रयूं
त्रैदशास्त्रम्—सखह्लक्ष्मठ्रीं
त्वाष्ट्र:—ह्लक्षम्लझ्रयूं
दानव:—र्क्षक्रभ्रध्रम्लऊं
नाग:—ह्लक्षम्लफ्रयूं
नारायणास्त्रम्—ओंश्रेंक्लीं
निमीलनम्—सखह्लक्ष्मफों
पार्जन्यम्—स्ल्ह्क्षह्लूं
पार्वत:—ह्लक्षम्लस्त्रयूं
पाषाण:—ह्लक्षम्लह्लयूं
पैशाच:—र्क्षभ्रम्लऊं
प्रस्वापनम्—रसखग्रमूं
प्राजापत्यास्त्रम्—ह्लफ्रकह्लीं
फैरव:—सखह्लक्ष्मक्रैं
बला—सखह्लक्ष्मक्रों
ब्रह्मशिर:—क्ष्क्लूं

ब्राह्मम्—क्ष्लफ्लओं
भारुण्ड:—क्ष्ह्लीं
भौतम्—र्ल्ह्क्षफ्रूं
भ्रामक:—सखह्लक्ष्महूं
मकर:—सखह्लक्ष्मश्रीं
मातङ्ग:—र्क्षफ्रभ्रध्रम्लऊं
मारण:—सखह्लक्ष्मथ्रीं
मूर्च्छनम्—सखह्लक्ष्मह्लीं
कोहन:—सखह्लक्ष्मस्फ्रों
याम्यम्—ह्म्लव्रीं
राक्षसम्—क्षक्लीं
राजस:—क्षह्लूं
वायव्यम्—सम्लव्रीं
वारुणम्—कम्लव्रीं
विद्युत्—क्ष्ल्ह्क्षझ्रूं
वेताल:—क्षब्लूं
वैनायक:—क्षह्लीं
वैष्णवम्—ह्लक्ष्मलीं
शाङ्करम्—स्ह्क्ष्लक्षें ख्फ्रीं
शारभ:—क्षग्लूं
शावर:—क्षफ्लीं
शौरम्—क्षब्लीं
सौपर्ण:—ह्लक्षम्लब्रयूं
स्कान्द:—खमह्लीं
स्तम्भन:—सखह्लक्ष्मजूं
स्वप्न:—सखह्लक्ष्मक्लीं
हैमनम्—क्षम्लीं

* * *

पारिभाषिक शब्दकोश

अग्निवल्लभा—स्वाहा ।

अघोर—भगवान् पञ्चमुख शिव का दक्षिण दिशा वाला मुख । इससे दक्षिणाम्नाय सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ ।

अनल—तीन की संख्या का बोधक शब्द ।

अनाहत—शरीर के अन्दर वक्ष:स्थल में वर्त्तमान द्वादशदल चक्र ।

अब्धि—चार की संख्या का बोधक शब्द ।

अभिमन्त्रण—किसी वस्तु या व्यक्ति पर मन्त्र पढ़ते हुये जल छिड़कना ।

अर्घ्य—किसी देवता के लिये किसी पात्र में जल, हल्दी, पुष्प, कुशाग्र, तिल, सरसों, अक्षत आदि रखकर अर्पित किया जाने वाला द्रव्य-समूह ।

अर्धचन्द्र—आज्ञाचक्र के ऊपर स्थित बिन्दु से सहस्रार में चढ़ने के क्रम में पहले बिन्दु का भेदन होता है । बिन्दु की एक मात्रा होती है । बिन्दु का आधा अर्धमात्रा होती है । यही अर्धचन्द्र है ।

अलम्बुषा—एक नाडी जो कन्द से चलकर गुदा मार्ग के मूल तक जाती है ।

अश्वमेध—एक यज्ञ जिसमें घोड़ों के मांस का हवन होता था । पूर्णाहुति के बाद यज्ञकुण्ड से एक जीवित अश्व प्रकट होता था । तभी यज्ञ को सफल समझा जाता था ।

अस्त्र—१. जिसे फेंक कर लक्ष्य पर प्रहार किया जाय । जैसे—बाण, बम इत्यादि । २. फट् ।

आम्नाय—शास्त्र/शास्त्रीय परम्परा/वेद/शिव के मुखों से निकले हुए शास्त्र जैसे पूर्वाम्नाय, पश्चिमाम्नाय आदि ।

इडा—कन्द से निकलकर रीढ़ की हड्डी के बाँयीं ओर चलकर बाँयें नासा-रन्ध्र से समाप्त होने वाली नाडी ।

इन्दु—एक संख्या का बोधक शब्द ।

ईशान—पञ्चमुख शिव का ऊर्ध्वमुख । इससे ऊर्ध्वाम्नाय का आविर्भाव हुआ ।

उत्प्लवन—ऊपर उछालना ।

उद्धार—बीजाक्षरों या कूटाक्षरों अथवा दोनों के आधार पर मन्त्र का निर्धारण ।

उपचार—पूजा-सामग्री ।

ऊर्णनाभि—मकड़ी ।

कर—दो की संख्या का बोधक ।

कला—समय की एक लघु इकाई ।

कल्प—ब्रह्मा की सौ वर्ष की आयु का काल ।

काली—शिव की शक्ति का एक स्त्रीरूप जो अनेक आकार और अनेक नाम वाली है । यह संसार की सृष्टि, स्थिति और संहार करने वाली है ।

किन्नर—पुराणों में वर्णित एक पुरुष जिसका शिर घोड़े का और शेष शरीर मनुष्य का होता है । इसकी एक प्रजाति उक्त आकार के विपरीत आकार वाली होती है ।

कुहू—कन्द से निकल कर मलद्वार तक जाने वाली नाडी ।

कुण्डलिनी—कन्द में स्थित सुषुम्ना नाड़ी के मूल में स्थित चैतन्य शक्ति जो सर्प की भाँति साढ़े तीन वलय कर सुप्त रहती है । इसका उद्बोधन करने के बाद ही चक्रभेदन का आरम्भ होता है ।

कूट—दो या दो से अधिक अक्षरों का समुदाय जो नदी, पर्वत आदि किसी विशेष सङ्केत का ज्ञापक होता है ।

कूर्च—हूम्/आसन ।

क्षेत्र—जहाँ निःश्रेयस् की प्राप्ति शीघ्र और अभ्युदय की प्राप्ति विलम्ब से होती है ।

ख—शून्य का बोधक अक्षर ।

खर्पर—मनुष्य की खोपड़ी ।

गज—आठ की संख्या का बोधक शब्द ।

गन्धर्व—स्वर्गलोक के गायक । ये कन्याओं के स्वर को मधुर बनाते हैं ।

गान्धारी—एक नाड़ी जो कन्द के आगे-पीछे से चलकर बाँयी आँख में रुक जाती है ।

गायत्री—१. एक मन्त्र जो मूलतः चौबीस अक्षरों वाला है । २. वैदिक छन्द जिसमें तीन पाद होते हैं । ३. देवता जिसके तीन या अधिक रूप हैं ।

गुह्यक—यक्ष के समान एक अर्धदेवता ।

गुह्यकाली—शक्ति का एक रूप जिसके एक से लेकर सौ तक मुख हैं । इसका मन्त्र एक अक्षर से लेकर बाईस अक्षरों वाला है ।

ग्रह—नव की संख्या का बोधक शब्द ।

जाग्रत—शरीर की वह अवस्था जिसमें इन्द्रियाँ और मन दोनों ही सक्रिय रहते हैं ।

डाकिनी—दुर्गा देवी की सेविका जिसे भूतिनी या पिशाचिनी माना जाता है ।

तत्पुरुष—भगवान् शिव के पाँच मुखों में से पूर्व दिशा वाला मुख । इससे पूर्वाम्नाय सम्प्रदाय का निस्सरण हुआ ।

तिथि—पन्द्रह की संख्या का बोधक शब्द ।

द्वन्द्व—दो की संख्या ।

नर—नव संख्या का बोधक शब्द ।

नवद्वार—शरीर के अन्दर वर्तमान नव छिद्र—दो कान, दो आँख, दो नाक, मुँह, मल-मूत्र त्याग का मार्ग ।

नाग—गज ।

नाद—ब्रह्मरन्ध्र के मुख में इसका स्थान है । इसे सदाशिवतत्त्वस्थ महेश्वर महापुरुष घेरे रहते हैं । नाद से आगे बढ़ने पर ब्रह्मरन्ध्र के अन्दर नादान्त की स्थिति है ।

नारायण—नार—जल, वह है अयन-घर जिसका वह—भगवान् विष्णु ।

निरोधिका—इसका दूसरा नाम रोधिनी है । कपाल के ऊपर और ब्रह्मरन्ध्र के नीचे त्रिकोण में इसकी स्थिति है । ब्रह्मा आदि कारण पञ्चक की गति यहाँ पहुँचने पर रुक जाती है । वे आगे का स्तर भेदन करने में असमर्थ हो जाते हैं । यहाँ देश-काल का पार्थक्य नहीं रहता ।

नैवेद्य—देवता के भोजन के लिये देय पदार्थ । यह चार प्रकार का हो सकता है—भक्ष्य, पेय, चर्व्य, चोष्य ।

न्यास—किसी अक्षर, देवता, छन्द आदि का नाम लेकर सम्पूर्ण शरीर अथवा तत्तत् अङ्ग आदि में देवता आदि की स्थापना ।

पञ्चक—पाँच का समूह ।

पञ्चप्रेत—ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव । चूँकि ये सब मरते हैं इसलिये इन्हें प्रेत कहा जाता है ।

पाद्य—पैर धोने के लिये गन्धयुक्त जल ।

पिङ्गला—कन्द से निकल कर रीढ़ की हड्डी के दाँयें से चलकर दाँयें नासारन्ध्र से समाप्त होने वाली नाडी ।

पीठ—जहाँ अभ्युदय की सिद्धि शीघ्र और मोक्ष की प्राप्ति विलम्ब से होती है।

पूषा—यह नाडी कन्द से निकल कर बाँयें कान तक जाती है ।

प्रकृति—मूल कारण । सांख्य दर्शन के अनुसार यह जड़ है तथा सम्पूर्ण सृष्टि का उपादान कारण है ।

प्रमथ—शिव की सेवा में लगे हुए एक प्रकार के भूत ।

बाण—पाँच की संख्या का बोधक शब्द ।

बिन्दु—१. शिवशक्ति के सिसृक्षु होने पर उनके सङ्कोच के फलस्वरूप सृष्टि का प्रथम उद्भव । २. पन्द्रह नित्याओं की साम्यावस्था । ३. छह चक्रों के विगलित होने पर छह बिन्दुओं का अन्तिम परिणाम एक बिन्दु । ४. आज्ञाचक्र के ऊपर स्थित एक मात्रात्मक तत्त्व ।

ब्रह्माण्ड—ब्रह्मा के द्वारा रचित तथा ब्रह्मा के नियन्त्रण में रहने वाला अण्ड ।

मण्डल—घेरा । यह गोल चौकोर किसी भी आकार का हो सकता हैं ।

मधुपर्क—दही, मधु, घी का मिश्रण । दध्ना मधुसर्पिर्भ्यां मधुपर्क इहोच्यते ।

मनु—मन्त्र ।

महाकाल—शिव का एक रूप ।

मातृका—'अ' से 'क्ष' तक के वर्णों का समूह । इसका यथार्थ रूप अज्ञात होने से इसे मातृका कहा गया है । अज्ञातार्थे कन् ।

महाशङ्ख—खोपड़ी ।

मातृजार—माता के साथ समागम करने वाला पर पुरुष ।

मार्कण्डेय—मृकण्डु ऋषि के पुत्र । इनकी आयु की सीमा मात्र पाँच वर्ष थी, सप्तर्षियों के आशीर्वाद से उन्हें ब्रह्मा के पाँच वर्ष की आयु प्राप्त हुई ।

मालामन्त्र—बीस या इससे अधिक वर्णों वाला मन्त्र ।

मुनि—सात की संख्या का बोधक शब्द ।

मूलाधार—रीढ़ की हड्डी के नीचे जननेन्द्रिय के ऊपर वर्तमान कन्द में स्थित सुषुम्ना से थोड़ा ऊपर स्थित चक्र जिसमें चार दलों की कल्पना की गयी है, यह पृथिवी तत्त्व का प्रतिनिधित्व करता है ।

यक्ष—एक देवयोनि जो धन के देवता कुबेर के सेवक होते हैं ।

यन्त्र—रेखाओं के द्वारा बनायी गयी आकृति जिसमें कहीं अङ्क कहीं अक्षर और कहीं दोनों लिखे होते हैं । भिन्न-भिन्न देवता के लिये भिन्न-भिन्न यन्त्र होते हैं ।

यशस्विनी—यह नाडी कन्द से चलकर दाँयें कान तक जाती है ।

युग—चार की संख्या का बोधक शब्द ।

योगिनी—शिव या दुर्गा की सेविकायें । इनकी संख्या आठ मानी जाती है ।

वह्निजाया—स्वाहा ।

वामकर्ण—दीर्घ उकार ।

वामाक्षि—दीर्घ इकार ।

विद्याधर—एक देवयोनि जो गन्धर्व की श्रेणी के होते हैं ।

वेताल—एक भूत जो शव पर अधिकार रखता है ।

शंखिनी—यह नाडी कन्द से चलकर मूत्राशय तक जाती है ।

शस्त्र—हाथ में लेकर लक्ष्य पर प्रहार करने का साधन । जैसे—भाला, तलवार, डंडा आदि ।

शाकिनी—काली दुर्गा देवी की सेविका जिसे भूतिनी या पिशाचिनी माना जाता है ।

शिर/शिरस्—स्वाहा ।

शिवा—सियारिन ।

शूल—त्रिशूल ।

षडङ्गन्यास—हृदय, शिर, शिखा, कवच (दोनों भुजायें), नेत्रत्रय एवं शरीर के चारों ओर किया जाने वाला न्यास ।

सदाशिव—शिव की निमेष अवस्था वाला एक रूप जिसमें अहं इदम् का भेदज्ञान नहीं के बराबर रहता है । इसे सुशिव या सादाख्य भी कहते हैं ।

सद्योजात—भगवान् शिव के पाँच मुखों में से पश्चिम वाला मुख । इससे पश्चिमाम्नाय का सूत्रपात हुआ ।

सप्तर्षि—विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वसिष्ठ और कश्यप ऋषियों का समूह ।

समय—सङ्केत/सिद्धान्त/आचार ।

सहस्रार—भौंहों के मध्य में स्थित आज्ञाचक्र के ऊपर शिर में स्थित एक सहस्रदल कमल जिसमें शिव-शक्ति या कामेश्वर-कामेश्वरी यामल स्थिति में रहते हैं।

सुषुप्ति—शरीर की वह अवस्था जिसमें मन और इन्द्रियाँ दोनों निष्क्रिय रहती हैं ।

स्वप्न—शरीर की वह अवस्था जिसमें मन सक्रिय और इन्द्रियाँ निष्क्रिय रहती हैं ।

स्वान्त—हृदय—नमः ।

हस्तिजिह्वा—कन्द से चलकर दाँयीं आँख में जाकर रुकने वाली नाडी ।

हार्दमनु—नमः ।

हिरण्यगर्भ—ब्रह्मा ।

हृत्—नमः ।

* * *